भाग [illegible] | वृष, संवत् २००१, मई, १९४४ | संख्या [illegible]

Approved by the Directors of Public Instruction, United Provinces and Central Provinces, for use in Schools and Libraries.

'विज्ञान' मासिक पत्र (वार्षिक मूल्य तीन रुपया) विज्ञान-परिषद्, प्रयाग, का मुख पत्र है। विज्ञान-परिषद् एक सार्वजनिक संस्था है जिसकी स्थापना सन् १९१३ ई० में हुई थी। इसका मुख्य उद्देश्य है हिन्दी भाषामें वैज्ञानिक साहित्यका प्रचार करना तथा विज्ञानके अध्ययन को प्रोत्साहन देना। परिषद्के पदाधिकारी तथा विज्ञानके सम्पादक और लेखक अवैतनिक हैं। कोई भी हिन्दी प्रेमी अंतरंग सभा द्वारा परिषद् का सभ्य चुना जा सकता है। सभ्योंका चन्दा ५) रु० वार्षिक है। सभ्योंको विज्ञान और परिषद्की नव-प्रकाशित पुस्तकें बिना मूल्य मिलती हैं, और पूर्व-प्रकाशित पुस्तकें तथा आयुर्वेदविज्ञान-ग्रन्थमालाकी समस्त पुस्तकें पौन मूल्यपर मिलती हैं।

नोट—सामयिक पत्र, लेख, समालोचनार्थ पुस्तकें, प्रबंध-संबंधी पत्र, मनीआर्डर आदि 'मन्त्री, विज्ञान-परिषद्, इलाहाबाद' के पास भेजे जायँ। परंतु आयुर्वेद-विज्ञान सम्बन्धी बदले के सामयिक पत्र, लेख और समालोचनार्थ पुस्तकें स्वामी हरिशरणानन्द, अकाली मार्केट, अमृतसर के पते पर आनी चाहिए।

विज्ञान-परिषद्की प्रकाशित प्राप्य पुस्तकोंका सम्पूर्ण सूचीपत्र

१—विज्ञान-प्रवेशिका, भाग १—विज्ञानकी प्रारम्भिक बातें सीखनेका सबसे उत्तम साधन — ले० श्री रामदास गौड़ एम० ए० और प्रो० सालिगराम भार्गव एम० एस० सी०; ।)

२—ताप—हाई स्कूलमें पढ़ाने योग्य पाठ्य पुस्तक — ले० प्रो० प्रेमवल्लभ जोशी एम० ए० तथा श्री विश्वम्भर नाथ श्रीवास्तव, डी० एस-सी०; चतुर्थ संस्करण; ।।=)

३—चुम्बक—हाई स्कूलमें पढ़ाने योग्य पुस्तक—ले० प्रो० सालिगराम भार्गव एम० एस-सी०; ।।)

४—मनोरञ्जक रसायन—इसमें रसायन विज्ञान उपन्यासकी तरह रोचक बना दिया गया है, सबके पढ़ने योग्य है—ले० प्रो० गोपाल स्वरूप भार्गव एम० एस-सी; १।।)

५—सूर्य-सिद्धान्त—संस्कृत मूल तथा हिन्दी 'विज्ञान-भाष्य' प्राचीन गणित ज्योतिष सीखनेका सबसे सुलभ उपाय—पृ० संख्या १२१४; १४० चित्र तथा नकशे — ले० श्री महाबीर प्रसाद श्रीवस्तव बी० एस-सी०, एल० टी०, विशारद; सजिल्द दो भागोंमें, प्रत्येक भागका मूल्य ३)

६—वैज्ञानिक परिमाण— विज्ञानकी विविध शाखाओंकी इकाइयोंकी सारिणियाँ—ले० डाक्टर निहालकरण सेठी डी०एस-सी० और डा० सत्यप्रकाश डी०एस-सी०; ।।।)

७—समीकरण मीमांसा— गणितके एम० ए० के विद्यार्थियोंके पढ़ने योग्य — ले० पं०सुधाकर द्विवेदी; प्रथम भाग १।।), द्वितीय भाग ।।=)

८—निर्णायक (डिटर्मिनेंट्स) - गणितके एम० ए० के विद्यार्थियोंके पढ़ने योग्य—ले० प्रो० गोपाल केशव गर्दे और गोमती प्रसाद अग्निहोत्री बी० एस-सी० ।।)

९—बीजज्यामिति या भुजयुग्म रेखा गणित—इंटर मीडियेटके गणितके विद्यार्थियोंके लिये—ले० डाक्टर सत्यप्रकाश डी० एस-सी०; १।)

१०—गुरुदेवके साथ यात्रा—डाक्टर जे० सी० बोसकी यात्राओंका लोकप्रिय वर्णन; ।-)

११—केदार-बद्री यात्रा—केदारनाथ और बद्रीनाथके यात्रियोंके लिये उपयोगी; ।)

१२—वर्षा और वनस्पति—लोकप्रिय विवेचन — ले० श्री शङ्करराव जोशी; ।)

१३—मनुष्यका आहार — कौन-सा आहार सर्वोत्तम है— ले० वैद्य गोपीनाथ गुप्त; ।=)

१४—सुवर्णकारी—क्रियात्मक—ले० श्री गंगाशंकर पचौली; ।)

१५—प्रकाश रसायन—प्रकाशसे रासायनिक क्रियाओं पर क्या प्रभाव पड़ता है; बी० एस-सी० के विद्यार्थियोंके योग्य — ले० श्री० वि० वि० भागवत; १।।)

१६—विज्ञानका रजत-जयन्ती अंक—विज्ञान, परिषद् के २५ वर्षका इतिहास तथा विशेष लेखोंका संग्रह; १)

१७—विज्ञानका उद्योग व्यवसायाङ्क—रुपया बचाने तथा धन कमानेके लिये अनेक संकेत — १३० पृष्ठ, कई चित्र सम्पादक श्री रामदास गौड़; १।।)

१८—फल-संरक्षण—फलोंकी डिब्बाबन्दी, मुरब्बा, जैम जेली आदि बनानेकी अपूर्व पुस्तक; १५० पृष्ठ; १७ चित्र—ले० डा० गोरखप्रसाद डी० एस-सी०; ।।।)

१९—व्यङ्ग-चित्रण—(कार्टून बनानेकी विद्या)—ले० एल० ए० डाउस्ट, अनुवादिका श्री रत्नकुमारी, एम० ए०; १७५ पृष्ठ; सैकड़ों चित्र; सजिल्द; १।।)

२०—मिट्टीके बरतन—चीनी मिट्टीके बरतन कैसे बनते हैं, लोकप्रिय — ले० प्रो० फूलदेव सहाय वर्मा; १७५ पृष्ठ; ११ चित्र सजिल्द; १।।)

२१—वायुमंडल—ऊपरी वायुमंडलका सरल वर्णन— ले० डाक्टर के० बी० माथुर; १८६ पृष्ठ; २५ चित्र; सजिल्द; १।।)

२२—लकड़ी पर पालिश पॉलिश करनेके नवीन और पुराने सभी ढङ्गोंका ब्योरेवार वर्णन। इससे कोई भी पॉलिश करना सीख सकता है—ले० डा० गोरख प्रसाद और श्रीरामयत्न भटनागर; एम० ए०; २१८ पृष्ठ; ३१ चित्र, सजिल्द; १।।)

२३—उपयोगी नुसखे, तरकीबें और हुनर—सम्पादक डा० गोरखप्रसाद और डा० सत्यप्रकाश; आकार बड़ा (विज्ञानके बराबर), २६० पृष्ठ, २००० नुसखे,

विज्ञानं ब्रह्मेति व्याजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते ।
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति ॥ तै० उ० ।३।५।

भाग ५८ | तुला, सम्वत् २००० । अक्टूबर, १९४३ | संख्या १

कुछ पारिभाषिक शब्द

वनस्पति-विज्ञान और प्राणीशास्त्रमें ऑर्डर, फ़ैमिली, जनिस आदि शब्दोंके लिये कोई कुछ लिखता है, कोई कुछ। कई हिन्दी प्रेमी वैज्ञानिकोंसे परामर्श करने पर यह निश्चय हुआ है कि निम्नलिखित पारिभाषिक शब्द उचित होंगे। सरल विज्ञान सागरमें प्रायः इन्हीं शब्दोंका प्रयोग किया जा रहा है।

Kingdom जगत
Phylum समुदाय
Class श्रेणी
Order वर्ग
Family वंश
Genus गण
Species जाति
Variety भेद

Sub - के लिये उप - रहे। उदाहरणतः, sub-order = उपवर्ग; sub-species = उपजाति, आदि।

यदि एक ही लेखमें caste और species दोनों शब्द आयें तो पहलेके लिये जात-पाँत, या वर्ण; race के लिये कुल या वंशावलि। जहाँ केवल आपरिभाषिक रूपमें समुदायको कल्पनाको सूचित करना हो वहाँ समूह, झुण्ड, संघ विभाग, समवाय आदि शब्दोंका प्रयोग किया जाय।

— गोरखप्रसाद

जमीनके कटने-छटनेका खतरा : रोकथाम की आवश्यकता

कर्नल एफ० एल० ब्रेनने अखिल भारतीय रेडियो द्वारा दिये गये ब्राडकास्ट भाषणमें कहा कि; "भारतकी भूमि हमारे सामने सूखती जा रही है फिर भी ऐसे कितने लोग हैं जो जमीनके कटने छटनेको देखकर उसके प्रभावको समझते हैं? × × ×

कुछ वर्ष पहले भूमिके कटने छटनेके रूपमें आगे बढ़ती हुई मृत्युको मैंने अनुभव किया उस समयके बाद से पंजाब प्रान्तके जंगल विभागके विशेषज्ञोंकी सहायतासे मैंने इस समस्याका बड़े ध्यानसे अध्ययन किया है। भारत भरमें जिस प्रकार भूमि कटती छटती जारही है तथा जिस प्रकार पृथ्वीका ऊपरी सतह और वनस्पति कम होती जा रही है उसे देखकर मुझे बड़ा भय पैदा हुआ। उत्तर तथा दक्षिण दोनोंमें एक प्रकारकी स्थिति हैं। कहीं-कहीं आपको सुन्दर जंगल दिखाई पड़ते हैं लेकिन इनसे केवल इसी भेद का पता लगता है कि वर्तमान क्या है और भविष्य क्या हो सकता है।

मनुष्यकी लापरवाही

भगवानने नंगे पहाड़ नहीं बनाये थे। उसने उन्हें वृक्षों और झाड़ियोंसे ढका था। मनुष्यकी लापरवाहीसे पहाड़ नंगे हो गये हैं। मनुष्यने हवा और वर्षाको पहाड़ों पर की बहुमूल्य मिट्टीकी ऊपरी परतको हटा डालने दिया

है। अब इसकी पूर्तिमें कई युग लग सकते हैं। पहाड़, चरागाह तथा मैदान सबकी भूमि समान रूपसे कटछट रही है। बहुतसे क्षेत्रोंमें वर्षा घटती जा रही है और पृथ्वी के अन्दरके पानीकी सतह और भी नीची होती जा रही है। वर्षा और वनस्पतिमें सम्बन्ध होता है। यद्यपि यह सिद्ध नहीं किया जा सकता कि पेड़ोंके कम हो जानेसे वर्षा भी घट जाती है लेकिन यह स्पष्ट है कि ठंढे जंगली प्रदेश की अपेक्षा सूखे गरम रेगिस्तानमें पानी बरसाना बादलोंके लिये अधिक कठिन है।

कहा जाता है कि भगवानने रेगिस्तान नहीं बनाये थे। सम्भवतः यह ठीक है। शायद रेगिस्तानोंकी सृष्टि मनुष्यने की है। लेकिन जब एक बार एक काफी बड़े क्षेत्र से मनुष्य वृक्षोंको काट कर अलग कर देता है तो हवा अपने पूरे जोरके साथ कार्य करने लगती है और प्रकृति की अनियन्त्रित शक्ति रेगिस्तानको बढ़ाने लगती है। अमेरिका के छोटे-छोटे रेगिस्तान इस बातके काफी प्रमाण है कि सारे रेगिस्तान प्रागैतिहासिक कालके नहीं है। मनुष्य अपनी लापरवाहीसे उन्हें आज भी बना रहा हैं।

भारतमें इस समय मनुष्यकी लापरवाहीसे रेगिस्तान कैसे बन रहे हैं और देशकी भूमि कैसे सूखती जा रही है? भारतका मौसम ज़्यादातर ऐसा होता है कि कुछ काल तक ज़ोरकी वर्षा होती है और बहुत अधिक समय तक सूखा पड़ता है जिसके कारण भूमि बहुत शुष्क और रेतीली हो जाती है। परिणाम यह होता है कि ज़ोरकी वर्षाके झोंके असमान भूमिकी मिट्टीकी ऊपरी सतहको बहा ले जाते हैं क्योंकि वह वनस्पतिसे स्थायी रूपसे ढकी नहीं होती। खेती की भूमि हो घनी फसलसे कुछ समय तक ढकी रहती है। इसलिए ऊँची नीची भूमिमें खेती करनेसे पहले उसे समतल कर लेना चाहिये। भारतमें खेतोंके बड़े-बड़े क्षेत्र ऐसे है जिन्हें अभी तक समतल नहीं किया गया। इसलिये भूमिकी उर्बरा शक्ति बढ़नेके बजाय बराबर घट रही है। इसलिये भारतीय कृषिका पहला सिद्धान्त यह है कि ढालू जमीनोंके फालतू पानीके बहावके लिये नालियां होनी चाहिये। भारतके कुछ भागोंमें ढलानोंके नोचे मेंड़ बनाकर पानीकी नाली तैयार करनेका महत्व समझा जाता है। लेकिन अधिकांश भारतमें इसकी बड़ी आवश्यकता है और इसके अभावमें भूमिकी उर्बरा शक्ति घटती जा रही है।

रोकथामके उपाय

पहाड़ीपर तथा चारागाहोंमें घासके पैदा होनेका समय बहुत थोडा होता है। इसलिये यदि घास काटने और चराने पर नियन्त्रण न रखा जाय तो इससे वनस्पति नष्ट हो जाती है। भूमिपरसे वनस्पति हट जाती है और पशुओंके पैने खुरोंसे उसकी ऊपरी परत टूट फूट जाती है और बादमें हवा और वर्षा उसे वहांसे हटा ले जाती है। इस प्रकार पहाड़ों और चारगाहोंकी वनस्पति नष्ट होकर भारतकी भूमि बराबर सूखती ही चली जा रही है।

इस प्रकार जमीनके कटने छटनेकी रोकथाम भी सौभाग्यवश बड़ी सरलतासे की जा सकती है। भारत की उष्ण जलवायुमें आश्चर्यजनक शीघ्रताके साथ यह रोकथाम अमल में लाई जासकती है। पहाड़ोंके पास तथा चारगाहोंमें पशुओंको इकठ्ठा करके बांधना चाहिये, और उन्हें कटी हुई घास और चारे की फसल खिलानी चाहिये। इससे छोटे-छोटे पौधे वहां पैदा होने लगेंगे और घास बढ़ने लगेगी। पशुशालाओं में इकट्ठे बंधे पशु इधर-उधर चरते घूमने वाले पशुओंसे ज्यादा दूध देंगे तो वह सबसे अच्छे पशुओंसे ही नस्ल पैदा करेंगे। भारतमें पशुओंका चरना और वनस्पतिके ऊपरी भागोंको खाजाना प्राकृतिक वनस्पतियोंके लिये उतना हो खराब है जितना वह बोई हुई फसलोंके लिये होता है। पहाडके किसी भी ढलान पर जहांकी जमीन कटछट कर बिलकुल खराब न हो गई हो, दीवार बनाकर या तारका घेरा खींचकर इस बातको कोई भी व्यक्ति सिद्ध कर सकता है। खेतोंमें मेंड बना देनेसे फसलकी पैदावार भी बढ़ जाती है क्योंकि भूमिकी गर्मी बढ़ जाती है और भूमिकी उपजाऊ ऊपरी परत जिसे पहले वर्षा बहाले जाती थी अब वहां बनी रहती है। हर साल करोड़ों मन ऊपरी परत बह जाती है जो फिर कभी वापस नहीं आती। एक बारकी वर्षा में भूमिकी जो ऊपरी परत बह जाती है उसकी जगह दूसरी परत आनेमें १०० वर्ष तक लग सकते हैं। जितनी ही जल्दी हम इस समस्या को हल करेंगे उतनी ही जल्दी हम भारतकी उर्बरा शक्तिमें वृद्धि करेंगे, उसके पहाड़ों और चारागाहोंमें फिरसे घास और पेड पैदा होने लगेंगे और खाद्योंकी अधिक पैदावार होने लगेगी।

सरल विज्ञान सागर

अपनी योजनाके अनुसार हम विज्ञान-सागरका एक अंश नीचे उपस्थित करते हैं।

जीवाणुओंका ज्ञान मनुष्यको किस तरह प्राप्त हुआ ?

लगभग दो सौ वर्ष व्यतीत हुए एण्टनवान ल्यूवनहाक ने जीवाणुओंको देखा, परन्तु वह केवल बड़ी-बड़ी किस्मके जीवाणुओंको ही देख सका। शक्ति-शाली सूक्ष्मदर्शी यन्त्र के आविष्कार तक जीवाणुओंकी बहुत-सी जातियाँ अदृश्य बनी रहीं। सूक्ष्मदर्शी यन्त्रके आविष्कारके उपरान्त भी मनुष्य जीवाणुओंके सम्बन्धमें अधिक प्रयोग न कर सके, और न उनके जीवनकी घटनाओंका ही परीक्षण कर सके। परन्तु जब प्रयोगशालामें इनको पोषण और बर्द्धन (पालने और बढ़ाने) के उपाय मालूम हुये तो परख नलियोंमें शोरबा रखकर अधिक संख्यामें इनकी खेती (काश्त) अथवा वृद्धि की जाने लगी। जीवाणुओंकी खेती अब भी इस विधिसे की जाती है और शोरबाको, जिस पर इनका पोषण होता है, पोषक अथवा वर्द्धक माध्यम कहते हैं। जब पोषक-माध्यमको जीवाणु-वर्द्धक यन्त्रमें ऐसे उपयुक्त तापक्रम पर रक्खा जाता है जो जीवाणुओंके लिए अनुकूल हो तो जीवाणु खूब बढ़ते हैं और शीघ्रतासे वंश-वृद्धि करते हैं। पोषक-माध्यमकी खोजके पश्चात् जीवाणु-विद्यामें अधिक उन्नति हुई।

सूक्ष्मदर्शी यन्त्रकी सूक्ष्मदर्शता और पोषक-माध्यमकी उन्नतिके साथ-साथ बहुतसे वैज्ञानिकोंका ध्यान जीवाणु-विद्याकी ओर आकर्षित हुआ। संसार भरके अन्वेषक जीवाणुओंके निरीक्षणके लिए उत्तरोत्तर प्रगतिशील प्रणालियों की खोजमें निमग्न हो गये। राबर्ट कोख़ (१८४३-१९१०) ने इस सम्बन्धमें सबसे अधिक छान-बीन की। यह जर्मनी का एक ग्राम-चिकित्सक था। रोगियोंको देखते-देखते और नुसखे लिखते-लिखते उसे विस्मय हुआ करता था कि उन गुह्य रोगोंका क्या कारण है जिनका वह निराकरण करना चाहता है। जब कभी उसे अपने कामसे अवकाश मिलता वह अपने सूक्ष्मदर्शी यन्त्र अथवा जीवाणुओंकी परख-नलियोंसे काम करता हुआ दिखाई पड़ता। उसे शीघ्र ही अनुभव हुआ कि रोगोंके भेदको जाननेके लिए यह जरूरी है कि जीवाणुओंके निरीक्षणके जो तरीके मौजूद थे उनमें उन्नतिकी जाय।

जीवाणुओंके निरीक्षणमें उसके सामने जो कठिनाइयाँ थीं उनमें एक यह थी कि जब कभी वह किसी मृत प्राणीके कोष्ठ-पुंजोंका सूक्ष्मदर्शी यन्त्रसे परीक्षण करता तो उसे रोगके कीटाणु दिखलाई न देते। परन्तु उसे इस बातका फिर भी संदेह रहता कि जिस स्लाइडका मैं परीक्षण कर रहा हूँ उसमें अधिक संख्यामें ये कीटाणु मौजूद हैं। कोख़ और अन्य जीवाणु-विद्या विशारदोंने यह निश्चय कर लिया कि यदि जीवाणुओंको रङ्गा जा सके तो वह सहज ही दिखाई पड़ सकेंगे। कोख़ने इस विषय पर बहुतसे प्रयोग किये और अंतमें रंगनेके बहुतसे तरीक़े निकाले। रंगनेके ये तरीक़े अब भी प्रचलित हैं, यद्यपि उनमें बहुत परिवर्तन और उन्नति हो चुकी है।

कुछ जीवाणु

कोख़ने जीवाणुओंकी खेती (काश्त) के तरीक़ों में क्या उन्नति की ?

कोख़को अपने काममें एक और असुविधा मालूम हुई। रोगके कीटाणु जिनसे उसे दिलचस्पी थी और जिन्हें वह रोगग्रस्त जानवरोंके शरीरसे निकालता था, प्रयोगशालामें व्यवहृत शोरबामें वंशवृद्धि नहीं करते थे। परन्तु प्रयोग करनेके पश्चात् उसे मालूम हुआ कि यदि वह अपने पोषक माध्यममें रक्त-रस अथवा चक्षु-रस मिला दे तो वह इन कीटाणुओंके लिए उपयुक्त भोजन बन जाता है। यह ज्ञान बड़े ही महत्वकी घटना थी; क्योंकि अब इस ज्ञानके आधार पर वैज्ञानिक लोग जानवरोंके शरीरके बाहर भी रोगके कीटाणुओंको पैदा कर सकते हैं। इसका मतलब यह है कि कीटाणु इच्छित संख्या और समय पर निरीक्षकके लिए सदा प्राप्त हो सकते हैं।

किन्तु जब कीटाणुओंको किसी जानवरके शरीरसे बाहर निकाला जाता और द्रव पोषक-माध्यममें पैदा किया जाता है तो उनके साथ बहुतसे अन्य कीटाणु भी पाये जाते हैं। एक ही स्थान पर बहुतसे किस्मके कीटाणुओंके होनेके

कारण कीटाणु-विशारदको किसी एक किस्मके कीटाणुसे प्रयोग करना संभव न था। यह बड़ी भारी रुकावट थी। मगर कोख़ने एक ऐसा तरीका निकाला जिसमें शोरबेके साथ जिलेटिन मिला दी जाती है। द्रवकी हालतमें ही वह इस मिश्रणमें कीटाणु डाल देता और द्रवको चपटी शीशे की रकाबियोंमें उँडेल देता। ठंडे होने पर यह एक पारदर्शक कठोर चीज़ बन जाती है।

जो कीटाणु प्रवेश किये जाते एक बड़ी सतह पर फैल जाते और प्रत्येक कीटाणु दूसरेसे अलग बैठ जाता। प्रत्येक कीटाणुके भोजन करने, बढ़ने और वंश-वृद्धि करनेसे जो नये कीटाणु उत्पन्न होते वे अपने जनकके निकट इकट्ठे होने के लिए विवश थे। वह तर, मगर ठोस, मिश्रणमें जकड़ जाते और चालक अंग रखते हुए भी न चल सकते थे। कुछ घण्टोंके उपरान्त कीटाणुओंकी बस्तियाँ जिलेटीन पर अलग-अलग छिटकी हुई खाली आंखसे दिखाई देने लगतीं। इसके बादके ज़मानेमें वैज्ञानिक लोग जिलेटीनकी जगह सूखा हुआ 'अगर' काममें लाने लगे। यह एक पदार्थ है जो समुद्री घाससे तैयार होता है। यह घास जापानके तटसे कुछ दूरपर पाई जाती है। जिलेटीनकी तरह यह भी गरम पानीमें घुल जाती है और ठंडी होने पर जम जाती है। अब कोख़के तरीकोंमें थोड़े और भी परिवर्तन हुये हैं।

कोख़ने कीटाणुकी शुद्ध वंश-वृद्धि किस तरह की ?

भिन्न-भिन्न कीटाणुओंको अलग-अलग करने और उनके वंशजोंको एक ही स्थान पर सीमित कर देनेसे कोखके लिए यह सहज था कि हर किस्मके कीटाणुकी उत्पत्ति अलग-अलग कर सके। सुईकी मददसे वह कुछ कीटाणुओंको एक बस्तीसे अलग करता। चूँकि यह सब एक ही बस्तीसे लिये जाते अतएव वह सब एक ही किस्म के होते थे। इन कीटाणुओंको फिर दूसरी अगर-तख़्ती अथवा शोरबा वाली परख-नलीमें डाल दिया जाता। यहाँ इनकी शुद्ध वंश-वृद्धि होती, यानी उनसे एक ही किस्मके कीटाणु पैदा होते। कीटाणुओंकी शुद्ध-वंश वृद्धिकी यह एक साधारण विधि है जो सब प्रयोगशालाओंमें व्यवहृत है। कीटाणुओंको स्थानान्तर करते समय इस बातका ध्यान रखा जाता है कि यह हवामें उड़ने वाले अथवा सुई पर मौजूद कीटाणुओंसे न मिलने पायें। स्थानान्तर करने के समय अगर-तख्ती अथवा शोरबेकी परख-नली कीटाणु-रहित रहनी चाहिये। कीटाणुओंको दूसरी जगह करने के बाद अन्य भूले-भटके कीटाणुओंसे उन्हें सुरक्षित रक्खा जाय। शुद्ध वंश-वृद्धिके लिये जरूरत इस बातकी है कि हर एक चीज जो काममें लाई जाय कीटाणु-मुक्त हो।

जीव-शास्त्रज्ञोंको यह विश्वास क्यों हुआ कि रोग कीटाणु-जन्य हो सकते हैं ?

भारतवर्षके बहुतसे लोग अपनी आपत्तियोंको ग्रह-दशापर अवलम्बित समझते हैं। अतएव सब रोगोंको ग्रह-दशाका चक्कर समझ कर अपने जीको ठंडा कर लेते हैं। कुछ रोगोंको तो वह विशेष देवी या देवता का प्रकोप ही समझते हैं और इन्हीं देवी या देवताकी एक मात्र अराधना, सेवा-सुश्रूषा, इन रोगोंसे मुक्त करनेके अद्वितीय साधन समझे जाते हैं। ग्रह-दशाका चक्कर हो अथवा देवी-देवताका प्रकोप, प्रत्यक्षमें बहुतसे रोगोंके सम्बन्ध में अब यह मालूम हुआ है कि यह कीटाणु-जन्य हैं। रोगोंके कीटाणुवादका जन्मदाता इटलीका एक वैज्ञानिक था। इस सिद्धान्तके अनुसार यह माना जाता है कि संक्रामक (छूतके) रोगोंका मूल कारण कीटाणु है। उसने देखा कि रेशमके सब कीड़े जो रोगग्रसित थे एक पर-जीवी (परोप-जीवी) फफूँदीके आश्रयदाता और पालक थे। इस फफूँदीसे कोई मुक्त न था। अतएव वह इस नतीजे पर पहुँचा कि फँफूदी इस रोगकी जड़ है। ज्यों-ज्यों समय व्यतीत होता गया इसी क़िस्मकी अन्य खोजें हुईं, परन्तु लगभग पचास वर्ष और लगे जब वैज्ञानिकोंको इस बातका विश्वास दिलानेके लिये पर्याप्त सामग्री इकट्ठी हो सकी कि प्रत्येक संक्रामक रोग विशेष जीवाणु-जन्य है। मगर कीटाणुवादके स्थापन करनेमें यशके अधिक पात्र राबर्ट कोख़ ही हैं। सन् १८७५ ई० में रोगको कीटाणु-जन्य अनुमान कर कोख़ एन्थ्रैक्स के कारणकी खोजमें निमग्न हो गया। यद्यपि इस रोगसे मनुष्य बहुधा पीड़ित न होते थे तथापि यह भेड़-मवेशियोंका साधारण रोग था जिससे बहुत धनकी हानि होती थी। कोख़के पहले सन् १८५४ ई० में फ्रांस निवासी कीटाणु-विद्याविशारद डेवेनने

भी बताया था कि एक विशेष कीटाणु इस रोगका कारण है, परन्तु वह अपने दावेके प्रमाणमें विश्वासनीय साक्षी प्रस्तुत न कर सका। इस बातकी जाँच करनेके लिए कोख़ और अन्य कीटाणु-विद्या-विशारदोंने वर्षों अपने-अपने देशोंकी प्रयोगशालाओंमें खोज की। कोख़की संलग्नता अंतमें फली-भूत हुई और अन्य वैज्ञानिकोंने भी इस बातका सबूत पेश किया कि एक विशेष शलाकाकार कीटाणु एन्थ्रैक्स रोग पैदा करता है। कुछ वर्षोंके बाद कोख़ने यह भी सिद्ध कर दिया कि राजयक्ष्माका कारण भी एक विशेष शलाकाकार कीटाणु है। कोख़ने इस तरह न केवल राजयक्ष्माको नष्ट करनेका उपाय ढूँढ़ निकाला वरन् कीटाणुवादकी नींव दृढ़की और संसारके सभी देशोंके कीटाणु-विद्या-विशारदोंने कोख़की मुक्तकंठसे प्रशंसा की है।

कोख़को इस बातका विश्वास किस तरह हुआ कि राजयक्ष्मा शरीरमें बिना किसी कीटाणुके प्रवेश किये नहीं हो सकती।

राजयक्ष्मा द्वारा मृत जानवरोंके शरीरका परीक्षण करनेसे कोख़को बहुतसे क़िस्मके कीटाणु दिखाई दिये, परन्तु इन सबमें एक क़िस्मके कीटाणु तो सदा मौजूद पाये गये। अभाग्यवश उसे इस बातका विश्वास न था कि ऐसे कीटाणु जो एक ही क़िस्मके मालूम होते हैं वास्तवमें एक ही जाति के प्राणी हैं। संभव है वह कई क़िस्मके कीटाणु हों जो आपसमें इतने मिलते जुलते हों कि सूक्ष्मदर्शी यंत्र द्वारा भी अलग अलग न पहचाने जा सकते हों। कोख़ने इस मसलेको हल करनेके लिये रंगनेका एक नया तरीक़ा ढूँढ़ निकाला। इसने एक ऐसा नया तरीक़ा मालूम किया जिससे एक ही जातिके कीटाणु रंग पकड़ते थे और उसी आकारके अन्य जातिके कीटाणु इस रंगको अंगीकार न करते थे। जिस कीटाणुको वह राजयक्ष्माका कीटाणु अनुमान करता था उसीको रंगनेके लिये एक नया रंग तैयार किया गया। कोख़ने राजयक्ष्माग्रसित जानवरों में इन कीटाणुओंको लाखोंकी संख्यामें पाया। इस नये रंगके व्यवहृत होनेके पश्चात् उसे विश्वास हो गया कि वह आकारकी समतासे धोखा नहीं खा रहा था।

यद्यपि इस क़िस्मके कीटाणु राजयक्ष्माग्रसित सब जानवरोंमें पाये जाते थे फिर भी कोख़को इस बातका विश्वास न था कि इस कीटाणु-द्वारा रोग उत्पन्न होता है। शायद यह कीटाणु रोगके कारण न होते हों, पर रोगीके शरीरमें पाये जाते हों। इस बातके तै करनेके लिये कोख़ने
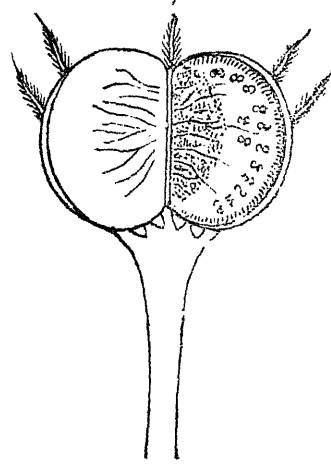
कीटभक्षी पौधे डायोनियाकी पत्ती

ठोस वर्द्धक-माध्यमपर इन कीटाणुओंको पैदा किया था। उसने इनकी बहुत-सी शुद्ध बस्तियां तैयार कीं। फिर उसने इन कीटाणुओंमेंसे कुछको सुई-द्वारा एक स्वस्थ जानवरके शरीरमें प्रवेश किया जो उसके निरीक्षणमें था। कीटाणु प्रवेश करनेके उपरान्त यह जानवर रोग-ग्रस्त हुआ, उसमें राजयक्ष्माके लक्षण पाये गये और वह इसी रोगसे मर गया।

इतनेपर भी कोख़को पूर्ण विश्वास न हुआ। इसलिये उसने इन कीटाणुओंको, जो प्रयोगकृत मृत जानवरमें मौजूद थे, रंगा। इस प्रयोगसे उसे मालूम हुआ कि ये वही कीटाणु थे जिनको उसने वर्द्धक माध्यमपर पैदा किया था। कोख़ने अपने प्रयोगोंको कई बार किया तब कहीं यह कहनेके लिये तैयार हुआ कि राजयक्ष्माका रोग कीटाणु-द्वारा होता है। उसने अपने प्रयोगके इस नतीजे को संसारके सामने उपस्थित किया। कीटाणुवादका यह विश्वसनीय प्रमाण था। कोख़के समयसे अब तक इतनी शहादत इकट्ठी हो गई है कि कोई मनुष्य इस बयानकी

सत्यता पर आक्षेप नहीं करता कि ऐसे रोग भी हैं जो कीटाणु-जन्य हैं।

लूई पाश्चर कीटाणुवाद पर किस तरह पहुँचा ?

कोई भी वैज्ञानिक ऐसा नहीं जो प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष सहायताके बिना किसी मसलेके प्रत्येक अंशको हल कर सके। अगर कोखने अपने ज़मानेके वैज्ञानिक पत्र इस बातके जाननेके लिये न पढ़े होते कि अन्य वैज्ञानिक क्या काम कर रहें हैं अथवा यदि अन्य जीवाणु-विद्या-विशारदोंने उसके काममें कोई दिलचस्पी न ली होती और इस विषय पर उसके साथ वाद-विवाद न किया होता तो वह कीटाणु-वादका प्रतिपादन कभी न कर सकता। उस समय बहुतसे मनुष्य इसी मार्ग पर काम कर रहे थे। उनमें लूई पाश्चर (१८२२-१८९५) भी एक था जो कोखके बराबर ही यशका पात्र है, क्योंकि उसने भी यह सिद्ध कर दिखाया है कि कुछ रोग शरीरके अन्दर खास किस्मके कीटाणुके बढ़नेसे पैदा होते हैं।

लूई पाश्चर फ़ांसके एक चमड़ा रंगने वालेका लड़का था। उसने अपना काम रसायनज्ञकी हैसियतसे आरम्भ किया। वह अपनी रसायन-प्रयोगशालामें प्रति दिन बहुत देर तक इस धुनमें प्रयत्नशील रहता कि दूध खट्टा क्यों हो जाता है और मदिरामें ख़मीर उठनेसे क्या परिवर्तन होते हैं। अपने प्रयोगोंके नतीजोंके आधारपर उसे यक़ीन हो गया था कि परिवर्तन करने वाले जीवाणुओंके बिना न तो दूध खट्टा हो सकता है और न अंगूरमें ही ख़मीर उठता है, और मदिराके खट्टे हो जाने और बिगड़ जानेका कारण यह है कि उसमें भिन्न जातिके जीवाणु पहुँच जाते हैं। अतएव पाश्चर जो वास्तवमें एक रसायनज्ञ था, कीटाणु-विद्या और जीवाणुओंकी जीवनचर्य्यासे भली भाँति परिचित हो गया था। उसे अब यह अनुमान होने लगा कि शरीरके रोग उन परिवर्तनोंके समान हैं जो शराब बननेमें होते हैं। इसलिये वह जानवरोंके रोगोंके निरीक्षणकी ओर झुका। उसे यह भी सन्देह हुआ कि जिन कीटाणुओंको उसने अभी तक प्रयोगशालामें पैदा किया उनसे भिन्न जातिके कीटाणु भी रोगके कारण हो सकते हैं। पाश्चर अभी रोगके इस मसलेको हल भी न कर पाया था कि कोखने अपने अन्वेषणों को छाप दिया।

मनुष्य स्वाभाविक ही इन अदृश्य कीटाणुओंसे किस तरह सुरक्षित रहता है ?

प्रकृतिकी लीला विचित्र है कि वह इतने घोर और भयंकर जीवोंको उत्पन्न करती है और फिर इसका भी प्रबन्ध करती है कि सब अपने अपने स्वाभाविक चातुर्यसे जीवन-निर्वाह कर सकें। ऐसे बैरियोंसे बचनेके लिये जिनको मनुष्य देख सकता है वह चेष्टा और प्रयत्न कर सकता है परन्तु अदृश्य बैरियोंसे बचना एक कठिन समस्या है। परमात्माकी असीम कृपा है कि उसने हमारे शरीर ही में ऐसा प्रबन्ध कर दिया है कि हम इन अदृश्य कीटाणुओंसे सुरक्षित रह सकें। पहले तो हमारा शरीर ही ऐसा बना हुआ है कि इसकी बाहरी त्वचा हमें इन कीटाणुओंके आक्रमणसे सुरक्षित रखती है। मगर हमारे शरीरमें मुख और नाक ऐसे द्वार हैं जिनमें होकर छोटे-छोटे जीव अन्दर प्रवेश कर जाते हैं। फिर भी इन अंगों की रचना ऐसी होती है कि यह बहुत संख्यामें जीवाणुओं को अन्दर जाने नहीं देते। जो मेदेमें पहुँच जाते हैं उनमें से बहुतसे पाचक अम्ल रसमें मर जाते हैं। इसी तरह नाक द्वारा भी जो जीवाणु अन्दर प्रवेश करना चाहते हैं, उन्हें भी शरीर बाहरकी तरफ निकालनेका प्रयत्न करता है। परन्तु इस सब चौकसीके होते हुये भी जीवाणु इतनी संख्यामें होते हैं कि शरीरके अन्दर प्रवेश कर ही जाते हैं। कभी-कभी ऐसा भी होता है कि किसी वस्तुसे छिदने या किसी जानवरके काटनेसे त्वचा कट जाती है। ऐसी अवस्थामें कीटाणु कोष्ठ-पुंजोंमें सीधे प्रवेशकर जाते हैं जहाँ उनके लिये उपयुक्त स्थान मिल जाता है, क्योंकि इन कीटाणुओंके पोषणके लिये जिन चीज़ोंकी ज़रूरत होती है, जैसे भोजन, नमी और ताप तीनों ही मौजूद होते हैं। किन्तु शरीरके स्वयं-सेवक फिर भी इनका पीछा नहीं छोड़ते।

जो कीटाणु शरीरमें प्रवेशकर जाते हैं उन्हें स्वयं-सेवक किस प्रकार नष्ट करते हैं ?

वास्तवमें मनुष्य अथवा किसी अन्य प्राणीके शरीरमें

देवासुर संग्राम

हमारे शरीरमें रोगोंके जीवाणुओंके घुसते ही हमारे रुधिरके श्वेताणु उनसे लिपट जाते हैं। वे उनको चारों ओरसे घेर लेते हैं और धीरे-धीरे उन्हें पचा जाते हैं। इस प्रकार हमारा शरीर रोग पर विजय पाता है। परन्तु जब रोगके जीवाणु इतना शीघ्र बढ़ते हैं कि श्वेताणु उन सबको नहीं घेर पाते और शरीरकी अन्य रोग निवारक-शक्तियाँ भी हार जाती हैं तो रोग बढ़ता जाता है और अंतमें रोगी मर जाता है। इस चित्रमें टाइफॉइडके जीवाणुओं और रुधिरके श्वेताणुओं के संग्रामका कल्पित चित्र दिखलाया गया है।

भी जीवाणु पलनेकी क्षमता नहीं रखते। परन्तु रोगोत्पादक कीटाणु शरीरमें प्रवेश करते ही तेज़ीसे वंश-वृद्धि करने लगते हैं। यदि पालक में इन कीटाणुओंका सामना करनेकी कोई शक्ति पहलेसे न होती तो उसकी फ़ौरन ही पराजय हो जाती है। पालक दो तरहकी संरक्षक शक्तियों से सुसज्जित रहता है। इन शक्तियोंको रोग रोकने वाली (प्रतिबंधक) शक्ति कहते हैं। एक तरहकी प्रतिबंधक शक्तिको एली मेचनीकाफ (१८४५-१९१६) रूसी जीव-शास्त्रज्ञ और जीवाणु-विद्या-विशारद ने दरयाफ्त किया। अपने सहकारियोंकी सहायतासे पेरिसकी पाश्चर संस्थामें मेचनीकाफ ने मालूम कर लिया कि त्वचा कट जानेके बाद जब कीटाणु प्रविष्ट हो जाते हैं तो क्या परिवर्तन होता है। ज्योंही रक्त इस कटे हुये स्थानसे बहता है इसके श्वेताणु केश नलियोंकी दीवारोंसे बह निकलते हैं और निकटके कोष्ठ-पुंजोंमें प्रविष्ट हो जाते है। यहाँ वह कीटाणुओंको खाकर नष्ट कर देते हैं। श्वेताणुओंमें यह शक्ति है कि वे कोष्ठ पुंजोंमें स्वच्छन्द विचार सकते हैं और कीटाणुओंको खाते रहते हैं। यदि कीटाणुओंकी संख्या अधिक न हुई तो श्वेताणु ही शरीरको उनसे मुक्त कर देते हैं। मेचनीकाफ ने इन श्वेताणुओं-का नाम भोजी-कोष्ठ रक्खा क्योंकि ये कीटाणुओंको खाते हैं।

कभी-कभी भोजी कोष्ठ कुभाग्य-

वश कीटाणुओंका शिकार बन जाते हैं। ऐसी अवस्थामें श्वेताणु इस स्थान पर अधिक संख्यामें आजाते हैं और जीवाणुओंसे भिड़ते हैं। यदि ये भी मर जायँ तो मृत भोजी कोष्ठ इकट्ठे होते रहते हैं और रक्त-संचालन का मार्ग रोक देते हैं जिससे कीटाणु शरीरके अन्य भागोंमें न पहुँच सकें। इसी कारण व्रणमें पीव पड़ जाता है। पीवको जब सूक्ष्मदर्शी यंत्रसे देखा जाता है तो यह मृत भोजी-कोष्ठोंका समुदाय साबित होता है जिनमें अधिक संख्यामें जीवित कीटाणु मौजूद होते हैं। रक्तके श्वेताणु इस तरह न सिर्फ कीटाणुओंको ही निगल और पचा डालते हैं; वरन् अन्य पर-जीवी और सब प्रकारके वाह्य कणोंको भी निगल जाते हैं। भोजी कोष्ठ बड़े लाभ-दायक हैं। इन कोष्ठोंकी पराजय होने पर भी शरीरमें संरक्षणके और भी तरीके हैं। यदि कोई प्राणी संरक्षणके लिये केवल भोजी-कोष्ठोंपर ही निर्भर होता तो यह थोड़े ही किस्मके रोगोत्पादक कीटाणुओं पर विजय प्राप्त कर सकता।

भोजी-कोष्ठोंके सिवाय और कौन-सी तरकीबें हैं जिनके द्वारा कोई प्राणी कीटाणुओंसे सुरक्षित रह सकता है।

ऐसा ख्याल किया जाता था कि रोगोत्पादक कीटाणु इस कदर वंश-वृद्धि करके आघात करते हैं कि रक्त-संचालन मंद पड़ जाता है और शरीरके भिन्न-भिन्न अंग अपने-अपने कामको ठीक-ठीक संपादन नहीं कर सकते। यह हालत कुछ रोगोंमें घटित होती है। नियम यह है कि पर-जीवी कीटाणु आश्रयदाताके शरीरमें विषैले पदार्थ उत्पन्न करते हैं जिनके कारण उसे क्षति पहुँचती है। कुछ किस्मके कीटाणु विषैले पदार्थ पैदा करके बाहर छोड़ते हैं और अन्य विषैले पदार्थोंको अपने कोष्ठोंके अन्दर ही रखते हैं, परन्तु अन्तमें यह विष भी उतनी ही क्षति पहुँचाता है क्योंकि कीटाणुओं के मर जाने और टूटने-फूटनेके बाद विष बाहर निकल पड़ता है। इससे भली भांति समझा जा सकता है कि मनुष्यके शरीरमें भोजी-कोष्ठोंके सिवाय कुछ अन्य पदार्थों की भी जरूरत है ताकि वह कीटाणुओंका मुकाबिला कर सके। शरीरको आवश्यकता इस बातकी है कि विष और कीटाणु दोनोंसे मुक्त रह सके।

विषैले पदार्थों को दूर करनेके लिए कुछ ऐसे पदार्थ होते हैं जो रक्त-रसमें मौजूद होते हैं। रक्त-रसमें उपस्थित यह पदार्थ विषैले पदार्थोंसे मिलकर उन्हें नष्ट कर देता है।
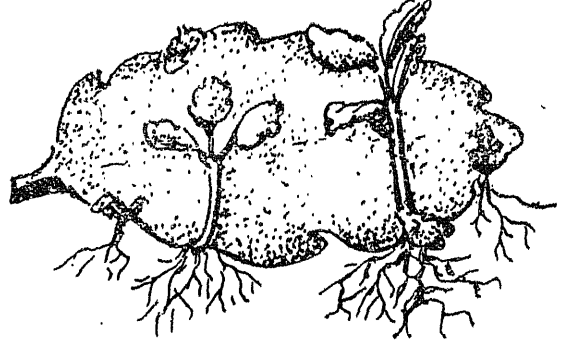
पथरचट्टेकी वंशवृद्धि।

भूमि पर पथरचट्टेकी पत्तीके पड़ने पर पत्तियोंके किनारे वाली आँखोंसे नवीन पौधे उत्पन्न हो जाते हैं।

इन पदार्थोंको विरोधी-विष कहते हैं। विरोधी-विष शरीरके भीतर रहने वाले योजक-कोष्ठ-पुंजके कोष्ठोंसे तैयार होते हैं। साँपका विष और कुछ उच्च श्रेणीके पौधोंके घातक विष कीटाणुओं द्वारा पैदा किये हुये विषके समान है। इन विषोंके खिलाफ भी प्राणी विरोधी-विष तैयार कर सकते हैं।

रक्त-रसमें और कौनसे संरक्षक पदार्थ पाये जाते हैं?

विरोधी-विषके अतिरिक्त अन्य पदार्थ भी रक्त-रसमें घुले रहते हैं जो शरीरमें प्रविष्ट कीटाणुओंसे युद्ध करनेमें प्राणीके सहायक होते हैं। ये अन्य पदार्थ कीटाणुओं पर असर करते हैं, न कि उनके विषों पर; जैसे, रक्तमें कुछ ऐसी चीज़ें होती हैं जो कीटाणुओंपर इस तरह असर करती हैं कि भोजी-कोष्ठोंको कीटाणुओंके खानेमें सुविधा हो जाती है। इस तरहके पदार्थोंको भोजन-विधायक कहते हैं। जब रक्त-रसमें भोजन-विधायककी मात्रा अधिक होती है तब भोजी-कोष्ठों द्वारा निगले हुये कीटाणुओंमेंसे पचाये हुये कीटाणुओंकी प्रतिशत संख्या बढ़ जाती है। कुछ भोजन-विधायक ऐसे होते हैं कि उनकी मददसे प्रत्येक

प्रकारका कीटाणु निगला जा सकता है और अन्य केवल एक ही जातिके कोटाणुओं पर असर करते हैं। इस क़िस्मके भोजन-विधायक विशेष हुआ करते हैं।

रक्तके अन्य रासायनिक पदार्थ भोजी-कोष्ठोंको सहायता नहीं देते, परन्तु कीटाणुओंपर दूसरी ही तरहसे असर करते हैं। इनमें ऐसी चीज़ें हैं जो कीटाणुओंको घोल लेती हैं। इन चीज़ोंको कीटाणु-विलेयक कहते हैं। वास्तवमें कीटाणु ही नहीं, वरन् सब प्रकारके आगंतुक कोष्ठ, चाहे रक्त-कोष्ठ हों अथवा अन्य कोष्ठ, यदि किसी जानवरसे निकाल कर दूसरे जानवरके रक्तमें टीकाके ज़रिये प्रवेश कर दिये जायँ तो कीटाणु विलेयकमें घुल जाते हैं। जो हालत भोजन-विधायक की है वही कीटाणु-विलेयकर्की है, यानी यह कि भिन्न-भिन्न आगंतुक कोष्ठके लिये भिन्न-भिन्न प्रकार के कीटाणु-विलेयक होते हैं। इनके सिवा रक्तमें ऐसे पदार्थ भी होते हैं जो कीटाणुके झुंडके-झुण्ड इकट्ठे कर देते हैं। इन पदार्थोंको कीटाणु-ग्राहक कहते हैं। कीटाणु गतिशील होते हैं। कीटाणु-ग्राहक उन्हें गतिहीन कर देते हैं। यह क्रिया ठीक किस तरह शरीरको मदद देती है, साफ़-साफ़ समझनेमें नहीं आती। शायद जब कीटाणुओंकी ढेरियाँ बन जाती है तो भोजी कोष्ठ सहज ही इन पर आक्रमण कर सकते हैं। —श्रीजगमोहन

पौधोंकी वंश-वृद्धि

जानवरों और पौधोंमें वंश-वृद्धिका सरलतम मार्ग कौन-सा है ?

जबसे प्राणियोंकी रचना हुई तबसे जीवन-मरणका चक्र बराबर चल रहा है। जो इस नश्वर संसारमें आता है उसे एक दिन जाना पड़ता है। चाहे मनुष्य हो चाहे अन्य प्राणी, यह क्रम सब पर लागू होता है। श्रीभगवद्गीता का "जातस्य ध्रुवो मृत्युः" वाला सिद्धान्त स्वयंसिद्ध है। यदि प्राणियोंमें वंश-वृद्धिकी प्रवृत्ति न होती तो यह संसार-चक्र कदापि न चल सकता। पुराणोंमें एक कथानक इस प्रकार आया है कि ब्रह्माने आदिमें अपने शरीरसे कुछ ऋषियोंको उत्पन्न किया, किन्तु यह ऋषि संसार-रचनाकी ओर प्रवृत्त न हुये। फिर ब्रह्मासे स्वायंभूमनु और सतरूपाकी उत्पत्ति हुई और तबसे मैथुनी सृष्टिकी रचना हुई। इस कथानकसे यह प्रकट होता है कि तबसे उत्पत्ति-क्रिया प्राणियोंका एक विशेष गुण बन गई है। अतएव सब जीवधारियोंमें यह क्रिया पाई जाती है। परन्तु सब प्राणियोंमें उत्पत्ति-क्रिया समान नहीं होती।

क्या जीवधारी निर्जीव पदार्थसे उत्पन्न होते हैं ?

शताब्दियों तक इस बातपर विश्वास किया जाता था कि कुछ जीव अन्य पूर्वस्थित जीवधारियोंसे उत्पन्न नहीं होते, वरन् इनका जन्म निर्जीव पदार्थसे होता है। जीवधारियोंकी इस उत्पत्ति-विधिको स्वयं-उत्पत्ति-क्रिया कहते हैं। मिश्रियोंका ख्याल था कि मेंढक और चूहे नील नदीकी उस मिट्टीसे उत्पन्न होते हैं जिसे बाढ़के समय यह खेतों में छोड़ देती है। आज भी ऐसे लोग हैं जिनकी धारणा है कि मेंढक, केंचुए और बीरबहूटियाँ वर्षाके जलके साथ गिरती हैं। कुछ लोगोंका विचार है कि घोड़ेका बाल पानीमें पड़ा-पड़ा साँप बन जाता है और सड़ते हुये मांससे छोटे-छोटे कृमि पैदा हो जाते हैं। बहुतसे परीक्षणों द्वारा यह सिद्ध हो चुका है कि ये बातें सम्भव नहीं। इसका निराकरण कि "मक्खियाँ सड़ते मांसमें पैदा होती हैं" सबसे पीछे हुआ, क्योंकि यह साधारण अनुभवकी बात थी कि मक्खियोंके बच्चे (ढोले) सड़ते हुए मांसमें दीख पड़ते हैं। सतरहवीं शताब्दी के अर्धकाल व्यतीत होनेके कुछ समय ही बाद रेडी ने, जो इटलीका एक जीव-शास्त्रज्ञ था इस अंध-विश्वासका खंडन किया।

उसने सड़ते हुये मांसको कई मर्तबानों में रक्खा। एक को खुला छोड़ दिया गया, दूसरेका जालीसे ढक दिया गया और तीसरे पर एक मोटा मोमी कागज़ बाँध दिया गया कि मांसका गंध तक उसमेंसे न निकल सके। कुछ समयके बाद रेडीने देखा तो मालूम हुआ कि खुले हुये मर्तबानके मांसमें और जालीसे ढके हुये मर्तबानका जाली के ऊपर ढोले मर्तमान है। परन्तु तीसरे मर्तबानके निकट जो मोमी कागज़से ढका था न तो ढोले और न मक्खियोंके ही चिन्ह थे। उसने इससे यह परिणाम निकाला कि पहले मर्तबानमें ढोलोंकी उपस्थितिका कारण यह था कि मांसकी गंधसे आकर्षित होकर मक्खियां इसके

अन्दर पहुँच सकीं और उन्होंने वहां अंडे दिये। दूसरे मर्तबानकी जाली पर ढोलोंकी उपस्थितिका कारण यह था कि मक्खियां मांस तक न पहुँच सकीं। वह जाली पर जाकर रुक गईं और उन्होंने जाली पर अंडे दिये। मोमी कागज़ पर ढोले न थे क्योंकि मक्खियां इस मर्तबान की ओर आकर्षित नहीं हुईं।

सच तो यह है कि ढोले उसी स्थान पर पाये जाते हैं जहां मक्खियां होती हैं। वे मांससे उत्पन्न नहीं होते। रेडीने अपने प्रयोगोंमें बड़ी सावधानी और तीक्ष्ण निरीक्षणसे काम लिया जिसका परिणाम यह हुआ कि जीव-शास्त्रज्ञोंको धीरे-धीरे यह विश्वास हो गया कि स्वयं-उत्पत्ति सम्भव नहीं है। परन्तु कुछ वर्षों के बाद ल्यूवनहाक ने सूक्ष्मदर्शकोंसे सूक्ष्म जीवोंका संसार खोज निकाला और स्वयं-उत्पत्ति समस्या पर पुनः विचार होने लगा। यह सूक्ष्म जीव वास्तवमें ऐसे थे जिनके सम्बन्धमें स्वयं-उत्पत्तिका सिद्धान्त युक्तसंगत प्रतीत होता था। इसलिये इस विषय पर फिर वाद-विवाद आरम्भ हो गया।

इस वाद-विवादका अन्त लूई पाश्चर और जान टिंडालके प्रयोगोंने कर दिया। पाश्चरने द्रव भोजनकी बहुत-सी शीशियां तैयारकीं। यह द्रव भोजन जीवाणुओंके लिये अच्छा भोजनकी सामग्री था। जब इन शीशियोंमें जीवाणु उत्पन्न हो गये तो पाश्चरने शीशियोंके द्रव भोजन को अच्छी तरह उबाला। इसका परिणाम यह हुआ कि जीवाणु मर गये। उबलते समय ही उसने कुछ शीशियोंकी गर्दन पिघलाकर शीशियोंको बन्द कर दिया और अन्य शीशियोंको खुला छोड़ दिया। जब उबालनेके बाद फौरन ही खुली शीशियोंके द्रव भोजनकी परीक्षा किया गया तो उसे जीवाणुओंके चिन्ह न मिले। किन्तु जब प्रयोगशाला में इन शीशियोंको खुला रख दिया गया तो कुछ समयके बाद इनमें जीवाणु फिर पाये गये, परन्तु बन्द शीशियोंमें कोई जीवाणु न पाया गया। यह सिद्ध करनेके लिये कि इन शीशियोंके पदार्थमें जीवाणुओंके पोषण करनेकी शक्ति है या नहीं, पाश्चरने कुछ शीशियोंको फोड़ कर खुला छोड़ दिया। ऐसा करनेसे कुछ ही कालमें जीवाणु उत्पन्न हो गये और द्रव भोजन सड़ने लगा।

पाश्चरने यह निश्चय कर लिया कि जीवाणु निर्जीव पदार्थसे उत्पन्न नहीं हो सकते, अतएव उनकी उत्पत्ति उन जीवाणुओंसे हुई होगी जो हवाके धूल-कणों पर मौजूद रहते हैं। इस बातको साबित करनेके लिये वह कुछ सुराहियोंको उच्च पर्वतोंके शिखरों पर ले गया जहांकी हवा धूल-कणोंसे रहित और स्वच्छ थी। उसका मत ठीक निकला। उन शीशियोंमें, जो पर्वतके शिखरोंपर खोली जाती थीं और जिन्हें धूल-आच्छादित वायु-मंडलमें लानेसे पहले बन्द कर दिया जाता, शायद ही कभी कोई जीव पाये जाते। टिंडालके प्रयोग भी इतने ही विश्वसनीय साबित हुये। इन वैज्ञानिकोंने सिद्ध कर दिया कि सरलतम जीव भी पूर्ववर्तीय जीवोंसे ही उत्पन्न हो सकते हैं।

ऐमीबा और उसके निकटके कुटुम्बियोंमें वंश-वृद्धि किस तरह होती है?

सूक्ष्मदर्शी यन्त्र द्वारा ऐमीबाकी परीक्षा करते समय कभी-कभी यह जीव वंश-वृद्धि करते हुये दिखाई देता है। यह इस क्रियाका आरम्भ नीचे लिखे ढंग पर करता है। पहले यह अपने असत-पैरोंको खींच लेता है और फिर कुछ क्रिया-हीनसा हो जाता है। इसका मूल-बिन्दु जो कोष्ठके केन्द्रमें रहता है दो भागोंमें विभक्त हो जाता है।

मूल-बिन्दुके विभागके समय कोष्ठ-रस केन्द्रसे विरोधी दिशाओंमें बहने लगता है। इसी समय दोनों हिस्से एक दूसरेसे पृथक होने लगते हैं। इन दोनों हिस्सोंको मिलाने वाला कोष्ठ-रस पतला होता जाता है यहां तक कि यह एक तागाके समान रह जाता है और फिर बिलकुल टूट जाता है। आधे घंटेके अन्दर दो ऐमीबा तैयार हो जाते हैं और प्रत्येकमें एक-एक मूल-बिन्दु रहता है। मूलबिन्दुके इस विभाग और कोष्ठ शरीरके दो सम भाग होने को द्वि-सम-विभाग क्रिया कहते हैं।

प्रत्येक नये कोष्ठसे असत्-पैर निकलते हैं, यह जीव रेंगता है। जो कोई सूक्ष्म जीव या पौधा इसके मार्गमें

---

*ऐमीबा एक अतिसूक्ष्म जंतु होता है जो अपना रूप प्रायः बराबर बदला करता है, जब चाहता है तो अपने शरीरसे लंबी अंगुलियोंसा अंग बढ़ा सकता है तब इन्हीं को असत-पैर कहते हैं क्योंकि ये सच्चे पैर नहीं होते।
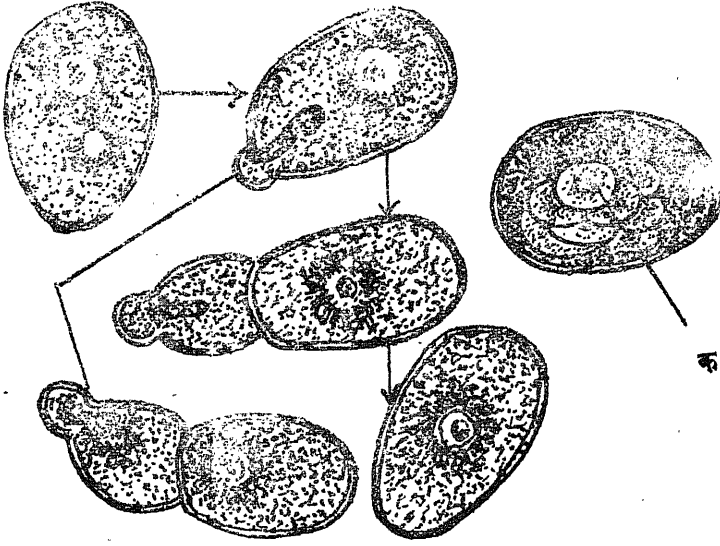
कोष्ठ-विभाजन।
एक कोष्ठसे दोका बनना; क—मूलविन्दु।

जाती है, हज़ारों जीवित एक-कोष्ठीय पौधे होते हैं। इन्हें उचित भोजन दिया जाय तो .खमीरका पौधा तेज़ीसे बढ़ता है और वंश-वृद्धि करता है। जब यह ऐसा करता है तो मूल विन्दुओंमें विभक्ति हो जाती है। मूल-विन्दु एक सिरे पर रहते हैं। इन मूल-विन्दुओंके बीचमें एक कोष्ठ-भीति बन जाती है। इसका तात्पर्य यह है कि कोष्ठ-शरीर बीचमें विभक्त नहीं होता, बल्कि एक सिरे पर मूल-विन्दु सहित। बड़े कोष्ठको मातृ-कोष्ठ और छोटे भाग को पुत्री-कोष्ठ या कली कहते हैं। उत्पत्तिकी यह रीति ऐमीबाकी उत्पत्तिसे कुछ भिन्न है। .खमीरमें कोष्ठ-शरीरका विभाग असम होता है परन्तु एमीबामें कोष्ठ-शरीर का विभाग सम होता है। जब कोई जीव अपने शरीरके असम-विभाग द्वारा वंश-वृद्धि करता है तो इस क्रियाको 'कलियाना' अथवा 'विषम विभाग' कहते हैं।

यदि बल-पूर्वक इनको अलग न किया जाय तो कली कुछ समय तक मातासे जुड़ी रहती है। वास्तवमें यह तब तक जुड़ी रहती है जब तक कि इसमें भी एक कली न निकल आये। इस तरहसे .खमीरके पौधोंको एक छोटी-सी शृंखला बन जाती है। इन कलियोंके जुड़े रहनेमें कोई महत्व नहीं है। यदि इनको हिला दिया जाय तो छोटी-छोटी कलियाँ पृथक हो जाती हैं, बढ़ती हैं और प्राकृतिक विधि द्वारा इनसे संतति-वृद्धि होती है।

आता है उसे निगलता जाता है और शक्ति बढ़कर पूर्ण ऐमीबा बन जाता है। सम-विभाग क्रियामें जननी अन्य माताओंके समान संतति नहीं उत्पन्न करती। वह स्वयं दो सन्तानोंमें विभक्त होजाती है। इन दोनोंको बहुधा पुत्री कोष्ठ कहते हैं और जननीको मातृ-कोष्ठ। यद्यपि सच पूछा जाय तो इन कोष्ठोंको न माता ही और न पुत्रियाँ ही कह सकते हैं।

सम-विभाग-क्रिया ऐमीबा और पेरेमीसियममें ही नहीं होती बल्कि बहुतसे एक कोष्ठीय जानवरों और पौधोंमें पायी जाती है। बहु-कोष्ठीय जीवोंके कोष्ठ भी इसी भाँति विभक्त होते हैं, परन्तु इस विभागको सम-विभाग नहीं कहते क्योंकि इस अवस्थामें केवल एक नया कोष्ठ तैयार होता है न कि एक नया जीव। 'सम-विभाग' शब्द एक-कोष्ठी जानवर या पौधेकी उत्पत्तिके लिए प्रयोग किया जाता है।

.खमीरके पौधेकी वंश-वृद्धि किस प्रकार होती है?

तुम .खमीरके पौधेसे परिचित हो यद्यपि तुम इसे पौधा न समझते होगे। दबो-दबाई .खमीरको टिकियामें, जो यूरोपमें .खमीर रोटी पकानेके लिये काममें लायी

सदा जीव एक ही समयमें बहु-संख्यामें सन्तानोत्पत्ति किस तरह करते हैं?

कभी-कभी एक-कोष्ठीय-जीव अथवा सरल बहु-कोष्ठीय जीवका एक-कोष्ठ दो भागोंमें विभक्त न होकर बहुतसे भागोंमें बँट जाता है। इस प्रकार उत्पत्ति-क्रियामें मूल-विन्दुके विभक्त होते ही प्रत्येक भाग फिर विभक्त हो जाता

है। यह क्रिया यहाँ तक जारी रहती है कि आठ या सोलह अथवा इससे अधिक संख्यामें मूल-विन्दुके चारों ओर थोड़ा-सा कोष्ठ-रस एकत्रित हो जाता है और एक कोष्ठकी जगह तुरन्त ही बहुतसे छोटे-छोटे कोष्ठ तैयार हो जाते हैं। प्रत्येक कोष्ठकी चारों ओर एक मोटी रक्षक दीवार तैयार हो जाती है। इस प्रकार बने हुये कोष्ठको बीजाणु कहते हैं। चाहे कितना ही छोटा क्यों न हो, प्रत्येक बीजाणु अपना अस्तित्व रखता है, क्योंकि इसमें मूल-विन्दुके चारों ओर थोड़ा-सा कोष्ठ-रस होता है।

जब ख़मीरका भोजन चुक जाता है तो कलियाना बन्द हो जाता है। इस अवस्थामें ख़मीरका प्रत्येक कोष्ठ फूल जाता है, फिर चार भागोंमें विभक्त हो जाता है।
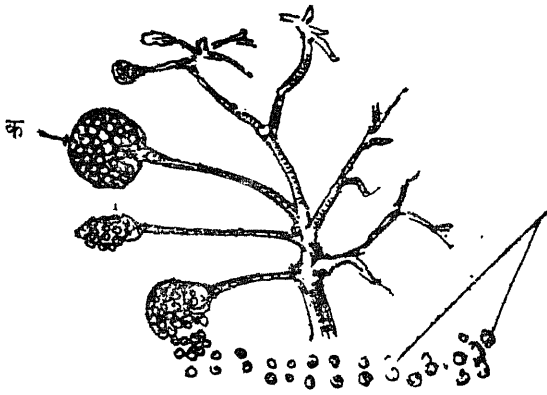
बीजाणुओंका बनना और बिखरना।
क—बीजाणु संपुट; ख बीजाणु।

प्रत्येक भागके चारों ओर कड़ी दीवारें बन जाती हैं। इस तरहसे बीजाणु बन जाते हैं जो सुरक्षित बने रहते हैं। जब जननी-कोष्ठकी बाहरी दीवार सूखकर फटती है। तो बीजाणु निकल पड़ते हैं और हवामें उड़ने लगते हैं इन जीवाणुओंमें सर्दी-गर्मी और सूखा सहन करनेकी शक्ति होती है। इस प्रकार ये बहुत दिनों तक जीवित रह सकते हैं। जब बीजाणु मीठे द्रवमें जा गिरते हैं तो कलिया-नेकी क्रियासे उनकी वृद्धि होने लगती है जिसके कारण मीठा शरबत शराबमें बदल जाता है।

फफूंदी जो भीगी रोटी पर आती है बीजाणु उत्पत्ति द्वारा वंश-वृद्धि करती है। यदि फफूँदीको सूक्ष्म-दर्शी यंत्र द्वारा परीक्षण करो तो तुम्हें मालूम होगा कि यह एक सरलकोष्ठ नहीं है बल्कि फैली हुई एक जटिल वस्तु है। फफूँदी जिस पदार्थ पर उगती है उसमें इसके कुछ तागे धँस जाते हैं और उससे यह अपना भोजन चूस लेती है। कुछ तागे ऊपर उग कर हवामें निकल आते हैं। हवामें निकले हुये तागोंकी नोकें फूल जाती हैं। बीजाणु-उत्पत्ति इन्हीं फूले हुये हिस्सोंमें होती है। इन फूले हुये हिस्सोंमें बहुतसे मूल-विन्दु होते हैं। जब तागेके ऊपरी भागका कोष्ठ-रस बँट जाता है तो प्रत्येक टुकड़ेमें एक या अधिक मूल-विन्दु होते हैं। प्रत्येक छोटे कोष्ठके चारों ओर एक दीवार बन जाती है। ये ही बीजाणु हैं। तागेका फूला हुआ हिस्सा जिसमें बीजाणु-उत्पत्ति होती है बीजाणु-संपुट कहलाता है। यह बीजाणुओंको उस समय तक रखनेके लिये थैलीका काम देती है जब तक कि वे पक कर जनक-पौधेसे अलग होनेके लिये तैयार नहीं होते। बीजाणुओंको अलग-अलग देखनेसे उनमें कोई रंग नहीं दिखाई देता, परन्तु समूहमें फफूँदीकी जातिके अनुसार ये काले, हरे या पीले मालूम होते हैं। जब बीजाणु बहुत हो जाते हैं तो पूरा पौधा रंग सा जाता है।

तुमने बीजाणुओंके समूहको कुकरमुत्ताकी टोपीके नीचे, काईके ऊपर और शायद फर्न पर उगते हुये देखा होगा। फर्नकी पत्तीकी नीचेकी सतह पर मौसममें भूरी लकीरें या धब्बे दिखाई देते हैं। इन धब्बे या लकीरोंसे भूरे चूर्णको हिलाकर अलग कर लो। यह चूर्ण बीजाणुओं का समूह है। फर्नमें फफूँदीकी तरह पौधेके थोड़ेही भागसे बीजाणु बनते हैं, अन्य भाग पौधोंके पोषणमें लगे रहते हैं। यह बात स्वाभाविक है कि जब कोई कुछ जटिल पौधा बीजाणु बनाता है तो प्रत्येक बीजाणु काफ़ी बढ़ जाता है और इसमें बहुतसे परिवर्तन होते हैं, तब कहीं जाकर यह अपने जनकके समान नया जीव बननेके योग्य होता है।

पेचीदे पौधोंमें वंश-वृद्धिकी सरल रीतियाँ क्या हैं?

माली जानता है कि जिरेनियम, बिगोनियाँ, गुलाब और करोटनके नये पौधे तैयार करनेकी श्रेष्ठ विधि यह

है कि पौधेके तनेका एक छोटासा टुकड़ा काट लिया जाय और उसे पानी अथवा भीगे रेतमें कुछ समय तक रख दिया जाय। ऐसा करनेसे इन टुकड़ोंसे जड़ें निकल आती हैं, फिर इन पौधोंको दूसरी जगह लगाया जा सकता है। यह तना जिससे जड़ें फूट निकलती हैं और जो बढ़कर नया पौधा बन जाता है, क़लम कहलाता है। कुछ पौधोंको क़लम द्वारा लगाना कठिन है, परन्तु निपुण माली प्रत्येक पौधेसे इस प्रकार नये पौधे तैयार कर सकता है। कभी मनुष्यके बिना हस्तक्षेपके क़लमें लग जाती हैं। करंजके झाड़से जो टहनियाँ गिर पड़ती हैं समय पाकर मिट्टीसे दब जाती हैं। इनसे जड़ें निकल आती हैं और नये पौधे बन जाते हैं।

कभी कभी जनक-पौधेसे बिना अलग हुये ही तनोंसे नये पौधे तैयार हो जाते हैं। पोदीनाका लम्बा तना मिट्टीके समानान्तर बढ़ता है। लगभग आधे या एक फुटके अन्तरसे एक छोटासा तना पत्तियों सहित सीधा ज़मीनके ऊपर निकल आता है। इससे निकल कर जड़ें ज़मीनमें धँस जाती हैं और पोदीनाका नया पौधा तैयार हो जाता है। ऐसा जान पड़ता है मानों प्रत्येक पौधा अपनी माता पौधेका हाथ पकड़े हुये है और कुछ समयके बाद अपनी पुत्रीके लिये अपना हाथ बढ़ाता है। रेलवे बेलका झुका हुआ तना कभी-कभी मिट्टीसे दब जाता है। इस स्थानसे जड़ें निकल आती हैं। नये पौधेकी इस उत्पत्ति क्रियाको "दाबू-क़लम" द्वारा उत्पत्ति कहते हैं।

अन्य पौधेभी हैं जिनमें वंश-वृद्धि तने द्वारा होती है, परन्तु ऐसे तने भी हैं जिन्हें तुम सहजमें पहचान नहीं सकते। आलू वास्तवमें एक तना है, यद्यपि यह ज़मीनके अन्दर बढ़ता है और इस पर पत्तियाँ नहीं दिखाई देतीं। फिर भी यह तना है क्योंकि इस पर छोटी-छोटी घुंडियाँ होती हैं जिन्हें आँखें कहते हैं। मोटे रसदार, भूमिके नीचे रहनेवाले तनेको कंदल कहते हैं। जब आलू का एक टुकड़ा ज़मीनमें लगा दिया जाता है तो आँखें उगने लगती हैं और नये तने और पत्तियां निकल आती हैं। यदि आलूको यों ही ज़मीनमें छोड़ दिया जाय और आवश्यकतानुसार सींचा जाय तो एक कंदलसे बहुतसे आलूके पौधे उग आते हैं।

तने कभी-कभी दूसरी रीतिसे छिपे रहते हैं। कभी-कभी रसीले होनेके बदले वे बहुत छोटे और सादे होते हैं। इस तरह पत्तियाँ, जो साधारणतया तनेके पार्श्व में पाई जाती हैं, रचनामें तनोंके बहुत निकट आती हैं। इस प्रकार
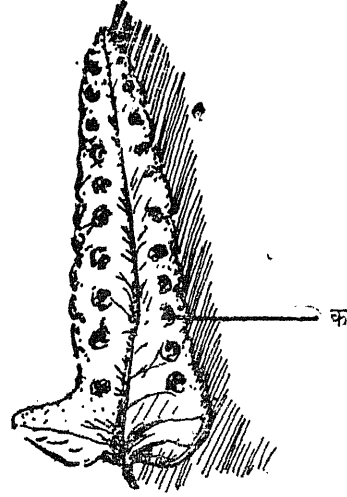
फ़र्नकी एक पत्ती।
क बीजाणु।

संक्षिप्त तनेको जिस पर बहुत ही पास-पास रसदार छिलके (पत्तियां) होते हैं, कंद कहते हैं। जब कंदको ज़मीन में छोड़ दिया जाता है तो पत्तियां और फूल निकलनेके बाद इससे छोटे छोटे कंद पार्श्वकी शाखाओंकी जगह तैयार हो जाते हैं। अनुकूल ऋतुमें इनसे नये पौधे तैयार हो जाते हैं। यह एक दूसरी सरल विधि है जिसके द्वारा कुछ जटिल पौधे, जैसे प्याज़, नरगिस इत्यादि वंश-वृद्धि करते हैं।

भूमिके अन्दर रहने वाले तनेका एक उदाहरण अरवी की पोटी (गांठ) है। इसमें वंश-वृद्धिकी योग्यता पाई जाती है। यह भी कंदसे बहुत कुछ मिलती-जुलती है। इसे घन-कंद कहते हैं। अन्तर इतना है कि कंदमें भोजन सामग्री छिलकोंमें इकट्ठी रहती है, परन्तु इसमें भोजन सामग्री तनेमें उपस्थित होती है। अरवीमें वर्तमान तनेके नीचे मुरझाये हुये पुराने तनेका चिन्ह दिखाई देता है। कसेरूकी उत्पत्ति भी इसी विधिसे होती है।

हल्दी, अदरक और अन्य पौधोंमें भी भूमिके अन्दर रहने वाले तने होते हैं। ये कुछ चपटे और भूमिके समा-

पुदीना।
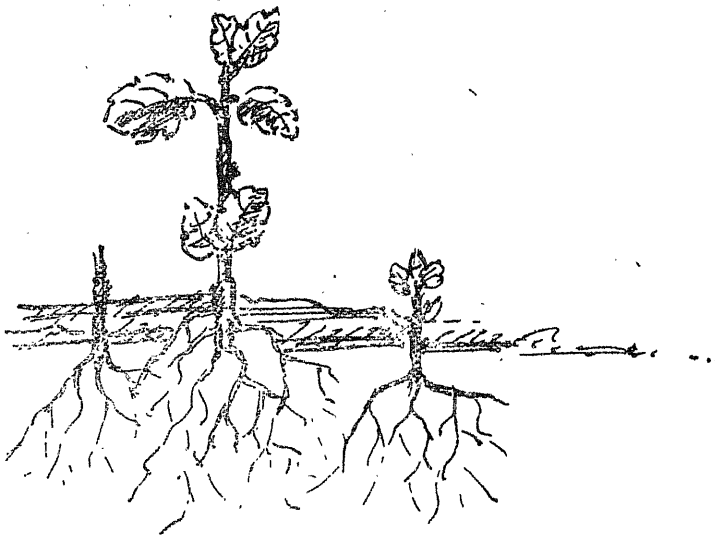
पुदीनाके तने भूमिमें बढ़ते रहते हैं और स्थान-स्थान पर उनसे पौधे निकल आते हैं।

नान्तर बढ़ते हैं इनपर कलियां और छिलके होते हैं। इन कलियोंमें से कुछ ऊपरकी ओर उगती हैं और जमीनके बाहर निकल आती हैं, और इनसे पत्तीदार शाखाएँ तैयार हो जाती हैं, परन्तु अधिक भाग पृथ्वीके नीचे ही बढ़ता रहता है। इस प्रकारके तनेको भू-प्रकांड कहते हैं।

कभी-कभी जड़ोंसे नये पौधे तैयार होते हैं जैसे शकरकंद, रताल, डहेलिया इत्यादि। कुछ दशाओंमें जब पत्तियां, या पत्तियोंका केवल एक भाग, पौधेके अन्य भागसे पृथक हो जाता है, तो नया पौधा तैयार हो जाता है। पथरचटाकी पत्ती जब मिट्टीमें अनुकूल अवस्थामें रख दी जाती है तो उससे जड़ें फूट निकलती हैं और नया पौधा तैयार हो जाता है। जड़ तना और पत्ती पौधे के वानस्पतिक अंग हैं, इसलिये उत्पत्तिकी इस विधिको वानस्पतिक उत्पत्ति (या वंश-वृद्धि) कहते हैं।

इस सरल विधि द्वारा कौनसे जंतु वंश-वृद्धि करते हैं?

अधिकांशमें बहुकोष्ठीय जंतु अपने शरीरके टुकड़ोंसे नये प्राणी उत्पन्न नहीं कर सकते। परन्तु बिना रीढ़के कुछ जंतुओंमें यह बात संभव है। तारा-मछली की कुछ जातियाँ ऐसी हैं कि उनकी एक भुजा अलग हो जाने पर कटी हुई भुजासे पूर्ण प्राणी तैयार हो जाता है। वंश वृद्धिकी यह क्रिया साधारण नहीं है। परन्तु बहुत सी जातिको तारा-मछलियोंकी वंश-वृद्धि भुजा कटने पर इसी रीतिसे होती है। छोटा चपटा केंचुआ (प्लैनेरिया) यदि काट दिया जाय तो इससे कई नये प्राणी तैयार हो जाते हैं।

पुनरुद्धारसे क्या तात्पर्य है?

देखनेमें केवल इतना ही नहीं आता कि तारा-मछलीकी एक भुजासे नया प्राणी बन जाय बल्कि अंग-भंग हुई तारा मछलीका कटा अंग फिर तैयार हो जाता है। दोनों ही हालतमें पुनरुद्धार क्रिया होती है जिसका तात्पर्य है- फिर उत्पन्न करना। परन्तु दोनोंमें कुछ भेद है। पहले उदाहरणतः पुनरुद्धार द्वारा ऐसी उत्पत्ति होती है कि छोटा भाग बढ़कर एक पूरे नये पौधोंमें परिणत हो जाता है। यह क्रिया इने-गिने जानवरोंमें ही हुआ करती है। ऐसे पुनरुद्धारके उदाहरण बहुत साधारण हैं जिनमें एक अंगकी ही उत्पत्ति होती है। बहुतसे बिना रीढ़ वाले जानवरोंमें यह शक्ति पायी जाती है कि कटी हुई टाँग अथवा कोई दूसरे अंग पुनः बन जाय, परन्तु रीढ़ वाले जानवर इस सफलताके साथ अंगोंका पुनरुद्धार नहीं कर सकते। श्री जगमोहनलाल

वनस्पतियोंमें राजनैतिक तथा सामाजिक विधान

जानवरोंमें बच्चोंके प्रेमके कारण आचरणके उच्चतम लक्षण उत्पन्न होते हैं। मनुष्यमें भी प्रेम तथा भविष्य-की चिन्ता अनेक सामाजिक सद्गुणोंकी नींव है। उदा-हरणार्थ दूसरोंकी भलाईका ख़्याल, सोच-विचारकर काम करना और दूरदर्शिता यहींसे उत्पन्न होते हैं। परन्तु
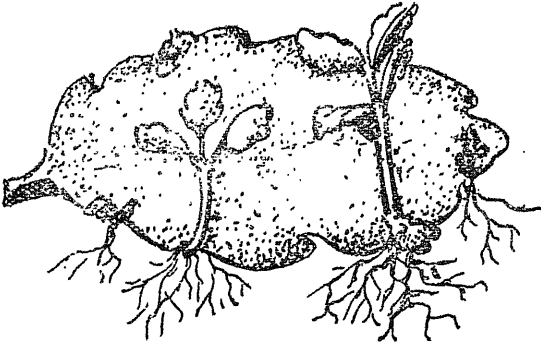
पथरचटेकी पत्ती।

भूमिपर पड़नेसे और ऋतुके अनुकूल रहनेसे।

वनस्पतियोंमें यह सिद्धान्त जिस निर्दोष और उच्च शिखर पर पहुँच गये हैं वहां तक जानवरों और मनुष्योंमें वे नहीं पहुँच पाये हैं। हम लोगोंका ख़्याल है कि मध्यम श्रेणीके लोगोंका अपना जीवन बीमा करा लेना भविष्यकी चिन्तासे मुक्त होनेकी एक दूरदर्शितापूर्ण तैयारी है। और जब कोई कठिन परिश्रमसे धन उपार्जन कर अपने बाल बच्चोंके लिए पढ़ने लिखने और खाने पीनेका अच्छा प्रबन्ध कर देता है तो हम उसकी प्रशंसा करते हैं। परन्तु ये दोनों बातें आदमीको अब सूझी हैं। अभी सौ वर्ष भी नहीं हुए जब जीवन बीमाका नाम व निशान भी नहीं था और आज भी यह अपने बचपनमें ही है। नहीं तो आज इतने अनाथ बालक मारे-मारे न फिरते।

पौधोंमें दूरदर्शिता और बुद्धिमानी दोनों लक्षण आश्चर्यजनक रीतिसे विकसित हुए हैं। आजसे करोड़ों वर्ष पहले भी वे आजके से ही निर्दोष रूपमें पाये जाते थे। एक भी फूलनेवाला पौधा ऐसा नहीं है जो अपने बच्चोंके लिए बीजके रूपमें भोज्य सामग्री न जमा कर देता हो।

पैतृक संपत्तिका उपभोग

यह पैतृक धन जो पौधोंको अपने माता-पितासे मिलता है उतनी ही विभिन्न मात्रामें रहता है जितना मनुष्योंमें। कोई तो लखपतियोंकी संतानके समान ख़ूब माल पाते हैं, जैसे नारियलका बच्चा पौधा। जब तक कि पौधेकी जड़ खोपरेकी तीन आँखोंमें से एकको फोड़कर ज़मीन नहीं पकड़ लेती तब तक खानेके लिए गरीका सफ़ेद नरम पौष्टिक गूदा उसके लिए तैयार रहता है। इसी प्रकार सेम, मटर, बादाम, अखरोट आदिके बच्चे पौधोंको अच्छी पैत्रिक सम्पत्ति पौष्टिक भोज्य सामग्रीके रूपमें मिलती है जो कि छिलकेके बीचमें सावधानीसे सुरक्षित रहती है। इस प्रकार यद्यपि कुछ पौधोंको खाने भरके लिए काफ़ी सामग्री रहती है दूसरे बिचारे ग़रीब पैदा होते हैं। राई, पोस्ता या पीपलको देखिये। इन सबोंको अपने पिता-से इतनी कम सामग्री मिलती है कि वह शीघ्र ख़र्च हो जाती है। बीजमें से पत्तियोंके निकलते ही उनको तुरन्त हरा हो जाना पड़ता है। क्योंकि बिना हरे हुए वे हवासे अपना भोजन नहीं चूस सकतीं। यदि तुरन्त ही पत्तियाँ हरी न हों और पूर्ण रूपसे विकसित पत्तियोंकी तरह कड़ी मेहनत न करने लगें तो ये पौधे अवश्य ही मर जायँगे और इन पेड़ोंकी जाति लुप्त हो जायगी। जब इसपर विचार किया जाता है कि बादाम या अखरोटके नन्हें पौधोंको कितनी अधिक या कितनी बढ़िया भोज्य सामग्री तबतक खानेके लिए मिलती है जबतक उनकी जड़ें जमीनसे खनिज पदार्थ और अपनी पत्तियों द्वारा हवासे कारबन न ले सकें और साथ ही इसपर विचार किया जाता है कि राई या पोस्तेको कितनी जल्दी जान बचानेके लिए वही काम करना पड़ता है तो यही ख़्याल आता है कि वनस्पति-राज्यमें भी एक वनस्पति और दूसरे में उतना ही अन्तर है जितना कि एक मनुष्यके बच्चेमें और दूसरेमें। धनीका बच्चा किस लाड़-प्यारसे पाला जाता है और कुछ बड़ा होते ही अच्छे स्कूलोंमें भेजा जाता है और किसी दुखियेका लड़का बचपन ही से सड़कों पर भीख मांगता है! तो भी इन पैतृक धनरहित नन्हें पौधोंकी आश्चर्यजनक जीवन-शक्तिकी प्रशंसा करनी ही पड़ती है। इनके पास बना-बनाया भोजन मुफ्तका नहीं रहता। इस लिए वे तुरन्त ही ईमानदारीके साथ जन्मते ही मेहनत करना शुरू कर देते हैं। छोटे पौधेकी वृद्धिके लिए बात एक ही है, चाहे उसे मुफ्तका सामान मिले चाहे उसकी पत्तियाँ और जड़ें मेहनत करके उसे खिलायें।

उत्तराधिकारका प्रबन्ध

पौधोंका कोई भी विभाग ऐसा नहीं है जहाँ उन्हें राजनैतिक और सामाजिक नियम पूर्ण रूपसे चालू न दिखाई पड़ें। ये नियम ऐसे सच्चे हैं कि इस विज्ञानका विद्यार्थी आश्चर्यमें पड़ जाता है और उसे कई एक बातें मनुष्योंके लिए उपयोगमें लाने योग्य मिलती हैं।

पेड़ोंमें वे आँखें जिनसे बसन्त ऋतुमें पत्तियाँ फूटती हैं किस प्रकार मोटे खोलसे ढकी रहती हैं, जिससे वे जाड़े में पालेसे बच जायँ, इसे सभी जानते हैं। हमको इससे भी शिक्षा मिलती है। जो वनस्पति-विज्ञान नहीं जानते वे समझते हैं कि पत्तियाँ शुरूसे ही वसन्त ऋतुमें बनती होंगी। परन्तु सच बात यह है कि पुरानी पत्तियोंके पहले ही उनकी उत्तराधिकारी पत्तियाँ बन जाती हैं। पुरानी पत्तियाँ वसन्त और गर्मी भर मेहनत केवल इसलिए ही नहीं की रत थीं कि पेड़का तना कुछ मोटा हो जाय। परन्तु इसलिए भी करतीं हैं कि उनकी उत्तराधिकारी पत्तियाँ बनकर उनका स्थान लेनेके लिए तैयार हो जायँ। पत्ती पैदा करने वाली कलीमें सब सामग्री जमा करके रक्खी रहती है जिससे उचित ऋतुके आनेपर नई पत्तियाँ बन सकें। इस प्रकार केवल वर्त्तमानपर ध्यान देनेके बदले सदा भविष्यपर भी ध्यान रहता है।

पौधे किस प्रकार धन गाड़कर रखते हैं?

कुछ पौधे अपना धन ज़मीनमें गाड़ देते हैं। जो कुछ वे बचाते हैं वह सब पत्तीकी आँखोंके रूपमें डंठलोंपर नहीं रहता - वह ज़मीनके नीचे कन्दके रूपमें जमा होता है, जैसे आलू, शकरकंद, हाथीचकका क़न्द। यह क़न्द पौधोंकी जड़ नहीं है बल्कि तनेकी आँखें है। ये आँखें कुछ-कुछ ज़मीनके ऊपर और कुछ ज़मीनके नीचे, दोनों जगह पैदा होती हैं। ज़मीनके नीचे वाली आँखोंसे नये पौधे पैदा होते हैं। जिन लोगोंने कभी आलू बोया हो वे इसे अच्छी तरह जानते होंगे। उन्हें इसका पता होगा कि एक बड़े आलूको काटकर छोटे-छोटे कई टुकड़े कर देनेपर भी यदि उनको बो दिया जाय तो प्रत्येक टुकड़ेसे नये पौधे पैदा होंगे, बशर्ते कि आलूके काटनेमें आँखें न कटने पायें। वस्तुतः ये आंखें ही वे जगह हैं जहाँ नये पौधे पैदा होते हैं। बाक़ी आलू तो उनके लिए भोज्य सामग्री है। इसीको खाकर आलू ठीक उसी तरह जीता है जैसे बच्चा अपनी माँ का दूध पीकर। जब पौधा खुद ज़मीन और हवासे खुराक चूसने लायक हो जाता है तो उसको इसकी ज़रूरत नहीं रहती। मार्केकी बात यह है कि संसारके सबसे सुन्दर पौधे इस प्रकार अपनी भोज्य सामग्रीको ज़मीनके अंदर रखते
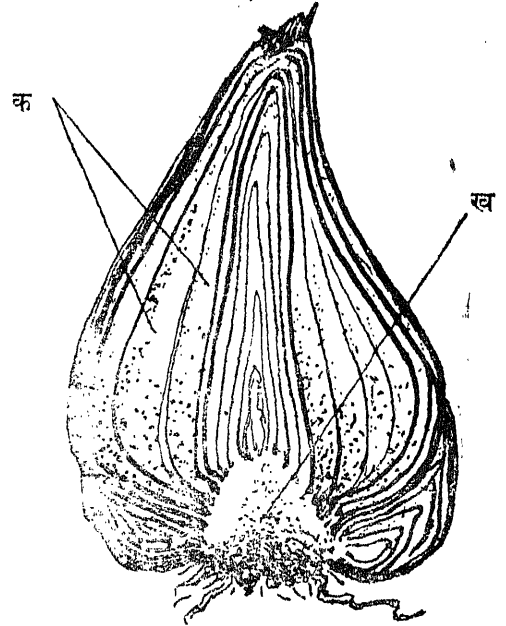
प्याज़।

क - नवीन पौधे बनाने वाले अंग; पुराने पौधेकी जड़।

हैं और यह सामग्री या तो अगली फ़सल या नवीन पौधेके लिए सुरक्षित रहती है। लिली, क्लेरियम ट्यूलिप, वगैरह और आरकिड्योंकी बहुत-सी जातियाँ इस प्रकार कन्दके रूपमें गर्मीभर अपनी सामग्री जमा करती हैं जिससे जाड़े में पत्तियोंके मर जानेपर अगली वसन्त ऋतुमें नई फिरसे उत्पन्न हो सकें।

तड़क-भड़कके लिए संग्रह

प्याज़की एक पत्ती लीजिये और उसे चौड़े मुँहकी बोतलपर रखिये। इस बोतलमें पहले स्वच्छ पानी भर

दीजिये जिससे पत्तीकी जड़ तर रहे। बरतनको अब उजालेमें रखिये जहां रोशनी इसको सचेत कर सके। बस पुत्तीको और कुछ नहीं चाहिए, केवल पानी ही की आवश्यकता है चाहे मिट्टी न भी हो, और पानी चाहे मेंहका पानी हो जिसमें भोज्य पदार्थ कुछ भी घुला नहीं रहता। पौधेसे शीघ्र हरी पत्तियाँ और कुछ समय बाद सुन्दर फूल भी निकल आते हैं। और यह परिवर्तन किया किसने? केवल प्रकाशने जिससे उस पुत्तीकी माँड़ी प्रकाश की शक्तिसे बदलकर पौधेके खाने योग्य हो गई और जादू भरा परिवर्तन उत्पन्न हो गया। इन पौधोंमें यह पुत्ती केवल तनेका फूला हुआ रूप है; यह जड़ नहीं है और न यह आलूकी तरह ज़मीनमें रहनेवाला असली कन्द। हमारे वैज्ञानिक माली लिली और इसी प्रकारके दूसरे पुत्तीवाले
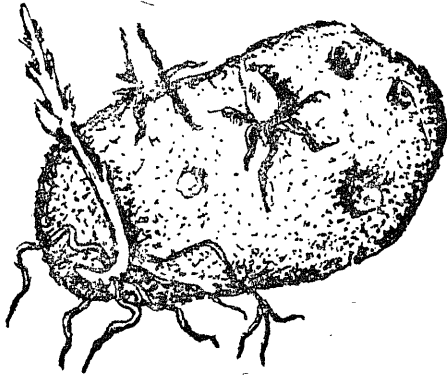
आलू।

आलूको भूमिमें गाड़ देनेसे प्रत्येक आँखसे नवीन पौधा निकल आता है।

पौधोंसे अधिक सुन्दर फूल पैदा करनेके लिए एक बड़ी विचित्र रीतिका प्रयोग करते हैं। वे हर साल फूलनेके ज़रा पहले पौधेको ऊपरसे काट डालते हैं। परिणाम यह होता है कि पुत्ती अर्थात् फूला हुआ तना और भी मोटा हो जाता है। इस प्रकार प्रति साल पौधा अधिकाधिक माँड़ी जमा करता चलता है केवल एक सालकी माँड़ीसे उसकी मात्रा कहीं अधिक होनेके कारण जब पौधेको फूलने दिया जाता है तब उसके फूलोंमें असाधारण तड़क-भड़क आजाती है। इससे तो हमको उन लोगोंकी याद आती है जो लोग कभी नाच-तमाशा न देखकर पैसा इसलिए बचाते हैं कि अपने लड़केकी शादीमें, खूब धूम-धामसे बरात निकाल सकें। जाड़ेके दिनोंमें ऐसे पौधेमें कुछ भी वृद्धि नहीं होती। बसन्त और गरमीभर पौधे खूब मेहनत करके जाड़ेके लिए भी काफ़ी भोजन सामग्री जमा कर लेते हैं और वह अधिकतर कलिका या पुत्ती या क़न्दके रूपमें रहता है।

सम्पत्तिका समयोपयोग

हमारे बहुतसे पौधे गरमीमें मर जाते हैं और वर्षा-ऋतुमें वे जी उठते हैं और इसमें वही माँड़ी सहायक होती है जो कन्द आदिके रूपमें ज़मीनके भीतर गढ़ी रहती है। इन पौधोंको पता रहता है कि गरमीमें पत्तियाँ जल जाती हैं। इसलिए ज़मीनके भीतर ये अपनी माँड़ीको छिपाये रखते हैं जहाँ गरमीकी धूप उनको जला नहीं सकती।

जंगली गाजर, शलजम और चुकन्दरमें जड़ बहुत मोटी होती है और बाज़ पौधोंमें यह जड़ प्रति साल मोटी होती जाती है क्योंकि प्रतिसाल ख़र्चसे कुछ आमदनी ज्यादा करके ये पौधे अपनी जड़में कुछ माल जमा कर लेते हैं। आधुनिक कृषि-विद्याने इस बातसे लाभ उठाया और जड़ोंमें सामग्री जमाकर लेनेकी शक्तिको परवर्धित किया है। परिणाम बहुत सन्तोषजनक हुआ है। जैसे जंगली बेर या आमसे पैबंदी बेर या क़लमी आम कहीं अच्छे होते हैं, उसी तरहसे हमारे गाजर, शलजम, मूली वग़ैरह सभी जंगली गाजर आदिसे अच्छे होते हैं और इनकी जड़ोंकी वृद्धि कृत्रिम रीतिसे की गई है।

कुछ पौधे अपने तनोंको ज़मीनमें गाड़ देते हैं। तब उनको गाँठ कहते हैं। हल्दी, अदरक, कैना इसी जातिके हैं।

संग्रह करनेकी विविध रीतियाँ

पेड़ोंकी क़न्द और पुत्ती बनानेकी प्रथाके दो भेद हैं। कुछ तो प्याज़की तरह पुत्ती अपने लाभके लिए बना लेते हैं जिससे कि उनकी गति उन छोटे दुर्बल पौधोंकी तरह

न हो जो प्रति वर्ष मर जाते हैं। ये पौधे पुत्ती इसलिए बनाते हैं कि जब गरमोमें उनकी पत्तियां मर जायँ तो वे जीते रहें। दूसरी जाति लहसुन, हाथोचककी है। ये इतने स्वार्थी नहीं होते इनकी पत्तियां असलमें ज़मीनके नीचे रहने वाली पत्तियां हैं जहाँ वे जानवरों और अन्य शत्रुओं से बची रह सकती है। प्रत्येक पौधा केवल अपने ही लिए नहीं वरन् अपने उत्तराधिकारियोंके लिए भी भोज्य सामग्री बचा रखता है। कुछ पौधे तो अपने लिए कुछ भी न बचाकर सब कुछ अपने बाल-बच्चोंके लिए ही छोड़
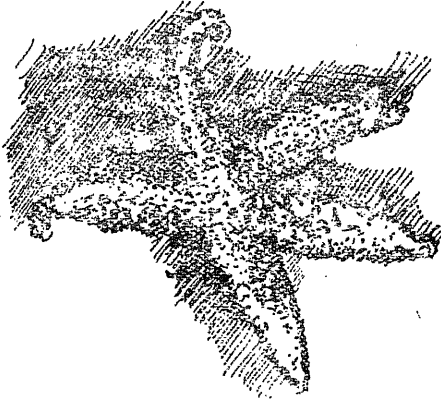
तारा-मछली।
तारा मछलीके कट जाने पर दोनों खंड कुछ समय में सम्पूर्ण हो जाते हैं।

जाते हैं। फिर कुछ पौधे जैसे दूब एक इससे भी बढ़कर रीति प्रयोग करते हैं। वे केवल अपने तनोंको ज़मीन पर फैलाते चलते हैं। इनमें अधिक मेहनत पौधोंको नहीं करनी पड़ती और न बहुत-सी भोज्य सामग्री जमा करनी पड़ती है। केवल गाँठ (जोड़) ज़रा फूल जाती है। उसमेंसे नई जड़ें निकल आती हैं, और इस प्रकार एक नया पौधा तैयार हो जाता है।

धैर्यके साथ सम्पतिका संग्रह

लोग समझते हैं कि जमा करने वाले ख़र्च नहीं कर सकते लेकिन पौधोंमें जमा करनेकी आदत केवल इसीलिये होती है कि ज़रूरत पड़नेपर वे खुलकर ख़र्च कर सकें। इससे उस पौधेको और उस पौधेकी जाति को लाभ होता है। घीकुवाँरकी जाति पौधे फूलनेसे पहले बरसों तक बढ़ते रहते हैं और अपनी जड़ोंमें माल इकट्ठा करते रहते हैं। जिस किसीने इन पौधोंको फूलते हुए देखा होगा उसको स्मरण होगा कि ये फूल कितने जल्द निकलते हैं और तैयार होते हैं। इसीसे स्पष्ट है कि इन पौधोंको अत्यंत सावधानी और धैर्यके साथ अपनी शक्तिको बचाकर संचय करना पड़ता है जिससे जब फूलोंके पैदा करनेके लिए यकायक शक्तिकी आवश्यकता पड़े तो वे उसी शक्तिको आसानीसे लगा सकें। इसीसे ये पौधे शीघ्र नहीं फूलते। कहावत भी है कि घीकुवाँर बरसोंमें एक बार फूलता है। वैज्ञानिकोंका विश्वास है कि धीरे-धीरे पौधोंका आकार और रूप आवश्यकतानुसार बदलता रहता है जिन अंगोंकी विशेष आवश्यकता रहती है वे उत्पन्न हो जाते हैं। जिनकी आवश्यकता नहीं रहती वे मिट जाते हैं। हाँ, इन परिवर्तनोंमें हज़ारों वर्ष लग जाते हैं। पौधोंको जाँच करनेसे उनके पुराने रूपोंका कभी पता चल जाता है। ये सब परिवर्तन साधारणतः उन पौधोंकी जातियोंके लाभके लिए ही होते हैं जिससे वे सुरक्षित रह सकें।

बेकार ख़र्च क्यों करें?

उदाहरणार्थ जरेनियम और इरोडियम जातिके पौधे देखनेमें प्रायः एकसे होते हैं। परन्तु एक फूलमें दस पुंकेसर होते हैं और दूसरेमें पाँच। (पुंकेसर फूलके उस लम्बे अंगको कहते हैं जिसके सिरेपर पराग रहता है) परन्तु इन पाँच पुंकेसरोंके साथ-साथ और भी उपस्थित रहते हैं जो अधूरे और निकम्मे ही रहते हैं। इनपर पराग नहीं रहता। क्या कोई संदेह कर सकता है कि इरोडियम वस्तुत जरेनियम है जिसके आधे पुंकेसर लुप्त हो गये हैं कदाचित् इसलिए कि वे आवश्यकतासे अधिक थे और इसलिए बेकार थे। बेकार अंगोंके बनानेमें पौधा अपनी ताक़त नष्ट करे यह तो वैसी ही अक्लमंदी होगी जैसे कोई बोझसे दबा हुआ मनुष्य अपने सिरपर और भी बोझ लादे। फूलोंमें पँखुड़ियाँ इसलिए होती हैं कि उनके चटक रङ्ग से कीड़े या
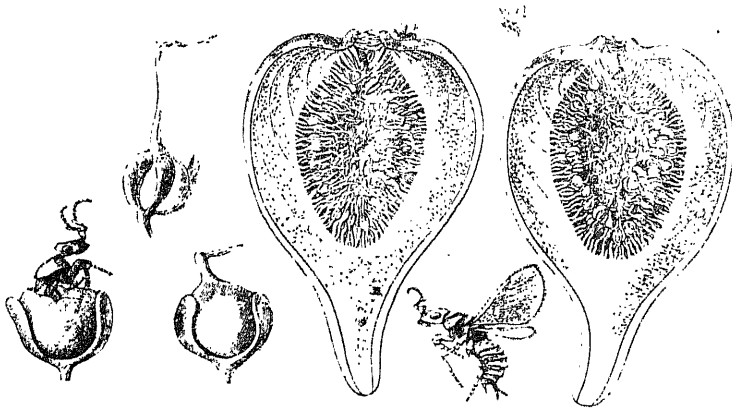
गूलरका फूल।

जिसे लोग गूलरका फल समझते हैं वह वस्तुतः फूल होता है। फूलके नर और नारी केसर भीतर होते हैं। एक नन्हा-सा कीट गूलरोंके भीतर अंडा देने घुसता है। उसके शरीरसे लिपट कर एक फूलका पराग दूसरे फूलों तक पहुँचता है। इससे गूलरोंमें बीज लगते हैं और कीटको अंडा देनेको स्थान मिलता है; दोनोंको ही लाभ होता है। चित्रमें वस्तुतः अंजीरका फल दिखलाया गया है जो गूलरके ही वर्गका है।

पौधोंकी चतुराई।

उन फूलोंमें जो इस तरह लटक जाते हैं कि उनका मुँह नीचे हो जाता है पुटपत्र या तो बहुत छोटे होते हैं या बहुत बड़े और तारीफ़ यह है कि इन दोनोंका मतलब एक ही होता है। बात यह है कि नीचे मुँह किए हुए फूलोंमें दूरसे पुटपत्र ही दिखलाई पड़ते हैं। या तो ये इतने छोटे होते हैं कि सुन्दर फूलोंके देखनेमें कोई रुकावट न पड़े या वे रंगीन और खूब बड़े होते हैं जिससे उन्हींको देखकर कीड़े आकर्षित हों और पराग बखेरकर उनकी वृद्धिमें सहायक हों। कभी कभी जब ये पुटपत्र खूब रंगीन और चित्ताकर्षक होते हैं तो फूलकी असली पंखड़ियाँ लुप्त-सी हो जाती हैं और या तो दिखलाई ही नहीं पड़तीं या वे इन रंगीन पुटपत्रोंके बीच छिपी रहती हैं। 'लार्क स्पर' नामक वार्षिक फूलमें यही बात है। पुटपत्र चटक लाल रङ्गके होते हैं और पँखुड़ियाँ नन्हीं-नन्हीं और बेकार होती हैं—वस्तुतः इनकी राजगद्दी छिन गई है।

जिन फूलोंमें पुटपत्र सुंदर नहीं होते और बहुत छोटे भी नहीं होते वहाँ एक दूसरा ही प्रबन्ध रहता है। वहाँ फूलोंके खिलते ही पुटपत्र गिर पड़ते हैं जिससे फूलकी सुन्दरता उनसे छिपी न रहे। पोपी (पोस्ते) में यही बात देखनेमें आती है। पुटपत्र गिर पड़ते हैं और चटक लाल रङ्गका फूल आँखोंके सामने भरपूर रहता है। इसका कोई भी अंग छिपने नहीं पाता।

पतङ्ग आकर्षित हों और उनसे फूलोंका पराग ठिकाने पहुँच सके। परन्तु जब कभी आवश्यकता पड़ती है तो ये पंखड़ियाँ आश्चर्यजनक रीतिसे बदल जाती हैं। कभी तो बहुत बड़ी हो जाती हैं और कभी लुप्त हो जाती हैं। पौधोंके राज्यमें कभी-कभी ऐसा भी अवसर आता है कि अक्लमंदीसे थोड़ासा ख़र्च करनेसे कई गुने अधिककी बचत हो जाती है। क्योंकि कंजूसीकी अपेक्षा इससे लाभ अधिक होता है। यह बात ऑरसिडों और लिलियोंमें ख़ास तरहसे देखी जाती है। साधारण फूलोंमें पुटपत्र हरे होते हैं (डंठलसे लगे हुए फूलोंकी जड़के पास पत्तियोंकी तरह जो हरा हरा भाग होता है उसीको पुटपत्र कहते हैं। परन्तु आरसिडों और लिलियोंमें ये पुटपत्र रंगीन धारीदार और बहुत सुन्दर होते हैं। इन पौधोंमें फूलकी पंखड़ियाँ और पुटपत्र चित्तको आकर्षित करनेमें एक दूसरेके साझीदार होते हैं और इस प्रकारके संयोगसे संसारके सबसे अधिक सुन्दर फूल हमें मिलते हैं। यही बात है जिससे इन फूलोंकी बड़ी क़दर होती है।

पौधोंमें मितव्ययता

किफ़ायतशारीका सच्चा नमूना जलधनिया (रैनन्कुलस) जातिके पौधोंसे मिलता है। ये पौधे पानीमें होते हैं।

इन पौधोंमें कुछ पत्तियाँ पानीमें होती हैं और कुछ पानीके ऊपर। हवामें कर्बन-द्विओषद भी काफ़ी होता है; इसलिए हवावाली पत्तियां बड़ी और साधारण होती हैं परन्तु जो पत्तियां पानीके भीतर होती हैं उनमें केवल नसें ही नसें रहती हैं जिससे थोड़े ही कर्बन द्विओषद-से काम चल सके। ये पत्तियां हरे तागेके झब्बेकी तरह होती हैं। एक दूसरी जातिके पौधोंमें जलधनिया (यूफ़ॉरबेशी) जैसे दुधिया फूलकी पंखड़ियां रहती ही नहीं और इनका काम परिवर्त्तित पत्तियोंसे चलता है। यह काम किस ख़ूबीसे होता है यह लाल पौइंसीटियामें देखनेमें आता है। लाल पंखड़ियोंवाली पॉपी भी इतनी ख़ूबसूरत नहीं होती जितनी यह! इसमें फूलके डंठलके पासवाली पत्तियां ख़ूब रंगीन और सुन्दर होती हैं। बेगनविलोज़ भी इसी रीतिसे चित्ताकर्षक दिखाई पड़ती है। यह पौधा लोग अपने बाग़ोंमें बहुत बोते हैं क्योंकि इसके लाल फूल बहुत ही मनमोहक होते हैं लेकिन जाँच करने पर पता चलता है कि इसके फूलमें पंखड़ियां नहीं होतीं, केवल रंगीन पत्तियाँ होती हैं जिससे पत्तियोंकी नसें स्पष्ट दिखलाई पड़ें।

इससे यह अभिप्राय नहीं है कि यहाँपर उन बातोंकी सूची दी जाय जो पौधोंके राजनैतिक या सामाजिक जीवनसे सम्बन्ध रखती हैं। मतलब केवल इतना ही है कि उन सिद्धांतोंकी ओर पाठकोंका ध्यान आकर्षित हो जो वनस्पति राज्यमें दिखलाई पड़ते हैं।

ये नियम पत्तियोंमें बड़े सुन्दर रूपमें दिखलाई पड़ते हैं। ये पत्तियां आवश्यकतानुसार बदल कर पँखड़ियां पुंकेसर, योनिनलिका पुटपत्र, पुट, परतान या कांटे बन जाते हैं। परन्तु पत्तियोंके असली काम अर्थात् पौधोंको भोजन पहुँचानेमें इससे कोई बाधा नहीं होने पाती।

जब पत्तियोंको कोई दूसरा काम करना पड़ता है और असली पत्तियां पौधोंमें होती ही नहीं तब पौधोंको कोई दूसरा प्रबन्ध करना पड़ता है जिससे पत्तियोंका काम हो सके। पत्तियोंका काम किसी न-किसी प्रकार करना ही पड़ेगा। सवाल यह है कि पत्तियोंके अभावमें कौनसा रंग इस कामको करेगा। पौधोंने पता चलाया है कि सबसे आसान बात यह है कि उसकी शाखें चिपटी हो जायं और उनमें कर्बनग्राही मुख उत्पन्न हो जाय और उस रंगमें पत्तियोंका साधारण काम सब कर सकें—जैसे कर्बन-द्विओषद गैससे कर्बन अलग करना, हवासे ओस खींचना या पानी इकट्ठा करना।

नागफनी तीक्ष्ण और भयंकर काँटोंसे अपनेको सुरक्षित रखती है जिससे भूखे-प्यासे जानवर उसके नस और रसदार तनेको न खा जायँ। ये काँटे वस्तुतः पत्तियाँ हैं। परन्तु ज़रूरत पड़ने पर वे अपना असली काम छोड़कर रक्षाका अधिक आवश्यक कार्य अपने सरपर ले लेते हैं। इसीलिए पत्तियोंका असली काम इसके हरे तनेकी खालसे होता है जिसमें कर्बनग्राही मुख उसी प्रकारके होते हैं जैसे पत्तियोंके नीचे की सतहमें। मतलब यह है कि पत्तियोंका काम पौधेकी सम्पूर्ण बाहरी सतह करती है। इसी प्रकार ऑरसिडोंमें जो पेड़ोंके छिलकोंपर उगते हैं और जो इस प्रकार प्रकाश, वायु और धूप इतनी ऊँचाईपर चढ़कर पा जाते हैं जहाँ वे अन्य किसी प्रकार पहुँच भी न सकते हों पत्तियाँ बहुत कम होती हैं। परन्तु पत्तियोंकी कमीकी पूर्त्ति (और जब हम इसपर ध्यान देते हैं कि ऑरसिडोंको बड़े-बड़े फूलोंके उत्पन्न करनेमें कितनी शक्ति लगानी पड़ती होगी तब इस बातकी आवश्यकता पूर्णरीतिसे स्पष्ट हो जायगी) पौधेकी सतहसे होती है, यहाँतक कि इसकी हरी जड़ें कर्बन-ग्राही मुखोंसे भरी रहती है।

कुछ पौधे वार्षिक होते हैं अर्थात् वे एकही सालके बाद मर जाते हैं। इसका कारण सम्भवतः यह है कि अपनी जातिकी रक्षाके लिए उनको बहुत-सा बीज उत्पन्न करना पड़ता है। यदि वे अपनी रक्षा इस प्रकार न करें तो अन्य पौधोंकी होड़में वे अवश्य ही पिछड़ जायँगे और कुछ दिनोंमें लुप्त हो जायँगे। अधिक संख्याके कारण वे ठीक उसी प्रकार बच जाती हैं जिस प्रकार चूहे और ख़रगोश अपनी जातिकी रक्षाके लिए अपनी सन्तानोत्पत्तिकी आश्चर्यजनक शक्तिपर अवलम्बित हैं।

सरल

विज्ञान-सागर

सम्पादक

डाक्टर गोरखप्रसाद, डी० एस-सी० (एडिन०)

रीडर, इलाहाबाद यूनिवर्सिटी

बारह अंकोंमें

अंक ३

जंतुओंका विचित्र संसार

उत्तरार्द्ध

इलाहाबाद

विज्ञान-परिषद्,

जंतुओंका विचित्र संसार

उत्तरार्द्ध

१

जन्तु भी हमारे भाई हैं

इस संसारका उपभोग जन्तु भी करते हैं और हम भी और कुछ जन्तु तो मनुष्यके साथी चिरकालसे रहे हैं। जन्तु जैसे सुख-दुख झेलते हैं वैसे ही मनुष्य भी झेलता है, उन्हींकी तरह मनुष्य भी जन्म लेता है, बूढ़ा होता है और मरता है। उन्हींकी तरह हमें भी अपना अस्तित्व बनाये रखनेके लिये जीवन-संघर्षमें विजय पाना आवश्यक होता है; हमें भी अपनी संततिकी देख-रेख करनी पड़ती है। हमें भी जन्तुओंकी तरह भूख-प्यास लगती है। हमें भी अपने शत्रुओंसे बचना पड़ता है और आहार-प्राप्तिके लिये परिश्रम करना पड़ता है। प्रायः प्रत्येक मौलिक बातमें जन्तुओं और मनुष्योंकी रहन-सहन एक-सी है।

यही कारण है कि आधुनिक वैज्ञानिक विशेष लगन से जन्तुओंका अध्ययन करते हैं। जन साधारणको भी बहुत-कुछ इसी कारणसे जन्तुओंकी ओर आकर्षण होता है। हम अपने पालतू कुत्ते-बिल्लियोंका खेल देखनेसे नहीं ऊबते। हम पशुवाटिकाओंमें जाकर बड़ी चावसे नवीन जन्तुओंको देखते हैं और सरकसोंमें सधे हुये जन्तुओंका खेल देखते हैं। हम विभिन्न जन्तुओंको उत्सुकतासे पालते हैं।

प्राचीन समयसे मनुष्य जन्तुओंकी रहन-सहन जानने-का इच्छुक रहा है। उनके रंग, उनके रूप, उनकी जाति, उनका आहार, उनका युद्ध, उनका अपने बच्चोंका पालन-पोषण सदासे ही मनुष्यको आकर्षित करता रहा है। आदि कालमें सभी लोगोंका विश्वास था कि जन्तुओंमें भी आत्मा होती है। मनुष्य जन्तुओंके चातुर्य या बल या पराक्रमका भक्त था और कुछ जन्तुओंकी पूजा भी होती थी।

पीछे, आधुनिक विज्ञानके प्रथम आगमन पर, यूरोपीय जातियोंका विश्वास हो गया कि मनुष्य और जन्तुओंमें कोई नाता नहीं है। परन्तु जैसे-जैसे विज्ञानने उन्नतिकी, वैज्ञानिकोंको पता चला कि यह धारणा मिथ्या है। आधु-निक विज्ञानसे हमको जन्तुओं और मनुष्यकी एक-रूपता और विभिन्नता दोनोंका सच्चा ज्ञान प्राप्त होता है। अब यह प्रत्यक्ष हो गया है कि रूपमें और विभिन्न अंगोंके कार्यमें, बढ़ने और विकासमें, बुद्धि तथा ज्ञानमें, मनुष्य और जन्तुओंमें बहुत-कुछ समता है। जन्तुओंकी भाँति मनुष्यों-का सुख भी अधिक मात्रामें स्वस्थ शरीर पर निर्भर है।

इतना तो प्रत्यक्ष है कि हमारा शरीर उसी ढरेंपर बना है जिसपर कई अन्य जन्तुओंका शरीर। जब हम ब्योरोंकी जाँच करते हैं तो पता चलता है कि एक-एक अंगमें समानता है। आँख और कान, यकृत और फुफ्फुस, हाथ और पैर, बाहर और भीतरके अन्य कई अंग, सब एक-एक करके मनुष्यमें और उच्च जन्तुओंमें एक-जैसे हैं। अवश्य ही मनुष्य भी जन्तु-संसारका सदस्य है।

जन्तुओंकी उपयोगिता

वर्तमान समयमें भी जन्तुओंकी उपयोगिता प्रायः अपरिमित है। जन्तु हमारे लिये काम करते हैं और उनसे, या उनकी सहायतासे हमको आहार और वस्त्र मिलता है। शहरके रहने वाले इस बातको भले ही न समझें, परन्तु विचार करने पर उनको शीघ्र पता चल जायगा कि असली बात क्या है। खेती-बारी बैलों बिना प्रायः असम्भव हो जायगा और खेती-बारीसे ही हमको अन्न मिलता है। फिर, सूती वस्त्रके लिये रुई खेतोंसे ही प्राप्त होती है। ऊन तो जानवरोंकी पीठसे बुननेके कार-

खानोंमें सीधे जाता है। आमिष भोजियोंको मांस भी जन्तुओंसे मिलता है। (जन्तुओंमें हम पशुओंके अतिरिक्त पक्षियों और मछलियोंको भी सम्मिलित करते हैं।) जूतोंके लिये चमड़ा तथा अन्य कामोंके लिये हड्डी और सींग हमको जन्तुओंसे ही प्राप्त होता है। उपयोगी जन्तुओंमेंसे प्रथम स्थान गाय-बैलको प्राप्त है, क्योंकि आधुनिक डाक्टरोंकी भी यही सम्मति है कि दूधसे बढ़ कर अन्य कोई आहार है नहीं, और फिर, जैसा सभी जानते हैं, बैलोंसे बढ़ कर कृषिके लिये उपयोगी अन्य कोई पशु हैं नहीं। गाय-बैलके बाद घोड़ेको स्थान मिलेगा। घोड़ा भी मनुष्यके लिये अत्यन्त उपयोगी है।

मनुष्यका उत्थान

यदि विज्ञानका विकासवाद सत्य है— और इसके सत्य होनेके इतने प्रमाण हैं कि दुविधाके लिये कोई स्थान नहीं है—तो मनुष्य पहले जंगली जन्तुओंके ही समान रहता था। आरम्भमें वह अन्य जन्तुओंके सामने बहुत दुर्बल और निःसहाय था। न तो वह हिरनके समान दौड़ कर भाग सकता था, न बन्दरकी तरह पेड़ पर चढ़ कर अपनी रक्षा कर सकता था और न खरहेकी तरह बिल खोद कर उसमें घुस सकता था। न तो शेरकी तरह उसे तीक्ष्ण नख थे न उसकी तरह उसे पैने दाँत थे। गैंडेकी तरह उसके मोटी खाल भी न थी।

परन्तु मनुष्यके पास वह था जिसकी अन्य जन्तुओंमें बड़ी कमी थी—उसके पास मस्तिष्क था। और अपने मस्तिष्कके बलपर मनुष्य जन्तुओंसे कहीं आगे बढ़ गया। उसने लकड़ी और पत्थरसे, पीछे लोहे और इस्पातसे, अपने लिये अस्त्र बनाया जिससे वह बली-से-बली जंतुओं को परास्त कर सकता था। मोटी खाल नहीं थी तो क्या; वह मृगछाला और बाघंबरसे, पीछे सूती और ऊनी वस्त्रोंसे अपना शरीर ढक सकता था। वह तेज़ नहीं चल सकता था तो क्या; अपने शिकारके लिये कुत्तेको दौड़ा सकता था और स्वयं घोड़ेकी सवारी करता था। परिश्रम करनेके लिये यदि उसमें अधिक बल नहीं था तो भी क्या; वह बैलको जोत कर बोझा खिंचवा लेता था।

जन्तुओंकी तुलनामें मनुष्यको एक बड़ा लाभ यह था कि उसने अग्निका उपयोग सीख लिया। शीतसे बचने या वर्षासे भीगनेपर अपनेको सुखानेके लिये वह अग्निका उपयोग करता था। अपनी गुफा या अन्य निवासस्थानके द्वार पर अग्नि जला कर वह हिंस्र जन्तुओंसे अपनी रक्षा

रेशमका कीड़ा

मनुष्यको यह तुच्छ कीड़ा रेशमी वस्त्र बनानेके योग्य सूत्र देता है।

करता था। फिर, उसने यह भी देखा होगा कि बहुत-सा आहार ऐसा होता है कि आगपर भून या उबाल लेनेसे वह अधिक सुपाच्य और स्वादिष्ट हो जाता है। तबसे वह अपना आहार रांध कर खाने लगा। अन्य कोई जन्तु ऐसा नहीं है जो अपना आहार रांध कर खाता हो। अग्निसे लकड़ीके टुकड़े-टुकड़े करना और पीछे मोटी लकड़ियोंको अग्निसे खोखला करके नाव बनाना भी वह जान गया। तब वह पानीपर भी जा सकता था। और समय बीतने पर उसने धनुष और तीर बनानेका आविष्कार किया और

तब तो अन्य जन्तुओंपर उसकी प्रभुता और भी जम गई। पीछे, जन्तुओंकी रहन-सहनका पूर्ण अध्ययन करके वह उनको तरह-तरहसे फँसाना और कुत्ते, चीते, बाज़ आदिकी सहायतासे शिकार करना भी जान गया। मछलियोंको वह जालसे या कँटियासे पकड़ने लगा और चिड़ियोंको जाल या लासा से।

साथ-ही-साथ उसने खेती-बारी सीखी, गाय-बैल पालना सीखा, कम्बल और कपड़ा बुनना भी उसे आ गया। जन्तुओंके पालनेमें तो प्राचीन मनुष्य इतना सिद्ध-हस्त था कि आधुनिक मनुष्य उससे आगे नहीं बढ़ सका है। जो जन्तु प्राचीन समयसे पाले जाते थे वे आज भी पाले जाते हैं। इतना समय बीत गया और आधुनिक सभ्यता बहुत उच्च शिखरपर पहुँच गई, तो भी कोई नवीन उपयोगी पालतू जन्तु हमें नहीं मिल सका है।

प्रमाण

हम लोग कैसे जानते हैं कि पूर्वोक्त बातें सत्य हैं? उस अत्यन्त प्राचीन युगका कोई इतिहास लिखा-लिखाया तो हमें मिला नहीं है परन्तु हमें कई रीतियोंसे इन बातोंके बारेमें सच्चा पता मिलता है।

प्रथम तो हमें प्राचीनतम सभ्यताके समयके कुछ अवशेष आज भी प्राप्य हैं, जो अधूरे अवश्य हैं, परन्तु उनसे उस समयकी सभ्यताकी रूपरेखा असन्दिग्ध रूपसे खींची जा सकती है। ये अवशेष हैं हड्डियां, अस्त्र, मिट्टीके बरतन और इसी प्रकारके अन्य जंतु जो शीघ्र गल-घुल नहीं जाते। ये प्राचीन गुफाओं, कूड़ेके ढेरों या अब भूमिके भीतर दब गये प्राचीन ग्रामोंमें मिले हैं।

फिर आज मनुष्यकी जो-जो जातियां हमको मिलती हैं उनमें तरह-तरहकी सभ्यताएँ हैं—निम्नतमसे, जो जंगली पशुओंकी-सी है, उच्चतम तक। ऐसी जातियां हैं जो वस्त्रकी कल्पना भी नहीं कर सकतीं, खेती-बारीका नाम नहीं जानतीं और प्रकृतिकी देनपर ही पूर्णतया निर्भर हैं, जो मिला सो खाया, न मिला तो उपवास किया, अधिक मिल गया तो दिल खोल कर खाया।

फिर ऐसी भी जातियां हैं जो थोड़ी-बहुत खेती मोटे ढङ्गपर कर लेती हैं, परन्तु अधिकतर मृगया और प्राकृतिक उपजपर निर्वाह करती हैं।

२

उपयोगी जंतु

मांसभुकोंमेंसे मनुष्यने कुत्ते, बिल्ली और नेवलेको पूर्णतया पालतू बना लिया है। इनमेंसे कुत्ता ही सबसे अधिक उपयोगी है क्योंकि वह अपने स्वामीका आज्ञा पालन बड़ी भक्तिसे करता है। पूर्वोक्त जन्तुओंके अतिरिक्त सिंह बाघ और भालूसे हमको उपयोगी चर्म मिलता है।

खुर वाले जन्तुओंमेंसे गाय-बैल, भैंस, घोड़ा, खच्चर, गदहा, बकरी, भेड़, सभी उपयोगी हैं। ये सब पालतू हो गये हैं। हिरन भी, यद्यपि यह पालतू नहीं हैं विशेष उपयोगी है। मृग-चर्मका प्राचीन समयोंमें विशेष आदर होता था। भारतवर्षमें आज भी इसका बहुत आदर है।

प्राचीन मनुष्य अपनी आवश्यकताके अनुसार ही जङ्गली जन्तुओंको मारता था, परन्तु गोरे शिकारी तो अपने गोले-बारूदके नशेमें चूर होकर ऐसा शिकार करते हैं कि जन्तुओंकी कुछ जातियाँ लुप्त हो गयी हैं और कुछ लुप्त-प्राय हो चली हैं। उदाहरणतः, अमरीका का जङ्गली साँड़—बाइसन—प्रायः लुप्त ही हो गया था। एक सालमें एक छोटेसे शहरके बाज़ारमें ८०,००० खाल बिकनेको आयी थी। पीछे लोगोंको सद्बुद्धि आई। इने-गिने भागकर पहाड़ी जंगलोंमें जा छिपे थे उनकी और उनकी संततिकी विशेष रक्षा करके बाइसनों की संख्या अब फिर धीरे-धीरे बढ़ायी जा रही है।

दंतक जंतुओंमेंसे अधिकांश हानिकारक ही हैं, परन्तु अब कुछ अपने चर्मके लिए और कुछ मांसके लिए उत्पन्न किये जाते हैं। उनके बहुमूल्य चर्मके कारण बहुत-से दंतकोंको इतनी संख्यामें मारा गया है कि उनके लुप्त होनेका डर है।

रेशमका कीड़ा
अंतमें तितलीके रूपमें परिवर्तित हो जाता है।

परन्तु प्राणी-संसारमें बड़े जन्तुओंकी संख्या अपेक्षाकृत बहुत कम है। शेष जन्तुओंका परिचय मनुष्यने धीरे-धीरे प्राप्त किया होगा। मनुष्य स्वभावसे ही ज्ञानके लिए उत्सुक रहता है। जब मनुष्य खेती-बारी तथा पशुपालनके कारण क्षुधा-शांति सुगमतासे कर सका होगा और उसे पर्याप्त अवकाश मिलने लगा होगा, तब उसे अपनी ज्ञान-पिपासा शांत करनेके लिए अवसर मिला होगा और उसे अपने पास पड़ोसके अन्य जीवोंके बारेमें अधिक जानकारी प्राप्त करनेकी सूझी होगी।

समानता और विभिन्नता

सजीवोंमें पौधे और प्राणी दोनों गिने जासकते हैं, परन्तु इनमें इतनी विभिन्नता दिखलाई पड़ती है कि पहले

हाथी और ऊँट भी पर्याप्त उपयोगी हैं, विशेष कर ऊँट। ऊँट बिना तो रेगिस्तानोंका पार करना ही प्रायः असंभव है।

पालतू पक्षियोंमें मुर्गी, कबूतर, तीतर, बतख, आदि हैं। इनसे लोगोंको अंडा और मांस मिलता है। मछलियोंसे न जाने कितनोंका उदर-पोषण होता है। छोटी-बड़ी तरह-तरहकी मछलियाँ होती हैं। यूरोपमें टरटिल (एक प्रकार का कछुआ) भी अपने स्वादिष्ट माँसके लिए प्रसिद्ध है और काफ़ी संख्यामें पकड़ा जाता है। कीट पतंगोंमें रेशम का कीड़ा और मधुमक्खी ये दोनों विशेष उपयोगी हैं। एकसे हमको रेशमी कपड़े, दूसरेसे मधु (शहद) मिलता है।

३

पौधे और प्राणी

बड़े जन्तुओंसे मनुष्य शीघ्र परिचित हुआ होगा,

इनमें किसी प्रकारकी समानताका पता न चला होगा। तो भी प्राचीन समयमें लोगोंने कम-से-कम इतना तो देखा ही कि दोनों बढ़ते हैं और संतति उत्पन्न करते हैं। पौधे और प्राणी दोनों जन्मके समय छोटे रहते हैं और बढ़कर बड़े होते हैं। युवा होनेपर बच्चे उत्पन्न करते हैं और अंतमें मर जाते हैं। केवल जीवधारी ही ऐसा कर पाते हैं। परन्तु पौधे एक स्थानपर स्थिर रहते हैं और प्रायः क्रियाहीन होते हैं। प्राणी अत्यंत क्रियाशील होते हैं और इच्छानुसार एक जगहसे दूसरी जगह जाते रहते हैं। इसलिए इन दोनोंमें इतनी विभिन्नता जान पड़ती है कि आरंभमें वैज्ञानिकोंको दोनोंमें कोई विशेष समानता नहीं दिखलाई दी।

उस समयमें सूक्ष्मदर्शक यंत्रका आविष्कार नहीं हुआ था, इसलिए आधुनिक प्राणिशास्त्र उस समय उत्पन्न नहीं हो पाया था। फलतः, सरलतम पौधे और प्राणियोंसे उनका परिचय नहीं था। परन्तु बिना सूक्ष्मदर्शकके भी इतना देखा जा सकता था कि ऐसे पौधे होते हैं जो जलमें स्वच्छंदतासे तैरते रहते हैं और स्पंज, जो अवश्य ही

प्राणी हैं, पानीके नीचे पत्थरसे चिपके हुए एक स्थानमें पड़े रहते हैं। इसलिए केवल चलने, न चलनेसे पौधों और प्राणियोंमें अंतर नहीं माना जा सकता।

परन्तु जब सूक्ष्मदर्शक यंत्रका आविष्कार हुआ तो पौधों और प्राणियोंके बीच सीमा स्थापित करनेमें नवीन कठिनाइयां उपस्थित हुईं, क्योंकि सूक्ष्मदर्शक यंत्रसे ऐसे पौधे और प्राणी दिखलाई पड़े जिनमेंसे प्रत्येकमें एक कोष होता है और जो देखनेमें एक-से ही लगे रहते हैं। वे एक ही भांति स्वच्छंद रूपसे तैरते भी रहते हैं। कोई भी व्यक्ति गाय और गुलाबका अंतर बतला सकता है, परन्तु वनस्पति फ्लैगलेट* और प्राणी फ्लैगलेटमें अन्तर बतलाना सरल नहीं है, और जब हम ऑयग्लीनी-जैसे फ्लैगलेटको देखते हैं जो कभी हरा और वनस्पति की तरह, और कभी सुरमई और प्राणीकी तरह दिखलाई पड़ता है, तो कठिनाई अत्यन्त अधिक हो जाती है।

सब जीवन एक है

इस प्रकार हमें पता चलता है कि सब जीवन वस्तुतः एक है। पौधों और प्राणियोंकी जीवन क्रियाओंमें कोई मौलिक अंतर नहीं है, केवल उनके कर्मोंमें अंतर है। हरा पौधा निर्जीव पदार्थोंसे सजीव पदार्थ बना सकता है। वह वायुसे कारबन-डाइ ऑक्साइड और भूमिसे खनिज पदार्थोंके घोलोंको लेकर उनसे सजीव पदार्थ (कलल-रस) बनाता है। प्राणीगण ऐसा नहीं कर पाते। उनको अपने आहारके लिए सजीव पदार्थोंसे प्राप्त ऐंद्रिक वस्तुओंकी आवश्यकता पड़ती है।

ऐंद्रिक आहार गाढ़ा या ठोस होता है और उसके पचानेमें प्राणियोंको कुछ समय लगता है। इसलिए प्रायः सभी प्राणियोंमें आमाशय या उदर होता है जहाँ आहार पहुँच कर कुछ समय तक रुका रहता है और धीरे-धीरे पचा करता है। परन्तु पौधोंको अपना आहार बहुत पतले घोलके रूपमें मिलता है। इसलिए उनको आमाशयकी आवश्यकता नहीं रहती। उनकी जड़ें भूमिमें दूर-दूर तक फैली रहती हैं जिससे दूर दूरसे वे भूमिसे मिलने वाले आहारको ग्रहण कर सकें। इसी प्रकार उन की पत्तियाँ वायु और प्रकाशमें फैली रहती हैं जिसमें वे वायुसे कारबन-डाइआक्साइड ग्रहण कर सकें और सूर्य-प्रकाशकी शक्तिका उपयोग करके उनसे सुपाच्य आहार बना सकें। अंतमें इस आहारसे कललरस बनता है जो केवल रासायनिक वस्तु ही नहीं है, सजीव भी है।

परन्तु जीवन ठीक-ठीक क्या है, यह अभी हम जान नहीं सके हैं।

एक दूसरेके पूरक

प्रकृतिकी गृहस्थीमें पौधे कमाऊ पूत हैं। वे ऐंद्रिक पदार्थोंका निर्माण करते हैं, सूर्य-शक्तिको संचित करते हैं और स्वयं इनसे नाम-मात्र पदार्थ ही अपने लिए व्यय करते हैं। दूसरी ओर; प्राणी उड़ाऊ पूत हैं। वे खाते हैं और मौज करते हैं। वे पौधोंके बनाये हुए ऐंद्रिक पदार्थोंको लेकर खा जाते हैं और तब संचित सूर्य-शक्ति ही फिर प्राणियोंकी शक्तिके रूपमें प्रकट होती है; इसीके बलपर प्राणी भांति-भांति आश्चर्यजनक क्रिया-शीलता दिखलाते हैं। जब पौधा कारबन-डाइऑक्साइडसे कारबन पृथक करके ले लेता है तो बचा हुआ ऑक्सिजन वायुमें मिल जाता है। प्राणी वायुके साथ ऑक्सिजन को अपनी साँस द्वारा भीतर खींचते हैं। वहाँ खाये हुए आहारके कारबनसे यह ऑक्सिजन मिलकर फिर कारबन डाइआक्साइड उत्पन्न करता है, और सांसके साथ बाहर निकल कर यह वायुमें मिल जाता है। इस प्रकार हरे पौधे और जीवित प्राणियोंका कार्य एक दूसरेका पूरक है। प्रत्येक दूसरेके लिए आहार बनाता रहता है और विश्वके आहार सामग्री को चालू रखता है।

---

*फ्लैगलेट उन एक कोष वाले जीवोंको कहते हैं जिन में पूँछ या चाबुक की तरह सूत-सा लगा रहता है। इसी पूँछके सहारे ये पानीमें तैर सकते हैं। फ्लैगलेट शब्द लैटिनके फ्लेगलमसे निकला है जिसका अर्थ है चाबुक। हिन्दीमें हम इसे कशिका कह सकते हैं। (कश = चाबुक)।

४

प्राणियोंका रूप

यह प्रत्यक्ष ही है कि प्राणियोंके रूपमें महान् विभिन्नता है। केवल टांगों पर ही विचार करें तो हम देखते हैं कि मनुष्यसे दो, चौपायोंके चार, बहुतसे कीड़ोंके छः या आठ या दस, गोजरोंके सौ और कुछ कीड़ोंके तो कई सौ टांगें होती हैं। केंचुये तथा अन्य कई कीड़ोंको तो एक भी टांग नहीं होती। भूमिपर रहने वाले प्राणी टांगोंसे चलते हैं, परन्तु जल वाले प्राणी अपने बाज❀ से तैरते हैं और पक्षी और पतंग अपने पंखसे उड़ते हैं।

प्राणियोंकी श्रेणियाँ

यह पहले ही बतलाया जा चुका है कि हम संसारके समस्त प्राणियोंको दो समूहोंमें बांट सकते हैं। पृष्ठवंशी (रीढ़ वाले). और अपृष्ठवंशी (बिना रीढ़ वाले)। रीढ़ वाले प्राणियोंका रुधिर लाल होता है और उनमें एक जोड़ी हाथ और एक जोड़ी पैर, या दो जोड़ी पैर, से अधिक हाथ-पैर नहीं होते।

इन रीढ़ वाले प्राणियोंमेंसे एक श्रेणी स्तनपोषियोंकी है जिनमें मातायें अपने बच्चोंको दूध पिलाती हैं। स्तनपोषी साधारणतः भूमि पर ही रहते हैं यद्यपि चमगादुर हवामें रहता है और व्हेल जलमें।

मनुष्य स्वयं स्तनपोषी प्राणी है। प्राणिशास्त्रके दृष्टिकोण से हमारे निकटतम सम्बन्धी गोरिल्ला आदि बन्दर हैं। उनके पश्चात्, क्रमानुसार निम्नतर विकास वाले जन्तु हैं। सूचीके अन्तमें उपजठरी वर्गके कांगरू आदि जन्तु हैं जिनके बच्चे अत्यन्त अपरिपक्व दशामें उत्पन्न होते हैं और अपनी माताके उपजठर (पेटके सामने बाहर वाली थैली) में पोषित होकर पृथक रहने योग्य होते हैं। उनसे अधिक निम्न वर्गके एक-छिद्री जन्तु हैं जिनमें मातायें अंडे देती हैं। इन जन्तुओंमें माताओंका स्तन अत्यन्त अस्फुटित अवस्थामें रहता है। इनकी शरीर-रचना और छिपकली, सर्प आदि उरंगमोंकी शरीर-रचनामें कई बातोंमें समता दिखाई देती है।

गोजर

गोजरोंके बहुत-सी टाँगे होती हैं।

पक्षी

पक्षियोंकी पहचान सरल है। इनके पंख (अर्थात् डैना) और पर होते हैं। अन्य किसी प्राणीके पर नहीं होते। स्तनपोषियोंके शरीरपर रोयें या बाल होते हैं। उरंगमोंके शरीरपर कड़े परन्तु लचीले, सींग जैसे पदार्थ के बने छिलके होते हैं। पक्षियोंके मुखोंपर चोंच होती है, उनके मुखोंके भीतर दांत नहीं होते, और पूँछ परोंसे

❀ बाज मछली आदिकोंके उस अंगको कहते हैं जो उनके शरीरसे पंखकी तरह निकला रहता है और जिसे चला कर वे पानीमें आगे बढ़ती हैं।
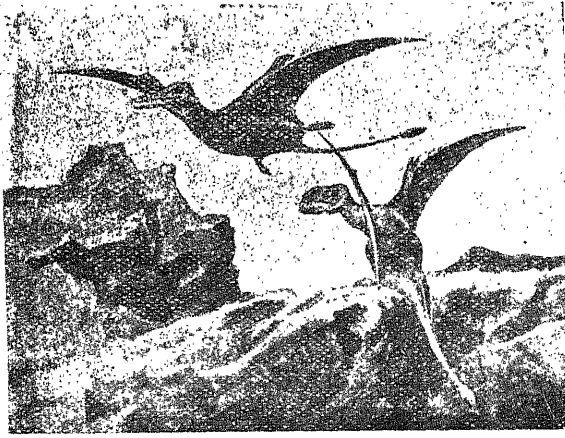
आर्ष विहंग ।

यह प्रचीनतम पक्षी अब लुप्त हो गया है। परन्तु भूमिमें मिली ठठरियोंसे हम इसके रूपका अनुमान कर सकते हैं।

बनी रहती है। पक्षियोंके दो टांगें होती हैं और उनमें हाथोंके बदले पंख होता है। पक्षियोंका सारा शरीर उड़ने के लिये उपयुक्त होता है। धड़ धारारैखिक होता है, अर्थात् वह ऐसी आकृतिका होता है कि वायुको चीरते हुए आगे बढ़नेमें कम-से-कम बाधा पड़ती है। पंख चौड़े हलके और बलिष्ट होते हैं, और पंखको संचालन करने वाली मांस-पेशियां खूब विकसित रहती हैं। ठठरी मज़बूती और हलकेपनका आश्चर्यजनक उदाहरण होती है। गहरी सांस ले सकनेके लिये उनके फेफड़ोंके बाहर अतिरिक्त थैलियां भी होती हैं जिनमें हवा भरी जा सकती है। पृष्ठ-वंशियोंमें महत्तम क्रियाशीलता पक्षियोंमें दिखलाई पड़ती है। पक्षियोंका रुधिर स्तनपोषियोंसे अधिक गर्म होता है।

नापमें पक्षी छोटी फूलसुँघीसे लेकर शुतुरमुर्ग तक होते हैं। फुलसुंघी तो कुल दो अंगुलकी होती है, और शुतुरमुर्ग इतना बड़ा कि उसकी पीठ पर मनुष्य सवारी कर सकता है। उसका नाम ही शुतुरमुर्ग है जिसका अर्थ है ऊँट-जैसा पक्षी (फ़ारसीमें शुतुर = ऊँट; मुर्ग = पक्षी)। पक्षियोंमें भी कई वर्ग होते हैं, परन्तु यहाँ उनके ब्योरेवार वर्णनके लिए स्थान नहीं है। मुख्य वर्ग हैं (१) गौरैयेकी तरहके पक्षी जो डालपर बैठ सकते हैं; इनमें हमारे गाने वाले अधिकांश पक्षी हैं जैसे बुलबुल, पपीहा, कोयल आदि; (२) झपट्टा मारने वाले पक्षी जैसे चील उल्लू, आदि; (३) मुर्गीकी तरहके पक्षी, जो भूमि कुरेद-कुरेदकर आहार खोजा करते हैं, जैसे मुर्गी, तीतर, बटेर आदि; (४) जल-विहंग, जैसे बतख, हंस आदि; (५) लंबी टाँगके, पानीमें हलने वाले पक्षी, जैसे बगुला आदि।

पूर्वोक्त सब पक्षी उड़ सकते हैं। उनकी छातीमें एक चौड़ी चिपटी हड्डी रहती है और पंखोंकी मांस-पेशियां उसीमें जुड़ी रहती हैं।

कुछ जल-विहारी पक्षी ऐसे भी हैं जो उड़ नहीं सकते परन्तु जो ख़ूब तैर सकते हैं, जैसे पेनग्विन। कुछ पक्षी तेज़ दौड़ सकते हैं परन्तु उड़ नहीं सकते, जैसे शुतुरमुर्ग, एमू और कैसोवरी।

चिड़ियोंमें भी अच्छी बुद्धि होती है और वे इस बातमें स्तन-पोषियोंसे पिछड़े नहीं हैं। पक्षियोंके मस्तिष्क के भेजेका ऊपरी भाग चिकना होता है और उनमें वे पेंच और चक्कर नहीं होते जो मनुष्योंके मस्तिष्कमें होते हैं, परन्तु मस्तिष्कका पिछला भाग पर्याप्त रूपसे प्रस्फुटित रहता है। ठीक ही है, ऐसा न होता तो पक्षी इतनी सुन्दर रीतिसे अपना कार्य कैसे कर पाते। पक्षियोंकी दृष्टि और श्रवण-शक्ति विशेष रूपसे तीक्ष्ण होती है।

जैसे स्तनपोषियोंमें, उसी तरह पक्षियोंमें भी, कुछ जातियाँ बहुत विकसित हैं, कुछ कम। निम्नतम वर्गमें ऐसे पक्षी हैं जो बहुत-कुछ उरंगमों-जैसे हैं। वस्तुतः, प्राचीनतम पक्षी, आर्ष विहंग, जो अब लुप्त हो गया है और जिसकी ठठरियां ही हमको भूमिमें दबी हुई कहीं-कहीं मिली हैं, उरगमोंसे बहुत मिलता था। वह अवश्य ही पक्षी था क्योंकि उसके पंख और पर थे, परन्तु उसे जबड़े थे और दाँत थे, जैसा उरंगमोंमें होता है, और लंबी सी पूँछ भी थी जिसके बीच कई जोड़ वाली हड्डी भी रहती थी।

उरंगम

उरंगमोंके शरीरपर शल्क अर्थात् सींगके समान कड़े

मंबा ।

मंबा नामक साँप अफ्रीकामें होता है और बड़ा ही विषैला होता है ।

आश्चर्यजनक है, वह अपना रंग बदल कर अपने पास-पड़ोसके वस्तुओंके रंगका हो जाता है ।

इस वर्गके प्राणी अंडा देते हैं । अंडेकी ऊपरी खोल नरम होती है । इस वर्गके कुछ सदस्योंमें अंडा गर्भमें ही फूटता है और इस प्रकार जीवित बच्चे उत्पन्न होते हैं । कुछ क पूंछें बहुत जल्द टूट जा सकती हैं । हमारी घरेलू छिपकलीको कोई शत्रु दौड़ाता है तो वह इतने वेगसे भागती है कि बहुधा पूँछ टूटकर पीछे रह जाती है । यह पूँछ बहुत देर तक छटपटाती रहती है । शत्रु पूँछकी ओर आकर्षित हो जाता है और इस प्रकार छिपकलीकी जान बच जाती है । मेक्सिकोमें एक छिपकली होती है जिसके दाँतोंकी जड़के पास विषकी थैली रहती है । दाँतोंकी बनावट भी सापोंके दाँतों—जैसी होती है । नापमें यह जंतु लगभग ३० इंचका होता है । हमारा बिसखपरा (विषखर्पर)* भी विषैला होता है । एक प्रकारकी छिपकली पेड़ों परसे अपनी बाँह फैलाकर चिमगादरकी तरह हवामें उड़ते हुए उतर सकती है । इस छिपकलीमें शरीर से बाहुओं तक झिल्ली रहती है । एक छिपकलीके टाँगे होती ही नहीं हैं और देखनेमें वह साँपोंकी तरह लगती है । इसके देखनेसे तुरन्त ध्यानमें आता है कि छिपकलियों और सर्पोंमें निकट सम्बन्ध है ।

पत्र रहते हैं । उनका रुधिर ठंढा* होता है । वे आरंभसे ही अपने फेफड़ोंसे सांस लेते हैं, मछलियोंकी तरह गलफड़ोंसे साँस नहीं लेते । जीवित उरंगमोंमें चार प्रधान वर्ग हैं—छिपकली, साँप, कछुआ और मगर ।

छिपकलियोंमें कई जातियाँ होती हैं । प्रायः सभीमें लंबी पूँछ होती है । बहुधा वे बहुत सुंदर होती हैं, रूपमें भी और रंगमें भी । इनकी क्रियाशीलता क्षणिक होती है, परन्तु कुछ बहुत वेगसे दौड़ सकती हैं । गिरगिटान, जो छिपकलियोंके वर्गमें ही रक्खा जाता है एक बातमें

उरंगमोंमें सर्प सबसे अधिक विकसित अवस्था तक पहुँचे हैं । सर्प बड़े ही आश्चर्यजनक प्राणी हैं । कुछ तो बहुत सुन्दर होते है । कई साँप मनुष्यके लिए बहुत उपयोगी भी हैं क्योंकि वे खेतीके लिए हानिकारक जंतुओंको (चूहों आदिको) खा जाते हैं । साँप कोई ढ़ाई हजार तरहके होते हैं और उनमेंसे कुल २०० तरहके साँप मनुष्यके लिए घातक होते हैं । प्राचीन लोगोंको सांपोंसे अवश्य ही बहुत डर लगता रहा होगा । आज भी उनकी

* ठंढे खून वाले प्राणियोंमें शरीरका तापक्रम बाहरी वायुमंडल या जलपर निर्भर रहता है । गरम पानीमें पड़नेसे वे गरम और ठंढेमें पड़नेसे ठंढे हो जाते हैं । गरम रुधिर वाले प्राणियोंमें शरीरके तापक्रमपर बाहरी वायु या जलका प्रभाव नहीं पड़ता । उरंगमोंका तापक्रम बाहरी आवरणसे लगभग एक डिगरी अधिक होता है । इस प्रकार साँपोंका तापक्रम जाड़ेमें कम और गरमीमें अधिक होता है । परन्तु एक सीमा है, उससे अधिक तापक्रम साँप न सह सकेगा । जब तापक्रम ६५ डिगरी (फारनहाइट) से अधिक हो चलता है तो साँप कहीं ठंढी जगह ढूँढ लेता है ।

* हाथ सवा हाथ लम्बा एक विषैला जन्तु । देखनेमें यह बड़ी भारी छिपकलीका-सा होता है ।– शब्द सागरसे संक्षिप्त ।

दबोइया ।

दबोइया भी बड़ा विषैला होता है। परन्तु यह फन नहीं काढ़ता। इसे संस्कृतमें मंडली कहते हैं और अँग्रेजी रसल वाइपर ।

भी बन गये रहते हैं। पोआ (सांप का बच्चा) इसी दांत से अंडेके खोलको काटकर बाहर निकलता है। परन्तु अन्य जातियोंमें पोआ अपनी माँके पेटमें ही प्रस्फुटित अवस्था तक पहुँच जाते हैं। जब ये उत्पन्न होते हैं तो ये झिल्लीमें अलग-अलग लिपटे रहते हैं, परन्तु जनमते ही पोए इनको फाड़कर बाहर निकल आते हैं।

अन्य उरंगमोंकी तरह सांपोंमें भी दांत केवल पकड़ने के लिए होते हैं, भोजन चबानेके लिए नहीं। सांप अपने शिकारको समूचा ही निगल जाता है। निगलनेकी सुविधाके लिए जबड़े एक दूसरेसे बहुत लचीले तंतुओं

लपलपाती जीभें, उनकी कभी न बन्द होने वाली आंखें, उनका शरीरको तोड़ते-मरोड़ते हुए रेंगना और ज़ोर-ज़ोरसे फुफकारी मारना सभी दिलको दहला देते हैं।

सांप अपनी पसलियोंके बल चलते हैं। इन पसलियों से जुड़ी हुई मज़बूत मांस पेशियां होती हैं और इसलिए सर्प इन पसलियोंको हिला-डुला सकता है।

सांपोंमें एक ही फेफड़ा होता है। दूसरे फेफड़ेके स्थान पर केवल ठूँठ रहता है। आंखों पर पलकें नहीं होतीं। इसलिए सांपोंकी आंखें बराबर खुली रहती हैं परन्तु उनकी रक्षाके लिए एक पारदर्शक झिल्ली होती है। जब सांप केंचुल छोड़ता है तो शरीरके अन्य भागोंकी भांति आंखों पर भी नवीन झिल्ली चढ़ी रहती है (केंचुल या केंचली सर्पकी त्वचाकी बाहरी पारदर्शक झिल्लीको कहते हैं)। अधिकांश सर्प वर्षमें तीन बार केंचुल छोड़ते हैं।

कुछ सांप नरम परन्तु चिमड़े खोल वाले अंडे देते हैं और अंडोंको धूपमें छोड़ देते हैं। ऐसे अंडोंमें से जो सांप निकलते हैं उनमें एक या अधिक दांत उस समय

से जुड़े रहते हैं और इसलिए आवश्यकता पड़ने पर बहुत फैल सकते हैं। अजगर, हिरन और बकरी तकको निगल जा सकता है। सभी साँप अपने शरीरकी मोटाईसे कई गुनी बड़ी वस्तु निगल सकते हैं। निगलनेमें समय लगता है और दर्शकको जान पड़ता है कि सर्पको कष्ट होता होगा परन्तु इसमें संदेह नहीं कि स्वयं सर्पको इसमें आनन्द मिलता है। जब छोटा सांप पांच-छः अंडे निगल जाता है तब उसका शरीर ऐसा जान पड़ता है जैसे रस्सी पर गेंद पिरोये गये हों।

सांप छोटे बड़े कई मेलके होते हैं, कुछ तो दो-तीन इंचके ही होते हैं और बड़े सांप मनुष्यसे कई गुने लंबे होते हैं। साँपोंमें अजगरकी जातिके सांप सबसे बड़े होते हैं। ये अपने शिकारपर लिपट जाते हैं और अपने शरीरको इतने बलसे संकुचित करते हैं कि पकड़े गये जंतुकी हड्डियाँ चूर-चूर हो जाती हैं। तब वे उसको निगल जाते हैं। थोड़ेसे ही सांप विषैले होते हैं, परन्तु उन्हींके कारण सभी तरहके साँपोंसे लोग घबड़ाते हैं। भारतवर्षमें
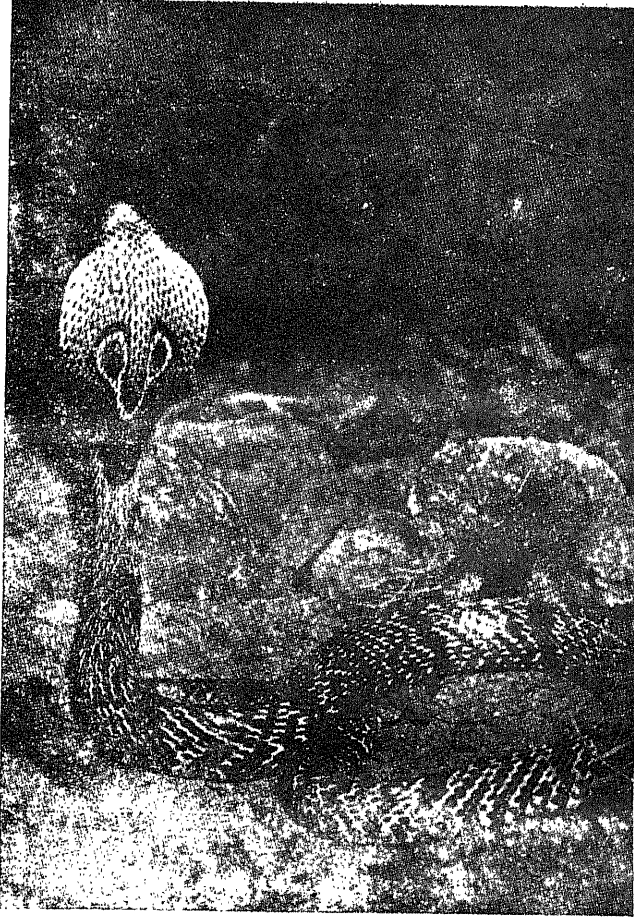
नाग।
यह अत्यन्त विषैला सर्प होता है और आक्रमणके पहले फन काढ़ लेता है।

कई तरहके विषैले साँप हैं। इनमेंसे सबसे प्रसिद्ध नाग (कोबरा) है यद्यपि दबोइया (रसल-वाइपर) भी अधिक संख्यामें मिलता है और अत्यन्त घातक दबोइया होता है।

दबोइया हिंदुस्तानी शब्द है और दबना या दबकना शब्दसे निकला है क्योंकि यह साँप दबका रहता है और नागकी तरह फन नहीं उठाता। इसका लैटिन नाम वाइपेरीडे रसेलाई और अँग्रेजी नाम दबोइया या रसेल्स वाइपर अर्थात् रसेल साहबका साँप है। यह अत्यन्त सुन्दर साँप होता है। बड़ा दबोइया ५ फुटसे भी कुछ लम्बा हो सकता है। यह बादामी रंगका होता है। इसपर धब्बोंकी तीन पंक्तियाँ रहती हैं। धब्बे कत्थई रंगके होते हैं परन्तु उनका किनारा काला और कालेके बाहर पीला होता है। इन्हीं गोल धब्बों या चकत्तोंके कारण इस साँपको संस्कृतमें मंडली कहते हैं। (मंडली = गोल)।

यह साँप छेड़े जानेपर ज़ोरसे फुफकारी मारता है। जब तक यह बहुत तंग नहीं हो जाता यह अपने शत्रुपर आक्रमण नहीं करता, परन्तु जब आक्रमण करता है तो बड़ी ही निर्भीकतासे। इसमें विषकी मात्रा बहुत होती है। तीन फुट लंबा साँप एक बार काटनेमें इतना विष उतार देता है जितनेसे दो प्रौढ़ व्यक्ति सुगमतासे मर जायँगे।

यह साँप घने जंगलोंको छोड़ प्रायः सर्वत्र पाया जाता है। दबोइया घने जङ्गलोंकी अपेक्षा खुले मैदानोंमें रहना अधिक पसंद करता है। यह रातको निकलता है और दिनको सोता है। यथासंभव यह चूहे और अन्य छोटे-छोटे स्तनपोषियोंको खाकर अपना निर्वाह करता है। बच्चे माताके पेटमें छः महीनेसे कुछ अधिक समय तक रहते हैं। एक बारमें लगभग तीस बच्चे होते हैं जो एक फुटसे कुछ छोटे ही होते हैं। साधारणतः ये बरसातके आरंभमें जन्म लेते हैं। बच्चे जीवित उत्पन्न होते हैं, अंडेसे नहीं। संयुक्त-प्रांतके सँपेरे दबोइयेको बहुधा नागिन कहते हैं। दबोइया शब्द संयुक्त प्रान्तमें बहुत प्रचलित नहीं है। हिन्दी शब्द-सागरमें भी यह नाम नहीं दिया है, परन्तु ऑक्सफोर्ड इंगलिश डिकशनरीमें अंग्रेजी शब्द दबोइयाको हिन्दुस्तानी शब्द

माना है और इसकी उत्पत्ति दबनेसे बताया है। नागका स्त्रीलिंग नागिन होनेके कारण दबोइया को नागिन कहना उचित नहीं है। दबोइया सर्प (स्नेक) नहीं, व्याल (वाइपर) है। व्यालोंमें गरदन सिरसे बहुत पतली होती है, परन्तु सर्पोंमें गरदन और सिरकी मोटाई प्रायः एक-सी होती है। फिर, व्यालोंमें सिरके शल्क छोटे, सर्पोंमें बड़े-बड़े और गिनतीमें बहुत कम होते हैं।

नाग

नाग, गेहुअन, गोखुरा या फनियर (अंग्रेज़ी नाम कोबरा, लैटिन नाम नाज नाज) से लोग बहुत डरते हैं। यह छ: फ़ुट तक लंबा होता है। नाग गेहूँ या खैरके रंग का होता है, यह अपना सर चिपटा करके फन काढ़ सकता है। इसीसे फनियर कहलाता है। फनपर पीछेकी ओर बहुधा गायोंके खुरकी तरहका काला और सफ़ेद चिन्ह होता है (चित्र देखें), इसीसे इसे लोग गोखुरा भी कहते हैं; परन्तु कभी-कभी यह चिन्ह नहीं भी रहता और कुछ नाग ऐसे भी होते हैं जो फन नहीं काढ़ सकते।

नाग चिड़चिड़ा और क्रोधी होता है। छेड़े जाते ही यह अपना फन फैलाकर सर उठा लेता है और गरदन टेढ़ी कर लेता है। आक्रमण करते समय अपने उठे हुए धड़को ही आगे फेंककर मारता है। साथ ही ज़ोरसे फुफकारी भी छोड़ता है। परन्तु इसका आक्रमण उतना वेगमय नहीं होता जितना दबोइयाका। नेवला फनियरसे अधिक फुरतीला होनेके कारण उससे बच जाता है परंतु दबोइयासे नहीं जीत पाता। दबोइया अपना सिर भूमि पर ही रखता है, परन्तु गरदन टेढ़ा किये रहता है और अवसर पाते ही अपना सर विद्युतगतिसे आगे बढ़ाता है।

कभी-कभी कुपित होने पर नाग दौड़ाकर अपने शत्रु पर आक्रमण करता है, परन्तु दबोइयेकी तरह शत्रु पर टूटता नहीं, दौड़कर पास आजाता है और तब फिर सिर उठाकर वार करता है। इसलिए मनुष्य चाहे तो छड़ी या डंडेसे इसे हटाये रख सकता है। जब यह काटता है तो देर तक दांत चुभाये रहता है जिसमें काफी विष घावमें घुस सके। अधिक समय तक दाँतोंके घुसे रहने पर बहुत-सा विष घावमें पेवस्त होजाता है। नाग साधारणतः चूहे और मेढ़क खाकर रहता है इसलिए बहुधा मनुष्योंके मकानों या झोपड़ोंके आस-पास रहता है जिसमें उसे चूहे मिल सकें। सांपोंके काटनेसे जितनी मृत्यु होती है संभवतः उनमें नागके काटे गये ही व्यक्ति अधिक होते हैं।

नंगे पैर रहनेके बदले बराबर जूता पहन कर बाहर निकलनेसे सांपोंसे मनुष्य बहुधा बच जाता है। उचित सिरमका इन्जेक्शन (सुई) लगवानेसे विषधर सर्पोंके काटने पर भी मनुष्य बच सकता है।

नागोंकी बड़ी जाति नागराज, महानाग, या शेषनाग (किंग कोबरा, लैटिन नाम नाज हन्ना) साढ़े अट्ठारह फ़ुट तक लम्बा देखा गया है।

यह पूर्वीय भारतवर्षमें होता है। नारी एक बारमें २०से ३० अंडे देती है और उसकी रक्षा करती है।

करैत

करैत ४ फ़ुट तक लंबा होता है। साधारण करैत का लैटिन नाम है बंगेरस कैंडिडस। अंग्रेज़ीमें इसे इसके हिन्दी नाम करैतके अनुसार करैत ही कहते हैं।
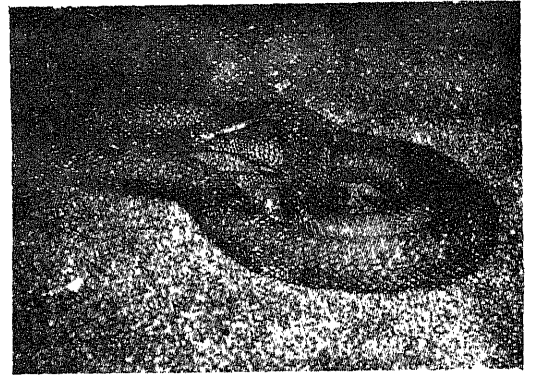
शेषनाग।

शेषनाग (या महानाग) नागकी ही तरहका, परन्तु उससे बहुत बड़ा होता है। यह भी फन काढ़ता है, परन्तु फन इसके बड़े शरीरको देखते हुये बहुत चौड़ा नहीं होता। यह भी बहुत विषैला होता है।

इसके काले होनेके कारण ही हिन्दीमें इसका नाम करैत पड़ गया है (कारा = काला)। पीठकी ओर करैत चमकीले काले रंगका होता है, या गाढ़े खैरे रंगका; और पीठके आर-पार पतली सफेद धारियाँ पड़ी रहती हैं।
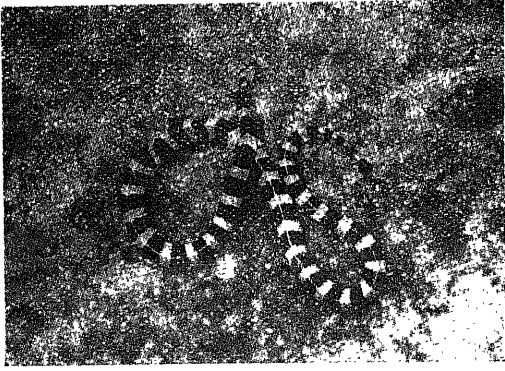
करैत।

करैतकी दो जातियाँ होती हैं। एक पर पतली बेंड़ी (लम्बाईसे समकोण बनाती हुई) धारियाँ होती हैं, दूसरे पर चौड़ी धारियाँ। इस चित्रमें चौड़ी धारियों वाला करैत दिखलाया गया है। इसीको चितकौड़िया कहते हैं।

पेटकी ओर यह मोतीके समान श्वेत रंगका होता है। जिन-जिन प्रदेशोंमें यह होता है वहां यह बहुत अधिक संख्यामें होता है। यह मनुष्योंके निवास-स्थानोंके पास, खेतोंमें या छोटी झाड़ियों वाले जंगलोंमें पानीके आस-पास रहता है। यह साधारणतः अन्य सांपोंको खाता है, परन्तु कभी-कभी मेढक, छिपकली, चूहे आदि भी खाता है। यह बहुत शांत स्वभावका होता है। छेड़े जाने पर अपने सिरको शरीरकी कुण्डलियोंमें छिपाकर निश्चल होजाता है। यह एक बारमें ६ से १० अंडे देता है। करैत रातको चलता फिरता है और दिनमें छिपा रहता है।

प्रयोगोंसे पता चला है कि करैतका विष नागके विषसे चौगुना या पँचगुना अधिक तीव्र होता है।

करैतोंकी एक जाति ऐसी भी होती है जिसकी पीठ पर गंडे अर्थात् चौड़ी धारियां पड़ी रहती हैं।

यह जङ्गली स्थानोंमें रहना पसन्द करता है। गण्डे काले और पीले होते हैं। गण्डे वाले करैतको चितकौड़िया और साधारण करैतको कौड़िया चितकौड़ी भी कहते हैं।*

कछुवा

जंतु-संसार में कछुएका ही कवच सबसे अधिक सुदृढ़ होता है। सींगकी तरह कड़ी हड्डी ढालके रूपमें कछुएके शरीरको ढके रहती है, पेटकी ओर भी कड़ी-कड़ी हड्डियाँ रहती हैं। ऊपर और नीचेकी हड्डियोंके बीच एक छेद तो सिरके लिए रहता है, और दूसरा पूँछ और पिछली टाँगोंके लिए। कछुओंमें भी कई जातियां हैं और किसी-किसीमें यह संरक्षक आवरण बहुत पुष्ट होता है, किसीमें बहुत साधारण। जिन जातियोंका स्वभाव बहुत शांत होता है उनमें ही यह कवच सबसे अच्छा होता है। छेड़े जाने पर ऐसे कछुए अपना सिर, टाँग, पूँछ सब कुछ भीतर सिकोड़ लेते हैं और सामने तथा पीछेके द्वारोंको कसकर बंद कर लेते हैं। फिर उन्हें किसी प्रकारकी क्षति पहुँचाना साधारण शत्रुओंके लिये असंभव हो जाता है। द्वार बन्द करनेका ढंग यह है कि नीचेका पत्र बीचसे कब्जेकी तरह जुड़ा रहता है और इसलिए अपने जोड़के बल मुड़ सकता है। कछुआ अपने पैरों और सिर तथा पूँछको भीतर खींच लेनेके पश्चात् नीचेकी हड्डियोंको इस प्रकार मोड़ता है कि वे ऊपरकी हड्डीके भीतर जा कर सच्ची बैठ जाती हैं। इस प्रकार सुरक्षित हो सकनेके कारण कछुएको लड़नेकी क्या आवश्यकता? वह तो पक्का युद्धविरोधी है! ये बहुत वर्षों तक जीवित रहते हैं; व्हेलोंको छोड़ उनसे अधिक दीर्घजीवी अन्य कोई प्राणी है ही नहीं।

कछुओंको दंतविहीन चोंच होती है, कुछ-कुछ वैसे ही जैसे पक्षियोंकी होती है। उनकी शल्क युक्त टाँग और पूँछ होती है जैसे छिपकलियोंकी। कछुए अंडे देते हैं और उन्हें वे मिट्टीमें गाड़ देते हैं। अंडोंकी खोल नरम होती है और वे सूर्यकी गरमीसे ही सेवित होते हैं।

---

* साँपोंके बारेमें अधिक जानकारीके लिए विज्ञान-परिषद्से प्रकाशित रमेशबेदीकी लिखी 'साँपों की दुनिया" पढ़ें।

मकर

मकर संस्कृत शब्द है और हिन्दी 'मगर' इसीका अपभ्रंश रूप है। मकरोंकी कई एक जातियाँ हैं जिनमेंसे भारतवर्षमें दो प्रसिद्ध हैं, नाक और घड़ियाल। 'नाक' की नाक लम्बी होती है और घड़ियालकी छोटी। घड़ियालको ही लोग साधारणत. मगर कहते हैं, परन्तु हम इस पुस्तकमें संस्कृत मकर शब्दसे मगर, घड़ियाल तथा उन्हींसे मिलते-जुलते सब जंतुओंको सूचित करेंगे।

उरंगमों में मकर सबसे अधिक बड़े और सबसे प्राचीन ढंगके प्राणी हैं। उनकी पूँछ लंबी, टाँगें छोटी और चौड़ी, शरीर भारी होता है। शरीरके ऊपर सींगकी तरह कड़े शल्क होते हैं जो समानांतर पंक्तियोंमें क्रमसे लगे रहते हैं।

मकर दलदलोंमें या नदियोंके किनारे रहते हैं। इनकी आँखें बहुत उभरी हुई होती हैं। इससे वे पानीमें इस तरह उतरा सकते हैं कि केवल नाककी छोर और आँखें बाहर रहें। इस स्थितिमें रहनेसे अन्य प्राणी उन्हें ठीकसे नहीं देख पाते। कोई भूला-भटका जलविहंग या अन्य जीव-धारी उधर आ निकलता है तो उन्हें वे चट हड़प कर लेते हैं। वे अपने शिकारको पानीमें डुबाकर मार डालते हैं और फिर उनको निगल जाते हैं। यदि शिकार बड़ा रहा तो पहले उसे झटका देकर टुकड़ा-टुकड़ा कर डालते हैं। उनके जबड़ोंमें बहुतसे दाँत होते हैं जो बड़े भयानक लगते हैं। कुछ मकर तो बड़े ढीठ हो जाते हैं और ऐसे स्थानोंमें रहते हैं जहाँ मनुष्योंको नदी-नाला पार करना पड़ता है। वहाँ वे अवसर पाकर बच्चोंको, या आवश्यकता पड़ने पर बड़ोंको, घसीट ले जाते हैं।

मकर अपने हाथ पैरसे नहीं तैरते। वे अपनी पूँछसे तैरते हैं। एक बार में वे तीससे साठ अंडे देते हैं। अंडे सफेद और कुछ लम्बे होते हैं, और उनका ऊपरी खोल नरम होता है। इन अंडोंको रखनेके लिए वे पानीके किनारे भूमि पर गड्ढे बना लेते हैं। अंडों को वे घास-पात और मिट्टीसे ढक देते हैं और सूर्य की गर्मीसे सेवित होनेके लए छोड़ देते हैं; परन्तु माता कहीं पासमें ही रहती है और उधरसे कोई जंतु आता दिखाई देता है तो अपने अंडों की वह रक्षा करती है।

स्थल-जलचर

स्थलजलचर ऐसे प्राणीको कहते हैं जो भूमिपर भी रहे और जल में भी। इस श्रेणीमें मेढ़क, सैलामैंडर आदि प्राणी हैं। जीवनके आरंभमें ये जलमें रहते हैं और गलफड़ों से साँस लेते हैं। बचपनमें उनके लंबी पूँछ होती है, परन्तु पीछे यह पूँछ झर जाती है।

अंडेसे निकलनेके बाद स्थलजलचर अपनी त्वचा द्वारा साँस लेते हैं। जब गलफड़ बन आते हैं तो वे अधिकांश मात्रा में गलफड़ द्वारा, परन्तु अंशतः तब भी अपनी त्वचा द्वारा साँस लेते हैं। इनकी त्वचाको बनावट विशेष होती है और उसके भीतर आक्सीजन पैठ सकता है, पीछे उनके फेफड़े तैयार हो जाते हैं और वे उनसे साँस लेते हैं।

मेढ़क एक साथ ही बहुतसे अण्डे देता है और वह सरेसकी तरह चिपचिपे पदार्थसे एक दूसरेसे चिपके रहते हैं। वहीं वे बिना माताकी सहायता पाये सूर्यकी गरमीसे सेवित होते हैं। परन्तु दक्षिणी अमरीकामें एक विचित्र जातिका मेढक होता है जिसमें नर अंडोंको अपने गालोंमें भरकर सेता है। एक दूसरी जातिके मेढकोंमें माताके शरीर पर अनेक गड्ढे होते हैं और अंडे इन्हींमें सेवित होते हैं। इस जातिमें अंडेसे मेढक निकलते हैं, पूँछवाले बच्चे नहीं।

मेढककी शरीर रचना अपेक्षाकृत बहुत सरल होती है और वे सुगमतासे मिल जाते हैं। यही कारण है कि हमारे कालेजों और विश्वविद्यालयोंमें प्राणीशास्त्रका क्रिया-त्मक अध्ययन मेढकोंकी चीड़-फाड़से आरंभ होता है। मेढककी रीढ़में जोड़ कम होते हैं, पसलियाँ होती ही नहीं। छातीकी ओर एक हड्डी होती है और अगली टाँग इसीमें जुड़ी रहती हैं। पिछली टांगोंकी स्थिति भी अन्य

पृष्ठवंशियोंसे विभिन्न होती है। शरीरके हिसाबसे टाँगें, बहुत बड़ी होती है।

स्थलजलचरोंके अध्ययनसे पता चलता है कि कैसे विकास होते-होते जलचर स्थल पर आकर रहने लगे। स्थलजलचरोंके पूँछ वाले सदस्य भूमि पर चलही नहीं पाते। वे पेटके बल बस रेंग भर लेते हैं। स्थल-जल-चरोंके जीवनकालमें गलफड़ोंके बदले फेफड़ोंका उपयोग भी दिखलाई पड़ता है।
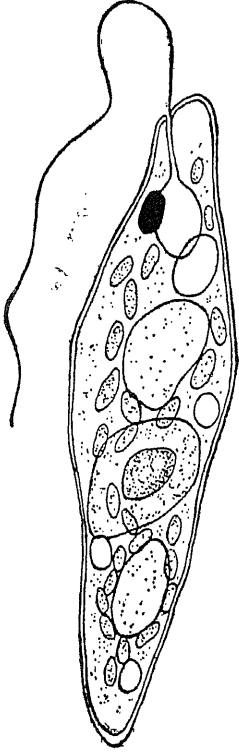
फ्लैगलेट।

ये एक-कोषी जीव पानी में तैरा करते हैं। यह कहना कठिन होता है कि कोई विशेष फ्लैगलेट पौधा है या जन्तु।

मछलियाँ

पृष्ठवंशियोंमें मछलियाँ ही जलकी असली निवासिनी हैं। वे जन्म भर गलफड़ोंसे सांस लेती है—मेंढककी तरह नहीं, जो पहले गलफड़ोंसे और पीछे फेफड़ों से। स्तनपोषी, पक्षी और उरंगम केवल फेफड़ोंसे ही सांस लेते हैं। गलफड़ोंकी बनावट ऐसी होती है कि उनकी सहायतासे मछली जलमें घुले ऑक्सिजनको ग्रहण कर सकती है—वस्तुतः मछलियोंको भी ऑक्सिजनकी उतनी ही आवश्यकता रहती है। जितनी स्थलचरों को। गलफड़ोंमें कई एक पतले पत्र होते हैं। इन पत्रोंमेंसे बहुतसे लाल, झालरके समान, सूत निकले रहते हैं जिनमें रुधिर पहुँचनेके लिए अनेक रक्तवाहिनियां रहती हैं। मछलियां इन सूतों परसे बराबर पानी बहाती रहती हैं और अपने रुधिरमें जलके घुले ऑक्सिजनको शोषित करती रहती हैं।

स्तनपोषियोंमेंसे कुछ जंतु (जैसे व्हेल, सील, आदि) जलमें रहते अवश्य हैं, वहीं उनको आहार भी मिलता है और जलमें ही वे उछल-कूद भी मचाते हैं, परन्तु सांस लेने वे वायुमें आते हैं, बच्चे वे भूमिपर जनते हैं और वहीं उनको पालते हैं। स्थलजलचर हैं असलमें जलके जंतु और भूमि पर वे किसी-न-किसी तरह अपना काम चलाते हैं। परन्तु मछलियां पानीमें ही रह गयी हैं, जो उनका आदिसे निवास-स्थान रहा है, और वे ही सच्ची जलकी रहने वाली हैं। चलनेके लिए टांगोंके बदले उनमें बाज विकसित हुए हैं। इन बाजोंमेंसे दो जोड़ी तो उन्हीं स्थानोंमें हैं जहाँ अन्य जंतुओंके हाथ-पैर होते हैं परन्तु कुछ अन्य बाज भी होते हैं जिनकी समता करने वाला अंग अन्य जंतुओंमें नहीं होता। अन्य जंतुओंमें पूंछ विशेष उपयोगी नहीं होती, परंतु मछलियोंमें पूँछ बहुत उपयोगी होती है। इसीसे मछली तैरती है और मुड़ती है।

गिरगिटान।

गिरगिटानोंमें एक विशेष शक्ति यह होती है कि वे अपना रंग बदल कर पृष्ठभूमिके समान हो जाते हैं और इस प्रकार प्रायः अदृश्य हो जाते हैं।
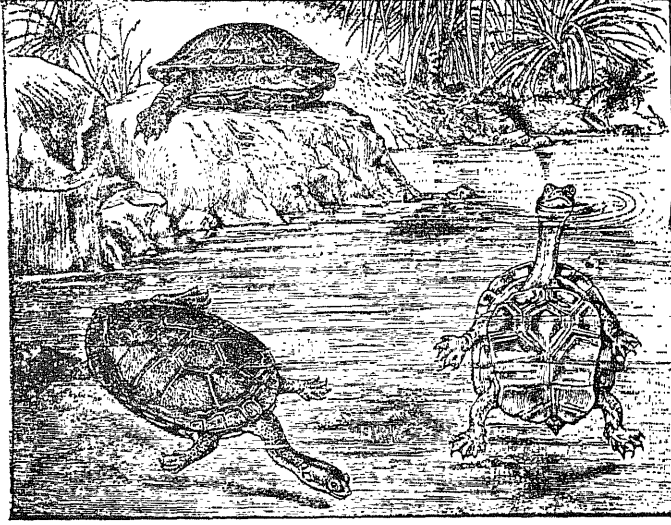
कछुए।
जंतु-संसारमें कछुएका ही कवच सबसे अधिक सुदृढ़ होता है।

मछलियोंमें पक्षियों और स्तनपोषियोंसे कहीं अधिक जातियां हैं। गिनतीमें भी मछलियां अन्य पृष्ठ-वंशी जंतुओंसे कहीं अधिक हैं। पक्षियोंके समान मछलियोंका शरीर भी धारारैखिक आकारका होता– पानीको चीर कर आगे बढ़नेमें मछलीको अपने विशेष आकारके कारण न्यूनतम बाधा पड़ती है। मछलियोंकी अधिक संख्याका कारण संभवतः यह है कि वे पानीके अन्य जीवोंकी अपेक्षा अधिक वेगसे तैर सकती हैं और वे अपना आहार खोजने में सदा क्रियाशील रहती है।

निम्नतम पृष्ठवंशी

ऊपर हमने सरसरी निगाहसे पृष्ठवंशियोंके पांचों प्रधान श्रेणियोंको देखा है। हमने विकासकी दृष्टिसे उतरते हुए क्रमसे उनपर विचार किया है। जब हम इन पाँच श्रेणियोंसे भी नीचे उतरते हैं तो हमको ऐसे प्राणी मिलते हैं जिनकी घनिष्टता पृष्ठवंशियोंसे अवश्य है, परन्तु जो पृष्ठवंशी कहे जाने योग्य नहीं जान पड़ते। उदाहरणतः, लंबू मछली (अंग्रेज़ी नाम लैंप्रे) पर विचार कीजिये। वे सांपकी तरह चिकनी होती हैं और जलमें रहती हैं, परन्तु न इनमें मछलियोंकी तरह जबड़ा होता है और न उनके समान बाज। इसलिये उनको मछलियोंमें गिनना अनुचित जान पड़ता है। उनका मुँह गोल होता है और चूसनेके लिए विशेष रूपसे उपयुक्त होता है। उनके मुँहके किनारेपर सींगकी तरह कड़े पदार्थके बहुतसे दाँत होते हैं। इन दाँतोंसे ये जंतु मछलियोंके त्वचा काटकर उनसे चिपक जाते हैं और उनका रुधिर चूसा करते हैं।

जब हम विकासके क्रममें और नीचे उतरते हैं तो हमें ऐसे जंतु मिलते हैं जिनमें रीढ़ एक-दम होती ही नहीं। उसके बदले बिना जोड़की लचीली हड्डी रहती है जिसे नोटोकॉर्ड कहते हैं।

५

अपृष्ठ-वंशी

जब प्राणीशास्त्रमें उन्नति हुई तब पता चला कि जंतुओंको पृष्ठ-वंशी और अपृष्ठ-वंशी समूहोंमें बाँटना संतोषजनक नहीं है। रीढ़का रहना या न रहना इतना मौलिक अंतर नहीं है जितनी अन्य विभिन्नताएँ। जब सूक्ष्मदर्शकसे अनेक नवीन अत्यंत सूक्ष्म प्राणी दिखलाई पड़े और जब बड़े और छोटे सब प्राणियोंकी शरीर-रचनाकी सूक्ष्म परीक्षा हुई तो प्राणियोंको प्राक्प्राणी (लैटिन प्रोटोज़ोआन) और अनुप्राणी (लैटिन मेटाज़ोआन) नामक दो समुदायोंमें विभक्त करना अधिक उत्तम जँचा।

प्राक्प्राणियामें वे प्राणी हैं जिनके शरीरमें केवल एक कोष होता है या दो चार प्रायः स्वतन्त्र कोषोंका समूह होता है। इनमेंसे अधिकांश प्राणी केवल सूक्ष्मदर्शकमें ही दिखलाई पडते हैं।

अनुप्राणी बड़े प्राणी हैं जिनके शरीरमें अनेक कोष
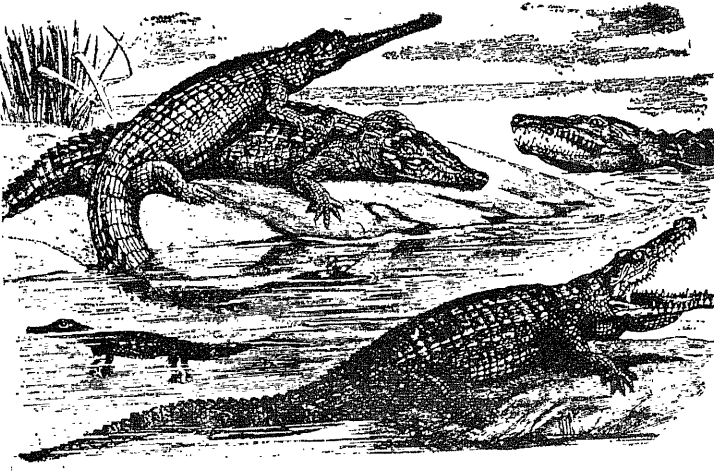
नाक और घड़ियाल।

ऊपर नाक, उसके नीचे घड़ियाल, दाहिने हाथके ऊपरी कोनेमें अफरीकाका मगर और सबसे नीचेएक अन्य जातिका मगर है।

होते हैं और सब कोष मिलकर एक एकाई कीतरह काम करते हैं।

प्राक्प्राणी और अनुप्राणी दोनों सम्पूर्ण प्राणी होते हैं। उनमें सभी आवश्यक क्रियाशीलता होती है—चलना, खाना, बढ़ना, जनना—परन्तु उनके विकासमें अंतर है। प्राक्प्राणियोंमें से अमीबा नामक प्राणी उदाहरणके लिए पर्याप्त होगा। इसका कुछ ब्योरा अंतमें दिया जायगा।

अनुप्राणियोंमें भिन्न-भिन्न कामोंके लिए भिन्न-भिन्न प्रकारके कोष होते हैं और उनसे त्वचा, स्नायु, पेशी आदि अवयव बनते हैं। इन अवयवोंसे समूचा प्राणी निर्मित रहता है। शरीरका काम इन विभिन्न अवयवोंमें बँटा रहता है। हमने जिन पृष्ठ-वंशियोंपर अब तक विचार किया है वे अनुप्राणियोंके ही अंतर्गत हैं।

अनुप्राणी एक दूसरेसे कई बातोंमें भिन्न हो सकते हैं। वर्गीकरणके लिए निम्न बातों पर मुख्यतर ध्यान दिया जाता है; (१) शरीर खंडित है या नहीं, अर्थात् मक्खियों और चींटे-चीटियोंकी तरह उनके शरीरके दो या अधिक प्रत्यक्ष खंड है या नहीं; (२) उनकी सममिति* कैसी है—वे किसी अक्षके हिसाबसे प्रत्येक दिशामें एकसे हैं। जैसे बेलनमें किसी तलके दोनों ओरके भाग एक तरह हैं, इत्यादि (३) उनके आमाशयमें एक रास्ता है या दो; और (४) उनकी टाँग आदिमें संधि है कि नहीं।

प्राणीशास्त्रके इतिहासके क्रमसे चला जाय तो टाँग आदिमें जोड़ रहने या न रहने पर ही पहले विचार करना चाहिए; इसी ब्योरेको लेकर जंतुओंकी एक श्रेणी संधिपदी (आर्थोपोडा) मान लिया गया है (संधि = जोड़, पद पैर;—लैटिनमें आर्थोस = संधि, पदस = पद इस पुस्तकमें हम विकास-क्रमसे उल्टी दिशामें चल रहे हैं। इस लिए भी हम अब संधिपदियों पर पहले विचार करेंगे।

संधिपदियोंके चार वर्ग

सन्धिपदियोंके पैरोंमें जोड़ होते हैं। ये पैर सममिति रूपमें लगे रहते हैं, एक इस ओर एक उस ओर। स्तनपोषियोंमें कड़ी ठठरी भीतर रहती है, ऊपर नरम मांस और त्वचा आदि रहती है, परन्तु सन्धिपदियोंमें कड़ा ढांचा ऊपर रहता है, पेशियां भीतर। शरीरमें खण्ड प्रत्यक्ष रूपसे दिखलाई पड़ते हैं, उदाहरणतः चींटेंमें सिर वक्ष और पेट स्पष्टका रूपसे पता चलता है। ये खण्ड झिल्लियोंसे मढ़ी हुई लचीली सन्धियों द्वारा जुड़े रहते हैं।

*उस रचनाको सममिति कहते हैं जिसमें किसी विन्दु, या रेखा, या तल या एक केन्द्रसे निकलने वाली रेखाओं; या एक अक्षसे निकलने वाले तलोंसे शरीर दो या अधिक ऐसे खण्डोंमें बँट जाता है जो डील और रूप और स्थिति में एक समान होते हैं। उदाहरणतः मनुष्यका शरीर रीढ़से पेटके मध्य तक आने वाले समतलके हिसाबसे सममित हैं; बेलन अपने अक्षके हिसाबसे सममित है; इत्यादि।
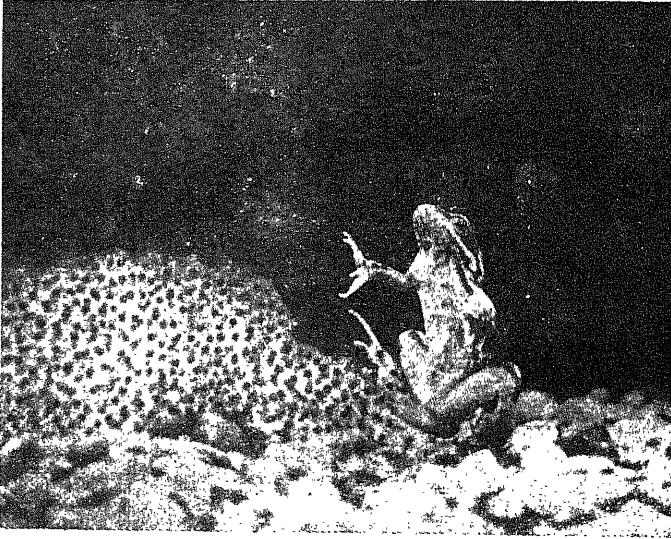
मेंढकके अंडे।
मेढक बेचारा अपनी बीबीकी करतूत देखकर दंग हो गया ?

समसिति द्विपार्श्वी होती है अर्थात् बीचके तलके हिसाबसे शरीरका आधा अङ्ग एक ओर होता है और आधा दूसरी ओर और ये दोनों भाग एक-से होते हैं। भोजन-प्रणाली—आहार ग्रहण और पाचन करने वाली नली—शरीरके एक सिरेसे दूसरे तक रहती है। स्नायु—जिनसे ही पीड़ा आदिका अनुभव होता है—दो पंक्तियोंमें रहते हैं। एक अवयव ऐसा भी रहता है जो धड़कता रहता है। इसीको हम हृदय कह सकते हैं। सन्धिपदियों में निम्न चार मुख्य वर्ग हैं—कीट, मकड़ियां, बहुपदियां और वल्कबतियाँ।

कीट

साधारण बोल-चालमें कीट-पतङ्ग या कीड़े-मकोड़े अनेक भांतिके जीवोंके लिए प्रयुक्त होता है; परन्तु हम कीट केवल उन जीवोंको समझेंगे जिनके शरीरमें तीन खंड होते हैं, सिर, वक्ष, और पेट; ६ टाँगे होती हैं और साधारणतः दो या चार पंख होते हैं।

इस संसारमें कीट वर्गके ही प्राणी सबसे अधिक हैं। संख्यामें उनकी जातियां, अन्य सब प्राणियोंकी जातियों से अधिक हैं। प्रत्यक्ष है कि उनकी रहन-सहन और उनकी शरीर-रचना इस संसारमें सफल होनेके लिए विशेष रूपसे उपयुक्त होगी।

कीटोंका शरीर तीन खंडोंमें विभाजित रहता है और सन्धियां पतली रहती हैं। ये खंड हैं सिर, वक्ष और पेट। तीन जोड़ी टांगें और साधारणतः दो जोड़ी पंख होते हैं। पंख धड़में जुड़े रहते हैं। कीट स्थल पर रहने वाले प्राणी हैं, परन्तु कुछ कीट जलमें भी रहते हैं। परन्तु वे भी वायुमें आकर सांस लेते हैं।

कुछ कीट मांस खाते हैं परन्तु कुछ कट्टर निरामिष भोजी होते हैं। घासपर फुदकने वाले हरे-हरे कीटोंको जिन्हें लड़के आँख-फोड़वा कहते हैं सभीने देखा होगा। ये निरामिष भोजी होते हैं। टिड्डियां भी निरामिष-भोजी होती हैं। इनके एक-एक दलमें इतनी टिड्डियां होती हैं कि आकाश इनसे भर जाता है। जिस खेत पर ये रात भरके लिए उतर जाती हैं वह सफा चट हो जाता है। फसलके शत्रुओंमेंसे टिड्डियोंको सर्व प्रथम गिनना चाहिए। इनके बिनाशके लिए करोड़ों रुपया प्रतिवर्ष ख़र्च किया जाता है ❀ तो भी इनके अस्तित्वको मनुष्य मिटा नहीं पाया है। टिड्डियां भूमिमें अंडे देती हैं।

कुछ कीट रुधिर चूसते हैं, कुछ पौधोंका रस। रस चूसने वाले कीटोंका उत्पात कृषकको प्रत्यक्ष नहीं दिखलाई पड़ता, तो भी वे पौधोंके लिए अत्यंत हानिकारक होते हैं।

चबाने और चूसने वाले कीटोंकी आहार ग्रहण करने की रीतियोंमें विभिन्नताके कारण उनको मारनेके लिए भिन्न-भिन्न रीतियोंका प्रयोग करना पड़ता है। संखिया मिले मिश्रणोंको पत्तियों पर छिड़क देनेसे वे कीट मर जाते

❀ केवल एक वर्ष (१९४३-४४) में भारत सरकार ने १,३६,००० रुपया टिड्डियोंके मारनेके लिए ख़र्च करना स्वीकार किया। सारे संसारमें प्रतिवर्ष करोड़ों रुपया ख़र्च होता होगा ?

मेंढक के अंडे।
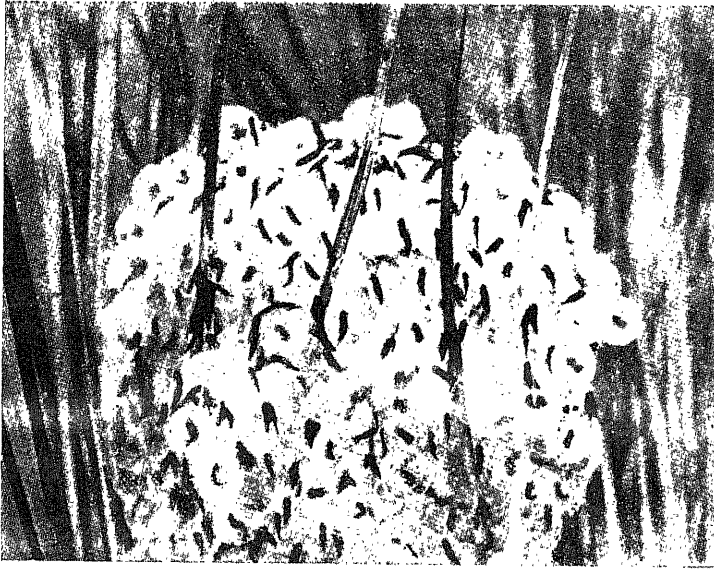
मेंढक इन अंडोंको तालाबके किनारे देता है। चित्रमें अधिकांश अंडोंसे बच्चे निकल आये हैं।

हैं जो पत्ती खाते हैं। परन्तु ऐसे विषोंसे उन कीटोंका कुछ नहीं बिगड़ता जो पौधोंका रस चूसते हैं, क्योंकि उनको तो अपना आहार पौधेके भीतरसे मिलता है। ऐसे कीटों को धूनी देकर धुएँसे मारना पड़ता है, या ऐसा तीव्र रसायनिक पदार्थ छिड़कना पड़ता है जो कीटोंके शरीर पर पड़नेसे उनको मार डालता है। चूसने वाले कीटोंमें से कुछ तो बहुत छोटे होते हैं, परन्तु वे भी बहुत हानि करते हैं क्योंकि उनकी संख्या इतनी अधिक होती है कि वे पौधों पर छा जाते हैं।

रुधिर चूसने वाले कीटोंमें खटमलों से सभी परिचित होंगे।

परन्तु कुछ कीट उपयोगी भी होते हैं। वे अन्य कीड़े-मकोड़ोंका रुधिर चूसकर उनको मार डालते हैं। दक्षिणी अमरीकामें रूईके पौधों पर लगने वाले कीड़ोंका एक शत्रु 'व्हील बग' है। इसलिए इस कीटसे रूईकी फसलको विशेष लाभ होता हैं।

कीटोंके सब वर्गोंका नाम गिनाना यहाँ असम्भव है, परन्तु उनमें से चार विशेष उल्लेखनीय हैं—(१) खोल पंखी (लैटिन कोलिऑप्टेरा), अर्थात् वे कीट जिनका, एक जोड़ी पंख कड़ा होता है और बन्द होने पर प्राणीके ऊपर संरक्षक खोल-सा चढ़ जाता है; जैसे गुबरैला या गेहूँका घुन; (२) द्विपंखी (लैटिन डाई ऑप्टेरा), अर्थात् वे कीट जिन्हें दो पंख होते हैं जैसे दो पंख वाली मक्खियां; (३) शल्क-पंखी (लैटिन लेपिडाप्टेरा) अर्थात् वे कीट जिनके पंखमें नन्हें-नन्हें शल्क (मछलियों या सांपोंकी तरह, परन्तु अत्यन्त सूक्ष्म शल्क) से बने होते हैं, जैसे तितलियां और पतङ्गे; तथा (४) झीन पंखी (हाइमेनॉप्टेरा, अर्थात् वे कीट जिनके पंख झीने (पतले और प्रायः पार-दर्शक) होते हैं, जैसे बर्रें, मधुमक्खी, चींटे, दीमक इत्यादि।

कीटोंमें खोलपंखी ही अधिक होते हैं। उनका ऊपरी पंख कड़ा होता है। ये पंख आगे (मुखकी ओर) रहते हैं और बन्द होने पर प्रायः सारे शरीरको ढक लेते हैं। ये पंख जिस रेखापर मिलते हैं वह शरीरके बीचोंबीच दिखलाई पड़ती है। इससे खोलपंखियोंका पहचानना सरल है। अधिकांश खोलपंखियोंके बच्चे आरंभ में कीड़ेकी तरह होते हैं जिनको सूँड़ी कहते हैं।

घरेलू मक्खी, मच्छर आदि द्विपंखी हैं। इनमें दो ही पंख होते हैं, इसलिए इस वर्गकी पहचान सुगमता-से हो सकती है। मच्छरमें छेद करने और चूसनेके लिए एक सूँड़सा-अंग होता है। घरेलू मक्खीमें चाटने और चूसनेके लिए अंग होता है।

इस वर्गमें कई सदस्य ऐसे हैं जिनसे मनुष्यको क्लेश होता है। घरेलू मक्खियोंसे आंत्रिक ज्वर, विसूचिका (हैजा) आदि रोग फैलते हैं, मच्छरसे मलेरिया, सी-सी मक्खीसे अतिनिद्रा रोग। कुछ विशेष मक्खियोंसे वैज्ञा-निकोंने लाभ भी उठाया है।। टैकिनिड नामक मक्खियों को पाला जाता है और तब उनको खेतोंमें छोड़ दिया
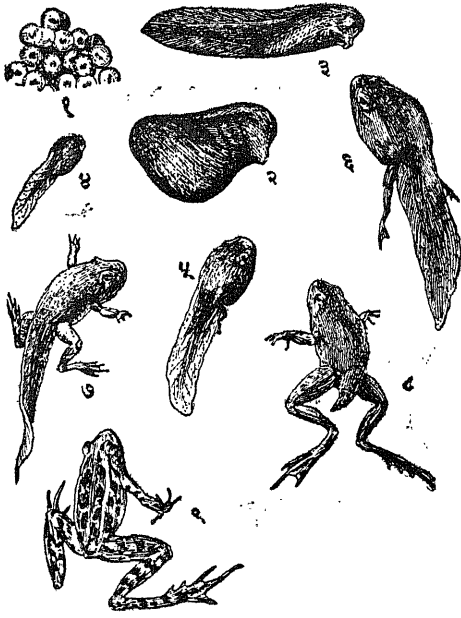
मेढकोंका जन्म और बढ़ना।

१—अंडा; २-८—बच्चोंकी विविध अवस्थाएँ, आयुके क्रमानुसार; ९—मेंढक, पूँछके मिट जानेके बाद। २, ३ और ६ बड़े पैमाने पर दिखाये गये हैं।

जाता है। वे फसलको हानि पहुँचाने वाले कीड़ोंको खा जाती हैं।

मक्खियोंके बच्चे आरंभमें छोटे-छोटे कीड़ोंके रूपमें रहते हैं। इनको ढोला कहते हैं।

तितलियों और पतंगोंकी पहचान यह है कि उनके शरीर पर नन्हें नन्हें शल्क रहते हैं जो अंगुलियोंके लगते ही छूट पड़ते हैं। इस वर्गमें मुखके अंग बडे विचित्र होते हैं। वह लंबा और खोखला होता है जिससे तितलियां गहरे फूलोंका रस भी चूस सकती हैं।

तितलियों और पतंगोंके बच्चे चुड़िला या चुइला या चुइली (अंग्रेज़ीमें कैटरपिलर) कहलाते हैं। ये बहुत-सारी पत्तियां खा जाते हैं।

तितलियां दिनमें उड़ती हैं, पतंगें रातमें। इनकी सुन्दरताके कारण लोग इनकी ओर बरबस आकर्षित हो जाते हैं।

दीमक, मधुमक्खी आदिके वर्गमें तरह-तरहके प्राणी हैं जो एक दूसरेसे बहुत भिन्न जान पड़ते हैं। इनमें पंख और बिना पंख वाले दोनों प्रकारके प्राणी हैं। इस वर्गके सदस्योंकी रहन-सहन अत्यंत रोचक होती है और उनका विस्तृत वर्णन अन्यत्र दिया जायगा।

मकड़ियाँ

मकड़ियोंमें सिर और धड़ एक ही खंडमें होते हैं और इस प्रकार उनमें दो ही खंड दिखलाई देते हैं। धड़में चार जोड़ी टांगे जुड़ी रहती हैं।

मकड़ियां अपने जालोंके लिए प्रसिद्ध हैं। ये जाले अत्यंत सूक्ष्म तंतुके होते हैं और इनका रूप भी कई मेल का होता है। परन्तु सबसे सुन्दर वह होता है जिसमें एक केंद्रसे सीधे सूत तने होते हैं और उन पर सर्पिलाकार चक्रोंमें चिपचिपा सूत बहुब पास-पास लिपटा रहता है जिसमें कीट-पतंग आकर फँस जायँ और मकड़ा अपनी भूख मिटा सके। जालाकी सुन्दरता और सूक्ष्मतासे आश्चर्य होता है।
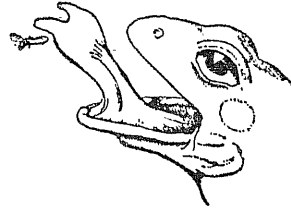
मेढककी जिह्वा।
मेढक अपनी जीभसे कीड़े पकड सकता है।

मकडियां सभी मांस-भुक होती हैं। अधिकांशमें विष भी होता है जिससे जालेमें फँसे छटपटाते हुए प्राणियों को वे शान्त कर देती हैं, परन्तु टारंटुला नामक बडी मकडीको छोड अन्यसे मनुष्यको विशेष हानि नहीं पहुँच सकती। अधिकांश मकडियां स्थलचर हैं परन्तु एक जाति जलचर भी होती है। एक दूसरो

टिड्डी दल।

एक-एक दलमें इतनी टिड्डियाँ होती हैं कि उनसे आकाश छा जाता है।

जाति है तो स्थलचर, परन्तु अपने शत्रुओंसे बचनेके लिए वह बहुधा जलमें कूदकर भाग जाती है।

बहुपदी

बहुपदियोंमें सिर, धड़ या पेट पृथक-पृथक नहीं होता परन्तु टांगोंकी संख्या बहुत अधिक होती है। वस्तुतः शरीर कई खंडोंमें रहता है, परंतु ये खंड एक दूसरेमें इस प्रकार जुटे रहते हैं कि संधियाँ चींटें आदि जंतुओंकी संधियोंकी तरह स्पष्ट रूपसे दिखलाई नहीं पड़ती। सहस्र पदियों (ग्वालिन आदि) में प्रत्येक खंडमें दो जोड़ी पैर होते हैं। शतपदियां (गोजरों) में प्रत्येक खंडमें एक जोड़ी पैर होता हैं। सहस्रपदियोंमें शरीर प्रायः गोल होता है। शतपदियोंका शरीर चिपटा होता है।

सहस्रपदियां अधिकतर विष्ठा या सड़ी-गली वस्तुएँ खाती हैं, परन्तु गोजर (या कनखजूरा) मांसभुक है। उसके प्रथम दो पैर नुकीले होते हैं। वे खोखले भी होते हैं और उनमें थोड़ा विष भी उतर सकता है। उसीसे गोजर अपने शिकारको मारता या बेदम करता है। केवल बहुत बड़े गोजरोंसे ही मनुष्यको कष्ट होता है। एक शतपदी तो बहुत तेज़ दौड़ता है और बहुधा सीड़के स्थानोंमें दिखलाई पड़ता है। इसके तीस टाँगे होती हैं और सरपरके शृंग बहुत लंबे होते हैं।

शतपदी और सहस्रपदी नामोंसे यह न समझना चाहिए कि शतपदियोंके ठीक सौ और सहस्त्रपदियोंके एक हजार टांगे होती हैं।

वल्कवर्ती

वल्कवतियां अधिकांश जलचर होती हैं। नापमें वे विशालकाय केकड़ोंसे लेकर अतिसूक्ष्म जल पिस्सुओं तक होती हैं।

वल्कवतियोंमें सबसे प्रसिद्ध दशपदी होते हैं। इनके दस टांगें होती हैं। अगली दो टांगोंके छोरपर 'गड्ढआ' होते हैं जिससे वे शत्रुको पकड़ सकते हैं। उनकी बाहरी हड्डी काफ़ी कड़ी होती है। केकड़े भी दशपदियोंकी ही एक जाति हैं। झींगा आदि भी दशपदी हैं।

चतुर्दशपदियोंके १४ टाँगे होती हैं। चतुर्दशपदियोंमें कई जातियां होती हैं। चतुर्दशपदियां साधारणतः कीचड़में रहती हैं और बहुत तेज़ नहीं तैर सकतीं।

छोटी वल्कवतियोंके वर्णनके लिए यहां स्थान नहीं हैं। तो भी वे बहुत महत्वपूर्ण हैं, क्योंकि छोटी मछलियाँ, और बड़ी मछलियोंके बच्चे, उन्हींको खाकर रहती हैं।

मृदुलांगी

मृदुलांगी भी वल्कवतियोंमें हैं। मृदुलांगियोंमें शरीर बहुत कोमल और आवरण कड़ा होता है। उनमें घोंघा, सीपी (या सीप, शुक्ति) शंख, कुटिल-मत्स्य इत्यादि प्राणी हैं। इन सबके रूपोंमें बड़ी विभिन्नता है, परन्तु सबका शरीर नरम होता है और खंडोंमें विभक्त नहीं
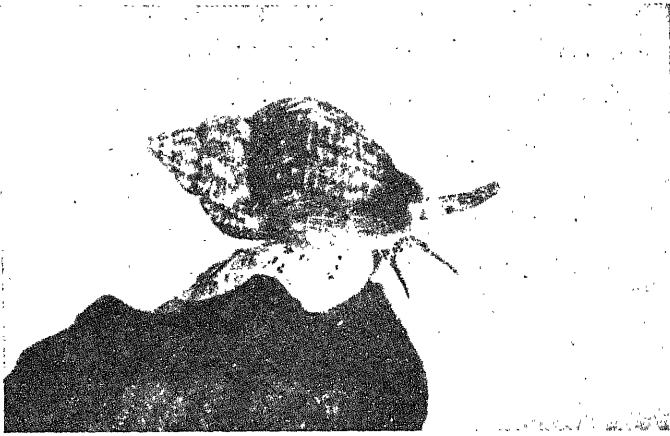
शंख।

शंख एक मृदुलांगी जीव है। पूजा पाठमें बजानेके लिये जो शंख प्रयुक्त होता है वह शंख-नामक जन्तुका ऊपरी खोल है। जीवितावस्थामें शत्रुओंके आक्रमण होने पर शंख अपने खोलमें घुस कर अपनी रक्षा करता है।

रहता। कुछके ऊपर कड़ा खोल होता है। नीचेकी ओर मांसल पैर होता है। बस एक पैर होता है, और वह मोटा, पेशीयुक्त और लचीला होता है। उसीके सहारे प्राणी केंचुएकी तरह रेंग लेता है। तभी तो वह बहुत धीरे-धीरे चल पाता है; अँग्रेज़ीमें कहावत ही है 'घोंघेकी तरह मंदगामी।'

सीपी आदि जंतुओंमें खोल दो टुकड़ोंमें रहता है और एक ओर वे कब्जेकी तरह जोड़से जुटे रहते हैं। इसी कारण इन प्राणियोंको द्विपट्टिका (अंग्रेज़ीमें बाइवाल्व) कहते हैं। उनका सिर अलग नहीं दिखलाई पड़ता। द्विपट्टिकाएँ एक ओरसे पानी चूस सकती हैं और दूसरी ओरसे उसे निकाल सकती हैं। इस पानीमें जितने भी सूक्ष्म प्राणी रहते हैं वे पेटमें ही रह जाते हैं और पच जाते हैं। इसी रीतिसे सीपी आदि आहार ग्रहण करती हैं। सीपियोंसे मोतियोंका मिलना सभी जानते होंगे।

घोंघें एक-पट्टिका कहलाते हैं—उनका खोल एक टुकड़े में रहता है। बहुधा इस खोलपर सर्पिलाकार धारियाँ रहती हैं। शरीरके सामनेवाले भागमें सिर होता है जो शरीरसे थोड़ा ही पृथक रूपका होता है। सिरमें आँखें भी रहती हैं। और दो शृंग भी। मुँहमें दाँत नहीं रहते, केवल दरदरी जीभ रहती है। जब कोई घोंघेको छेड़ता है तो वे अपने शरीरको सिकोड़ कर अपने खोलमें छिप रहते हैं। नदीमें रहने वाले कुछ घोंघोंमें पैरपर कडा ढक्कन रहता है, जिससे घोंघेके सिकुड़ने पर खोलका द्वार भी बन्द हो जाता है और इस प्रकार घोंघा छोटे शत्रुओंसे अपनी रक्षा भली-भाँति कर लेता है।

कुटिल मत्स्य, अर्थात् अष्टपाद, स्क्विड, नॉटिलस, आदि, में बाहरी खोल नहीं होता और असली पैर भी नहीं होते। ये सब जंतु (जिन्हें अंग्रेज़ीमें कटलफ़िश कहते हैं) समुद्रमें रहते हैं। ये खूब तैर सकते हैं, परन्तु तैरते समय ये आगे नहीं, पीछे जाते हैं। सिर पूर्ण रूपसे विकसित रहता है और उसमें कई एक लंबी-लंबी भुजाएँ (जिन्हें लोग टांगें भी कहते हैं) रहती हैं। इन भुजाओंमें बहुतसे चूषक बने रहते हैं जिससे ये जंतु अपने शत्रु या आहारको पकड सकते हैं, बड़ा अष्टपाद बहुत ही भयंकर होता है और समुद्री गोता-खोरोंका प्राण सहज में ही ले सकता है। इन भयानक परन्तु रोचक जंतुओंका विस्तृत वर्णन एक आगामी अध्यायमें दिया जायगा।

कृमि

संसारके समस्त प्राणियोंके इस संक्षिप्त अवलोकनमें इतना समय नहीं है कि हम उन सब जंतुओंको गिनावें जिन्हें पहले कृमि (लैटिन वर्मिज) कहा जाता था। कृमियोंमें कई विभिन्न जातियोंके प्राणी रक्खे गये थे। इनमें कुछ, जैसे केंचुए, तो असली कृमि थे, और कुछ, जैसे रोटीफ़र, कृमि थे ही नहीं; केवल परंपरा वश उनकी गणना कृमियोंमें होती चली आरही थी।

विज्ञानं ब्रह्मेति व्याजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते ।
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति ॥ तै० उ० ।३।५।

भाग ५८	वृश्चिक, सम्वत् २००० । नवम्बर, १९४३	संख्या २

त्रिफला पर स्वर्णपदक

हमें यह जानकर बड़ी प्रसन्नता हुई कि विज्ञान परिषद द्वारा प्रकाशित श्री रामेशवेदी आयुर्वेदालङ्कारकी "त्रिफला" पुस्तक पर अखिल भारतीय आयुर्वेद महासम्मेलनने २५०) का नवाब सर जमाल ख़ान स्वर्ण पदक प्रदान किया है। इस सम्मानके लिए हम श्री वेदीको बधाई देते हैं।

—गोरखप्रसाद

विज्ञान कला भवन

हर्ष का विषय है कि मेरठमें विज्ञान-कला-भवन खुल रहा है, जिसका उद्देश्य होगा विज्ञान—विशुद्ध और प्रयुक्त-का प्रचार करना। कोई भी देश प्रेमी इसका सदस्य कम-से कम २५०) वार्षिक, या २५) मासिक, देकर बन सकता है। लगभग पाँच लाख रुपयेके लिए वचन भी मिल गया है और कार्यंका श्रीगणेश हो चुका है।

इस भवनका एक उद्देश्य यह भी है कि हिन्दीमें वैज्ञानिक पुस्तकें छपायी जायँ, विशेष कर औद्योगिक विषयों पर।

यह सब कुछ बहुत सुंदर है, परन्तु एक बात खटकती है। कला भवनके संचालकोंने निश्चय किया है कि भवनसे प्रकाशित पुस्तकोंमें पारिभाषिक शब्द अंग्रेज़ी से ज्यों के-त्यों ले लिये जायँ। मेरी रायमें सब पारिभाषिक शब्दों को ज्यों-का-त्यों लेना लाभकारी नहीं है और भाषाके प्रति तो यह महान अन्याय है। बहुतसे पारिभाषिक और साहित्यिक शब्द एक दूसरेसे इस प्रकार हिल-मिल जाते हैं कि यह कहना कठिन हो जाता है कि शब्द पारिभाषिक है या साहित्यिक। उदाहरणतः परपेंडिकुलर शब्द लीजिये। यह ज्यामिति में पारिभाषिक शब्द है। हमारे हाई स्कूल पास, अंग्रेजी द्वारा ज्यामिति सीखे, बालकोंसे पूछा जाय कि इसकी हिन्दी क्या है तो वे न बतला सकेंगे। अंग्रेज़ी शब्द को ज्यों-के-त्यों लेने वाले कहेंगे कि इसकी हिन्दी जानने की आवश्यकता ही क्या है। परन्तु मैं उनसे कहता हूँ कि यह शब्द साहित्यिक भी है। कई अंग्रेज़ी उपन्यासोंमें यह शब्द मैं दिखला सकता हूँ। जब हमारे शिक्षित नवयुवक उपन्यास लिखने बैठेंगे तो क्या परपेंडिकुलर लिखेंगे ?

चलन-कलन (डिफरेंशियल कैलकुलस) के आरंभ में ही वेरी और वैरिएबुल शब्द आते हैं। ये क्या साहित्यिक शब्द नहीं है ? इनसे निकले लगभग चालीस शब्द जो विज्ञान या साहित्य के विविध विभागोंमें आते हैं– जैसे vary, variable, variability, variableness, variably, variance, variant, variation, (calculus of) variations, variational, variegate, variegated, variegation, variety, varietal, varietally, variform, variola, variolar, variolic, variolous, variolation, variole, variolite, varioloid, variorum, various, variously, variousness, invariable, invariability, invariableness, invariably, invariant, etc; covariant, etc., centravariant, etc.—उनका क्या होगा । क्या इन सबको, बिना अंग्रेजी जाने, स्मरण रखना सरल होगा ? क्या यही इच्छा है कि अंग्रेज़ी जाने बिना विज्ञान आये ही नहीं ?

कला भवन का उद्देश्य है मिस्त्रियों का तैयार करना, उनको काम सिखाना। क्या मिस्त्रियोंको सुशिक्षित बनाये बिना ही उनको मिस्त्रीगिरी आ जायगी। क्या उन्हें अपनी पाठ्य पुस्तक न पढ़नी होगी ? इन पुस्तकोंमें सैकड़ों (संभवतः हज़ारों) अंग्रेज़ी शब्द – पारिभाषिक शब्द रहेंगे। मिस्त्री बेचारेको अंग्रेज़ीका ज्ञान तो रहेगा ही नहीं। इन शब्दोंको वह कैसे, बिना समझे, सुगमतासे स्मरण कर सकेगा, या कैसे उनका उच्चारण करेगा ? उसके मुखसे तो वे शब्द वैसे ही विकृत हो जायँगे जैसे 'गेट-वे' का 'गुमटी' हो गया है; तब शब्दोंके अन्तर्राष्ट्रीयताका क्या रह जायगा ?

जिन्हें ऊपर की कठिनाइयाँ कल्पित जान पड़ें उन्हें साधारण हिन्दी पढ़े रामायण पढ़ और समझ सकने वाले – परन्तु अँग्रेजी ज़बान वाले, चार पाँच कारीगरोंको बुलाकर निम्न प्रयोग करना चाहिए। इन कारीगरोंको Dessication शुष्कीकरण, Detonation विस्फोटन, Deviation विचलन, Dimorphism द्वयरूपता; Discontinuity भंग, Dispersion वितरण आदि छः-सात शब्दोंके हिन्दी* और अंग्रेज़ी रूपों को अच्छी तरह समझा देना चाहिए और शब्दका ठीक ठीक अर्थ क्या है यह भी बता देना चाहिए। परन्तु लिख कर रटनेको कुछ न देना चाहिए फिर दो-तीन दिन बाद पूछना चाहिए कि Dessication, Detonation, Deviation, Dimorphism, Discontinuity, Dispersion आदिसे क्या समझ रहे हो। जो-जो उत्तर मिलें उन्हें टाँक लेना चाहिए। फिर उन कारीगरोंसे पूछना चाहिए कि शुष्कीकरण; विस्फोटन, विचलन, द्वयरूपता, भंग, वितरणसे क्या समझे।

आशा है ऐसी परीक्षा करने पर तुरंत पता चल जायगा कि अंग्रेज़ी शब्दोंके प्रयोगसे कारीगरोंका कितना समय केवल पारिभाषिक शब्दोंके सीखनेमें चला जायगा।

उन कारीगरोंसे इन शब्दोंका उच्चारण भी कराया जाय तो रोचक होगा।

मेरी राय तो यही है कि कम-से-कम बी०-एस-सी० तककी पढ़ाईमें आने वाले अधिकांश (लगभग ९० प्रतिशत) शब्दोंको शुद्ध हिन्दी रूपमें रखना चाहिए। केवल उच्च विज्ञानमें आने वाले साधारण व्यक्तियोंके लिए प्रायः बेकारके - शब्दोंको या साधारण बाज़ारोंमें बिकने वाली अंग्रेज़ी नामकी वस्तुओंके नामोंको या विशेष शब्दोंको (जैसे विदेशी पशुओं और पौधोंके नाम आदि को) ही ज्यों का त्यों लेना चाहिए। गो० प्र०

मान मन्दिर, बनारस

काशी नागरी प्रचारिणी पत्रिकाके कार्तिक १९९९ के अंकमें प्रोफेसर चंडी प्रसादका लिखा मान मंदिर पर एक लेख इतिहास है जो प्रत्येक ज्योतिष प्रेमी के लिए रोचक होगा। की दृष्टिसे अन्य पाठकोंको भी यह रोचक प्रतीत होगा।

* ये शब्द सब डाक्टर सत्यप्रकाशके कोषसे लिये गये हैं।

प्लीहजन्य पाण्डुरोग

[लेखक—प्रो० ब्रह्मदत्त शर्मा आयुर्वेदालङ्कार, आयुर्वेदाचार्य, वैद्य धुरीण, उपाध्याय, गुरुकुल आयुर्वेद महाविद्यालय, गुरुकुल कांगड़ी]

प्लीहजन्य पाण्डुरोग किसी अज्ञात प्रकृतिके विष द्वारा उत्पन्न वह रोग है, जिसमें उसी अज्ञात कारण से प्राथमिक प्लीहवृद्धि होकर विशेष प्रकारके रक्तगत परिवर्तन होते हैं तथा अन्तिमावस्थामें यकृत्की वातिक कठोरता (Cirrhosis) होकर कामला आदि लक्षण पैदा हो जाते हैं। इस सबमें इस रोगका काल बहुत ही लम्बा होता है। सन् १८८३ में प्रसिद्ध इटालियन विद्वान् बैण्टी ने इसकी अन्तिमावस्थाके बारेमें काफी खोज करके इसे प्रकाशित किया। इसलिये इस रोगको 'बैण्टी-व्याधि' नामसे भी पुकारा जा सकता है। यों १८६६ से इसका विभाजन व ज्ञान हो चुका है।

इस रोगमें जो प्लीहवृद्धि होती है, वह प्राथमिक रूपमें होती है—कोई रोग पहले हो चुका हो, जिसके कारण वह प्लीहवृद्धि हो रही हो, ऐसा स्पष्ट नहीं कहा जा सकता। इसलिये इस रोगका इस प्रकारसे अलग विवेचन किया जाता है। वास्तवमें तो किसी अज्ञात प्रकृति वाले विषके कारण प्लीहामें कार्यात्मक विकृति आ जाती है और रचनात्मक रूपमें भी उसके आभ्यान्तर तन्तुओंमें विकार उत्पन्न होकर प्लीहवृद्धि हो जाती है। फिर इस प्लीह विकृतिके कारण सहजात रूपमें पाण्डु रोग हो जाता है, जिसकी एक विशेषता तो यह है कि वह प्राथमिक रूपमें नहीं हुआ होता, और दूसरे उसमें श्वेताणुओंकी न्यूनता हो जाती है। बहुत लम्बे कोर्समें से गुज़रनेके बाद इस रोगके अन्तमें यकृतकी वातिक कठोरता हो जाती है, जिससे अथर्ववेदकी परिभाषामें, यह 'वाणिक् इन्द्र' रूप यकृत् शरीरके लिये अपना 'प्रपण-विक्रय-प्रतिपण' का त्रिविध उपकारक कार्य न कर सकनेके कारण कामला, जलोदर आदि लक्षण उत्पन्न हो जाते हैं।

इस रोगकी विशेषता यह होती है कि इसमें प्राथमिक रूपमें धीरे-धीरे प्लीहवृद्धि होती है, जिसके साथ-साथ प्रबल पाण्डुरोग होता है, अत्यन्त निर्बलता और शारीरिक कार्यक्षमता होती है। हृत्स्पन्दन तीव्र होता है रोग रूप में। साँस उथला और छोटा पड़ जाता है। कुछ ज्वर भी होता है। त्वचा व श्लेष्मकलामें से रक्तस्रावकी प्रवृद्ध प्रकृति होती है—विशेषतः आमाशय और आंतोंमें से तो बहुत अधिक, जिसके कारण रक्तवमन होती है। मूत्र मात्रामें बहुत थोड़ा आता है और गाढ़ा तथा गहरे पीले (लालसे) रंगका होता है (हारिद्र-माञ्जिष्ठ मेह) त्वचा पीली-सी पड़ जाती है। फिर अन्तमें यकृत्की अत्यधिक वातिक कठोरता हो जाती है, जिससे जलोदर, कामला आदि लक्षण हो जाते हैं।

थोड़ेमें, अन्य पाण्डुरोगोंके विपरीत इसमें प्लीहवृद्धि प्राथमिक होती है; पांडु सहजात; इस पांडुमें न तो रक्ताणुओंके आकारमें बहुत परिवर्तन होता है, नाहीं श्वेताणुओं में वृद्धि। सामान्यतः रंजक तत्व न्यून हो जाता है और श्वेताणुओंकी अतीव न्यूनता हो जाती है; अन्ततः यकृत्की वातिक कठोरता भी हो जाती है जिससे कामला, जलोदर आदि लक्षण भी आ बनते हैं। विशेषतया रक्तस्रावकी प्रवृत्ति होती है और रोगका काल अतिदीर्घ होता है।

प्लीहामें प्रारम्भिक वृद्धि होकर कठोरता हो जाती है तथा कार्य विकार हो जाता है। रंजक तत्व अपने रक्तरंजक कार्यसे विरत होकर प्लीहाकी बड़ी सेलोंमें तथा प्लीहा मज्जामें जाकर स्थित हो जाता है, जिससे पांडुके लक्षण प्रगट हो जाते हैं।

इस रोगके मूल कारणभूत उपर्युक्त विषकी प्रकृतिके बारेमें अभी तक कुछ विशेष ज्ञान नहीं प्राप्त हुआ है। तथापि आयुर्वेदीय दृष्टिसे यह समझा जा सकता है कि यह विष शरीरके अन्दर प्रतिक्षण हो रहे धातुपाककी अंगभूत विनाशात्मक प्रक्रिया (Katabolic function) के ही रूपमें बली वात और दूषित (रक्त आदि के द्वारा) पित्तका ही प्रतिनिधि होगा। इस दृष्टिसे पांडुरोगके निदानमें अष्टांग हृदयके निम्न वाक्य अत्युत्तम हैं—

"पित्तप्रधानाः कुपिता यथोक्तैः कोपनैर्मलाः ।
तत्रानिलेन बलिना क्षिप्तं पित्तं हृदि स्थितम् ॥
धमनीर्दश सम्प्राप्य व्याप्नुवत्स्यकलां तनुम् ।
श्लेष्मत्वग्रक्तमांसानि प्रदूष्यान्तरमाश्रितम् ॥
त्वङ्मांसयोस्तत्कुरुते त्वचि वर्णान्पृथग्विधान् ।
पांडुहारिद्रहरितान् ....॥"

(अष्टांग हृदय । निदान । १३।१—३।)

इसमें 'श्लेष्मा' का मुख्य तात्पर्य रस या लसीका लिया जा सकता है, जो कि श्लेष्माका महत्वपूर्ण स्थान है । साथ ही रक्तके द्वारा शरीरके रक्तभण्डार* अर्थात् प्लीहा पर इस विनाशक विषका दुष्प्रभाव होकर ही पांडुके लक्षण होना स्पष्ट होता है ।

अष्टांग हृदयमें के प्लीहोदरके लक्षण भी इस दृष्टिसे बड़े महत्वपूर्ण हैं—

"वामपार्श्वाश्रितः प्लीहा च्युतः स्थानाद्विवर्धते ।
(शोणितं वा रसादिभ्यो विवृद्धं तं विवर्धयेत् ।।)
सोऽष्ठीलेवातिकठिनः प्राक्ततः कूर्मपृष्ठवत् ।
क्रमेण वर्धमानश्च कुक्षावुदरमावहेत् ॥
पांडुत्वच्छर्दिमूर्च्छार्तिदाहमोहैश्च संयुतम ।
अरुणाभं विवर्णं वा नील हारिद्रराजिमत् ॥
उदावर्तरुगानाहैर्मोहतृड् दहनज्वरैः ।
गौरवारुचिकाठिन्यैर्विद्यात्तत्र मलान् क्रमात् ॥
प्लीहवद्दक्षिणात्पार्श्वात् कुर्याद्यकृदपि च्युतम् ।"

(अष्टांग हृदय । निदान । १२ अध्याय)

---

* अत्र प्रमाणानि -

१—'शोणितस्य स्थानं यकृत्प्लीहानौ ।'

(सुश्रुत । सूत्र० । अ० २१)

२—'द्वितीया रक्तधरानाम मांसस्याभ्यन्तरतः, तस्यां शोणितं विशेषतश्च सिरासु यकृत्प्लीह्नोश्च भवति ।'

(सुश्रुत । शारीर । अ० ४)

३—'जीवरक्ताशय इति जीवतुल्यं रक्तम्, तस्य आशयः स्थानं तच्च प्लीहा इति प्रसिद्धं हृदयस्य वाम भागा- श्रितं भवति ।'

(शार्ङ्गधर दीपिका – आढमल । आशय प्रकरण)

ठीक यही विवरण चरकके चिकित्सा स्थानके १३ वें अध्यायमें प्लीहोदरका वर्णन करते हुये दिया गया है ।

प्लीहामें के परिवर्तनोंके अतिरिक्त यकृत्में भी इस रोगके अन्तमें वातिक क्षीणता और कठोरता आ जाती है जिससे उसमें कार्य हीनता हो जाती है । साथ ही पक्वान्नको यकृत में ले जाने वाली वाहनियां (Postal Circulation) भी अवरुद्ध हो जाती हैं । रंजक तत्व यकृत्में न्यून हो जाता है या सर्वथा नष्ट ।

अस्थिमज्जामें से रक्तके रक्ताणु युवा हुये बिना ही बाहर आने लगते हैं ।

वृक्कोंमें भी वातिक कठोरता (Cirrhosis) के लक्षण हो जाते हैं ।

कारण—इसका स्पष्ट कारण अज्ञात है । कुछेक केसोंमें इस रोगके शुरू होने से पहिले विषम ज्वर (Malaria) हुआ होनेका इतिवृत्त लिखता है, जिसके कारण इस रोगमें विविध लक्षण बढ़ जाते हैं या नये पैदा हो जाते हैं, पर उस पूर्ववर्ती विषमज्वर को इस प्लीहा-जन्य पाण्डु रोगका कारण नहीं माना जा सकता । इस रोगकी अतीव जीर्णता और अंगों की कठोरता से, कोई जीर्ण या स्थायी विष इसका कारण है, ऐसा अनुमान होता है—पर वह केवल अनुमान ही है । इसमें पाण्डुसे पहले प्लीह-वृद्धि होनेका मतलब यह आता है कि रुग्ण प्लीहा के ही कारण यह पाण्डु होता है । और उपशय सिद्धान्त से, प्लीहा को काटकर बाहर निकाल देने पर अधिकांश रोगियों-में पाण्डुके लक्षण सुधर जानेसे भी यही सिद्ध होता है कि अवश्य रुग्ण प्लीहा ही इस रोग (विशेषतः, इस पाण्डु) का कारण है । संभवत प्लीहामें हुए रक्तविनाशसे बनी चीज़ोंका विकास ठीक न होनेके कारण यह रोग होता है । वस्तुतः प्लीहाकी कठिनता (Fibrosis), पाण्डु, अन्ततः यकृत्को कठोरता ये सभी किसी अज्ञात प्रकृति वाले विषसे होते होंगे । इस विषके कारण, पूर्वतः स्वस्थ (या कुछ विकृत) प्लीहा पुनः विकृत होकर अन्य अंगों को विकृत कर देती है, और इस विकृत प्लीहाके काट दिये जाने पर ये लक्षण भी कुछ शान्त हो जाते हैं । इस विष के कारण रौलसटन नामक परीक्षाके अनुसार प्लीहामें जीर्ण, संक्रामक और और विषात्मक प्रक्रिया होती है ।

क्षेत्र* यह रोग विरल या असुलभ नहीं है। किसी स्थान विशेष या जाति विशेषमें सीमित नहीं है। लिङ्ग-अधिकतर नरों में यह रोग होता है। आयुके बारेमें कुछ विचारकोंमें मतभेद है। अधिकतर यह रोग मध्यम आयु में होता है—प्रायः ३० वर्षके लगभग। युवा प्रौढ़ोंमें होता है। ऐसे, प्रसिद्ध कामचिकित्सक ओस्लर २० से ५८ वर्ष तक इसका होना बताते हैं, वैस्ट नामक विचारक ९ से ७२ वर्षकी आयुमें इसे मानते हैं। परन्तु बच्चोंमें यह प्रायः नहीं पाया जाता। यद्यपि इन पंक्तियोंके लेखक को गत ६ मासमें इस रोगके २ रोगी मिले, जिनमेंसे एककी आयु ५ वर्ष थी, तथा दूसरे की २ वर्ष। प्रथम बालक था, द्वितीय कन्या। कभी २ कई परिवारोंमें १ से अधिक व्यक्तियोंको भी यह रोग होता है, जिससे पारिवारिक प्रवृत्ति भी सिद्ध होती है।

सम्प्राप्ति—अज्ञात प्रकृति वाला विष आँतों, हृदय आदि द्वारा जज्ब होकर प्लीहा पर प्रभाव करता है जिससे प्लीहाकी अतिवृद्धि और कठोरता ('अष्ठीलावद्धनता'—चरक) हो जाती है। कुछेक विचारकों (यथा माइकेल क्लार्क) के कथनानुसार प्लीहामें का निकासी (Elimination) का कार्य हीन या न्यून पड़ जाता है जिससे विष शरीरमें (विशेषतः प्लीहा में) दुष्प्रभाव कर देता है। इसके अतिरिक्त तब मृत रक्ताणु भी प्लीहा में तथा बाद में यकृतमें जाकर क्षोभक प्रभाव कर देते हैं, जिसके कारण प्लीहा और यकृतमें निम्नलिखित परिवर्तन हो जाते है। इनके अलावा सहजात (Secondary) पाण्डु, तथा कुछेकमें अन्तमें यकृत्की वातिक कठोरता (Cirrhosis) हो जाती है। मुख्य परिवर्तन :—

प्लीहा— इसके बाह्य आवरण, अन्दरकी मज्जा तथा रक्तवाहिनी प्रान्तोंमें वातजनित रूक्षता, खरता, शुष्कता, कठिनता आदि लक्षण हो जाते हैं। पर इन लक्षणोंके साथ प्लीहाके अनावश्यक तन्तुओंकी अतिवृद्धि भी उपर्युक्त क्षोभक विषके कारण हो जाती है। अन्दरकी रक्तवाहिनियों में भी अतिवृद्धि और कठोरता हो जाती है। प्लीहामें स्थान स्थान पर रक्तस्राव हो जाता है। प्लीहा अपने समीप स्थित तन्तुओंसे संसक्त (adhered) हो जाती है।

कुछेकमें प्लीहापर हल्के-हल्के ग्रन्थिमय उभार भी हो जाते हैं, जो कि यकृत् पर भी पाये जाते हैं। इसके अलावा २५-२५ वर्ष पूर्व तकसे प्लीहाकी वृद्धि हुई होती है।

यकृत्—इस रोगके अन्तमें यकृत्की सशोषी कठोरता (Atrophic Cirrhosis) के साथ-साथ इसका परिमाण भी छोटा होता जाता है। लगभग वैसी ही अवस्था होती है जैसी कि मदात्ययके कारण हुई यकृतकी वातिक कठोरता (Cirrhosis) में होती है। इस रोगके सामान्य केसोंमें कभी-कभी यकृतमें कुछ रक्तरोध जीर्ण रूपमें होनेके कारण किंचित वृद्धि भी हो जाती है।

यकृत्की प्रतिवाहि सिरा (Postal Vein) में तथा प्लीहाकी प्लैहिकी सिरा (Splenic Vein) में चूनेको अधिकता होकर रूक्षता और संकोच हो जाता है। कभी कभी अन्त्रबन्धनी सिराओं (Mesenteric Veins) में भी यही लक्षण हो जाते हैं। शल्य पदार्थ (रक्त शल्य Thrombosis) भी इनमें आ रुकता है। इन कारणोंसे इनके रक्त संचारमें बाधा हो जाती है।

लसीका ग्रन्थियां—आकारमें बढ़ जाती हैं। विशेषतः अन्य भागकी वसामें छोटी-छोटी रक्त और लसीकाकी बनी गांठें पड़ जाती हैं।

अस्थिमज्जा—इसमें तीव्र पांडुके कारण शिशु रक्ताणु-तन्तुकी वृद्धि हो जाती है।

लक्षण-जीर्णता—यह इसका विशिष्ट लक्षण है। प्लीह वृद्धि ज्ञात होनेके बादसे रोगव्यक्ति (पांडु, यकृत्की वातिक कठोरता आदि) तक यह रोग बड़े लम्बे कोर्समें से गुज़रता है। ओस्लरके अनुसार यह काल ४ से १० वर्ष-का होता है, जेम्स और गौचरके अनुसार २५ वर्ष। वैस्ट यह काल ६ माससे २ वर्षका बताते हुये कहते हैं कि इससे लम्बा यह काल कभी-कभी ही होता है परन्तु इसके अन्तमें वे भी कहते हैं कि इन शीघ्रपाकी केसोंके बारेमें उन्हें भी सन्देह है।

सामान्यतः प्रारम्भमें प्लीहाकी अत्यधिक वृद्धि होती है। प्लीहाके चारों ओरके प्रदेशमें कुछ शोथकी प्रक्रिया

---

*क्षेत्र = देश देशस्तु भूमिरातुरश्च। आतुरस्तु खलु कार्य देशः। (तत्रायुर्बललिङ्गादि परीक्षा)।'—चरक। विमान। अध्याय ८।

होनेके कारण प्लीह प्रदेशमें पीड़ाकी अनुभूति होती है कुछ २ निर्बलता होती है और अजीर्ण के लक्षण होते हैं। रक्तमें रक्ताणु स्वस्थ रहते हैं, कभी-कभी श्वेताणुओंकी संख्या न्यून हो जाती हैं।

परन्तु रोग-व्यक्ति प्रायः द्वितीय अवस्थामें होती है, और तभी रोगीकी ओर ध्यान जाता है। इसमें प्लीहा-की काफ़ी वृद्धि हो जाती है और प्लीहा प्रायः नाभिसे नीचे पहुँच जाती है। पाण्डुकी शिकायत बहुत स्पष्ट हो जाती है। प्लीह-वृद्धिके कालमें कभी कभी प्लीह प्रदेश पर दर्दके दौरे भी आते हैं। उत्तरोत्तर, शारीरिक शक्ति न्यून हो जाती है, यद्यपि शारीरिक क्षीणता नहीं होती। साथ ही आमाशय और आंतोंके विकार होने लगते हैं—अजीर्ण, अरुचि, उबकाई, वमन, अतिसार आदि; और उनमें रक्त स्राव भी होने लगता है—जिससे रक्तवमन (Haematemesis) होती है। कभी २ यकृत की कुछ वृद्धि हो जाती है। इस रोगकी तीव्रावस्थाओंमें ज्वर होता है। रक्तमें रक्ताणुसंख्या तथा रञ्जक तत्वका परिमाण दोनोंकी न्यूनता हो जाती है, विशेषतः रञ्जकतत्वके परिमाण की। कभी-कभी नकसीर और रक्तपित्त (Purpura) के लक्षण भी होते हैं।

तृतीयावस्थामें सभी लक्षण उग्र हो जाते हैं। तीव्र पांडुके साथ यकृत्की वातिक कठोरता (Cirrhosis) भी हो जाती है। यकृतका परिमाण छोटा हो जाता है; प्रवृद्ध प्लीहा भी कुछ कम हो जाती है। यकृत-की इस स्थितिके साथ-साथ कामला और जलोदर हो जाते हैं; जिनकी समाप्ति प्रायः मृत्युके रूपमें ही होती है। यकृत्की वातिक कठोरता—कामला—जलोदर—ये तीनों लक्षण ही मिलाकर; वास्तवमें; सामूहिक रूपमें बैन्टी-व्याधि' कहलाते हैं। इनके अलावा, आमाशय और आँतों के लक्षण स्पष्ट रूपमें होने लगते हैं। वमन और रक्त वमन बहुत होते हैं। रक्तस्रावोंकी प्रवृत्ति बढ़ जाती है। पांडु भी बढ़ जाता है। शक्ति बहुत क्षीण हो जाती है, कृशता भी बहुत होती है—'बलमांसक्षयोऽधिकः।' रक्त-स्राव बहुत अधिक होता है। उपर्युक्त विषके रक्तद्वारा सारे शरीरमें संचार (Toxaemia) या प्रबल शान्ति के कारण अथवा अन्य किसी उपद्रवसे अन्तमें मृत्यु हो जाती है—प्रायः तीव्र पित्तसंचार (Cholaemia) के कारण भी मृत्यु होती है; जैसा कि लेखक के दोनों केसोंमें हुआ था।

रक्तमें परिवर्तन— रञ्जक तत्व न्यून होजाता है। रक्त-संचारमें युवाके बजाय शिशुरूप रक्ताणु घूमने लगते हैं। स्वस्थावस्थामें युवा रक्ताणु और स्वस्थ रंजक तत्व ही शरीरके अन्दर शुद्ध विष्णु-पदामृत (Oxygen) बाहरसे ले जाते हैं। पर इस रोगमें उन दोनों की ही विकृति हो जानेके कारण शरीरको अपनी आवश्यकतानुसार विष्णुपदामृतकी उतनी प्रचुर मात्रा नहीं मिल पाती, फलत: शरीर क्षीण बलमांस वाला, उत्साहहीन, तथा परिश्रान्त हो जाता है। रक्तमें श्वेताणुओं की भी संख्या न्यून हो जानेके कारण विष आदि शल्य पदार्थ निगृहीत नहीं हो पाते, फलत: शरीर उन विषोंके द्वारा घातक अव-स्थामें पहुँचा दिया जाता है।

प्रत्येक लक्षणके बारेमें कुछ अवधेय तत्व ये हैं—

प्लीह-वृद्धि— इस रोगमें प्लीहाकी वृद्धि इतनी अधिक होती है, जितनी कि अन्य किसी रोगमें नहीं होती। सामान्यतः उसका परिणाम नाभि तक बढ़ जाता है। प्रायः दाईं ओर पुरोर्ध्वनितम्ब कूट (Anterior Superior Iliac Spine) तक भी प्लीहा पहुँच जाती है। इस प्रकार वह मध्यरेखा को पारकरके उदरके दांयें भागको भी घेर लेती है—"प्लीहोदरे पुनः स एवाभि-प्रवृद्ध आवंक्षणं प्रसृतः प्रायः समग्रामपि उदरगुहामधिक-रोति" (प्रत्यक्ष शारीर २य भाग प्लीह वर्णन)। चरकके शब्दोंमें—

"तस्य प्लीहा कठिनोऽष्ठीलेवादौ वर्धमानः कच्छप-संस्थान उपलभ्यते, स चोपेक्षितः क्रमेण कुक्षिं जठरमग्न्य-धिष्ठानं च परिक्षिपन्नुदरमभिनिर्वर्तयति।"

(चरक। चिकित्सा० ।१३।३७।)

प्लीहा की आकारवृद्धिके साथ-साथ उसका भार भी बहुत बढ़ जाता है। शैलसटनके १२ केसोंमें प्लीहाका औसत भार लगभग २ सेर था, जो स्वस्थावस्थामें ३ छटाँक के लगभग होना चाहिए। बोवर्ड्सके परीक्षणोंमें यह वृद्धि ६। सेर तक आई है। सामान्यत: प्लीहा-रलक्षण पृष्ठ और

दृढ होती है। उसका किनारा तीखा होता है और प्लीहाखात (Splenic notch) आगे को होता है। प्लीहाकी वृद्धिसे उस अङ्गमें या प्लीहप्रदेशमें थोड़ा-थोड़ा ही दर्द होता है, केवल प्लीहाके चारों ओर शोथ होनेसे दर्द होता है। दबाने पर कुछ पीड़ा तथा कुछ भारकी ओर भरे हुए से (पूर्णत्व) की तकलीफ महसूस होती है। इस रोगमें सर्व प्रथम प्लीहवृद्धि होती है और पांडुकी अभिव्यक्तिसे बरसों पहले तक बनी रहती है।

पाण्डु—प्लीहवृद्धिके बाद ही होता है इस रोगमें। प्लीहवृद्धि के बाद कई वर्षों तक पांडु अव्यक्त रहता है या अतिन्यून होता है। प्लीहवृद्धिके बाद पांडु व्यक्त हो जाता है। इस रोगमें बहुतायतसे रक्तवमनके द्वारा रक्तक्षय होता है, यदि उस रक्तक्षयकी पूर्ति की शक्ति शरीरमें न हो तो यह अति तीव्र होता है।

यह पांडु प्राथमिक नहीं, अपितु सहजात है। इसमें रक्ताणुओंकी अपेक्षा रंजक तत्वका विनाश अधिक होता है, यद्यपि होती दोनों ही प्रक्रियाएँ हैं। रोगवृद्धि होने पर रक्तमें शिशु रक्ताणु आजाते हैं। श्वेताणुओंको संख्या भी न्यून हो जाती है।

रक्तवमन—इस रोगमें रक्तस्रावकी प्रवृत्ति हो जानेसे यह लक्षण होता है। यह रक्तस्राव सामान्यतः सारे शरीरमें होता है, विशेषतः आमाशयमेंकी सिराओंसे रक्तस्राव होनेके कारण रक्तवमन होती है; यों कभी-कभी आंतोंसे भी रक्तस्राव होता है, और त्वचामें भी सामान्य रक्तस्राव के धब्बे दृष्टिगोचर होते हैं। आमाशय और आंतोंमें यह रक्तस्राव यकृत्की वातिक कठोरता आदि किसी पेचीदे कारणसे नहीं होता, अपितु सामान्यतः प्रवृद्ध प्लीहाके दबावके कारण होता है। यह रक्तस्राव प्रभूत परिमाणमें होता है और विनिश्चित अन्तरों पर दौरोंमें होता है, कई वर्षों तक। इर्विङ् फ़िलिप्स लियोनके एक केसमें ११ वर्ष तक १ वर्षके अन्तरसे रक्तका १$\frac{1}{2}$ सेर तक निकला था।

यह रोग बहुत बढ़ जाने पर तथा पांडुके अन्य लक्षण भी प्रवृद्ध होने पर नक्सीर, शीताद (मसूड़ोंसे रक्त रिसना), नेत्रके पीतपटल से रक्तस्राव आदि भी होते हैं।

त्वचाका रञ्जन—त्वचा पर काँसेके रंगके विस्तृत धब्बे पड़ जाते हैं। कभी-कभी फौलाद जैसे धूसर रङ्गके भी होते हैं। कभी तो ये धब्बे पड़ जाते हैं और कभी विस्तृत रूपमें रंजन हो जाता है। त्वचामें रंगके इन धब्बोंके साथ-साथ कभी-कभी श्वेत कुष्ठ हो जानेसे इस लक्षणमें तीव्रता हो जाती है।

जलोदर—इस रोगकी अन्तिमावस्थामें यकृत्की वातिक कठोरताके कारण हो जाता है। इसके साथ पांडु भी होता है।

शोथ—गुल्फोंमें शोथ हो जाता है। पांडु व्यक्तिके बाद जलोदरके ही साथ यह लक्षण होता है।

कामला—हलके रूपमें हो जाती है। यह या तो यकृत्को वातिक कठोरताके साथ होती है और या फिर स्वतन्त्रतया रक्तसंचारमें पित्तके विकार रूपमें, 'कामला बहुपित्तैषा'। इसका कारण प्लीहाकी वृद्धि या दबाव होता है जिससे या तो पित्त वाहिनी पर दबाव पड़नेके कारण (Obstructive) अथवा प्लीहामें रक्ताणुनाशन और निकासीका समतुलन टूट कर (Haemolytic) यह द्वितीय कामला होती है।

अधिकांशमें यकृत्का परिमाण स्वस्थावस्था जितना होता है। हाँ, कभी-कभी इसका किनारा पसलियों से २-३ अंगुल नीचे तक अनुभूत होता है। अन्तिमावस्थाकी वातिक कठोरतामें यकृत्का परिमाण न्यून होजाता है।

पाचन विकार—भूख नष्ट हो जाती है, कब्ज़ में रहती है, कभी-कभी वमन-अतिसार होते रहते हैं; अन्नशूल आदि भी होते हैं।

हृदय- इसके शब्द पांडुके कारण मर्मरयुक्त हो जाते हैं। परिश्रमसे हृत्स्पन्द अति प्रबल होजाता है। अन्ततः थक कर हृदय विस्तृत हो जाता है।

मूत्र—इसमें कुछ २ मज्जामेहके से लक्षण हो जाते हैं, सफेद अल्ब्यूमिन आती है। कभी-कभी वृक्कशोथ भी हो जाती है।

तापमान- सामान्यतः नौर्मल रहता है। रोग बढ़ जाने पर दोपहर बाद १००° या अधिक होने की प्रवृत्ति होती है। कभी-कभी पूयज्वर की तरह तापमान अनियमित भी हो जाता है, जिसका कोई कारण नहीं बताया जा सकता।

रोगकाल और साध्यासाध्य— कई वर्षों तक रोगी अच्छी हालत में रहता है, काम काज करता है। कभी-कभी अवस्थामें सुधार या बिगाड़ अन्तरों पर होते रहते हैं। परन्तु रोग धीरे-धीरे बढ़ता जाता है।

इस रोगका साध्यासाध्य सामान्यतः बहुत बुरा है। रक्तस्राव, यकृत्की वातिक कठोरता, जलोदर आदि उपद्रवों के प्रारम्भ होने पर ही साध्यासाध्य मुख्यतः निर्भर करता है। प्रायः बहिष्णु नैर्बल्य हृदय जनित संन्यास (Syncope), रक्तस्राव, यकृत्की अशक्तता या संकमण से मृत्यु हो जाती है।

भेदक निदान—शुरूमें कर सकना प्रायः असम्भव होता है। सामान्यतः पाँडु के लक्षण स्पष्ट होने या प्लीहा के चारों ओर शोथके कारण पीड़ा अनुभव होने पर रोगीका ध्यान खिंचता है, और तभी वह वैद्यके पास आता है। उस समय इस रोगको अच्छी तरहसे पहचानना उतना कठिन नहीं होता। प्लीह-वृद्धिके साथ-साथ श्वेणुताओंकी रक्तमें न्यूनता होती है; जिसका कारण कोई पराश्रयी कृमियोंका आक्रमण नहीं होता।

अन्य सहजात (Secondary) पांडुओंके विपरीत प्लीहजन्य पांडुमें प्लीहाकी वृद्धि कहीं अधिक होती है।

घातक पांडुरोग (जिसका सम्भावित कारण आमाशय के मुद्रिकाद्वार (Pyloric orifice) के समीपवर्ती अन्तर्भागमें के घातक पांडु प्रतिरोधक तत्व या रसकी शक्ति हीनता है) में इस प्लीहजन्य पांडुरोग जैसी प्लीह-वृद्धि नहीं होती, यद्यपि पांडु प्रबलतर और तीव्रतर होता है।

निम्न रोगों से इसका निदान पृथक्करण अथवा 'नेति' विधि (Exclusive method) से किया जाता है :—

शुद्ध एवं प्राथमिक प्लीहवृद्धि—यह साधारण प्राथमिक प्लीह वृद्धि है, जिसके पहले कभी-कभी कोई रोग भी हुआ होता है। इस रोगकी अपेक्षा प्लीह जन्य पांडुमें अधिक पीलापन, कामला, जलोदर, अत्यधिक पांडु, अधिक व्यापी रक्तस्राव, तथा यकृत् और प्लीहाका अपेक्षया न्यूनतर परिमाण होता है, और रोगकाल भी इससे छोटा होता है।

यकृत् की वातिक कठोरता—इस रोग के साथ भ्रम होजाना बहुत सम्भव होता है, अतः सावधानी रखनी चाहिये।

फिरंग के कारण यकृत् को यह वातिक कठोरता (Cirrhosis) हो सकती है। उस अवस्थामें फिरंग रोग (Syphilis) का इतिवृत्त होता है और पांडु, कामला, जलोदर, रक्त वमन आदि लक्षण बहुत काफ़ी होते हैं, जो कि प्लीहजन्य पांडुमें पांडुकी केवल प्रवृद्ध अवस्थामें होते हैं। तथा उपशयसिद्धान्त से, यदि पारद द्वारा इन लक्षणोंमें सुधार हो तो भी फिरंगका ही निश्चय होता है।

यकृत्की इस वातिक कठोरता के साथ-साथ कठिनता भी कभी-कभी होती है, (यथा मदात्यय से), जिसमें प्लीह वृद्धि भी कुछ-कुछ होती है। इसमें मदात्यय का इतिवृत्त मिलता है। अति पांडु नहीं होता। यकृत्का परिमाण न्यून होता है। यकृद्विकृतिके कारण पाचन आदिमें विकार तथा सर्वशरीरगत लक्षण होते हैं। प्लीहाकी वृद्धि यकृत्के परिवर्तनोंके बाद मदात्ययमें होती है।

कभी २ यकृत को इस वातिक कार्यक्षीणताके साथ २ यकृत्की कुछ अतिवृद्धि भी होती है। यह अवस्था मुख्यतः छोटी आयु में होती है। यत्कृवृद्धि बहुत पुरानी और स्पष्ट होती है। प्लीहाकी वृद्धि खूब होती है। शरीर पर देर से सफेद धब्बे हुए होते हैं। रक्तस्रावकी प्रवृत्ति होती है। रक्तमें श्वेताणु बढ़ जाते हैं। ज्वर भी होता है। प्लीहजन्य पांडुसे इसमें भेद यह है कि इसमें यकृत्का परिमाण वृहत् होता है, यकृत् दृढ़ और श्लक्ष्ण पृष्ठ वाला होता है, यकृत् की अतिवृद्धि दीर्घकालीन होती है; जीर्ण कामला होती है, यकृत और पित्तके लक्षण सामान्यतः प्रबल होते हैं, प्लीहवृद्धि भी उतनी नहीं होती।

कभी-कभी यकृत्की वातिक कठोरता, यकृत्वृद्धि, रक्तरंजकतत्वाधिक्य (Haemochromatosis) ये सभी लक्षण होते हैं। यह रोग बहुत पुराना होता है। अङ्गों व त्वचामें लोहमय रंजकतत्व का संचय और निक्षेप हो जाता है। इससे यकृत् में तथा प्लीहा और अग्न्याशय

में रूक्षता, शुष्कता, कठिनता आदि वातिक लक्षण हो जाते हैं। इस पुरातन रोगकी हलकी हलकी क्षुब्धावस्थाके कारण यकृत्में तथा कुछ-कुछ प्लीहामें अतिवृद्धि भी हो जाती है। त्वचाका रंग कांस्यवत् हो जाता है। अन्तमें मधुमेह हो जाता है। यकृत् और प्लीहाकी वृद्धि साथ-साथ होती है। कुछ-कुछ पांडु भी होता है।

कभी २ यकृत्की वातिक कठोरताके साथ २ शिशुओंमें प्लीहवृद्धि भी होती है। इस रोगसे भेद करना कुछ कठिन होता है। इस रोगमें प्रायः पांडु, या यकृत्की वातिक कठोरता होना सर्वथा आवश्यक भी नहीं होता। इस रोगमें प्लीहजन्य पांडुकी ही तरह अन्तमें जलोदर, कामला, आमाशय रक्त स्राव आदि लक्षण होते हैं। तथापि, कुछ भेदक लक्षण भी होते हैं। यथा, यह रोग शिशुओंमें ही होता है। पारिवारिक प्लीहवृद्धि मिलती है। इसके अतिरिक्त सूखारोग (Rickets), फिरंग, शीताद (Scurvy), बालशोष आदिका इतिवृत्त मिलता है।

कालज्वर—इससे भेद करना आसान है। अतः इस रोग (Kala-azar) में निवास प्रदेश, इस रोगका वातावरण आदि द्वारा स्पष्ट भेद हो जाता है। और यकृतमें से निकाले रक्तमें से इस ज्वरका पराश्रयी भी मिल जाता है।

संक्षेपतः, सैविलके शब्दोंमें प्लीहवृद्धिसहित यकृत की वातिक कठोरता के जिस रोगी में लोह की चिकित्सा द्वारा रक्ताणुओं की संख्या और रक्त रंजक तत्वके परिमाणमें शीघ्रतासे वृद्धि होती जावे, वह कभी प्लीह जन्य पांडु रोग नहीं हो सकता।

चिकित्सा—इसकी चिकित्सा बड़ी टेढ़ी है। यों, लघु-सामान्य सुपच भोजन देना चाहिए। प्रायः लाक्षणिक चिकित्सा की जाती है। संखिया बहुत लाभदायक सिद्ध हुआ है। कुनीन देनेसे प्लीहवृद्धि और पांडु दोनोंमें लाभ होता है। दोनों को ही दिया जाता है। गोदन्ती भस्म उत्तम है। लोहके योग अत्युत्तम हैं। सामान्यतः तीनोंसे इस रोगके विभिन्न लक्षणोंमें न्यूनता होती है।

आयुर्वैदिक दृष्टिसे, कुटीप्रावेशिक विधि ही उपयोगी सिद्ध होती है। इस रोगका मूलकारण अज्ञात प्रवृत्ति वाला विष पित्तकी ही श्रेणीमें रक्खा जा सकता है। पित्त की शान्ति विरेचन द्वारा ही होती है—जिससे मलरूप पित्त और उपर्युक्त विष भी बाहर निकल जावेगा। एतदर्थ ४-५ माशे की मात्रा हरीतकी-चूर्णको पञ्चतिक्तगुग्गुलघृतके अनुपानसे देना चाहिये। इस घृतसे वात-पित्तकी शान्ति होगी। इसके अतिरिक्त पित्तके विशेष रूपसे शमनके लिये त्रिफला, त्रिवृत्त, कटुकी, चिरायता, बांसा, नीम, गिलोय, मुस्ता, हरिद्राद्वय, धमासा, पर्पटक, पटोल आदिमें से २-३ का कषाय या चूर्ण रूपसे प्रयोग करें। चक्रदत्तके विशालादिचूर्ण को कल्याणकघृत, पञ्चव्यघृत या महातिक्त घृतसे लेनेसे लाभ होता है। हारिद्रघृत (हरिद्रा-त्रिफला-निम्ब-बला-मधुयष्टि आदिसे साधित) भी उत्तम अनुपान है। धात्र्यरिष्ट—अभयारिष्ट—उशीरासव—चन्दनासव-रोहीतकारिष्ट आदिमें से किसी एक को अवस्थानुसार भोजनके आधा घंटा बाद लेना चाहिये। लोहासव भी उत्तम है। किराततिक्तादिलोह (अष्टादशांग लौह), नवायसलोह, मण्डूरवटिका, त्रिफलालोह, योगराज (चक्र०। पांडुरोगाधिकार), पुनर्नवामण्डूर, धात्रीलोह, आमलक्यादि-लोह, वज्रवटकमन्डूर में से आवश्यकतानुसार एक योगको द्राक्षाघृत से ले सकते हैं।

प्लीहाके लिये उपर्युक्तके अतिरिक्त लोकनाथ रसअर्क लवण (भावप्रकाश) को चक्रदत्त के पिप्पलीघृत, चित्रक-घृत या महारोहीतक घृतसे ले सकते हैं। पलाशक्षारसे साधित पिप्पलीको अथवा शरपंख मूलकल्कको तक्रसे लेना चाहिये। यमानिकादि चूर्ण उत्तम है।

आम्रकल्प करना चाहिये। भावप्रकाश की विधिसे पके आमके रसमें मधु (क्षौद्र) मिलाकर लेनेसे लाभ होता है। आवश्यकतानुसार सुश्रुतोक्त विधि (सुश्रुत। शारीर। ८) से वाम बाहुके कूर्पर प्रदेशमें आगे की अन्तर्बाहुका, मध्यबाहुका और बहिर्बाहुका (Basilic, Median, Cubital and Cephalic) इनमें से किसी सिरा द्वारा रक्तमोक्षण करना चाहिये।

पांडुके साथ २ जलोदर और शोफके भी लक्षण होते हैं। सामान्यतः उपर्युक्त विरेचनसे उनमें कुछ सुधार हो जाता है। आवश्यकता पड़ने पर और भी त्रिफलारेचन देना चाहिये। पुनर्नवाष्टक कषायसे भी विरेचन होते हैं।

गोमूत्र पिलाना चाहिये। वर्द्धमान पिप्पलीका प्रयोग उत्तम है। बला अश्वगन्धा आदिके योग लोह-मांडूर आदिके साथ देने चाहिये।

सामान्यतः स्वच्छ वायुका सेवन कराना चाहिये। रम्य स्थान और रम्य वातावरण होना चाहिये। रम्य परिस्थितियोंसे स्वास्थ्य सुधारनेमें बड़ी सहायता मिलती है। आवश्यकतानुसार परिमाणमें लघु-सादा और सुपच भोजन देना चाहिये। खटाई-मिर्च-मसालों-तेल गुड़ आदिसे परहेज़ रखना चाहिये। वातिक शक्ति बनाये रखनेके लिये बसन्त कुसुमाकर, बृहद् वात चिन्तामणि, च्यवनप्राशादिका सेवन करना चाहिये।

इन सबसे आशाजनक लाभ न होने पर ऐक्स-रे या रेडियम-रे का प्रयोग कराना चाहिये—उससे बहुत लाभ होता है।

परन्तु, अन्तिम सहारा तो है शल्यकर्म– जिसमें प्लीहा को काटकर निकाल दिया जाता है। इससे अधिकांश में लाभ होता है। यद्यपि कभी-कभी घातक रक्तस्राव आदिसे तब भी बादमें मृत्यु होजाती है।

इमलीके बीजोंका कलफ

'इंडियन टेक्सटाइल जर्नल' में हालमें ही प्रकाशित एक लेखको वन्य अनुसन्धानशाला ने अपनी भारतीय वन्य पुस्तकमालामें उद्धृत किया है। इसमें बताया गया है कि सूतमें कलफ देनेके लिये अब इमलीके बीजोंका उपयोग किया जा सकेगा और इस प्रकार खाद्यके लिये अत्यावश्यक वस्तुओंसे बनाये जाने वाले मांडकी आवश्यकता नहीं रहेगी। मिलों द्वारा किये गये परीक्षणोंसे ज्ञात हुआ है कि इस कार्यके लिये अब इन बीजोंका केवल युद्धकालमें ही नहीं वरन् सदैव उपयोग किया जायेगा। अभी तक भारतमें इमलीका तो बहुत उपयोग किया जाता था परन्तु बीज किसी काम नहीं आते थे।

अमरस-उद्योगके लिए व्यापक क्षेत्र

इंडियन फार्मिङ्ग पत्रिकामें डा० डब्ल्यू बर्न्सने अपने एक लेखमें हरी तरकारियोंके बीज पैदा करने के सम्बन्धमें कई सुझाव प्रस्तुत किये हैं। बहुत सी वस्तुओंका आयात बन्द होजाने से हरी तरकारियाँ बोनेके लिए इस समय बीजोंकी आवश्यकता तो है ही, किन्तु युद्धके बाद भी यह उद्योग राष्ट्रके लिए बहुत लाभदायक सिद्ध होगा। डा० बर्न्सने आगे चलकर बताया है कि कृषक किस प्रकार बन्द गोभी, गाजर, सलाद, चुकन्दर, शलजम, प्याज, टमाटर, बैंगन तथा अन्य ऐसे बीज जिनके पैदा करनेमें कठिनाई होती है, पैदा कर सकता है।

एक दूसरे लेखमें बताया गया है कि किस प्रकार निम्नकोटिके आमोंसे, जिनकी मांग नहीं होती, अमरस तैयार किया जा सकता है। लायलपुर में जो प्रयोग किये गये हैं उससे पता चलता है कि अमरस रुचिकर, स्वास्थ्य-वर्धक तथा स्फूर्तिदायक पेय है और इसके व्यवसायके लिए भारत तथा भारतसे बाहर व्यापक क्षेत्र है। २४ औंस की बोतल पर लगभग ८ आने लागत आती है।

— भारतीय समाचार

सागवानकी लकड़ीके देशी साधनों का संगठन

हाल ही में देहरादूनकी वन्य अनुसन्धानशाला ने एक पुस्तक प्रकाशित* की है, जिसमें सागवान की लकड़ीके पौधों को लगाने, उनके बढ़ाने और रक्षा करने की कला सम्बन्धी उन्नतिका उल्लेख किया गया है।

बहुत समयसे ऐसा जान पड़ता था कि अन्तोगत्वा भारतमें प्राकृतिक सागवानकी लकड़ीका अभाव हो जाना अनिवार्य है। इस कमी को पूरा करनेके लिये सागवानकी लकड़ीके पौधे क्रमशः बढ़ते हुए परिमाण पर लगाये गये हैं। सबसे पहले १८४२ में आजसे एक शताब्दि पूर्व मदरासमें नीलाम्बर नामक स्थान पर ये पौधे लगाये गये थे। लागत ख़र्चकी अपेक्षा इनसे कई गुना अधिक लाभ हो चुका है।

उसी समयसे पंजाब और सिन्धके अतिरिक्त सभी प्रान्तों और बहुत सी रियासतोंमें भी ये पौधे लगाये गये है। इस समय देश भरमें २,००,००० एकड़से ऊपर सागवानके बगीचे हैं और प्रतिवर्ष ६,००० एकड़से अधिक भूमिमें नये पौधे लगाये जा रहे हैं।

---

* भारतीय वन्य पुस्तक (नयी ग्रन्थमाला) पौधे लगाने की कला, ग्रन्थ ५, संख्या २, ए०-एल० ग्रीफिथ द्वारा।

तांबा

[लेखक—श्रीयुत प्रेमकृष्ण श्रीवास्तव, एम० एस-सी०]

ताँबा पृथ्वीमें प्रायः विभिन्न पदार्थोंके मिश्रणमें पाया जाता है। प्रायः ताँबेके खनिजोंके जो वर्ग मिलते हैं, उन्हें रसायन-विज्ञान द्वारा पांच कोटियोंमें विभाजित किया जा सकता है, जैसे :—

१ विशुद्ध ताम्र (Native Copper)।

२—ताँबेके ऑक्साइड (Oxides of Copper)।

३ ताँबेके कॉर्बोनेट (Carbonates of Copper)।

४—ताँबेके सलफेट (Sulphates of Copper)।

५ – ताँबेके सलफाइड (Sulphides of Copper) इनके अतिरिक्त तांबेके और भी खनिज मिलते हैं जिनमें तांबा, संखिया या ऐन्टीमनी-या सेलीनियम या टेलूरियम या प्लेटिनम से मिला हुआ होता है। भूगर्भ शास्त्रमें तांबेके खनिजों को, उनके उद्भवके अनुसार, दो भाग किये गये हैं :—

१ - प्राथमिक खनिज।

२ द्वैत खनिज।

प्राथमिक खनिजमें अधिकतर गंधकाश्रित ताम्र होता है; जैसे सोना मक्खी (Chalcopyrite)। इसमें तांबा ३४-५०% के अनुपात से रहता है। यह सुनहरे पीले रंगका होता है। कभी कभी इसमें सोना चाँदी सेलिनियम और प्लेटेनिम भी मिला रहता है।

बोर्नाइटमें तांबा ५५-५% के अनुपातसे विद्यमान रहता है। एनगीदूरमें तांबा ४८-३% के अनुपातसे होता है तांबेकी खानोंमें इन तीनोंमें से एक, दो या तीनों पाये जा सकते हैं। इन सबोंमें गंधक और थोड़ा संखिया भी होता है।

द्वैत खनिज चैलकोसाइट (Chalcocite) में ७६·८%, क्यूप्राइट (Cuprite) में ८८-८%, मैलेकाइटया एज़्योराइट (Malachite, azurite) में ५५% सच्चा ताँबा रहता है।

ताँबेका प्राथमिक खनिज एसिडिक पैगमेटाइट (Acidic Pegmatite) में से अलग होकर बनता है। किन्तु कभी-कभी ऐण्डेसाइट परफायरी (Andesite Porphyry) के साथ भी सलफाइड ताम्र पाया जाता है। इसलिये तांबा एसेडिक और बेसिक सब प्रकारको अग्नेय शिलाओंमें पाया जाता है। यहां यह नहीं समझना चाहिये कि प्राथमिक खनिज इन अग्नेय पाषाणद्रवके ठंढे होनेसे बनता है। वरन् जब ये पाषाण-द्रव पृथ्वीके अन्तस्तलमें, परिवर्तित शिलाओं की दरारोंसे होकर, ऊपर को चढ़ते हैं, तब उसमें जो पानीका अंश रहता है, उसमें तांबा मिल जाता है। जब पाषाण-द्रव ठंढे होने लगते हैं तब सलफाइड तांबेका घोल दरारोंमें हो करके परिवर्तित शिलाओंके कुछ भाग को हटाकर उसके स्थान पर जाकर जम जाता है।

प्राथमिक खनिज पर जब ऑक्सीजन और जलकी प्रक्रिया होती है तो ताँबेके खनिज घुल करके दरारोंमें होकर पृथ्वीमें प्रविष्ट हो जाते हैं और वह उतने नीचे जाकर जम जाते हैं जितने नीचे पर पानीका सोता मिल जाता है और कुछ प्राथमिक खनिजका अंश भी होता है। इस प्रकार सलफ़ाइड द्वैत खनिज बनता है। प्रायः यह अधिक परिमाणमें होता है। प्राथमिक खनिजका वह भाग जो पानीमें नहीं घुलता अधिकतर सलफ़ाइड ताम्र और क्लोराइड ताम्र (Chloride of Copper) बन जाता है। इस स्थान पर जो लोहेका अंश होता है वह भूरे रंगका लिमोनाइट बन जाता है। ये खनिज हरे या नीले रंगके होते हैं। इन दोनों स्थानोंके बीचमें विशुद्ध ताम्र या ऑक्साइड ताम्र मिलता है। इसलिये यदि पृथ्वीके ऊपर कहीं क्लोराइड ताम्र और ऑक्साइड ताम्र और लिमोनाइट मिले तो समझना चाहिये कि उस स्थान पर पृथ्वीके गर्भमें कहीं सलफ़ाइड ताम्रका द्वैत खनिज अवश्य है। यदि कहीं अग्नेय शिलाओंके साथ टूरमलीन, एपेटाइट, फ्लोराइट और सोडियम फ्लेजियोक्लेस मिले तो सलफ़ाइड ताम्रके पाये जानेकी अधिक संभावना रहती है।

ये सब खनिज रवादार होते हैं। इनके रवों की रूप रेखाका वर्णन नीचे दिया जाता है :—

विशुद्ध ताम्र चतुर्विंशात्मक घन (Cubic Tetrhexahedron), ऑक्साइड ताम्रके अष्टात्मक घन (Octahedron) या द्वादशात्मक घन (Dodecahedron), सलफाइड ताम्रके आरथोरम्बिक (Orthorhombic) बोर्नाइटके घन (Cubic), सोना मक्खीके टेट्रगोनल सिस्टमके रवे बनते हैं। जितने प्रकारके ताँबेके खनिज मिलते हैं उनमें अधिक मात्रामें सलफाइड ताम्र होता है। अतः ताँबेका कारखाना खोलने में ऐसे खनिज अधिक लाभप्रद होते हैं। इसमें तांबेका अंश भी अधिक होता है और जो गंधक निकलता है वह तेज़ाब बनानेके काममें लाया जा सकता है। भारतवर्षमें कहीं वैसे गंधकके पहाड़ नहीं हैं जैसे इटली, जापान, संयुक्त राष्ट्र (लूसियाना, टैक्सस) इत्यादि स्थानोंमें हैं। इसलिये यदि यहां पर सलफाइड ताम्रसे, ताँबेके साथ-साथ गंधकका भी उपयोग किया जाय तो गंधकका अभाव दूर हो सकता है।

विशुद्ध ताम्र फ्लक्स (Flux) के साथ मिला कर गला देनेसे कुछ साफ़ हो जाता है। ऑक्साइड ताम्र और कार्बोनेट ताम्रको पक्के कोयलेके साथ तपाकर साफ़ किया जाता है। परन्तु गंधक ताँबा और लोहा मिश्रित खनिजको इस रीतिसे नहीं साफ़ कर सकते क्योंकि गंधकको ताँबेसे लोहेकी अपेक्षा अधिक प्रेम है। आजकल पहले ताँबेके खनिज को खूब तपाया जाता है। फिर इसमें कोक या ऐन्थ्रासाइट कोल और एक सिलिका मिश्रित पदार्थ मिला करके ब्लास्ट फर्नेसमें ऊपरसे छोड़ा जाता है और उसके नीचे खूब गर्म हवा, (८००°से०) कई छिद्रों द्वारा धौंकी जाती है। ये छिद्र ब्लास्ट फर्नेसमें नीचेकी तहसे कुछ ऊपर बगल में चारों तरफ होते हैं। इस ढङ्गसे ताँबे गंधक और लोहेका एक सान्द्र (Concentrated) मिश्रण रह जाता है जिसे मेट (Matte) कहते हैं। इस मेट के ऊपर मैलकी एक झाँई होती है जिसमें लोहा और सिलिका जो ताँबेसे अलग हुआ है, मिला रहता है। इसे एक छिद्र द्वारा अलग करके नीचेके छिद्रसे मेट को भी निकाल लेते हैं। इस मेटको बैसिमर कनवर्टरमें डालकर, गर्म हवा छिद्रों (Tuyeres) द्वारा धौंकते हैं। इसमें गंधक, ऑक्साइड बनकर उड़ जाता है। संखिया और एण्टीमनी भी उड़ जाते हैं। लोहेका अंश फिर झाँई बनकर अलग हो जाता है। यदि इस ताँबेको पिघला कर इसमें बोरोन और ताँबेका मिश्रण डाल दें तो यह ऑक्सीजन नाइट्रोजन तथा गंधक सबको अलग कर देगा।

यदि किसी खनिजमें ताँबा कम है तो दूसरी क्रिया द्वारा ताँबा निकाला जा सकता है। इनको या तो पहिले ठंढे फैरिक सलफेट के घोल (Ferric Sulphate) में मिला देते हैं जिससे कॉपर सलफेट बन जाता है। इसमें छोटे-छोटे लोहेके टुकड़े डालने से ताँबा अलग हो जाता है, या इस खनिजमें १०% से १५% तक नमक मिलाकर खूब तपाते हैं जिसमें कॉपर क्लोराइड बनता है। इसको पानीमें घुलाकर लोहेके टुकड़े डाल देते हैं।

किसी भी ढङ्गसे तांबा निकाला गया हो उससे सच्चा तांबा बनानेके लिये एक रीति यह है कि इस गंदे ताँबे को गलाकर चौखूँटा लम्बा पत्तर बना लेते हैं। फिर संख्यामें ये जितने हों उनसे एक कम सच्चे तांबेकी पतली पत्तर इसी नापके लगभग बना लेते हैं और इन पर ग्रेफाइट पाउडर लगा देते हैं। तत्पश्चात् एक बड़ी चौकोर नाँद बनाकर उसके ऊपर दो ताँबेके छड़ लम्बाईमें रख देते हैं। इस नाँदको नीले थोथेके घोलसे भर देते हैं। एक छड़ पर असली ताँबेके पत्तरों को ऐसे लटका देते हैं कि दो गन्दे पत्तरोंके बीचमें एक सच्चे ताँबेका पत्तर रहता है। जिस छड़ पर गंदे ताँबेके पत्तर लटके हैं उसमें विद्युत-शक्ति प्रवेश करायी जाती है। इन पत्तरोंके नीचे कुछ पदार्थ जम जाता है जिसको इकट्ठा करके (Cupellation) सोना या चाँदी निकाला जाता है।

ताँबा बहुत सी चिड़ियोंके रंगीन परोंमें होता है और कटिल फिशके रक्तमें भी जो हेमोसाइबिन होता है वह उसी प्रकार पाया जाता है जिस प्रकार हवामें साँस लेने वाले जीवोंके रक्तके हेमोग्लोबिनमें लोहा पाया जाता है। उच्च कोटिके जीवों पर ताँबेका कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ता किन्तु साधारण जीव ताँबेकी किसी भी घोलमें जीवित

नहीं रह सकते। कॉपर सलफेट के हलके घोल को पौदोंकी जड़में छोड़ने से दीमक इत्यादि मर जाते हैं। यदि खड़ियाके साथ मिलाकर आलू पर छिड़क दिया जाय तो वह सड़ नहीं सकता।

खनिजमें से ताँबा ४००० ई० पू० मिश्रमें निकाला जाता था। तांबा और टिनका मिश्रण २५०० ई० पू० में भी बनायें जानेका प्रमाण मिलता है। भारतवर्षमें मोश्राबानी बिहार) और मध्यप्रान्तमें २००० ई० पू० की खानें भी मिलती हैं जिनके आस पास बहुत सी झाँई (Slag) भी मिलती है।

ताँबेकी खानें सिंध, उड़ीसा को छोड़ सभी प्रान्तोंमें किसी न किसी रूपमें पायी जाती हैं, जैसे—आसाम, अलवर स्टेट बूँदी, मध्य प्रदेश, दार्जिलिङ्ग गढ़वाल, हजारीबाग, पालामऊ मानभूमि, सिंहभूमि तथा झाँसी इत्यादि। परन्तु इन सबमें वर्तमान समय में सिंहभूमि (विहार) में सबसे बड़ी खान पायी गई है जिसको मुख्य खनिज सोना मक्खी है। यहाँ पर जैनियोंने २००० ई० पू० में ताँबा निकाला था। सिंह भूमिमें ताँबेकी खानें २ फुट से लेकर ८ फीट तक मोटी हैं। हजारी बागमें बड़ागोंडाके पास भी बड़ी खाने मिलती हैं। इसके अतिरिक्त और दूसरे स्थानों पर जो खानें हैं उनमें क्लोराइड कार्बोनेट और कुछ सलफाइड ताम्र भी मिलता है। परन्तु इनमें ताँबा कम होनेके कारण उपयोगमें नहीं लाया जा सकता।

भारतमें सीसे और बौक्साइटकी खानें अलूमीनियमके उत्पादनकी बाधाएँ दूर हो गयीं

वैज्ञानिक और औद्योगिक अनुसन्धानकी पत्रिकाका नवीनतम अंक (खंड १ सं० ३) हाल में ही प्रकाशित हुआ है। इस अंकके दो रोचक लेखोंमें फोटो चित्र उतारनेकी दो प्रकार की प्लेटें बनानेके मसालोंको भारतमें तैयार किये जानेकी सम्भावनाओं पर विचार किया गया है। अन्य टेक्नीकल लेखोंमें इन विषयों पर प्रकाश डाला गया है; भारतमें सीसे और बौक्साइट की खानें, रेंडीके तेलका औद्योगिक उपयोग, विजगापट्टम और गोदावरी ज़िलेकी बर्तन बनानेको मिट्टियोंका पर्यवेक्षण और भारतमें शक्कर उद्योगके उत्थान और उन्नति का व्यापक सिंहावलोकन।

भारतमें कच्चे सीसेके उत्थान और गलाने पर, इसके उपयोगों, पाये जाने और शोधन करने की अवस्थाओं और मूल्य निर्धारण पर भी एक लेखमें प्रकाश डाला गया है। बर्माके भारतसे अलग कर दिये जाने और फिर उसके शत्रु के अधिकारमें चले जानेके बाद भारतमें सीसेके उद्योग को फिरसे चालू और उन्नत करना आवश्यक हो गया है। भारतमें सीसेके प्रचुर साधन है और भारतीय भूगर्भ पर्यवेक्षण विभाग की उपयोग शाखाने इस सम्बन्धमें पर्याप्त खोज की है। यह खोज उदयपुर राज्यके विषय में विशेष रूप से की गयी है और उसका अच्छा परिणाम निकलने की आशा है।

बौक्साइट के सम्बन्धमें जो लेख है उसके भौतिक और रासायनिक गुणों, पाये जाने की अवस्था उत्पादन, उपयोग इत्यादिके विषयमें विचार किया गया है। इस वस्तुका सबसे महत्वपूर्ण उपयोग अल्यूमीनियम धातु तैयार करनेमें होता है। भारत की बौक्साइट की खानें उतनी ही विशाल और उत्कृष्ट है जैसी कि संसारके किसी भी अन्य देशकी। भारतीय बौक्साइटके साधनों का अनुमान प्रायः २ ५०० लाख टन है और इसमें अच्छी श्रेणी का बौक्साएट अलूमीनियम बनाने के पूर्णतः उपयुक्त है। अलूमीनियमके उत्पादनमें जो बाधाएँ थीं, अब वे दूर हो गयी हैं। त्रावन कोर राज्यके अलवाये स्थान पर अलूमीनियमके कारखानेने उत्पादन करना आरम्भ कर दिया है। भारतमें आलूमीनियमके और भी बहुतसे कारखाने चलाये जानेके लिए भविष्य बड़ा उज्वल है। इस बहुमूल्य धातुके विषयमें भारत को आत्मभरित बनानेके लिए पर्याप्त कच्चा माल और शक्तिके साधन उपलब्ध हैं।

शक्कर उद्योग

पत्रिकाके इसी अंकमें की आर० सी० श्रीवास्तव ओ० बी० ई० का भारतमें शक्कर उद्योगकी उन्नति पर एक गवेषणापूर्ण सिंहावलोकन प्रकाशित हुआ है जिसमें भारत में बनायी जाने वाली शक्करके गुण, शक्कर के कारखानों की टैक्निकल प्रवीणता, उत्पादनोंका उपयोग और गन्ने की खेती जैसे महत्वपूर्ण विषयों पर विचार किया गया है कानपुर की राजकीय शक्कर अनुसन्धानशाला की इंजीनियरी और रासायनिक शाखाओंके कार्यों का भी इस लेखमें उल्लेख किया गया है। — भारतीय समाचार

गोंद

(लेखक—श्रीयुत विद्यासागर विद्यालंकार)

बबूल आदि पौधों के स्यवन से एक पदार्थ प्राप्त होता है जो दानेदार तथा गोल. और कभी २ आंसूके समान नीचे से अण्डाकार और ऊपर से नोकदार होता है। इस का परिमाण निश्चित नहीं पाया जाता। रंग लगभग नीरंग अथवा पाण्डु, दोनों के अन्दर उपस्थित छोटे २ फटावों के कारण प्रायः अपारदर्शक. नोकदार अंश चमकदार और भंगुर होता है। इसमें विशेष गन्ध या स्वाद नहीं होता इसी पदार्थ को गोंद नाम से पुकारा जाता है। यह बबूल आदि जाति की वनस्पतियों से ही नहीं परन्तु जन्तुओंसे भी प्राप्त की जाती है, उपयोगमें अधिकतर वानस्पतिक गोंद ही देखी जाती है। पौधों या वृक्षोंसे इसे इकट्ठा करने की सामान्य विधि यह है कि वृक्षके तने या शाखामें से एक चिपचिपा सा द्रव बहकर आता है, यह द्रव वायुके सम्पर्कमें आकर जम जाता है। इस जमे पदार्थको जो कि गोंद है इकट्ठा कर लिया जाता है। वृक्षोंकी कुछ जातियोंमें तो यह स्यवन (रसाव) स्वयं होता है. कुछ एक जातियोंमें शाखाके परिमाणानुसार १ से ३ फुट चौड़े और २ से ३ फुट लम्बे कटाव करके ऊपरसे छाल उतार दी जाती है; कुछ समय बाद इस कटावमें से रस बहकर बाहर आता है और वहां जम जाता है। कोर्डोफान (सूडानका एक प्रान्त तथा खार्तूमसे दक्षिण पश्चिममें लगभग २०० मील) में यह बगीचों तथा जंगलोंमें इकट्ठीकी जाती है। बगीचोंकी गोंद जंगलोंकी अपेक्षा अधिक अच्छी होती है।

पौधोंमें इसका निर्माण कैसे होता है और इसकी क्या क्रियाएँ होती हैं यह अभी तक अस्पष्ट है। इस सम्बन्ध में जो मत उपस्थित किये जाते हैं वो एक दूसरेसे बहुत भिन्न हैं। कुछ तो इसे उत्प्रेरकाणु (Enzymes) या जीवाणु (Bacteria) की क्रियाका परिणाम समझते हैं, कुछ इसे कोषलय पेशियों (Cellular tissue) के टूटनेका परिणाम बताते हैं, कुछ पौधोंके शरीर पोषणका सामान्य फल कहते हैं। यह भी कहा जाता है कि अधिक बीमार वृक्षोंसे अधिक गोंद प्राप्त होती है। गोंदकी उत्पत्ति पर भूमि, जलवायु और ऋतुके प्रभावका अध्ययन किया गया है। सामान्यतः लोहयुक्त रेतीली भूमि, वर्षा ऋतुमें पानीका स्वाभाविक बहाव, गोंद इकट्ठा करनेकी ऋतुमें शुष्क गरमी इसकी उत्पत्तिके अनुकूल अवस्थाएँ हैं। यदि भूमिमें आर्द्रता अधिक होगी तो गोंदको उत्पत्ति कम हो जायगी।

भिन्न २ वानस्पतिक स्रोतोंके कारण गोंदका नामकरण तदनुसार किया जाता है। एकेशिया (Acacia) वर्ग से प्राप्त गोंदको एकेशिया गोंद (Gum Acacia) कहते हैं। बबूल (Acacia Arabica) से प्राप्त को बबूल गोंद (Gum Arabica) कहते हैं। एकेशिया वर्गके जिन पौधोंसे गोद इकट्ठी की जाती है वो अधिकतर अफ्रीका, भारत, आस्ट्रेलिया आदि प्रदेशोंमें पाये जाते हैं। सूडानमें हशब (Acacia Senegal) नामक वृक्षसे ये इकट्ठाकी जाती है, ये वृक्ष सलेटी पृष्ठके और सफेद तथा लाल पृष्ठके होते हैं। सलेटी पृष्ठ वाले वृक्षसे प्राप्त गोंद उत्तम और सफेद तथा लाल पृष्ट वालेसे प्राप्त निम्नश्रेणीकी समझी जाती है। ईसाकी प्रथम शताब्दिमें गोंद सूडानसे अरब की बन्दर-गाहों पर भेज दी जाती थी, वहांसे यूरोप जाती थी; इसी कारण इसे अरबी गोंद या (Gum Arabic) कहा जाता था, और आजकल इसे सूडान गोंद या कोर्डोफान गोंद भी कहते हैं। अधिकतर गोंद की मांग यहींसे पूरीकी जाती है। भारतमें यह निम्न वृक्षोंसे प्राप्तकी जाती है, ये प्रायः सारे भारतमें फैले हुए हैं—

१—बबूल (Acacia Arabica)
२—अरिमेद (" Farnesiana)
३—फाएटो सरियो (" Modesta)
४—श्वेत खदिर (" Senegal)
५—खैर (" Catechu)
६—रातोखावल (" Gacquemontii)
७—धव (" Anogeissus Latifolio)

८—जमराशि (" Eloeodendrnn Glaucum)
९—झर्गः (" Prunus Eburnea)

लंडन इम्पीरियल इंस्टीट्यूटमें इनका विश्लेषण करने पर निम्न परिणाम प्राप्त हुए हैं। इन भारतीय गोंदों को ई० जे० पैरीने घट्टी गोंद नाम दिया है —

	राता बावल			झर्गः		जमराशि	खैर		बबूल	खरिमेद	काण्टोसरियो	श्वेत खदिर	धव	
आर्द्रता	१८·५	१८·५	१४·८	१४·८	१४·७	१५·२	१५·७	१६·८	१५·०	१३·८	१६·२	१६·३	१५·५	१६·१
राख	३·५३	३·५	२·८४	२·५४	२·३५	२·५६	३·२४	२·८७	२·२७	१·८३	२·६६	२·६८	२·४१	३·११
पानीमें घुलनशील शुष्क द्रव्य	८०·०२	८१·६	८४·०	८०·७	७६·१	८२·०	८२·४	८१·२	७८·६	८५·४०	८५·०	८४·०	७८·२	७१·५
अम्लीयता (१ ग्राम गोंद के लिये प्रयुक्त दाहक पोटाशके मिलिग्राम)	४·०	३·२	४·८	०·८	१·२	—	—	—	—	—	—	—	—	—
गोंद घोल के गुण	थोड़ा अपारदर्शक, हलका पीला, चिपकने वाला	साफ़, थोड़ा पीला	हलका पीला	अति स्वच्छ नीरंग चिपकने वाला घोल		साफ़, बहुत हलका पीला	साफ़, हलका लाल भूला	हलका पीला भूरा	साफ़, पाण्डु लाल भूरा	साफ़, पीला भूरा	साफ़, पाण्डु-पीत	साफ़, थोड़ा पीला भूरा	गाढ़ा, पीला भूरा	गाढ़ा, पीला घोल

उपरोक्त गोंदोंके अतिरिक्त तुर्कीके पहाड़ी प्रदेशों, सीरिया, आरमीनिया, कुर्दिस्तान और पर्शियामें एक प्रकार की गोंद पाई जाती है जिसे ट्रैगाकान्थ गोंद कहते हैं। यह (Astragalus Gumnipes) पौधेसे प्राप्त की जाती है। ये परतदार अथवा कृमि-आकारमें बाज़ारमें बिकती है। इसी प्रकारकी गोंद आस्ट्रेलियामें भी पर्याप्त पाई जाती है। पर्शियामें एक और प्रकार की गोंद प्राप्त होती है जिसके पौधेका नाम (Amygdalus Leso-carpus) है।

ऊपर जितने प्रकार की गोंदोंका वर्णन किया गया है, उनमें से कुछ घुलनशील हैं और कुछ अघुलनशील हैं। घुलन शील गोंदे पानीमें घुलकर गाढ़ा और लेसदार घोल बनाती हैं। इस श्रेणीमें एकेशिया गोंद, घट्टी गोंद आजाती हैं। अघुलन शील गोंदें अपने भारसे कई गुना अधिक पानी चूस लेती हैं तथा अर्द्ध ठोस दृढ़ जैली बना लेती हैं। इस श्रेणीमें ट्रैगाकान्थ गोंद तथा दूसरी आस्ट्रेलियन मेंसे कई तो अपने परिमाणसे सौ गुना पानी चूसकर फूल जाती हैं। इन दोनों प्रकारकी गोंदोंके मध्यवर्ती पर्शियन गोंद है जो कि 'अर्द्ध घुलनशील है। अर्थात् ये ठीक २ घोल बनानेके स्थान पर या दृढ़ अर्द्ध ठोस जैसी बनानेके स्थान पर पतली जैली बनती हैं।

इन सब गोंदोंमें एकेशिया गोंद उत्तम श्रेणीकी है और अधिकतर सूडानसे आती है। सेनार के जंगलोंसे आने वाली, सेनेगाल अफ्रीकन फ्रेंच उपनिवेश की गोमेब्लांशेसे (Gomme Blanche, एकेशिया गोंदको एक जाति), भारतीय और लेबेण्टाइन गोंद इसी उत्तम श्रेणीमें

गिनी जाती हैं। लंडनकी इम्पीरियल इंस्टीटूयूटने इन सब गोंदोंका विश्लेषण करनेके बाद अपनी रिपोर्टमें सेनेगालकी गोंदको सर्वोत्तम बताया है, यद्यपि सूडानी गोंद अधिक साफ़ तथा अधिक हलके रंगकी होती है।

रसायन—रासायनिक दृष्टिसे गोंद कर्बन, उदजन और ओषजनका समास है। इसमें प्राय थोड़ी मात्रामें नाइट्रोजन भी पाई जाती है पर वह इसका आवश्यक घटक नहीं है; और इसी कारण नाइट्रोजन युक्त पदार्थों—जिलेटीन, ग्ल्यू, और प्रोटीन आदिसे इसे पृथक् किया जाता है। कुछ खनिज पदार्थ—मुख्यतः कैलसियम, मैगनीसियम, पोटाशियम—इसमे पाये जाते है। अब इसे कार्बोहाइड्रेटोंकी बहुसैकराइड (Polysaccharides) श्रेणीमें रखा जाता है। यह जटिल गुणिताबयवित (Polymerised) पदार्थ है। इसका सामान्य सूत्र $(क_{६} उ_{१०} ओ_{५})_{न}$ है। सन् १८५४ में न्यूबायर (Neubauer) अरैबिन या अरैविक-अम्ल रखा और अपने विश्लेषणोंके आधार पर इसे कार्बोहाइड्रेटोंकी श्रेणीमें स्थान दिया। १८६८ ने अरेबिनके विच्छेदनसे अरैबिनोज़ [द्विसैंकराइड, सामान्य सूत्र $क_{२म} (उ_{२}ओ)_{२म-१}$ है, जब कि म = ६; यह वाम घूर्णीय है] नामक नई खाण्ड प्राप्त की। इस के बाद सी० ओ० अलीवानने दिखाया कि अरैबिनमें एक अम्लीय केन्द्रक (nucleus) के साथ गैलेक्टोज [एक सेकराइड सामान्य सूत्र $क_{म} (उ_{२} ओ)_{म}$, यह दक्षिण-घूर्णीय है, द्रवणांक १६०] अरैबिनोज़ खाण्डोंके अणु जुड़े हुए हैं। इस अम्ल को उसने अरैविक-अम्ल नाम दिया और इसका सूत्र $क_{२३}उ_{३} ओ_{२१}$ उपस्थित किया, तथा अरैबिन का निम्नसूत्र उपस्थित किया—

$२ क_{१०}उ_{१२}ओ_{८}, ४ क_{१२}उ_{२०}ओ_{१०}, क_{२३}उ_{३०}ओ_{१८}$।

इसका नाम द्वि-अरैबिनन—चतुः गैलेक्टन - अरैबिक-अम्ल रखा।

सान्द्र गन्धकाम्ल की क्रिया से झुलस (char) जाती हैं, इससे कर्बन, कर्बन द्वयोषिद, पानी, एक्रोलीन (Acrolein) आदि भिन्न २ पदार्थ उत्पन्न होते हैं। इसके $उ_{२}ग ओ_{४}$ के साथ उबालने से अरैबिनोज़ आदि खांडें प्राप्त होती हैं। सान्द्र नाइट्रिकाम्लसे उपचित होकर म्यूकिक-अम्ल (Mucic-acid) और आक्जैलिकाम्ल बनता है। इसका नाइट्रेशन (Nitration) भी उचित अवस्थाओंमें किया जा सकता है। गोंदके घोलमें उदहरिकाम्ल मिलाकर यदि मद्यसार डालें तो अरैबिकाम्ल निक्षिप्त हो जाता है। अथवा इस घोल को उद से अम्लीय करके पार-पृथक्करण (Dialysis) द्वारा शुद्धावस्थामें अरैबिकाम्ल प्राप्त कर सकते हैं।

एकेशिया गोंदकी बहुत सी जातियां-जिनमें से नार सेनेगाल, भारतीय, लेवेण्टाइन्स आदि सम्मिलित हैं—वाम घूर्णीय होती हैं, आस्ट्रेलियन गोंद बहुधा प्रकाशके प्रति निष्क्रय होती है। गेद्दा गोंद (Gedda Gum) दक्षिण घूर्णीय है, रासायनिक दृष्टिसे ये गोंद वाम घूर्णीय गोंदके समतुल्य है। गोदोंके श्रेणी विभाजनमें आपेक्षिक गाढ़त्वसे सहायता ली जाती है। १० ग्राम गोंद को थोड़े गरम पानीमें घोलकर १०० मिलिलिटर कर लिया और गाढ़त्व मापक यंत्र द्वारा इसका गाढ़त्व माप लिया। सूडानी गोंदोंका गाढ़त्व १६.३ से ३१.४ तक अथवा इससे भी अधिक देखा गया है, सेनेगाली गोंदका २२.५ से ३२.४ तक देखा गया है। वायु शुष्क गोंदका आपेक्षिक घनत्व १.३५ होता है। परन्तु जब इसे १०० श पर पूर्ण रूपसे शुष्क कर लेते हैं तो लगभग १३% पानी उड़ जाता है और आपेक्षिक घनत्व भी बढ़ जाता है।

एकेशिया गोंदमें अशुद्धिके रूपमें खांड अथवा डैक्सट्रिन मिला दी जाती है, इसलिये ब्रिटिश फार्मोकोपिया और एलन (Allen) ने शुद्ध गोंदकी निम्न परीक्षाएं दी है।

समान भार पानीमें लगभग सम्पूर्ण रूपसे घुलनशील होती है, घोल अर्द्ध पारदर्शक और गाढ़ा होता है। अम्लीय प्रतिक्रिया होती है। जब इस घोलमें और पानी मिलाकर स्थिर रख दिया जाता है तो किसी प्रकार का गोंद सदृश निक्षेप नहीं आता। यह मद्यसार (प्रतिशत) में अघुलनशील है। इसका १० प्रतिशत जली घोल अल्प वाम-घूर्णीय (Leovo Rotatory) है। दस प्रतिशतके १० मिलिलिटर घोलमें ०.२ मि० लि० १०२% लेड पेर्सीटेट घोल मिलानेसे कोई निक्षेप नहीं आता।

उबाल कर ठण्डे किये १० मि. लि. घोल में 0.1 मि. लि स/१० नैल घोल मिलाने से नीला या भूरा रंग उत्पन्न नहीं होता। यह निशास्ता और डैक्सट्रिनकी अनुपस्थितिको सूचित करता है। आक्ज़ैलिकाम्ल घोल मिलाने से गदलापन (Turbidity) उत्पन्न होना चाहिये, डैक्सट्रिन की उपस्थिति में गदलापन उत्पन्न न होगा। घोलको अम्लकी उपस्थितिमें उबालो और फेहलिंग घोल द्वारा निक्षेप नहीं आना चाहिये, यदि नारंगी रंग का निक्षेप आये तो खाण्ड उपस्थित है। १० मि. लि घोल में ०१ मि. लि १५% लोहिक हरिद घोल मिलाने से नीलिमायुक्त काला रंग उत्पन्न नहीं होता यह टैनिन की अनुपस्थिति सूचित करता है। १०० श. तक गरम किये जाने पर १५ प्रतिशत से अधिक क्षार में कमी नहीं आती। राख ५% से अधिक नहीं होती।

एकेशिया गोंद की अपेक्षा घट्टी गोंद कम घुलनशील है तथा अधिक गाढ़ा लसदार घोल बनाती है। १ भाग एकेशिया गोंद को २.५ भाग पानी में घोलने से जो घोल बनता है उसी गाढ़त्वका घट्टी गोंदका घोल बनाने के लिये १ भाग गोंद को ८ भाग पानी में घोलना पड़ता है। इन दोनों गोंदोंकी भिन्न-भिन्न परीक्षकों के साथ निम्न क्रिया होती है।

परीक्षक	घट्टी गोंद	एकेशिया गोंद
१. अमोनियम आक्ज़लेट	हलका गदलापन	प्रचुर श्वेत निक्षेप
२. भास्मिक सीसक सिरकित	हलका निक्षेप	प्रचुर सरेश सा निक्षेप
३. लोहिक हरिद	हलका कालापन सरेश सा निक्षेप	कालापन नहीं, सरेश सा निक्षेप भी नहीं
४. सुहागा	सरेश जैसा बना देता है	सरेश सा नहीं बनाता
५. बंगस हरिद	विरञ्जन (Bleaching)	विरञ्जन
६. मद्यसार (समान मात्रा)	हलका निक्षेप	प्रचुर निक्षेप
७ पारदिक हरिद	श्वेत रेशेदार निक्षेप	कोई क्रिया नहीं

ट्रैगाकान्थ गोंद में जिरॉडके अनुसार ६०% पैक्टिन युक्त समास होते हैं, ये समास पानीके साथ उबाले जाते हैं तो घोलमें पैक्टिक-अम्ल तथा अत्यल्प मात्रा में उद हरिकाम्ल पाया जाता है। इस गोंद में अरैबिन प्रकृतिकी ८ से १०% घुलनशील गोंद, ५ से ६% निशास्ता और सैल्युलोज तथा ३% खनिज द्रव्य होते हैं, आर्द्रता लगभग २% होती है। इसमें उपस्थित घुलनशील गोंद एक जटिल अम्ल प्रतीत होती है जो कि जल-विच्छेदन (Hydrolysis) से खाण्ड और गेडिकाम्ल (Geddic acid) में; अघुलनशील भागका जटिल अम्ल जल-विच्छेदनसे खाण्ड और बैसोरिक-अम्ल (Bassoric acid) में परिवर्तित हो जाता है। पानी में इसे डालने से ५० गुना तक पानी चूस कर फूल जाती है और जैली बन जाती है। इसमें दाहक सोडाका घोल डालनेसे पीला रंग आ जाता है। सुहागा, क्षारीय शैलकित (Alkaline Silicate) तथा लोहिक हरिदसे कुछ विशेष निक्षेप नहीं आता। मद्यसारसे थक्कारूप निक्षिप्त होता है। सीसक सिरकितका घोल इसे और अधिक गाढ़ा कर देता है, इस मिश्रणको चलाने से गोंदके अम्ल सीसकके लवण रूपमें निक्षिप्त हो जाते हैं।

अर्द्धघुलनशील पर्शियन गोंदके घोलमें मद्यसार, भास्मिक सीसक सिरकित मिलानेसे निक्षेप प्राप्त होता है। लोहिक हरिदसे निक्षेप नहीं आता। इसके घोल में थोड़ा २ चिपकनेका गुण होता है। गोंदका अघुलनशील भाग पानीके सम्पर्कमें आने पर फूल कर अर्द्ध-पारदर्शक जैली बनाता है।

उपयोगिता—गोंदकी उपयोगिता उसके गाढ़ेपन तथा चिपचिपेपन पर निर्भर है। उत्तम श्रेणीकी गोंद द्रवोंको साफ़ करने, रेशमको माण्ड देने, कागज़ तथा वस्त्र व्यवसाय, कनफैक्शनरी, फार्मेसी तथा छींट में प्रयुक्त होती है। अच्छी गोंद छींटके काममें न तो रंगों की चमकको खराब करती है और न बन्धकों (Mordants) को दुर्बल करती है। छींटके लिये कभी-कभी निम्न श्रेणीकी गोंद भी काममें लाई जाती है। इसलिये गोंद को रंगों के साथ मिलाने से पूर्व यह देख लेना

चाहिये कि उसका रंग पर कुछ प्रभाव तो नहीं होता। एतदर्थ गोंदको कोचिनील पिंक (Cochineal Pink) या फुचसिन (Fuchsine) के साथ मिला कर शुद्ध ऊन पर परीक्षा करनी चाहिये, बादमें ऊनको भाप देकर धो लेना चाहिये। यदि गोंद शुद्ध होगी तो पीछे पीलापन नहीं रहेगा। यदि गोंदमें अम्लीयता बहुत अधिक होगी तो यह बन्धकोंके साथ मिल कर विलायक का कार्य करेगी और इसलिये छींटके लिये अनुपयोगी सिद्ध होगी। निम्न श्रेणीकी गोंद स्टेशनरी, माचिस तथा स्याहीके लिये प्रयुक्त होती है। स्याहियों में, बहुधा, गोंद आवश्यक अंग समझकर मिलाई जाती है। क्योंकि स्याही बनाते समय टैनिन और लोह का जो समास बनता है वह पानी में नहीं घुल सकता। यदि इसे नीचे बैठने दिया जाय तो स्याही कुछ समय बाद फीकी हो जायगी। गोंद घोल को गाढ़ा करता है तथा ऐसे समासको नीचे नहीं बैठने देती। अर्थात् उसे घोल में अवलम्बनस्थ रखती है। इसके अतिरिक्त नक़ल करने की स्याहियोंमें इसे अवश्य मिलाया जाता है, यह न केवल रंग को कागजपर चिपकने में सहायता देती है अपितु उसे शीघ्र सूखने भी नहीं देती। इसकी उपस्थिति के कारण लिखाई पर वायुकी क्रिया नहीं होती और रंग सुरक्षित रहता है। स्याहीमें विशेष प्रकार की चमक पैदा कर देती है। यदि स्याही लिखने से कागज़ पर फैलती हो तो इस दोष को दूर करने के लिये गोंद का उपयोग किया जाता है। यह ध्यान रखना चाहिये कि यदि इसकी मात्रा स्याही में बहुत हो जायगी तो उसका स्वाभाविक स्वतन्त्र बहाव (Flow) कम हो जायगा।

लोहे की पिनों की जगह बबूल के काँटे

पिनों की कमी के कारण सेना विभाग के क्लर्क अपने कागजों को बबूल के काँटों से नत्थी करने लगे हैं। बबूल के काँटे युद्धकाल की पिनें हैं। बबूल का वृक्ष भारत के सभी भागों के जंगलों में पाया जाता है और इसे सब जानते हैं। इसके काँटे दो तरह के होते हैं—सफेद और काले। सफेद काँटे पहले पहल देखने में ऐसे जान पड़ते हैं मानों वे वास्तव में धातु की बनी पिनें हों। इन पर एक प्रकार की स्वाभाविक चमक होती है।

कलकत्ते के केन्द्रीय स्टेशनरी कार्यालय की ओर से इन काँटों को इकट्ठा करने वाले कुछ गाँवों में भेजे जाते हैं। उन्हें यह सिखाया जाता है कि काँटे को उस जगह से काटें जहाँ वह डंठल से मिलता है। इस प्रकार इन काँटों का नीचे का भाग पिनों के सिरे की तरह मालूम पड़ने लगता है। उन्हें यह भी बता दिया जाता है कि हरे काँटे न तोड़ें क्योंकि वे मुलायम होते हैं। काँटों के तोड़ डालने से पेड़ के जीवन पर कोई बुरा प्रभाव नहीं पड़ता।

२५ लाख काँटों की फर्मायश

युद्धकाल में किसी न किसी तरह काम चलाने का यह एक उल्लेखनीय उदाहरण है। इन 'स्वाभाविक पिनों" के बंडल बनाये जाते हैं। प्रत्येक बंडल में २५० या ५०० काँटे रहते हैं। इन्हें दियासलाई के पुराने बक्सों में भरा जाता है। कुल खर्च १ रुपया प्रति हजार से कुछ अधिक पड़ता है।

२५ लाख काँटों की फर्मायश दी गई है। सैनिक दफतरों में तो इस प्रकार के काँटों का प्रयोग आरम्भ हो गया है। धीरे-धीरे भारत सरकार के सारे कार्यालयों में धातु की बनी पिनों की जगह ये काँटे ही काम में आने लगेंगे।

—भारतीय समाचार

शिक्षण का ऊँचा मान

इन सारे शिक्षण केन्द्रों में उसी प्रकार की ऊँचे दर्जे की शिक्षा दी जाती है जैसी कि शाही हवाई सेना में दी जाती है। इन स्कूलों में आधुनिकतम प्रकार का साज सामान है और बड़े चतुर शिक्षक हैं। शीघ्र ही ये स्कूल अपनी पूरी शक्ति के साथ काम करने लगेंगे।

भारतीय हवाई सेना के इस प्रकार के विकास में शाही हवाई सेना के अधिकारी बड़े उत्साह से रुचि प्रकट कर रहे हैं। भारत के युवकों को इस अवसर से लाभ उठाना चाहिये। फील्डमार्शल वाइकाउन्ट वावेल के शब्दों में 'भारतीय हवाई सेना भारत के भविष्य के लिये एक बड़े महत्व की चीज है।"

कुछ परिभाषिक शब्द

वन-सेवा (फ़ॉरेस्ट्री) सम्बन्धी कुछ पारिभाषिक शब्दों-के लिये निम्न हिन्दी शब्द पाठकोंके सम्मुख रक्खे जा रहे हैं। इस विषय के जानिकार लोग कृपया इसपर अपनी सम्मति दें।

Abele—श्वेत पॉपलर, रजत पॉपलर
Abnormal—असामान्य
Abnormal forest—अप्रमाण वन, असामान्य वन
Acacia—बबूल
Accessory species—गौण जाति
Accident yield—आकस्मिक प्राप्ति
Accretion—वृद्धि, व्यास वृद्धि, उच्चता वृद्धि
Achene—एक बीजक
Acicular—सूच्याकार
Acid—अम्ल, खट्टा
Acetic—सिरकाम्ल, ऐसेटिक ऐ०
Carbonic—कारबोनिक ऐ०
Humic—ह्यूमिक ऐ०
Nitric—नाइट्रिक ऐ०
Tannic—टैनिक ऐ०
Acorn—सिंदूर फल; एकॉर्न
Acre—एकड़
Acuminate—शुंडाकार
Adaptability—कालानुवर्तीशीलता
Adder—दंदशूक; ऐडर
Adjacent—आसन्न
— owner—आसन्न स्वामी
Administrative unit—शासन-एकाई शासनीय टुकड़ा, शा० टुकड़ी,
Admix—संमिश्र करना
Advance cutting—अग्रछिदि, पूर्व कटान
— growth—अग्र वृद्धि
Adventitious—अनियमित, आगंतुक
Adze—कुल्हाड़ी, लक्षणी
Aerial root—वायव मूल
Afforest—वनमय करना
Afforestation—वनमयीकरण
After-culture—उत्तर शोध
— growth—उत्तर वृद्धि
— pannage—उत्तर शस्य, पीछे की चरी
Age-classes—आयुकक्ष
— gradation—आयु अनुसार विभाजन; आयु विभाजन
— of maturity—प्रौढ़ता-आयु
Agricultural timber—ग्रामोपयोगी काष्ठ
Aigret—बक; बगुला
Ailantus—स्वर्ग विटप; एलांटस
Air-dry—वायुमें सुखाया; वायु शुष्क
Air-root-Aerial root
Albumen—ऐलब्युमेन
Alburnum—कच्ची लकड़ी, अपरिपक्व काष्ठ; नवीन काष्ठ
Alburnum-tree—हरिरहित वृक्ष
Alder—ऐल्डर
Black—कृष्ण—
Grey—धूमिल
Allotment of areas—क्षेत्र विभाजन
— of woods into periodic blocks—आवर्त खंडों में वन विभाजन ; आवर्त विभाजन
— by areas—क्षेत्रफलानुसार विभाजन
— by volumes—आयतनानुसार विभाजन
All-round dog—सर्वोपयोगी श्वान (कुत्ता)
Alluvial—पुलिनमय
— soil,—भूमि
Alternate—एकांतर
Altitude—ऊँचाई
Ambush—निभृत स्थान
Anadromous—प्रतिगामी, प्रतिकूलगामी
Anatropous—अनुकूल गामी
Annual cutting—वार्षिक कटान
Annual ring—वार्षिक वलय
Annuals—वार्षिक; वार्षिक पौधे
Ant-hill—वल्मीक

एकात्मक क्षेत्रवाद (Unitary Field Theory) तथा उसकी समस्याएं

[लेखक—श्रीयुत अवध बिहारी भाटिया, एम० एस-सी०]

क्षेत्रवाद की वास्तविक प्रकृतिको समझने के लिये उसके विकासकी कथा जानना अत्यन्त आवश्यक है। अतएव पहिले हम संक्षेप में इसका विवरण विज्ञानके उद्देश्यको दृष्टिमें रखते हुए करेंगे। प्रकृतिको समझने के यत्न मनुष्य की विचारशक्तिके साथ ही आरम्भ हुए। जब नवीन वैज्ञानिक तरीक़ों का पता भी नहीं था तभी से मनुष्यके, प्राकृतिक घटनाओंकी व्यक्त जटिलता (Apparent Complexity) को सहजसे सहज तथा कम से कम भावनाओं द्वारा मिलाने और समझाने के प्रयास पाये जाते हैं। डिमोक्रिटसने ईसा पूर्व तीसरी शताब्दी में कहा था "रूढ़ानिसार मीठा मीठा है, कड़ुवा कड़ुआ है, शीत शीत है, गरम गरम है और रंग रंग है परन्तु वास्तविक सत्य तो केवल परिमाणु और आकाश है।" अर्थात् यद्यपि इन्द्रियकी वस्तुओंको हम जैसा पाते हैं वैसा ही समझ लेते हैं, परन्तु वास्तविकता वह नहीं है, और विचारशक्ति का यह लक्ष्य है कि वह इस वास्तविकताका सही रूप जाने। आइंस्टाइन ने इसी विचारको इस प्रकार कहा है 'विज्ञान का उद्देश्य हमारे सब अनुभवों को संगठित करके उन्हें कम से कम मुख्य कल्पनाओं (Fundamental assumptions) से चलकर तर्क के एक सूत्र में बाँध देना है।' विज्ञान के सभी बड़े बड़े आविष्कारों ने उसे इस उद्देश्य के पास पहुँचाने में सहायता की है।

प्राकृतिक दर्शन को क्रम में लाने का श्रेय गैलीलियो तथा न्यूटन को है। उन्होंने अरिसटोटल का सिद्धान्त कि 'बल के साथ ही गति का अन्त हो जाता है' बदल कर नये यान्त्रिक नियम रक्खे जिनसे हम न्यूटनके 'गति नियम' के नामसे परिचित हैं। इसके अतिरिक्त गुरुत्व-पिंड को जड़पिंडके बराबर मान कर जो कि प्रयोग सिद्ध बात है, न्यूटन ने यह सिद्ध किया कि एक चलती हुई वस्तु का भूत और भविष्य उसकी वर्तमान अवस्था पर निर्भर है। इनसे पृथ्वी चन्द्रमा तथा अन्य ग्रहों की गति को ठीक ठीक समझा गया। इस प्रकार विज्ञान की घटनाओंको केवल स्थायी कणोंके मध्यके गुरुत्वाकर्षण एवं परिमाण बलों (जिनकी तीव्रता कणोंकी दूरी पर निर्भर रहती है) द्वारा समझने का प्रयास हुआ। बल तथा द्रव्य ही प्रकृति को समझने की मुख्य अन्तर्निहित भावनाएँ रहीं। यह दोनों एक दूसरे पर निर्भर हैं क्योंकि एकका होना दूसरेके बिना जानना असम्भव है। इन सिद्धान्तोंकी अद्‌भुत सफलताने विशेषकर उन दोनोंमें जो कि व्यक्तरूप से अयान्त्रिक (Non-mechanical) है जैसे ताप, वैज्ञानिकोंमें यह विश्वास उत्पन्न किया कि भौतिक जड़ विज्ञान की समस्या सारी प्राकृतिक घटनाओंको दूरात्मक क्रिया (Action between distances) के सिद्धान्तपर हल किया जा सकता है और उसके हल करने की रुकावट ही पूर्ण प्रकृतिको समझने की रुकावट है। तथा उसके उद्देश्यकी पूर्ति हो जायगी जब यह हल मालूम हो जायगा तथा यह सिद्ध हो जायगा कि यही एक सम्पूर्ण प्राकृतिक घटनाओंका सीधा हल है।

प्रथाओं और रूढ़ियों पर अटल रहना विज्ञानके इतिहासमें उतनी ही मात्रामें पाया जाता है जितना कि मानवके इतिहासमें। पर ज्योंही रूढ़ियाँ विज्ञान-के चरम उद्देश्य पर कुठाराघात करने लगती हैं उनको निकाल कर फेंक दिया जाता है। मानवमें इस उद्देश्य-की कमी ही उसके समाजको कट्टर रूढ़िवादी बनाये रखता है। अतएव इसमें तनिक भी अचरज नहीं जब कि विद्युद्दर्शकीय (Electroscopic) प्रयोगोंको समझने में इन सिद्धान्तों की सहायता ली गई। उसके लिये दो मुख्य कल्पनाएँ की गईं। (१) भारहीन धन और ऋण कणका होना (२) सम आवेशों (Charges) में परिसरण तथा असम में आकर्षण। इसी तरह चुम्बकीय प्रयोगोंके लिये चुम्बकीय द्विध्रुवों (Magnetic dipoles) का जन्म हुआ। इस प्रकार यान्त्रिक सिद्धान्त

रखने के लिये अत्यन्त कृत्रिम वस्तुओंकी जिनका वास्तविक पदार्थिक वस्तुओंसे लेश मात्र भी सम्बन्ध नहीं कल्पना की गई। न तो इन आवेशों की तापसे ही पूर्ण समता दी जा सकी और न यही समझा जा सका कि विद्युत का बहाव धन से ऋणकी ओर क्यों होता है और क्यों बराबर बराबर धन और ऋण मिल कर उदासीन हो जाते हैं। परन्तु असल धक्का तो इन सिद्धान्तों को तब लगा जब कि यह देखा गया कि एक विद्युत धारा-मय कुंडली (Current Flectric circuit) और चुम्बकीय सूचीका आपसमें बल दोनोंके समतलके लम्ब होता है। यह एक ऐसा अनुभव था जिसमें अब तक की मानी हुई बल की प्रकृति (बल की तीव्रता की जड़ कणोंकी आपस में दूरीपर निर्भरता) तनिक भी लागू नहीं होती। इसके अतिरिक्त यह सभी को मालूम है कि किस प्रकार पिछली शताब्दी के मध्य तक प्रकाश के तरंग-सिद्धान्तने अपना प्रभुत्व जमा लिया था। तरंग का कणों से युक्त माध्यम में फैलना सचमुच ही यान्त्रिक घटना है। परन्तु ऐसा मानने में इस जेली नुमा माध्यम (ईथर) को यान्त्रिक गुण देना अत्यन्त कठिन है। पर फिर भी पिछली शताब्दी के वैज्ञानिक ईथर का यान्त्रिक होना मानते रहे। यान्त्रिक दृष्टिकोण की इन कठिनाइयोंसे तथा गुरुत्व पिंड और जड़ पिंड के बराबर होने से, जिसका यान्त्रिक विज्ञान के पास कोई कारण नहीं है, यह प्रत्यक्ष है कि हमारी कल्पना कि प्रकृति की सम्पूर्ण घटनाएँ यान्त्रिक दृष्टिकोण से समझी जा सकती है सही नहीं है।

गुरुत्वाकर्षण क्षेत्र, विद्युत क्षेत्र अथवा चुम्बक क्षेत्र की बल-रेखाएँ एक जांच वस्तु (Test body) की गति दिखाती हैं। इसके अतिरिक्त इन क्षेत्रों की पहली दृष्टि में कोई वास्तविकता प्रतीत नहीं होती। एक लम्ब चुम्बक, विद्युत धारामय कुण्डली अथवा लम्बवेष्टन (Solenoid) के क्षेत्र एक से होते हैं तथा एक चुम्बकीय सूची पर तीनों क्षेत्रों का एक सा प्रभाव होता है। इसका अर्थ है कि क्षेत्रमें कुछ वास्तविकता अवश्य है क्योंकि वह अपनी बनावटके अनुसार ही असर रखता है चाहे उसकी उत्पत्ति कहीं से क्यों न हुई हो। अतएव हम मान सकते हैं कि जांच वस्तुओं के न रहते हुए भी क्षेत्र विद्यमान रहता है। गुरुत्वाकर्षण क्षेत्र, विद्युत स्थिर क्षेत्र तथा चुम्बक क्षेत्र आपस में स्वतन्त्र हैं तथा अपने व्यक्तित्व को क़ायम रखते हैं। विद्युत क्षेत्र के बदलने से चुम्बक क्षेत्र की उत्पत्ति होती है और क्षेत्र विज्ञान के अनुसार इसका उलटा होना स्वाभाविक है। क्षेत्र विज्ञान से हम दो कुण्डलियों के बीच के बलका अनुमान बड़ी सुगमतासे कर सकते हैं। इसके अतिरिक्त उप-पादित धारा (Induced current) तथा स्फुलिंग (Spark) को समझने के लिये हमें क्षेत्रके साथ शक्तिका होना मानना पड़ता है। इस प्रकार क्षेत्र की भावना हमारे लिये और भी अधिक सत्यपूर्ण हो जाती है क्योंकि यह नयी और पुरानी दोनों ही घटनाओं को आसानी से समझने में समर्थ है और पदार्थ की भावना (Concept of substance) जो यान्त्रिक दृष्टि-कोणके लिये आवश्यक है दब जाती है। अब हम यदि विद्युत धारामय कुण्डली को जिसको चारों ओर से चुम्बक क्षेत्रका बल रेखाएँ गोलाकार रूपमें घेरे रहती हैं छोटा करके एक बिन्दु पर ले जांय जिससे कि हमारे नतीजे कुण्डलीके आकारपर निर्भर न रहें, तथा हम यह मान लें कि विद्युत चुम्बकीय क्षेत्र एक बार उत्पन्न होने के बाद सचमुच रहते हैं चाहे उनका उद्गम रहे वा न रहे तो हम मेक्सवल के सभी कारणों को मालूम कर सकते हैं। ये समीकरण यान्त्रिक शास्त्र की तरह दूर की घटनाओं में सम्बन्ध स्थापित नहीं करती है बल्कि करती हैं यहाँ की घटनाओंमें अबकी हालत से। इन कल्पनाओं से तर्क से पाये गये नतीजे सीधे और अद्भुत हैं। इनके अनुसार एक दोलित आवेश से फैली विद्युत चुम्बकीय तरंग प्रकाश के वेग से फैलती है। इससे प्रतीत होता है कि प्रकाश की तरंगें विद्युत चुम्बकीय तरंग हैं और यह अनुमान अक्षरशः सत्य है क्योंकि यही समीकरण विद्युत उपपादन (Electric induction) तथा प्रकाश सम्बन्धी वर्तन (Optical refraction) के नियमों को सही रूप में रखने में समर्थ है।

इस प्रकार क्षेत्रकी भावना पिछली शताब्दीके वैज्ञानिकोंके लिये नितान्त आवश्यक हो गई। उन्होंने

इस भावना को अपनाया क्योंकि केवल इसीके द्वारा विद्युत तथा चुम्बकक्षेत्रकी उन घटनाओंको समझना सम्भव था। परन्तु उन्हें यान्त्रिक दर्शन शास्त्र (Mechanicel philosophy) में पूर्ण विश्वास था। इसीलिये उन्होंने क्षेत्र की भावना को यन्त्र विज्ञान-की भाषामें रखना चाहा। उन्होंने ईथरके यान्त्रिक गुण माने। परन्तु ये गुण अत्यन्त कृत्रिम तथा प्रति विरोधी थे। परन्तु यान्त्रिक दृष्टिकोणको छोड़ने का यह काफ़ी कारण नहीं। अब यदि यान्त्रिक ईथरकी भावना क्षेत्रिक भावनामें लागू है तो क्षेत्रिक घटनाओं को न्यूटनके गति नियमों तथा गलेलियो के सापेक्षतावाद के सिद्धान्त का पालन करना चाहिये। इस सिद्धान्त के अनुसार (१) यदि यन्त्र विज्ञान के नियमों का एक नियामक पद्धति में पालन होता है तो उनका प्रत्येक नियामक पद्धति में जो पहिले की अपेक्षा समगति से चल रहा है होगा। (२) किसी एक घटनाका समय प्रत्येक नियामक पद्धति में एक ही होगा। (३) यद्यपि नियामक (oordinates) तथा वेग भिन्न भिन्न नियामक पद्धति में भिन्न हैं पर बल तथा वेग वृद्धि सबमें एक होगी अर्थात् यान्त्रिक विज्ञान के नियम रूपान्तर नियमों की अपेक्षा अपरिवर्तनशील (Invariant है)।

अब या तो ईथर हवाकी तरह चलते हुए उद्गम-के साथ बह सकती है या स्थिर रह सकती है। यदि पहली बात सही है तो प्रकाश के वेग को उद्गम अथवा द्रष्टा के वेग पर निर्भर होना चाहिये और यदि दूसरी बात सही है तो स्थिर ईथर के सागर की अपनी एक अलग नियामक पद्धति हो जाती है और उसके बीच पृथ्वी की गति का जानना सम्भव होना चाहिये। पर दोनों प्रकारके प्रयोगोंमें आशाजनक उत्तर पाने का प्रत्येक प्रयास असफल रहा। इसका अर्थ है कि गलेलियो के सापेक्षतावाद सिद्धान्त का क्षेत्र विज्ञान में पालन नहीं होता तथा प्रकाश का वेग प्रत्येक जड़व्यूह (Inertial coordinate system) में वही रहता है। इस प्रकार ईथर को यान्त्रिक सत्य में परिणत करने के सब यत्न बेकार हुए और ईथर सिवाय उसके जिसके लिये वह बनाई गई थी किसी काम की साबित न हुई। इसलिये हम ईथर को विज्ञान से यह कहकर निकाल सकते हैं कि विद्युत चुम्बकीय तरंग को भेजने का गुण स्थान में है। या हम ईथर को उसके प्रत्येक यान्त्रिक गुण से अलग कर दें और उसको 'Subject of the verb undulate' माने।

परन्तु यहीं हमारी समस्या का अन्त नहीं हो जाता। हमें अपने रूपान्तर नियमोंको दोनों प्रयोगिक नतीजों के अनुसार सुधारना होगा। इस सुधारसे संकीर्ण सापेक्षतावाद (Special theory of Relativity) का जन्म हुआ। ये नये रूपान्तर नियम तुरन्त ही गलेलियोंके सिद्धान्तके विपरीत दो बातें बताते हैं। एक तो जड़ छड़ की लम्बाई भिन्न-भिन्न द्रष्टाओं के लिये जो एक दूसरे की अपेक्षा सम (Uniform) गति में है, भिन्न होगी और दूसरे एक ही घटना का समय भिन्न भिन्न जड़व्यूह (Inertial coordinate systems) में भिन्न-भिन्न होता है। अर्थात् समय भी वैसा ही नियामक है जैसे कि लम्बाई जो हर पद्धति में भिन्न भिन्न होता है। एक द्विविस्तृत (Two dimensional) स्थान-समय-प्रसार (Space time continuum) में, जिसमें एक नियामक स्थान है और दूसरा समय प्रत्येक बिन्दु के लिये दो अंक हैं। तथा किसी एक बिन्दु के दो अंक घटना को सूचित (Characterize) करते हैं। अब या तो हर एक वस्तु की गति की कल्पना स्थान में क्रम से हुई घटनाएँ मानकर कर सकते हैं जिसमें समयका व्यक्तित्व (Identity) स्थान से भिन्न रहता है अथवा हम उसकी गति को स्थान-समय-प्रसार (Space time continuum) में रहती (exist) हुई सी मान सकते हैं न कि उसे कुछ ऐसा माने जो स्थान में समय के साथ बदले। यान्त्रिक विज्ञान प्रथम चित्र को अपनाता है, जो सदा एक सा बहने वाले परम (Absolute) समय में विश्वास करता है। परन्तु सापेक्षतावाद के अनुसार यह समय तथा स्थान का अलग करना कृत्रिम है तथा दूसरा चित्र ही अधिक स्वाभाविक, सरल एवम् वास्तविक प्रतीत होता है।

मेक्सवलके समीकरण नये रूपान्तर नियमोंकी अपेक्षा अपरिवर्तनशील invariant हैं, पर न्यूटनके

गति-नियम नहीं है। यद्यपि सापेक्षतावादका जन्म क्षेत्रिक समस्याओंसे हुआ पर इसकी पहुँच विज्ञानके सभी क्षेत्रों तक होनी चाहिए। विद्युत चुम्बकीय घटनाओंमें बल स्थिर पिंड (Rest mass) तथा वेग दोनों पर ही निर्भर है अर्थात् गतिज शक्ति (Kinetic energy) पर निर्भर है। इससे यान्त्रिक विज्ञान के नये नियमों का जन्म हुआ जहाँ शक्ति और पिंड में निम्न सम्बन्ध है स = प × व² जहाँ स शक्ति है, प स्थिर पिंड है तथा व प्रकाशका वेग है। इस प्रकार शक्ति और पिंड के दो नित्यता (Conservation) नियम मिल कर शक्ति-पिंडका नित्यता नियम बन गया। इस प्रकार हम देखते हैं कि संकीर्ण सापेक्षतावादने प्रथम तो ईथरकी जड़ काटी, दूसरे क्षेत्रवादमें न्यूटनके गति नियमोंको भी मिला दिया। परन्तु अभी तक गुरुत्वाकर्षणके नियमोंको हम क्षेत्र भाषा में नहीं रख सके हैं जैसा कि एक एकता स्थापित करने वाले क्षेत्र विज्ञान को करना चाहिये था। इसने विस्तृत सापेक्षतावाद (Generalised Theory of Relativity) का जन्म दिया।

संकीर्ण सापेक्षतावादके तर्कमें केवल एक कमी है। हमारे भौतिक नियम हैं, जिनका पालन प्रत्येक जड़व्यूह (Inertial coordinate system) में होता है, पर सृष्टिमें ऐसी नियामक पद्धति का पाना असम्भव है। हमारी पृथ्वी और सूर्य ऐसी नियामक पद्धति नहीं हैं क्योंकि वे अपनी-अपनी धुरीके चारों ओर घूमते हैं। पृथ्वीपर इन भौतिक नियमोंका लगभग पालन होता है। परन्तु केवल इतना ही हमें विज्ञानकी आत्माको बिना कुचले आज्ञा नहीं देता कि हम इन नियमों को काम में लायें। वास्तव में कोई भी ऐसा कारण नहीं जिससे कि हम सोचें कि प्रकृति एक तरहकी गतिको और दूसरी गतियोंसे अलग रहती है। जड़त्व Inertia का सिद्धान्त स्थान-समय प्रसार (Space time continuum) को वास्तविक (Objective) सत्यता देता है। अतएव यदि न्यूटनका दृष्टिकोण था Tempus est absolutum, spatum est absolutum, संकीर्ण सापेक्षतावाद का दृष्टिकोण है Continuum spatti et temporis est absolutum यहाँ दूसरे कथन में Absolutum का अर्थ न केवल भौतिक सत्य से है, बल्कि जिसके भौतिक गुण स्वतन्त्र हैं और जो भौतिक प्रभाव तो रखते हैं पर भौतिक हालतों से स्वयं प्रभावित नहीं होते। परन्तु ऐसा होना दो कारणोंसे उचित नहीं जान पड़ता। पहले तो किसी ऐसी चीज़ (स्थान समय प्रसार) के बारेमें सोचना जो असर तो करती हो पर स्वयं प्रभावित न होती हो विज्ञानके सोचनेके तरीक़ेके विरुद्ध है। इसी कारण से माक़ (Mach) ने यान्त्रिक विज्ञान में से स्थान को सक्रिय कारण के रूप में निकालने का यत्न किया था। उसके अनुसार एक वस्तु सृष्टि की सब वस्तुओं के केन्द्र की अपेक्षा चलती है न कि स्थान की अपेक्षा। परन्तु वह इसमें असफल रहा क्योंकि इसका अभिप्राय है कि यान्त्रिक घटनाओं के कारणों के क्रम सीमित हैं तथा प्राचीन यान्त्रिक शास्त्र से इस बात को ज़ाहिर करने का कोई तरीक़ा नहीं है। परन्तु क्षेत्र विज्ञान में ऐसा असम्भव नहीं है। दूसरी बात है गुरुत्व-पिंड तथा जड़त्व पिंडकी समता, जिसकी सच्ची प्रकृति का अनुमान लगाना प्राचीन भौतिक विज्ञानके वशसे बाहर है। इस समताका अर्थ है कि किसी वस्तु का गुरुत्वाकर्षण द्वारा उत्पन्न हुई वेगवृद्धि उसकी प्रकृति पर निर्भर नहीं है क्योंकि जड़त्व पिंड × (वेग वृद्धि) = (गुरुत्वाकर्षण क्षेत्रकी तीव्रता) × गुरुत्व पिंड)।

अब हम यदि मान लें कि 'क' एक जड़व्यूह (Inertial coordinate system) है तो जो वस्तुएँ आपस में काफ़ी दूर है तथा अन्य सभी वस्तुओं से बहुत दूर है, उनमें 'क' की अपेक्षा कोई वेग वृद्धि न होगी। अब हम यदि इन वस्तुओं को 'ख' पद्धति से जिसका वेग वृद्धि 'क' की अपेक्षा सम है, देखें तो इन सबका वेग वृद्धि बराबर तथा समानान्तर होगी। अर्थात् ये सब वही नियम पालन करते हैं जो कि वे करते यदि 'ख' की कोई वेग-वृद्धि न होती और एक गुरुत्वाकर्षण क्षेत्र विद्यमान रहता। अतएव हम इस गुरुत्वाकर्षण के कारण जाने बिना ही उसके सत्य होने की कल्पना कर सकते हैं। अर्थात् इस कल्पना को कि 'ख' स्थिर है तथा उसमें गुरुत्वाकर्षण क्षेत्र

विद्यमान है हर तरह से बराबर मान सकते हैं। इस कल्पना में 'क' ही एक अनुज्ञेय (Allowable) पद्धति है तथा उसमें गुरुत्वाकर्षण क्षेत्र नहीं है। यह कल्पना 'पूर्ण भौतिक समता' (Complete physical Fquivalence) का सिद्धान्त है। इसके मान लेने से जड़त्व तथा गुरुत्वाकर्षणकी प्रकृति एक हो जाती है, क्योंकि वही वस्तु केवल जड़त्वके प्रभावमें, तथा जड़त्व और गुरुत्वाकर्षण क्षेत्र दोनोंके प्रभावमें देखी जा सकती है। इस प्रकार जड़त्व तथा गुरुत्वाकर्षणकी प्रकृति को एक मानने से गुरुत्व पिंड तथा जड़त्व पिंड की बराबरी को समझना सम्भव हो जाता है। इसी सम्भावना ने विस्तृत सापेक्षतावाद (Generalised Theory of Relativity) को जन्म दिया क्यों कि समता का सिद्धान्त यह चाहता है कि गैलीलियो की पद्धति (जहाँ जड़त्व का सिद्धान्त लागू होता है) की जगह हम अन-जड़-व्यूह (Non-inertial systems) को भी काम में ला सकते हैं। इसका अर्थ है कि अब हमें ऐसे भौतिक नियम बनाने चाहिये जो सभी नियामक पद्धतियों में लागू हों और जो ख़ास ख़ास हालतोंमें जड़व्यूहके नियमोंमें परिणत हो जाय। इस प्रकार हमारी मौलिक कल्पनाएँ (Fundamental assumptions) अत्यन्त सीधी हो जाती हैं। परन्तु ऐसा करने में हमारे गणित का तर्क जो सिद्धान्तों और प्रयोगों में सम्बन्ध स्थापित करता है लम्बा और कठिन होता जाता है। पर हमारा असल लक्ष्य तो प्रकृति को एकात्मक क्षेत्र वाद से समझनेका है और जब तक इस उद्देश्य की ओर हम बढ़ रहे हों हमें किसी भी रुकावट से घबराना नहीं चाहिये।

स्थानाभाव के कारण हम क्लिष्ट गणित युक्त तर्कमें नहीं जा सकते पर इतना तो प्रत्यक्ष है कि ज्यों ही हम नये नियमोंको बनानेका यत्न करते हैं हमें संकीर्ण सापेक्षतावाद का समय-स्थान-प्रसार (Space-time Continuum) को दिया हुआ रूप हमारे विपरीत जाता है। क्योंकि मान लो 'ख' एक नियामक पद्धति है जिसकी 'क' अक्षरेखा (Axis) 'क' पद्धति की अक्षरेखा पर है और जो इस रेखाके चारों ओर सम कोणवत् वेग (Constant angular velocity) से घूम रहा है। अब एक गोला 'ख' पद्धतिमें मूलविन्दु (Origin) के चारों ओर अ ब समतल में खींचो और एक व्यास भी खींचो। इसके अतिरिक्त मान लो कि हमारे पास दोनों पद्धतियों में बहुत सी छोटी छोटी बराबर लम्बाई की पदार्थिक छड़ें हैं। अब यदि 'ख' 'क' की अपेक्षा स्थिर है तो $\frac{\text{परिधि}}{\text{व्यास}} =$ π। पर यदि 'ख' 'क' की अपेक्षा घूम रहा है तो वे छड़ें जो परिधि की दिशामें उस पर है क' में छोटी हो जायँगी। परन्तु जो छड़ें व्यास की दिशा में है, वे वैसी ही रहेंगी क्योंकि उस दिशा में कोई वेग नहीं है। अतएव इस पद्धति के लिए $\frac{\text{परिधि}}{\text{व्यास}} >$ π। इसका अर्थ है कि 'ख' पद्धति में अशिथिल वस्तुओं (Rigid bodies) के आकार के नियम (Laws of configuration) यूक्लिड की रेखा गणित के नियमों से भिन्न हैं। ऐसे ही कारणों से 'क' को ख' की परिधि पर की घड़ी उसके मूलविन्दु पर की रक्खी हुई घड़ी से धीमे चलती हुई मालूम होगी क्योंकि गति से दो घटनाओं के बीच का समय फैल जाता है। यही बात 'ख' को भी मालूम होगी जब तक कि हम समय की बिलकुल कृत्रिम परिभाषा न दे दें। अर्थात् यदि 'ख' के सब नियम समय पर स्पष्टया (Explicitly) निर्णित हों। इसका अर्थ है कि ख' के लिये संकीर्ण सापेक्षतावादके समय और स्थानकी परिभाषा उचित नहीं। पर समताके सिद्धान्तसे ख' भी एक स्थिर पद्धति है जिसमें गुरुत्वाकर्षण विद्यमान है। अतएव गुरुत्वाकर्षण क्षेत्र समय स्थान-प्रसार (Space time continuum) के मापक (Metrical) नियमों पर अपना प्रभाव डालता है तथा उनका निर्णय भी करता है। इस प्रकार हम देखते हैं गुरुत्वाकर्षण बल कोई रहस्यमय बल नहीं है, बल्कि समय स्थान प्रसार की वक्रता पर निर्भर है। जो कुछ हमे चाहिये वह यह है कि हम स्थान की वक्रता के नियमों को खोजें। ये समस्या गणितज्ञों ने अत्यन्त कठिनाई से (Tensers) इत्यादिकी सहायतासे हल की। इस प्रकार द्रव्यसे समय स्थान प्रसारका वक्र हो जाना स्थानके सीमित होने पर भी अनन्त (Infinite) होनेकी सम्भावना हो जाती है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि क्षेत्रविज्ञान गुरुत्वाकर्षण-को भी क्षेत्रिक नियमोंसे समझाने में समर्थ है। ये नियम सब नियामक पद्धति में लागू होते हैं, और जहाँ गुरुत्वाकर्षण बिलकुल नहीं होता है वे जड़व्यूह के नियम हो जाते हैं तथा जब गुरुत्वाकर्षण कमज़ोर होता है तो वे न्यूटनके नियम हो जाते हैं। इन विस्तृत नियमोंका प्रयोगात्मक प्रमाण बुध ग्रहके नीच (Per helion) में, प्रकाश की किरणोंके वक्र हो जाने, इत्यादिमें मिलता है।

यह सब कुछ होते हुए भी क्षेत्रवाद अभी तक पूर्ण रूप से सन्तोषप्रद नहीं है। क्योंकि इसके अनुसार विज्ञानमें क्षेत्र तथा द्रव्य दो सत्यता हैं। क्षेत्र विज्ञान हमें बताता है कि द्रव्य और क्षेत्र की अन्तिम प्रकृति एक ही है, जहाँ क्षेत्रमें शक्ति का समाहार (Concentration) कम होता है, वहाँ द्रव्य में बहुत अधिक होता है। अतएव क्षेत्र-विज्ञान की भाषा में एक गिरते हुए पत्थरकी कल्पना एक बदलते हुए अत्यधिक तीव्र क्षेत्र से कर सकते हैं। हमारे क्षेत्र-विज्ञान का यह अन्तिम उद्देश्य होगा कि हम अपने क्षेत्रिक नियमोंका इस तरह सुधार करें कि वे उन स्थानोंपर जहाँ शक्तिका समाहार बहुत अधिक है न टूट जाय, तथा उन भागोंमें जहाँ क्षेत्रिक नियम लागू होते और उनमें जहाँ द्रव्य है कोई अचानक विच्छेद न हो। यह समस्या अभी तक हल नहीं हुई है। इसी के समानान्तर आवेश तथा विद्युत क्षेत्रकी समस्या है।

पदार्थ छोटे-छोटे कणोंसे बना है, उनकी बनावट तथा वे क्षेत्रसे किस प्रकार प्रतिक्रिया करते हैं इसकी खोज कन्तमवाद (Quantum theory) की समस्या है। कन्तमवाद पर लिखना इस विषय के बाहर है। पर इतना कह देना आवश्यक है कि नवीन कन्तमवादने तरंगवाद तथा कणवादमें मिलन कर दिया है। यांत्रिक विज्ञान तथा कन्तम भौतिक विज्ञान दोनोंमें ही निरूपक संख्याशास्त्र की विधियाँ काममें आती हैं, पर जहाँ एकमें व्यक्तिगत कणको गतिको जान बूझ कर छोड़ दिया जाता है वहाँ दूसरे के अनुसार व्यक्तिगत कणके बारेमें कहना ही असम्भव है। केवल इतना ही कहा जा सकता है कि किसी क्षण उस कणके किसी एक तरह रहने की कितनी सम्भावना है। कन्तमवाद एक परमाणु (Atom) के इलकट्रन (Electron) की गतिका समीकरण लिखना बताता है। इन्हें हम संभावना तरंग कहते हैं। ये त्रिधाविस्तृत प्रसारपर निर्भर है। ये कन्तमवादके क्षेत्रिक नियम हैं और हमें बताते हैं कि इलकट्रनके किसी विशेष स्थानपर मिलने की कितनी सम्भावना है। दो कणोंके लिये षट विस्तृत सम्भावना तरंग होती हैं और वे हमें दो कणोंकी दो विशेष स्थानोंपर मिलने की सम्भावना बताती हैं। इससे यह प्रत्यक्ष है कि सम्भावना तरंग विद्युत चुम्बकीय तरंगसे भी अधिक निगूढ़ (Abstract) है। परन्तु यहीं सब समस्याओंका अन्त नहीं हो जाता है क्योंकि एक या दो अथवा कई कणोंकी समस्यामें तो यान्त्रिक विज्ञानसे कन्तमवाद-पर आना सहज है पर हम तो प्राचीन विज्ञान को छोड़कर क्षेत्र भावनापर आ चुके हैं और यह स्वाभाविक है कि हम क्षेत्रको कन्तमवादकी भाषामें समझने का यत्न करें। पर ऐसा करने में हमें निःसीम विस्तृत प्रसार (Infinite dimensional continuum) की आवश्यकता होगी। जब तक इस समस्याका हल नहीं होता तब तक कन्तमवादके आधार क्षेत्र तथा द्रव्य दोनों रहते हैं, और इसलिये यह हमारी पुरानी एकात्मक क्षेत्रवाद की समस्याकी पूर्ति करने में तनिक भी सहायता नहीं देती।

इसके अतिरिक्त आधुनिक भौतिक विज्ञानके इलक्ट्रन, पोज़ीट्रन, प्रोटन (Proton, निउट्रन (Neutron) इत्यादि कुछ प्रधान कण हैं जिनसे सब द्रव्य बने हैं। अतएव कोई भी वाद जो इनकी वास्तविक प्रकृतिपर प्रकाश नहीं डालता कभी सन्तोषप्रद नहीं हो सकता। आधुनिक विज्ञानके अनुसार इलक्ट्रन तथा पोज़ीट्रन दोनों ही में शक्तिका समाहार अत्यधिक है, पर प्रश्न यह है किस कारण एकका आवेश ऋणात्मक है तथा दूसरेका धनात्मक है और किन बलोंके कारण वे स्थायी (Stable) हैं। कुछ वैज्ञानिकों के विचार में ये सब समस्याएँ सापेक्षतावाद तथा कन्तमवादके सुखद मिश्रणसे हल हो सकती हैं। अभी तक इनका कोई हल विज्ञान के पास नहीं है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि आधुनिक भौतिक विज्ञान-

का कार्यक्रम अति विनीत और सीमित है क्योंकि अब हम अपनी सीमाओंको पहिचान गये हैं। अब प्राचीन विज्ञानकी तरह प्रकृतिकी तमाम घटनाओंको वैज्ञानिक विधियोंसे समझना सम्भव नहीं रहा, बल्कि केवल उन्हीं घटनाओंके बारेमें कहा जा सकता है जो अनुष्ठेय (Observable) है और शेष घटनाओंको दर्शनशास्त्रके तर्क और कल्पनाके लिये छोड़ देना पड़ता है क्योंकि भौतिक विज्ञानमें जब जब ऐसी वस्तुओं की कल्पना की गई जो अनुष्ठेय (Observable) नहीं थी, उसके सामने कठिनाइयाँ आईं और बिना उनके निकाले आगे बढ़ना असम्भव हो गया।

विज्ञान का आधुनिकतम चमत्कार बेतार के तार द्वारा भारत में चित्रों का आना प्रारम्भ

बेतारके तार द्वारा चित्र भेजनेकी प्रणाली द्वारा भारतमें सबसे पहले भारतके नये हाई कमिश्नर सर सैमुअल रंगनाथन का चित्र प्राप्त हुआ है। लन्दन से प्राप्त एक सन्देश में इस प्रणाली को विज्ञान का आधुनिकतम चमत्कार बताया गया है।

भारत सरकार के डाक और हवाई डाक विभाग के सदस्य माननीय सर मोहम्मद उस्मान ने समुद्री तार और बेतारके तार विभागके अध्यक्ष सर एडवर्ड विल्शाके इस प्रणालीके उद्घाटन सम्बन्धी सन्देशके उत्तरमें यह आशा प्रकट की कि युद्धके बाद ब्रिटेन तथा भारत दोनों देशों के लोग इस प्रणाली का खूब प्रयोग करेंगे।

सर मुहम्मद उस्मान का उत्तर इस प्रकार था :—

भारत और ब्रिटेन के बीच बेतार के तार द्वारा चित्रों के यातायात की व्यवस्था के उद्घाटन और बधाई सन्देशके तारके लिये आपको धन्यवाद। मैं पूर्णतया अनुभव करता हूँ कि हमारे अपने-अपने देशोंके लोगोंको परस्पर और भी निकट सम्पर्कमें लानेमें इस प्रणालीका बड़ा महत्व है और मुझे आशा है कि युद्धके बाद दोनों देशोंके लोग इस प्रणालीका खूब प्रयोग करेंगे। इस नयी प्रणाली द्वारा सबसे पहले हमारे हाई कमिश्नरका चित्र भेजकर इस देशके प्रति जो सम्मान भावना प्रकट की गयी है उसका मैं बड़ा आदर करता हूँ।"

सर एडवर्ड विल्शाने निम्न संदेश तार द्वारा भेजा था :—

"भारतको इस देशके साथ मिलाने वाली चित्र स्थानान्तरण प्रणालीके उद्घाटन के अवसर पर मैं आपको विज्ञानके इस आधुनिक चमत्कारके प्रयोगपर बधाई देता हूँ। यह प्रणाली निश्चय ही हमारे अपने-अपने देशों को एक दूसरेके और भी अधिक निकट सम्पर्कमें लायेगी। हमारे उद्देश्योंकी एकता और पारस्परिक सहयोगका इससे अधिक अच्छा और कोई उदाहरण नहीं हो सकता कि इस प्रणाली द्वारा सबसे पहले इस देशमें भारतके सुयोग्य हाई कमिश्नर सर सैमुअल रंगनाथन का चित्र जा रहा है। इस प्रकार यह एक एतिहासिक वस्तु बन गया है।"

नयी प्रणाली का स्वागत

लन्दन और भारतके बीच फोटो-तार व्यवसायके उद्घाटनकी सूचना तथा ब्राडकास्टिंग विभागके सदस्य सर सुलतान अहमद तथा बृटिश सूचना-मंत्री श्री ब्रेकेन ब्रेकेनके बीच संदेशोंके आदान-प्रदान द्वारा स्वागत किया गया है।

सर सुलतान अहमदका संदेश इस प्रकार है :—

'बेतारके तार द्वारा लंदन और भारतके बीच चित्रोंके आदान-प्रदान की इस व्यवस्थाके उद्घाटनका मैं स्वागत करता हूँ। यह एक महत्वपूर्ण सांस्कृतिक सम्बन्धका काम करेगी और इसके द्वारा ब्रिटिश राष्ट्रमंडलके दो महान देशों के बीच सद्भावना तथा समझदारीमें वृद्धि की जा सकेगी।"

श्री ब्रेडेन ब्रेकेन ने निम्न उत्तर दिया :—

'लंदन और भारतके बीच रेडियो-फ़ोटो व्यवस्थाके उद्घाटनके विषयमें आपका सदेश पाकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई है। मैं आपके साथ पूर्णतः सहमत हूँ कि इस व्यवस्थासे हमारे दोनों देशोंके बीचके सम्बन्धोंका सुदृढ़ करने और युद्धके सभी क्षेत्रोंमें जिस संघर्षमें हम लगे हुए हैं उसमें विजय होने तक लगे रहनेके हमारे एक ही संकल्प को दृढ़तर बनानेमें सहायता प्राप्त होगी।"

— भारतीय समाचार

गणित संबंधी मनोरंजन

[लेखक—श्री जगराजबिहारी माथुर, बी० एस-सी०, कानपुर]

१—कृष्णकुमार जज आजकल शायद बँगलोर में हैं। उनके पाँच लड़के हैं और प्रत्येक लड़केकी एक बहन है। बताओ जज साहबके कुल कितने बच्चे हैं।

२—रम्मू कहने लगा कि मैंने आज यह सुना है कि स्वास्थ्य तथा सफ़ाईके विभागने यह घोषित किया है कि बहुत से अज्ञात विषोंकी संख्या बढ़ जाने के कारण ऐसी घटनाओं की संख्या बढ़ गयी है जिनमें दिये हुए विषों का पता नहीं चल पाता है। सन् १९२६ में ऐसी मृत्युओंकी संख्या ११·८ प्रतिशत थी और १९३६ में उनकी संख्या बढ़कर १८·७ प्रतिशत हो गयी थी। क्या तुम रम्मूकी सुनी हुई बातमें कोई बड़ी गलती मालूम कर सकते हो ?

३—गोपीचन्द किसी समय बड़े व्यापारी थे। आप मुरादाबादमें रहा करते थे। एक बार आप पन्द्रह दिनकी छुट्टीमें शिमला चले गये और अपने सेक्रेटरी सतीशचन्द्रको अपने दफ़्तरकी चाबी दे गये क्योंकि आप बहुत बड़े व्यापारी थे इस कारण आपके पास अनेकों पत्र भिन्न-भिन्न स्थानोंसे आते थे। इसलिए आप सतीशचन्द्र से यह भी कह गये कि मेरे नामके जो पत्र आवें वे मेरे पास पता बदल कर भेज देना। परन्तु गोपीचन्द जी अपने लेटर बक्सकी चाबी सतीशचन्द्र को देना भूल गये। कुछ समयके पश्चात जब उन्हें कोई पत्र न मिला तो आपने सतीशचन्द्रको टेलीफोन किया और पत्र न भेजनेका कारण पूछा। सतीशचन्द्र ने साफ़-साफ़ कह दिया कि आप अपने लेटर बक्सकी चाबी तो दे ही नहीं गये थे। गोपीचन्द्रको इस पर बहुत लज्जित होना पड़ा और उन्होंने वायदा किया कि वे चाबी अभी रवाना करते हैं। चाबी डाक द्वारा रवाना कर दी गयी लेकिन गोपीचन्द के नाम फिर भी कोई पत्र न पहुँचा गोपीचन्द ने वापिस आते ही सतीशचन्द्रको निकाल दिया। बताओ गोपीचन्द ने सतीशचन्द्र को ठीक निकाला अथवा नहीं और क्यों ?

४—एक गोल घेरेके चारों ओर कुछ मोटरोंकी दौड़ हुई। राम भी एक सफेद मोटरमें बैठा उसमें भाग ले रहा था। मोहन और हरी एक ओर खड़े तमाशा देख रहे थे। मोहन कुछ देर में पहुँचा था; उसने हरीसे पूछा कि पिछली दौड़में कितनी मोटरें दौड़ीं। हरी कहने लगा कि इस सफेद मोटरके आगे जितनी मोटरें हैं उनकी एक तिहाई और इसके पीछे जितनी मोटरें हैं उनकी दो तिहाई मोटरोंकी दौड़ हुई थी। सफेद मोटर वाले ने बड़ी चतुरता से गाड़ी चलाई। बताओ उस दौड़में कितनी मोटरें दौड़ीं।

५—बुद्धू ग्वाला के पास दो बड़े बालटे हैं जिनको वह 'जग' और 'मग' के नाम से पुकारता है। एक बार जग में पानी भरा था और मगमें दूध; दोनों बाल्टे अन्दर कमरेके कोनेमें रक्खे थे। बुद्धू ने आते ही जगमें से मगमें उतना ही पानी डाला जितना उसमें दूध था फिर उसने मगमें से इतना दूध जगमें डाला जितना कि उसमें पानी रह गया था फिर उसने जगमें से मगमें कुछ दूध डाला कि दोनोंमें तादाद बराबर हो गयी। अब उसने जग को बाहर चौकी पर बेचने के लिये रक्खा। यदि कैलाश बाबू ने केवल एक सेर दूध मोल लिया तो बताओ उन्हे कितना दूध और कितना पानी मिला ?

एक अफ़सर को एक बुद्धिमान् मनुष्य की आवश्यकता थी। उसने अखबार में विज्ञप्ति की कि एक बहुत ही तेज और बुद्धिमान् मनुष्य की आवश्यकता है। बहुत सी अर्जियाँ आई। अफ़सरने उन सबमें से तीन अर्जियाँ छाँटी और उन सबको एक दिन Interview के लिये बुलाया। जब तीनों आ गये तो उनसे उनका नाम पूछा। उन्होंने अपना नाम बलदेव सुखदेव और महादेव बताया। अफ़सर उनको देख कर प्रसन्न हुआ और कहा कि देखो मैंने इतनी सारी अर्जियोंमें से तुमको सबसे बुद्धिमान् समझकर छाँटा है किन्तु मुझको केवल एक आदमी जो तुम तीनोंमें से भी सबसे अधिक चतुर है

चाहिये; इस कारण मैं तुम्हारी परीक्षा लूँगा। यह कहकर उसने अपनी अलमारी से दो खरिया सफेद और नीले रंग की निकाली। अफ़सरने इन्हें तीनोंको दिखाकर कहा कि मैं तुम्हारे माथेपर किसी रंगका एक चिन्ह बना दूँगा। जब मैं बना चुकूँगा तो तुम लोग अपने हाथ ऊपर कर लेना और जो दो मनुष्य दो सफ़ेद रंगके चिह्न देखे या अपने चिह्नका पता लगाले वह अपने हाथ नीचे करले, कोई किसीसे बात न करे। फिर उसने चिह्न बना दिये और कहा "Hands up"। बलदेव ने फिर अपने हाथ झट नीचे कर लिये क्योंकि उसने देखा कि सुखदेव और महादेवके चिन्होंका रंग नीला था। अफसर बलदेवसे से प्रसन्न हुआ और उससे उसके चिह्न का रंग पूछा। बलदेवने कहा 'नीला' अफसर ने कहा, "शाबाश! बस मैंने तुमको अपने यहाँ रख लिया।' बताओ बलदेवने अपने चिह्न का रङ्ग कैसे मालूम किया।

७—बिशनके कुछ मित्र उसको लेकर शर्मा रेस्टॉरॉं में गये और प्रत्येक मित्रने अपनी अपनी पसंदकी एक एक और एक ही सी वस्तुएँ मँगवाईं और अंतमें एक रुपया आठ आने एक पाईका बिल बिशनके सामने आया। बताओ बिशनके कितने मित्र थे।

८—एक मनुष्य ने पाँच मन कपड़े धोनेका साबुन बनाया जिसको उसने सौ बराबर बराबर लम्बी छड़ोंमें काट लिया। फिर उसने अपने चाकूसे प्रत्येक छड़ को पाँच बार बराबर भागोंमें काटा। बताओ पाँच मन साबुनके कुल छोटे छोटे कितने टुकड़े हो गये।

९—रजन और महेन्द्रके पास एक एक घड़ी हैं। परन्तु कोई भी ठीक समय नहीं बताती हैं। उन्होंने लखनऊ जाने वाली गाड़ीसे जाना सोचा। रजन की घड़ी दस मिनट सुस्त है किन्तु वह उसको पाँच मिनट तेज सोचता है। महेन्द्रकी घड़ी पाँच मिनट तेज़ है किन्तु वह उसको दस मिनट सुस्त सोचता है। दोनोंमें से एक की गाड़ी निकल गई बताओ किसकी?

१०—लालजी जब देहलीमें अफ़सर थे तो वह कुछ दिनोंकी छुट्टी लेकर अपने माता पिता चाचा तथा ताऊ के साथ बरेली सैरके लिये जा रहे थे। देहलीसे बरेलीकी दूरी १३२ मील है। लालजीने पहले दर्जेके टिकट घर पर जाकर पूछा कि बरेलीका आने-जानेका क्या किराया है। बाबूने उत्तर दिया कि आने-जानेका किराया एक तरफ़के किरायेका दुगुना है किन्तु यदि आठ मनुष्यकी पार्टी हो तो आने जानेमें केवल एक ओरका किराया लगेगा। लालजी ने आठ मनुष्यका आने-जानेवाला टिकट बनवा लिया किन्तु वे खुद पाँच मनुष्य थे इस कारण तीन अन्य मनुष्योंको राज़ी करना पड़ा और यह तै कर लिया कि उन लोगोंको कोई टिकट लेनेकी आवश्यकता नहीं, केवल वे लोग उनको एक आना प्रति घण्टेके हिसाबसे जितनी देर रेलमें आते-जाते समय रहें दें। पहले दर्जेका साधारण किराया टिकट बाबूने दो पाई प्रति मिनटके हिसाबसे लगाया। इस प्रकार लालजी ने कुल दो रुपये पाँच आने चार पाई बचाये। बताओ रेल की औसत चाल, मील प्रति घण्टा क्या थी?

(१) छः बच्चे कुल जजसाहबके हैं।

(२) यदि मृत्यु संख्या का पता नहीं चलता था तो स्वास्थ्य तथा सफ़ाई विभागने उनकी संख्या ठीक-ठीक कैसे मालूम कर ली।

(३) नहीं, गलत निकाला, क्योंकि इसमें सतीश-चन्द्रका कोई दोष न था; डाकिये ने चाबी ताला पड़े हुए लेटरबक्समें ही डाल दी।

(४) सब मोटरें दौड़ीं।

(५) कैलाशबाबू को एक पाव दूध और तीन पाव पानी मिला।

(६) बलदेवने सोचा कि यदि मेरा रङ्ग सफेद होता तो सुखदेव अपने चिह्नको नीला सोच लेता क्योंकि महादेव दो सफेद चिह्न देखता और हाथ नीचे कर लेता; इसी प्रकार महादेव भी चिह्न को नीला समझ लेता। क्योंकि किसी ने हाथ नीचे नहीं किये इस कारण मेरे चिह्न का रङ्ग नीला है।

(७) सत्तरह

(८) ६००

(९) रजन की गाड़ी निकल गई।

(१०) रेल की औसत रफतार ४९½ मील प्रति घण्टा थी।

———

विज्ञान प्रयोगशालामें जादू भरे खेल

[लेखक—श्री जगेश्वर दयाल वैश्य, एम० ए०, बी०एस-सी०]

प्रत्येक विज्ञान अध्यापक इस बातको भली प्रकार समझता है कि विज्ञानके शिक्षणमें मनोरंजक प्रयोगों का एक महत्वपूर्ण स्थान है। नीचीसे नीची कक्षाके विद्यार्थियों से लेकर ऊँचीसे ऊँची कक्षाके विद्यार्थी समय समय पर अपने शिक्षकसे कुछ रोचक प्रयोगोंके दिखलानेकी प्रार्थना करते हैं।

कुछ प्रयोग तो एकदम जादूके खेलसे प्रतीत होते हैं क्योंकि उन प्रयोगोंके परिणाम बहुत अजीब होते हैं।

कुछ सरल और मनोरंजक प्रयोगोंका संग्रह अध्यापकों के लाभार्थ प्रकाशित किया जा रहा है।

१—परख नली में जादू के रंग पैदा करना

वैज्ञानिक विवेचन—दो घोलोंको आपसमें मिलाने पर दो अन्य नये पदार्थ पैदा हो जाते हैं। यदि उनमेंसे एक पानीमें अघुलनशील होता है तो वह परख नलीमें नीचे बैठना आरम्भ हो जाता है। यदि दोनों घोल पानीके सदृश्य होते हैं तो यह प्रतीत होता है कि पानीमें पानी मिलानेसे एक रंगीन वस्तु पैदा हो गई है।

प्रयोग दिखलाने का ढंग—एक परख नलीमें ⅓ भागतक भरकर एक घोल लो। दूसरी परख नलीमें ⅓ भाग तक दूसरा घोल भर लो। फिर एकको दूसरेमें धीरे-धीरे मिला दो।

लाल रंग—

(१) मरक्यूरिक क्लोराइड (Mercuric chloride) के घोलमें पोटाशियम आयोडाइड (Potassium iodide) का घोल मिला दो।

(२) फैरिक क्लोराइड (Ferric chloride) के घोल में पोटाशियम सल्फोसाइनाइड (Potassium sulphocyanide) का घोल मिला दो।

(३) फैरिक क्लोराइड (Ferric chloride) के घोल में अमोनिया (Ammonia liq) मिला दो।

(४) फैरिक अमोनियम सल्फेट (Ferric ammonium sulphate) के घोलमें सोडियम सैलिसिलेट (Sodium salicilate) का घोल मिला दो।

नीला रंग—

(१) फैरिक क्लोराइड (Ferric chloride) के घोलमें पोटाशियम फैरोसाइनाइड (Potassium ferrocynide) का घोल मिला दो।

(२) फैरस सल्फेट (Ferrous sulphate) के घोल में पोटाशियम फैरीसाइनाइड (Potassium ferricynide) का घोल मिला दो।

(३) कापर सल्फेट (Copper sulphate) के एक हलके घोलमें अमोनिया (Ammonia) मिला दो।

हरा रंग—

(१) मरक्यूरस नाइट्रेट (Mercurous nitrate) के घोलमें पोटाशियम आयोडाइड (Potassium iodide) का घोल मिला दो।

(२) फैरस सल्फेट (Ferrous sulphate) के घोलमें अमोनिया मिला दो।

(३) क्रोमियम सल्फेट (Chromium sulphate) के घोलमें अमोनिया मिला दो।

उड़नशील गुलाबी—

(१) सोडियम कार्बोनेट (Sodium carbonate) के घोल में फिनोल्फथैलीयन (Phenolphthelein) घोलकी कुछ बूँदें मिला दो, रंग गुलाबी हो जायगा। अब किसी हलके अम्ल (Acid) की कुछ बूँदें डाल दो, गुलाबी रंग उड़ जायगा।

(२) फिनोल्फथैलियन (Phenolphthelein) घोलमें अमोनियाकी कुछ बूँदें मिला दो, गुलाबी रंग हो जायगा। कुछ देर बाद रंग अपने आप उड़ जायगा।

(३) पोटाशियम परमैंगनेट (Potassium permanganate) के घोलमें आग्जैलिक एसिड (Oxalic acid का घोल मय गन्धक केअम्ल

(Sulphuric acid) की कुछ बूँदोंके मिला दो, रंग उड़ जायगा।

(४) हलके गन्धक के अम्लमें मैथिल आरेंज (Methyl orange) की कुछ बूँदें डाल दो, गुलाबी रंग आ जायगा। इसमें कासटिक सोडे (Caustic soda) का हलका घोल मिलाने पर रङ्ग पीला हो जायगा।

पीला—

(१) स्टैनिक क्लोराइड (Stannic chloride) के घोलमें सल्फरेटेड हाइड्रोजन (Sulphuretted hydrogen) मिला हुआ पानी मिला दो।

(२) कैडमियम क्लोराइड (Cadmium chloride) के घोलमें सल्फरेटेड हाइड्रोजन (Sulphuretted hydrogen) मिला हुआ पानी मिला दो।

(३) बेरियम क्लोराइड (Barium chloride) के घोलमें पोटाशियम क्रोमेट (Potassium chromate) का घोल मिला दो।

उड़नशील पीला—

(१) लैड नाइट्रेट (Lead nitrate) के घोल में पोटाशियम आयोडाइड (Potassium iodide) का घोल मिला दो। पीला अवक्षेप (Precipitate) बन जायगा। यह गरम करने पर घुल जायगा और ठण्डा होने पर अवक्षेप फिर बन जायगा।

(२) कैलशियम क्लोराइड (Calcium chloride) के घोलमें पोटाशियम क्रोमेट का घोल मिला दो एक पीला अवक्षेप बन जायगा। यह अवक्षेप एसिटिक एसिड (Acetic acid) में घुल जायगा।

काला—

(१) लैड नाइट्रेट (Lead nitrate) के घोल में सल्फरेटेड हाइड्रोजन (Sulphuretted hydrogen) मिला हुआ पानी मिला दो।

(२) मरक्यूरिक क्लोराइड (Mercuric chloride) के घोलमें सल्फरेटेड हाइड्रोजन (Sulphuretted hydrogen) मिला हुआ पानी मिला दो।

उड़नशील काला—

(१) निकिल सल्फेट (Nickel sulphate) के घोल में अमोनियम सल्फाइड (Ammonium sulphide) का घोल मिला दो, एक काले रंग का अवक्षेप बन जायगा जो कि और अमोनियम सल्फाइड मिलाने पर घुल जायगा।

नौरंजी—

(१) अंटिमनी क्लोराइड (Antimony chloride) के घोलमें ज़रा सा हाइड्रोक्लोरिक एसिड मिला कर सल्फरेटेड हाइड्रोजन (Sulphuretted hydrogen) मिला हुआ पानी मिला दो।

ब्राउन—

(१) बिसमथ नाइट्रेट Bismuth nitrate) के घोलमें सल्फरेटेड हाइड्रोजन मिला हुआ पानी मिला दो।

(२) स्टैनस् क्लोराइड (Stannous chloride) के घोलमें सल्फरेटेड हाइड्रोजन मिला हुआ पानी मिला दो।

(३) नैसलर के घोलमें अमोनिया या किसी अन्य अमोनिया लवण का घोल मिला दो।

लाल-ब्राउन—

(१) सिलवर नाइट्रेट (Silver nitrate) के घोलमें पोटाशियम क्रोमेट (Potassium chromate) का घोल मिला दो।

(२) कापर सल्फेट (Copper sulphate) के घोलमें पोटाशियम सायनाइड (Potassium cynide) का घोल मिला दो।

उड़नशील लाल-ब्राउन—

(१) कोबाल्ट नाइट्रेट (Cobalt nitrate) के घोलमें पोटाशियम सायनाइड का घोल मिला दो, एक लाल-ब्राउन अवक्षेप बन जायगा जो कि पोटाशियम सायनाइड और मिलाने पर घुल जायगा।

दूधिया—

(१) सोडियम कार्बोनेट (Sodium carbonate) के घोलमें केलसियम क्लोराइड (Calcium chloride) का घोल मिला दो।

(२) बेरियम क्लोराइड (Barium chloride) के घोलमें हलका गंधक का अम्ल मिला दो।

(३) मरक्यूरस नाइट्रेट (Mercurous nitrate) के घोलमें हलका नमक का तेजाब मिला दो।

(४) अलूमिनियम क्लोराइड (Aluminium chloride) के घोलमें अमोनियम सल्फ़ाइड (Ammonium sulphide) का घोल मिला दो।

(५) मैंगनीज़ सल्फेट (Manganese sulphate) के घोलमें सोडियम हाइड्रोक्साइड (Sodium hoydroxide) का घोल मिला दो।

(६) बिसमथ नाइट्रेट (Bismuth nitrate) के घोलमें काफ़ी पानी मिला दो।

उड़नशील दूधिया—

(१) सोडियम कार्बोनेट (Sodium carbonate) के घोलमें कैलसियम क्लोराइड (Calcium chloride) का घोल मिला दो। तेजाब की कुछ बूँदें मिलाने पर दूधिया अवक्षेप घुल जायगा।

(२) सिलवर नाइट्रेट (Silver nitrate) के घोलमें सोडियम क्लोराइड (Sodium chloride) का घोल मिला दो। तेज़ अमोनिया की कुछ बूँदें मिला दो, दूधिया अवक्षेप घुल जायगा।

(३) लैड नाइट्रेट (Lead nitrate) के घोलमें हलका नमकका तेज़ाब मिला दो। दूधिया अवक्षेप गरम करने पर घुल जायगा और ठण्डा करने पर फिर बन जायगा।

२—जादू के जार (Jar)

चार जार (Jar) सल्फर डाइक्साइड (Sulphur dioxide) के भरकर मेज पर रक्खो।

(१) एक जारमें कुछ गीले रंगीन फूल डाल दो, उनका रङ्ग उड़ जायगा।

(२) दूसरे जार में पोटासियम परमैंगनेट (Potassium permanganate) का घोल मिला दो, इसका रङ्ग उड़ जायगा।

(३) तीसरे जारमें सोडियम हाइड्रोक्साइड (Sodium hydroxide) का घोल जो फिनोलफ़थैलीयन (Phenolphthelein) की कुछ बूँदें डाल कर गुलाबी कर दिया गया है, डाल दो, इसका रङ्ग उड़ जायगा।

(४) चौथेमें पोटाशियम डाइक्रोमेट (Potassium dichromate) का घोल मिला दो, इसका रङ्ग हरा हो जायगा।

३—धूएँ के बादल

(१) एक जार (Jar) में तेज़ नमकके तेज़ाब की कुछ बूँदें डालकर उसको अच्छी प्रकार हिला दो ताकि वह तेज़ाब जारके चारों ओर (अन्दर की तरफ़) लग जाय। अब इस जारको एक ऐसे काँचके ढक्कन से ढक दो जिस पर तेज़ अमोनिया लगा दिया हो। जार एकदम धूएँ के बादलोंसे भर जायगा।

(२) एक तशतरी में कुछ तेज़ नमकका तेज़ाब भर लो। अब इसमें एक क्रुसीबिल (Crucible) तेज़ अमोनिया का भरकर इस प्रकार रख दो कि वे एक दूसरे से न मिलें। तशतरी में से एकदम धूएँ के बादल उठने लगेंगे।

(३) दो जार लो, एकमें अमोनिया गैस भरो और दूसरेमें नमकके तेजाबकी गैस।* अब दोनोंको एक दूसरे के ऊपर रक्खो और बीचके कांचके ढक्कन दोनोंके निकाल दो, दोनों जार एकदम धुएँ के बादलोंसे भर जायँगे।

(४) एक फिलटर कागज़ के टुकड़ेको तारपीन तेल (Turpentine oil) में खूब भिगा लो। फिर इसको क्लोरीन (Chlorine gas) के एक जारमें रक्खो। यह एकदम जल उठेगा और बहुत धुआँ पैदा करेगा।

(५) एक जलती मोमबत्ती एक क्लोरीन (Chlorine) के जारमें रक्खो, यह हलकी लाल रोशनीसे जलती रहेगी और बहुत धुआँ पैदा हो जायगा।

४—लज्जावान फूल

सफेद स्याही सोख कागज़का एक टुकड़ा लो। उसमें से छोटे-बड़े १५-२० फूलकी आकृति जैसे टुकड़े काट लो। इनको फिनौल्फ़थैलियनके घोलमें तर करके सुखा लो।

---

*अथवा एकमें नमकके तेज़ तेज़ाबकी कुछ बूँदें और दूसरेमें तेज़ अमोनियाकी कुछ बूँदें डालकर दोनोंको अलग अलग हिला लो। फिर बन्द करके मेज़ पर रख दो।

अब एक पटरेके टुकड़े पर अबरी चिपकाकर उसके चारों ओर अबरीकी गोट लगा दो। इसके पीछे एक पटरेका टुकड़ा इस प्रकार और लगा दो कि वह मेज़पर टिकाकर रक्खा जा सके।

इस पटरेके बीचमें एक तारके टुकड़ेकी सहायतासे नीचे बड़े, फिर छोटे और फिर सबसे छोटे ब्लौटिंगके कटे और घोलमें तर करके सुखाये हुए टुकड़े लगा दो। यह एक सफ़ेद फूलके समान प्रतीत होंगे।

इस फूलपर अमोनियाकी फुआर डालनेसे उसका रंग गुलाबी हो जायगा। एक मिनटके बाद यह गुलाबी रंग अपने आप उड़ जायगा।

५—नीली स्याही के धब्बे छुड़ाना

सोडियम हाइड्रोसलफाइट (Sodium hydrosulphite) का तेज़ घोल बनाओ। एक कपड़े पर नीली स्याही डालकर उसको इस घोलमें डालने पर स्याहीके धब्बे एकदम दूर हो जायँगे। (इस घोलमेंसे निकालकर कपड़ेको स्वच्छ पानीसे भली प्रकार धो लेना चाहिये।)

६—देवता बनाम राक्षस

दो गैस-होल्डर लो। एकमें आक्सीजन गैस भर लो दूसरेमें कार्बन डाईआक्साइड गैस। दो मूर्तियाँ बनाओ एक देवता की और एक राक्षस की। देवताकी मूर्तिका सम्बन्ध आक्सीजन गैस होल्डरसे इस प्रकार करो कि खटका दबानेसे आक्सीजन गैस उसके मुँहमें से निकले (खटका जूतेके पास रहे ताकि जूतेसे आसानीसे दबाया जा सके)।

इसी प्रकार राक्षसवाली मूर्तिका सम्बन्ध दूसरे गैस-होल्डरसे कर दो ताकि खटका दबानेसे कार्बन डाई-आक्साइड उसके मुँहमेंसे निकले (इसका खटका दूसरे जूतके पास रक्खो)।

एक जलती मोमबत्ती लो। इसको राक्षसके पास लाओ और ज़रा खटका दबा दो, वह बुझ जायगी अर्थात् राक्षस अन्धकार फैलाते हैं। फिर उसको फौरन देवताके पास ले जाओ और खटका ज़रा दबा दो, वह एकदम जल उठेगी अर्थात देवता प्रकाश फैलाते हैं। फिर एक बार उसे राक्षसके पास लें जाओ तो वह उसे फिर बुझा देगा (अर्थात जो कुछ देवता करता है राक्षस उसको नष्ट करना चाहता है।

७—पानी में हाथ न भीगे

एक बीकर (Beaker) लो, उसमें एक अँगूठी रखकर उसमें ¾ तक पानी भर दो। अब बीकरमें लाइकोपोडियम पाउडर (Lycopodium powder) छोड़ दो। यह पानीकी सतहपर तैरने लगेगा। अब उँगलियाँ डालकर अँगूठी उठा लो, उँगलियाँ पानीमें नहीं भीगेंगी।

८—रंगीन फूल

सफ़ेद काग़ज़के कुछ फूल बनाओ, कुछ गुलाबकी शकलके, कुछ गेंदेकी शकलके और कुछ अन्य फूलोंकी शक्लके। अब जिस रङ्गका फूल पाया जाता है उसी रङ्ग का सूखा बारीक रङ्ग उस फूल पर छिड़क दो। (जो कुछ रङ्ग फूलसे चिपटे नहीं उसको झाड़कर इकट्ठा कर लो।)

अब इन फूलोंको गुलदस्तोंमें सजाकर रख दो। अलकोहल की हलकी फुआर देने से यह सब सफ़ेद फूल रङ्ग-बिरंगे हो जायँगे।

९—लकड़ी के बुरादे में आग

एक क्रुसीबिल (Crucible) में लकड़ीका बुरादा गरम करो। अब इसके ऊपर तेज़ शोरेके तेज़ाब की कुछ बूँद डाल दो, बुरादा एकदम जल उठेगा।

१०—पानी से आँच

(१) कैलसियम फौसफाइड (Calcium phosphide) के कुछ टुकड़े ज़रा गुनगुने पानीमें डालनेसे पानीमें से आँच निकलने लगेगी।

(२) पोटासियम धातुके एक छोटेसे टुकड़ेको फिल्टर पेपर से सुखाकर पानीमें छोड़ दो। पानीमें से आग निकलने लगेगी।

(३) एक बीकरमें ज़रा सा फासफोरसका टुकड़ा रखकर उसको पोटाशियम क्लोरेट (Potassium chlorate) के रवों (Crystals) से ढक दो और बीकरमें तीन चौथाई पानी भर दो। अब एक पीपट या पोली नली द्वारा तेज़ गन्धकके तेज़ाबकी कुछ बूँदें

ठीक उस ढेरके ऊपर छोड़ दो। चटपटकी आवाज़ होगी और आँच की चिनगारियाँ पानीके अन्दर भागी-भागी फिरेंगी।

(४) पीले फॉसफ़ोरसका कार्बन डाइसलफाइडमें घोल बनाओ। इसको एक चौड़े मुँहकी शीशीमें रख दो। इस घोलमें एक कागज़का टुकड़ा भिगोकर बाहर हवामें रख दो। कार्बन डाइसलफाइडके उड़ते ही वह कागज़ जल उठेगा।

११—दिल दहलानेवाला धड़ाका

पोटाशियम क्लोरेटके कुछ रवे लो और उनको एक रद्दी कागज़के टुकड़े पर रक्खो। इन रवोंके ऊपर पीले फॉसफोरसका एक ज़रा सा टुकड़ा रख दो। फॉसफोरसका टुकड़ा बिलकुल सूखा नहीं होना चाहिये। इस कागज़की पुड़िया सी बनाकर बराम्देके एक कोनेमें डाल दो। जब फॉसफोरस सूख जायगा तो एक बहुत तेज़ धड़ाकेके साथ उस पुड़ियाके ज़रा-ज़रा से टुकड़े हो जायँगे।

(२) आयोडीनके कुछ रवों का चूरा करके एक परख नली में रक्खो। इसमें तेज़ अमोनिया मिला दो। एक भूरा अवक्षेप बैठ जायगा। इसको २० मिनट तक नीचे बैठने दो, फिर छान लो। यह अवक्षेप फिल्टर पेपर पर रह जायगा। इसको बिलकुल सूखनेसे पहिले ही कागज़के ज़रा ज़रा से टुकड़ों पर सूखनेके लिए रख दो।

बिलकुल सूखनेसे पहिले एक गरमकी हुई सुई की नोकसे इसको छुआनेसे एक तेज़ धड़ाका होगा।

१२—रंग बिरंगी रोशनी

(१) हरी—दो भाग बेरियम क्लोरेट (Barium chlorate) और एक भाग बूराको अच्छी प्रकार मिलाकर रख लो। एक एसबैसटासके टुकड़े पर इसमें से कुछ निकाल कर रक्खो और एक पोली नलीकी सहायतासे तेज़ गन्धकके तेज़ाब को कुछ बूँदें उस पर टपका दो। बस डालते ही वह हरी रोशनीसे जल उठेगा।

(२) हलकी नौरंजी—पोटाशियम क्लोरेट दो भाग और बूरा १ भाग। तरकीब ऊपर जैसी ही।

(३) लाल—स्ट्रोनशियम नाइट्रेट सात भाग, उसके ऊपर पोटाशियम क्लोरेट १ भाग और बूरा ½ भाग। तरकीब ऊपर जैसी ही।

१३—शीशी में अन्डा

एक अण्डा लो और एक शीशी जिसका मुँह अण्डे की मोटाईसे कुछ ही छोटा हो। अण्डेको दो या तीन दिन तक गिलेशियल एसिटिक एसिड (Glacial acetic acid) में डाल रक्खो। फिर निकालकर उँगलियों की मददसे उसे सब तरफ़ से पिल-पिला करलो और धीरे धीरे दबाकर शीशी में उतार दो। अब अण्डेको शीशी के अन्दर साफ़ पानी से तीन-चार बार धोकर शीशी में फार्मलडिहाइड (Formaldehyde) का घोल शीशीमें डाल दो। अण्डा फिर ऊपरसे सख्त हो जायगा।

१४—जार (Jar) का राक्षस

एक जारमें शुद्ध नाइट्रिक आक्साइड (Nitric oxide) इकट्ठा करो। इस गैसके जार का ढक्कन उठाते ही राक्षस दुर्गन्धयुक्त ब्राउन रंगके धुएँके रूपमें जार से बाहर निकलने लगेगा।

१५—क्रूसीबल का राक्षस

एक क्रूसीबल (Crucible) में तेज़ शोरेका तेज़ाब लेकर उसको ढक रख दो। अब ढक्कन उठाकर चुपचाप तांबेका टुकड़ा या बुरादा उसमें डाल दो। बस क्रूसीबिलका राक्षस उसमें से बाहर निकलकर आने का प्रयत्न करने लगेगा।

१६—रवों के अक्षर व शक्ल

तांबेके तार से अक्षर व शक्ल बना लो और उनके ऊपर कच्चा सूत लपेट दो। अब इनको फिटकरीके एक गरम, तेज़ घोलमें लटका दो। अक्षरों व शक्लों पर फिटकरीके रवे जम जायँगे।

फिटकरीके गरम घोलमें यदि कोई रङ्ग मिला दिया जाय तो रवों पर भी वही रङ्ग आ जायगा। रङ्ग बिरंगे अक्षर व शक्ल और भी सुन्दर मालूम होंगे।

१७—सीसे का पेड़

कुछ लैड एसिटेट (Lead acetate) को डिसटिल्ड पानीमें घोल लो। एक दिन तक इसे रखनेके बाद इसको छान (Filter) लो। अब एक जस्ता (Zinc) की चादरका टुकड़ा लेकर उसे इस प्रकार मोड़ो कि पेड़का तना और शाखाएँ उससे बन जायँ। अब एक बड़ा जार (Jar) लेकर उसकी पेंदीमें कुछ

रेत डालकर इस पेड़को उसमें लगा दो। लैड एसिटेट का घोल धीरे-धीरे जारमें भर दो। इसको २४ घण्टे के लिये अलग रख दो। अगले दिन जार में सीसे का चमकता हुआ सुन्दर पेड़ पाओगे।

१८—रासायनिक उपवन

एक सुन्दर उथला काँचका बर्तन लो। इसकी पेंदी में तीन-चार इञ्च मोटी तह स्वच्छ बालू रेतकी फैला दो, यदि बालू रेत दो-तीन रङ्गका मिल जाय तो और भी अच्छा है। इस रेतके ऊपर कुछ लोहेके टेढ़े-मेढ़े छोटे-बड़े टुकड़े, कुछ जस्ता के बहुत छोटे-छोटे टुकड़े, कुछ अल्यूमिनियम के टेढ़े-मेढ़े टुकड़े और कुछ नीले थोथे के वे इधर-उधर रख दो। अब इसमें बहुत धीरे-धीरेसे (ताकि रेत और टुकड़ों की जगह में कुछ अन्तर न आवे) सोडियम सिलिकेट (Sodium silicate) का तेज़ घोल छोड़ दो। इसको तीन-चार दिन तक बिना छेड़े हुए रक्खा रहने दो। बस रासायनिक उपवन तैयार हो जायगा। पानीमें हलका रग मिलाकर इस पानी को इस बर्तनमें धीरे-धीरे डालते रहो जब तक कि बर्तन के अन्दर का सोडियम सिलिकेट का सब घोल बाहर न निकल जाय।

१९—पुष्प बैरोमीटर

(१) एक सफ़ेद ब्लाटिंग कागज़का टुकड़ा लेकर फूलकी पङ्खड़ियाँ बनानेके लिये छोटे बड़े साइज़के १५-२० टुकड़े काट लो। इनको कोबाल्ट क्लोराइड (Cobalt chloride) के एक तेज़ घोलमें अच्छी प्रकार तर करके सुखा लो। इनको एक सुन्दर गोट वाले पट्टे पर एक तारसे फूल के रूपमें टाँक दो।

जब फूलोंका रंग नीला दिखलाई पड़ता है तो इसका अर्थ है कि मौसम खुश्क और गर्म है अथवा हो जायगा, जब फूल गुलाबी दिखलाई दे तो इसका अर्थ है कि मौसम नम और वर्षायुक्त है अथवा होने जा रहा है।

(२) एक गुलाबी ब्लाटिंग कागज़ का टुकड़ा लेकर फूलकी पङ्खड़ियोंके समान १५-२० छोटे-बड़े साइज़के टुकड़े काट लो। इनको नमक के एक तेज़ घोलमें तर करके सुखा लो। अब इनको एक सुन्दर पट्टे पर तारसे फूलके रूप में टाँक दो।

यदि वर्षा आने को है या हो रही है तो फूल का रंग गुलाबी दिखलाई पड़ेगा। खुश्कीके समय फूलका रंग सफ़ेद दिखलाई पड़ेगा।

रेलगाड़ी-संचालन नियम (System of Working Trains)

[लेखक—श्री आनन्दमोहन, बी०एस-सी०, कमर्शियल-सुपरिंटेंडेंट, ई० आई० आर०]

१—इस लेखमें उस प्रबन्ध विधिका वर्णन किया गया है जिसके द्वारा रेलगाड़ियाँ एक स्टेशनसे दूसरे स्टेशन तक सुरक्षित ले जाई जा सकती हैं। यद्यपि कभी-कभी शोचनीय आकस्मिक घटनाएँ हो जाती हैं फिर भी यदि इस पर ध्यान दिया जाए कि एक सालमें कितनी रेलगाड़ियाँ चलीं और कितने करोड़ यात्री रेलोंसे चले, और उनमेंसे ट्रेनोंमें कितनी घटनायें हुईं और कितने यात्री घायल या आहत हुए तो पता लगेगा कि रेलयात्रा बहुत ही निरापद है तथा और सब तरहकी यात्रा-प्रणालियों से अधिक सुरक्षित है।

२—रेलयात्राकी आज कलकी निर्विघ्नता एकदम आप-ही-आप नहीं हो गई है बल्कि वर्षोंके प्रयत्न और प्रयोगोंके फलस्वरूप ही ऐसा हुआ है। आरम्भिक अवस्था में रेलोंके बहुत थोड़ी गतिसे चलने पर भी शोचनीय घटनायें कहीं अधिक हुआ करती थीं। धीरे-धीरे उन्नति होती गई जिसके कारण आजकल रेलगाड़ियोंके क्रमशः अधिक-अधिक द्रुत गतिसे चलते रहते हुए भी घटनाओं का होना दिन प्रतिदिन कम होता जा रहा है।

३—रेलगाड़ियोंका सुरक्षित चलना बहुत सी बातों पर निर्भर होता है पर इसका बहुत कुछ श्रेय रेलगाड़ी संचालन प्रणाली (System of working) अर्थात् रेलगाड़ियोंको एक स्टेशनसे दूसरे स्टेशन तक जानेके नियमों को है। ये नियम बड़े सोच विचार कर बनाए जाते हैं। इन नियमोंसे सब कर्मचारी बाध्य होते हैं। इन्हीं नियमों के द्वारा गाड़ियों का चलना रुकना इत्यादि होता है। यदि ये नियम न हों और स्टेशन मास्टरों तथा अन्य

कर्मचारियोंको छूट हो कि जैसे चाहे जिस नियमसे चलें तो एक दिन में ही सारेमें गड़बड़ी फैल जाये और न मालूम कितनी घटनायें हो जायें। उदाहरणार्थ, स्टेशनोंके अन्दर इञ्जनोंसे मिलकर डिब्बे इधर से उधर, इस लाइनसे उस लाइन पर रक्खे जाते हैं इसलिए रक्षाके लिए यह नियत होने की आवश्यकता होती है कि यदि स्टेशनके अन्दर इस तरहसे डिब्बे इधर से उधर रक्खे जा रहे हैं, तो किन हालतों में दूसरे स्टेशनसे आनेवाली गाड़ियाँ उस स्टेशनके अन्दर लाई जा सकती हैं और किन हालतों में नहीं। और अगर नहीं तो फिर किस स्थान पर और किस तरह रोकी जाएँ। यह साफ ही है कि यदि ऐसे नियम न बनाये जायेंगे तो आनेवाली ट्रेनोंके स्टेशनके अन्दर इधर से उधर ले जाए जानेवाले डिब्बोंसे भिड़ जाने की बहुत ही सम्भावना है। इसी तरहके विषयों पर नियत रेलगाड़ी संचालन नियम के अन्तर्गत होते हैं।

४—प्रस्तुत लेखमें इन रेलगाड़ी संचालन नियमों का ही बहुत संक्षिप्त वर्णन किया गया है।

५—कई तरहके रेलगाड़ी संचालन नियम काममें लाए जा सकते हैं जैसे—

१—सम्पूर्ण-रोक (एबसोल्यूट ब्लाक, Absolute Block)

२—स्वयंचल-रोक (आटोमेटिक ब्लाक, Automatic Block)

३—रिक्त खण्ड (सेक्शन क्लीयर, Section clear)

४—अनुगामी ट्रेन (फालोइङ्ग ट्रेन्स, Following trains)

५—कर्मचारी और टिकट (ट्रेन स्टाफ और टिकट, Train staff and ticket)

६—प्रदर्शक गार्ड (पायलेट गार्ड Pilot guard)

७—एकाकी इञ्जन (वन एञ्जिन, One Engine only)

६—परन्तु भारतवर्षमें उपरोक्त नियमोंमें से केवल सम्पूर्ण-रोक प्रणाली (एबसोल्यूट ब्लाक सिस्टम) ही के द्वारा ट्रेनों का काम प्रत्येक रेलवे पर अधिकतर चलाया जाता है। किसी रेलवे पर या उसके किसी अंश पर रेलवे बोर्डकी आज्ञा लेकर उपरोक्त नियमोंमें से किसी दूसरे नियमसे भी रेलगाड़ियाँ चलाई जा सकती हैं। इस लेखमें एब्सोल्यूट ब्लाक सिस्टमका ही संक्षिप्त वर्णन किया जायगा।

७—एबसोल्यूट सिस्टम को समझनेसे पहले एबसोल्यूट ब्लाक शब्द का अर्थ समझना चाहिये। साधारण अर्थमें एबसोल्यूट ब्लाक शब्दका अर्थ 'पूरी रुकावट' समझा जायगा पर रेलवे नियमोंमें इस शब्दका अर्थ है रेलवे लाइन का एक खण्ड जिस पर कोई रुकावट न हो। हर ट्रेन और दूसरी किसी ट्रेन शंटिंग एञ्जिन, डिब्बा या अन्य किसी तरहकी चल या किसी तरहकी अचल रुकावट (Obstruction) के बीचमें एक खण्ड ऐसा रहना चाहिये जिस पर कोई रुकावट न हो जिससे वहाँ ट्रेन आपसमें टकरा न सके। एबसोल्यूट ब्लाकसे इसी खण्डका आशय है और एबसोल्यूट ब्लाक सिस्टम रेलगाड़ी संचालन की वह रीति है जिसमें किसी दो ट्रेनों इत्यादिके बीचमें ऐसा खण्ड अवश्य हो।

८—एबसोल्यूट ब्लाक सिस्टममें सब स्टेशनों को दो प्रकारके भागोंमें बाँटा गया है अर्थात् ब्लाक स्टेशन और दूसरे जो ब्लाक स्टेशन न हों।

९—ब्लाक स्टेशन (Block station) उस स्टेशन को कहते हैं जहाँ रेल ड्राइवरको नियमके अनुसार उस स्टेशन और दूसरे ब्लाक स्टेशनकी बीचकी लाईन पर, जिसको ब्लाक सेक्शन कहते हैं, प्रवेश करनेके लिए आज्ञा लेनी होगी। ब्लाक स्टेशनोंके अतिरिक्त जो दूसरे स्टेशन हैं वे एक ब्लाक स्टेशन और उससे अगले ब्लाक स्टेशन के बीचमें सिर्फ ठहरनेके लिए स्थान या फ्लैग स्टेशन (Flag stations) होते हैं उनसे किसी ब्लाक सेक्शन की सीमा नहीं करती।

१०—अब जहाँ ट्रेनोंका काम एबसोल्यूट ब्लाकके तरीके पर चलाया जाता है, वहाँ यह नियम है।

क. कोई ट्रेन ब्लाक स्टेशनसे आगे न जाने पायेगी जब तक अगले ब्लाक स्टेशनसे आगे बढ़नेका अधिकार न मिल जाय।

ख. यह उस समय तक न दिया जायगा, जब तक कि वह पटरी जिस पर उपरोक्त ट्रेन को चलना है इस ब्लाक स्टेशनकी जहाँसे ऐसी आज्ञा मिलती है पहिले स्टाप

सिगनेल तक हो नहीं बल्कि उससे आगे और भी कुछ 'नियत दूरी' तक साफ़ न हो।

ग जब तक कोई विशेष आज्ञा न हो तब तक यह 'नियत दूरी' चौथाई मीलसे कम नहीं होनी चाहिये।

उपरोक्तको समझनेके लिये नीचेके चित्रकी मदद लेने से सरलता होगी।
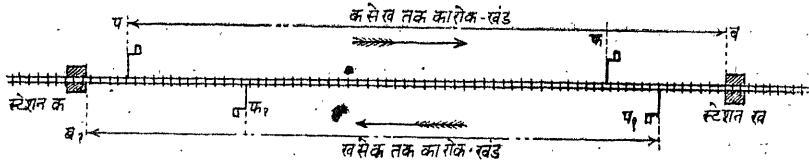
११—कल्पना कीजिये कि क और ख दो ब्लाक स्टेशन (Block stations) है। क पर एक रेलगाड़ी ख के जानेके लिये खड़ी है। क स्टेशन पर एक नियत स्थान है और ख (station) पर फ भी एक नियत स्थान है तब एबसोल्यूट ब्लाक सिस्टम के अनुसार रेलगाड़ी क स्टेशन पर नियत प स्थान से ख स्टेशन की तरफ बिना ख स्टेशन के आज्ञा मिले न बढ़ पायेगी। तथा ख स्टेशन ऐसी आज्ञा जभी देगा जब—

१. न केवल प से लेकर फ तककी पटरी बिल्कुल साफ़ हो बल्कि

२. पटरी फ से भी कुछ 'नियत दूरी' आगे ब तक खाली हो। यह 'नियत दूरी' जब तक कोई विशेष आज्ञा न हो तब तक चौथाई मीलसे कम न होनी चाहिये। इस दूरीके चौथाई मीलसे कम रखनेकी आज्ञा गवर्नमेंट इन्सपेक्टर आफ रेलवेज़ Government Inspector of Railways) ही दे सकता है। इस प ब दूरीको क स्टेशनसे ख स्टेशनकी दिशाका रोक खंड (Block section) कहते हैं और क से ख के गाड़ी जानेकी आज्ञा ख जभी देगा जब यह खंड बिल्कुल खाली हो। इसी प्रकार ख स्टेशनसे क स्टेशनके जानेके लिये रोक-खंड प, ब है और ख से क को गाड़ी जाने की आज्ञा क जभी देगा जब रोक-खंड प ब बिल्कुल खाली हो।

१२—अब यह देखना है कि स्टेशनों पर ब्लाक सेक्शन की हदें किस चीज़से कायम हैं और नियत स्थान P, Q और R को किन चीज़ोंसे अंकित किया जाता है। लेकिन इसको समझनेसे पहले सिगनेलोंका थोड़ा ज्ञान प्राप्त कर लेना लाभकर होगा।

१३—सिगनेलका तात्पर्य है कि ड्राइवरको पहलेसे ही यह बतलाया जा सके कि आगे रेलका पटरियोंका क्या हाल है। इसमें एक स्तंभ (Post) होता है और उसके ऊपर एक हत्था (Arm) होता है। इसी हत्थेकी पोजीशनसे ड्राइवरको आगेकी लाइनका पता चलता है।

१४—सिगनेल कई तरहके होते हैं। जिनमें से मुख्य स्टाप सिगनेल कहलाते हैं और प्रस्तुत लेखके लिये इन्हीं का ज़िक्र यहाँ काफ़ी है। स्टाप सिगनलोंमें हत्थेका किनारा चौखूंटा रहता है। जिधरके ड्राइवरको इंगित करनेके लिये सिगनल होता है उस तरफ़से सिगनलका हत्था लाल-सा होता है। दूसरी तरफ़ का सफ़ेद रंगा होता है तथा किनारेसे समानान्तर दोकाली लाइनें खिची होती हैं।

१५—स्टाप सिगनल सूचनाएँ देनेके लिये होता है अर्थात्

क ठहरो (Stop)

ख आगे बढ़ो

१६—'ठहरो' सूचना देनेके लिये हत्था (Signal arm) स्तंभ (Signal post) पर एक दम लम्ब रहता है जैसा ऊपरी स्थितिमें दिखाया गया है। रातके समय जबकि हत्था दिखलाई नहीं पड़ता तो यह सूचना लैम्पके सामने लाल शीशेके आनेसे पैदा हुई लाल रोशनीसे दी जाती है। जब ड्राइवर को यह सूचना मिलती है तो उसके स्टाप सिगनल पहुँचनेके पहिले ही रेलको एकदम रोकना होता है और जब तक सिगनलका हत्था न गिरा दिया जाए या रातके समय रोशनी बदलकर हरी न कर दी जाए तब तक रेलगाड़ी आगे नहीं बढ़ सकती। दूसरी अर्थात् 'चले जाओ" सूचना देनेके लिए हत्था नीचेवाले चित्रकी स्थितिमें

रहता है यानि यह क्षितिज-रेखा (पड़ी दिशा) से ४५ से ६०° अंशके कोण तक झुकना होता है। यह एक दूरस्थ जगहसे तारोंके खींचनेसे संचालित किया जाता है। रातके समय यह सूचना लैम्प के सामने एक हरे शीशेके आ जानेसे पैदा हुई हरी रोशनी द्वारा दी जाती है। जब ड्राइवरको स्टाप सिगनलसे यह सूचना मिलती है तो वह इस सिगनलसे आगे ट्रेनको लेकर जा सकता है।
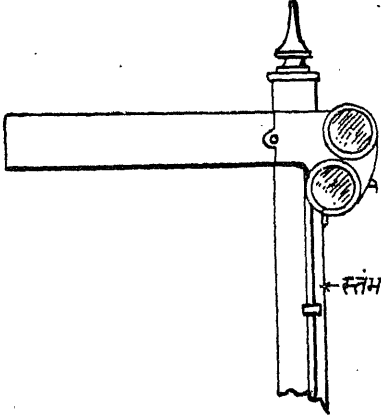
१७—इन स्टाप सिगनलों द्वारा ब्लाक सेक्शन की हदें कायम की जाती हैं अर्थात् पैरा ११ में दिये चित्रमें दिखलाये नियत स्थान प, फ और ब अङ्कित होते हैं। प स्थान जिस लाइनसे उसका सरोकार हो उस लाइन को दूसरी लाइनोंसे मिलानेके लिए जितने कनैक्शन हों उन सबके बाहर होता है। उसको अङ्कित करनेके लिये वह क स्टेशनसे ख की तरफ जानेके लिये आज्ञा देने वाला सबसे बाहर वाला सिगनल जिसको अन्तिम (लास्ट) स्टाप-सिगनल (Last stop signal) कहते हैं लगा होता है। इस स्थानसे ब्लाक सैक्शन प ब आरम्भ होता है। ब्लाक सैक्शन प ब खतम होनेसे नियत दूरी या 'पर्याप्त दूरी' (Adequate distance) पहिले फ स्थान पर स्टेशन ख का पहला स्टाप सिगनल (First stop signal) लगा होता है। फ से नियत दूरी बाद ब्लाक सैक्शन प ब खतम होता है। यह नियत दूरी इतनी काफ़ी होती है कि यदि कोई ड्राइवर स्टाप सिगनल फ पर उस समय जिस समय कि वह 'ठहरो' (Stop) स्थितिमें हो ट्रेनको न रोक सके और रेलगाड़ी फ स्टाप सिगनलसे आगे निकल जाए, तो कम से कम ब के आने से पहले तो जरूर ही रुक जाए चाहे गाड़ी कितनी ही रफ़्तार पर हो। यदि इस 'नियत दूरी' फ ब का नियम न होता तो ड्राइवरोंको फ सिगनल पर न रोक सकने की अवस्थामें उन गाड़ियोंके 'फ' के आगे खड़ी गाड़ी या डिब्बोंसे लड़ जानेकी बड़ी सम्भावना रहती। ब स्थान पर स्टाप सिगनलका सदा होना आवश्यक नहीं है पर अधिकतर स्टेशनोंमें इस स्थान पर भी एक स्टाप सिगनल होता है।
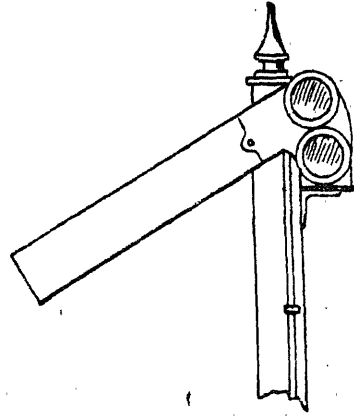
१८—उपरोक्त वर्णनसे पाठक देख सकेंगे कि एबसोल्यूट ब्लाक द्वारा किस तरह ट्रेनोंके निर्विघ्न चलनेका प्रयत्न किया जाता है और जनताकी सुरक्षाके लिए उनका होना और उन पर अमल होना कितना आवश्यक है।

रबड़ की खेती का नया क्षेत्र

यह संव भारतमें रबड़के उत्पादनको उत्तेजन देनेके लिये केन्द्रीय, प्रान्तीय और देशी राज्योंकी सरकारों तथा उत्पादकों की संस्थाओंके संयुक्त प्रयत्नोंका परिणाम है। वर्त्तमान योजनाके फलस्वरूप यह आशा की जाती है कि रबड़के उत्पादनमें, जो इस समय १५,५०० टन वार्षिक है, इस फसलमें ५०० टन की तथा अगली फसलमें १,००० टन की वृद्धि होगी। प्राय: १७,००० एकड़ भूमिमें नयी खेती करनेके आज्ञापत्र दिये जा चुके हैं और अनुमान किया जाता है कि १९४३ की फसलके अन्त तक ५०,००० एकड़में रबड़की नयी खेती हो जायगी।

वनस्पतिके उपयोग

[लेखक—श्री अनन्त प्रसाद मेहरोत्रा, एम० एस-सी०]

वनस्पति ही जीवित प्राणियोंका वास्तविक आधार है। किसी सीमा तक मनुष्य तथा बहुतसे जानवर शाकाहारी हैं। कुछ मनुष्य तथा जानवर यदि मांसाहारी हैं तो उनके आहारोपयोगी जानवर भी अपने आहारके लिए अन्तमें वनस्पति पर अवलम्बित हैं। इससे बढ़कर वनस्पति का और क्या उपयोग हो सकता है? जीव-संसार यदि पेड़ोंकी छायाको अपने आरामका स्थान बनावें तो यह अप्राकृतिक नहीं है। यह तो मनुष्यके मस्तिष्कका कमाल है कि वनस्पतिके अगणित उपयोग हैं। वास्तवमें समस्त संसारमें वनस्पतिका उपयोग एक बहुत बड़ा महत्व रखता है। मोटे रूपसे वनस्पतिके कुछ उपयोग निम्नलिखित हैं:—

(१) खाद्य पदार्थ (मनुष्यों तथा जानवरोंके लिए।)
(२) ईंधन
(३) पेड़ोंकी लकड़ीके अन्य अगणित-उपयोग
(४) औषधियोंमें उपयोग
(५) रंग, वनस्पति घी, इत्यादि।

वास्तवमें हम प्रत्येक पेड़से भिन्न-भिन्न प्रकारके लाभ उठा सकते हैं। नीचे कुछ पेड़ोंके विषयमें लिखा जाता है।

(१) अदरक—संस्कृत और चीनके साहित्यसे यह प्रकट होता है कि अदरक बहुत प्राचीनकालसे औषधि और मसालेके उपयोगमें लाई जाती है। ग्रीस व रोमके इतिहासमें भी इसका वर्णन है। अदरकसे एक प्रकारकी शराब भी बनाई जाती है। इसके महक व स्वादके कारण लोग इसे तरह-तरहके स्वादिष्ट भोजनोंमें प्रयोग करते हैं। मनुष्यकी भोजन-नलीको इससे बहुत लाभ होता है। इसीसे इसका औषधियोंमें उपयोग होता है। घरोंमें लोग इसे वायुके विकारमें सेवन करते हैं। इससे हाम्योपैथिक व एलोपैथिक औषधियाँ भी बनाई जाती हैं। अदरकसे एक प्रकारका उड़नशील तेल निकाला जाता है।

अदरकका पेड़ बहुत छोटा होता है। इसका वह भाग जिसे हम लोग साधारणतः अदरक कहते हैं इस पेड़की गाँठ है (Phizome) जो मिट्टीके अन्दर रहती है। हिन्दुस्तान और जमाइका द्वीपमें अदरक बहुत पैदा होती है। कोचीनमें भी यह विशेष प्रकारसे पैदा होती है। इसके अतिरिक्त रंगपुर मिदनापुर, हुगली, सूरत, थाना (बम्बई प्रान्त) और कुमांऊमें भी अदरक पैदाकी जाती है।

(२) सुपाड़ी—यह एक सुन्दर और साधारणतः लम्बा पेड़ होता है। इसका तना पतला होता है। इसके ऊपरके हिस्से पर खजूरके पेड़ की भाँति एकत्रित रूपमें बड़े-बड़े पत्ते होते हैं। सुपाड़ीका वृक्ष गर्म देशमें पैदा होता है। हिन्दुस्तानमें यह दक्षिणी हिन्दुस्तान और आसाममें पाया जाता है। हिन्दुस्तानके बाहर यह पूर्वी-द्वीप समूहमें पाया जाता है।

प्राकृतिक रूपमें नारियलकी भाँति, सुपाड़ीका फल भी जटामय होता है जब यह फल पक जाता है तो इसका बीज निकाला जाता है। इसी बीजको हम लोग सुपाड़ी कहते हैं।

सुपाड़ीके स्वादसे तो हम लोग परिचित हैं। हमारे देशमें यह पानके साथ या अकेलेही, या अन्य मसालोंके साथ खाई जाती है। लोगोंकी यह धारणा है कि सुपाड़ी चबानेसे दाँत खराब नहीं होते। परन्तु वास्तवमें फल विपरीत होता है। सुपाड़ी चबानेसे धीरे-धीरे मसूड़े फूल जाते हैं और अन्तमें दाँत गिर जाते हैं। आगे चलकर मुखका घाव (कारसिनोमा) भी हो सकता है। पश्चिमी देशोंमें सुपाड़ीसे भिन्न प्रकारके रासायनिक पदार्थ तैयार किये जाते हैं। हिन्दुस्तान और चीनमें बहुतही पुराने समयसे मनुष्य और जानवरोंके पेटसे कीड़े निकालनेके लिये सुपाड़ी औषधिके रूपमें प्रयोगकी जाती है। इस कार्यके लिए यह इतनी लाभदायक सिद्ध हुई है कि एलोपैथिक दवाइयोंमें भी प्रयोग की जाने लगी। कलकत्ता मेडिकल कालेजके डाक्टर चोपड़ाका कहना है कि यह सुपाड़ीका असर नहीं है कि पेटके कीड़े कम हो जाते हैं, परन्तु सुपाड़ी खानेसे थूकनेकी आदत पड़ जाती है जिसके कारण मुँहकी राहसे वे कीड़े अपने सूक्ष्म रूप द्वारा पेटमें नहीं जा सकते। (शेष फिर)

विषय-सूची

मुद्रक तथा प्रकाशक—विश्वप्रकाश, कला प्रेस, प्रयाग।

विज्ञानं ब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते ।
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति ॥ तै० उ० ।३।५।

भाग ५८ | धनुष सम्वत् २००० । दिसम्बर, १९४३ | संख्या ३

वनस्पतिके उपयोग

[लेखक—प्रो० अनन्त प्रसाद मेहरोत्रा एम० एस-सी]

(गतांकसे आगे)

(३) महुआ—इसका वृक्ष बड़ा होता है। वैसे तो यह सारे हिन्दुस्तानमें पैदा किया जाता है। परन्तु बम्बई प्रान्त तथा मध्यप्रान्तके जंगलोंमें यह अधिकतासे पाया जाता है। महुएका वृक्ष सूखी और कंकड़ील ज़मीन परभी रह सकता है। इसका फल, फूल बीज व लकड़ी हम लोगोंके काम आती है। महुएके बीजसे तेल निकाला जाता है। यह तेल खानेके काममें भी आता है। बाज़ारके घी में भी अक्सर इसकी मिलावट रहती है। महुएका तेल जलाने और साबुनके काममें भी आता है। इसके फूलमें सिकुड़न पैदा करनेकी शक्ति होती है, इसलिए मसूड़ेसे खून निकलनेमें, नासूरमें तथा अन्य घावोंमें महुएके फूलसे बनाई हुई दवा, घाव धोनेके काममें लाई जाती है। इस प्रकार इसका उपयोग एलोपैथिक दवाओंमें होता है। देशी दवामें, महुएकी पत्ती जलाकर, उसकी राखमें घी मिलाकर जले हुए स्थानोंमें लगाया जाता है। मधुप्रमेहमें महुएकी छाल बहुत लाभदायक होती है।

महुएके फूलकी पंखुड़ी मांसल होती है। यही भाग जब पृथ्वी पर गिर जाता है तो लोग उसे महुआ कहते हैं। इसे लोग खाते हैं। परन्तु इससे महुएकी शराब भी अधिकतासे बनाई जाती है।

(४) ढाक, टेसू या पलास—यह भी मामूली ऊँचाई-का वृक्ष होता है। यह हिन्दुस्तान और बर्मामें पाया जाता है। हिन्दुस्तानमें यह मैदानों और नीची पहाड़ियोंके निकट सभी स्थानों पर पाया जाता है। रेलयात्रा करते हुए, आप लाइनके दोनों किनारों पर इसको बहुतायतसे पायेंगे। इसका फूल फरवरी व मार्चमें लगता है। फूलनेके समय इसकी सब पत्तियाँ गिर जाती हैं। रेलयात्रा करते हुए, लाल फूलोंसे लदे पत्रहीन पलासके पेड़ोंके जंगलको देखते हुये ऐसा लगता है मानो बड़ी दूर तक आग लग गई है।

पलासके पेड़का लगभग प्रत्येक भाग कुछ-कुछ काम आता है। इसकी गोंद कोष्ठबद्धता बढ़ानेके लिये दवाओं-में प्रयोग की जाती है। इसका फल और पत्तियाँ भी देशी दवामें प्रयोगकी जाती हैं। इसके बीजकी बुकनी शहदके साथ खानेसे पेटके कीड़े साफ हो जाते हैं। इसकी पत्तियाँ बाज़ारमें दोना पत्तल आदिके लिये बहुतायतसे प्रयोग की जाती हैं। पलासके सूखे हुये फूलसे टेसूका रंग बनाया जाता है, जिसे हिन्दू होली पर प्रयोग करते हैं।

(५) मदार--मदारसे बहुत प्राचीन कालसे हिन्दुस्तानमें

दवाइयाँ बनाई जाती हैं। मदारका पेड़ झाड़ी की भांति छोटा होता है। यह उजाड़ भूमिमें स्वयं पैदा हो जाता है। इसके पत्ते मामूली तौरसे चौड़े मोटे होते हैं। मदारके पेड़के प्रत्येक भागमें सफेद दूधकी तरह का रस होता है। यह दूध कई तरहसे प्रयोग किया जाता है। इससे एक प्रकारका गटापारचा बनाया जाता है। चमड़ेके कार्यालयोंमें यह दूध चमड़ेसे बदबू निकालनेके लिये प्रयोग किया जाता है। साथ ही साथ चमड़ा पीला रंग जाता है।

इसका दूध जुलाबका काम देता है। इसका फूल पाचक सम्बन्धी कष्टों जुकाम खाँसी व दमाकी औषधियों में पड़ता है। लोगोंका विचार है कि कांटा चुभनेके स्थान पर यदि मदारका दूध लगाया जाय तो चमड़ेमें सिकुड़न पैदा होनेके कारण कांटा कुछ बाहर निकल आता है।

(६) पपीता—इसका पेड़ छोटा होता है। अधिकतर इस पेड़में केवल बीचका तना रहता है, और कोई डालें नहीं निकलतीं। खजूरके पेड़की भांति इस पेड़में भी, तनेके ऊपरी भागमें ही, बड़ी-बड़ी पत्तियाँ होती हैं। इन्हीं पत्तियोंके बीचमें पपीतेके फूल और फल लगते हैं। अधिकांश पुष्प वाले वृक्षों, पुष्पोंमें रजदायक व नरदायक दोनों अंग होते हैं। परन्तु शेष पुष्पदार वृक्षोंमें पुष्प विभक्तिलिंगी होते हैं, अर्थात् उनके पुष्प दो प्रकारके होते हैं। एक प्रकारमें तो केवल नरदायक अंग होते हैं तथा दूसरेमें केवल रजदायक। ऐसे पुष्पदार वृक्ष भी दो प्रकार के होते हैं। एक प्रकारमें तो दोनों प्रकारके फूल एक ही वृक्ष पर होते हैं तथा दूसरे प्रकारमें नरदायक पुष्प नरदायक वृक्ष पर पाये जाते हैं तथा रजदायक पुष्प रजदायक वृक्ष पर पाये जाते हैं। अतः इस अन्तिम प्रकारमें वृक्ष स्वयं विभक्तिलिंगी हो जाते हैं। पपीतेका वृक्ष भी इसी प्रकारका होता है। इसलिये प्रकृति अनुसार पपीतेका फल केवल रजदायक वृक्षों पर लगता है।

कहा जाता है कि पपीतेका पेड़ हिन्दुस्तानमें ब्रेजील व मेक्सिकोसे लाया गया है, परन्तु अब यह सारे हिन्दुस्तानमें इसके फलके लिये उगाया जाता है। इसका पका हुआ फल बहुत पसन्द किया जाता है। इसके फल का रस दुनियाँके प्रत्येक भागमें जहाँ पपीतेका पेड़ पाया जाता है, दवाके रूपमें प्रयोग किया जाता है। कच्चे फलमें दूधकी भांति जो रस निकलता है, वह पेटके कीड़े निकालने के लिये दवाके रूपमें प्रयोग किया जाता है। इस सफेद रसमें तथा पपीतेके हरे कच्चे फलमें 'पेपाईन' नामका एक प्रवर्तक होता है जो कि पाचनशक्तिके लिये लाभदायक है। कई देशोंमें अब यह प्रवर्तक इससे निकालकर दवाके रूपमें तैयार किया जाने लगा है। बढ़े हुये लीवर (प्रकृति) में पपीतेके कच्चे फलकी तरकारी तथा पका हुआ फल स्वयं बहुत लाभदायक प्रमाणित हुआ है।

(७) नीम—यह हिन्दुस्तानका बहुत परिचित वृक्ष है। नीमका वृक्ष बड़ा व चिरहरित है। लोगोंका विश्वास है कि इससे हवा शुद्ध हो जाती है, इसलिये लोग इसे अपने घरोंके नज़दीक व सड़कोंके किनारे लगाते हैं। नीमके पेड़का प्रत्येक भाग घरेलू दवाओंमें प्रयोग किया जाता है। इसके तनेका वल्कल, पत्तियाँ व फल बहुत पुराने समयसे वैद्यक औषधियोंमें प्रयोग हुआ है। वल्कल स्वाद में कड़ुआ होता है और बुखार, प्यास मचली व चर्मरोगोंके लिये लाभदायक है। कहा जाता है कि यह बलकारक औषधिके रूपमें भी प्रयोगशाली है। वल्कलके द्वारा एक साफ़ चमकती हुई पीली गोंद निकलती जो कि उसके ऊपर सूखकर इकट्ठा हो जाती है। यह उत्तेजक औषधिके रूपमें प्रयोग की जाती है। पत्तियाँ बहुत पुराने समयसे चर्मरोगोंके लिए प्रयोग की गई हैं। इस प्रकार पत्तियाँ, मलहम, पुलटिस व घावोंके धोनके पानीमें प्रयोग की जाती है। इसका फल रेचक व दस्तावर होते हैं। ये बवासीर मूत्र सम्बन्धी रोगोंमें तथा अतड़ियोंके कीड़ोंके लिए औषधिके रूपमें प्रयोग किया जाता है। एक औषधि, जिसका नाम पंच-अमृत है, इस पेड़के फूल, फल, पत्तियाँ, वल्कल व जड़से बनाई जाती है। इसके फलके बीजसे एक प्रकारका तेल निकाला जाता है। नीमके पेड़में 'मारगोसाइट' होता है इसी कारण यह चर्मरोगोंमें लाभदायक है। इसीलिए यह खुजली व अपरसमें लाभदायक होता है। 'मारगोसाइट' के ही कारण नीमसे भिन्न प्रकारके दन्तमंजन बनाये जाते हैं।

असली कृमिको अब वलयी (लैटिन ऐनुलेट) कहते हैं। वलय कहते हैं छल्लेको और कृमियोंकी पहचान यह है कि उनका शरीर वस्तुतः बहुतसे वलयों या गंडोंका समूह होता है। कृमियोंके अलगसे न सिर होता है और न टांगें। जोंक और केंचुआ दोनों ही असली कृमि हैं। केंचुएके शरीरसे नन्हें-नन्हें कड़े बाल निकले रहते हैं और जब केंचुआ अपने शरीरको पारी-पारीसे बढ़ाता और सिकोड़ता है तो वह इन्हीं बालोंके सहारे आगे बढ़ता है। जोंकके शरीरमें बाल नहीं होते, परन्तु दोनों सिरों पर चूषक-चक्र रहते हैं। जब जोंकको चलना होता है तब वह पारी-पारीसे अपने शरीरको मोड़ती और सीधा करती है और अपने चूषकोंको काममें लाकर आगे बढ़ती है—अपने चूषकों द्वारा पारी-पारीसे भूमिमें एक सिरेको चिपकाती और दूसरेको छोड़ती हैं।

दैत्याकार सीप

सीपों में ये सब से बड़े होते हैं। इनकी आयु ६० से १०० वर्ष तक होती है।

केंचुओंसे खेती और बागवानीको बहुत लाभ होता है क्योंकि उनके कारण मिट्टी भुरभुरी होकर अधिक उपजाऊ हो जाती है। डारविन वर्षोंके अध्ययनके बाद इस परिणाम पर पहुँचा कि मुख्यतर केंचुओंके ही कारण इंगलैंडकी भूमि पत्थरसे बदलकर उपजाऊ मिट्टी हो गई है।

मनुष्यके पेटमें पड़ जाने वाले कृमि—केंचुआ (जो भूमिके केंचुएसे एकदम भिन्न जीव हैं), कद्दूदाना, अंकुशा आदि—बड़े महत्वके हैं क्योंकि वे मनुष्यका स्वास्थ्य नष्ट करते हैं।

चक्रांगी (रोटीफ़र) और तृणांगी (ब्राइयोज़ोआन) कृमियोंसे बहुतभिन्न होते हैं। चक्रांगियों का नाम इसलिए पड़ा है कि उसमें एक ऐसा अंग होता है जिसे नचानेसे वे तैरते हैं। तृणांगियोंके बारेमें एक विचित्रता है कि वे पौधेकी तरह, अलैंगिक रीतिसे (अर्थात् बिना नर और नारीके सम्बन्धके) शाखाओं द्वारा बढ़ते हैं। ये अपने जनकसे जुड़े रहते हैं और उनके ऊपर सरक्षक खोल उग आता है। ब्राइयोज़ोआनोंमें कई जातियाँ होती हैं। एक जातिमें संरक्षक खोज नलीकी तरह होती है, और प्रत्येक नलीके छोरमें एक जीवित प्राणी रहता है। ये नलियाँ पत्थरोंसे चिपकी हुई जलके भीतर उगी रहती हैं और देखनेमें वनस्पति जान पड़ती हैं। जब कभी कोई खटका होता है तो प्रत्येक प्राणी अपनी-अपनी नलीमें घुस जाता है, परन्तु जब वे आहारकी खोज में, अपने ग्राहक भुजा-गुच्छोंको हिलाते हुये, शरीर बाहर निकाले रहते हैं तो वे प्रत्यक्ष रूपसे प्राणी जान पड़ते हैं।

कंटक चर्मी

कंटक चर्मी नामक शाखा के जन्तुओंमें शरीर के ऊपर काँटोंके समान अंग निकले रहते हैं। इनमें तारा मत्स्य, सी-अरचिन, होलोथूरियन आदि समुद्रमें रहने वाले प्राणी हैं। ये समुद्रतट पर बहुधा दिखलाई पड़ते हैं। इन प्राणियोंमें भोजन-प्रणाली पूरे शरीरमें रहती है। इस नलिकामें एक ओरसे जल चूसा जाता है और वहाँसे असंख्य छोटी-छोटी नलियोंसे होता हुआ जल शरीरके बाहर निकल जाता है। पानीके नन्हें-नन्हें जीव ही इन प्राणियों-के आहार हैं।

साधारण तारामत्स्यमें पाँच किरणें होती हैं। इसमें विचित्रता यह है कि पेट मुख द्वारा बाहर निकल सकता

है ठीक उसी प्रकार जैसे कोई खलीते (जेब) को बाहर निकाले। जब कोई सीपी या घोंघा दिखलाई पड़ता है, तो तारामत्स्य अपना पेट बाहर निकाल कर उस पर लपेट देता है। जब आहार पच जाता और भोजन समाप्त हो जाता है तो पेटको फिर शरीर के भीतर खींच लिया जाता है।

होलोथूरियन तो खीरेकी तरह जान पड़ता है परन्तु मुख पर ग्राहक भुजाएँ होती हैं जिनके छोर पर पत्तियोंकी तरह भालर होते हैं। इन्हींसे ये आहार पकड़ते हैं।
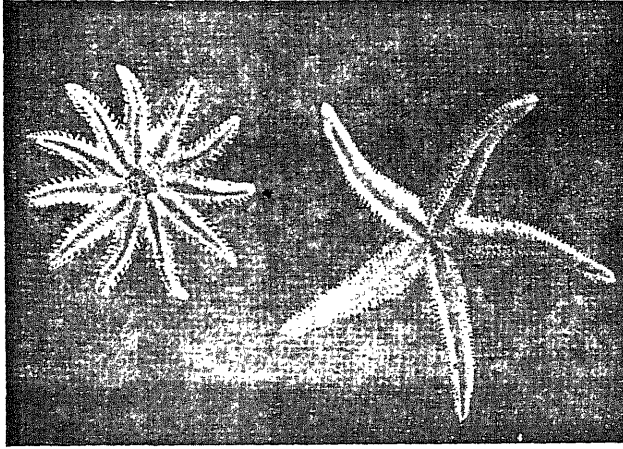
तारामत्स्य की ठठरियाँ
देखने में ये बहुत सुन्दर होती हैं।

सीलेंट्रेट

सीलेंट्रेट नामक कई जातिके प्राणी समुद्रमें होते हैं। इन्हींमें समुद्री एनीमोन भी है और मूँगा उत्पन्न करनेवाला जन्तु भी। शब्दसागरमें लिखा है—

मूँगा समुद्रमें रहनेवाले एक प्रकारके कृमियोंके समूह की लाल ठठरी है जिसकी गुरिया बनाकर लोग पहनते हैं। इसकी गिनती रत्नोंमें की जाती है। समुद्र तलमें एक प्रकारके जीव खोखड़ीकी तरह घर बनाकर एक दूसरेसे लगे हुये जमते चले जाते हैं। ये जीव अचर होते हैं। ज्यों-ज्यों इनकी वंश-वृद्धि होती जाती है, त्यों-त्यों इनका समूहपिंड थूहरके पेड़के आकारमें बढ़ता चला जाता है। सुमात्रा और जावाके आस-पास प्रशान्त महासागरमें समुद्रके तलमें इनके पटते चले जाने से कई एक टापू निकल आये हैं। ऐसे टापू आये हैं। प्रशांत महासागरमें बहुतसे हैं; ये 'प्रवाल-द्वीप' कहलाते हैं।

मूँगेकी केवल गुरिया ही नहीं बनती; छड़ी, कुरसी आदि बड़ी-बड़ी चीज़ें भी बनती हैं। आभूषणके रूपमें मूँगेका व्यवहार भी मोतीके समान बहुत दिनोंसे है। कवि लोग पुराने समयसे ओंठोंकी उपमा मूँगेसे देते आये हैं।

छिद्रियों (लैटिन पोरफ़िर) में स्पंज आदि प्राणी हैं। ये प्राणी प्रायः अचर होते हैं। उत्पन्न होनेके बाद वे कहीं जा चिपकते हैं और वहीं जन्म भर रह जाते हैं। शरीर जीवित प्राणी-कोषोंका समूह है परन्तु मुख, पेट, आदि पृथक-पृथक नहीं होते। शरीर पर अनेक सूक्ष्म छिद्र होते हैं और इनका सम्बन्ध भीतरी नलियोंसे होता है। निकासीके लिए ऊपर बड़ा-सा छेद रहता है। सूक्ष्म छिद्रोंसे पानी आता है और विभिन्न नलियोंसे होता हुआ बड़े छेदसे बाहर निकल जाता है। पानीके साथ भीतर आये हुए अति-सूक्ष्म प्राणी भीतर ही रह जाते हैं और पच जाते हैं। छिद्रमयी केवल इसीके कारण प्राणी गिने जाते हैं, अन्यथा देखनेमें वे बहुत कुछ वनस्पति जैसे होते हैं।

स्पंज अधिकतर समुद्रमें ही होते हैं। स्पंजोंके शरीरसे एक रस निकलता है जो जमकर कड़ा हो जाता है और इसी कड़े पदार्थको हम स्पंजकी ठठरी समझ सकते हैं। बाजारमें जो स्पंज बिकता है वह जीवित स्पंजकी ठठरी मात्र है, स्पंजका मांस नहीं। एक प्रकारका स्पंज शीशे (काँच) की तरह पारदर्शक जंतुओंसे अपनी ठठरी बनाता है। यह बहुत सुन्दर लगता है। कुछ स्पंज नदियों या

समुद्री ऐनीमोन

छिद्रियों में समुद्री ऐनीमोन भी हैं। देखने में ये पौधे से लगते हैं, परन्तु हैं ये प्राणी ही।

झीलोंमें भी होते हैं। धूपमें उगे स्पंज चटक हरे रंगके होते हैं। सायेमें उगे स्पंज कुछ पीले रंगके।

६

सरलतम प्राणी

प्राकप्राणी वे जन्तु हैं जिनके कुल एक कोष होता है और इस प्रकार उनकी शरीर-रचना अत्यंत सरल होती है। नापमें ये बहुत सूक्ष्म होते हैं और बहुधा आँखसे दिखलाई ही नहीं पड़ते। तो भी संसारके कार्यक्रम को चालू रखनेमें ये अत्यंत महत्वपूर्ण हैं। ये वायुमें, थलमें, जलमें, सर्वत्र रहते हैं। प्राकप्राणियोंके समूहको चार मुख्य उप-समूहोंमें विभक्त किया जा सकता है जिनमें एकका उदाहरण अमीबा है। अमीबामें न पृथक हाथ होता है, न पेट, न पैर। अमीबा लिबलिबे पदार्थका केवल एक कण है जिसका व्यास लगभग $\frac{१}{१००}$ इञ्च होता है। तो भी यह जिधर चाहे उधर जा सकता है और इसके लिए वह अपने शरीरके भागोंको अंगुलियों की तरह लंबा बढ़ा सकता है। आहार ग्रहण करनेके लिए वह आहार पर लिपट जाता है और उसे अपने शरीरके भीतर कर लेता है।

दूसरे वर्गमें, जिसे फ़ोरेमिनी फ़ेरा कहते हैं, अमीबाकी तरहके ही नन्हें-नन्हें लिबलिबे जीव होते हैं, परन्तु उनपर एक कड़ा खोल होता है। इस खोलसे सूतकी तरहके अंग बाहर निकले रहते हैं, जिससे यह प्राणी आगे बढ़ता है और आहार ग्रहण करता है। मर जाने पर खोल नीचे बैठ जाता है और इस प्रकार समुद्रतलमें मोटे-मोटे स्तर जम गये हैं। पृथ्वीतल पर उथल-पुथल मचने पर ये स्तर कभी-कभी समुद्रके जलसे ऊपर आजाते हैं। खड़िया मिट्टीके पत्थर अधिक तर इसी तरह बने हैं। खड़िया मिट्टी वस्तुतः पूर्वोक्त जीवोंका घनीभूत हुआ खोल है।

रेडियोलेरिया नामक वर्गके जीव समुद्र जलसे खड़िया एकत्रित कर सिलिका बटोरते हैं और उनके खोलमें सिलिकाकी मात्रा अधिक होती है। फोरेमिनोफेरामें खोल बाहर होता है, परन्तु रेडियोलेरियामें खोल भीतर होता है और नाभि को डिबियेकी तरह घेरे रहता है। इस डिबिये के छेदोंमें से सूतकी तरह अंग निकलते रहते हैं। भारतीय महासागरकी तलहटीमें जो लिबलिबी तह जमी है वह असंख्य रेडियोलेरिओंके शरीरसे निर्मित है।

फ्लैगिलेटोंका वर्णन पहले दिया जा चुका है। वे चाबुक की तरह निकले सूतको फहरा कर इच्छानुसार विचरते हैं। उन्हींसे वे भोजन भी ग्रहण करते हैं। इनमेंसे कुछ

जातिय रातको जुगनूकी तरह चमकती हैं। समुद्रमें कहीं-कहीं वे असंख्य संख्यामें विद्यमान रहते हैं। तब वहका सारा समुद्र-पृष्ठ रातको चमकता हुआ दिखलाई पड़ता है।

फ्लैगिलेटोंमें से कई एक अन्य जीवोंके पराश्रयी होते हैं। एक विशेष जाति मनुष्य को बहुत सताती है। जब सी-सी मक्खी मनुष्यको डँसती है तो इस जातिके कुछ जीव मनुष्यके शरीरमें घुस जाते हैं। वह उनकी संख्या शीघ्र बढ़ती है और तब मनुष्यको निद्रालुता रोग होजाता है, जिसमें वह बराबर नींदमें डूबा-सा रहता है!

प्राकप्राणियोंका एक उपसमूह स्पाइरोज़ोआन है। इनकी विशेष जातिसे मनुष्यको जूड़ी (मलेरिया) नामका ज्वर आता है। जब ऐसा मच्छर मनुष्य को डँसता है जिसके शरीरमें ये स्पोरोज़ोआन रहते हैं तो कुछ स्पोरोज़ोआन मनुष्य के शरीरमें घुस जाते हैं। वहाँ वे मनुष्यके लाल रक्ताणुओं पर आक्रमण करते हैं और बढ़ते हैं। बढ़नेकी रीति यह है कि एक जीवके खंडित होनेसे कई पृथक जीव बन जाता है। ये जीव स्वयं बड़े होकर फिर खंडित होते हैं और यही क्रम बँधा रहता है। इनके नियमित समयों पर खंडित होनेसे ही नियमित समयों पर ज्वर ज़ोरसे आता है।

७

कुछ विशेष पक्षी

पिछले तीन खंडोंमें हमने प्राणी-संसार पर अत्यन्त संक्षिप्त रूपसे दृष्टिपात किया है, परन्तु कुछ विशेष जंतुओं का ब्योरेवार वर्णन रोचक होगा। आगामी अध्यायोंमें कुछ चुने हुए जीवों तथा कुछ विशेष विषयों पर विचार किया जायगा।

शुतुरमुर्ग

सब पक्षियों के पंख होते हैं, परन्तु कुछ पक्षी पङ्ख रहते हुए भी उड़ नहीं सकते। कुछ तो इतने भारी होते हैं कि वे उड़ नहीं पाते और सुदूर भूतकाल से भूमि पर ही इतनी अधिक मात्रामें सुगमतासे आहार पाते रहे हैं और शत्रुओंसे इतनी दूर रहे हैं कि उनको उड़कर आहार खोजने की, या उड़कर शत्रुओं से भाग जाने की, आवश्यकता नहीं पड़ती थी। इसलिए विकासके नियमोंके अनुसार, उनके पङ्ख धीरे-धीरे उड़नेके अयोग्य हो गये हैं।

विशालकाय और न उड़ सकनेवाले पक्षियोंमें शुतुरमुर्ग का प्रथम स्थान है। यह सात या आठ फुट ऊँचा होता है। एक समय था जब अफ्रीकाके कई भागोंमें

शुतुरमुर्ग

यह पक्षी इतना बड़ा होता है कि इस पर मनुष्य सवारी कर सकता है।

शुतुरमुर्ग बहुत होते थे। परन्तु उनके परोंको युरोपीय स्त्रियाँ अपने टोपोंमें या वस्त्रोंमें आभूषण की तरह लगाना बहुत पसन्द करती थीं। इसलिए परों के लालचसे लोगों ने शुतुरमुर्गों को मारना आरम्भ किया और बीस-ही-पचीस वर्षोंमें उनकी संख्या इतनी कम हो गई कि डर लगने लगा कि उनका शीघ्र लोप हो जायगा। उन्नीसवीं शताब्दीके मध्यमें एक अंग्रेज़ को यह बात सूझी कि अफ़रीकामें शुतुरमुर्ग पाले क्यों न जायँ। दूसरे उसपर हँसते थे, पर उसने सफलता शीघ्र प्राप्त की। मारे जाने के बदले पाले गये शुतुरमुर्गों का पङ्ख समय-समय पर काट लिया जाता था। ये पर शुतुरमुर्गों के परों से अधिक बड़े और सुन्दर भी थे, क्योंकि पाले गये शुतुरमुर्गों का जीवन-संघर्ष उतना तीव्र नहीं था जितना जङ्गली शुतुरमुर्गों का। तब तो अन्य लोग भी उन्हें पालने लगे और पचास वर्षोंमें पालतू शुतुरमुर्गों की संख्या चार लाख के लगभग हो गयी, तथा इनसे प्रति वर्ष डेढ़ करोड़ रुपये का पर निकलने लगा। यह तो केवल अफ़रीका की बात है। देखादेखी लोगों ने अमरीका और अस्ट्रेलिया के गरम भागोंमें भी शुतुरमुर्गों का पालना आरम्भ कर दिया और वहाँ भी काफ़ी पर उत्पन्न होने लगा। परन्तु गत (१९१४ के) महासमरमें शुतुरमुर्गों के पर का व्यवसाय मन्दा पड़ गया और हज़ारों जन्तु मार डाले गये। उनकी खाल जूते बनानेके लिए बेची गयी और मांस को डिब्बाबन्दी करके खानेके लिए बेच डाला गया। अच्छी नसलके शुतुरमुर्गोंकी एक जोड़ीका दाम तीन हज़ार से पन्द्रह हज़ार रुपया होता है। बच्चोंका दाम भी पाँच सौ से दो हज़ार रुपये तक मिलता है। बच्चे बहुत शीघ्र बढ़ते हैं—प्रथम छः महीनोंमें तो लगभग एक फुट प्रति मास की वृद्धि होती है; पीछे वे इतना शीघ्र नहीं बढ़ते।

शुतुरमुर्ग बहुत वेग से दौड़ सकते हैं। मोटर पर चढ़कर एक शुतुरमुर्ग को दौड़ाया गया तो पता चला कि वह २६ मील प्रति घन्टेके हिसाबसे दौड़ सकता था। शुतुरमुर्ग के अन्डे भी इन पक्षियों के अनुसार ही बड़े होते हैं। एक अंडे की तौल लगभग डेढ़ सेर होती है।

सहवास की ऋतुमें नर शुतुरमुर्ग बड़ा लड़ाका हो जाता है, वह अपने पैर से इतनी ज़ोरसे मार सकता है कि पनारीदार लोहे की चादर फट जाती है। इसलिए मनुष्य को कुपित शुतुरमुर्ग से दूर ही रहना पड़ता है।

शुतुरमुर्ग की खवाई प्रसिद्ध है। जो कुछ भी मिलता है वह खा जाता है। लन्दन की पशुवाटिकामें जब एक शुतुरमुर्ग मरा तो उसके पेटको चीरने पर निम्न वस्तुएँ मिलीं—चार पैसे, तीन रूमाल, तीन दस्ताने, एक अठन्नी, तागे का एक गोला, दो अधेलचे, एक पेनसिल, एक पेंच, एक चार इन्च लम्बी कील, अठारह टुकड़े तार, एक दो-मुँहा काँटा, रोलफ़िल्म का एक बेलन, साइकिल के वाल्व की एक टोपी, एक छोटा रिङ्ग (ढिबरी कसने वाला), एक बटन, घड़ी के चेन का सिरा, अलारम घड़ी की चाभी, तीन टुकड़ा लकड़ी, एक वाल्वट्यूब, और बिजलीके तार के कई टुकड़े। बात यह है कि शुतुरमुर्ग जो ही देख लेता है उसीको निगल जाता है, यह नहीं सोचता कि यह खानेके योग्य है या नहीं। एक लेखक ने इसी बात को लेकर बच्चों के लिए एक मज़ेदार कहानी लिख डाली है जो यों है—एक गिरहकट एक शुतुरमुर्ग लिए फिरता था और जब पकड़े जाने का खटका होता तो उसी को चोरी का माल खिला देता। तो भी वह एक दिन पकड़ ही लिया गया क्योंकि उस दिन उसने अलारम घड़ी चोरी की थी और वह शुतुरमुर्ग के पेटमें पहुँचने पर भी टनटनाने लगी!

कैसोवरी

उन बड़ी-बड़ी चिड़ियोंमें से जो अधिक नहीं उड़ सकतीं एक कैसोवरी भी है। यह आस्ट्रेलिया, न्युगिनी, सीरम तथा आसपासके टापुओंमें मिलती है। इस चिड़ियेकी विशेषता यह है कि इसके मुखपर एक छत्र होता है। इन चिड़ियोंके सिर पर सीधा, खाल चढ़ा, बड़ा-सा भाग होता है। यह खोपड़ीकी हड्डियोंका ही विकसित भाग होता है और नर मादा दोनोंके सिरोंपर होता है। मुह और गलेकी खाल पर बाल नहीं होते। यहाँकी खाल बड़ी चमकदार कई रङ्गोंकी होती है। गर्दनके भागमें थोड़ी खाल लटकी भी रहती है।

गर्दनके पिछे पीठकी ओर के भागका रङ्ग नारङ्गी और हलका गुलाबी मिला हुआ होता है; इसके सिरका सबसे ऊपरी भाग गहरा नीला होता है; लटकी हुई खाल मैले गुलाबी रङ्गकी होती है, और उसपर थोड़ीसी नीले रङ्गकी झलक भी रहती है।

कैसोवरीके पर बहुत छोटे होते हैं। इसके पर अन्य चिड़ियोंके समान नहीं होते, वे साहीके समान काले-काले काँटे-जैसे होते हैं; ये परोंके समान न लगकर मोटे-मोटे चमकदार रुयेंके समान लगते हैं।

बड़ी जाति की अन्य चिड़ियाँ या तो मैदानोंमें रहती हैं या इसी प्रकारके अन्य खुले भागोंमें, किन्तु कैसोवरी घने जङ्गलोंमें रहती है। इन जङ्गलोंके रहने वाले इस चिड़ियेके बच्चोंको पकड़ लेते हैं और पालते हैं; ये चिड़ियाँ बड़ी होकर पालतू चिड़ियों (जैसे सारस) के समान रहती हैं और अपने मालिक तथा घरसे बहुत प्रेम रखती हैं।

कैसोवरीका नर प्रेमी तथा स्त्री-वश जीव होता है। यही अण्डोंको सेता है और जब बच्चे अण्डोंसे निकल आते हैं तो उनकी रखवाली भी करता है। लेकिन इसका मिजाज बड़ा तेज होता है और परेशान होने पर अपनी तेज चोंचसे अच्छी तरह बदला भी ले लेता है।

कैसोवरी

कैसोवरीके सिरपर खाल-चढ़ा बड़ासा भाग होता है तथा पर कांटेदार रोयेंके रूपके होते हैं।

पेनग्विन

उड़ सकने की शक्ति का अभाव केवल बड़े और भारी पक्षियोंमें ही नहीं रहता कुछ छोटे पक्षी भी नहीं उड़ पाते। एक तो प्रसिद्ध पेनग्विन ही है। उसकी विचित्र आकृतिसे लोग उसकी ओर शीघ्र आकर्षित हो जाते हैं और अब तो एक सस्ते पुस्तकमाला का नाम पेनग्विन पड़ जानेसे इस पक्षी का नाम प्रायः सभी अँग्रेज़ी जानने वालों ने सुना होगा और उसका चित्र देखा होगा। भूमध्य रेखा के दक्षिणमें ये पक्षी प्रायः सर्वत्र पाये जाते हैं; अफ्रीकाके गरम प्रान्तोंमें भी और अंटार्टिक के बर्फीले मैदानोंमें भी।

पेनग्विनोंमें भी कई जातियाँ होती हैं, परन्तु सब में पङ्ख (डैने) के बदले डाँड़की तरह पानी काटने वाले कड़े

अङ्ग होते हैं जिनपर केवल छोटे-छोटे पर होते हैं। प्रौढ़ पक्षियोंमें ये अङ्ग इतने कड़े रहते हैं कि केवल संधिके बल ही हिल-डोल सकते हैं, परन्तु बच्चोंमें वे साधारण पक्षियोंकी तरह कई स्थानोंसे मुड़ सकते हैं। पेनग्विनों की टाँगें छोटी होती हैं। इसलिए वे लदफदा कर चलते हैं, जिससे वे और भी हास्यप्रद प्रतीत होते हैं। जब दौड़ना होता है तो वे छाती के बल लोट जाते हैं और अपने पङ्ख को डाँड की तरह चलाकर तथा साथ ही पैर भी मारकर भागते हैं। परन्तु यद्यपि स्थल पर वे भद्दे होते हैं, जलमें वे इतने वेग से तैरते और डुबकी लगाते हैं कि देखते ही बन

पेनग्विन

ये पक्षी उड़ तो नहीं सकते, परन्तु पानीके भीतर मछलियों से भी तेज़ तैरते हैं।

पड़ता है। जान पड़ता है मानों वे पानीमें उड़ रहे हैं।

पेनग्विन मछली तथा समुद्री वल्कवतियों को खाते हैं। लंडन की पशुवाटिकामें कई पेनग्विन शीशेकी टंकियोंमें पाले गये हैं। वहाँ जब किसी टंकीमें जीवित मछलियाँ डाल दी जाती हैं तो पेनवग्नि आश्चर्यजनक वेग से उनके लिए पानी के भीतर झपटता है, और एक-एक करके मछलियों को समूचा ही निगल जाता है, चाहे मछलियाँ कितनी भी फुरतीली हों। कुछ ही मिनटों में वह पेट भर मछलियाँ निगल लेता है। तब पानी से बाहर निकलकर अपने पर को सँवारता है और आराम करता है।

पेनग्विन खाते खूब हैं। एक तो एक बार ६ मछलियाँ निगल गया और प्रत्येक मछली काफी बड़ी थी। इतनी मछलियाँ उसके पेटमें समाई कैसे यही आश्चर्य है। अंतिम मछलीके निगलनेमें कुछ कष्ट अवश्य हुआ होगा, क्योंकि उस मछली की पूँछ कुछ समय तक बाहर निकली रही और बहुत बल खाने और शरीर लचकाने पर ही यह मछली भीतर जा पाई। यदि पेनग्विन मनुष्यके बराबर होते और मछलीके बदले पेड़ा खाते होते तो अवश्य ही वे मथुराके चौबे लोगोंको नीचा दिखाते!

बड़े जातिका पेनग्विन साढ़े तीन या चार फुटका होता है। उसकी तौल एक मन होती है। इसे लोग महाराज पेनग्विन कहते हैं। इसमें छाती सफेद, पीठ सुरमई और आंखके पास पीली चित्ती होती है। राजा पेनग्विन इससे कुछ छोटा—तीन फुट ऊँचा—होता है, गदहा पेनग्विन फाकलैंड द्वीपमें होता है और इसका नाम ऐसा इसलिए पड़ा है कि इसकी बोली गदहोंके रेंकनेसी होती है। यह बड़ा शोर मचाता है। जन्मते ही वह चिल्लाना आरम्भ करता है और प्रतिदिन, जब तक सूरज नहीं डूबता, प्रायः सदाही चिल्लाता रहता है।

प्रजनन ऋतुमें पेनग्विन बहुत अधिक संख्यामें एकत्रित होते हैं। एक विश्राम-स्थानमें, डाक्टर बेनेट ने देखा, तीस- चालीस एकड़ भूमि पर पेनग्विन ही पेनग्विन थे। उनकी संख्या का अनुमान लगाना असम्भव था क्योंकि प्रायः सदा ही साठ-सत्तर हज़ार पेनग्विन उड़ा दौड़ते रहते थे। वे या तो समुद्र जाते रहते थे या वहाँसे लौटते रहते थे। समुद्र तट पर वे इस प्रकार पंक्तिबद्ध होकर खड़े होते थे मानों फौज खड़ी हो। इन पंक्तियोंमें क्रम रहता था। इन चिड़ियों का पङ्ख समय-समय पर झर कर फिरसे उगता है, वैसे ही जैसे साँप केंचुल बदलता है। समुद्रतटपर पङ्खझरी चिड़ियाँ एक स्थानपर, बच्चे एक स्थानपर, अण्डा सेती हुई चिड़ियाँ एक

स्थानपर, स्वच्छ चिड़ियाँ एक स्थानपर खड़ी थीं यदि कभी भूलकर कोई पङ्खभरी चिड़िया स्वच्छ महिलाओंके बीच पहुँच जाती थी तो वह तुरन्त भगा दी जाती थी।

काले गले वाले पेनग्विन की आकृति बड़ी हास्यप्रद होती है क्योंकि आँखोंके पास सफेद किनारी होती है और सारा सिर काला होता है, जिससे आँखें बहुत बड़ी और विचित्र लगती हैं। इनमें नर पेनग्विन बड़ा प्रेमी जीव होता है और बेरिज महोदयकी पुस्तक 'आल अबाउट बर्ड्स' के अनुसार, अपनी प्रियाके स्नेहको पानेके लिए कोई सुन्दर-सा पत्थर लाकर अपनी प्रेमिकाके चरणोंमें अर्पित करता है। क्या यह इस बातका सङ्केत है कि समय आ गया और घोंसले की नींव डालनी चाहिए?

प्रतिद्वन्दी नर एक दूसरे से बड़ी क्रूरतासे लड़ते हैं। वे एक दूसरे के सामने खड़े हो जाते हैं और छातीसे छाती भिड़ाकर अपने पङ्खोंसे एक दूसरे को फटाफट मारते हैं। परन्तु कुछ समय बाद शांति स्थापित हो जाती है और घोंसले बनाने का काम आरम्भ हो जाता है। बच्चों को खिलाने के लिए माता-पिता को बहुत परिश्रम करना पड़ता है क्योंकि अपने अड्डे से उतरकर पैदल समुद्र तक जाना पड़ता है और वहाँसे मछली पकड़कर फिर अड्डे तक पैदल चढ़ना पड़ता है। उतरनेमें तो विशेष कठिनाई नहीं होती, परन्तु चढ़नेमें इन पक्षियोंको बहुत मिहनत करनी पड़ती है। कभी-कभी अड्डे समुद्रतल से ७०० फुट ऊँचे रहते हैं।

कीवी

कीवी भी बहुत विचित्र चिड़िया है। यह मुर्गी के बराबर होती है परन्तु इसकी चोंच बड़ी लम्बी और पतली होती है। इस चोंचसे यह केंचुओं को उनके बिलमें से निकालकर खाया करती है। यह दिन को सोती और रातको विचरती है। दिनमें तो इसे इतनी गहरी नींद लगी रहती है कि कोई इसे उठाभी ले तो यह बहुधा सोती रह जाती है। जब नींद खुलती है तो बड़ी हास्यप्रद रीति से जँभाई लेती है। कीवी में उड़नेवाले पङ्ख (डैना) बाहरसे दिखलाई ही नहीं पड़ते। वे परोंके नीचे ही दबे रहते हैं, परन्तु पर भी केश के समान होते हैं। यद्यपि यह चिड़िया वायुमें उड़ नहीं सकती, तो भी स्थलपर यह बहुत वेगसे दौड़ लेती है। कीवियों की संख्या दिन पर दिन क्षीण होती जा रही है। ये न्यूज़िलैंडकी निवासिनी हैं। वहाँकी सरकारने अब उनकी रक्षाके लिए कुछ स्थानोंमें उनको मारने और पकड़ने का निषेध कर दिया है। लोग कीवी के मांस को बड़े चावसे खाते हैं।

कोयल

लेति पखेरू आन तें कोइलिया पलवाय।
तब लग अपने चेंटुअन जब लग उड़यो न जाय॥
—शकुन्तला नाटक; लक्षमणसिंह का अनुवाद।

कोयलकी कई जातियाँ हैं। कोई-न-कोई जाति प्रायः सर्वत्र मिलती है। भारतवर्षमें कोयलोंकी कई जातियाँ मिलती हैं। काली कोयलमें—लोग साधारणतः इसीको कोयल कहते हैं—नर और नारी पक्षियोंके रूपमें बड़ा अन्तर होता है। नरका पर चमकीला काला होता है जिसमें कुछ नीलापन मिला रहता है, परन्तु नारी कोयल चित्तीदार होती है। दोनोंमें नारीही बड़ी होती है। कोयलोंमें विचित्रता यह है कि वह स्वयं अपने अंडों को नहीं सेती। वह किसी अन्य पक्षीके घोंसलेमें अपना अंडा रख देती है। यह बात यहाँके लोग कालिदासके समयमें भी जानते थे। भारतवर्षमें साधारण कोयलें अपने अंडोंको कौओंके घोंसलों में रखती हैं। इसमें नर भी सहायता देता है; वह किसी कौए के घोंसले की ओर जाता है। जब कौए उसे मारनेके लिए दौड़ाते हैं तो उनको वह दूर बँहका ले जाता है। उनसे अधिक वेग से उड़ सकने के कारण उसे कौओं का डर नहीं रहता। इतनेमें नारी कोयल चुपकेसे घोंसलेके एक अंडेको अपनी चोंचमें लेकर उसके स्थानमें अपना अंडा दे देती है।

कोयल कौएसे कुछ छोटी होती है और गैरपहाड़ी प्रदेशोंमें वसन्त ऋतु के आरम्भसे वर्षाके अन्त तक रहती है। अन्य चिड़ियोंसे अपने अंडेकी सेवा करानेके कारण

कोयलको संस्कृतमें अन्यपुष्ट भी कहते हैं। इसकी आँखें लाल, चोंच कुछ धनुषाकार और पूँछ चौड़ी होती है। नर कोयल का स्वर बहुत ही मधुर और प्रिय होता है।

एक जाति की कोयल इंगलैंडमें भी गर्मीके दिनोंमें दिखलाई देती है। ये वहाँ अफ्रीकासे पहुँचती हैं। वहाँ बहुत दिनों तक लोगोंमें इन पक्षियोंके सम्बन्धमें मतभेद रहा। कोई कहता कि कोयल भूमिमें अंडे देकर उसे चोंचसे उठाकर किसी दूसरे पक्षीके घोंसलेमें रख आती है, कोई कहता कि वह दूसरे पक्षीके घोंसलेमें ही अंडा देती है। परन्तु कुछ वर्ष हुए एक वैज्ञानिकने सिनेमा चित्र खींचकर सिद्ध कर दिया कि कोयल दूसरे पक्षीके घोंसलोंमें अंडा देती है। सिनेमा चित्रमें स्पष्ट दिखलाई पड़ रहा था कि कोयल घोंसले पर उतरी, एक अंडेको अपनी चोंचमें उठा लिया, वहाँ अपना अंडा दिया, चोंचके अंडेको लेकर उड़ गई और अन्यत्र बैठकर खा गई। कोयल घोंसले पर कुल दस सेकण्ड रही होगी, परन्तु इसके पहले थोड़ी ही दूर पर बैठी हुई वह घण्टोंसे घात लगाये थी।

इंगलैंडमें देखा गया है कि वहाँ की कोयलें कोई साठ तरहकी चिड़ियोंके घोंसलोंमें अंडा देती हैं। परन्तु साधारणतः वे दो-तीन तरहके पक्षियोंके घोंसलों को ही पसन्द करती हैं। अंडेसे बच्चा कोई तेरह दिनमें निकलता है। उस समय न उसे पर होते हैं और न आंखें ही खुली रहती हैं। दो-तीन दिनमें वह कुछ तगड़ा हो जाता है और तब वह घोंसलेके अन्य बच्चों या अंडोंको गिराना आरम्भ करता है। इसके लिए वह अंडों या बच्चोंके नीचे अपना सिर डाल कर शरीरको इस प्रकार हिलाता है कि वे एक-एक करके उसकी पीठ पर आ जाते हैं। तब वह अपने पर-रहित डैने को फैलाकर शरीरको उठाता है और प्रतिद्वन्दी बच्चा या अंडा नीचे गिर जाता है। जब तक वह अकेला नहीं रह जाता उसे चैन नहीं मिलता। यदि वह ऐसा न करे तो सम्भवतः वह जी भी न पाये, क्योंकि उसे बड़ी भूख लगती है और वह खूब खाता है। कभी-कभी तो पेट न भरने पर वह इस प्रकार चिल्लाता है कि अन्य घोंसलोंकी चिड़ियाँ आकर उसको खिला जाती हैं। एक बार देखा गया कि एक बच्चेको पाँच जाति की चिड़ियाँ कीड़े-मकोड़े ला-लाकर खिला रही थीं। एक दूसरी बार एक कोयलने एक छोटी जाति की चिड़िये के घोंसलेमें अपना अंडा रख दिया था। उस अंडेसे निकले बच्चेको खिलाने के लिए चौदह चिड़ियाँ लगी थीं!

परन्तु यद्यपि कोयलके बच्चोंको कभी-कभी इतनी सेवा मिल जाती है, तो भी अनुपयुक्त चिड़ियोंके घोंसलोंमें पड़नेसे वे साधारणतः मर ही जाते हैं।

कोयलकी प्रसिद्ध बोल नरोंकी बोल है। नारी कोयल की बोल न इतनी तेज़ होती है और न अच्छी।

बुलबुल

गानेवाली चिड़ियोंमें से सबसे सुरीली बुलबुल है। यह प्रायः रातमें गाती है, परन्तु दिनमें भी कभी कभी गा देती है। नर बुलबुल ही है गाता नारी नहीं। जब नारी

बुलबुल
गानेवाली बुलबुल; बुलबुल हज़ार-दास्तान।

के दिये अंडोंसे बच्चे निकल आते हैं तो नर अपना गाना बन्द कर देता है।

शब्दसागर लिखता है—बुलबुल एक प्रसिद्ध गानेवाली छोटी चिड़िया है जो कई प्रकार की होती है और एशिया, यूरोप तथा अमरीकामें पाई जाती है। ऊपरकी ओर इसका रङ्ग काला, पेट के पास भूरा और गलेके पास कुछ सफ़ेद होता है। यह प्रायः एक बालिश्त लम्बी होती है। यह ऋतुके अनुसार स्थान का परिवर्तन करती है। इसका स्वर बहुत ही मधुर होता है और इसी लिए लोग इसे पालते हैं। कहीं कहीं लोग इसे लड़ाते भी हैं। भारतवर्षकी बुलबुल एक दूसरी ही पक्षी है। गानेवाली बुलबुल को बुलबुल हज़ार-दास्तान भी कहते हैं।

समाचार-वाहक कबूतर

१५ अगस्त सन् १९३१ की बात है। उत्तर-पूर्वी फ्रांसके एक छोटे शहर अरससे छोड़े जानेपर एक कबूतर इन्डोचाइनाके सैगों शहर तक पहुँच गया? कबूतर वहीं का निवासी था और उसे जानबूझकर लोग फ्रांस ले गये थे कि देखें वहाँसे वह अपने मकानतक पहुँच सकता है या नहीं। ७२०० मीलका रास्ता तै करना था और कैसे आश्चर्यकी बात है कि छोड़े जानेके बाद कुल २४ दिनमें ही वह अपने घर पहुँच गया। इसके पहले और कबूतरोंने भी आश्चर्यजनक कार्य दिखलाये थे, लेकिन इस कबूतरके आगे उनकी कोई गिनती नहीं रही। इसके पहिले सबसे दूरतक उड़कर अपने घर आनेवाला कबूतर वह था जो अमेरिकाकी राजधानीका रहने वाला था और ब्रुकलिनसे, जो २२०० मीलकी दूरीपर है, छोड़े जाने पर घर पहुँच गया। इसके पहिले दुनियाका सबसे दूर तक उड़नेवाला कबूतर वह था जो अमेरिकाकी फ़ौजका पाला हुआ था, और वैन्सबोरोसे छोड़े जानेपर २१०० मीलपर स्थित अपने घर सैन-अनटोनियो पहुँच गया। परंतु चाहे २ हजार मील हो, चाहे ७ हजार, चाहे कम, आश्चर्य तो यह है कि इतनी दूर ले जानेपर कि उसके मकानका नामो-निशान भी न दिखाई पड़े वह कैसे अपने घर की ओर उड़ सकता है, यद्यपि ऐसी जगहपर कोई चीज ऐसी नहीं रहती जिसकी वह पहचान कर सके। सुप्रजनन-विज्ञानके सहारे मजबूत जानवर पैदा करना हो तब तो बात दूसरी है, परन्तु जब लोग यह चाहते हैं कि अधिकाधिक दूरसे घर पहुँचनेवाले कबूतर पैदा किये जायँ तो पता नहीं लगता कि क्या उपाय किया जाय। कोई अभी इतना भी नहीं जानता कि कबूतरोंमें वह शक्ति कहाँसे आती है जिससे वह अपने घरका रास्ता पहचान सकते हैं। कुछ लोग तो आज भी कहते हैं कि यह कोई विशेष शक्ति नहीं है। ऐसे मतावलम्बियों में से मिस्टर टामस रॉस हैं। ये अमेरिकाके एक फौजी अफसर हैं। इनका कहना है कि कबूतर केवल सिखानेके कारण ही अपने घर पहुँच जाया करते हैं। कबूतरोंको शुरूसे ही सिखलाया जाता है कि जब कभी वे अपने अड्डेपर लौट आयेंगे तो वहीं उनको खाना मिलेगा। इसीसे वे अपने अड्डेपर लौट आया करते हैं। जब वे बड़े होते हैं और बच्चे पैदाकर सकते हैं तब अड्डे की ओर उनका आकर्षण बढ़ जाता है क्योंकि कबूतर एकस्त्रीगामी होता है और अपनी गृहस्थीसे बहुत प्रेम करता है। अन्तमें जब उसके बच्चे हो जाते हैं तो वे सबसे दृढ़ सम्बन्ध उसके अड्डेसे स्थापित कर देते हैं। और चूँकि कबूतरोंमें माँ और बाप दोनों अन्डेको बारी-बारीसे सेते हैं इसलिये अड्डाही उन कबूतरोंके लिये उनकी सारी दुनिया है; और जैसे चुम्बक कुतुबनुमाको अपनी ओर खींच लाता है उसी तरह यह अड्डा उनको खींच लाता है चाहे वे कहीं भी हों। मिस्टर रॉसका कहना है कि खाना, स्त्री-प्रेम और बच्चोंका प्रेम, ये तीन चीजें हैं जो कबूतरोंको घर पहुँचा देती हैं। घर पहुँचनेकी शक्ति सच पूछा जाय तो कोई शक्ति है ही नहीं। यह तो केवल बार-बार सिखानेसे उनमें आती है।

मिस्टर रॉस चाहे कुछ कहें औरोंका कहना है कि घर पहुँचनेकी शक्ति विशेष शक्ति है और मिस्टर रॉसने इस शक्तिके केवल तीन मुख्य अंग बतलाये हैं। उन्होंने इसके अस्तित्व न होनेका कोई प्रमाण नहीं दिया है। उनका कहना है कि प्रत्येक शक्ति बड़ी जटिल होती है और

इसमें कोई भी शक नहीं करेगा कि कबूतर अपने घर इस लिये आता है कि वहाँ भोजन स्त्री और बच्चे उसका स्वागत करते हैं ; और यह भी सही है कि कबूतर बेवकूफ़ भी होते हैं। उन्हें बड़े धैर्यसे सिखाना पड़ता है कि छोड़ने-पर वे सीधे उड़कर अड्डे परही जायँ। परन्तु इन सब बातोंके सच होते हुए भी यह कोई अभी नहीं बता सकता कि क्यों और कैसे ऐसा कबूतर जिसे लोग उसके घरसे पिंजरे में बन्दकर और फिर मोटरकार, रेलगाड़ी और जहाज़में ले जाकर हज़ारों मीलकी दूरीपर छोड़ देते हैं केवल २० सेकंड तक मँडराकर सीधे अपने घर की ओर ५० मील प्रति घण्टे की वेगसे उड़ चलता है।

देखी हुई ज़मीनके ऊपर, और थोड़ी दूरसे छोड़नेपर, (और ज़्यादातर कबूतर इसी तरह छोड़े जाते हैं) लोग कह सकते हैं कि कबूतर तबतक मँडराता है जब तक उसे कोई पहचाना हुआ पेड़, तालाब या मकान नहीं दिखाई पड़ता और इसके दिखाई पड़ते ही वह सीधे अपने घर की ओर चल पड़ता है। लेकिन हर साल सैकड़ों कबूतर इतनी दूरीपर ले जाकर छोड़े जाते हैं जहाँसे उन्हें कोई भी जानी हुई चीज़ नहीं दिखाई पड़ती और कहना ही पड़ता है कि कबूतरोंमें घरका रास्ता पानेके लिये कोई विशेष शक्ति है।

आजसे हज़ारों वर्ष पहिले भी लोग कबूतरकी इस शक्तिको जानते थे और तभीसे लोग इसके पीछे पड़े हैं। लेकिन वैज्ञानिकों और कबूतर-बाज़ोंको आज भी यह भेद हाथ नहीं लगा है। तो भी ऐसा जान पड़ता है कि हम लोग इस भेदके जाननेके बहुत निकट आगये हैं क्योंकि कुछ विशेष बातों का हमें पता लगा है। ये नीचे गिनायी जाती हैं।

(१) सब कबूतरोंमें घर पहुँचनेकी शक्ति नहीं होती। यह शक्ति केवल एक विशेष जातिके कबूतरोंमें ही होती है। इस जातिका नाम हम "लौटू" कबूतर रख सकते हैं।

(२) सिखलाने और नसलके चुनावोंसे लौटू कबूतरमें खूब दूरसे लौट आनेकी शक्ति पिछले दो चार सौ वर्षमें बहुत बढ़ा ली गयी है। अमरीका का कबूतर योरपके जंगली कबूतरोंका वंशज है, लेकिन सच पूछा जाय तो यह बड़ा वर्णसंकर है। जो लोग योरपसे पैलेस्टाइन धर्मयुद्ध करने गये थे वे सुलतान नूरउद्दीन मोहम्मदकी चिट्ठी ले जाने-वाले कबूतरोंमेंसे दो-चार पकड़ लाये थे। मुग़ल बादशाहों और भारतवर्षके कबूतरोंका खून अमरीकाके 'लौटू' कबूतरों में आज दौड़ रहा है। इन्हीं पूर्वजोंसे आजके कबूतरमें बल, नेत्रशक्ति और धैर्य आया है।

(३) इनके सिखलानेकी रीति यह है—ज्यों ही कबूतरके पर निकल आते हैं और वे थोड़ा बहुत उड़ने योग्य हो जाते हैं त्योंही उनको केवल अड्डे पर ही खाना, अधिकतर मटर और मकई, दिया जाता है। जब कबूतर छः सप्ताहका हो जाता है तो उसे अड्डे से बाहर निकालते हैं, और फिर अड्डे के दरवाज़ेमेंसे भीतर लाकर उसको तुरन्त मटर और मकई देते हैं। यह कार्यक्रम कई दिनों तक जारी रक्खा जाता है जिससे कबूतर अच्छी तरह समझले कि अड्डे के भीतर घुसनेसे उसको खानेको मिलेगा। उसे अड्डे के बाहर कभी भी कुछ खानेको नहीं दिया जाता और जब वह अड्डे के पास बाहर रहता है तो टीनकी कटोरी में मटर और मकई खूब खड़-खड़ायी जाती है जिसमें वह आवाज सुनकर तुरन्त अड्डे के भीतर घुस आये।

जब वह १२ सप्ताहका हो जाता है तो उस अड्डे से थोड़ी दूरपर छोड़ दिया जाता है, और अड्डे के भीतर मटर और मकई जोरसे खड़खड़ाई जाती है। वह दो चार सेकन्ड तक इस आवाजको ध्यान से सुनता है और तब अड्डे में घुस आता है। दिन-पर-दिन वह अधिकाधिक दूरीपर छोड़ा जाता है और इस प्रकार उसे अड्डे में घुस आनेकी आदत पड़ जाती है। जब स्त्रीके साथ रहनेका समय आता है, और फिर पीछे जब बच्चे पैदा हो जाते हैं तब उसे शिक्षा अधिक परिश्रमसे दी जाती है। कबूतरको तब बार-बार बाहरसे छोड़ कर यह अच्छी तरह दिखला दिया जाता है कि उसी अड्डे के भीतर वह अपने स्त्री-बच्चोंको भी पायेगा जहाँ उसे बराबर भोजन मिला करता है। कबूतरबाजोंमें जब कभी बाज़ी लगती है तो वे विशेषकर ऐसे कबूतरोंको दौड़में भरती करते हैं जो किसी स्त्रीके प्रेममें फँसे रहते हैं या जिनके छोटे बच्चे होते हैं।

जहाँसे कबूतर छोड़े जाते हैं वहाँसे अपने घरतक कबूतर सीधे नहीं उड़कर जाते। बीचमें कहीं आँधी चलती हो या कहीं कुहरा पड़ता हो तो वे चक्कर काटरकर जायेंगे।

(५) साधारणतया वे अँधेरेमें नहीं उड़ते। यह ठीक भी है। जो कबूतर दिनभर ५० मील प्रति घंटेकी तेज़ीसे उड़ता रहे उसे रातभर आराम करना ही चाहिये और दूसरी बात यह है कि कबूतरका जानी दुश्मन उल्लू रातमें ही निकलते हैं (यों तो वे उल्लू भी इसके जानी दुश्मन हैं जो बन्दूक लिये सभी उड़ती चीज़ोंपर धायँ-धायँ गोली दाग़ा करते हैं)।

(६) 'लौट्टू' कबूतर साधारणतया आठसे दस वर्ष तक जीता है। परन्तु कुछ कबूतर इसके दूने दिनों तक जीते रह जाते हैं। उड़ने और बोझ उठानेकी शक्ति दो वर्षसे पाँच वर्ष तककी आयुमें सबसे अधिक रहती है।

(७) यह जरूरी नहीं है कि उनको लगातार अपना घर दिखाई पड़े तभी वे घर पहुँच सकें। सारजन्ट स्मिथके पास एक फौजी कबूतर था। थोड़ी दूरसे छोड़नेपर यह कबूतर वक्तसे लौटकर किले पर नहीं आया। कई दिनों बाद विचारा पैरसे चलता हुआ आया। बीचमें उसे किसी ने पकड़ लिया था, जो चाहता था कि कबूतर उसके घर रहे, और इस विचारसे उसने इसके पर काट डाले थे। लेकिन कबूतर घर पहुँच ही गया।

(८) कबूतरोंके कान आदमीके कानकी तरह होते हैं। उनमें भी वैसी ही चक्करदार नली होती है। कुछ लोग समझते हैं कि कबूतरोंके घर लौटनेकी विशेष शक्ति इन्हीं कानकी नलियोंमें रहती है, क्योंकि यदि इन नलियों में घाव हो जाय या कबूतरके कान बन्द कर दिये जायँ तो फिर वह घर नहीं लौट सकता।

(९) सभी कबूतरोंकी, और विशेषकर लौट्टू कबूतर की, दृष्टि बड़ी तीव्र होती है। प्रयोगों से पता लगा है कि आदमीकी अपेक्षा कबूतर कई गुनी अधिक दूरीसे देख सकता है।

(१०) बेतारके तारकी लहर से कबूतर चक्करमें पड़ जाते हैं। बार-बार देखा गया है कि अगर कोई बेतारके तार भेजनेवाले स्टेशन उनके रास्तेमें पड़ जाँय तो खूब सधे कबूतर भी घबराकर रास्ता भूल जाते हैं। बार-बार देखा गया है कि ऐसे स्टेशनोंसे छोड़े गये कबूतर उस वक्त तो केवल २० मिनटतक मँडराकर अपने घर चल देते हैं जब वहाँकी मशीन बन्द रहती है, परन्तु मशीनके चालू होते ही बेचारे घंटों तक मँडराया करते हैं और अन्तमें फिर जमीनपर आ जाते हैं।

इतनी बातोंका तो पक्का पता है। बाकी बातें केवल अनुमानसे ही जानी जा सकती हैं। मिस्टर स्टेडसनने एक नया सिद्धान्त बनाया है। इसके समझनेके लिये हमें उस अद्भुत कबूतरपर ध्यान देना चाहिये जो फ्रांससे छोड़े जानेपर इन्डोचाइना पहुँच गया। इस कबूतरको झाबेमें बन्दकर जहाजकी पेंदीमें रखा गया था, और जहाज हिन्दुस्तानका चक्कर लगाता लाल समुद्र और भूमध्यसागर पार करता हुआ फ्रांस पहुँचा था। यह कबूतर रास्ता देखता हुआ तो गया नहीं था और अवश्यही छोड़े जानेपर ७२०० मील की दूरी से अपने घर वह नहीं देख सकता था; दोनों बात पूर्णतया असम्भव थीं।

मिस्टर स्टेडसनका कहना है कि हो सकता है कि कबूतरके कान बिजलीके कुतबनुमाकी तरह काम देते हों। मिस्टर स्टेडसन कबूतरोंके बारेमें कुछ नहीं जानते। लेकिन बिजलीके कुतुबनुमोंके वे पक्के उस्ताद हैं। उन्होंने यह मिसाल दी है कि जब लिन्डबर्ग हवाई जहाज़से अकेले उड़कर अमरीकासे पैरिस जा रहा था तब उसने एक ऐसा कुतुबनुमा अपने जहाज़में लगा रखा था। जहाजकी दिशा बदलते ही इस कुतुबनुमेसे उसे पता लग जाता था कि वह किधर जा रहा है। अब अगर कबूतरके कान इन कुतुबनुमों की तरह हैं तो जब कबूतर जहाजकी पेंदीमें फ्रांस जा रहा था तो वह याद करता गया होगा कि वह किस दिशामें जा रहा था, और फ्रांससे छूटनेपर उलटी दिशामें चलकर वह घर पहुँच गया होगा।

है तो यह बड़ा सुन्दर सिद्धान्त। परन्तु इसके ठीक होनेकी कोई विशेष सम्भावना नहीं मालूम होती। अभी बार-बार इस सिद्धान्तको अपने सामने रखकर प्रयोग करने

पड़ेंगे, तब कहीं पता चलेगा कि यह सिद्धान्त सच्चा है या झूठा ।

इधर वैज्ञानिक लोग जबसे ऐसे सिद्धान्तोंपर बहस किया करेंगे तबसे कबूतर अपने आश्चर्यजनक कामका उदाहरण कदाचित अधिकाधिक मात्रामें दिखलाया करेंगे । उन की उपयोगिता दिनपर दिन बढ़ती जा रही है । हज़ारों वर्ष पहलेसे कबूतर लड़ाईके काममें आता रहा है, शांतिके दिनोंमें वह इस कामके अतिरिक्त मनुष्यकी जान बचाने और विद्या के प्रचार करनेके काममें भी सहायता देता है । इसके अतिरिक्त अमेरीकामें कबूतरोंके दौड़का नया खेल चल निकला है । हालमें कबूतरोंने समाचार पत्रोंकी नौकरी कर ली है, और दूर स्थित स्थानोंसे समाचार और चित्र सम्पादकोंके पास रेलसे भी शीघ्र पहुँचाते हैं ।

कबूतरबाज़ी अमरीकामें इन दिनों इस ज़ोरसे फैली है कि चार मासिक पत्रिकायें केवल इसी विषय पर निकलती हैं । सन् १९३२ में ४४६० दौड़ें कबूतरोंकी हुई थीं और इस में १२ लाख से ज्यादा कबूतरोंने भाग लिया था ।

पिछले महासमरमें देखा गया कि कबूतर गोली चलते में भी चिट्ठी पहुँचा दिया करते थे और ९० प्रतिशत चिट्ठियाँ ठिकाने पहुँच जाती थीं । तभीसे कबूतरोंका पालन ज़ोरोंसे बढ़ा । 'न्यूयार्क ईवनिङ्ग जनरल' ने कबूतरोंकी एक पूरी फौज पाल रखी है । जहाजी खबरोंके भेजनेके लिये इस समाचार पत्रके संवाददाता जब जहाजपर जाते हैं तो अपने साथ कबूतर ले जाते हैं और वहाँ पर बाहरसे आये हुए बड़े लोगोंके फोटो और समाचार इन्हीं कबूतरोंसे भेज देते हैं । रास्ता १४ मीलका है और कबूतर कुल १२ मिनटमें खबर ले आते हैं । प्रतियेगी समाचार पत्रोंके पास कहीं दो घन्टे बाद समाचार मिल पाता है, और इस तरह से 'न्यूयार्क इवनिङ्ग जनरल' को बड़ा फायदा रहता है । फौजमें हरएक जगह सैकड़ों कबूतर पाले गये हैं । न्यूयार्क के ७७ नं० वाले बटेलियन कबूतरोंके बड़े अनुग्रहीत हैं क्योंकि एक कबूतरके छावनीतक खबर पहुँचानेपर ही उन को सहायता मिली और उनकी जानें बचीं । इस कबूतरने लड़ाईमें १२ बार पहले भी समाचार पहुँचाया था । अन्तमें बैरीकी गोली इसकी टाँगमें लग गई और टाँग कट गई । परन्तु टाँग टूट जानेपर भी यह बहादुर छावनी तक पहुँच ही गया, और समाचार लोगोंको मिल गया । इस बटेलियन के लोग इस कबूतरको अपनी जानसे भी अधिक प्यार करने लगे और उसका बड़ा आदर करने लगे । एक दूसरे कबूतरकी बात है कि एक बमका टुकड़ा लग जानेसे आँख फूट जानेके बाद भी वह अपने अड्डे तक पहुँच गया ।

शायद इन सब बातोंको देखते हुए यह कहना कि कबूतरोंमें बहादुरी नहीं होती बहुत कृतघ्नता होगी । लेकिन यह बात माननी पड़ेगी की कबूतर इतना जिद्दी होता है कि घायल होनेके बाद बहादुरीके बदले शायद ज़िद ही के कारण अपने अड्डे तक पहुँचता है । लेकिन चाहे ज़िद हो चाहे बहादुरी, फौज उनके बिना अपने काम चलाने का इरादा नहीं रखती । फौजने तो अब इन्हें रातमें उड़ना भी सिखा लिया है । अड्डोंको अन्धेरेमें रक्खा जाता है और कबूतर शामके बाद ही बाहर निकाले जाते हैं । अड्डे पर रोशनी जला दी जाती है । कबूतरोंको सबेरेसे कुछ खानेको नहीं दिया जाता । छोड़नेपर वे सीधे अड्डे पर पहुँच जाते हैं जहाँ उनको खानेको मिलता है । इस तरह धीरे-धीरे वे रातमें उड़नेमें भी होशियार होते जा रहे हैं । जरमनीमें तो कबूतरोंको सिखानेके लिये एक विशेष कालिज खुला है । वहां इन कबूतरोंपर एक खास किस्मकी ज़ीन कसी जाती है जिसमें एक छोटा सा फोटोका कैमरा लगा रहता है । इस कैमरेमें ऐसा कल लगा रहता है जिससे बार-बार फोटो उतरते रहते हैं । इस तरहसे कबूतर और भी उपयोगी हो जाता है । इस प्रकार कबूतर जो कि शान्ति की मूर्ति समझा जाता है लड़ाईके कामके लिये तैयार किया गया है, यहाँ तक कि सरकारने यह भी सोचा है कि जितने कबूतरबाज़ हैं उन्हें अनिवार्य रजिस्टरी करानेका कानून बना दिया जाय जिससे उनके भी कबूतर काममें लाये जा सकें ।

लेकिन शान्तिमें भी कबूतरोंकी उपयोगिता बढ़ती जा रही है । समुद्री मछली मारनेवाले मल्लाह अपने साथ

कबूतर ले जाते हैं जिसे वे विपत्ति पड़नेपर संदेशा बाँध कर घर भेज देते हैं। जंगलके सरकारी चौकीदार आग लगनेपर इन्हींके द्वारा मदद मँगाते हैं और जिन उड़ाकोंके पास बेतारके तारका सामान तैयार नहीं रहता वे अपने साथ कबूतर रखते हैं कि कठिनाईके समयमें वे उनकेद्वारा सहायता मँगा सकें। ऐसे कबूतरोंके अड्डे में एक बिजलीका खटका लगा रहता है जिसमें कबूतरोंके बैठते ही घंटी बजने लगती है और लोगोंको पता चल जाता है कि कबूतर आया है।

कबूतरोंकी उपयोगिता और भी बढ़ जाय यदि लोग बाज़की सहायतासे शिकार करनेकी आदत छोड़ दें, और उन लोगोंमें भी ज़रा सी अक़्ल आजाय जो बेमतलब ही सभी उड़ती चीज़ोंपर बन्दूकका निशाना ज़रूर लगा देते हैं। कबूतरोंकी कोई भी बड़ी दौड़ ऐसी नहीं हुई है जिसमें एक दो कबूतर गोलियोंसे घायल न हुए हों। इसी कारण ऐसी दौड़ोंमें बहुतसे कबूतरबाज़ अपने अच्छे कबूतरोंको नहीं भेजते। अमरीकामें अच्छे लौट्टू कबूतरोंके दाम ४०) से १००) तक मिल गये हैं। बाज-बाज कबूतरोंके दाम तो २०,०००) तक मिल गये हैं। कबूतरोंके सिखानेमें भी बहुत समय लगता है। इससे समझा जा सकता है कि कबूतरबाजोंको कितना क्रोध आता होगा जब उनका कोई अच्छा कबूतर गोली या बाज़से घायल हो जाता होगा। कबूतरके विषयपर जो मासिक पत्रिकायें निकल रहीं हैं उनमें बराबर चेष्टा की जा रही है कि लोग इस बातको समझ लें और कबूतरोंका शिकार करना छोड़ दें।

८

पक्षियोंके संबंधमें कुछ रोचक बातें

पक्षियोंके बिना संसार कितना सूना लगेगा! उनके सुंदर रूप, विविध रंग, और उनका प्यारा चहचहाना या गाना कितना भला जान पड़ता है। उनके बिना संसार बहुत उदास लगेगा।

परंतु हमारी चिड़ियाँ केवल सौंदर्य की वस्तुएँ ही नहीं हैं। वे उपयोगी भी हैं। यदि छोटी-छोटी कीड़े-मकोड़े खाने वाली चिड़ियाँ दिन भर परिश्रम न किया करें तो ये कीड़े-मकोड़े हमारे फसल का सत्यानाश कर दें। फिर, गिद्ध आदि पक्षी मरे जंतुओंको खा न जाया करें तो लाशोंके सड़नेसे वायु दूषित हो जाय।

पक्षियों का विकास उरंगमों से हुआ है और इसमें कई करोड़ वर्ष लगे हैं। इस बात का प्रमाण भूमिमें दबे अति प्राचीन और अब लुप्त हो गये एक पक्षीसे मिलता है। इस पक्षी का नाम लोगों ने अब आर्किऑपटेरिक्स रख दिया है जिसका अर्थ है आर्षविहंग (आर्ष=अति प्राचीन)। ऐसा एक पक्षी बवेरिया में पत्थरों के भीतर दबा मिला था और वह अब लंडनके म्यूज़ियममें है। दूसरा बरलिनके म्यूज़ियममें है। इस पक्षीमें विशेषता यह थी कि चोंच छोटा और अतीक्ष्ण था, और भीतर १६ दाँत थे। उसे छिपकिली की तरह पूँछ होती थी और पंखमें अँगुलियोंके तरह अंग होते थे जिनके सिरेपर चिड़ियोंके पंजों की तरह नख होते थे। इस प्रकार यह आर्षविहंग बहुत-कुछ उरंगम की तरह था, परंतु इसके पंख की छाप पत्थरमें ऐसी स्पष्ट थी कि निःसंदेह यह जंतु पक्षी था।

प्राणी-संसारमें केवल पक्षियों को ही पर और पंख होते हैं।

चिड़ियों का पर धीरे-धीरे जीर्ण-शीर्ण हो जाता है। इसलिए समय-समयपर सब चिड़ियों का पर झर जाया करता है और उसके बदले नवीन पर उग आता है। कुछ पक्षियों में प्रति वर्ष पर झरता और उगता है, किसी-किसीमें वर्षमें दो बार; कुछ चिड़ियों का सब पर एक साथ ही झरता है, यहाँ तक कि उनका उड़ना या निवास-स्थानसे बाहर निकलना असंभव हो जाता है। ऐसी चिड़ियाँ, जब तक पर फिर नहीं उग आता, कहीं छिपी पड़ी रहती हैं। किंतु बहुत-सी चिड़ियोंमें पर धीरे-धीरे झरता रहता है और नवीन पर उगता रहता है। पेनग्विनोंमें सब पर एक साथ झरता

है। तब पक्षी बहुत भद्दा और गंदा लगता है। पर झरनेके पहले वह खूब मछली खाता है। फिर, जब तक नवीन पर उग नहीं आता, वह समुद्रमें नहीं घुसता। तब तक वह उपवास ही करता है।

परों के रंग कुछ चिड़ियोंमें बहुत चटक होते हैं। साधारण रंग पक्के होते हैं, परंतु एक चिड़ियेमें यह रंग पानी पड़ने से धुल जाता है। कुछ घंटों में रंग फिर चढ़ जाता है, क्योंकि रंग-उत्पादक पदार्थ शरीरके भीतर से निकलता रहता है।

बहुत-सी चिड़ियाँ खूब तेज़ उड़ती हैं। कौए तीस-पैंतीस मील प्रति घंटेके हिसाबसे उड़ते हैं, हंस जातिकी कुछ चिड़ियाँ पचास-पचपन मील प्रति घंटेके वेगसे उड़ती हैं और बतासी नाम की छोटी चिड़िया तो सत्तर मील प्रति घंटेसे भी तेज़ उड़ती है। कुछ चिड़ियाँ बहुत तेज़ दौड़ सकती हैं, जैसे शुतुरमुर्ग, जिसका एक-एक पग पचीस फुट का होता है। छोटी चिड़ियों में हमारा कौड़िल्ला (अँग्रेज़ी नाम किंगफिशर) भी बहुत वेगसे दौड़ सकता है। सबने देखा होगा कि बत्तखों का चलना बड़ा भद्दा लगता है। इसका कारण यह है कि बत्तखों का पैर शरीर के केंद्र के हिसाब से पीछे रहता है। इसलिए वे बार-बार गिरती-सी दिखाई पड़ती हैं। परंतु टाँगोंके पीछे रहनेके कारण ये चिड़ियाँ बहुत तेज़ तैर सकती हैं। सबसे निराली चाल पेनग्विनों की है। वे तो ऐसे चलते हैं जैसे पैर में फोड़ा निकला हो और चलनेमें बहुत कष्ट होता हो। एक पगमें वे दो-ही चार इंच आगे बढ़ते हैं। परंतु जब जान बचाने के लिए भागना होता है तो वे पेटके बल लोट कर अपने पङ्खसे भूमि ठेल-ठेल कर काफी तेज़ीसे भागते हैं।

सभी ने देखा होगा कि चिड़ियाँ अपने श्रृङ्गारमें बहुत समय लगाती हैं। यह काम वे किस प्रकार कर पाती हैं इस पर एक लेख एक बारके विज्ञान में छपा था। उसे हम नीचे उद्धृत करते हैं।

पक्षियोंकी श्रृङ्गार सामग्री

सौन्दर्यका भूखा मनुष्य अपने शरीरको चमकानेके लिए नाना रंग पोतता है और गुदवाता है, तेल लगाता है, उबटन लगाता है, साबुन लगाता है, पाउडरका प्रयोग करता है। फिर वह बालोंपर नाना प्रकारके स्निग्ध पदार्थ लगाकर कंघी करता है और सजता है। इसी प्रकार पक्षिगण भी अपने सौन्दर्यको बनाये रखनेके लिए विशेष सामग्रीका उपयोग करते हैं।

बतखोंके पंखोंपर एक विचित्र-सी चमक होती है। वे पानीमें, कीचड़में, धूलमें लोट-पोट कर भी फिर ज्योंकी-त्यों स्वच्छ, चमकीली तथा स्निग्ध निकल आती है। क्यों? आपने देखा होगा कि वे पानीमें नहाकर फिर किनारेपर खड़ी हो कर शरीर धुना करती हैं। चोंचोंसे अपने सारे शरीरका छोटा-बड़ा एक-एक पंख साफ करती हैं, और फिर अपने सिरको सारे शरीरपर रगड़ा करती हैं। उनकी पूँछके निचले भागमें कुछ छोटी-छोटी ग्रन्थियोंमेंसे एक प्रकारका चमकदार तेल-सा निकला करता है। वे उसको अपने सिरपर लगाकर सारे शरीरपर चुपड़ा करती हैं। इसीसे उनके पंख फिर चमकने लगते हैं।

कई पक्षियोंके पास कंघी भी होती है। उल्लूके एक पंजेके नखका निचला भाग दाँतीदार होता है; वह उससे अपने सब पंख सँवारता है और अपने देह पर लगे मैलको साफ़ कर लेता है।

कई पक्षी पाउडरका उपयोग करते हैं; जैसे कबूतर और बाज़। उनके कुछ पंख ऐसे होते हैं जो बड़े होकर कड़कीले हो जाते हैं। वे उनको उखाड़-उखाड़ कर चबाते हैं और अपने सब शरीरके पंखोंपर उसका पाउडर चुपड़ लेते हैं या शरीर धुनते समय वे आपासे-आप कड़क कर धूलिके रूपमें बिखर जाते हैं। यही पंखोंकी कान्तिका कारण होता है। इसको पक्षरज कहना चाहिये। पक्षरजका सबसे सुन्दर दृष्टान्त तितलीके रंग-बिरंगे पंखोंपर देख लीजिये। अन्य पक्षिगण भी कुछ अपना उपाय रचते हैं; पर उनका अभी पूरा-पूरा अनुसंधान नहीं हुआ है।

स्वभाव

कुछ चिड़ियाँ बड़ी लड़ाकू होती हैं। गौरैयों को लड़ते हुए सभी ने देखा होगा। एक गौरैया मेरे हजामत बनानेके

दर्पण में अपने प्रतिबिंब से घंटों लड़ा करती थी। बहुधा दर्पण के पीछे भी जाकर देख आती थी। वहाँ कुछ न मिलनेपर भी वह सामने आ जाया करती और फिर लड़ना आरंभ कर देती। मैनाएँ भी आपसमें खूब लड़ती हैं; लड़ते समय कभी-कभी वे अपने काम में ऐसी मस्त रहती हैं कि कोई उन्हें चाहे तो पकड़ ले। कुछ चिड़ियाँ अपने प्रतिद्वंदी का सिर अपनी चोंच से फोड़ डालती हैं। जावा की बयाएँ विरोधी का पैर काट लेती हैं। हंस और कबूतर बैरी को अपने पंखसे मारते हैं। कुछ चिड़ियोंमें डैने की हड्डीमें व्याघ्रनख निकला रहता है जो तेज़ और मज़बूत होता है। दक्षिणी अमरीका में एक चिड़िया होती है उसकी यह हड्डी चाकू की तरह धारदार होती है।

कुछ चिड़ियाँ अपनी ही जाति की अन्य चिड़ियों को मार कर खा जाती हैं। उत्तरी अमरीका का एक उल्लू अन्य छोटे उल्लुओं को मार कर खाया करता है। एक जाति की चील पास-पड़ोस के चीलों के बच्चों को ले भागती है और खा जाती है।

परंतु सभी चिड़ियाँ अपने बच्चों की रक्षा बड़ी तत्परता से करती हैं और उनके लिए अपनी जान तक दे देती हैं।

प्रवास

बहुत-सी चिड़ियाँ जाड़ेमें या गरमीमें अपना देश छोड़ अन्य देशमें चली जाती हैं। इसी को प्रवास या देशांतर-गमन कहते हैं। कुछ चिड़ियाँ तो हज़ारों मील दूर निकल जाती हैं, परंतु कुछ थोड़ी ही दूर जाती हैं। देशांतर जाने वाली चिड़ियाँ बहुधा बहुत ऊँचाई पर उड़ती हैं और अकसर उनको रातमें भी उड़ना पड़ता है।

ऐसा भी देखा गया है कि देशांतर जानेवाली चिड़ियाँ समुद्र पार करते समय प्रतिकूल वायु या अन्य किसी कारण से थककर चूर हो जाती हैं और किसी जहाज पर विश्राम करनेके लए टूट पड़ती हैं। एक बार एक जहाज़ पर इतनी चिड़ियाँ उतरीं कि जान पड़ा जैसे बादल गिर कर आ गया हो। वे बहुत भूखी और प्यासी थीं। कुछ तो जहाज़ पर पड़े समुद्री पानी को पी गयीं और उसके खारेपन के कारण मर गयीं। जहाजियों ने यह देखकर उनको मीठा जल और कुछ आहार लाकर दिया। जब चिड़ियाँ खा-पी कर संतुष्ट हो गयीं और उन्होंने कुछ विश्राम कर लिया तो उड़कर फिर अपना रास्ता पकड़ा। परंतु कुछ चिड़ियाँ जहाज पर ही रह गयीं और जब जहाज़ स्थलके निकट पहुँचा तो उड़कर वहाँ चली गयीं।

प्रवासी चिड़ियों के पैरोंपर नंबर पड़ी अल्युमिनियम की पट्टियाँ लपेट कर पता लगाया गया है कि चिड़ियाँ प्रवासके लिए कहाँ से कहां जाती हैं। इस प्रकार पता चला है कि अफ़रीका की कुछ जाति की चिड़ियाँ इङ्गलैंड तक पहुँच जाती हैं। भारतवर्ष की अधिकांश प्रवासी चिड़ियाँ साइबीरिया जाती हैं; बैकाल झील, टुंगुस्का, स्लैवगोरॉड, टोबोलाक आदि स्थानोंमें भारतसे छोड़े पक्षी पकड़े गये हैं। कुछ बगुले जो बीकानेर में छोड़ गये थे जरमनीमें जा पहुँचे; यदि वे सीधे भी गये होंगे तो सबने ३६०० मील की यात्रा की होगी।

देशांतर जानेवाली चिड़ियाँ जहाज़ों को सूचना देने वाले प्रकाश-स्तंभों के प्रकाश की ओर रातमें उसी प्रकार आकर्षित होती हैं जिस प्रकार दिये की ओर पतंगे। संभवतः वे समझती होंगी कि जब प्रकाश है तो वहां स्थल होगा। पहले बहुत-सी चिड़ियां इन प्रकाश-स्तंभोंके पास मर जाया करती थीं, क्योंकि वहाँ कहीं ठहरने को स्थान न मिलता था, और तीव्र प्रकाश से निकलने पर अंधी-सी हो जाने के कारण उनको अपने मार्ग का ज्ञान न रह जाता था। परंतु अब बहुत से प्रकाश-स्तंभों के चारों ओर चिड़ियोंके बैठने योग्य चबूतरा या और कुछ बना रहता है। रात को चिड़ियां वहीं बैठ जाती हैं और सबेरा होने पर वे फिर आगे बढ़ती हैं।

एक दिनमें चिड़ियाँ कितनी दूर तक उड़ जा सकती हैं इसकी भी जाँच की गयी है। स्वभावतः यह इसपर निर्भर है कि चिड़ियाँ कौन-सी है। यह इस पर भी निर्भर है कि ऋतु और वायु अनुकूल है या नहीं। टिकरी नामक तालाबी चिड़िया (अँग्रेज़ी नाम कूट) प्रत्येक दिन १६० मील

उड़ती देखी गयी है। प्लवर नामक चिड़िया लगातार ग्यारह घंटे उड़कर ५५० मील जाती देखी गयी है।

अभी तक इसका पता नहीं लग सका है कि चिड़ियोंको अपना मार्ग कैसे ज्ञात होता है। वे अनिश्चित रूपसे नहीं उड़तीं। एकही चिड़िया बार-बार एकही स्थानपर प्रवासके लिए आती देखी गयी है। कैसे एक हजार या अधिक दूरीसे ये चिड़ियाँ प्रायः सीधे उड़कर अपने लक्ष्यपर पहुँचती हैं यह बड़े अचरज की बात है। यह भी नहीं है कि वे भूमिके विविध चिह्नोंको स्मरण किये रहें, क्योंकि उन्हें बहुधा बड़े-बड़े समुद्रोंको पार करना पड़ता है जहाँ चारों ओर जल-ही-जल दिखलाई पड़ता होगा।

चिड़ियाँ क्यों प्रवासके लिए जाती हैं इसका उत्तर यही जान पड़ता है कि नवीन स्थानमें ऋतु अधिक अनुकूल रहता है। फिर, अपने देशमें कुछ ऋतुओंमें पर्याप्त भोजन नहीं मिल पाता। इसके अतिरिक्त नवीन स्थानमें बहुधा उन्हें घोंसले बनाने और अंडा देनेके लिए अधिक विस्तृत या अधिक उपयुक्त स्थान मिलता है।

अंडे और घोंसले

हमारे बच्चोंमें अंडे उठा लानेकी प्रबल इच्छा होती है। अंडे बहुत सुंदर होते हैं, और फिर वे नवीन वस्तु होते हैं जिनको अधिक पाससे देखना और अपने पास रखना अच्छा लगता है। परंतु उनको ऐसा नहीं करना चाहिए। ऐसा करना चिड़ियोंके प्रति निर्दयता है।

अंडोंकी आकृति भिन्न-भिन्न होती है। कुछ गोल होते हैं, कुछ लंबोतरे और दोनों ओर एक समान, और कुछ लंबोतरे परंतु एक ओर पतले, दूसरी ओर मोटे। उनके रङ्गोंमेंभी बहुत अंतर होता है। वे अंडे जो छिपे स्थानोंमें दिये जाते हैं बहुधा सफ़ेद होते हैं, परंतु वे जो खुले स्थानों में दिये जाते हैं बहुधा चितकबरे होते हैं, क्योंकि चितकबरे अंडे दूरसे स्पष्ट नहीं दिखलाई पड़ते और इसलिए अपने रङ्गके कारण अधिक सुरक्षित रहते हैं।

अंडे

खुले स्थानोंमें दिये गये अंडे साधारणतः चितकबरे होते हैं।

अंडोंकी नापोंमें भी बहुत अंतर होता है, परंतु यह आवश्यक नहीं है कि बड़ी चिड़ियोंके अंडे उसी अनुपातमें बड़ेही हों। उदाहरणतः, कीवी लगभग मुर्ग़ीके बराबर होती है, परंतु कीवीका अंडा मुर्ग़ीके अंडेसे ५ गुना भारी होता है।

फिर कुछ चिड़ियाँ, जैसे गिद्ध, सालमें एक अंडे देती हैं; कुछ, जैसे कबूतर, दो; कुछ चार; परंतु कुछ, जैसे बतख, तो एक दरजनसे भी अधिक देती हैं। अंडोंसे बच्चोंके निकलनेमें कम-से-कम दस और अधिक-से-अधिक ४२ दिन लगता है।

अंडेसे निकलनेपर बहुतसे चिड़ियोंके बच्चे दृष्टिहीन, बिना परके और पूर्णतया निःसहाय होते हैं। उनकी आँखें उस समय खुली नहीं रहतीं, गौरैयेके बच्चोंको इस अवस्थामें सभीने किसी-न-किसी अवसरपर देखा होगा। परंतु कुछ चिड़ियोंके बच्चे परिपक्व अवस्थामें निकलते हैं। उदाहरणतः, शुतुरमुर्ग, बतख, तीतर, मुर्ग़ी आदिके बच्चे अंडेसे निकलनेके

पक्षियोंमें संतति-प्रेम

बतख अपने बच्चोंको पीठपर लिये तैर रही है।

एक घंटेके भीतरही चल या तैर सकते हैं। उनकी आँखें जन्मसेही खुली रहती हैं।

अधिकांश चिड़ियाँ घोंसला बनाती हैं, परंतु कुछ भूमिमें गड्ढे खोदकरही अपना काम चलाती हैं। अधिकांश घोंसले बहुत सरल रीतिसे बने रहते हैं, परंतु बयाका घोंसला बहुत सुंदर बना रहता है।

दरजिन या फुदकी नामक चिड़ियाँ दो पत्तियोंको सी कर अपना घोंसला बनाती हैं। इसके लिए वे पहले पत्तियों के किनारोंपर छेदकर लेती हैं। फिर उनमें कुप्पोंसे* नोचे या इधर-उधरसे प्राप्त किये तागे पहनाकर कसती हैं। अंतमें तागेके सिरोंको उधेड़कर गाँठ-सी बना देती हैं। फिर भीतर सेमर की रुई या अन्य कोमल वस्तुएँ रख लेती हैं।

अंडोंपर चिड़ियाँ इसलिए बैठती हैं कि वे गरम रहें। इसीको सेना कहते हैं।
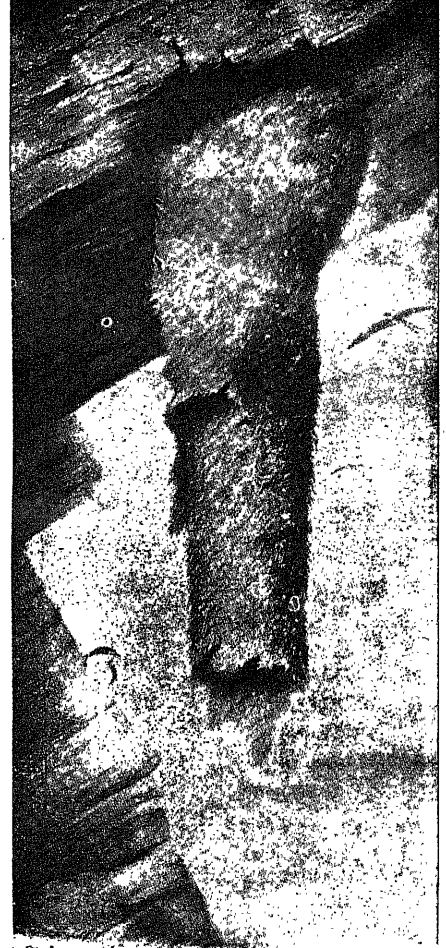
बयाका घोंसला

बया नामक छोटी-सी चिड़िया बहुत ही कलापूर्ण घोंसला बनाती है।

*कुप्पा उस रेशमी घर को कहते हैं जिसे भुइला आदि रूपविकारके समय अपनी रक्षाके लिए अपने ऊपर कातते हैं।

अफ्रीका तथा अन्य गरम देशोंमें चिड़ियाँ अंडोंपर बहुधा इसलिए बैठती हैं कि वे अधिक गरम न हो जायँ और इसी अभिप्रायसे वे बार-बार जाकर पानीमें डुब्बी लगा आया करती हैं।

पक्षियों का प्रेम-प्रदर्शन

मनुष्योंमें तो स्त्रियाँ सज-धजकर पुरुषोंको आकर्षित करती हैं—विशेषकर यूरोपीय देशोंमें—परंतु पक्षी-संसारमें नर सज-धजकर, गा-बजाकर, या नाच-कूदकर नारियोंको मोहते हैं।

यह न समझना चाहिये कि पक्षियोंमें इतना ज्ञान होता है कि वे अपने कार्यका अभिप्राय समझ सकते हैं; उनके भीतर कोई ऐसी सहजबुद्धि—जन्मसे प्राप्त बुद्धि—होती है जिसके कारण वे यह सब बिना बूझे करते हैं। भीतरसे कोई ऐसी प्रेरणा होती है जिसको वे रोक नहीं सकते।

पता नहीं कि नारी चिड़ियाँ पक्षियोंके इन हाव-भावों से वस्तुतः आकर्षित होती हैं या नहीं। क्या मोरनी मोरके

स्वर्ग का पक्षी

यह बहुत सुंदर होता है।

सुंदर पूँछ फैलाकर नाचनेसे वस्तुतः उसपर लट्टू हो जाती है? ऊपरसे देखनेमें तो ऐसा नहीं जान पड़ता; परंतु कौन जाने वह अपने हृदयके भावोंको छिपानेमें उस्ताद हो! कुछ भी हो, अंतमें नारियाँ नरोंके फुसलानेमें आ ही जाती हैं और तब घोंसला बनानेका काम आरंभ हो जाता है।

इसे प्रेम-प्रदर्शन कहिए या नारी को प्रलोभन देना कहिए, प्रायः सभी पक्षियोंमें यह थोड़ा-बहुत होता है। परंतु स्वर्ग के पक्षी (बर्ड ऑफ़ पैराडाइज़) में यह शिष्टाचार उच्चतम शिखरपर पहुँच जाता है। इन पक्षियोंमें कंधेके पास लंबे-लंबे, फहराते हुए, सुनहले और अत्यंत सुंदर पर होते हैं। प्रेम-प्रदर्शनके अवसरपर वे इन परों को खड़ा कर लेते हैं, अपने डैनों को फैला लेते हैं, कमर फुका लेते हैं, पूँछ फैलाकर नीची कर लेते हैं और मस्त होकर झूमते हैं। साथ ही वे उच्च स्वरसे चिल्लाते भी हैं। इतना ही नहीं, वे अपने सरको कभी नीचे, कभी ऊपर, कभी पीछे मोड़ा करते हैं। सारांश यह कि वे तरह-तरहका करतब दिखाते हैं।

मोरनीके सामने मोरों का नाचना सभीने कभी-न-कभी देखा ही होगा।

एक तरह का तीतर नारी तीतर को लुभानेके लिए इतनी चेष्टा करता है कि वह बेचारी घबड़ा जाती होगी। तीतर नारीके सामने अर्धवृत्तमें दौड़ा करता है और बीच-बीचमें एकाएक रुक जाता है और अपना पङ्ख खोलकर उसे दिखाता है। पूँछ भी फैला लेता है।

परंतु सबसे मज़ेदार प्रदर्शन शुतुरमुर्ग करता है। प्रेम-पीड़ित शुतुरमुर्ग अपने गलेको फुलाकर नगाड़ेकी तरह शब्दसे गरजता है। फिर अपने चूतड़के बल भूमिपर बैठ जाता है और पंख फैला, मस्त हो, अगल-बगल झूमने लगता है। कभी-कभीतो आधे घंटेतक वह झूमताही रह जाता है। जब उठता है,तो दौड़कर सीधे नारी शुतुरमुर्गके पास पहुँचता है और पास पहुँचकर पैर पटक-पटककर एक प्रकारसे नाचता है। तब, इच्छा हुई तो, नारी उसे अंगीकार कर लेती है।

सारस प्रेम-प्रदर्शनके समय नाचता है। वह खूब नाचता है और बड़ी सुंदरतासे नाचता है।

नीलकंठ पहले ऊपर उड़ जाता है। फिर ऐसा गिरता है मानों मर गया हो, परंतु भूमि छूनेके पहलेही वह सँभल जाता है और ऊपर उड़ जाता है। बार-बार वह यही तमाशा दिखाता है।

लोग कहते हैं कि प्रेम अंधा होता है। मनुष्योंका प्रेम चाहे अंधा हो चाहे न हो, पक्षियोंका प्रेम तो अवश्य अंधा होता है, क्योंकि प्रेम प्रदर्शनके नाच-कूदमें कभी-कभी नारियाँ खिसक जाती हैं तो भी नर अपने धुनमें मस्त अपना काम किये ही चला जाता है। जब नारियों की कमी होती है तब नर एक दूसरेके सामने ही नाचते हैं। एक मोर तो एक हैट पाकर उसकोही रिझानेके लिए नाचने लगा!

चिड़ियों की बोली

वसंतके आने पर पेड़ हरे-भरे होने लगते हैं। चिड़ियाँ भी चहचहाने लगती हैं। चिड़ियोंका चहचहाना और गाना उनके आंतरिक आनंद और जीवनका लक्षण है। अधिकतर उसी समय पक्षी अपनी साथिनियाँ खोजते हैं और घोंसला बनानेका कार्य आरंभ होता है।

पक्षियोंमें से कुछ तो बहुत सुंदर गा या बोल सकते हैं, जैसे कोयल, पपीहा, या बुलबुल, परंतु कुछ टें-टें करकेही रह जाते हैं।

कुछ चिड़ियाँ मनुष्यकी बोलीकी नकल उतार सकती हैं सुग्गा और मैना इस बातमें प्रसिद्ध हैं। सुग्गोंके बारेमें कई कहानियाँ प्रचलित हैं; एक यह है—

एक जहाज़ी मल्लाह परदेशसे विलायतमें बड़ा सुग्गा ले गया। घाट किनारेही उसका मकान था और सुग्गेका पिंजड़ा पासमें ही टँगा रहता था। वहाँ गाड़ियाँ लदनेके लिए बहुधा जाया करती थीं और गाड़ीको एकदम घाटसे लगानेके लिए घोड़ोंसे अकसर चिल्लाया जाता था 'पीछे हट'। एक समयकी बात है कि गाड़ी खड़ी थी परंतु गाड़ीवान कहीं चला गया था। सुग्गेने चिल्लाया 'पीछे हट!' घोड़ा सधा हुआ था; सोचा मालिक बोल रहा है और इसलिए दो पग पीछे हट गया। एक बार सुग्गेने फिर चिल्लाया और घोड़ा फिर पीछे हटा। अंतमें गाड़ी और घोड़ा दोनों पानीमें जा गिरे और बेचारा घोड़ा मरही गया।

चिड़ियों की चोंच

चिड़ियोंकी चोंचोंमें ऐसी विभिन्नता होती है कि आश्चर्य होता है। कोई नीचे झुकी रहती हैं, कोई ऊपर; कोई नुकीली होती हैं, कोई अतीक्ष्ण; कोई बहुत छोटी, कोई लंबी; कोई चटक रङ्ग की, कोई मैली या अस्पष्ट रङ्ग की।
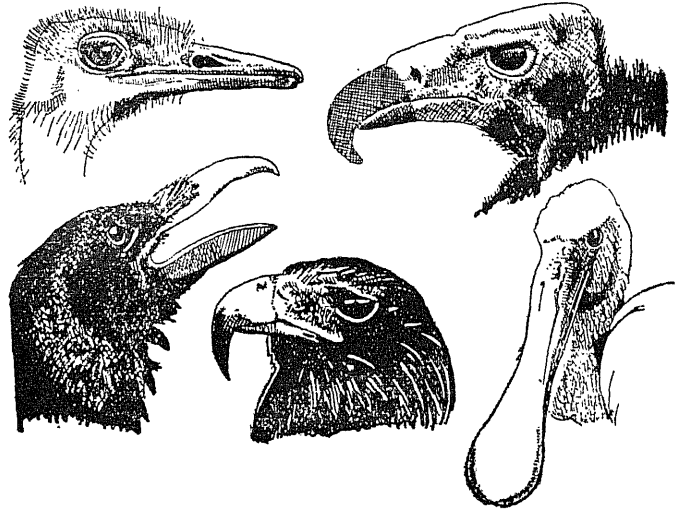
चोंचों की विभिन्नता

शुतरमुर्ग, गिद्ध, कौआ, चील और दाबिल की चोंच

उपयोगके आधारपरही चोंचोंमें विभिन्नता होती है। पक्षीकी जैसी आवश्यकता रहती है, लाखों वर्षोंके विकासमें

चोंचें धीरे-धीरे वैसीही हो जाती हैं। परन्तु इसमें कोई संदेह नहीं कि कुछ चोंचोंपर उगे फालतू अंग केवल दिखाने के लिए होते हैं।

चोंचोंसेही पक्षियोंको आहार मिलता है। कुछ पक्षी इसे हथौड़ेकी तरह काममें लाते हैं, जैसे कठफोड़वा; कुछ इसे भालेकी तरह मछली मारनेके काममें लाते हैं, जैसे बगुला; कुछ इससे मांस नोचते और चीरते हैं, जैसे चील; कुछ इससे बीजोंके खोल फोड़ते हैं, जैसे सुग्गा; कुछ इससे दाना चुगते हैं, जैसे गौरैया; कुछ कीड़े पकड़ा करते हैं, जैसे नीलकंठ; कुछ कीचड़ोंसे कीड़े निकाला करते हैं, जैसे बतख। इन पक्षियोंकी चोंचें अपने कार्यके अनुरूपही रहती हैं।
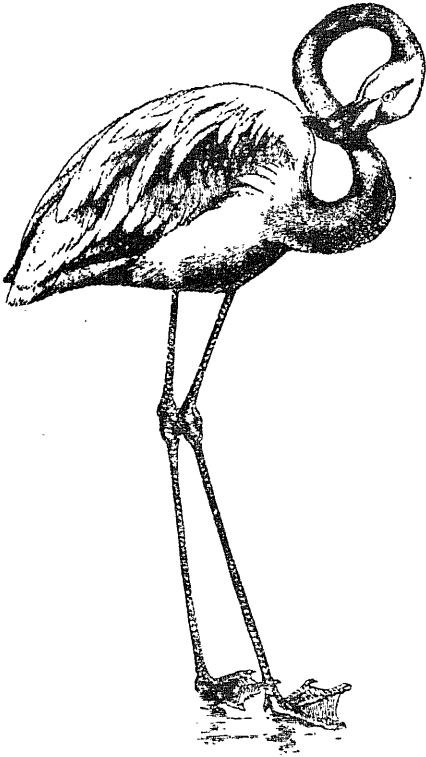
राजहंस

इसकी चोंच छोर पर मुड़ी रहती है।

राजहंसोंमें चोंच विचित्र आकारकी होती है क्योंकि दोनों चोंचों की नोक सामने एकाएक मुड़ी रहती हैं। इस लिए चोंच निकम्मा-सा लगता है, परन्तु बात ऐसी नहीं है। राजहंस बड़ी टाँगोंका पक्षी है। इसकी गरदन भी लंबी होती है। यह छिछले पानीमें हल जाता है और कीचड़में से अपना आहार खोज लेता है। इसके लिए उसे अपनी गरदन झुकानी पड़ती है और चोंचको टाँगोंके पास लाना पड़ता है। तब चोंचका मुड़ा भाग भूमिके समानांतर रहता है और चम्मचका काम बहुत अच्छी तरह देता है।

धनेश (अँग्रेज़ी नाम हॉर्नबिल) में चोंच अत्यंत बड़ी होती है, उसपर ढालकी तरह एक चौड़ा भागभी रहता है। परन्तु इतना बड़ा होते हुएभी चोंच हलकी होती है, क्योंकि इसकी बनावट छिद्रमय होती है। सुमात्रा और बोर्नियोंके धनेशोंकी चोंचें ठोस और हाथी दाँतकी तरह भारी होती हैं।

अमरीकाके टूकन नामक पक्षियोंकी चोंचभी पक्षीकी नापके हिसाबसे बहुत बड़ी होती है। लोग व्यंग में कहते हैं कि पक्षीसे तो उसकी चोंचही बड़ी है। परन्तु उसकी चोंच बहुत हलकी होती है और इस लंबी चोंचसे वह फुनगी तकके फलोंको डालपर बैठे-ही-बैठे पा जाता है। टूकन फलाहारी है।

पेलिकनोंमें भी चोंच बहुत बड़ी होती है। पेलिकन मछली खाते हैं। ये यूरोप और अमरीकामें होते हैं। लंडन की पशुवाटिकामें एक दर्शक पेलिकनोंके सामने पावरोटीका टुकड़ा फेंक रहा था। एक कबूतरभी वहीं आ पहुँचा। रोटी गिरी तो कबूतरभी झपटा और पेलिकन भी। कबूतरको रोटी मिल तो गयी, परन्तु पेलिकनने अपनी बड़ी चोंचोंमें कबूतर ही को उठा लिया और निगला गया।

न्यूज़िलैंडमें पादड़ी-पक्षी (अँग्रेज़ी नाम पारसन बर्ड) होते हैं। इनमें नर की चोंच छोटी और मज़बूत होती है, नारी की लंबी और सुकुमार। नर कठफोड़वा की तरह पेड़ों के तने ठोंका करता है और उनके दिखलाई पड़ने पर नारी

अपनी लंबी चोंच से कीड़े को निकाला करती है। इसलिए इनमें आपस में सहयोग न हो तो दोनों भूखों मरें।

पक्षियोंकी चोंचोंपर दो छेद होते हैं। यही नथुने हैं। अधिकांश पक्षियोंमें ये चोंच की जड़के पास होते हैं। परन्तु
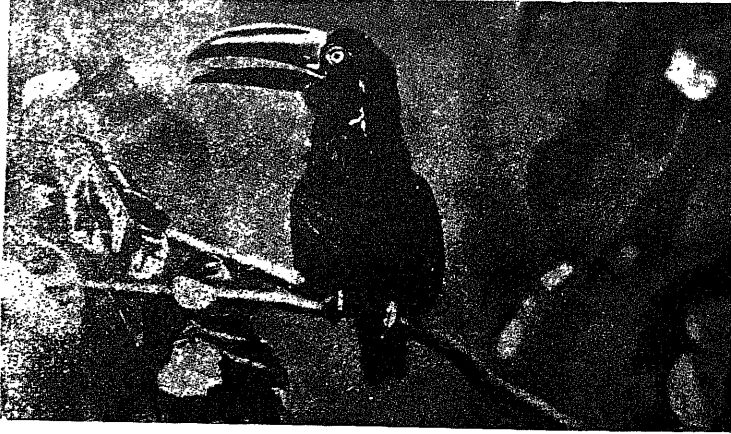
टूकन
इस पक्षी की चोंच लंबी परन्तु हल्की होता है।

कीवीमें ये छेद चोंच की नोंकके पास होते हैं और चोंच बहुत लंबी होती है इससे कीवी छेदोंमें घुसे कीड़ों को सुगमता से फूँक कर निकाल लेती है।

९

साँपोंके संबंधमें कुछ बातें

जीवन-निर्वाह की कठिन समस्या की पूर्तिके लिये मनुष्यको कितनेही प्रकारकी साधनोंकी शरण लेनी पड़ती है। इनमें कुछ तो इतने अधिक कठिन हैं कि मनुष्यके जीवनकी भी जोखिम प्रत्येक पदपर रहती है। फिरभी पैसेके लोभमें कठिन-से-कठिन कार्यभी मनुष्य करता है।

सँपेरा धनोपार्जनमें दूसरोंका मनोरंजन करता है, पर क्या आपके हृदयमें यह विचारभी कभी उठता है कि कुछही पैसोंके लिये वह अपनी जान हथेलीपर रखकर बहुतही विषैले और भयानक साँपोंसे खेला करता है? इस लेखमें हम उसके जीवनकी कुछ बातोंपर, उसके कला-कौशलपर तथा साँपोंके स्वभावपर कुछ विचार करेंगे। एच० डब्ल्यू० ऐक्टन साहबने इन विषयोंपर बहुतही सुन्दर और जानने-योग्य बातें अपने अनुभवसे लिखी हैं। इन्होंने स्वयं सँपेरोंकी सब विद्या सीखी थी और अत्यंत विषैले साँपोंको वे सहजहीमें पकड़ सकते थे। उन्हींकी पुस्तकके आधारपर यह लेख लिखा गया है। सँपेरे भारतवर्षहीमें पाये जाते हैं। उनकी जातिके सम्बन्धमें उनसे पूछनेपर किसी विशेष बातका पता नहीं चलता। वे केवल इतनाही बतला सकते हैं कि उन्होंने अपनी सर्प-विद्या अपने पितासे सीखी थी। वे अपने आदि पूर्वजोंके बारेमें प्रायः कुछ नहीं जानते। इन लोगोंका कोई निश्चित निवास-स्थान नहीं है। वे एक स्थानसे दूसरे स्थानपर घूम-घूमकर धनोपार्जन किया करते हैं। इसलिये वे अपने स्वजातियोंसे बहुत पृथक् होकर समूचे भारतवर्षमें जगह-जगह फैल गये हैं, और वे जहाँ अब रहते हैं उसी स्थानकी विशेष रस्मोंका पालन करते हैं। प्रारम्भमें ये लोग शूद्रोंके वर्णमें थे और नट जाति कहलाते थे। इस समय उत्तरी भारतमें इनकी चार मुख्य पृथक् जातियाँ पाई जाती हैं। इनमेंसे अपने कार्यमें सबसे अधिक सिद्धहस्त 'माल' जातिवाले हैं जो अपने निवासस्थानकी प्रचलित हिन्दू रस्मोंका पालन करते हैं। इनके कुलदेव सर्प या नाग हैं और इनकी पूजा नागपंचमीके त्योहारपर दूध, लावा, मिठाई आदिसे की जाती है। इन लोगों के जीविका-

निर्वाहका मुख्य साधन सांप पकड़ना और दूसरे सँपेरों या अन्य व्यक्तियोंके हाथ सांप बेचना है। ये लोग जादूगरी, ओझाई, वैद्यक इत्यादि विषयोंसे अपना सम्बन्ध नहीं रखते। ये अपनी स्त्रियोंको अपने निवास-स्थानमें ही छोड़ देते हैं और स्वयं स्थान-स्थानपर घूमते रहते हैं। हिन्दू धर्मके आचार-विचारको अभिमानसे अपनाते हैं और गो-मांस या सूअरका मांस छूते भी नहीं, परंतु गीदड़, साही, बड़े-बड़े चूहे और छिपकली खानेमें इन्हें कोई आपत्ति नहीं होती।

दूसरी जाति जो उत्तरी भारतमें सभी जगह पाई जाती है वैद कहलाती है और बहुत लोग इन्हें बंगाला कहते हैं क्योंकि इनका निवास-स्थान कभी बंगाल था। ये लोग मदारी और ज्योतिषी होते हैं और वे गँठिया आदि रोगोंको अच्छा करनेका दावा भी करते हैं। इनकी एक उप-जाति फुँकवा कहलाती है जो दाँतोंका दर्द और दाँतोंमें कीड़े लग जाने का रोग अच्छा करनेमें विशेष चतुर गिनी जाती है। ओझाई, सिंगी लगाने, फ़स्द खोलने तथा जोंक लगानेमें भी वे सिद्धहस्त होते हैं। माल जातियोंकी प्रथाके विपरीत इनकी स्त्रियाँ इनके साथ-साथ रहकर इन्हें सहायता देती हैं और स्वयं भी नाच-गाकर तथा वेश्यावृत्तिसे धनोपार्जन करती हैं। वैद जातिके सँपेरे साँपोंको अपनी आवश्यकतानुसार प्रायः माल तथा नट जातियोंसे खरीदते हैं। नट लोग उत्तरी भारतमें रहते हैं और साँप पकड़कर तथा भीख माँगकर जीवन व्यतीत करते हैं। ये लोग गीदड़ आदिके शिकारमें पालतू कुत्तोंकी सहायता लेते हैं और छिपकली तथा गिरगिट खाते हैं।

सांई अथवा तुमड़ीवाले बंगालमें मिलते हैं और लम्बी पगड़ी तथा लम्बा पीला चोगा पहनते हैं। ये लोग बीन या तुमड़ी बजाते हैं जो लौकीकी बनी रहती है और जिसमें बाँसकी दो नलियाँ लगी रहती हैं। यह तुमड़ी केवल इसी जातिवाले बजाते हैं। वे कहते हैं कि तुमड़ीके रागसे सर्पों को मोहित करके दीवारोंकी दरार या छेदों तथा खड्हरोंसे बुला लेना उनके वशमें है। इस दावेको सिद्ध करनेके लिये वे चालाकीसे एक या अधिक साँप अपने लम्बे ढीले कपड़ोंमें पहलेसे छिपाये रहते हैं और उचित अवसर आनेपर उन्हें बाहर निकालकर कहते हैं कि तुमड़ी बजाकर साँपको बुला लिया है। ये लोग घूमते रहते हैं और मौक़ा मिलनेपर चोरी करनेसे भी नहीं चूकते। कभी-कभी तो मदारीका तमाशा केवल बहाना रहता है और इसी बहानेसे मकानोंमें घुसकर दरवाज़े, खिड़कियाँ आदिका भेद भली प्रकार ले लेते हैं जिससे बादमें रातके समय घरमें घुसकर चोरीकरनेमें सुविधा रहे। बहुतसे तो साथ-ही-साथ सँपेरेका भी पेशा करते हैं।
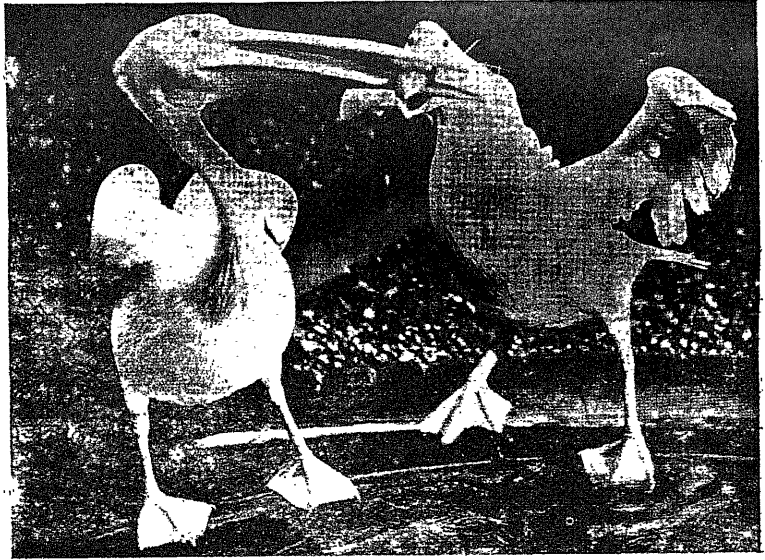
पेलिकन

नर और नारी पेलिकनोंमें प्रेम-प्रदर्शन।

सँपेरे प्रायः एक गेहुअन साँप, एक अजगर और कई विषहीन जातिके साँप जैसे धामिन, दोमुँहा आदि रखते हैं। करैत साँप बहुत चालाक सँपेरोंके ही पास कभी-कभी देखनेमें आता है। सँपेरा कभी भी नेवले और सांपकी लड़ाई नहीं दिखलाता है क्योंकि इन लोगोंमें सर्प पूजनीय तथा इष्टदेव माना जाता है। तमाशेके लिये साँप मारना पाप समझा जाता है। सँपेरोंका विश्वास है कि यदि वे कभी सांपको मार डालेंगे तो वे अपना मंत्र सर्वदाके लिये भूल जायँगे। सांप और नेवलेकी लड़ाई केवल मुसलमान सँपेरे ही दिखलाते हैं। सँपेरोंके विवाहमें अजगर बहुधा दहेजके रूपमें दिया जाता है। वरसे पूछा जाता है कि वह दुलहिनके साथ रुपया लेना अधिक पसन्द करेगा अथवा अजगर। वह अकसर अजगर ही चुनता है, क्योंकि इनके विचारमें अजगरके आगमनसे घरमें लक्ष्मी और स्वास्थ्यका भी आगमन होता है।

सर्पमोहिनी कला

सर्पमोहिनी विद्याके सीखनेवालेको चाहिये कि वह सर्पोंको छूनेमें प्राकृतिक घृणाको अपनेसे दूरकर दे। सँपेरे तो बचपनसे ही भांति-भांतिके विषहीन सांपों और अजगरोंको पकड़नेमें अभ्यस्त होते हैं। इसलिये उन्हें घृणा कभी नहीं होती। जब ये लड़के बड़े हो जाते हैं तब धीरे-धीरे उन्हें नाग भी पकड़ना और उनसे खेल करना सिखलाया जाता है। जब साँपोंको छूनेकी प्राकृतिक विरक्ति दूर हो जाय तब सीखनेके लिये यह अत्यन्त आवश्यक है कि नौसिखिया सर्वदा इस बातपर बहुत ध्यान रक्खे कि सभी साँप जिन्हें वह छूये यह समझें कि छूनेवाला सांपसे कुछभी नहीं डरता; बल्कि सांपका वही स्वामी है। इसके लिये वह व्यक्ति सर्पोंको सर्वदा बिना किसी प्रकारकी हिचकिचाहट के निर्भयतासे पकड़े। सांपको ऐसा मौक़ा न देना चाहिये कि वह काटनेके लिये अपना आसन जमा ले, क्योंकि ऐसा करनेसे जब सांप काटनेसे लिये फन उठायेगा तब पकड़नेवाला घबड़ा जायगा और सांपके ऊपर अपना रोब न जमा सकेगा। यही बात अन्य जानवरोंके लिये भी लागू है। घोड़ेपर चढ़नेवाले भली भांति जानते हैं कि नये घोड़ेपर चढ़नेमें कभी अपनी दुर्बलता या घबड़ाहट घोड़ेपर न प्रगट होनी चाहिये,
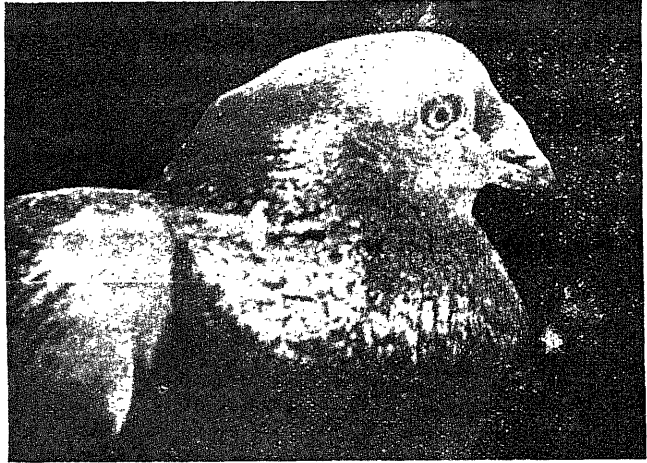
लौट्टू कबूतर

बहुत दूरसे छोड़े जानेपर भी ये कबूतर सीधे अपने घर लौट आते हैं और इसलिए ये समाचार लानेके काम में आते हैं।

अन्यथा जब घोड़ा समझ लेगा कि सवार कच्चा है तब सवारके क़ाबूमें घोड़ा रहनेके बदले परिस्थिति उलटी हो जायगी।

अनाड़ी सांप पकड़नेवाला तो विषहीन सांप पकड़ते समय भी हिचकता है और आगा-पीछा करता है। डरते हुये ही वह सांपके पिटारेमें हाथ डालता है। यदि सांप ज़रा भी हिलता-डुलता है, तब पकड़नेवाला उसी क्षण हाथ खींचना चाहता है और सांप अपनी प्रकृतिके अनुसार उसी क्षण चोट करता है। लेकिन पक्का सँपेरा पहलेही यह निश्चय कर लेता है कि सांपका मुँह उसकी ओर नहीं है और तब चुपकेसे अपना हाथ अंदर डालकर सांपकी पूँछ

पकड़ उसे ऊपर उठा लेता है, जिससे वही सांप कुछ कर नहीं पाता। तात्पर्य यह है कि सँपेरा अपना मौक़ा देखकर सुअवसरोंका उपयुक्त प्रयोग करता है। सांप सँपेरेका हाथ अपनी ओर बढ़ता हुआ नहीं देख पाता है और बेचारा यह जाननेसे पहले ही कि कोई नई बात हो रही है। धीरेसे ऊपर उठा लिया जाता है।

दांत तोड़ना

सँपेरोंको बचपनमें सांपके विषैले दांत तथा विषकी थैली ढूँढ़नेकी शिक्षा सर्वप्रथम दी जाती है। साधारणतः विषैले दांतोंको निकाल दिया जाता है। इसके लिये सांपको किसी कपड़ेको काटनेका अवसर दिया जाता है और ज्योंही सांप अपने विषैले दांतोंसे कपड़ेको भली भांति पकड़ लेता है, त्योंही कपड़ेको ऐंठकर बलपूर्वक झटका दिया जाता है। इस प्रकार साधारणतः विषैले दांत जड़से टूटकर कपड़ेमें फँसे हुये निकल आते हैं। उसके बाद सांपको पकड़कर उसके विषैले दांतोंकी परीक्षा साहीके कांटोंसे की जाती है। यदि कोई दांत बचा रहता है तो छोटी सड़सीसे उसे निकाल दिया जाता है। यह देखनेके लिये कि कोई नया दांत तो नहीं निकल आया, मुँहकी परीक्षा थोड़े-थोड़े दिनके अंतरपर बराबर जारी रक्खी जाती है। अच्छे सँपेरे दांतों को नहीं निकालते हैं; उन्हें वैसे ही छोड़ देते हैं और सांपको किसी कपड़ेमें काटनेका अवसर देकर विषकी थैलियोंसे सब विष ही दबाकर निकाल देते हैं। ऐसे सांपसे वे अपने अंगको कटाकर जहरमोहरासे उसे अच्छा करनेका काम भी दिखला सकते हैं। इस तमाशेमें बड़ी सावधानीकी आवश्यकता है। पहले विषैले थैलोंसे विष प्रायः पूर्णतया दुहकर फेंक दिया जाता है। परिणाम यह होता है कि जब सँपेरा अपनेको सांपसे कटाता है तब सांपोंमें इतना विष नहीं बचा रहता कि वह अपनी पेशियोंको दबाकर सँपेरेके शरीरमें विष डाल सके। इसके बाद उसी सांपसे मुर्गीके बच्चेको कटाया जाता है और इस समय सँपेरा अपनी उँगलियोंसे सांपकी विषवाली थैली दबा देता है। इस बातका पता स्वभावतः दर्शकोंको नहीं लग पाता है। फल यह होता है कि तौलमें एक रत्तीके कुछ हज़ारवें हिस्सेके बराबर विष मुर्गीके बच्चेके शरीरमें भिन जाता है। इतना ही थोड़ा विष मुर्गीके छोटे बच्चेके लिये बहुत हो जाता है और मुर्गीका बच्चा देखते-देखते ही कुछ मिनटोंमें मर जाता है। यह खेल बहुत

सँपेरा

बचपनसे साँपोंके साथ खेलते रहनेसे सँपेरोंमें साँपोंके प्रति झिझक या घृणा रह ही नहीं जाती। उनकी पकड़ ऐसी सच्ची होती है कि साँप को काटनेका अवसर कभी मिल नहीं पाता।

ही कम दिखलाया जाता है। इस प्रकारके दृष्टांतोंसे, असली भेद न जाननेके कारण, बालकी खाल खींचनेवाले मनुष्य भी सच समझ बैठते हैं कि अवश्य ही जहरमोहरे तथा मंत्रोंमें बहुत शक्ति रहती है।

सँपेरा सांप पकड़ना भली भांति जानता है। सांप तभी काट सकेगा जब वह फन काढ़े रहेगा। सँपेरा धीरेसे अपना पिटारा खोलता है और बड़ी सावधानीसे देख लेता है कि कोई भी सांप काटनेकी मुद्रामें फन उठाये तो नहीं है। जो सर्प सबसे सीधेमें पकड़ा जा सकता है पहले उसकी ही पूँछ पकड़ कर वह उसे बाहर निकाल लेता है। यदि कोई सांप इस प्रकार बैठा रहता है कि वह चोट कर सके, तब सँपेरा किसी अन्य ऐसे सांपकी दुम पकड़कर उठायेगा जो इस काटनेवाले सांपकी पहुँचके बाहर हो। सर्पको पूँछके बल उठानेका एक विशेष कारण है। इस स्थितिमें सर्प पकड़नेवाले व्यक्तिके हाथोंतक अपना मुँह नहीं उठा सकता; इससे काट भी नहीं सकता। दुम पकड़ कर उठाये जानेसे सर्प अपने शरीरकी लम्बाईके केवल तीन चौथाई तक ही अपना मुँह उठा सकता है।

फणधर सांप काटते समय एक वृत्तखंडमें ही चोट करता है; केवल उसी रेखामें स्थित विंदुओंपर वह चोट कर सकता है जिनपर फन झुकानेसे उसका मुँह पड़ता हो। इस रेखासे अधिक समीप या दूरके विंदुओंपर वह चोट नहीं कर सकता। फिर, दिनमें चकाचौंधके कारण सांप साधारणतः सच्ची चोट नहीं करता; क्योंकि चोट करते समय वह अपनी आँख प्रायः बंद रखता है; मुँह भी बंद रखता है। ऐसी चोट अंधी चोट कहलाती है। इस हालतमें फनसे सांप भले ही मार दे, पर मुँह न खुले रहनेसे वह अपने दांतसे न काट सकेगा और न विष डाल सकेगा। आंख बन्द किये हुये वह केवल धनुषाकार रेखा-पर अपना फन पटक सकेगा। इसलिये जबतक सँपेरे का हाथ चोट करनेके वृत्तखंड के बाहर या भीतर रह जायगा तबतक कुछ भी डर न रहेगा। यदि हाथ सांपके फनके नीचे चोट करते समय आ जाय तब जल्द ही हाथको वृत्तखंडके भीतर या बाहर खींचा जा सकता है; इससे उसकी चोट खाली जायगी और मुँह भूमिपर गिरेगा। ऐसा बार-बार करनेसे सांपको चोट लगेगी और तब वह क्रोधमें आँख और मुँह खोलकर सच्ची चोट करेगा। कुछ जातिके सांप फन घुमाकर भी काटते हैं। कुछ सांप दिनमें भी आंखें खोले रहते हैं। ऐसे सांपों के साथ तमाशा करनेके लिये उनके सब विषैले दांत अवश्य तोड़ दिये जाते हैं।

नचाना

यह प्रचलित विश्वास है कि फणधर सांपको ऐसी शिक्षा दी जा सकती है कि वह सँपेरेके आज्ञानुसार हिले या चले। लेकिन सच बात तो यह है कि सँपेरा वही काम कराता है जो सांपोंसे स्वभावतः आशा की जा सकती

सत्याग्रह-भंग

पकड़े जानेपर साँप बहुधा भूख-हड़ताल ठान देते हैं। तब उन्हें बलपूर्वक खिलाना पड़ता है।

है। हम सांपोंसे ऐसे स्वाभाविक क्रियाओंकी आशा कर सकते हैं जैसे फन उठाना, फिर दायें घूमना, तब क्रमा-नुसार सामने मुँह करना, फन और ऊँचा उठाना, एकाएक

चोट करना, सीधा हो जाना और अंत में भूमि पर अपना फन रख देना। इन कार्योंको करानेके लिये सँपेरा अपना हाथ धीरेसे दाहिनी ओर ले जाता है और उसी क्षण सांप भी दाहिनी ओर अपना सर घुमाता है। जब हाथ दाहिनी ओरसे सामने लाया जाता है तब सांप भी उसीके साथ-साथ अपना मुँह सामने ले आता है, मानों वह सँपेरेका आज्ञापालन कर रहा है। यदि हाथ धीरे-धीरे ऊपर उठाया

दूध पिला रहे हैं

भूख-हड़ताल कानेवाले साँपको दूध पिलाया जा रहा है।

जाता है तो सांप भी उसीका अनुकरण करता हुआ अपना फन उठाता है। तब धीरेसे हाथको सांपके फनसे नीचे लाकर शीघ्रतासे खींच लिया जाता है। उसी क्षण सांप भी चोट करता है; उसका सर ज़मीन पर पड़ता है। इतनेमें हाथ फैलाकर सांपके फनके पीछे कर लिया जाता है, जिससे जब सांप फन उठाता है तब हथेली फनके पिछले भागको छूती है। अब जब हाथ धीरे-धीरे नीचे गिराया जाता है तब दबावसे सांपका फन भी धीरे-धीरे नीचे भूमिसे आ लगता है, मानों सांप सँपेरेके आज्ञानुसार प्रणाम कर रहा हो।

पालतू बनाना

यदि किसी सांपको पालतू बनाना हो तो उसे नित्य पिटारेसे बाहर निकालकर ऐसा प्रयत्न करना चाहिये कि वह चोट करे। कुछ दिनों बाद, निष्फल चोट करते-करते, सांप थककर अपनी यह आदत भूल जायगा। कुछ दिनों बाद सांप समझने लगता है कि सँपेरेका उसपर पूर्ण रूपसे अधिकार है और चोट करके वह अपनेही नाकको घायल करेगा।

सांप क्या तुमड़ीका राग सुनता है?

सँपेरे बीन या तुमड़ीका प्रयोग बराबर करते हैं। सांपोंके कानमें मनुष्योंकी तरह पर्दा नहीं रहता कि वे संगीत या शब्द मनुष्योंकी तरह सुन सकें। उनके कानमें केवल हड्डियांही होती हैं। इसलिये सांप केवल वही शब्द सुन सकता है जिसका कंपन भूमि द्वारा इन हड्डियोंतक पहुँच सकता है। यह तभीतक संभव है जबतक सांपका सर भूमिसे लगा रहे, परंतु जब सांप अपना फन काढ़े रहता है तब इसका सर भूमि से नहीं लगा रहता। इससे पृथ्वी-का कम्पन इसके कानोंकी अस्थियोंतक नहीं पहुँचता। इससे स्पष्ट है कि वह फन उठानेके बाद कुछभी नहीं सुन सकता है। परन्तु प्रचलित विश्वास यह है कि सांप बीनके मधुर संगीतकी आहट पातेही दौड़ आता है और फन उठाकर बाजा सुनने लगता है। उसकी ध्वनिसे मस्त होकर वह झूमने लगता है। परन्तु यह बिल्कुल मिथ्या धारणा है। न तो सांप बीन सुनकर दूरसे आही सकता है, न फन उठानेपर कोई शब्द सुनही सकता है। संगीत समझना और झूमना तो कोरी कल्पना है। यह बात बड़ी सरलतासे सिद्ध की जा सकती है। यदि सांपकी दोनों आँखोंपर पट्टी

लगा दी जाय जिससे वह कुछ देख न सके, और उसको फन काढ़कर बैठने दिया जाय, तब किसी प्रकारका और कितने भी ज़ोरका शब्द करनेसे सांपपर कुछभी असर न पड़ेगा। पैरोंकी आहट, या किसी वस्तुके भूमिपर गिरनेका शब्द साँपको तभी ज्ञात हो सकेगा जब वह भूमिपर फन रक्खे पड़ा रहेगा। बीन बजाते समय सांपके हिलनेका कारण केवल हिलते हुये हाथ और तुमड़ीका अनुकरण करना है, न कि बीनकी ध्वनि सुनकर झूमना। बीन बजाते-बजाते यदि कुछ कालके लिये बीनका बजाना रोक भी दिया जाय तबभी सर्प उसी भांति हाथोंके हिलनेका अनुकरण करता रहेगा; पर यदि हाथ हिलाना रोककर बीन बजातेही रहें, तब सांपभी स्थिर हो जायगा।

सँपेरे खेल दिखलाते समय सांपोंको सर्वदा टोकरी या हांड़ीमें रखना पसन्द करते हैं। इस प्रकार रखनेसे सांपोंको चोट करनेका अवसर नहीं मिलता, क्योंकि सांप बड़ी असुविधामें बैठा रहता है।

टोकरीमें बैठा सांप जब चोट करनेके लिये फन पीछे करता है तब उसकी पीठपर टोकरीके पिछले हिस्सेकी चोट लगती है। जब चोट करनेको आगे फन पटकता है तब अपनेही शरीरपर चोट खाकर वह व्यथित हो जाता है। हांड़ीमें रखनेसे तो बेचारेकी औरभी अधिक दुर्दशा होती है, क्योंकि हांड़ीका पेंदा गोल रहनेके कारण वह इधर उधर लुढ़का करता है। जब सांप चोट करनेके लिये पीछे हटता है तब हांड़ी पीछे उलटने लगती है जिससे वह पीछे गिरने लगता है और इसलिये वह भरपूर पीछे नहीं हटता। फिर यदि सांप आगे चोट करनेको बढ़ता है, तो बोझसे हांड़ी आगे उलटने लगती है और सांपभी उसी झोंकेमें आगे लुढ़ककर अपनी नाकको घायल करता है। इसलिये वह चुपचाप सीधा खड़ा रहता है और अपनेको सीधेही रखनेके प्रयत्नमें भूला रहता है। सांप बीनका सङ्गीत सुनही नहीं सकता है, इसलिये यदि टोकरीका ढकना धीरेसे खोल दिया जाय तो बीनके बजते रहनेपर भी नाग चुपचाप टोकरीमें गुड़ली मारे पड़ा रहेगा। इसलिये दर्शकोंपर यह विश्वास जमानेके लिये कि सांप बीन सुनता और नाचता है, भांति-भांतिकी झूठी प्रारम्भिक क्रियायें की जाती हैं। ढकना पहले थोड़ाही खोला जाता है; तब बारहसे हिला और ठोंककर, मंत्रोचारण करके, टोकरीमें मुँहसे फूकते हैं। इन सब बातोंसे सांपको क्रोध आता है, क्योंकि उसकी सुखमय नींदमें बाधा पड़ती है। तब झटपट ढकना हटा दिया जाता है। टोकरीमें दिनका प्रकाश लगनेसे तथा टोकरीको खटखटाने आदिसे पहलेसे ही डरा और बिगड़ा सांप और भी भड़क जाता है, और वह झट उठकर बचनेके लिये तैयार हो जाता है। प्रकाश सँपेरोंके कार्यमें तुमड़ीसे भी अधिक सहायक है क्योंकि सांप दिनमें भली भांति नहीं देख सकते। अधिकांश तो रातमें ही जागने वाले होते हैं, शेष सांप अंधेरा अधिक पसन्द करते हैं। इसका फल यह होता है कि दिनके प्रकाशमें इनकी आँखें चकाचौंधसे प्रायः बन्द रहती हैं, जिससे उनको चोट करनेके लिये दूरी या स्थानका ठीक अन्दाज़ नहीं लगता। ऐसी अवस्थामें वे अटकलसे चोट करते हैं, जो बहुधा खाली ही जाती है अथवा मृत्युदायक नहीं होती। संभव है, कुछ लोग मनमें यह विचार करें कि यदि बीनको सांप नहीं सुन सकता तो इस बाजेके रखनेकी आवश्यकताही क्या है। बीनके दो उपयोग हैं। बीन बजानेके साथही उसे हिलाते रहनेसे सांप भी साथ-साथ हिलता है और कुछ देरमें जब उसका क्रोध थोड़ा शांत हो जाता है तब दर्शकों को प्रतीत होता है मानो संगीतकी मधुर हिलोरोंके साथ ही सर्प भी रीझ कर हिलोरें ले रहा है। सांपकी आंखें प्रारम्भसे ही चौकन्नी होकर बीनकी प्रत्येक चाल देखा करती हैं; अब बीनको रोक देनेसे वे उसीपर स्थिर हो जाती हैं। सँपेरा इस मौक़ेको हाथसे जाने नहीं देता। बीनको स्थिर रखकर वह सावधानीसे अपने मुँहको सांपके पास ले जाकर उसके सिरको अपनी जिह्वासे छू देता है, मानो वह सांपको चूस रहा है। इससे सांप तुरंत सतर्क होकर चोट करता है। लेकिन उसके पहिलेही सँपेरा हट गया रहता है। बीन बजाते समय जब उँगलियां नलीके नीचेके छिद्रों पर रहती हैं और तीव्र स्वर निकलता रहता है उस समय बीनको सर्पके मुँहकी ऊँचाईपर रक्खा जाता है,

जिससे, यदि सांप चोट भी करे तो वार खाली जाय, उँगलियां घायल होनेसे बच जायँ। जब उँगलियां ऊपरके छिद्रोंपर रहती हैं जैसा मंद स्वरोंके लिये आवश्यक है, तब बीन कुछ नीचे रक्खा जा सकता है। जब सँपेरा नागको पकड़ना चाहता है तब वह मंद स्वरमें बीन बजाता है। इससे उसकी उँगलियां ऊपर रहती हैं और बीनके नीचेका हिस्सा खुला रहता है। सँपेरा इसी निचले भागको सर्पके मुखके नीचे लाता है। फल यह होता है कि सर्प बीनके इस नीचेके हिस्सेको ही देखनेमें लगा रहता है और उसे पकड़नेके लिये जो हाथ बढ़ाया जाता है उसपर उसका ध्यान जाता ही नहीं। यदि वह चोट करनेका प्रयत्न करता है तो बीनही को उसके मुखकी ओर कर दिया जाता है। दर्शकगण तो सँपेरेके हाथोंको ही देखनेमें व्यस्त रहते हैं, इससे वे बीनके इस प्रयोगको नहीं समझ पाते। जबतक इधर नागका ध्यान बीनमें केंद्रित रहता है, सँपेरेका दाहिना हाथ धीरे धीरे बीनके नीचेसे अथवा पीछेसे ही बढ़ता है और सर्पको उसके फनसे ३ इंच नीचे कसकर पकड़ लेता है। नाग तब भूमिपरसे उठा लिया जाता है। उसका खड़ा फन सँपेरेके हाथके ऊपर फैला रहता है। ऐसी अवस्थामें सर्प सँपेरेके हाथोंपर चोट नहीं कर सकता। इस खेलमें अपना हाथ सांपतक बिना उसका ध्यान आकर्षित कियेही पहुँचा देनेमें सबसे अधिक तारीफ़ है। यदि सर्प हाथको देख लेगा तब तो निश्चय ही वह उसपर वार करेगा। सांपके ध्यान बटानेहीमें सब कौशल है। यही इस खेलका गुरुमंत्र है।

सर्पोंका भोजन

प्रायः सर्प पिटारीमें बन्द रक्खे जानेसे अपना खाना छोड़कर उपवास करने लगते हैं और मर भी जाते हैं। परंतु कुछ सर्प आसानीसे चूहे चुहियाँ आदि खा लेते हैं। ऐसे सर्पोंका मूल्य अधिक होता है, क्योंकि ये अधिक काल तक जीवित रह सकते हैं। जब सांप खाना छोड़ही देता है तब उसे बलपूर्वक भोजन दिया जाता है। इसके लिए सांपको पकड़ लिया जाता है और उसके नीचेका जबड़ा सँड़सीसे
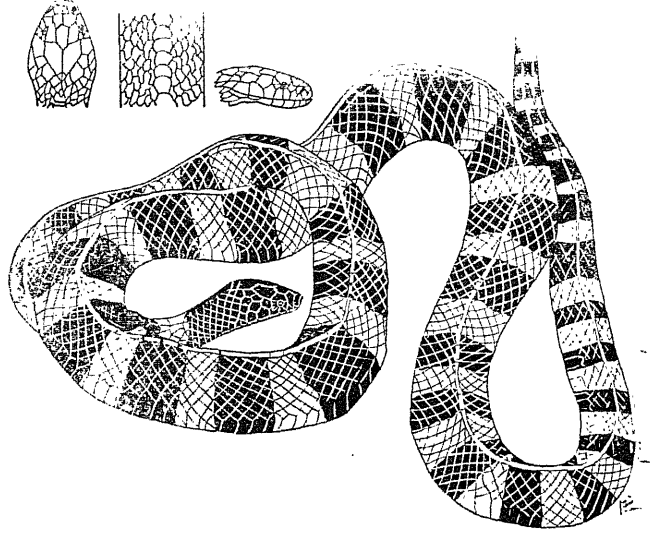
करैत या चितकौड़िया

तीन फुट दस इंच लंबे और साढ़े तीन इंच घेरेके करैत का यह चित्र जीवित अवस्थामें चित्रकार द्वारा खिंचवाया गया है। यह अत्यन्त विषैला होता है—इसका विष नागके विषसे चौगुना या पँचगुना अधिक तीव्र होता है।

बलपूर्वक फैलाकर खोला जाता है। तब एक लम्बी नली वाली कीप उसके गले तक डाली जाती है और एक-दो छटांक दूध उसमें उड़ेल दिया जाता है। प्रति सप्ताह मांसका एक टुकड़ा भी शीशेकी नली द्वारा पेटमें पहुँचाया जाता है। खिलाते समय सर्पको कीपमें या मांसके टुकड़ेमें काटनेका अवसर देना चाहिये जिससे भोजनके साथही उसका कुछ विष भी गलेके नीचे उतर जाय और भोजनमें

मिल जाय, अन्यथा यदि सब विष दुहकर फेंक दिया जाय और तब भोजन बलपूर्वक पेटमें पहुँचाया जाय तो भोजनके साथ विषके न मिले रहनेसे भोजन उसे हज़म न होगा; इससे सांप बदहज़मीके कारण मर जा सकता है। सँपेरे इस बातको भली भांति जानते हैं और विष निकाल लेनेके बाद ही भोजन नहीं देते। यह विष लारकी भांति पाचन क्रियाके
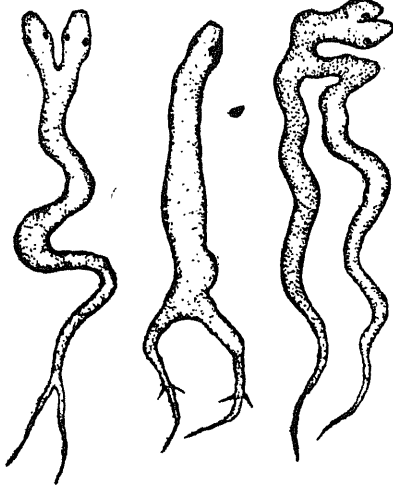
प्रकृति की माया

जैसे मनुष्योंमें या गाय-बकरियोंमें कभी-कभी दो सिरके बच्चे हो जाते हैं उसी प्रकार साँपोंमें भी दो सिर, दो पूँछ या दो शरीरके साँप हो जाते हैं।

लिये आवश्यक है। प्रकृतिमें सर्प जब किसी चुहियाको काटता है तब उसी समय निगल नहीं जाता, बल्कि उसे छोड़ देता है। चूहा बिलमें भलेही भाग जाता हे पर शीघ्रही उसका दम विषसे घुटने लगता है और तब वह बिलसे बाहर निकल आता है, जहां सर्प उसकी प्रतीक्षामें बैठा रहता है। इतने समयमें सर्पका विष चूहेके सारे शरीरमें फैल जाता है और जब चूहेका सारा शरीर शांत पड़ जाता है, सर्प उसे निगलने लगता है। पेटमें पहुँचकर सर्पका विष पाचन क्रियामें सहायता देता है। जिन सांपोंमें विष नहीं होता वे अपने भोजनको अपनी लारसे भली भांति भिगो लेते हैं।

विषधर और विषहीन सर्प

यह बात सभी जानते हैं कि यदि किसी बीमारीकी अनेक औषधियां हैं और उस बीमारीसे मृत्यु-संख्या बहुत कम है तब संभवतः उस बीमारीको दूर करनेकी सच्ची औषधि एक भी नहीं है। यही बात सांप काटनेकी चिकित्साके लिए भी ठीक है। मनुष्योंको विषधर और विषहीन दोनों ही प्रकारके सर्प काटते हैं। विषहीन सांपों द्वारा काटे जानेवाले मनुष्योंकी ही संख्या बहुत अधिक होती है। ऐसे सांपोंके काटनेसे मृत्यु नहीं होती। हाँ, डरसे, या घावके पक जानेसे, यदि कभी मृत्यु हो जाय तो बात दूसरी है। विषधर सर्पोंके काटनेपर भी मृत्युका होना आवश्यक नहीं है। अनेक जातिके सर्प विषैले अवश्य होते हैं, लेकिन जब वे काटते हैं तब अकसर उतना अधिक विष शरीरमें नहीं डाल पाते कि जवान मनुष्यकी मृत्यु हो जाय। कुछ सांपोंके पास तो उतना विष कभी भी नहीं रहता, और वे सर्प जो विषैले भी होते हैं और विष भी बहुत डाल सकते हैं अकसर भरपूर मात्रामें विष नहीं डाल सकते, क्योंकि हो सकता है कि काटते समय उनको पूरा विष उतारनेका अवसर न मिले, अथवा उचित प्रकारसे दांत गड़ाने या फन उठानेका ही मौक़ा न मिले। इसलिये हम जानते हैं कि भारतवर्षमें सर्प काटे मनुष्योंमेंसे केवल ५ से १० ही प्रतिशतकी मृत्यु होती है और शेष ६०-६५ प्रतिशत जीवित रह जाते हैं, चाहे उन्हें किसी प्रकारकी दवा दी जाय या नहीं। सांपोंके तंत्र-मंत्र और जड़ी-बूटी, तथा अन्य औषधियोंके गुणमें विश्वास उत्पन्न करनेमें ये ही ६० प्रतिशत सांप काटे मनुष्य सहायता देते हैं, क्योंकि इनकी मृत्यु तो होगी ही नहीं, चाहे कोई औषधि उनको मिले या न मिले। अधिकांश मनुष्य, जो इस विषयपर कुछ नहीं जानते हैं, यह विश्वास करते हैं कि काटनेवाले सभी सांप विषधर होते हैं और उचित औषधि न देनेसे मृत्यु अवश्य ही हो जायगी।

सँपेरा जो औषधि देता है वह संखिया, नीम, जड़ी, जहर-मोहरा कुछ भी हो सकती है; या केवल मंत्रहीसे काम चल सकता है। जब सांपका काटा व्यक्ति मरता नहीं, बल्कि जीवित रहता है, तो उसके जीवित रहनेका एकमात्र कारण सँपेरेकी औषधि या मंत्र है ऐसी धारणा होना स्वाभाविक है। लोग समझते हैं कि सचमुच उसकी औषधि या मंत्र विषैले सांपोंके विषसे बचनेका सच्चा उपाय है। तब सँपेरोंकी औषधियोंपर क्यों न विश्वास किया जाय ? पर थोड़ा भी सोचनेसे हम समझ जायँगे कि लोगों की यह धारणा कि सभी काटनेवाले सर्प विषधर होते हैं सर्वथा निर्मूल है और इस नींव पर खड़ा किया गया सिद्धान्त सच्चा नहीं हो सकता। विषहीन सर्पके काटे लोग तो अवश्य ही जीवित रहेंगे। उनके लिये एक चिट्ठकी राख और सँपेरोंकी औषधि, बच्चोंका बड़बड़ाना और सँपेरोंका प्रबल मंत्र, सभी बराबर हैं।

सँपेरोंकी औषधियाँ

सँपेरे अधिकतर तीन वस्तुयें सांपके काटनेके उपचारमें प्रयोग करते हैं :—

(१) ज़हरमोहरा।

(२) औषधियां या जड़ी बूटी, जैसे संखिया, अफीम, नीम आदि।

(३) मंत्रों द्वारा झाड़-फूँक।

ज़हरमोहरे के लिए भांति-भांतिकी वस्तुओंका प्रयोग होता है, जिनमें जली हुई हड्डी ही मुख्य है। ज़हरमोहरेके नामपर व्यापार करके बहुतसे लोग अच्छा धन पैदा करते हैं। कहीं-कहीं पत्थरोंका प्रयोग होता है। लोगोंका विश्वास है कि मारख़ोर (पहाड़ी बकरा) चरते समय कभी-कभी भूलसे घासमें छिपा सांप भी खा जाता है और तब इसकी लार सर्पके विषसे मिल जाती है, जिससे विष मर जाता है और वह पत्थर बन जाता है। इसको मारख़ोर अपने मुँहसे तुरंत बाहर उगल देता है और यही ज़हरमोहरा है। मारख़ोर शब्दका अर्थ ही सांप खानेवाला है। इस विचित्र पत्थरमें भांति-भांतिके रोगोंको दूर करनेकी शक्ति होनेका विश्वास प्रचलित है। कभी-कभी जानवरोंके पित्तकी थैलियोंमें पत्थर बन जाता है, जैसा मनुष्योंको भी कभी-कभी हो जाता है। जब ऐसे जानवर मारे जाते हैं और ये पथरियां निकलती हैं, तब सँपेरे इन्हें बहुत मूल्यवान वस्तु मानते हैं और उससे ज़हरमोहराका काम लेते हैं। लोग कहते हैं कि वह पत्थर सर्पके फनमें मिला था। कभी-कभी कुछ ख़ुशबूदार गोंद आदिकी गोलीको भी, जैसे धूपकी गोलीको, वे इसी आशयसे काममें लाते हैं। कहींपर यदि छोटा-सा घाव हो जाय और वहाँसे ज़रा-ज़रा रक्त निकलने लगे, तो वहाँ ज़हरमोहरा लगा दिया जाता है और तब यह रक्तको सोखने लगता है। रक्तके लसदार होनेके कारण ज़हरमोहरा थोड़ी देरमें वहीं चिपक जाता है। कुछ देर बाद जब रक्त सूख जाता है तब पत्थर (ज़हरमोहरा) अपनेही बोझसे वहांसे छूटकर गिर पड़ता है। सँपेरों का कहना है कि यह पत्थर शरीरमें चिपककर विषको
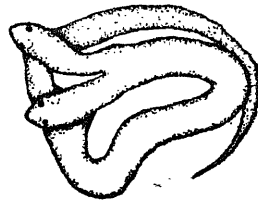
दो-मुँहा साँप

दो मुँहें साँपोंकी की कोई विशेष जाति नहीं होती। किसी भी जातिके साँपमें ऐसे विचित्र व्यक्ति दिखलाई पड़ जा सकते हैं।

खींचकर सोख लेता है और जब सारा विष शरीरसे खींच लेता है तब आपही शरीर छोड़कर गिर पड़ता है। जो सँपेरे विष-भरी ग्रंथियों सहित दांतवाले सर्पोंको पकड़ते हैं वे स्वयं इन ज़हरमोहरोंपर कुछ भी विश्वास नहीं करते। इसीसे वे ऐसे सांपोंसे अपनेको कटाकर ज़हरमोहरेके प्रयोगसे अपनेको चंगा करना नहीं दिखलाते हैं। यह कौशल उन्हीं सांपोंसे दिखलाते हैं जिनका सब विष पहलेही वे दुह लिये रहते हैं। तब ज़हरमोहरेकी नक़ली करामात

दिखलाकर वे अपने दर्शकोंको अचम्भे में डाल देते हैं और साथ ही विषहीन दांतोंके लगनेसे जो थोड़ा रक्त निकलने लगता है उसे भी सोखकर बन्दकर देते हैं। सांप-काटनेकी दवाके रूपमें बेंची जानेवाली जड़ी-बूटियां तथा औषधियां अगणित हैं। इन औषधियोंको बनानेमें कई प्रकारकी वस्तुयें जैसे अफ़ीम, धतूरा, संखिया आदि मिलाते हैं। इन औषधियोंके नुसख़ेको वे कभी बतलाते नहीं हैं; उसे बहुत सावधानीसे छिपाये रहते हैं। वे अकसर यही कहते हैं कि मुझे हिमालय पहाड़के एक योगीसे अथवा नेवलेसे यह औषधि मिली है। अथवा वे इनके बनानेमें बड़ी-बड़ी कठिनाइयां दिखलाते हैं—अमुक स्थानपर अमुक पर्वमें, रातको जब चंद्रमा अमुक कलामें रहे, तभी यदि औषधि बनाई जाय तो लाभदायक सिद्ध हो सकेगी। ये सब कठिनाइयां इस कारण डाली जाती हैं कि किसी मनुष्यको यदि सांप काटे तब वह समय पड़नेपर इन औषधियोंको न पा सके और लाचार हो लोगोंको सँपेरों के पास जाना पड़े। तबतक यदि मनुष्य मरनेवाला होगा तो वह मरही जायगा, परन्तु यदि वह इतनी देर तक जीवित रह सका तो अवश्यही या तो सर्प विषैला न था, या विषकी मात्रा पर्याप्त न थी। इससे अवश्यही वह मनुष्य जीवित रहेगा, चाहे औषधि दी जाय, चाहे नहीं। वास्तवमें ऐसेही रोगी सँपेरोंके लिये उपयुक्त हैं और वे उन्हें सचमुच अपनी प्रतिभाशाली जड़ियों द्वारा मृत्युके मुँसे बचाही देते हैं! सँपेरा केवल अपनी औषधिको ही चंगा करनेके लिये शायद काफ़ी नहीं समझता है। इसीसे साथही साथ मंत्रोंका भी वह प्रयोग करता है। इसके लिये मंत्र, तंत्र, जंत्रकी शरण लेता है। मंत्रतो किसी गुरुसे कानोंमें धीरेसे दिया जाता है। यदि अन्य व्यक्ति इस मंत्रको सुन लेगा तब मंत्र-शक्ति लुप्त हो जायगी। मंत्रके साथ अपने विचारोंको किसी वस्तुपर एकाग्र भी करना पड़ता है। इसलिये कई प्रकारकी रेखाएँ या तंत्र, जैसे वृत्त या त्रिकोण आदि, भूमिपर बनाये जाते हैं। वहांकी हवाभी धूपबत्ती, कपूर, आदि जलाकर शुद्ध की जाती है।

इस प्रकार सँपेरे सीधे मनुष्योंपर कौशल और कपटसे अपनी धाक जमाकर अपनी जीविका निर्वाह करते हैं। साथही दूसरोंका मनोरंजन भी होता है। गांवमें अबभी इनका बहुत रोब है।—डाक्टर उमाशंकर प्रसाद

विषधर और विषहीन साँपों की अचूक पहचान

सर्प चाहे जैसा भी हो उससे सभी भय खाते हैं। भय खाना स्वाभाविक है, क्योंकि प्रथम तो उसका रूप ही भयानक होता है, दूसरे सर्पके काटनेसे बहुधा मृत्यु भी हो जाती है। भारतवर्षमें सर्पके काटनेसे मृत्युके होनेका ठीक-ठीक अनुमान करना तो कठिन है किन्तु इससे कुछ पता चल सकता है कि सन् १९२१ में जांच करनेपर ज्ञात हुआ कि १९,३९६ मनुष्य सर्पके काटनेसे मरे थे। यह संख्या इतनी बड़ी है कि इसको जानकर भय और खेद होता है, परन्तु शोक इस बातका है कि इतना होते हुये भी सर्पोंके विषयमें विशेष ज्ञान अब तक नहीं है। चिकित्साके पूर्व यह आवश्यक है कि इस बातका ज्ञान हो कि रोगीको विषैले अथवा विषहीन सर्पने काटा है। बल्कि इस प्रकार कहना चाहिये कि विषैले और विषरहित सर्पका पहचानना आवश्यक है।

सांप देखकर पहचान करना

अभाग्यवश सांपोंकी पहचान उनके डील-डौल, या फन, या इसी प्रकारकी मोटी बातोंसे नहीं की जा सकती। उनके ऊपर जो चिह्न बने होते हैं उनकी सावधानीसे जाँच करनी पड़ती है। कुछ सहायता उनकी पूँछोंसे भी मिलती है। सबसे पहले उसकी पूँछको देखना चाहिये और यह पता चलाना चाहिये कि पूँछ गोल या लगभग गोल है, अथवा दाहिने बायें तरफ़से चपटी है। यदि कल्पना की जाय कि पूँछ चाकूसे काटी जाय तो वह पूँछ गोल या लगभग गोल कहलायेगी जिसकी रूपरेखा काटनेपर वृत्ताकार होगी, जैसा चित्र १ में दिखाया गया है। यदि दाहिने बायेंसे चपटी होगी तो उसका आकार काटने पर ऐसा ज्ञात

होगा जैसा चित्र ५ में दिखाया गया है। चपटी पूँछ वाला सांप ज़रूर विषैला होता है। यदि मान लिया जाय कि पूँछ दाहिने-बायेंसे चपटी नहीं है, किन्तु गोल है तो इसमें विषैले और बिना विषैले दोनों प्रकारके सर्प होंगे।

(क) बिना विष वाले सर्प गोल पूँछ वालोंमें से दो प्रकारके होंगे :—

१—वे सर्प जिनमें पेट पर और पीठ पर दोनों ओर छोटे-छोटे खुरखुरे एक-समान शल्क या स्केल होते हैं, जैसा चित्र २ में दिखाया गया है।

२—वे सर्प जिनके पेटपर लम्बे पत्र या प्लेट (अर्थात् बड़े शल्क) की भांति शल्क होते हैं परन्तु ये पत्र पेट की पूरी चौड़ाई भरके बराबर नहीं होते। पेटको देखनेसे इन पत्रोंके दाहिने-बायें कुछ छोटे स्केल भी दिखाई देंगे, जैसा चित्र ३ में दिखाया गया है।

इन दोनों प्रकारके सर्प बिना विषके होंगे।

(ख) यदि सर्पके पेट पर प्लेट इतने बड़े हों कि लगभग पेट भर की चौड़ाईमें फैले हों, और छोटे स्केल की अधिक-से-अधिक एक पंक्ति दाहिने-बायें तरफ़ दिखाई देती हो तो इसमें विषैले और बिना विषैले दोनों प्रकारके सर्प हो सकते हैं। ऐसे सर्पों में धामिन अथवा साधारण पनिया सर्प जो नदियों और तालाबोंमें पाये जाते हैं, जहाँ वे अपना भोजन प्राप्त करनेके लिये जाते हैं, सम्मिलित हैं। फिर, अत्यन्त विषैले व्याल या वाइपर भी इसीमें सम्मिलित हैं, तथा इसीमें काला विषैला सर्प और करैत आदि भी सम्मिलित हैं।

इसके प्रथम ही कि विषैले सर्पों की पहिचान और उनका वर्णन किया जाय, यह जान लेना आवश्यक है कि कुछ ऐसे भी सर्प होते हैं जिनमें न तो विष की थैली होती है और न विषैले दांत ही होते हैं किन्तु उनके मुँहके भीतर-थूकमें ही एक प्रकार का विष होता है और जब ऐसे सर्प काटते हैं, तो उस विष का प्रभाव रोगी पर होता है, परन्तु वह प्रभाव ऐसा नहीं होता कि रोगी मर जाय।

इस लेखमें केवल भारतके विषैले सर्पों का वर्णन किया जायगा, जो ५ प्रकारके होते हैं।

१—समुद्री सर्प, २—करैत, ३—नाग (कोबरा), शेषनाग और कोरल* सर्प, ४—गड्ढेदार व्याल (पिट वाइपर), ५—बिना गड्ढेदार व्याल। इन सबकी पहिचान यह है—

१—समुद्री सर्पमें पूँछ दाहिने-बायें तरफ़से चपटी होगी और थूँथन और खोपड़ीके ऊपर बड़े-बड़े प्लेट होंगे। इसी बीचमें यह बता देना आवश्यक है कि लोगों का विचार है कि जलमें रहने वाले सर्प बिना विषके होते हैं। परन्तु यह स्मरण रखना चाहिये कि यह बात केवल उन सर्पोंके लिये सत्य है जो नदी अथवा तालाबमें रहते हैं। समुद्रमें रहने वाला प्रत्येक सर्प अत्यन्त विषैला और भयानक होता है। यह भी पता चला है कि पृथ्वी पर रहने वाले काले सर्पसे इसमें अठगुना विष होता है।

२—करैतमें पूँछ गोल होगी, और रीढ़के ऊपर बीचों-बीच वाली पंक्तिमें स्केल (शल्क) औरोंकी अपेक्षा बड़े होंगे, जैसा चित्र नं० ११ में दिखाया गया है। कुछ बिना विषवाले सर्पों में भी रीढ़के ऊपर वाले स्केल बड़े होते हैं। अतः इसके अतिरिक्त अन्य चिन्हों पर भी ध्यान देना आवश्यक है। करैतमें प्रायः नाकवाला स्केल ऊपरके ओंठके पहिले और दूसरे स्केलसे छूता हुआ होगा, किन्तु तीसरेसे बिल्कुल अलग होगा। नाक और आंखके बीचमें केवल दो स्केल होंगे। कनपटीवाला एक स्केल ऊपरके ओंठके पांचवें और छठवें स्केलसे छूता हुआ होगा। ऊपरके ओंठ पर कुल सात स्केल होंगे, जिनमें तीसरा और चौथा आंखसे छूता हुआ होगा। नीचेके ओंठ पर चार स्केल होंगे, जिनमें चौथा सबसे बड़ा होगा और अपने पीछेके दो स्केलोंसे छूता हुआ होगा, जैसा चित्र ६ में दिखाया गया है। पाखानेके स्थान पर

*कोरल अँग्रेज़ी शब्द, है अर्थ है मूँगा।

केवल एक स्केल होगा। पूँछके नीचे प्लेटकी भांति स्केलों की केवल एक पंक्ति होगी। करैत बहुधा बड़े-बड़े मिलते हैं और उनकी लम्बाई ७ फुट या उससे भी अधिक हो सकती है। ये संयुक्त प्रांतमें बहुत मिलते हैं और यहाँके लोग इनको चित्तिया चितकौड़िया कहते हैं। करैत कुल १२ प्रकारके अब तक मिले हैं। इनमेंसे ६ प्रकारके करैतके शरीरपर बहुधा सफेद और कभी-कभी हल्के पीले रंगकी बेड़ी धारियाँ या गड़ोर पड़े रहते हैं।

३—नाग और कोरल सर्पमें पूँछ गोल होगी और ओंठके ऊपर वाला तीसरा स्केल आँख और नाकके स्केलसे छूता हुआ होगा जैसा चित्र ७ में दिखाया गया है। इस चिन्हसे यह सर्प सरलतासे पहिचाना जा सकता है। इसके पूँछके नीचे और पाखानेके स्थानके पीछे स्केल की दो पंक्तियाँ होती हैं, और पाखानेके स्थान पर केवल एक स्केल होता है। इसके अतिरिक्त काले सर्प (नाग) का फन चौड़ा होता है, जिससे और भी सरलतासे उसकी पहिचानकी जा सकती
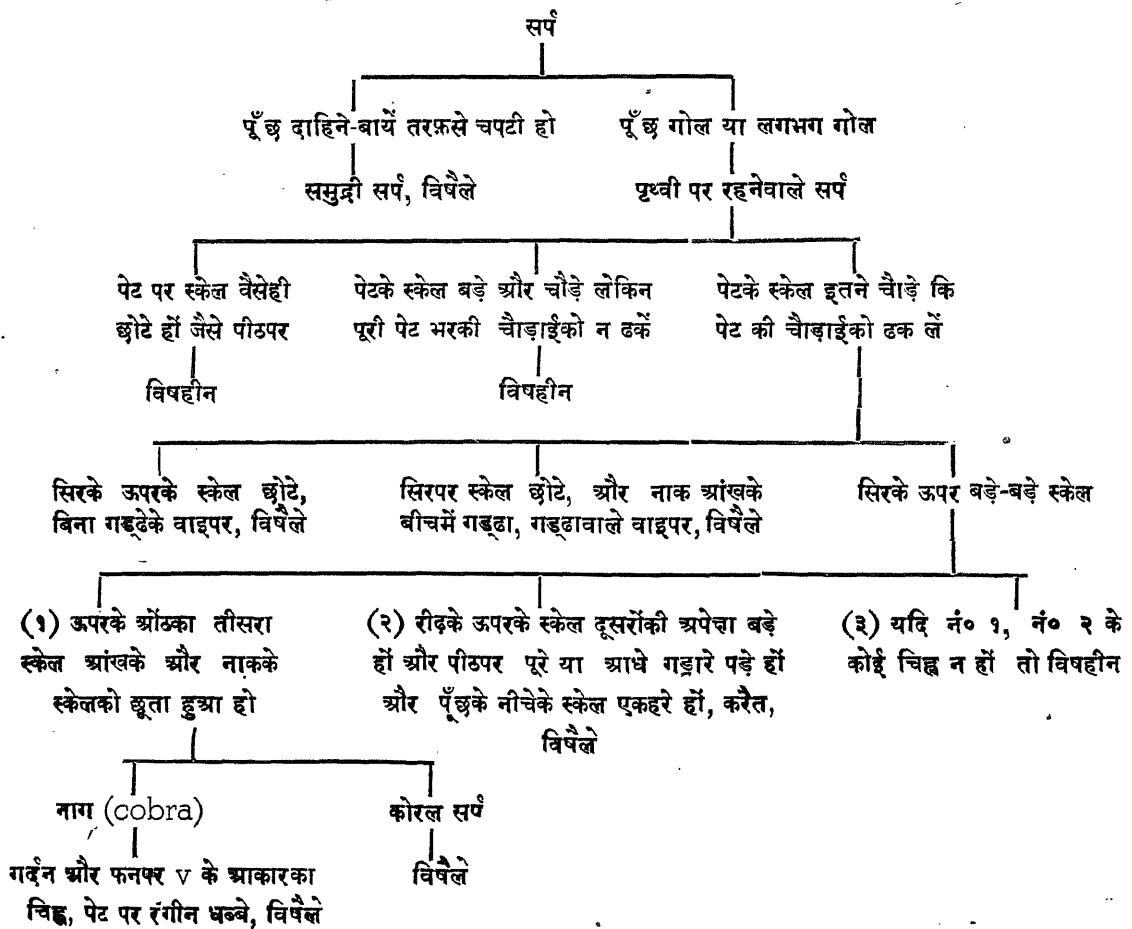
है। उसके फनके ऊपर कभी इकहरा और कभी दोहरा अँग्रेजी अक्षर वी (*v*) के आकार का चिह्न होता है जिसको हिन्दू लोग विष्णुपद या गोखुर कहते हैं। काले सर्पमें विष की थैलीमें इतना विष होता है जिससे १० मनुष्यों की मृत्यु हो सकती है। इकहरे चिन्ह वाले काले सर्प को संयुक्तप्रान्तमें लोग क्योटिया कहते हैं, और दोहरे चिन्ह वाले को गोखुरा कहते हैं। इलाहाबादमें अधिकतर गोखुरा मिलता है और क्योटिया अधिकतर बंगालमें पाया जाता है। इन्हींमें एक प्रकार का नाग वह है जो नागों का राजा (king cobra) या शेषनाग कहलाता है और अधिक बड़ा होता है।

कोरल सर्प बहुधा पर्वतों पर मिलता है और कसौली, सी० पी०, मदरास और बरमामें पाया गया है। कोरल सर्पके पेट पर भांति-भांति की सुन्दर और रंगीन धारियाँ होती हैं। कभी-कभी इन धारियों का रंग मूंगोंके रंगका-सा होता है। इस सर्प को मार कर स्पिरिट या शराब या और किसी दवामें रखनेसे इन सुन्दर धारियों का रंग उड़ जाता है।

४—गड्ढेदार वाइपरकी पूँछ गोल और आँख और नाकके बीचमें दोनों ओर दाहिने बायें तरफ गड्ढा होगा (जैसा कि चित्र ८ में दिखाया है)। रीढ़के ऊपर वाले स्केल औरोंसे बड़े न होंगे। यह पर्वतीय प्रदेशोंमें ही पाया जाता है और बहुधा लम्बा हुआ करता है। इसके काटनेसे सभी रोगी नहीं मरते, बल्कि काटे हुये स्थान पर बहुत ही सूजन और पीड़ा होती है। इनमेंसे एक प्रकार का सर्प चमकीला हरे रंग का होता है और वृक्षों पर रहता है। इसकी लम्बाई ३ फुट की होती है। इन्हींमेंसे एक सर्प अमरीकामें पाया जाता है जिसकी पूँछके सिरे पर छोटी-छोटी घण्टियोंके आकारके स्केल होते हैं। यह एक दूसरेसे पोहे हुये होते हैं और सर्पके चलनेसे इनसे एक विशेष प्रकार का शब्द उत्पन्न होता है। सभी पशु इससे अत्यन्त भयभीत होते हैं, परन्तु बहुधा यह मनुष्यों पर आक्रमण नहीं करता।

५—बिना गड्ढेदार वाइपर—इनकी पूँछ गोल होगी, थूंथन और सरके ऊपर स्केल उसी प्रकारके छोटे होंगे जैसा चित्र ९ में दिखाया गया है। इनमें पेटके प्लेट पेट भर चौड़े होंगे और पेटको देखनेसे प्लेटके इधर-उधर केवल एक पंक्ति छोटे स्केलों की दिखाई देगी। यह सर्प रेगिस्तानोंमें पाये जाते हैं। यह राजपूताना, पञ्जाब, सिन्ध और बिलोचिस्तानमें बहुत पाये जाते हैं। इनके विषका प्रभाव नागसे कम होता है, तो भी इन सर्पोंके काटनेसे प्रति वर्ष बहुतसी मृत्यु हो जाती है। इन सर्पोंकी लम्बाई ३ फुटसे अधिक नहीं होती। भारतवर्षमें इस प्रकारका जो सर्प पाया जाता है उसे दबोइया (रसेल्स वाइपर) कहते हैं। यह पञ्जाबमें बहुधा पाया जाता है और काफ़ी विषैला समझा जाता है।

जो सर्प इन पाँचों भेदोंमें से न होगा उसे समझ लेना चाहिये कि वह बिना विषका है। इनके अतिरिक्त एक सर्प और है जो अभी तक केवल बरमामें मिला है और जिसकी पहिचान देनेकी कोई विशेष आवश्यकता नहीं है।

काटे हुये स्थानको देखकर पहचान करना

बहुधा ऐसा होता है कि सर्पके काटनेके बाद सर्पका पता नहीं चलता है। ऐसी दशामें भी रोगीको और काटे हुये स्थान को देखकर यह पता चलाया जा सकता है कि सर्प विषैला था अथवा नहीं। विषैले सर्पके केवल विषैले दांत होते हैं। अन्य किसी प्रकारके दांत ऊपरके जबड़ेके सामनेके भागमें नहीं होते। और जब सर्प काटता है तब विषैले दांत या तो खालमें चुभ जाते हैं या खरोंच बना देते हैं। इसलिये यदि सर्प विषैला है तो थोड़ी दूरपर खालमें दो छेद दिखाई देने चाहिये, जैसा चित्र १० ख और ग में दिखाया गया है। और यदि सर्प विषैला नहीं है तो बहुतसे दांतके चिह्न पास-पास मिलने चाहिये जैसा चित्र १० क में दिखाया गया है। इन चिह्नों का पता साधारण रूपसे देखनेसे सम्भव है न चल सके, परन्तु आतशी शीशा (प्रवर्द्धक ताल) से देखनेसे ये चिह्न स्पष्ट

चित्र १—गोल और लगभग गोल पूँछ।

चित्र २—विषहीन सर्प का पेट। सब स्केल एक प्रकारके हैं।
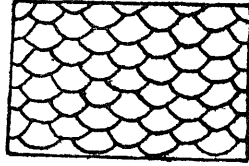
चित्र ३—विषहीन सर्पका पेट। बीच का स्केल बड़ा है।
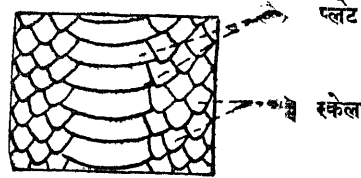
चित्र ४—सर्प का पेट, जब स्केल पेट भर चौड़े होते हैं। ऐसा सर्प विषैला और विषहीन दोनों हो सकता है।
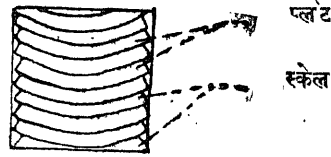
चित्र ५—समुद्री सांप की चपटी पूँछ।

चित्र ६—करैतके ओठकेस्केल। १, २, ३, ४ नीचेके ओठके स्केल हैं, जिनमें चौथा सबसे बड़ा है।
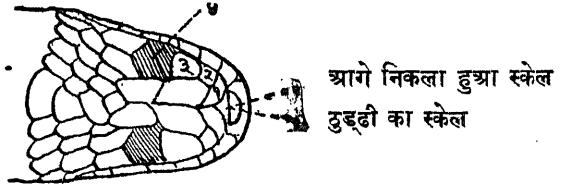
चित्र ११—करैतकी पीठके स्केल, जिनमें रीढ़के ऊपरके स्केल औरोंकी अपेक्षा बड़े हैं।
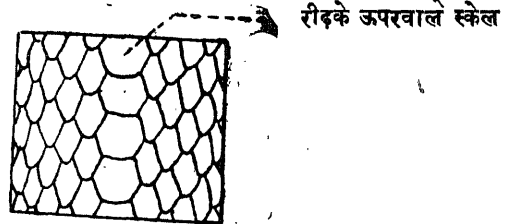
देखे जा सकते हैं। सर्प यदि विषैला भी हो तो उसके काटने का प्रभाव तभी हो सकता है, जब उसको काटनेका पूरा अवसर मिले और अपने विषकी पूरी मात्रा हमारे शरीरमें ठीक-ठीक डाल सके। सर्पके काटनेसे पीड़ा अवश्य होती है, और यदि सर्पका विष शरीरमें आ गया है, तो यह पीड़ा शीघ्र या कुछ देर बाद मालूम होगी। यह पीड़ा बहुतही ज़ोरकी होती है और एक प्रकार की जलन भी होती है। नागके काटने पर काटा हुआ भाग सुन्न पड़ने लगता है। विषैले सर्पके काटनेसे काटे हुये भाग पर सूजन तुरन्त या कुछ देर बाद अवश्य आ जायगी। यदि सूजन नहीं आई है तो मान लेना चाहिये कि सर्प विषैला नहीं था। विषैले सर्पके काटे हुये घावपर ख़ून जमने नहीं पावेगा और कई घंटे तक बराबर बहता रहेगा। यदि बिना विषैले सर्पने काटा है तो घाव पर ख़ून जम जायगा और घाव बन्द-सा हो जायगा। विषैले सर्पके काटनेसे काटा हुआ भाग, अथवा उसके चारों ओर, कुछ ही मिनटमें हरा या नीला-सा हो जायगा, परन्तु बिना विषैले के काटनेसे ऐसा नहीं होगा।

चिकित्सा

सर्प का विष कुछ ही मिनटोंमें शरीरमें फैलने लगता है; इसलिये जो कुछ भी करना हो शीघ्र करना चाहिये। जब सर्प का काटा हुआ रोगी सामने आवे तो तुरन्तही इस बातका निश्चय कर लेना चाहिये कि शरीरमें विष पहुँच गया है या नहीं। यदि सर्प देखने को मिल जाय तो ऊपरके दिये हुये चिह्नोंसे पहिचान लेना चाहिये कि सर्प विषैला था या नहीं। इसी प्रकार काटे हुये स्थानको देख कर भी इसका पता चला लेना चाहिये कि शरीरमें विष पहुँच गया है या नहीं। यदि यह पता चल जाय कि सर्प विषैला नहीं था तो रोगीको प्रसन्न और निर्भय बनानेका प्रयत्न करना चाहिये और इस बातका विश्वास दिलाना चाहिये कि उसको किसी प्रकारका कष्ट या हानि न होगी। इसमें किसी प्रकारकी चिकित्सा करनेकी आवश्यकता नहीं है। अधिक-से-अधिक घावको स्वच्छ पानीसे धोकर उसके ऊपर साफ़ कपड़ा बाँध देना चाहिये जिससे धूल आदि उसमें न पड़े। यदि यह पता चल जाय कि सर्प विषैला था तो डाक्टर को बुलानेमें शीघ्रता करनी चाहिये। इधर, डाक्टरके आने की प्रतीक्षा बिना किये ही, काटे हुये स्थानसे ऊपर हटकर सुतलीसे कस कर बाँध देना चाहिये और काटे हुये स्थानके पास साफ़ चाक़ूसे इस प्रकार काटना चाहिये जिससे ख़ून भली-भांति बहने लगे। ख़ूनके बहावके साथ विष भी बह जायगा। थोड़ी देर बाद घावको साफ़ करके कीटाणुओंके मारनेवाली दवा (परमैंगनेट ऑफ पोटैसियम आदि) पानीमें गाढ़ा घोल कर लगाना चाहिये। ऐसा करनेसे यह सम्भव है कि बचे-खुचे विष का प्रभाव हो, किन्तु सम्भवतः वह व्यक्ति मृत्युसे बच जायगा। परमैंगनेट-को पानीमें घोलकर घाव पर रगड़नेसे लाभ होता है। काटे हुये अंग को १५ या २० मिनटसे अधिक न बाँधना चाहिये नहीं तो ख़ूनके दौरानमें ख़राबी होनेका भय है। सर्पके विषैले होनेका पता चल जाने पर 'ऐन्टीवीनीन' का इंजेक्शन किसी डाक्टरसे लगवा देना चाहिये। यदि यह इंजेक्शन ठीक समय पर पहुँच जाय तो नाग और वाइपरके काटे हुये रोगीको अवश्य आरामहो जायगा। ऐन्टीवीनीन विषको अवश्य मार डालती है परन्तु स्वयं विषैली नहीं है; इसका प्रभाव बुरा नहीं होता है। करैतके विषके लिए एन्टीवीनीन अभी तक तैय्यार नहीं हो सका; क्योंकि इन सर्पोंका विष अधिक परिमाणमें नहीं मिला है। बम्बईके हाफ़किन इन्स्टिट्यूटमें बहुतसे नाग और रसल वाइपर पाले गये हैं। उनसे शीशेके बरतनके मुँह पर तने रबड़को कटवाया जाता है। ऐसा करनेसे सर्पका विष कुछ बरतनमें गिर पड़ता है। यह विष इकट्ठा कर लिया जाता है और कसौली भेज दिया जाता है। वहाँ यह विष थोड़ी-थोड़ी मात्रामें घोड़ोंके शरीरमें सुई द्वारा डाला जाता है। जैसे अफ़ीमचियोंको अफ़ीमका विष असर नहीं करता इसी प्रकार कुछ समय बाद इन घोड़ों पर सर्पका विष अपना प्रभाव नहीं डालता। यदि ऐसे घोड़ोंमें विषकी बड़ी मात्राभी सुईके द्वारा पहुँचा दी जाय तो घोड़ेके ऊपर कोई बुरा प्रभाव नहीं होगा क्योंकि घोड़ेके ख़ूनमें कुछ ऐसी चीज़ें उत्पन्न
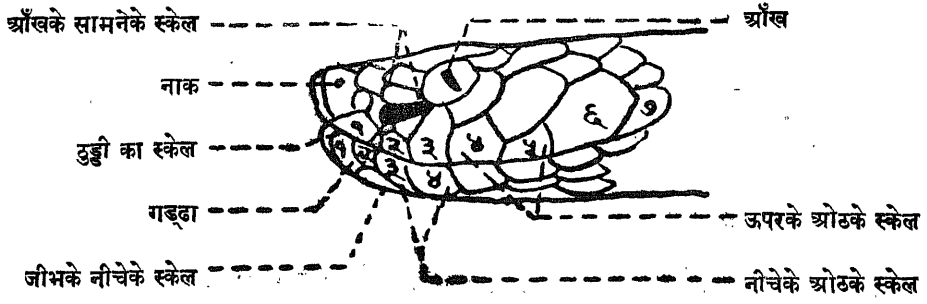
चित्र ७—काले सर्प के सिर का दिखाई पड़ने वाला बायाँ भाग। न—दोनों नाकके बीच का स्केल। व=आंखके आगे का स्केल। १, २, ३, ४, ५, ६, ७=ऊपरके ओठके स्केल जिसमेंसे तीसरा नाक के स्केल और आंखसे छूता हुआ है।
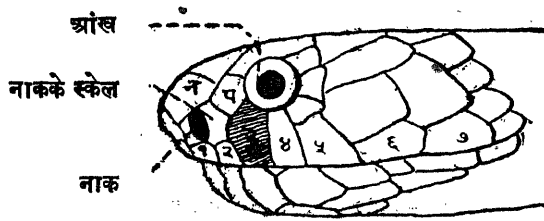
चित्र ८—गड्ढेदार वाइपरके सिर की बाईं ओर का चित्र। प=आंख के सामनेके स्केल। १, २, ३, ४, ५, ६, ७=ऊपरके ओठके स्केल।
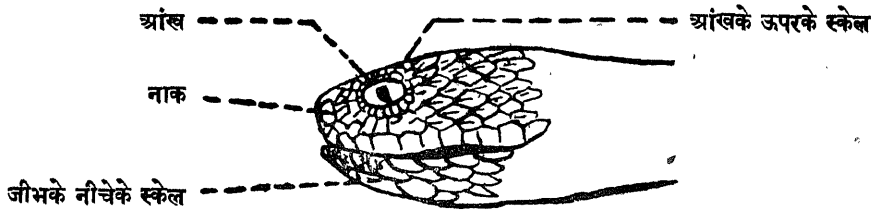
चित्र ९—बिना गड्ढेवाले वाइपरके सिर का बायां भाग। न=नथुने का स्केल। १, २, ३, ४=नीचेके ओठके स्केल।

हो जाती हैं जो सर्पके विषको नष्ट कर डालती हैं और उसका कोई प्रभाव नहीं होने देती हैं। ऐसे घोड़े का थोड़ा-सा ख़ून लेकर एक नलिकामें छोड़ दिया जाता है जिससे वह जम जाय। जमने पर पानीकी भांति पीला-पीला जो रक्तरस रह जाता है उसको 'ऐन्टीवीनीन' कहते हैं।

यह आवश्यक नहीं है कि विषैले सर्पका काटा हुआ रोगी चिकित्साके अभावमें मर ही जाय, क्योंकि सम्भव है कि इस रोगीके काटने के प्रथम वह सर्प किसी दूसरेको काट चुका हो। ऐसी अवस्थामें सर्प अपना विष इस व्यक्तिमें पूरा नहीं डाल सकता। यह भी सम्भव है कि सर्पको काटते समय पूरी पकड़ न मिल पाई हो और वह अपने विषकी पूरी मात्रा रोगी में न पहुँचा पाया हो, अथवा सर्पने कपड़ेके ऊपरसे काटा हो तो सम्भव है कि विषकी पूरी मात्रा न पहुँच पाई हो। लगभग ६० प्रति सैकड़ा सर्पके काटे हुये व्यक्ति बिना चिकित्साके अच्छे हो जाते हैं। परन्तु उन सबमें कहा यह जाता है कि या तो डाक्टर ने अच्छा कर दिया, या मन्त्र या किसी जड़ी या पत्ती या पेड़ या पत्थरसे रोगी अच्छा हो गया। परन्तु अभी इसमें से किसीपर भी सन्तोषजनक विश्वास नहीं किया जाता। सँपेरे जो 'ज़हरमोहरा' दिखाते फिरते हैं, वह या तो हड्डी का जला हुआ भाग होता है, या एक प्रकारकी खड़िया होती है, या पशुओंका पित्ताशयका पत्थर होता है, इन सब में यह गुण होता है कि वे घावके ऊपर चिपक जाते हैं क्योंकि वे ख़ून को कुछ सोख सकते हैं। परन्तु सर्पके विषपर इनका कुछ प्रभाव नहीं पड़ता।

स्मरण रखने योग्य बातें

बहुधा लोग यह प्रश्न करते हैं कि जब विष मिनटों में शरीरमें फैल जाता है तो डाक्टरी सहायता इतनी जल्दी कैसे पहुँचाई जा सकती है। परन्तु यह स्मरण रखना चाहिये कि विष शरीरमें ख़ूनके द्वारा फैल अवश्य शीघ्र जाता है तो भी मृत्यु बहुत देर बाद होती है। नागके काटनेसे मृत्यु ४-८ घण्टे तकमें होती है। इसलिये यदि 'ऐन्टीवीनीन' का इंजेक्शन काटनेके एक दो घण्टे बाद तक मिल जाय तो सम्भव है कि विषका प्रभाव चला जाय और रोगी मृत्युसे बच जाय।

अतः विषैले सर्पके काटे हुए रोगीकी चिकित्सा करते समय इन तीन बातोंपर ध्यान देना चाहिये।

(१) विषको कटी हुई जगहपर समाप्तकर देना चाहिये। यह काम घावको बड़ा कर उसमें पोटैसियम परमैंगनेट* रगड़नेसे हो सकता है।

(२) विष को शरीरमें फैलनेसे बचाना चाहिये। यह काम कटे हुये भागसे ऊपर (हृदय की ओर) हटकर रस्सीसे कसकर बाँधनेसे हो सकता है।

(३) शरीरके भीतर फैले हुये विषका प्रभाव दूर करना चाहिए। यह काम 'ऐन्टीवीनीन' के इंजेक्शन से किया जा सकता है।

सर्पसे सुरक्षित रहनेके उपाय

कुत्ते और बिल्लियोंको सर्पसे बहुत ही शत्रुता है। कुत्ता यद्यपि अँधेरेमें देख नहीं पाता तो भी सूँघ कर सर्प का पता चला लेता है और उसपर चोट करता है। बिल्ली अँधेरे में देख लेती है, और चूहोंकी खोजमें घूमती रहती है। सर्प भी चूहोंकी खोजमें घूमते रहते हैं। इसलिए बिल्ली बहुधा सर्पको मार डालती है। इसके अतिरिक्त प्रायः बिल्लियाँ विषैले सर्पोंके ऊपर बार-बार आक्रमण करती हैं, और मिमियाती हैं, जिससे हमारा ध्यान सर्प की ओर चला जा सकता है।

मकानके चारों ओर जङ्गल, लम्बी घास, या चींटियों-के बिल या चूना, ईंट, पत्थर आदि का ढेर, नहीं रहने देना चाहिए। सर्प प्रायः खपड़ैल की छतमें अथवा कपड़े की छतके ऊपर रहा करते हैं। जहाँ सर्पका भय हो वहाँ पृथ्वीपर न सोकर चारपाई या तख़्तपर सोना चाहिये।

---

*यह दवा प्रत्येक अँग्रेज़ी दवाख़ानेमें बिकती है। बड़ी सस्ती चीज़ है।

बहुधा सर्प नालियोंके मोहरियों द्वारा आते हैं इसलिए उन पर जाली लगवा देनी चाहिये। जङ्गलमें जाते समय लम्बे बूट पहन और पट्टी बाँध कर जाना चाहिये।—डाक्टर रामशरणदास, डी० एस-सी०।
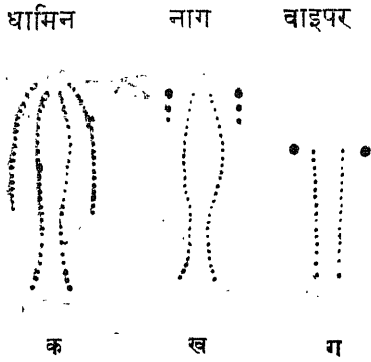
चित्र १०—क—बिना विषवाले सर्पके दांतके चिन्ह। ख—नागके दांतके चिन्ह। ग=वाइपरके दांतके चिन्ह। (ख), (ग) वाले चिन्हमें बीचकी दो पंक्तियोंके अतिरिक्त इधर-उधर तीन दांतोंके चिन्हसे अधिक न होंगे।

अजगर

जूनकी एक मध्य रात्रिका ज़िक्र है। सारा आलम छतों पर सो रहा था—दिन भरके कठोर श्रमकी थकान उतारने वाली बेख़बर नींद में। निशाकी निस्तब्धताको भंग करती हुई अकस्मात समीपवर्ती जंगलसे एक तीव्र करुणोत्पादक चीख़ उठी। कोई असहाय जीव सहायताके लिए पुकार रहा था। हम लोग टार्च और लाठियाँ ले लेकर घटनास्थल पर पहुँचे। हमने देखा, एक विशालकाय अजगरने एक गीदड़को अपनी प्रबल कुञ्जलों (कुंडली) में जकड़ रक्खा था और गीदड़के कुछ साथी उसे छुड़ानेका व्यर्थ प्रयास कर रहे थे। हमें देखकर बचाने-वाले गीदड़ एक ओर भाग गये। अजगर भी वहाँसे खिसका और तेज़ीसे पासके एक वृक्ष पर चढ़ गया। उस प्रगाढ़ अन्धकारमें सघन वृक्षकी पतली और गुंथी हुई टहानियोंकी शरण लेना अजगर ने स्वरक्षाका एकमात्र उपाय समझा।

हमारी सहायता पहुँचनेसे पूर्व गीदड़की सब गतियों को अजगरने निश्चेष्ट कर दिया था। युद्धस्थलीकी मसली हुई घास और झाड़ियोंकी टूटी हुई टहनियों तथा ज़मीन पर पड़ी लम्बी-लम्बी घसीटनोंसे मालूम होता था कि श्रृगाल भी अन्तिम दम तक वीरतासे लड़ा था।

एक लम्बे बांसके सिरे पर आँकड़ा (अंकुश) लगा कर अजगरको वृक्ष परसे खींचा गया। पांच आदमियोंके सम्मिलित ज़ोर ने उसे नीचे गिरा दिया। भाग निकलनेके सब सम्भव प्रयत्न करनेपरभी वह बन्दी बना लिया गया।

आश्रमकी एक छोटी कोठरीमें हमने अजगरको स्थान दिया। एक मासके कारावासके बाद असावधानीसे खुली रह गई कमरेकी खिड़कीसे एक रात अजगर चुपकेसे निकल भागा। उसका भागनेका प्रयत्न सफल हो जाता, पर अजगरके दुर्भाग्यवश तीन-चार दिन बाद वह साथके बढ़ईघरके एक कोनेमें देखा गया, जब काम पर आते हुए बढ़ईको उसने अपने तीव्र और सशब्द उछ्वाससे सहसा चौंका दिया। सहमे हुए और हाँफते हुए बढ़ई ने आश्रममें अजगर की उपस्थितिकी सूचना दी और वह हतभाग्य तुरन्तही फिर पकड़ा जाकर आश्रममें डाल दिया गया।

आश्रममें यह दिन भर निर्विघ्न विचरता था और रात को एक कमरेमें डाल दिया जाता था। आश्रमके विद्यार्थियों तथा वहाँ रहनेवाले प्रत्येक व्यक्तिसे यह परिचित हो गया। कभी किसीको कोई हानि नहीं पहुँचाता था। आश्रमकी हरिणी भी बिना किसी भयकी आशङ्काके उसके पास ही चरती रहती थी।

अजगरके इस शान्त और न डराने वाले व्यवहार ने आश्रमवासियोंको यह विश्वास दिला दिया कि वह पालतू हो गया है। दिन भर आश्रमके अहातेमें खुला विचरते हुए उसने कभी भागनेकी चेष्टा नहीं की और नहीं कभी कोई ऐसी बात की जिससे भय पैदा हो।

विज्ञानं ब्रह्मेति व्याजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते।
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति ॥ तै० उ० ।३।५।

भाग ५८	मकर, सम्वत् २००० । जनवरी १९४४	संख्या ४

भारतमें रसायनके पहले एफ़० आर० एस०

[लेखक—श्री ओंकारनाथ परती, एम्० एस्०-सी०]

आठ मार्च सन् १९४३ को सबेरे आठ बजे सर शान्तिस्वरूप भटनागर अपनी प्रयोगशाला जानेके लिये मोटरमें चढ़ने वाले थे कि उन्हें एक केबल-ग्राम मिला जिसमें उनके रायल सोसायटीका फ़ेलो हो जानेका सुसम्वाद था। वह दौड़ कर अन्दर गये और उन्होंने यह शुभ सम्वाद अपनी धर्म-पत्नीको सुनाया। उनकी पत्नीने उनसे प्रातःकाल नाश्ता करते समय ही कहा था कि वह इस साल रायल सोसाइटीके फेलो अवश्यमेव हो जायेंगे।

सर शान्तिस्वरूपका रायल सोसाइटीका फ़ैलो बन जानेका सम्वाद आश्चर्यजनक न था वरन् सच कहा जाय तो उन्हें बहुत पहले ही यह सम्मान मिल जाना चाहिये था। मैंने भौतिक रसायनके विश्व विख्यात प्रोफेसर एफ० जी० डौननका एक पत्र जो उन्होंने डा० भटनागरको २ अक्टूबर, सन् १९३८ को लिखा था, देखा है। इसमें उन्होंने लिखा था "मैं तुम्हें भारतके वैज्ञानिकोंमें सर्व श्रेष्ठ समझता हूँ।...मेरी हार्दिक आशा है कि रायल सोसाइटी मेरे विचारसे सहमत होकर तुम्हें शीघ्र ही अपना फ़ेलो चुन लेगा। तुमसे उचित मनुष्य इस सम्मानके लिये और कोई नहीं है।....." सर शान्तिस्वरूपके चुनावका प्रस्ताव, जिसमें उनके रासायनिक अनुसन्धानों का विवरण है यह था :—

"भटनागर, सर् शान्ति स्वरूप (लाहौर), के० टी०, डी० एस्-सी० (लण्डन)। साइण्टिफिक और इण्डसट्रियल रीसर्चके डाइरेक्टर। भौतिक रसायनके प्रोफेसर और रसायन प्रयोगशालाओंके डाइरेक्टर, पंजाब यूनीवर्सिटी, लाहौर, भारत। आपने भौतिक रसायनकी कई शाखाओंमें अनुसन्धान किये हैं, उदाहरणतः—surface tension and surface action, stability and reversal of emulsions, colloid phenomenon, chemiluminiscence, photo-chemistry and especially magnetism and molecular structure. आपने

एक पुस्तक चुम्बक-रसायन पर लिखी है जो सुप्रसिद्ध है [Physical Principles and Applications of Magneto-chemistry (Macmillan & Co, 1935)]। आपने लाहौर में भौतिक-रसायन-अनुसन्धान-कर्त्ताओंका एक स्वस्थ और सुन्दर स्कूल स्थापित किया है और अनुसन्धान के लिये रसायन-संबंधी व्यापारके प्रमुख भारतीय नेताओं से बहुत सा चन्दा इकट्ठा किया है। आपने एक सौ पचास वैज्ञानिक लेख लिखे हैं जिसमेंसे कई लेख चुम्बकत्व और परमाणुओं (Molecule) की बनावट पर हैं। आपके बहुत से प्रयोग औद्योगिक व्यवसायकी दृष्टिसे बड़ा महत्व रखते हैं। आपके लेखों का सूची साथ में है।

स्थगित १९३७, १९३८, १९३९, १९४०, १९४१, एफ० जी० डानान्, जे० सी० अरविन, मॉरिस डब्लू० ट्रैवर्स, एन० के० ऐडम, ई० सी० सी० बेली, एफ० ए० फ्राथ, ई० सी० स्टोनर, बी० साहनी, एम० ओ० फॉर्स्टर, एम० एन० साहा, जे० एल० साइमॉन्सन, जे० ई० लिनार्ड जोन्स, ऐरिक के० रिडियल, एफ० डब्लू० ऐस्टन, एल० एल० फरमोर, जौन रीड, एच० स्टैनली ऐलन, एफ० ट्वाईमान डब्लू० ई० गारनर।"

सर शान्ति स्वरूप का जन्म २१ फरवरी सन् १८९४ ई० को भेरा (ज़िला शाहपुर, पंजाब) में हुआ था। आपके पिता बाबू परमेश्वरी सहाय बी० ए० अपने समयमें पंजाब यूनिवर्सिटीके सर्वश्रेष्ठ विद्यार्थियोंमें थे। आपके पिता बड़े दयालु और समाजसेवी थे। उन्होंने पंजाब सिविल सर्विस छोड़कर समाज सेवाके उद्देश्यसे एक प्राइवेट स्कूल में हेडमास्टरी कर ली थी। खेदके साथ कहना पड़ता है कि आपके पिताकी मृत्यु अल्प अवस्थामें ही हो गयी जब सर शान्ति केवल आठ ही महीनेके थे। आपकी माता सिकन्दराबादके रहने वाले बाबू प्यारेलाल, रेलवे इंजीनियर की सुपुत्री थीं। बाबू प्यारेलालको गणित और भौतिक विज्ञानसे बहुत प्रेम था और इन्होंने ही शान्तिस्वरूपको इन विषयोंसे प्रथम परिचय कराया था। अपनी माताके विषयमें भटनागर साहब ने कहा है कि मैं अपनी माताका सदैव अनुगृहीत रहूँगा कि उन्होंने बड़े परिश्रमसे मुझे शुभ शिक्षायें देकर इस योग्य बनाया कि मैं इस संसारमें थोड़ा बहुत काम कर सका। आपकी माताकी मृत्यु मार्च सन् १९४० में हो गयी।

सर शान्ति का प्रारम्भिक विद्यार्थी जीवन चमत्कारिक न था। आपने बी० एस-सी० और एम० एस-सी० लाहौर से पास किया। सन् १९१९ में दयालसिंह छात्र बनकर आप यूनीवर्सिटी कालेज, लण्डन गये। यहाँ सर विलियम रैमज़े प्रयोगशालामें आपने प्रोफेसर डौननकी अध्यक्षतामें रासायनिक अनुसन्धान करना प्रारम्भ किया। इन दिनों भटनागर साहब अपनी छुट्टियाँ योरपके बड़े-बड़े वैज्ञानिकों से मिलनेमें बिताया करते थे। सन् १९२० और १९२१ की गर्मियोंकी छुट्टीमें आप बर्लिन गये और वहाँ पर प्रो० हाबर और प्रो० फ्रैन्डलिख (Freundlich) की अध्यक्षता में कैसर विलहैल्म इन्सटीट्यूटमें कुछ महीने काम किया। आप पेरिस भी गये और वहाँ पर प्रो० पी० लञ्जवीं, (Langevin), पैराँ (Perrin) और ऊरबाँ (Urbain) साहब से मुलाकात की।

सन् १९२१ में आपको लण्डन यूनीवर्सिटीकी डी० एस-सी० की डिगरी मिल गयी। आप भारत लौट आये और पं० मदनमोहन मालवीय जी के अनुरोधसे आपने बनारस हिन्दू यूनीवर्सिटीके रसायन विभागमें आचार्य पद स्वीकार कर लिया। बनारसमें आप केवल तीन ही वर्ष रहे। सन् १९२४ में आप पंजाब यूनीवर्सिटीमें भौतिक रसायनके प्रोफेसर और यूनीवर्सिटी रसायनप्रयोगशालाओं-के डाइरेक्टर हो गये।

सन् १९२४ से १९४० तक आप पंजाबमें रहे। यहाँ पर आपने बड़े उत्साहसे अनुसन्धान करना प्रारम्भ किया। यहाँ पर आपने और आपके विद्यार्थियों ने रसायन-विज्ञानके कई विषयोंमें अनुसन्धान किया। यहीं पर आपको चुम्बक तत्व पर सुप्रसिद्ध पुस्तक भी प्रकाशित हुई। आपके अनुसन्धानोंकी चर्चा सब जगह होने लगी। आपके कठिन परिश्रम से भौतिक रसायनमें पंजाबके अनुसन्धानकर्त्ताओं-का सम्प्रदाय भारतके रसायन जगतमें सर्व श्रेष्ठ समझा जाने लगा।

अनुसन्धान करनेमें आपका दृष्टिकोण अत्यन्त विस्तृत था। आपने बहुत से औद्योगिक व्यवसायोंमें भी अनुसन्धान किया और इस क्षेत्रमें आपको आशातीत सफलता प्राप्त हुई।

आपने तेल, ईंधन और पेट्रोलके रसायन, यौगिक रोजन, कपड़े और श्वेतसार (स्टार्च) आदिके रसायन में उत्तमोत्तम अनुसन्धान किये। औद्योगिक क्षेत्रमें बड़े-बड़े व्यवसाइयोंका ध्यान आपकी ओर आकर्षित होने लगा। इन लोगों ने बहुत सा रुपया ऐसे अनुसन्धानोंकी प्रगतिके लिये दिया। सन् १९३४-३६ में लंडनके स्टील ब्रदर्स ऐण्ड कम्पनी, लिमिटेड, ने बहुत सा रुपया भटनागर साहबको दिया। इसमें से भटनागर साहब ने चार लाख रुपये पंजाब यूनीवर्सिटी को पेट्रोल रसायनके अध्ययन पर खर्च करनेके लिये दिये। इस रुपयेकी आयसे छै फेलोशिप स्थापित की गईं जो ११५ रुपये से २५० रुपये प्रति मास तक की हैं। डा० भटनागरके इस दान पर सर तेज बहादुर सप्रू ने सन् १९३६ में पंजाब यूनीवर्सिटीके दीक्षान्त (कनवोकेशन) भाषणमें कहा "... मैंने जब दूसरे दिन पढ़ा कि लण्डनके मेसर्स स्टील ब्रदर्स एण्ड कम्पनी ने डा० भटनागरके कामकी महत्ताको मानकर उन्हें बहुतसा रुपया प्रदान किया और डा० भटनागर ने देशभक्तिके भावसे उसका बहुत बड़ा भाग आपकी यूनीवर्सिटीके रसायन विभागको एक औद्योगिक रसायन विभाग स्थापित करनेके लिए दे दिया जिसमें अनुसन्धान करनेवाले छात्र भारतीय वस्तुओं पर औद्योगिक दृष्टिकोणसे अनुसन्धान कर सकें, तब मैंने सोचा था कि आपकी यूनीवर्सिटी जिसमें एक ऐसा प्रोफेसर है जिसमें देशके लिए इतने बड़े त्यागके भाव हैं और जो देशके लिये काम करनेमें घबड़ाता नहीं है, बड़ी भाग्यशालिनी है। .."

आपके अनुसन्धानोंकी औद्योगिक महत्ताको भारतीय व्यवसायिओंने भी माना और बहुत सा रुपया इन अनुसन्धानोंकी प्रगतिके लिये डा० भटनागरको प्रदान किया। डा० भटनागर द्वारा मेसर्स बिड़ला ब्रदर्स लिमिटेड ने २१०००) रुपये चार छात्रवृत्ति स्थापित करने के लिये दिये। अनुसन्धानोंकी व्यवस्थाके लिए आपने और भी बहुत सा रुपया इकट्ठा किया। उदाहरणार्थ, दिल्लीके लाला श्रीराम ने ४०००) रुपये प्रतिवर्ष, कानपुरके जे० के० जूट मिल्स ने ३५००) रुपये प्रतिवर्ष, कानपुर के सर जे० पी० श्रीवास्तव ने २२००) रुपये प्रतिवर्ष, लायलपुरके गनेश फ्लावर मिल्स लिमिटेड ने ३०००) रुपये प्रतिवर्ष और बम्बईके टाटा ऑयल मिल्स लिमिटेड ने १२००) रुपये प्रतिवर्ष प्रदान किये।

डा० भटनागरके तेलके औद्योगिक रसायनके अनुसन्धानोंको महत्ताके विषयमें सर हरबर्ट इमरसन ने पंजाब यूनीवर्सिटीके दीक्षान्त भाषणमें सन् १९३५ में कहा— " मुझसे इस विषयके जानकारोंने कहा है कि औद्योगिक व्यवसायके दृष्टिकोणसे अब तकके अनुसन्धानोंकी बड़ी महत्ता है और इन अनुसन्धानोंका भविष्य और भी सारगर्भित है। .."

डा० भटनागर ने पंजाबके लिये बहुत काम किया है और सब लोग इस विचारसे सहमत होंगे जो राव बहादुर सर छोटूराम ने इण्डियन चेम्बर आफ कामर्सकी चौबीसवीं वार्षिक मीटिंगमें पहली मई सन् १९३७ में कहा था "... मुझे स्वयं ऐसा ज्ञात होता है कि डा० एस० एस० भटनागरमें डा० सर पी० सी० रे के समान आत्मा है ।"

जनवरी सन् १९३८ में कलकत्तेमें भारतीय सायंस कांग्रेसकी रजत जयन्तीमें इंग्लैण्डके सदस्योंने डा० भटनागरके अनुसन्धानोंको बहुत सराहा। इन सदस्योंने भारत की कई वैज्ञानिक प्रयोगशालाओंको देखा और बादमें उनके विचार सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक पत्र 'नेचर' (लण्डन) में प्रकाशित हुए। इस लेखमें लिखा है " सदस्यों ने लाहौरकी प्रयोगशालाओंका विशेष उल्लेख किया। इन प्रयोगशालाओं में औद्योगिक व्यवसायोंका वैज्ञानिक अनुसन्धान बड़ी अच्छी तरहसे होता है ।" इसके बाद फिर इस लेखमें इन अनुसंन्धानोंका संक्षिप्त विवरण है।

सन् १९४० में वाइसराय महोदयके अनुरोधसे डा० भटनागरकी सेवायें भारतीय सरकारको दे दी गईं। डा० भटनागरको बोर्ड आफ सायंटिफिक और इंडस्ट्रियल रिसर्च, नई दिल्ली, का डाइरेक्टर बनाया गया। इस पर पंजाबके गवर्नर सर हेनरी क्रेक ने उत्तरी भारत चेम्बर आफ कामर्सके वार्षिकोत्सव पर १३ अप्रैल सन् १९४० में कहा "... मुझे विश्वास है कि सब लोग मुझसे सहमत होकर भारतीय सरकारको बधाई देंगे कि उन्हें सायंटिफिक और इंडस्ट्रियल रिसर्चके डाइरेक्टरके रूपमें डा० भटनागर जैसा मनुष्य प्राप्त हुआ। पंजाब यूनीवर्सिटीके चान्सलर होनेके कारण मुझे दुःख हुआ कि हमारी यूनीवर्सिटीका एक सुप्रसिद्ध

भूषण अब दूसरी जगह चला गया किन्तु यह दूसरी जगह सारे देश के लिये बहुत बड़ी महत्ता रखती है। इसी कारण जब भटनागर साहबको बुलाया गया तो मैं ना न कर सका।"

सर शान्ति स्वरूप आजकल बोर्ड आफ इंडस्ट्रियल और सायंटिफिक रिसर्चके डाइरेक्टर हैं। आजकल आप युद्ध सम्बन्धी अनुसन्धानोंमें लगे हुए हैं। आपका महत्वपूर्ण काम इस समय छिपे छिपे ही होता है। युद्ध सम्बन्धी अनुसन्धानोंमें इतने व्यस्त रहने पर भी आप रसायन विज्ञानकी कई शाखाओंसे आजकल भी प्रेम रखते हैं।

भारतको आपसे बहुत आशा है और भारत निवासियोंको आप पर गर्व है। रायल सोसाइटीके फ़ेलो होने के पहिले भारत सरकार ने आपको दो बार सम्मानित किया। पहली जनवरी सन् १९३६ को आपको ओ० बी० ई० की पदवी मिली और पहली जनवरी सन् १९४१ को आपको नाइट की पदवी मिली। विश्व की और कई विद्वत्-परिषदोंके आप फेलो हैं; उदाहरणार्थ केमिकल सोसाइटी, लण्डन; इन्सटीट्यूट आफ फिज़िक्स, लण्डन; इन्सटीट्यूट आफ केमिस्ट्री, लण्डन आदि के आप फ़ेलो हैं। भारतीय सायन्स कांग्रेस के रसायन विभागके आप दो बार सभापति चुने जा चुके हैं। भारतकी कई युनीवर्सिटियोंने भी आपको अपना फ़ेलो बनाकर सम्मानित किया है। अभी समाचार मिला है कि ब्रिटिश सोसायटी आव् केमिकल इंडस्ट्रीज़, लंडन, ने आपको अपना उपसभापति निर्वाचित किया है।

भटनागर साहब सरल स्वभावके हैं। आप अपने अध्यापकोंके सदैव अनुगृहीत हैं! अभी आपने एक पत्र पूर्व गुरु बाबा करतार सिंहको लिखा जिसमें बड़े विनम्र भाव से आपने लिखा है कि वह प्रारम्भिक शिक्षाके लिये उनके सदैव अनुगृहीत रहेंगे। बाबा करतार सिंह साहब ने मुझे बतलाया है कि भटनागर साहब थोड़े ही समयके लिये उनके छात्र थे।

भटनागर साहबको सिगरेट अथवा तम्बाकूसे बिल्कुल प्रेम नहीं है। आप शाकाहारी हैं। सिनेमा देखने भी बहुत कम जाते हैं।

भटनागर साहबके विचारमें भारतके रसायनज्ञ बहुत उच्च श्रेणीके हैं। उनका कहना है कि भारतमें रासायनिक अनुसन्धान पर बहुत थोड़ा धन व्यय होता है। उन्होंने मुझे बताया है कि उन्हें पूरी आशा है कि भारतके औद्योगिक व्यवसायी इस युद्धके समाप्त होने पर, अपने आप ही रसायनिक अनुसन्धानों के लिये धन प्रदान करेंगे।

मेरे यह पूछने पर कि आजकलके भारतीय नवयुवक रासायनिक अनुसन्धान-कर्ताओंको आप क्या सलाह देना चाहते हैं उन्होंने कहा "नवयुवक रासायनिक अनुसन्धान कर्ताओंको नवयुवक रासायनज्ञोंको अध्यक्षतामें अनुसन्धान करना चाहिये। पुराने रसायनज्ञोंको आजकल अधिकतर दफ्तरके कामोंसे ही छुट्टी नहीं मिलती और वह बहुत थोड़ा समय रासायनिक अनुसन्धानकी ओर व्यतीत कर सकते हैं। हाँ, अगर पुराने रसायनज्ञ रसायनिक अनुसन्धानमें लगाये जायँ तो अवश्यमेव बहुत अच्छी प्रगति हो सकती है।"—

डा० भटनागरको हिन्दुस्तानीसे प्रेम है। आपने विद्युत पर एक पुस्तक उर्दू में लिखी है जिसका नाम इल्मुलबर्क़ है। आपको उर्दू साहित्य से प्रेम है और इसमें आप कविता भी करते हैं। बनारस हिन्दू यूनीवर्सिटीका अलमामेटर गीत आप की ही रचना है।

सर शान्ति इस समय उञ्चास वर्षके हैं। भारतको आपसे उच्च आशायें हैं। आपका भविष्य उज्ज्वल है। ईश्वर करे आप दीर्घायु हों और मातृ-भूमिको अधिकाधिक सम्मानित करें।

कागज़ रँगनेका देसी रंग

इमलीके बीजका नया उपयोग

कृत्रिम रँगोंका आयात बन्द हो जानेके कारण कागजको लुगदी रँगनेके लिए देसी वनस्पति रँगोंका महत्व बहुत बढ़ गया है। वन्य अनुसन्धानशालाकी ओर से एक छोटी सी पुस्तिका प्रकाशितकी गयी है, जिसमें बताया गया है कि इमलीके बीजों, कामला, कत्था, लाल चन्दन आदि पदार्थोंसे बहुत उपयोगी रंग बनाये जा सकते हैं। भारतमें इन पदार्थों की बहुतायत है और यह भी मालूम हुआ है कि इमलीके बीजमें पेक्टीन बहुत अधिकता से पाया जाता है। यदि पैक्टीन उद्योग बड़े पैमाने पर प्रारम्भ किया जाय तो कागज रँगनेका रँग उस उद्योग का एक महत्वपूर्ण उपोत्पादन होगा।

पञ्चाङ्ग-समस्या

[लेखक—पण्डित चन्द्रशेखर शुक्ल, वैद्य, सिद्धान्तविनोद]

फ़रवरी मासकी 'सरस्वती' में डाक्टर गोरखप्रसाद जी ने पञ्चाङ्ग-शोध शीर्षक लेख-द्वारा पञ्चांगके गड़बड़का प्रश्न उठाकर एक महत्त्वपूर्ण कार्य किया है।

पञ्चागोंमें कहां किस प्रकारका गड़बड़ है और उसकी कैसी लीपा-पोती हो रही है, उसके विषयमें मैं भी यहाँ कुछ ऐसी विशेष बातोंका वर्णन करूँगा जो काल्पनिक तथा विवाद-ग्रस्त नहीं हैं।

आकर्षण, विकर्षण, अक्ष-विचलन प्रभृति शक्तियों तथा गतियोंके कारण गतिशील ज्योतिष्कोंका गतिमान तथा स्थान कुछ न कुछ बदलता रहता है। अधिक कालमें वह मान क्रमशः पुंजीभूत होकर वास्तविक संस्थान में कुछ भिन्नता अथवा गड़बड़ पैदा कर देता है। इसी लिए समय समय पर वेध-द्वारा उक्त गड़बड़के शोध करनेकी आवश्यकता पड़ती है।

हमारे पूर्वज तथा ज्योतिष-शास्त्र-प्रवर्त्तक वशिष्ठादि ऋषि स्पष्ट शब्दोंमें कह गये हैं कि जब जब गणित और वेधमें अन्तर देख पड़े तब-तब वेधोपलब्ध भिन्नताको बीज रूप ग्रहणकर गणितागत मानका संशोधन करना चाहिये और उसी संशोधित प्रकारसे विशुद्ध ग्रह-संस्थान तथा तिथ्यादि बनाने चाहिए।

भारतकी अवनतिके साथ-साथ ज्योतिषका भी पतन होने लगा। देशमें वेधकार्य्यके लिये जो ५ मानमन्दिर वा वेधालय थे (जयपुरको छोड़कर) संस्काराभावसे नष्ट-भ्रष्ट हो गये। साथ ही साथ वेध-क्रिया कुशल पण्डितोंका भी अभाव होता गया। परिणाम यह हुआ कि पुराने मानसे बने ज्योतिषके करण-ग्रन्थोंके आधार पर भाँति-भाँतिके पञ्चाङ्ग बनने लगे। जिसके पास जो सारिणियाँ थीं उन्हींके द्वारा लोग अपना-अपना काम करते रहे। इधर मुद्रा-यन्त्र के सहारे पञ्चाङ्गोंकी संख्या भी बढ़ गई। फलतः एक ही स्थान-मानके बने पञ्चाङ्गोंका ग्रहसंस्थान तथा तिथ्यादि मान एक सा न रह गया। लोग पृथक्-पृथक् अपना-अपना मत और राग अलापने लगे। जातीय राजसत्ताके अभावसे सभी बातोंमें निरङ्कुशता आ गई। तब कौन मान शुद्ध है और कौन अशुद्ध है, इसकी छान-बीन ही कौन करे? अतः अब यह विकट समस्या उपस्थित है कि किसी पञ्चाङ्ग पर दृढ़ विश्वास नहीं होता।

देशमें बड़े-बड़े राजाओं, महाराजाओं तथा धनिकोंकी कमी नहीं है, परन्तु ऐसे आवश्यकीय अभावकी पूर्त्तिके लिए किसीका ध्यान नहीं जाता। स्वनामधन्य पूज्य मालवीयजी हिन्दू-विश्व विद्यालयके संरक्षणमें एक वेधोपयोगी मानमन्दिर बनवानेके लिए कई वर्षोंसे धनकी आवश्यकता दिखाकर चन्दा माँग रहे हैं, परन्तु अब तक किसीका ध्यान उधर नहीं गया। इससे अधिक दुःखकी बात और क्या हो सकती है! उधर पाश्चात्य देशोंको देखिए। ग्रीनिच का मानमन्दिर प्रायः सवा दो अरब रुपयेकी लागतका है। अमरीकाके विलसन-पर्वत-श्रृङ्ग पर जो मानमन्दिर बना है उसमें एक प्रकाण्ड दूरबीन १३ करोड़की लागतकी सर्वसाधारणके उपयोगके लिये स्थापित है। अस्तु, अब हम यहाँ उन भिन्नताओं तथा भूलोंकी चर्चा करेंगे जो वेधोपलब्ध तथा प्रत्यक्ष हैं।

(१) सूर्य्यकी परम क्रान्ति—सूर्य्य-सिद्धान्तमें परम क्रान्ति २४° (जिनांश) मान ली गई है। इसकी गति होने पर भी कदाचित् अति मन्थर होनेके कारण स्थिर मानी गई होगी। महाराज जयसिंहके समयमें दैवज्ञ जगन्नाथ ने जब 'सिद्धान्त-सम्राट्' तथा 'सम्राट्-यन्त्र' की रचनाकी थी, तत्कालीन परम क्रान्ति २३°।२८′ थी, जो 'सिद्धान्तसम्राट्' तथा 'सिद्धान्त-यन्त्र' में व्यक्त है। आजकल वेधोपलब्ध परम क्रान्ति २३°।२६′।४८ के लगभग है, जो समस्त पाश्चात्य पञ्चाङ्गोंमें स्पष्ट लिखी रहती है। इसके आधारसे ही लङ्कोदय तथा स्थानीय राश्योदय मान बनता है। प्राचीन सिद्धान्तोंमें स्थिर माने जानेके कारण लङ्कोदय मान भी स्थिर माना गया है, जिस कारण आजकल मानमें अन्तर पड़ गया है। पाठकोंके ज्ञानार्थ २३°। २७′ परम क्रान्तिके मानके गणितसे लङ्कोदय मानमें जो अन्तर हो गया है, यहाँ प्रदर्शित किया जाता है। यह अन्तर भविष्य में क्रमशः बढ़ता ही जायगा।

सायन लङ्कोदय राशिमान

	प्राचीन		नवीन (वेधोपलब्ध)		
राशि	पल	असू०	पल	असू०	भिन्नता
मेष, कन्या, तुला, मीन	२७८	१६६८	२७९।१०	१६७५	७ असू अधिक,
वृष, सिंह, वृश्चिक कुम्भ	२९९	१७९४	२९९	१७९४	तुल्य ।
मिथुन, कर्क, धनु मकर	३२३	१९३८	३२१।५०	१९३१	७ असू कम ।

उपर्युक्त गणनासे स्पष्ट है कि परम क्रान्तिके घटनेके साथ-साथ उक्त भिन्नता भी बढ़ती जायगी। यदि इसका संशोधन न किया जायगा तो भावादि साधनमें अवश्य गड़बड़ रहेगा।

(२) सृष्ट्यादि वा स्थिर मेषारम्भ बिन्दु—सृष्ट्यारम्भकालमें जहांसे ग्रहोंकी चाल आरम्भ हुई है, उस बिन्दुका नाम आदि बिन्दु है। उसे भगणारम्भ-स्थान भी कहते हैं। यह बिन्दु नक्षत्र-चक्रमें रेवत्यन्त वा अश्विन्यारम्भ स्थानमें है और स्थिर है। दूसरा सायन आदि बिन्दु भी है। इसके दो भेद हैं एक वासन्तीय सम्पात, दूसरा शारदीय सम्पात। क्रान्ति-वृत्त (रविमार्ग) का नाड़ीवृत्त (विषुवद्वृत्त) के साथ दो स्थानोंमें सम्पात हुआ है। उनमें वासन्तीय सम्पात-बिन्दु है, और शारदीय विराम है।

सभी ग्रहोंकी कक्षाओंके पात पृथक् पृथक् हैं, सबोंकी वक्र अर्थात् पश्चिमाभिमुखी गति भी है। प्रत्यक्ष रूपसे क्रान्तिवृत्तका पात वही कहा गया है। वास्तवमें यह पात है। सब ग्रहोंकी कक्षाओंका सम्पात क्रान्ति-वृत्त पर और क्रान्तिवृत्तका सम्पात नाड़ी-वृत्त (विषुवद्वृत्त) पर होता है। इसी का दूसरा नाम 'अयनबिन्दु' है। और सृष्ट्यारम्भ आदि बिंदुसे पश्चिमाभिमुखी गत्यन्तर का नाम 'अयनांश' है। वास्तवमें यही प्रधान विवादग्रस्त विषय है।

इस अयनांशके दो पक्ष हैं—एक रैवतक, दूसरा चैत्र। रेवत्यन्त वा अश्विन्यारम्भ स्थान पर कोई स्पष्ट योगतारा नहीं है, और चित्रा नक्षत्रका योगतारा षड्भान्तर (वृत्तार्द्ध) पर है। पाश्चात्य गणितज्ञोंका मत है कि जिटापिसियम नामका तारक अश्विन्यारम्भ पर है, परन्तु इसकी पुष्टि न होनेके कारण बात सर्वसम्मत नहीं है।

चित्राका योगतारा (स्पाइका) के वृत्तार्द्धमें रहनेका कारण प्रत्यक्ष है। कोई-कोई उसका संस्थान ५।२९°।५९′।५०″ मानते हैं। उस हिसाबसे भी यदि अन्तर माना जाय तो वह १०″ विकलासे अधिक नहीं है, अतः उपेक्षणीय है। पूनाके प्रसिद्ध गणितज्ञ स्वर्गीय बापू वेंकटेश केतकर ने अपने 'ज्योतिर्गणित' में तथा 'केतकीपञ्चाग' में इसी चैत्रपक्षीय अयनांशको ग्रहण किया है।

संवत् १९७५ के भाद्रमासमें कलकत्तामें एक 'पञ्चाङ्ग-संशोधन सभा' की बैठक हुई थी। उसमें वहांके सभी प्रसिद्ध पण्डित आमन्त्रित हुए थे। उसमें भी चित्रा नक्षत्र से (कदम्बसूत्रीय स्पष्ट क्रमसे) १८०° अंश दूरी पर आदि बिन्दुके ग्रहण करनेकी बात सर्वसम्मतिसे स्वीकृतकी गई थी। और दृश्य पञ्चाङ्ग (विशुद्ध सिद्धांतपञ्जिका) उसी क्रमसे बनता है। इसके सिवा प्राचीन आदिबिन्दु-निर्णयकी और प्रक्रिया नहीं हो सकती। इसीलिए सर्वसम्मतिसे इसी को आदि बिन्दु मानना युक्तियुक्त और कार्य्योपयोगी होगा।

(३) अयनांश— ऊपर अयनांशका उल्लेख हुआ है। गणितका विषय होने पर भी सम्प्रति भारतवर्षमें चार प्रकारके अयनांश चल रहे हैं। प्रथम सूर्य्यसिद्धांतीय, दूसरा ग्रहलाघवीय, तीसरा गणितागत तथा सायन सूर्य्यका अंतर, और चौथा चैत्रपक्षीय। विक्रमीय संवत् २००० के प्रारम्भ-कालमें सूर्य्यसिद्धांतीय अयनांश २१°।३९′।३३″, ग्रहलाघवीय २३°।४०′।०″, सायन और गणितागत सूर्य्यका अंतर २२°।५८′।०″ और चैत्रपक्षीय अयनांश २३°।३′।८″ है।

अयनांशके शुद्धाशुद्धकी परीक्षा कीजिए। निरयन आदि बिंदुसे अयनांश जितना पीछे होगा, उतने अंशादि पहले सायन मेष संक्रमण और सूर्य्यक्रान्ति शून्य अंश शून्य कला होगी। यदि सूर्य्यसिद्धांतीय अयनांश ठीक है तो सौर मीन के आठवें अंश पर, यदि ग्रह लाघवीय ठीक है तो छठे अंश पर, अन्यथा मीनके ७वें अंश पर सायन रविका मेष-संक्रमण और शून्यक्रांति होनी चाहिये। कोई भी पाश्चात्य पञ्चाङ्ग तथा भारतीय दृश्य पञ्चाङ्ग खोलकर देखा जाय तो २१ मार्च का निरयन मीनके ७वें अंश पर मिलेगा!

अतः छठें और आठवें अंशवाला भाव अशुद्ध है। अयनांशकी शुद्ध वार्षिक गति ५०.२६ है। सुधी जनोंको चाहिए कि यावतीय निरयन गणना इसी आधारसे कर प्रत्यक्ष फलको उपलब्ध करें। सूर्यसिद्धांतमें वार्षिक गति ५४″ विकला और ग्रहलाघवमें ६०″ विकला कही गई है जो प्रत्यक्ष नहीं है।

(४) निरयन और वर्षमान—सूर्यसिद्धांतमें वर्षमान ३६५।१५।३१।३०।२४ अनुपल (३६५.२५८७५६५) कहा गया है। सम्प्रति वेधोपलब्ध निरयन वर्षमान ३६५।१५।२२।५६.८७ होता है, जो प्राचीन वर्षमानसे ८॥ पलसे कुछ अधिक छोटा है। सम्भव है, वर्त्तमान सूर्य-सिद्धांतके निर्म्माण-कालमें वही रहा हो अथवा वेधकी स्थूलताके कारण इतनी सूक्ष्मता पकड़ में न आई हो।

यहाँ प्रश्न उठता है कि यदि वर्त्तमान वर्षमान वास्तव में ८॥ पल के क़रीब छोटा है तो सृष्टि के क़रीब २ अरब वर्ष बीतने पर सूर्य के स्थान में कई राशियों का अन्तर क्यों न हो गया! उत्तर में निवेदन है कि अयनांश की यथार्थ वार्षिक गति जब ५०″.२६ और प्राचीन वर्षमानसे नवीन वर्षमान का अन्तर ८′।३७″३८ के क़रीब है तब दोनों का मिलान करने पर पूर्त्ति हो जाती है। अर्थात् उतनी कलाओं में सूर्य्यकी गति प्रायः उतनी ही विकला होती है। इसलिए गड़बड़ नहीं होती।

(५) अक्षांश-भेद से राश्युदय और लग्न-सारिणी—हमारे यहाँ राशिमान निकालने की दो विधियाँ हैं—एक पलभा से, दूसरी रेखागणितके सहारे। पलभा के सहारे जो गणना होती है वह स्थूल है। आठ अङ्गुल तक पलभा कार्य्योपयोगी रहती है, इसके बाद अन्तर पड़ने-लगता है। परन्तु हमारा देश आठ अङ्गुल के भीतर ही है, इसलिए गड़बड़ नहीं होती। विशेषतः यह सरल रीति है, इसमें गोलीय ज्ञान की आवश्यकता नहीं पड़ती। परन्तु सूक्ष्म अंशात्मक मान ठीक नहीं हो सकता। हमारे देश में श्रमलाघवार्थ केवल ३ राशियों का ही चर साधन किया जाता है, प्रत्येक अंश का नहीं। चापीय नियमानुसार भूल होती है। एक से लेकर ९०° अंश तक का पृथक् पृथक् चर साधन करना चाहिए, क्योंकि किसी भी राशि के प्रथमांश का जो चरान्तर काल (पलादि) होगा वह दूसरे अंश के लिए तुल्य रूप से नहीं। उसकी वृद्धि चापीय माननी होगी। परन्तु ऐसा चर साधन गोलविद् जन ही कर सकेंगे; ग्रहलाघवीय अथवा करण ग्रंथोंके आधार से पञ्चाङ्ग बनाना सीखनेवाले नहीं कर सकते।

दूसरी बात लग्नसारिणी सायन होनी ज़रूरी है, क्योंकि अयनांश जब निरन्तर बदल रहा है तब एक बार की बनी सारिणी सदा काम नहीं दे सकती। सायन होने पर तात्कालिक अयनांश घटाने से ही काम होगा। कुछ पञ्चाङ्गोंमें अब यही विधि बरती जाती है।

(६) विशुद्ध ग्रह-संस्थान वा ग्रहस्पष्ट—पञ्चाङ्गोंमें विशुद्ध ग्रहस्पष्ट ही सारी बातोंका मूल अथवा मेरु-दण्ड है। इसके बिना पञ्चाङ्गोंके गणितका सारा काम ही व्यर्थ है, परन्तु पूर्वकथित कारवश सिद्धान्तरीत्या गणित ग्रह संस्थानों में अंतर पड़ता है। इसी लिए करण-ग्रंथोंमें बीजसंस्कार देनेका विधान रहता है, जैसे ग्रहलाघव, मकरंद प्रभृति में है। ग्रहलाघव में मन्दोच्चोंका चालन नहीं है अतः स्थूलता रहती है। मकरंदाचार्य्य ख़ुद ही लिख गये हैं कि "वक्रादिकं स्थूलमिदं मयोक्तं सुखार्थमेवेति न तद् यथार्थम्।"

सूर्य्य-सिद्धान्तमें प्रत्यक्ष रूपसे बीज कर्म्म नहीं कहा गया है। अतः सूर्य-सिद्धांतसे बने हिन्दू-विश्वपञ्चाङ्गमें ग्रहोंमें बीज-संस्कार न रहनेके कारण गुरु और शनि के करीब ५° और ३° अंशका अंतर होता है। किसी भी प्राचीन मानके बने पञ्चाङ्गोंके साथ मेल नहीं होता। सायन स्पष्ट गुरु और सायन शनिमें अयनांश घटाने पर भी मेल नहीं खाता। परन्तु आश्चर्य यह है कि गुरु-शुक्रका उदयास्त-काल स्वर्गीय बापूदेव शास्त्रीके दृश्य पञ्चाङ्गके साथ मेल किये रहता है। इधर ग्रहस्थान कुछ और ही बताता है, स्थिति कुछ और ही होती है।

यद्यपि सूर्य्य-सिद्धान्तमें आदेश है कि "नक्षत्र ग्रहयोगेषु ग्रहास्तोदयसाधने।" इत्यादि तो भी इसका मतलब यह नहीं है कि सिद्धान्तोक्त नियमको छोड़कर गुप्त रूपसे दूसरी क्रिया की जाय। सिद्धान्त-कथित नियम ही बरता जाना चाहिए। यदि उस नियमसे भूल आती हो अथवा प्रत्यक्ष मेल न खाता हो तो मुक्तकण्ठसे भूल होनेकी बात मान लेनी चाहिए।

ज्योतिषशास्त्र-प्रवर्त्तक वशिष्ठादि ऋषियोंके निर्देशानुसार ही कालोपयोगी बीजसंस्कार देकर विशुद्ध अथवा वेधोपलब्ध ही ग्रह बनाना चाहिए क्योंकि ज्योतिष-शास्त्र-प्रवर्त्तक ऋषियोंकी आज्ञाको परवर्त्ती कालके कमलाकर आदि आचार्यगण रद नहीं कर सकते। उन लोगोंमें उतनी योग्यता अथवा अध्यात्म-ज्ञान नहीं था। यह तो श्रमलाघवार्थ पण्डितोंका बहाना मात्र समझना चाहिए।

सिद्धान्तशिरोमणि, केशवीजातक, होरावल्लभ प्रभृति ग्रन्थोंमें स्पष्ट शब्दोंमें प्रत्यक्ष जातक फलोपलब्धिके लिए दृश्य गणित लेनेकी बात ही कही गई है।

(७) पञ्चाङ्ग वा तिथि-पत्र—वार, तिथि, नक्षत्र, योग और करण—ये पाँच अङ्ग जिसमें रहते हैं उसीका नाम पञ्चाङ्ग वा तिथिपत्र है। वैदिक काल से ही यज्ञादि कर्म्म-साधनके लिए पञ्चाङ्गकी गणना होती थी, जो 'सुपर्ण चित' आदि नामों से प्रसिद्ध थी। इसके इष्टिका-द्वारा (ईंटोंके द्वारा) निर्म्मित होनेकी बात पाई जाती है।

वेदाङ्ग-ज्योतिष (लगध) के कालमें भी नक्षत्रोंके आधार से यज्ञादिका विधान मिलता है, युगमान भी पाँच वर्षका माना जाता था। इन बातोंसे स्पष्ट सिद्ध है कि अति प्राचीन कालसे ही भारतवर्षमें धार्मिक व्यवस्थाके पालन एवं साधनके लिए पञ्चाङ्ग बनते थे। पौराणिक कालमें इसका प्रचार क्रमशः बढ़ता गया और ज्योतिष-शास्त्र सिद्धान्त, संहिता और होरा इन तीन खण्डोंमें विभाजित किया गया। विक्रमादित्यके राज कालमें वराहमिहिराचार्य ने मार्जित रूप से उसे शृंखलित किया। जो सिद्धान्त विक्षिप्त अवस्थामें थे उन सबोंको एकत्र कर पञ्च-सिद्धान्तिका' के नाम से उनका प्रचार किया। फलित-विषयका क्रम-विकाश भी तभी से हुआ।

निरपेक्ष रूपसे विचार करने पर स्पष्ट सिद्ध होता है कि सर्वप्रथम धर्म्म कार्य्य-साधनके लिए ही पञ्चाङ्गोंकी उपयोगिता थी। देश और व्यक्ति विशेषके शुभाशुभ-निर्णयके लिए पश्चात् व्यवस्था यही स्पष्ट चन्द्र-सूर्य्य और उनकी गतिके द्वारा तिथि-नक्षत्रादि बनते हैं। पृथक् पृथक् मानभेद, पूर्वाह्न, पराह्नभेद, वृद्धि और क्षय भेदसे स्मृतियों में भिन्न-भिन्न व्यवस्थायें कही गई हैं। एकादशी आदिके व्रतादिकोंके लिए भिन्न-भिन्न व्यवस्थायें पाई जाती हैं। ह्रास-वृद्धिका मान भी बाण-वृद्धि रस-क्षयके मानसे वर्णित है। और इन विषयोंकी गणना सिद्धान्तोंमें कुछ स्थूल रूपसे बताई गई है।

युति, ग्रहण, शृङ्गोन्नति, उदयास्त प्रभृति सूक्ष्म विषयों के साधनसे लिए कुछ विशेष-विशेष संस्कारोंका वर्णन आया है, क्योंकि स्थूल गणित से वे सब दृश्य घटनायें यथार्थ सिद्ध नहीं होतीं। धार्मिक बातोंके लिये सूक्ष्म गणितका वर्णन कहीं नहीं पाया जाता।

इसके पश्चात् पाश्चात्य विज्ञानके क्रम-विकाशके साथ ही साथ नित्य नूतन यन्त्रादिकोंका आविष्कार होता गया और सूक्ष्म वेध-क्रियाके सहारे अनेक नवीन बातोंकी खोज और परिज्ञान हुआ, यहाँ तक कि चन्द्रमाकी विलक्षण गतिका भी पता चल गया, जिसका प्राचीन ग्रन्थोंमें कुछ भी वर्णन नहीं पाया जाता।

आधुनिक विज्ञान-समस्त सूक्ष्म वेधके प्रभाव से और भी अनेक नवीन बातें तथा संस्कारोंकी उपयोगिता सिद्ध हुई है। तदनुसार बाण-वृद्धि रस क्षयकी जगह सप्त वृद्धि अथवा अष्ट वृद्धि रस क्षय होते देखा गया है। कुछ पञ्चाङ्ग उसी नियम से बनने भी लगे। पाश्चात्य खोजोंके आधार से बननेके कारण और प्राचीन सिद्धान्तीय नियम से कुछ भिन्न देखकर देशकी धार्मिक जनता ने ऐसे पञ्चाङ्गोंको सन्दिग्ध दृष्टि से देखा और उन्हें ग्रहण नहीं किया! सब पहलुओंकी तरफ़ ध्यान देकर यदि विचार किया जाय तो समस्या कुछ जटिल अवश्य है, परन्तु वह हल नहीं हो सकती, ऐसी बात नहीं है, यदि अपने यहाँ उपयुक्त वेधोपयोगी मान-भवन बनवाया जाय, जैसा कि पूज्य मालवीय जी चाहते हैं, और अपने ढङ्ग से अपने जनोंके द्वारा वेध-क्रिया साधन करके पूर्वोक्त कलंक-कालिमा मिटाई जाय।

मेरी समझमें गणितका विषय कोई ऐसी चीज़ नहीं है कि व्यक्ति विशेषके कर स्पर्श से कलुषित हो जाती हो। मयासुर भी तो असुर ही था, जिसको सूर्य्यांश-सम्भूत पुरुष ने उपदेश किया था। महामहोपाध्याय सुधाकर द्विवेदी सूर्य-सिद्धान्तकी अपनी सुधावर्षिणी टीकाकी भूमिकामें स्पष्ट लिख गये हैं कि यह सूर्य्यसिद्धान्त वराहोक्त सूर्य्यसिद्धान्त नहीं है, यह मिस्र देशका बना है, जो सम्पूर्ण पाठ

शाखाओंमें पढ़ाया जाता है। क्या यह मिस्रीय होनेके कारण कलुषित नहीं है ?

फिर यवनाचार्य्य ही कौन थे जिनका बनाया 'यवन-जातक' मुनि-प्रणीत ग्रंथोंके सदृश आदृत है ? अतः सभी आविष्कारों और खोजोंको आदरकी दृष्टिसे देखना और समयानुसार उनसे लाभ उठाना बुद्धिमानी और दूरदर्शिताका काम है, क्योंकि भवंति विज्ञतमाः क्रमशो जनाः।

यदि धार्मिक जनता इन सब युक्तिवादोंसे संतोष न करे तो जब तक सर्वसम्मत कोई हल न निकले तब तक धार्मिक कार्य्योंके लिए गणितागत प्राचीन मानाधारसे ही स्थूल तिथ्यादि बनें, जिनका मान स्मृतियोंके अनुसार हो हो। परंतु जातक, ताजिक, यात्रादि प्रत्यक्ष फलोपलब्धिके लिए सूक्ष्म वेधोपलब्ध मानसे पञ्चांग-गणना होना ही युक्तियुक्त एवं आवश्यक है।

विशेष ज्ञातव्य—पञ्चाङ्ग-समस्या सम्बन्धी ७ विषयों का जो विवेचन यहाँ किया गया है वह निष्पन्न, वेधोपलब्ध और निर्विवाद है। कुछ विसंवाद अयनांशमें है। इस विषयमें वेद तथा उपनिषदोंमें जो कुछ बातें पाई गई हैं उनके आधारसे चैत्रपक्षवाला मत ही ग्राह्य हो सकता है, जिसके विषयमें पूनाके बापू वेंकटेश केतकर ने बहुत कुछ संग्रह किया है। लेख बढ़ जानेके भयसे उन सब बातोंका वर्णन यहाँ नहीं किया।

दूसरी बात यह है कि 'नागरीप्रचारिणी सभा' के प्रथम इन्हीं सब बातोंके समाधानके लिए ३ ज्योतिष महासम्मेलन हो चुके हैं। सर्व प्रथम कांग्रेस पण्डालमें जगद्गुरु शंकराचार्य जीके सभापतित्वमें बम्बईमें, दूसरा जस्टिस आशुतोष मुकर्जी के सभापतित्वमें यूनीवर्सिटीहाल कलकत्तामें, तीसरा पूज्य मालवीय जीके सभापतित्वमें (सर हुकुमचन्द जीके उद्योग से) इन्दौरमें। तीनों सम्मेलनोंमें वादाविवादके बाद यही निश्चित हुआ कि वास्तवमें यदि पञ्चाङ्गोंका मान अशुद्ध है तो अपने यहाँ वेधालय बनाकर यहाँके वेधकुशल विद्वानों द्वारा वेध कराकर यावतीय संस्कार किया जाय, अध्यात्म-विषय (धार्मिक बातों) में विजातीय खोज तथा शोध ग्राह्य नहीं हो सकते—सरस्वती से।

कोयलेसे पंचगुनी गर्मी लीजिये

ईंधन जलानेकी नयी प्रणाली

बृटेन के कोयला उद्योग द्वारा कोयलेको जलानेकी एक नई प्रणालीको पूर्ण रूप से उन्नत किया जा रहा है। न्यूकासिल-ऑन-टाइनमें 'बृटिश कोयला उपयोग अनुसन्धान संस्था' के डाइरेक्टर श्री जे० जी० बेनेट ने बताया कि इस प्रणाली द्वारा इस समयकी अपेक्षा पंच-गुनी गर्मी कोयलेसे प्राप्तकी जा सकेगी। उन्होंने कहा कि युद्धकालमें यह प्रणाली गुप्त रखी जायगी। लेकिन जब भी इसे प्रकट किया जायगा तो मालूम होगा कि कोयले का इस्तेमाल करने के अनुसन्धानों के सम्बन्धमें बृटेन संसारमें सब देशोंसे आगे बढ़ा हुआ था। इस सम्बन्धमें और जो प्रगति होगी उसका उल्लेख करते हुए श्री बेनेट ने कहा कि कोयला एक बड़ा मूल्यवान उत्पादन हो जायगा। चूंकि थोड़े कोयलेसे अधिक काम निकाला जा सकेगा। इसलिये खानोंसे कोयला कम निकाला जायगा, लेकिन उसका मूल्य बढ़ जायगा। इस प्रकार कोयलेकी खानोंके मालिकों की आय बढ़ जायगी और कोयला-उद्योग की ओर अधिक संख्या में युवकगण आकर्षित होने लगेंगे।

कागज-पत्रों को सुरक्षित रखने का नया तरीका

श्री एस० चक्रवर्ती ने, जो शाही रिकार्ड विभाग की अनुसन्धानशालामें सीनियर टेकनीकल असिस्टेंट इन्चार्ज हैं, पुस्तकों और कागज-पत्रों को सुरक्षित रखने के लिये एक कीटाणु-नाशक कागज तैयार किया है।

विशेष प्रकारके कागज़ोंको एक रासायनिक घोलमें भिगो लिया जाता है। इन कागजों को पुस्तक या कागज पत्रोंके आकार व परिमाणके अनुसार काट कर पुस्तकोंके पृष्ठों और जिल्दोंके बीचमें रख दिया जाता है। यह कागज कीटाणुओंको नष्ट कर देता है और उनकी उत्पत्ति को रोक देता है। अत्यधिक सूक्ष्म कागज-पत्रोंकी स्याही और उनके तन्तुओंको अथवा मनुष्योंको इससे किसी प्रकारकी हानि नहीं होती।

—भारतीय समाचार

रसल मण्डली

[श्री रामेश वेदी, आयुर्वेदालंकार]

पूर्वके भयावह सांपोंमें मनुष्य जीवनके साथ फर्नियरके बाद रसल मण्डलीका घनिष्ट सम्बन्ध है। बड़े विषदन्तोंके कारण और एक दंशमें बहुत अधिक विष डालनेके कारण विष-विद्याके कुछ विशारद इसे सामान्य फर्नियरसे अधिक भयंकर समझते हैं।

बहुत सुन्दर रंगोंवाला यह सरीसृप लम्बाई में पांच फ़ीट तक पहुँच जाता है। एशियाके मण्डलियोंमें यह सब से बड़ा सांप है। यद्यपि यह एक मज़बूत और सुस्त देखने वाला प्राणी है परन्तु चेहरेसे यह तेज़ मिज़ाजका जीव मालूम देता है। इसका रंग और चिन्ह पर्याप्त विशिष्ट होते हैं जिससे इसका भ्रम दूसरे सांपसे नहीं हो सकता।

पीठके हलके मटियाले या रेतीली मिट्टीके रंगके ऊपर लम्बाईके रुख जाती हुई भूरे रंगके छल्लोंकी तीन पंक्तियां होती हैं। एक पंक्ति पीठके मध्यमें और शेष इसके दोनों ओर एक-एक। छल्लोंका सारा रंग काला हो सकता है या ऐसा भी होता है कि काला रंग न हो और इनके बीचमें पीठका रंग नज़र आता हो। छल्लोंका बाहरका किनारा सफ़ेद या पीले रंग की झलक लिये होता है। छल्लोंकी संख्या तेईससे तीस तक होती है। बीचकी पंक्तिके छल्ले कुछ बड़े होते हैं। इनमेंसे कुछ किन्हीं सांपोंमें आपसमें एक दूसरेसे मिले होते हैं जिससे इनकी लम्बी पंक्तियां जंजीरोंकी तरह नज़र आती हैं इसलिए इस सांपको जंजीरों वाला मण्डली (Chain vipér) कहते हैं। इसका पुर्तगाली नाम नेकलेस वाइपर (Necklace viper) भी इसी भावको प्रकट करता है। पीठका सबसे अन्तका छल्ला पूछपर लम्बी पट्टीके रूपमें हो जाता है। दोनों पार्श्वोंकी पंक्तियोंके छल्लोंकी परिधि पूरी नहीं होती और निचले सिरे पर टूटी होती है। छल्ले सिर पर भी विद्यमान हो सकते हैं परंतु सिर पर हमेशा एक निशान V अक्षर जैसा होता है जिसमें अक्षरका सिरा सामनेकी ओर (Λ) होता है। पेट सफेद से पीले मैले रंगका होता है जिस पर मैले रंगके छोटे छोडे धब्बे इधर-उधर बिखरे होते हैं।

सिर छोटे वल्कलोंसे आवृत होता है। पेट पर बड़ी प्लेटें होती हैं। पूछके नीचे प्लेटें दुहरी पंक्तिमें होती हैं। शरीर अच्छा बलवान होता है, पूछ छोटी और एकदम पतली बन गई होती है। सिर बहुत विशिष्ट चपटा, त्रिभुजाकृति और भारी-सा होता है। सांपोंमें पुतलियां मुंह की लम्बाईके रुख-दिगन्तसम-होती हैं परंतु मण्डलियोंमें लम्बअंश में—तिरछी-खड़ी-होती हैं। रसल मण्डलीकी पुतलियोंके चारों ओर सुनहले पीले रंगका घेरा होता है। किसी भी दूसरे भारतीय सांपकी अपेक्षा नथुने बहुत बड़े होते हैं। अच्छे आकारके युवा सांपकी नाप निम्न लिखित हैं:—

पूरी लम्बाई	चार फ़ीट एक इंच
पूछ की लम्बाई	सात इंच
घेरा	छह इंच
सिर की चौड़ाई	दो इंच
सिर की लम्बाई	दो इंच

यह सामान्यतया मैदानोंमें पाया जाता है पर सात हज़ार फ़ीटकी ऊँचाईपर भी पाया गया है। भूटानके पहाड़ों के पास ब्रह्मपुत्र घाटीमें देखा गया है। कुल्लू और काश्मीर की घाटियोंमें पांच हज़ारसे छह हज़ार फ़ीटकी ऊँचाई तक देखा गया है यद्यपि यह मैदानों और दो हज़ारसे तीन हज़ार फ़ीट तक घाटियोंका निवासी है। घने जंगलोंको छोड़ कर सब जगह मिल जाता है। ऐसे खुले प्रदेशोंको अधिक पसन्द करता है जहां सूर्य की धूप अच्छी तरह लगती है। कुछ क्षेत्रों में जैसे पंजाब में, बम्बईके पड़ोसमें और ब्रह्माके कुछ भागों तथा मद्रास प्रेसिडेन्सीमें अधिक पाया जाता है। राजपूताना और बंगाल में मिलता है। ब्रह्मा, लंका, चीन, स्याम, मलाया प्रायद्वीप, बोर्नियो, डच ईस्ट इण्डिज़, सुमात्रा और जावा में तथा कोमोडो (Comado) के छोटे द्वीप में भी होता है।

पहले पहल १७९६ ईस्वी में डाक्टर पैट्रिक रसल (Patrick Russell) ने वैज्ञानिक जगत्का ध्यान इस सांप की ओर खींचा था इस लिये इसका नाम डाक्टर रसल का मण्डली (Russell's vipera या Russelli) पड़ गया है। विविध भाषाओं और प्रान्तोंमें इसके नाम इस प्रकार है—

मराठी—घोनस ।
गुजराती—चितार ।
सिन्धी—कोरेल ।
तामिल - कनर्डि विरियां ।
मलयालम - मण्डलि ।
मलाबार - मण्डलि ।
मैसूर - मण्डलथवू, मण्डल ।
बम्बई खड चित्र ।
बंगाली - बोड़ा, चन्द्र बोड़ा, चित्र बोड़ा, चक्र बोड़ा ।
ब्रह्मी म्यू ब्यू ।
लङ्का—पोलंगा, टिक पोलंगा ।
अंग्रेज़ी—Daboia, chain viper.
पुर्तगाली—Necklace snake.
लैटिन—Russell's viper, daboia elegans, Daboi Russelli.

टिक पोलंगा, चक्र बोड़ा, मण्डल थवू, चितार, चेन वाइपर, नेकलेस स्नेक आदि अनेक नाम उसी भाव की ओर संकेत करते हैं जो भाव संस्कृत का मण्डली शब्द प्रकट करता है।

यह सांप अण्डे नहीं देता। जीवित बच्चे जब बाहर निकलते हैं तो उनकी पीठ पर मण्डलोंके गूढ़े निशान बहुत स्पष्ट होते हैं। जन्मके समय बच्चेकी लम्बाई आठ से ग्यारह इंच तक होती है। बड़े सांपोंकी अपेक्षा ये बहुत अधिक चुस्त तथा फुर्तीले होते हैं और इनका विष वैसा ही तीव्र होता है। बच्चे अपनी चिन्ता करनेके लिए तुरन्त तैयार मालूम देते हैं। एक कालमें तीस से चालीस या अधिक बच्चे पैदा होते हैं। युवा सांप बहुधा तीनसे चार फ़ीट तक और कभी-कभी साढ़े पांच फ़ीट तक भी लम्बे पहुँच जाते हैं।

रसल मण्डली दिन में सुस्त और शान्त होता है, कुण्डली मारे पड़ा रहता है परन्तु शिकार को पकड़ने में यह बहुत फुर्तीला और चुस्त होता है। सूर्यास्त के बाद या रात पड़ जाने पर भोजनकी खोजमें बाहर निकलता है। यह रात्रि सर्प है परन्तु दिनमें भी कभी-कभी दीख जाता है। छोटे स्तनपायियों विशेषतः चूहों का बहुत शौकीन है। मानवीय निवासोंके अन्दर या पास असाधारण रूपसे नहीं मिलता। छोटे स्तनपायी, गिरगिट (lizards) और पक्षी भी इसके प्रिय भोजन मालूम पड़ते हैं। क्योंकि यह तेज नहीं भागता इसलिए एक झपट्टे में दूरस्थ शिकारमें दांतोंको चुभा देता है। शिकार भले ही भाग गया हो पर इसका ज़रा सा दांत भी लग गया है तो यह उसको मारनेके लिए काफ़ी होता है। यह धैर्य से विषविद्ध प्राणीकी गतियोंको देखता रहता है और कुछ मिनटोंमें ही उसके मर जाने पर उसे खा लेता है।

पानी से डरता है। पानीके अन्दर घुसा हुआ यह कभी ही देखा गया होगा। श्री ए० जे० बौल (१८८३) कहते हैं; मैं निश्चय पूर्वक नहीं कह सकता कि प्राकृतिक व्यवस्थाओंमें यह कभी पानी पीता भी हो।' इसके पास रोज़ पानी रखा जाता हो तब भी यह उसे छुएगा नहीं। बाधित किया जाय तो यह पानीमें तैर सकता है। वृक्ष पर चढ़ सकता है।

कुछ विद्वानोंके विचारमें रसल मण्डली शान्त स्वभाव जीव है और प्रायः अपनी उपस्थितिकी चेतावनी ऊंची आवाज़ से दे देता है। केवल आत्म-रक्षाके लिए या छेड़े जाने पर ही यह मनुष्यको काटता है। साधारणतया मनुष्यके काटनेमें इसका विशेष झुकाव नहीं होता परन्तु जब काटता है तो पूरी शक्ति और मज़बूती से। इसका बच्चा भी छेड़ने पर तुरन्त काटता है। विषैले दांत बड़े होने से यह सांप बहुत मज़बूती से पकड़ता है और तब इसे छुड़ाना सरल नहीं होता। दांत लम्बाईमें आधा इंच तक पहुँच सकते हैं। दंश से मनुष्य बहुधा मर जाया करते हैं। जब गुस्सेमें होता है और हमला करने लगता है तो ज़मीन पर से बहुत ज़ोर और फुर्तीसे उछलता है। कभी-कभी अपने स्थानसे एक फ़ुट या अधिक आगे खिसक जाता है और कूदता हुआ मालूम देता है। वैसे इसकी गतियां प्रायः मन्द होती हैं। धीरे-धीरे रेंगता है❀। बहुत तेज़ नहीं भागता।

❀ १ — मन्दगामिनः।
ज्ञेया मण्डलिनः सर्पा ॥ सु०; क०; अ० ४
ज्ञेया मण्डलिनो .. ।
पांशवो मन्दगामिनः ॥ अ० सं०; उ०; अ० ४१

छेड़ने पर यह इकट्ठा हो आता है। गुस्सेमें तेज़ीसे और स्थिरतासे फुंकार मारता है। इसके फेफड़े कड़े होते हैं। इनमें हवामें भर लेता है और उसे अपने बड़े नथुनोंसे बाहर निकालता है जिससे ऊंची आवाज़ पैदा होती है। इसकी आवाज़ सब सांपोंसे ऊंची होती है। एक शान्त कमरेमें यह आवाज़ पास खड़े हुए एंजिनकी सी लगती है। श्वासके प्रत्येक उच्छ्वास और निश्वासके साथ शरीर ऊपर उठता है और नीचे गिरता है जिस तरह धौंकनी चलाई जा रही होती है। हमला करनेके लिये जब तैयार होता है तो भयंकर फुंकार करता है। एक बार किसी ने इसकी फुंकार सुनी हो तो वह इसे भूल नहीं सकता। पिटारीको छेड़ने पर यह ज़ोर से फुंकारता है। ऐसा मालूम होता है कि भरी हुई फुट-बॉलके किसी छिद्रसे हवा निकल रही हो।

फर्नियरको छोड़कर दूसरे सांपोंमें संगीतके लिए प्रेम नहीं देखा जाता। मण्डलीके सामने घण्टों बीन बजती रहे यह परवाह नहीं करेगा और न ही हिलते हुए पदार्थको ध्यानसे देखेगा जैसे फनियर देखता है।

रसल मण्डलीके विषसे विद्रधि, तन्तु-शोथ (Cellulitis) या दंश स्थान पर अस्थिमरण हो जाता है। ग्लौबुलीन्स (globulins) के अधिक परिमाण (२५ प्रतिशतके) कारण विषका यह स्थानिक कार्य इतना अधिक होता है। शरीरके अंगोंमें रक्तस्राव हो जाता है। और केन्द्रीय वातसंस्थानका ऊर्ध्वगामी पक्षाघात हो जाता है। फ़ौर्मलीनके साथ मिलाकर कुछ देर तक रखनेसे विषका विषैलापन कम होकर एक तिहाई रह जाता है। ट्रिप्सीन (tryhsin, fibrine fement की उपस्थितिके कारण इसमें फ़ाइब्रीनको पचानेका गुण है जिससे शिकार जल्दी पच जाता है। लैफ ने मालूम किया है कि ७५° — ८०° शतांश पर गरम करनेसे विषकी जमनेकी शक्ति नष्ट हो जाती है। वातनाड़ियोंके लिए विषैले कभी जमानेवाले जो पदार्थ उसमें विद्यमान होते हैं वे मद्यसार (एल्कोहल) के साथ निक्षिप्त किये जा सकते हैं। सौ अंश शतांश पर गरम करनेसे आक्षेप (Convulsions) उत्पन्न करनेके अवगुण नष्ट हो जाते।

मण्डली-विषके द्वारा मृत्यु किस कारण से होती है, इस सम्बन्धमें काफ़ी भिन्न-भिन्न सम्मतियां रही हैं। कनिंघम (१८९४) की रिपोर्ट के अनुसार भारतीय रसल-मण्डली से काटे गये प्राणियोंमें मृत्यु विषके सीधा केन्द्रीय वातसंस्थान पर होने वाले कार्यके कारण होती है। मार्टिन (१८९७) रक्तवाहिनियोंका अन्दरसे जम जाना मृत्यु का कारण विश्वास करते हैं। भारतीय रसल-मण्डली पर अनुसन्धान करते हुए लैम्प और हाना (१९०३) ने भी यही दिखाया है कि मृत्यु रक्तवाहिनियोंके अन्दर से बहुत अधिक जम जानेके कारण थी।

खरगोशके लिए शिरा द्वारा कमसे कम घातक मात्रा ७-२६ मिलिग्राम प्रति किलोग्राम मालूम की गई। इस मण्डलीसे काटी गयी मुर्गी आधेसे सवा मिनिटमें मर जाती है, कुत्ते सात मिनिटमें और बिल्ली करीब एक घंटे में। घोड़े प्रायः साढ़े ग्यारह घंटेमें मर जाते हैं। वाल (१८८३) के परीक्षणोंके अनुसार पक्षियोंकी अपेक्षा छोटे स्तनपायियोंको मरनेमें कुछ देर लगती है। ४ घन सैंटीमीटरकी मात्रामें ताज़ा विष गिरगिट (lizard) को दस मिनिटमें मारता है। एक्टन और knolules (१९१४) ने मालूम किया कि जंगली चूहेके लिए न्यूनतम घातक मात्रा ०-५ से २-५ मिलिग्राम प्रति सौ ग्राम है और मौत आठसे चौदह घंटेके अन्दर होती है। खरगोशों और गिनिपिगोंमें जब घातक मात्राएं डाली गईं तो विषका कार्य इतना जल्दी नहीं हुआ जितना फनियरके विषसे होता है। विषका कार्य मुख्यतया स्थानिक प्रतीत होता है, रक्त जमा देनेके कार्यके कारण विष उस स्थान पर ही रह जाता है। जंगली चूहोंके उदाहरणमें सात सौ ग्राम भार वाले प्राणियोंमें शिरा द्वारा आठसे नौ मिलिग्राम दो से चार घंटेमें घातक था। प्राणी ने पहले बेचैनी दिखलाई, श्वास उखड़ता सा मालूम दिया, फिर दम घुटने लगा, श्वास बन्द होनेके कारण आक्षेप उत्पन्न होने लगे, और पिछले अंगों का पक्षाघात हो गया। मृत्यु श्वास बन्द होनेके कारण होती है। श्वास बन्द होनेके कुछ समय बाद भी हृदयकी धड़कन जारी रहती है वाल ने बताया है कि मेंढक पर इसका प्रभाव बहुत कम होता है। पांच सैण्टीमीटर ('६५ ग्रेन) फर्नियरका सूखा विष एक मेंढक (Runa tigina) को सत्तर मिनिटमें मार देता है परन्तु इतना ही रसल मण्डलीका विष तुलना में बहुत तुच्छ प्रभाव उत्पन्न करता है और नौ घण्टेमें मेंढक

फिर पूर्णतया स्वस्थ हो जाता है। कर्नल चोपड़ा और चौहान (१९३२) ने दिखाया है कि दर्वीकर विषके असदृश मण्डली-विषका कार्य प्रोटोज़ुआ जीवों पर बहुत थोड़ा या नहीं होता। परीक्षणात्मक प्राणियोंमें रक्तका दबाव गिर जाता है पर प्लीहा और आंतोंके आयतनमें वृद्धि हो जाती है और अन्दरके अवयवोंकी रक्तवाहिनियोंमें रक्ताधिक्य हो जाता है, हृदय पहले फैलता है और फिर स्पन्दनोंमें फैला हुआ ही ठहर जाता है। विषका आकर हिस्टेमीन (histamine) के सदृश प्रतीत होता है। लवण जलको शरीरमें सुई द्वारा डालने और एड्रिनलीनके सूचिवेध देनेसे रुधिरका आयतन बढ़ जाने और रक्तवाहिनियोंके संकोच होनेसे प्राणी धीरे-धीरे अच्छा हो जाता है।

मनुष्यमें विषके लक्षण इस प्रकार प्रकट होते हैं—रसलमण्डलीका विष अम्ल तथा उष्ण होनेसे पित्तको कुपित करता है।[१] मुख, नाक, मसूड़े, कान, आँखें, गुदा और मूत्रमार्ग आदि शरीरके किसी भी छिद्रसे या सब छिद्रोंसे खून आ सकता है। रुधिर स्राव थोड़ा या बहुत अधिक हो सकता है। इसका परिणाम शैथिल्य (Collapse) होता है। सूजी हुई त्वचा पर दरारोंमें से भी कुछ परिमाणमें रुधिर निकल सकता है[२]। व्यक्ति कुछ घंटोंमें या कुछ दिनों बाद मर सकता है। यह इस बात पर निर्भर करता है कि विष कितनी मात्रामें अन्दर पहुँचा दिया गया है। व्यक्ति डाक्टरके पास पहुँच गया है और प्रतिविष (एण्टिविनीन) सुई द्वारा डाल दिया गया है तो उसके बच जाने की बहुत सम्भावना है। एक दंशमें यह जितना विष शरीरमें डाल देता है वह दो आदमियों को मारनेके लिए काफी होता है।

काटे हुए स्थान पर बहुत सोज[३] और तीव्र वेदना होती है, जैसे विसर्प (erysipelas) में। चारों ओर की खालका रंग बदल जाता है। घावसे लाल रंगका पतला द्रव लगातार रिसता रहता है। सामान्य खूनकी तरह यह जमता नहीं। सांप ने जिस तरफ़ काटा है, उस ओरकी जांघ की ग्रन्थियां सूज जाती हैं। यह लक्षण कुछ ही लोगोंमें देखा गया है। काटे गये स्थान पर या सारे अंगमें जलन अनुभव हो सकती है।

---

१ पित्तं मण्डलिनश्चापि .... ।

—सु०, क०, अ० ४

महर्षि चरक लिखते हैं—

विशेषाद्रूक्षकटुकमम्लोष्णं स्वादुशीतलम् ।
विषं यथाक्रमं तेषां तस्माद्घृतादि लेपनम् ।।

—च०, चि०, अ० २३, १२५।

२ वृद्ध वाग्भट्ट ने विष से उत्पन्न विकारों को विस्तारसे लिखा है—

दंशो मण्डलिनां सोष्मा सशोषः पीतलोहितः ।
पृथुर्विसर्पदाहोषाक्लेदकोथैर्विशीर्यते ।।
विकारो वक्त्रदन्तादि पीतता तृट् क्लमो भ्रमः ।
दाहोमूर्च्छा ज्वरस्तिक्तवक्त्रत्वं पीतदर्शनम् ।।
रक्तागमनमूर्ध्वाधः शीतेच्छा धूमको गदः ।
अशुसर्वाङ्गविसृतिर्गदास्ते ते च पित्तजाः ।।

—अ० सं०; उ०; अ० ४१

सुश्रुतके कल्पस्थान अध्याय चारमें भी ये लक्षण विस्तारसे वर्णित है।

३ चरक ने मण्डली सर्पके विष लक्षण लिखे हैं—

पृथ्वर्पितः सशोथश्च दंशो मण्डलिभिः कृतः ।
पीताभः पीतरक्तश्च सर्वपित विकारकृत् ।।

—च०; चि०; अ० २३; १२७

व्यवहारिक-मनोविज्ञान

(श्री राजेन्द्रविहारी लाल एम० एस० सी०, इण्डियन स्टेट रेलवेज़)

१ मानसिक दक्षताका महत्व

एक अच्छी तरह सुशिक्षित और प्रवीण मन ही दुनिया में सबसे अधिक उपयोगी सम्पत्ति है। धन भी इसका मुकाबिला नहीं कर सकता और इसके बिना निस्सहाय रहता है। प्रत्येक देश, प्रत्येक व्यापार तथा प्रत्येक पेशा इसका स्वागत करने और इसको काममें लानेके लिये उत्सुक रहता है। यह हर प्रकारकी सफलताकी कुंजी है और ऊँचेसे ऊँचे समाजके भीतर प्रवेश करनेके लिए आज्ञा-पत्र है।

विद्यार्थी, साहित्यिक, वैज्ञानिक और अध्यापकके लिये तो मानसिक दक्षताका मूल्य स्वतः स्पष्ट है, विशेष कहनेकी आवश्यकता नहीं। इसके अतिरिक्त व्यापारिक उद्योगधन्धों में भी—जहाँ शारीरिक परिश्रमका भाग अपेक्षाकृत अधिक रहता है—इसका महत्त्व बहुत ही बड़ा है चाहे उतना साफ दिखलाई भले ही न पड़े।

मानसिक दक्षता प्राप्त करनेके फलस्वरूप विद्यार्थी न केवल पढ़ी हुई सामग्रीको ज्यादह अच्छी तरहसे समझ सकता है और याद कर सकता है बल्कि अपने कामको कम समयमें पूरा भी कर सकता है और इस तरह बचाये हुए समयको आगेके या दूसरे काममें लगा सकता है। इसी प्रकार एक व्यवसायीके लिए भी इसके फायदे कुछ कम महत्त्वपूर्ण नहीं हैं। उसके लिए भी मानसिक दक्षता बड़े कामकी वस्तु है क्योंकि बातोंको विस्तारपूर्वक समझने, उनको मन के समक्ष रखने, तुलना करने, कीमतोंको याद रखने, ग्राहकोंके नाम एवम् विशेषताओं आदिको ध्यानमें रखनेकी शक्ति तथा बाज़ार-भावके भविष्यमें घटने-बढ़नेकी सम्भावनाका अन्दाज़ा लगानेकी दूरदर्शिता किसी भी व्यापारीको उसके प्रतिद्वन्द्वियोंके मुक़ाबिलेमें एक बहुत बड़ी सुविधा सिद्ध होगी। यहाँ यह भी बता देना आवश्यक है कि माल या योग्यताका बेचना भी मानसिक नियमोंके ही अनुसार होता है जिनको भली भाँति समझे बिना कुशलतासे प्रयोग नहीं कर सकते।

हर प्रकारकी सफलता सर्व प्रथम एक विचारके रूपमें रहती है। हर प्रत्यक्ष सफल कार्य आरम्भ में एक अदृश्य विचार ही रहता है। अतएव बुद्धिमानीसे सोचनेका ही तात्पर्य होता है बुद्धिमानीसे काम करना; इसी प्रकार मानसिक कार्य क्षमता ही अन्य हर प्रकारकी कार्य क्षमता का आधार है।

प्रत्येक उत्कृष्ट तथा महत्त्वपूर्ण कार्य—जैसे एक बढ़िया काव्य, एक सुन्दर चित्र, एक समृद्धशाली कारोबार तथा एक लाभदायक आविष्कार—सबसे पहले मनमें उत्पन्न होता है। मनको विकसित कीजिये तो उत्तम फलोंका मिलना अवश्यम्भावी हो जायगा। मानसिक कार्यक्षमता के लिए इच्छुक होना कोई स्वार्थपरायण बात नहीं है। आपको अपनी, अपने कुटुम्ब और अपनी जातिकी ओर अपने कर्त्तव्यके विचारसे ही ऐसा करना उचित है।

कारोबार तथा मानसिक-जीवन दोनोंमें ही मनुष्यका पद इस बात पर निर्भर करता है कि उसने अपने मस्तिष्क की उन्नतिके लिए क्या किया है! एक रसायनिक पदार्थके नाते तो मनुष्यका मूल्य केवल तीन या चार रुपया होगा; शरीरसे काम करने वाली कलके नाते उसका मूल्य, स्थान और समयके अनुसार, दस रुपया महीनासे लेकर शायद तीन-चार सौ रुपये महीना तक हो सकता है हड्डी और पुट्ठोंकी बस यही क़ीमत है। लेकिन मनुष्यके मस्तिष्कका मूल्य लाखों करोड़ों रुपयों तक हो सकता है; और अगर वह अपने मूल्यको बढ़ानेका इच्छुक है तो उसे चाहिए कि अपने मस्तिष्कको और भी अच्छे ढंगसे काममें लगानेका गुर सीखे।

यहाँ कुछ लोग यह एतराज़ करेंगे कि भाई मानसिक दक्षताके महत्त्वमें सन्देह ही किसको है? इसे तो सभी मानते हैं और समझते हैं। पर मानने और समझने ही से क्या कोई अपनी योग्यता बढ़ा सकता है? क्या ईश्वरकी प्रदानकी हुई मानसिक शक्तियोंकी सम्पत्तिको बढ़ाना सम्भव है? क्या मनोविज्ञान ने कोई ऐसा महामन्त्र ढूँढ निकाला है जिसके द्वारा अल्प बुद्धि वाला भी बुद्धिमान बनाया जा सके? थोड़ेसे शब्दोंमें इन प्रश्नोंका उत्तर यह है कि जन्म-प्राप्त मानसिक सम्पत्तिको बढ़ानेकी कोई युक्ति अभी तक तो मनोविज्ञानाचार्य नहीं खोज पाये हैं। परन्तु

प्रयोगों द्वारा यह अवश्य पता चला है कि किसी व्यक्तिकी मानसिक शक्तियाँ-चाहे जैसी भी हों – उनकी क्रियात्मक उपयोगिता बढ़ाई जा सकती है बशर्ते कि उनको नियमपूर्वक सुव्यवस्थित ढंगसे काममें लाया जाय। इसी सत्यको मान-कर ही व्यावहारिक मनोविज्ञानका श्रीगणेश होता है।

मनुष्योंकी सफलतामें जो अन्तर देखनेमें आता है वह बहुत ही थोड़ी हद तक उनकी स्वाभाविक या जन्म-प्राप्त योग्यतामें अन्तरके कारण होता है। यदि सौ मध्यमान लड़के और लड़कियों को प्रकृतिसे मिली मानसिक सम्पत्ति की जाँच की जाय तो बहुत ही थोड़ा अन्तर मिलेगा फिर भी एक व्यक्ति जिसको कदाचित् आत्म-विकासका बहुत ही कम अवसर मिलता है अपनी सम्पत्तिके मूल्यको एक सौ या कई सौ गुना बढ़ा लेता है जब कि शेष ९९ इसी बात पर आश्चर्य करते रहते हैं कि क्यों उनका माल ऐसा रद्दी और भद्दा रहता है और अपनी असफलताके लिये भाग्यको दोषी ठहराते हैं।

एक मामूली लोहार लोहे की एक कड़ी को लेकर उससे नाल तैयार कर देता है। नाल बन जानेसे लोहेकी क़ीमत कई गुना बढ़ गई। मगर एक दूसरा कारीगर है जो तनिक और मेहनत तथा बुद्धिमानीसे लोहेको तपाता है, कड़ा करता है और ठण्डा करता है और उससे नालों की अपेक्षा कहीं अधिक मूल्यवान चाकू के फल बना लेता है। एक तीसरा कारीगर ज़रा और भी चतुराई से काम लेकर नालों और चाकू के फलोंके आगे बढ़ जाता है और उस कच्चे लोहेसे बारीक सूइयाँ बना लेता है। यह परि-वर्तन भी आश्चर्यजनक है। मगर एक और कारीगर जो इन सबसे चतुर है उसी कच्चे लोहेसे घड़ियोंकी मुख्य कमानियाँ बना लेता है जिनका मूल्य नालों, चाकूके फलों और बारीक सूइयों- सबोंसे अधिक है। परन्तु वह कच्चे लोहेकी छड़ अब भी अपने अधिकसे अधिक मूल्य पर नहीं पहुँची। क्योंकि एक और कुशल शिल्पकार अपने चातुर्य और परिश्रमसे उस लोहे को और भी क़ीमती चीज़ोंमें परिणत कर सकता है जैसे कि घड़ियोंकी बाल-कमानी इत्यादि।

अगर एक धातु, जिसे थोड़े से भौतिक गुण प्राप्त हैं, अपने कणोंसे बुद्धिके मिल जानेके कारण अपने मूल्यमें इतनी आश्चर्य जनक वृद्धि कर सकती है तो यह कैसे माना जा सकता है कि एक मनुष्यकी उन्नति एक सीमित परिमाण में ही हो सकती है जब कि वह भौतिक, मानसिक, नैतिक और आत्मिक शक्तियोंका एक अद्भुत भंडार है।

हममें से बहुतसे दूसरोंकी तुलनामें अपनी प्राकृतिक शक्तिकी छड़को तुच्छ, रद्दी और अपर्याप्त समझते हैं। परन्तु अगर वे लोग धैर्य, परिश्रम, युक्ति और अध्ययन द्वारा उस छड़ को हथौड़ेसे पीटने, खींचने और चमकाने को तैयार हों अथवा भोंडे नालोंसे सूक्ष्म बाल कमानियों तककी अवस्थामें अपने को परिवर्तित करनेके परिश्रम एवम् कष्ट को सहन करनेके लिये कटिबद्ध हों तो वे भी अपनी सम्पत्तिके मूल्य को एक आश्चर्यजनक ऊँचाई तक बढ़ा सकते हैं। दुनियामें महान तथा सफल व्यक्तियोंकी जीवनियाँ पढ़नेसे इस बातके अनेक उदाहरण मिलेंगे।

'एमर्सन' का कहना है कि 'दुनिया अपने काम करने वालोंके हाथमें चिकनी मिट्टी नहीं, वरन, लोहा है; और मनुष्योंको हथौड़ेकी कड़ी और दृढ़ चोटों द्वारा अपने लिये स्थान बना लेना चाहिये।"

अपनी सामग्रीको— चाहे वह सुई अथवा लोहा हो— अधिकसे अधिक उपयोगी बनाना यही सफलता है और साधारण सामग्री को अनमोल बना देना—यह बड़ी सफलता है।

दिमाग़ केवल पैदा ही नहीं होते, बल्कि बनाये भी जा सकते हैं। मस्तिष्कके भार ही से उसकी उपयोगिता नहीं ज्ञात होती, वरन् उसकी शक्तियोंकी व्यवस्था और उद्योगशीलता से। बहुतसे मनुष्य जिन्हें वंश परम्परासे थोड़ा ही मानसिक बल मिला है दृढ़ता और आत्म-विश्वास द्वारा दुनिया के बड़े-बड़े मौलिक विचारकोंमें से हो गये हैं।

जब मनोविज्ञानका विद्वान आपकी ओर अथवा आज कलके एक औसत मनुष्यकी तरफ़ नज़र डालता है तो वह क्या देखता है? कौन सी बात है जिसकी ओर उसका ध्यान बड़ी प्रबलतासे आकर्षित होता है? वह बात यह है कि एक युगमें जब कार्यक्षमता आवश्यक है वह देखता है कि अपनेमें निजी अयोग्यता होते हुए भी आप निश्चिन्त रहते हैं। वह देखता है कि आप प्रत्येक दिन

कोई आठ घंटे अपने काममें व्यतीत करते हैं, भाँति भाँति के खेल खेलते हैं, अपने मनोरंजनके कामोंमें कुछ समय लगाते हैं तथा अपने सामनेके प्रश्नोंको हल करनेमें व्यस्त रहते हैं या किताबोंका अध्ययन करते रहते हैं; पर इन सब कामोंको जितना चाहिये उससे एक चौथाईसे लेकर तीन चौथाई तक कम योग्यतासे करते हैं। वह देखता है कि आप अपने मनसे इस प्रकार काम लेते हैं कि आसान कार्य कठिन बन जाते हैं और कठिन कार्य असम्भव। वह देखता है कि आप कितनी ही प्रकारकी योग्यतायें सीखनेमें बिना किसी अच्छे कारणके असमर्थ रहते हैं यद्यपि वे योग्यतायें आपके लिये बड़ी ही उपयोगी सिद्ध हो सकती हैं। वह देखता है कि गति-शक्ति खोने तथा ग़लत रास्ते पर चलनेके कारण आप पचास प्रतिशत ही सफलता प्राप्त कर पाते हैं।

आपको देख कर मनोवैज्ञानिक को इंजिनियरिंगकी आधुनिक उन्नतिके इतिहासका स्मरण हो आता है। कोई २०० वर्ष हुए जब यंत्रयुगका प्रादुर्भाव हुआ। तब बड़ा प्रश्न यह था कि शक्तिके नये नये स्रोत कैसे निकाले जायँ। सो विज्ञान ने हमें भाप-इंजिन, (internal comb-ustion Engine) तथा बिजली प्रदान की। परन्तु इस समय विज्ञानाचार्य और व्यावहारिक इंजीनियर एक दूसरी ही दिशामें काम कर रहे हैं। वे हमें दिखा रहे हैं कि किस भाँति हम उस शक्ति को जो हमें प्राप्त है किफायत से खर्च करें। इस उद्देश्यकी पूर्तिके लिए वे बहुत सी युक्तियोंका प्रयोग करते हैं जिनमेंसे एक अत्यन्त ही महत्त्व-पूर्ण युक्ति Stream Lining कहलाती है। इसके द्वारा हवा और पानीकी उस रुकावटसे बचते हैं और उसे दूर करते हैं जो हलकी रफ्तारों पर तो नगण्य रहती है, पर तेज़ चलनेके समय एक ज़बरदस्त रुकावट डालने वाली तथा गतिको मन्द करने वाली शक्ति बन जाती है। इस उपाय द्वारा कोयलेका एक टन, पेट्रोल का एक गैलन, बिजलीका एक किलोवाट हमें पहलेसे कहीं अधिक तेज़ी से दूर तक ले जाता है। शक्तिसे अधिक लाभ मिलता है क्योंकि वह व्यर्थ नहीं जाती। इसी तरह जब मनो-विज्ञानवेत्ता आपकी ओर देखता है तो उसे इन सब बातों का खयाल आ जाता है। वह जानता है कि प्रकृति ने आपको केवल इतनी शक्ति प्रदानकी है। उसे बढ़ानेमें तो वह कमसे कम अभी तक असमर्थ है। वह आपकी वंशपरम्पराका संशोधन नहीं कर सकता, न आपको नये सिरेसे फिर बना ही सकता है। परन्तु वह यह भी जानता है कि अगर आप सचमुच एक औसत या मध्यमान पुरुष हैं तो आप अपनी शक्तियोंका केवल एक छोटा-सा भाग ही उत्पादक काममें लगा रहे हैं। जितना आपको अधिकार है उससे कहीं मन्द गतिसे आप चलते हैं और जितनी दूर तक आपको जाना चाहिये वहाँ तक आप पहुँच भी नहीं पाते।

मनोविज्ञानाचार्य जब जानवरोंके बच्चोंका अध्ययन करते हैं तो देखते हैं कि उनके शरीर और मनका विकास प्रायः एक ही गतिसे होता है, परन्तु मानव-शिशुकी उन्नति इससे विपरीत ढंगसे होती है। मनुष्यके छोटेसे बच्चेका भी मन आराम, तकलीफ़, इच्छित, अनिच्छित वस्तुओंको कुछ न कुछ समझनेकी योग्यता रखता है। परन्तु उसके शरीरमें इतनी सामर्थ्य नहीं होती कि जिन चीज़ोंकी उसे इच्छा है उन्हें उठा ले या प्राप्त कर सके। आयुके बढ़नेके साथ ही मन और शरीर दोनोंकी योग्यताओंमें वृद्धि होती है पर दोनोंके विकासकी गतिमें बड़ा अन्तर रहता है। यहाँ तक कि युवावस्थामें जब शरीर अपने पूर्ण विकासको प्राप्त कर लेता है मानसिक दृष्टिसे व्यक्ति अधकचरा ही रहता है। इसके बाद शरीरकी शक्तियाँ कुछ समय अपनी सबसे अच्छी हालतमें स्थिर रह कर युवावस्था बीतने पर धीरे-धीरे ढलने लगती है, परन्तु क्या उस समय मनकी शक्तियोंका क्षीण होना आवश्यक है? कदापि नहीं! अभी तो मनके विकसित होनेका ही समय है। युवावस्थाके बीत जानेके वर्षों बाद तक मनुष्यके मनकी उन्नति होती रहती है, बल्कि देखनेमें तो प्राय: यह आता है कि जब मनुष्यका शरीर बुढापेके कारण बिलकुल जवाब दे जाता है उस समय भी उसका दिमाग़ ज़ोरोंसे काम करनेकी योग्यताको बनाये रख सकता है। मनुष्यके शरीरका विकास आरम्भमें उसके मनके विकासके पीछे रहता है। युवावस्थाके आते-आते शारीरिक विकास मानसिक विकासके बहुत आगे पहुँचकर रुक सा जाता है, पर मानसिक विकासको उस समय अथवा वृद्धावस्था तकमें जारी रखा जा सकता है। परन्तु

ऐसा तभी हो सकता है जब इसके लिए दृढ़ता एवम् परिश्रमसे प्रयत्न किया जाय।

मनोविज्ञानचार्यको एक ओर तो यह मालूम है कि आधुनिक सभ्यताके उमड़ते हुए प्रवाहमें आप पर कितने बड़े दबाव पड़ते हैं और दूसरी ओर यह कि आप न तो अपने प्राकृतिक-बलके भण्डारको बढ़ा सकते हैं न दिनमें घंटोंको संख्या ही को। अतएव यह तो और भी बड़ा कारण है कि आप हर क्षणका पूरा लाभ उठायें, उद्योग तथा उपायको अधिकसे अधिक फल प्राप्तिके लिए सुव्यवस्थित करें। उसे विश्वास है कि आप अपनी सामर्थ्यके बहुत बड़े अंश को बिना वजहकी रुकावटों द्वारा नष्ट होने देते हैं, ठीक उसी तरह जैसे एक मोटरकारकी कुछ शक्ति उसके चौखूटे, अग्रभाग, लम्बरूप हवा रोकनेवाला शीशा, बेडौल रोशनीकी बत्तियाँ और किनारेके भाग तथा सीधी लकीरों की बनावटके कारण, इन सब चीज़ोंको हवाके विरुद्ध ढकेलनेमें व्यर्थ जाती है। उसका कहना है कि आपके लिए उसकी शिक्षा बिलकुल वैसी ही है जैसी उसके भाई भौतिक विज्ञानाचार्यकी है और वह ठीक उतनी ही उपयोगी सिद्ध हो सकती है। वह कहता है कि आप भी अपने मस्तिष्कको Stream line कर सकते हैं और आपको ऐसा करना भी चाहिए। आगे के लेखोंमें इसी विषय पर कुछ प्रकाश डाला जायगा।

रेलवे टाइम-टेबिल

(लेखक—आनन्द मोहन बी० एस-सी०, इंडियन स्टेट-रेलवेज़, ईस्ट-इंडिया-रेलवे, कलकत्ता)

१—टाइम-टेबिल सब चलती हुई यात्री रेलगाड़ियों का आधार है। यदि यात्री रेल-गाड़ियोंके समयका रेलवे द्वारा निश्चित होकर, पहिलेसे ही जनतामें प्रचार न हो तो बड़ा गोलमाल होगा। यदि मुसाफ़िर-गाड़ियाँ साधारण बसकी तरह चला करतीं, अर्थात् तब चलती जब अच्छी तरह भर जातीं, तो रेलवेके कार्य्यमें एक प्रकारकी अनिश्चितता घुस जाती, यात्रियोंको रेल द्वारा सफ़र करनेके लिये स्टेशनों पर बड़ी देर तक रुकना पड़ता और रास्तेमें एक रेलगाड़ीको रास्ता देनेके लिये अथवा उसे पार करनेके लिये देर तक रुकना पड़ता। टाइम-टेबिल, रेलगाड़ीके समयके बारेमें आवश्यक तथा लाभदायक सूचना देता है। जैसे कौन रेलगाड़ी किस स्टेशन पर रुकती है और किस पर नहीं, यदि रुकती है तो कितनी देरके लिये, कौन कौन से जंक्शनोंके लिये कनेकटिंग ट्रेन (conecting train) है, तथा कनैकटिंग ट्रेन पकड़नेके लिये कितना समय मिलता है। प्रत्येक रेलवे अपना अलग टाइम-टेबिल छापती है। अधिकतर टाइम-टेबिलमें रेलवे भाड़ा, सामान तथा मुसाफिरके बारेमें सामान्य नियम तथा जलपानगृह और अन्य वस्तुओंका जो उस रेलवे द्वारा देखने योग्य हैं वर्णन रहता है। इसके अलावा उन रेलवे कर्मचारियोंके सूचनार्थ भी जिनका सम्बन्ध रेलके चलनेसे होता है, टाइम-टेबिलकी आवश्यकता होती है। ऐसा टाइम-टेबिल जो केवल रेलवे कर्मचारियोंके लिये छापा जाता है, वर्किङ्ग टाइम-टेबिल (working time table) कहलाता है। इस टाइम-टेबिलमें केवल रेलके समयकी सूचना ही नहीं रहती भिन्न-भिन्न स्टेशनों तथा रेलवेके विभागोंकी भी सूचना रहती है। टाइम-टेबिल द्वारा रेलवे अधिकारी यह हिसाब लगा सकते हैं कि उन्हें मुसाफ़िर-गाड़ियोंके लिये कितने इंजिन, रोलिंग स्टॉक (Rolling Stock) तथा कर्मचारियोंकी आवश्यकता होगी। टाइम-टेबिल द्वारा मितव्ययिता तथा सामर्थ्यको ध्यान में रखकर इंजिन, गाड़ियाँ, तथा कर्मचारियोंके लिये कार्यक्रम निर्धारित किया जाता है।

२—इसके प्रथम कि यह बताया जाय कि टाइम-टेबिल कैसे बनाया जाता है, उन शब्दोंको जान लेना आवश्यक है जो भिन्न-भिन्न रेलगाड़ियोंके लिये प्रयोग किये जाते हैं।

३—पैसेंजर (Passenger) गाड़ियाँ :—उन गाड़ियोंको कहते हैं जो पूर्णतया अथवा अधिकतर मुसाफ़िरोंको ले जानेकी होती है। इनमें जो सेनाके लिये गाड़ियाँ होती हैं वह भी शामिल होती हैं। परन्तु साधारण बोलचालकी भाषामें पैसेंजर गाड़ियाँ उन गाड़ियोंको

कहते हैं जो अपेक्षाकृत कम गतिसे चलती हैं तथा करीब-करीब प्रत्येक स्टेशन पर रुकती हैं। एक्सप्रेस ट्रेन (Express train) उन यात्री गाड़ियोंको कहते हैं जो अधिक गतिसे जाती हैं। डाक गाड़ी (Mail train) एक्सप्रेस ट्रेनसे भी अधिक गतिसे जाती है। डाक गाड़ी सिर्फ बड़े स्टेशनों पर ही रुकती है और विशेषतर बहुत दूर जाने वाले यात्रियोंके लिये होती है तथा अधिकतर डाक भी इन्हींमें जाती है।

४—मालगाड़ी :- ये सिर्फ माल और जानवरोंको ले जाती है। इनकी गति यात्री गाड़ियोंकी गतिसे बहुत कम होती है।

५—मिक्सड ट्रेन (Mixed train) वे रेल गाड़ियाँ हैं जो यात्रियों और उनके सामानके साथ-साथ मालगाड़ीसे जाने वाले मालको भी ले जाती है। यह साधारणतया उन विभागोंमें चलती है जहाँ मालगाड़ीसे चलने वाला माल इतना नहीं होता कि उनके लिये एक अलग मालगाड़ी लगवाई जाये।

६- भारतमें आज कल चौड़ी लाइन (Broad gauge line) पर चलने वाली डाक गाड़ी प्रायः ५५ मील फ़ी घंटेके हिसाबसे चलती है। एक्सप्रेस (Express) ४० से ५० मील फ़ी, घन्टा मालगाड़ी १० से १५ मील प्रति घन्टा और पैसेंजर तथा मिक्सड ३० या ३५ मील चलती है। यदि रुकनेका समय शामिल किया जाय तो डाकगाड़ी की औसत चाल ४० मील प्रति घन्टा, एक्सप्रेस को ३५ मील फ़ी घन्टा, पैसेंजर की २५, मील और मालगाड़ी की १२ से १५ मील प्रति घन्टा रहती है। जी० आई० पी० रेलवे की बिजलीसे चलने वाली मालगाड़ियोंकी औसत चाल २० मील प्रति घंटा पड़ जाती है।

७ - टाइम-टेबिलमें रेलगाड़ियां अधिकतर नम्बरों द्वारा बतलाई जाती हैं, जैसे ७ अप एक्सप्रेस (7 up Express) ४ डाउन मेल (4 down mail) २९ अप पैसेंजर (29 up passenger)। किसी भी दो स्टेशनों क और ख के बीच रेलगाड़ियां दो दिशाओंमें चलती हैं, अर्थात् क से ख और ख से क की ओर। यदि एक ओर चलने वाली रेल 'अप' कहलाती है तो दूसरी ओर जाने वाली डाउन। यह केवल नियतकी हुई पद्धतिकी बातें हैं कि कौन-सी रेल 'अप' कहलायेगी और कौन सी 'डाउन'। कुछ रेलवेमें दक्षिणसे उत्तर या नीचेसे ऊपर वाली को 'अप' कहते हैं और उसके उलटी वालोंको 'डाउन'। कुछ रेलवेमें जैसे ई० आई० आर० और एन० डब्लू० आर० में सम संख्याकी रेल डाउन और विषम संख्याकी रेल अप मानी जाती हैं। सब रेलवेमें एक पद्धति नहीं चलती।

८ - प्रधानताके हिसाबसे रेलगाड़ियोंको निम्नलिखित क्रममें रख सकते हैं। निस्सन्देह मेल ट्रेनोंको ही प्रथम स्थान दिया गया है।

(१) डाकगाड़ी (२) एक्सप्रेस (३) मुसाफिर गाड़ियां (४) मिक्सड डाक (५) मालगाड़ी।

९ मेल और एक्सप्रेस रेलगाड़ियां अधिकतर विशेष शहरोंको मिलाती हैं और दूर-दूर तक जाती हैं। बम्बई, कलकत्ता, करांची और मद्रास इन चारों बन्दरगाहों द्वारा देशका अन्दर आने और बाहर जानेवाला सामुद्रिक व्यापार होता है। इसलिये ये बन्दरगाह रेलवेकी प्राकृतिक और मुख्य सीमायें हैं। वे सीधे रेल द्वारा देशके अन्य आन्तरिक मुख्य शहरों जैसे दिल्ली, लाहौर लखनऊ (सरकारी राजधानियां) शिमला, देहरादून (पहाड़ी ठंडी जगहें) क्वेटा और पेशावर (फ़ौजी केन्द्र) से जुड़े हुए हैं। उदाहरणार्थ निम्नलिखित स्थानोंके बीच मेल और एक्सप्रेस गाड़ियाँ सीधी बिना बदले जाती हैं।

१—हावड़ा (कलकत्ता) और कालका।
२ - हावड़ा (कलकत्ता) और बम्बई।
३ - हावडा (कलकत्ता) और मद्रास।
४—हावड़ा (कलकत्ता) और देहरादून।
५ - हावड़ा (कलकत्ता) और लाहौर।
६—मद्रास और बम्बई।
७—बम्बई और पेशावर।
८ - करांची और लाहौर।

१० - टाइम-टेबिल बनानेके लिये, प्रत्येक रेलवे कई विभागोंमें बाँटी जाती है। सबसे मुख्य विभागोंको जिन पर मुख्य शहर स्थिति होते हैं तथा जिन पर रेलवेका अधिक सामान तथा यात्री चलते हैं मेन लाइन कहते हैं।

उन विभागोंको जिन पर ऐसे साधारण नगर ही होते हैं जो मुख्य लाइनोंसे दूर हो, उनको ब्रांच लाइन (Branch lines) कहते हैं। इस प्रकार हावड़ा और देहलीके बीचकी लाइन मुख्य लाइन है, और गयासे पटने तथा इलाहाबादसे फैज़ाबादकी लाईन ब्रांच है। मुख्य लाइनें या तो प्राकृतिक स्थानों जैसे कलकत्ता, बम्बईके बड़े बन्दरगाह या पहाड़ी स्थानों जैसे शिमला, देहरादून, ओटकामन्ड या बड़े रेलके जंकशनों जैसे दिल्ली, लाहौर, पर प्रायः आरम्भ और समाप्त होती हैं।

११ – टाइम-टेबिल बनाते समय सबसे पहले मेन लाइनका विचार किया जाता है। पहिले मेल ट्रेनोंका समय निर्धारित किया जाता है। फिर क्रम से एक्सप्रेस पैसेंजर और मालगाड़ियोंका समय निर्धारित किया जाता है।

१२ – किसी भी रेलगाड़ीका टाइम-टेबिल बनाते समय निम्नलिखित बातों पर विचार करना पड़ता है:— (१) चलने का समय (२) अन्त (terminus) में पहुँचनेका समय (३) बीचके स्टेशनों पर यात्रियों और रेलवेके कामोंके लिये रुकनेके नियत समय। ये बातें एक दूसरेसे स्वाधीन नहीं है बल्कि एक दूसरे पर निर्भर होती हैं।

१३ – हमारी मेल तथा एक्सप्रेस रेलगाड़ियाँ बहुत दूर दूर तक का सफर तै करती हैं। उनके एक किनारे से चलने तथा दूसरे किनारे पहुँचनेके समय दूर सफर करनेवाले यात्रियोंकी सुविधा और आरम्भिक स्टेशनों पर पोस्टल डाक लादने तथा अन्तके स्टेशन पर उतारनेकी आसानीका ध्यान रख कर निर्धारित किये जाते हैं। यह तो स्वयं सिद्ध ही है कि दूर जानेवाली रेलगाड़ियोंके समय निश्चित करनेमें रास्तेके आनेवाले सब स्टेशनों पर चढ़नेवाले यात्रियों और डाककी सुविधाका पूरा ध्यान नहीं रक्खा जा सकता। उन मेल रेलगाड़ियोंका जो सामुद्रिक बन्दरगाहोंसे चलती हैं समय निर्धारित करते समय बन्दरगाहों पर आने जाने वाले स्टीमरोंका ध्यान रखना परम आवश्यक है। बन्दरगाहोंसे चलनेवाली रेलगाड़ियोंके छूटनेके समय ऐसे रक्खे जाते हैं जिससे समुद्र पारसे आये हुए यात्रियोंको बन्दरगाहों पर अधिक न रुकना पड़े। जिन स्टेशनोंके लिये अक्सर अधिकतर यात्री होते हैं वहाँ पहुँचनेका टाइम भी ऐसा रक्खा जाता है जिससे अधिकांश यात्रियोंको सुविधा हो। अधिकतर मेल ट्रेनें एक किनारेसे संध्याको सुविधाजनक समय पर चलाई जाती हैं तथा दूसरे किनारे पर प्रातःकालको पहुँचती हैं। हावड़ासे निम्नलिखित स्थानोंके लिये कई मेलोंका सन्ध्याके ही समय चलाया जाना उपरोक्त बात भली भाँति स्पष्ट कर देता है:—

१. ई० आई० आर० कालका मेल।
२. ,, ,, ,, पंजाब मेल।
३. ,, ,, ,, बम्बई मेल इलाहाबाद होकर।
४. बी० एन० आर० बम्बई मेल नागपुर होकर।
५. ,, ,, ,, मद्रास मेल।

ये सभी ट्रेनें हावड़ासे सन्ध्याको चलती हैं और अपनी यात्राके दूसरे किनारे निर्दिष्ट स्थान पर सुबहके समय पहुँचती हैं।

१४—उन विभागोंमें जहाँ मेल ट्रेन नहीं हैं अथवा मेल ट्रेन असुविधाजनक समय पर चलती हैं, अथवा मेल ट्रेन तो अच्छे समय पर पहुँचती हों पर यात्री इतनी बहुतायतसे हों कि एक दूसरी रेलगाड़ीके लिये भी गुंजायश हो, वहाँ मेल ट्रेनके थोड़ी देर बाद ही एक शीघ्रगामी रेलगाड़ी चलाई जाती है। जब इन गाड़ियोंका समय निर्धारित हो जाता है तब शेष समयमें जो सुविधाजनक समय होगा उन पर एक्सप्रेस रेलगाड़ियाँ चलाई जाती हैं। इस प्रकारसे शीघ्रगामी रेलगाड़ियाँ दिनके सब समयमें एक दूसरेसे करीब-करीब बराबर समयके बाद चला दी जाती हैं। इनके अतिरिक्त लोकल (Local) तथा कम दूर तक चलनेवाली मुसाफिर गाड़ियाँ चलाई जाती हैं। ये यात्री गाड़ियाँ और अधिकतर ब्रांच लाइनकी गाड़ियाँ थोड़ी दूर जाने वाले यात्रियोंकी आवश्यकता को पूरी करते हैं। इनके समय निम्नलिखित बातों पर आश्रित होते हैं।:—

(१) कोर्ट तथा दफ़्तरोंका स्थान तथा उनके कार्यका समय।

(२) बाज़ारोंका स्थान तथा तिजारतके समय।

(३) जंकशनों पर दूसरी गाड़ियोंसे मुख्यतः मेल ट्रेनोंसे मेल।

(४) रेलवेसे होड़ लगानेवाली अन्य सवारियों जैसे बसोंके चलने और पहुँचनेका समय।

१५—इस प्रकार मुख्य गाड़ियोंके आरम्भ तथा अन्तका समय निर्धारित हो जानेके बाद बीचके स्टेशनों पर पहुँचने तथा वहाँसे चलनेका समय निर्धारित होता है। टाइम-टेबिल बनानेके दफ़्तरमें प्रत्येक रेलगाड़ीको गति ग्राफ़-पेपर पर रेखाओं द्वारा प्रदर्शित किया जाता है। इस ग्राफमें स्टेशन ऊपर नीचे और समय दायें-बायें दिखाया जाता है। इस ग्राफ़से एक साथ दिखाई पड़ जाता है कि अमुक स्थान पर अमुक समय पर कौन गाड़ी होगी। टाइम-टेबिलमें कुछ रद्दोबदलकी आवश्यकता हो तो इससे बड़ी आसानीसे पता चल जाता है।

१६—किसी रेलगाड़ीका टाइम-टेबिल निम्नलिखित बात पर अवलम्बित होता है:—

(१) स्टेशनोंके बीचमें चलनेका समय।

(२) स्टेशनों पर रुकनेका समय।

१७—एकके बाद दूसरे दो स्टेशनोंके बीचमें चलने का समय निम्नलिखित समयोंका योग होता है।

(अ) स्टेशनोंके बीचकी दूरीको गाड़ीकी निर्धारित गतिसे भाग देनेसे जो समय निकले।

(ब) गाड़ीके चलते और रुकते समय उसकी गतिको बढ़ाने तथा घटानेमें जो समय लगता है।

(स) महकमा मरम्मत (engineering department) द्वारा लगाई हुई जगह जगह गतिकी पाबन्दीके कारण जो अधिक समय खर्च हो।

१८—गति बढ़ाने और घटानेमें जो समय लगता है वह एंजिनकी श्रेणी, रेलगाड़ियोंका भार और गति तथा रेलवे लाइनके उतार चढ़ाव पर निर्भर होता है। अधिकतर उन पैसेञ्जर गाड़ियोंके टाइम टेबिल बनानेमें जिनकी गति ३० मील या उससे कम होती है, ऐसे समय का विचार नहीं रखा जाता जो रेलगाड़ियोंकी रोक थाम में ख़र्च होता है। परन्तु इससे अधिक गतिकी रेलगाड़ियों के लिये जो साधारण एंजिनों द्वारा चलाई जाती हों, एक मिनट रुक कर चलने तथा एक मिनट रुकनेके लिये दिया जाता है।

उन गाड़ियोंके लिये जो × A, × B, × C अथवा × S श्रेणीके बड़े एंजिनों द्वारा खींची जाती हैं। २ मिनट गति बढ़ाने तथा २ मिनट गति घटानेके लिये दिया जाता है।

१९—यदि महकमा मरम्मत ने काफ़ी दिनके लिये कोई रोक थाम लगाई हो तो उसकी वजह से जो समय खराब होता है उसको टाइम-टेबिल बनानेमें शामिल कर लिया जाता है। लेकिन जहाँ यह रोक थाम थोड़े ही समयके लिये होती है वहाँ रोक थामकी जगह बदलती जाती है। वहाँ इस समयका टाइम-टेबिलमें किसी एक जगह शामिल करना कठिन है। इसलिये इन अस्थिर रोक थाम द्वारा एक विभागमें जितने समयके नष्ट होनेकी सम्भावना होती है उतना समय विभागके अन्तिम दो स्टेशनोंके बीचके समयमें मिला दिया जाता है। महकमे मरम्मतकी ओरसे लगाए रोक थाम अनिवार्य बुराई हैं। क्योंकि इसके द्वारा हमारी रेलगाड़ियोंकी गति कम हो जाती है। लेकिन लाइनकी मरम्मत इस प्रकार तरतीबसे की जाती है कि उसकी वजहसे की गई रोक थाम सारे साल प्रायः एक सी रहे। यह नहीं कि कभी तो बहुत और कभी बिलकुल कम।

२०—यात्री रेल गाड़ियोंका स्टेशनों पर रुकनेका समय निम्नलिखित पर निर्भर होता है।

(A) यात्रियोंकी सुविधायें:—

(१) गाड़ीसे यात्रियोंके उतरने चढ़नेके लिये आवश्यक समय।

(२) पार्सल और यात्रियोंके सामानके उतारने चढ़ानेके लिये आवश्यक समय।

(३) स्टेशनोंके जलपान-घर refreshment room अथवा Dining car में यात्रियोंके खाना खानेके लिये आवश्यक समय।

(४) दूसरी रेलगाड़ियोंसे मेल।

(५) दूसरी रेलगाड़ियोंको पार करने या उनको निकलने देनेके लिये रास्ता देनेके आवश्यक समय।

(६) एक रेलगाड़ीसे कटकर दूसरी रेलगाड़ीमें लगने वाले थ्रू डिब्बेके काटने लगानेके लिये समय।

(B) डाककी आवश्यकताएँ:—

(C) इंजिनोंकी आवश्यकताएँ, जैसे इंजिनोंका पानी लेना, या इंजिनोंका बदलना।

२१ स्टेशनों पर रुकनेका समय इन सब आवश्यकताओंके लिये प्रर्याप्त होना चाहिये। यह बहुत अधिक भी नहीं होना चाहिये, क्योंकि इससे न केवल यात्री ही तंग होंगे बल्कि रेलगाड़ीकी गति भी बड़ी धीमी हो जायगी। फिर यह अपर्याप्त भी न होना चाहिये, नहीं तो गाड़ियोंको प्रत्येक दिन ठीक समय पर चलना कठिन होगा।

२२ - इंजिनमें पानी भरनेके लिये प्रायः ८ से १० मिनटकी आवश्यकता होती है। इंजिन कई प्रकारके होते हैं और बिना रुके एक ही बारके भरे हुए पानीके ऊपर वे भिन्न भिन्न दूरी तक जा सकते हैं, जैसे

उदाहरण

एक HP/s एंजिन 80 मील दूर जा सकता है।
,, SP/s 75 ,, ,, ,, ,, ,,
,, SG/s 50 ,, ,, ,, ,, ,,
,, HG/s 50 ,, ,, ,, ,, ,,
,, × C 105 ,, ,, ,, ,, ,,
,, × S 105 ,, ,, ,, ,, ,,
,, HP 60 ,, ,, ,, ,, ,,
,, SP 60 ,, ,, ,, ,, ,,
,, SG 35 ,, ,, ,, ,, ,,
,, HG 35 ,, ,, ,, ,, ,,

२३ - सिवाय उन स्टेशनोंके जहाँ दोनों तरफ़से आने वाली गाड़ियाँ एक साथ स्टेशनमें लाई जा सकती हैं, स्टेशनों पर दो गाड़ियोंके आनेके समयके बीचमें ३ से ५ मिनटका अन्तर रक्खा जाता है। इसी तरह एक गाड़ीके आने और दूसरी ओरको जाने वालीके सिवाय जहाँ दोनों तरफ़की गाड़ियाँ स्टेशनोंके बीच बिलकुल अलग-अलग लाइनसे जाती हैं स्टेशन पर गाड़ीके जाने के बीचमें प्रायः ५ मिनट देना पड़ता है। तथा जब एक गाड़ीको दूसरी गाड़ीके आगे निकलना होता है तो पहली गाड़ीके स्टेशन पर आनेके ५ मिनट बाद दूसरी गाड़ीको पिछले स्टेशनसे चलना चाहिये।

२४—जब गाड़ियाँ एक दूसरेसे पार होती जाती हैं अथवा एक दूसरेके आगे निकलती हैं तो इस बातका ध्यान रखना आवश्यक है कि जिस स्टेशन पर गाड़ी एक दूसरेको पार करे सब गाड़ियोंके लिये पर्याप्त लाइनें तथा प्लैटफार्म होने चाहियें। जहाँ तक हो सकता है दो यात्री गाड़ियोंको उन स्टेशनों पर एक दूसरेसे पार नहीं कराते जहाँ केवल एक ही ऊँचा प्लैटफ़ार्म होता है।

२५ जितना समय दो रेलगाड़ियोंको एक दूसरेको पार करने या एक दूसरेके आगे निकलनेमें लगता है, वह सारा समय एक तरहसे नष्ट करना ही है। इसलिये जहाँ तक हो सकता है इसे कम रखनेकी चेष्टा की जाती है। कार्य्यके लिये एक विधि यह है कि टाइम-टेबिलमें दो टाइम दिये रहते हैं जिससे यदि एक ट्रेन लेट हो जाय तो दूसरा टाइम काममें लाया जाय। ऐसी हालतमें पहिलेवाला टाइम ही दिखाया जाता है। एक धीमी गति की गाड़ी किसी स्टेशन पर बहुत देर तक रोक दी जाती है। अधिक गतिकी गाड़ीको पार करने या आगे निकालने के लिये हो, तो वह मन्द-गति गाड़ी यदि अधिक गतिकी गाड़ी समयसे पिछड़ जाय तो इस बीचमें एक दो स्टेशन आगे तक चला दी जा सकती है और तब दूसरी गाड़ीको पार करनेका रास्ता दे सकती है। इन दशाओंमें भी दो समय दिये रहते हैं जो working time table में दिये जाते हैं। जनताके टाईम टेबिलमें केवल पहला ही समय दिया जाता है।

२६— टाइम-टेबिल प्रायः हर ६ महीने बदले जाते हैं और टाइम-टेबिल आफ़िसको टाइम-टेबिल बनानेमें करीब-करीब ६ महीने लग भी जाते हैं। जैसे ही एक टाइम-टेबिल चालू हो जाता है अगले ६ माही टाइम-टेबिल बनानेके लिये प्रबन्ध होने लगता है। स्थानिक रेलवे अधिकारियों डाकके अधिकारियों तथा रेलवे एडवाइज़री कमेटीसे टाइम-टेबिलमें परिवर्तनके विषयमें विचार माँगे जाते हैं। स्थानिक रेलवेके अफ़सरोंसे भी यह सूचना माँगी जाती है कि कौन कौन महकमे मरम्मत द्वारा किये गये रोक जो वर्तमान टाइम-टेबिलमें हैं हटा दिये जायेंगे तथा कौनसे ऐसे नये रोक लगाये जायेंगे जो प्रायः ६ महीने तक चलेंगे। तथा यह भी पूछा जाता है कि मेल रेलगाड़ियोंके समयमें महकमे मरम्मत द्वारा थोड़े थोड़े दिनके लिये लगाये गये रोकोंके कारण कितना समय शामिल किया जाय जिससे

उतनी देर होने पर भी ट्रेन लेट न हो। इन सब विचारों के आने पर एक कच्चा टाइम-टेबिल तैयार किया जाता है जो स्थानिक रेलवे अधिकारियों, डाक विभाग तथा सलाह देने वाली कमेटी के सदस्यों के पास उनके विचारार्थ भेजा जाता है। उसके बाद फिर भिन्न-भिन्न स्थानिक रेलवे अधिकारियोंको एक टाइम-टेबिल मीटिंगमें सहयोग देनेके लिये हेड आफ़िस में बुलाया जाता है जहां भिन्न भिन्न प्रस्तावों पर विचार किया जाता है।

अन्तमें प्रस्तावित परिवर्तनों पर सलाह देने वाली पब्लिक ऐडवाइज़री कमेटीमें विचार होता है। फिर पक्का टाईम-टेबिल तैयार किया जाता है। विशेष विषयों पर अन्य रेलवेके पास भी सूचना भेज कर स्वीकृति मँगा ली जाती है। इसके बाद टाइम-टेबिल छपने जाता है। नये टाइम-टेबिलको जनताके सामने उसके लागू होनेसे १५ दिन पहिले रखनेका प्रयत्न किया जाता है।

२७—जब यात्री रेलगाड़ियोंका टाइम-टेबिल बन चुकता है, तब मालगाड़ियोंके चलनेके लिये समय निर्धारित होते हैं। प्रत्येक रेलवे इन मालगाड़ियोंके निर्धारित समयमें चलानेका प्रयत्न कम और अधिक सफलतासे करते हैं। पर अधिकतर मेल या मुसाफ़िर गाड़ियोंके देर कर देनेसे माल-गाड़ियाँ अपने निर्धारित समयोंसे कहीं न कहीं विचल ही जाती हैं और तब बची हुई यात्रा बिना निर्धारित समयों पर ही करनी पड़ती है। कभी एक स्टेशन पर कई-कई घन्टे पड़े रहना पड़ता है तब आगे बढ़ने को मिलता है।

२८—रेलगाड़ियों का ठीक समय पर चलना न केवल जनताके लिये बल्कि रेलवेके लिये भी अत्यन्त महत्वका है। जितने अधिक महत्वकी कोई रेलगाड़ी होती है उतना हो बड़ा उसके निर्धारित समयसे हट कर चलनेका परिणाम होता है। एक महत्वकी गाड़ीके देरसे चलनेके कारण दूसरी गाड़ियोंको पार करने तथा आगे निकलनेका प्रबन्ध गड़बड़ हो जाता है और बाकी गाड़ियां भी समयसे नहीं चल पातीं। इसका फल यह होता है कि करीब-करीब पूरे विभागकी गाड़ियोंका क्रम बिगड़ जाता है। कोयला नष्ट होता है, इंजन तथा गाड़ियां बेकार रुकी पड़ी रहती हैं, तथा रेल कर्मचारियोंको आवश्यकतासे अधिक कार्य पर रहना पड़ता है। इसलिये प्रत्येक रेलवे प्रयत्न करती है कि गाड़ियां समयसे चलें। इस कार्यकी सफलताके लिये कई उपाय काममें लाये जाते हैं। सब कल पुर्ज़े जो रेलगाड़ीके चलानेमें काममें लाये जाते हैं, हर समय तैयार और ठीक रखे जाते हैं। यदि कहीं गाड़ियों को देर होती है तो जो कर्मचारी इसके लिये उत्तरदायी होते हैं उनको आवश्यक दण्ड दिया जाता है।

समय-समय पर अलग-अलग विभागोंके आंकड़े दिये जाते हैं जिससे पता चलता है कि किस डिस्ट्रिक्ट अथवा विभागमें कितनी फ़ीसदी रेलें ठीक समयपर चल रही हैं। इसका ध्येय अलग-अलग विभागोंके कर्मचारियोंका उत्साह बढ़ाना है जिससे एक विभाग वाले दूसरे विभाग वालोंसे अधिक अच्छा काम दिखाने की चेष्टा करें। प्रायः ८० से ८५ फ़ी सदी रेलगाड़ियां ठीक समय पर चलती हैं।

केश वर्द्धक (हेयर-टॉनिक)

ग्लिसरिन और कैनथराइडिज़ टॉनिक

लिकर अमोनिया	२ औंस
टिंकचर कैनथराइडिज़ (नीचे देखो)	३½ औंस
गुलाब जल	८ क्वार्ट
ग्लिसरिन	१०½ औंस
इत्र गुलाब	½ औंस

टिंकचर कैनथराइडिज़ बनानेके लिए १½ औंस फफोलेवाले फतिंगोंको एक क्वार्ट ऐलकोहलमें घोलना चाहिए। यह वज़न सूखे फतिंगोंका है। फफोलेवाले फतिंगे बरसातमें बहुत उठते हैं। जहाँ वे काट लेते हैं वहाँ फफोला पड़ जाता कैनथराइडिज़ है। असलमें स्पेनके फफोलेवाले कीड़ोंसे बनता है। इनका लैटिन नाम है लायेटा वेसिकेटोरिया परन्तु डाक्टरों कीसम्मति है कि इनके बदले देशी फतिंगोंका प्रयोग किया जा सकता है। टिंकचर कैनथराइडिज़ दवाखानोंमें मिलता है।

उपर्युक्त नुसखेमें जो अमोनिया पड़ा है उससे सिर साफ़ होता है, ग्लिसरिनसे बाल मुलायम हो जाते हैं।

-- उपयोगी नुसखे, तरकीबें और हुनरसे

मिट्टीके तेलकास्टोव

(भगवतीप्रसाद श्रीवास्तव, किशोरी रमन कालेज, मथुरा)

शीघ्र तेज़ आंच पैदा करनेके लिये मिट्टीके तेलका स्टोव बड़े कामकी चीज़ है। सात-आठ मिनटके अन्दर स्टोव को प्रज्वलित करके सेर डेढ़ सेर पानी आसानीके साथ खौला लिया जा सकता है। यात्रामें या बीमारोंके घरमें तो यह एक आवश्यक चीज़ समझी जाती है। जब आवश्यकता हुई बातकी बातमें दूध गर्म कर लिया, चाय बना ली या हलवा तैयार कर लिया। होस्टलमें इसके प्रयोगसे विद्यार्थियोंका भी समय नष्ट होनेसे बचता है।

किन्तु इस अत्यन्त उपयोगी चूल्हेकी कार्य्यप्रणालीसे बहुत कम लोग ही परिचित हैं, फलस्वरूप स्टोवमें तनिक सी भी खराबी आने पर लोग उसे कोनेमें डाल देते हैं कि छुट्टीके दिन फ़ुर्सत मिलने पर उसे मिस्त्रीके पास मरम्मत के लिये ले जायँगे। इसकी कार्य्य प्रणाली से अनभिज्ञ होनेके कारण ही प्रायः स्टोव सम्बन्धी दुर्घटनाएँ भी हो जाती है -- यहां तक कि इस प्रकारकी दुर्घटनाओंकी खबरोंसे ऊब कर एक बार महात्मा गांधी ने नवजीवन पत्रमें लिखा था कि हमारे नई रोशनीके नवयुवक अपने घरकी स्त्रियोंको क्यों स्टोव सरीखी आपद्जनक चीज़ें इस्तेमाल करनेके लिये दे देते है!

कहनेकी आवश्यकता नहीं कि महात्मा गांधीकी उप-र्युक्त दलीलमें तथ्यका अंश बहुत कम है। असावधानी और अज्ञानताके कारण तो दुर्घटनाएँ साधारण चीज़ोंके प्रयोगमें भी हो सकती हैं। आवश्यकता इस बातकी है कि दुर्घटनाओंसे बचनेके लिये हम अपने इस्तेमालमें आने वाली प्रत्येक वस्तु की कार्य्य प्रणालीके बारेमें पूरी जानकारी हासिल करें। यह लेख इसी उद्देश्यको सामने रख कर लिखा गया है।

आइए अब हम स्टोवके कल पुर्जोंका निरीक्षण करें। मिट्टीके तेलकी गर्म वाष्प वायुके संग मिलकर एक ऐसा मिश्रण बनाती है जो आगकी लौके स्पर्शसे बिना धुएँके तेज आंचके साथ जलता है। स्टोवके निर्माणमें इसी सिद्धान्तकी सहायता ली गयी है। स्टोवके अन्दर मिट्टीके तेलकी पतली धार ऊपर फेंकनेके लिये तेलकी टंकीमें पम्प के जरिये हवा कस कर भरते हैं। इसी हवाके जोरसे तेल ऊपर को चढ़ता है। ऊपर पहुँचनेके पहले वह गर्म बर्नर में से होकर गुजरता है। बर्नरसे गुजरते समय यह तप्त होकर वाष्प रूपमें परिणत हो जाता है। यह वाष्प बर्नरसे बाहर निकलते ही हवा से मिलती है। दियासलाईकी लौ दिखलाते ही यह तेज़ आंचके साथ जलने लगती है। चित्रमें स्टोवके भिन्न भिन्न भाग दिखलाए गये हैं। पीतल की मजबूत टंकीमें ही हवा भरने वाला पम्प फ़िट किया हुआ रहता है। इस पम्पके भीतरी सिरे पर एक वाल्व इस ढंगका लगा होता है जो बाहरकी हवाको भीतर जाने देता है किन्तु भीतरकी हवा या तेलको बाहर नहीं आने देता। साधारणतया इस पम्पका सिरा तेलमें डूबा हुआ होता है। टंकीमें तेल भरनेके लिये एक बोतलके मुँहके समान चौड़ा सूराख रहता है। इस सूराख की दीवालें ज़रा उठी होती हैं। इन्हीं दीवालोंमें चूड़ियां पड़ी होती हैं जिनमें ऊपरसे ढक्कन कस कर बन्द किया जा सकता है। तेल भरनेके बाद उस ढक्कनको कस कर बन्द कर देते हैं। इस सूराखकी दीवालमें एक पतला सा छेद होता है जिसमें एक स्क्रूनुमा पेंच कसा जा सकता है। स्टोवको बुझानेके लिये टंकीके अन्दर की हवाको बाहर निकालना आवश्यक
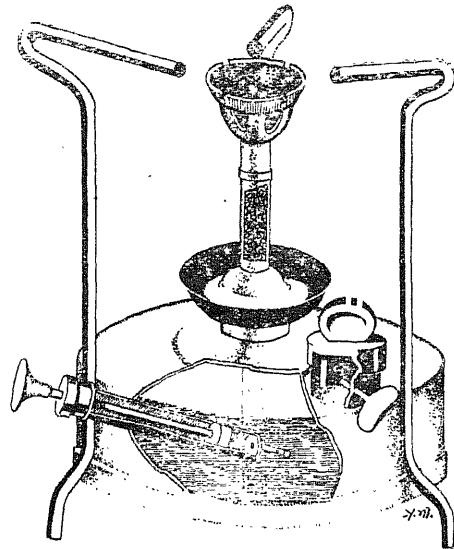
चित्र १—स्टोव की भीतरी बनावट।

होता है— उस समय उसी स्क्रूको उलटा घुमाते हैं— स्क्रूके ढीला पड़ते ही हवा टंकीके अन्दरसे बाहर निकल भागती है। फलस्वरूप तेल का ऊपर चढ़ना भी बन्द हो जाता है, और स्टोवकी लौ बुझ जाती है।

टंकीके ठीक बीचो बीच एक गोल चूड़ीदार सूराख होता है, उसी सूराखमें बर्नरका पेंदा एक लोहेके वाशरके जरिये कसकर बिठाया जाता है। बर्नरका मध्य भाग खोखला होता है किन्तु इसकी दीवालें काफी मोटी और मजबूत होती हैं। बर्नरके ऊपर का सूराख अत्यन्त बारीक होता है। बर्नरके अन्दर तांबेके बारीक तारोंका झुरमुट फुलफुले तौर पर भरा होता है ताकि मिट्टीके तेल की कीट तथा गन्दगी बर्नरके ऊपरी भागमें पहुँचकर उसके सूराख को बन्द न कर दे।

बर्नरके सूराखके थोडा ऊपर चित्रानुसार रोक पर लोहेका एक गोल चिपटा टुकड़ा रखा रहता है। स्टोवके जलते रहनेके लिये उस टुकड़ेका वहां मौजूद रहना नितांत
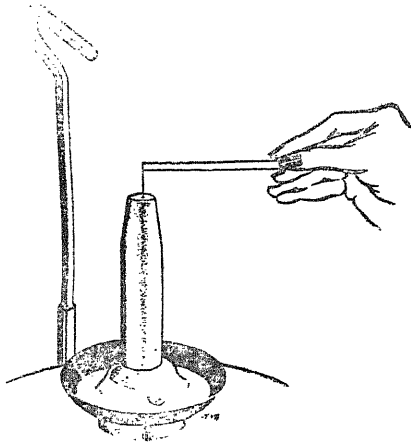
चित्र २— पिन से छेद साफ कर लेना चाहिए।

आवश्यक है। एक बार गर्म हो जाने पर लोहेका यह टुकड़ा बर्नरसे निकलती हुई तेल बाष्पको तुरन्त गर्म करके उनका तापक्रम इतना ऊँचा कर देता है कि वह जल उठती है। बर्फके ठंडे पानीकी दो चार बूँदे यदि किसी जलते हुये स्टोवके इस लोहे पर डाल दीजिये तो आप देखेंगे कि स्टोवकी आँच एकदम बुझ जाती है और बीचसे निकलनेवाली तेल बाष्प धुँआ देने लगती है—थोड़ी देरमें भीतरसे कच्चा तेल निकलने लगता है।

स्टोव जलानेसे पहले बर्नर तथा इस लोहेके टुकड़ेको गर्म करना होता है। इसके लिये स्पिरिटका प्रयोग करते हैं। बर्नर पर एक छल्लेनुमा बर्तन (कटोरी) पहना देते हैं। इस कटोरीमें ही स्पिरिट भर कर उसमें आँच लगाते हैं। हवाके झोंकेसे स्पिरिटकी लौ इधर-उधर बहक न जाय, इस उद्देश्यसे बर्नरको टिनके एक तिकोने पर्देसे चारों ओर से ढक देते हैं। अतः स्पिरिटकी लौ सीधी ऊपरको उठकर बर्नर तथा लोहेके टुकड़ेको गर्म करती है।

स्टोवको जलायें कैसे?— स्टोव जलानेके पहले निम्नलिखित बातोंका इतमीनान कर लीजिये।

(क) स्टोवकी टङ्कीमें दो तिहाईसे अधिक मिट्टीकी सफ़ेद तेल मौजूद है।

(ख) स्टोवके बर्नरमें लगी हुई कटोरीके चारों ओर टिनका तिकोना पर्दा लगा हुआ है।

(ग) जिस सूराखसे मिट्टीका तेल भरा गया है, उसका ढक्कन कस कर बन्द है तथा उसमें लगी हुई ऐंठनेवाली पेंचे कसी नहीं है बल्कि ढीली है।

(घ) स्टोवके ऊपर कोई चीज़, दूध या पानी भरी पतीली रखी नहीं है।

(ङ) बर्नरका सूराख किसी गन्दगी (तेलकी कीट या उफने हुये दूधकी मलाई आदि) से भठ तो नहीं गया है। और यदि भठ गया है तो उसे स्टोव-पिनसे साफ़ कर लो।

(च) आपकी दियासलाईकी डिबियामें सलाइयाँ कई एक मौजूद हैं।

(छ) स्पिरिट बोतलमें स्पिरिट काफ़ी मात्रामें है।

(ज) टङ्कीके पम्पका वाशर दुरुस्त है, ढीला नहीं।

(झ) बर्नरके ऊपर लोहेका टुकड़ा मौजूद है।

अब हम स्टोव जलानेकी क्रिया पर आते हैं—

उपर्युक्त बातोंका ध्यान रखते हुए अब स्पिरिटको बर्नर की कटोरीमें किसी छोटी शीशीसे या स्पिरिट उँडेलनेवाली टेढ़े मुँहके स्पिरिट कैनसे स्पिरिट सावधानीके साथ उँडेलिये। बोतलसे सीधे उँडेलनेमें सदैव इस बातकी सम्भावना रहती है कि स्पिरिट कटोरीसे बाहर निकल कर स्टोवके चारों ओर फैल न जाय। इस दशामें दियासलाईकी जलती हुई बत्ती

दिखाने पर अचानक चारों ओर लपट पकड़ लेती है और इस बातकी आशंका उत्पन्न हो सकती है कि आपका हाथ जल जाय या आपके कपड़ोंमें आग लग जाय। स्पिरिट जिस वक्त कटोरीमें जल रही हो आप स्टोवके पाससे उठकर अन्यत्र न जाइये वरना बर्नर गर्म होकर स्पिरिट बुझ जाने पर फिर ठंडा हो जायगा और आपको दुबारा स्पिरिट व्यर्थ में जलानी पड़ेगी। स्पिरिटमें लौ लगानेके एक या डेढ़ मिनटके उपरान्त आप देखेंगे कि कटोरीकी स्पिरिट खौलने लगती है। अब आप टङ्कीकी टोंटी (चित्र नं० १) को फौरन बन्द करिये और धीरे-धीरे दो-तीन बार पम्पकी डण्डी को आगे-पीछे चलाइये। तुरन्त आवाज़के साथ स्टोव जलने लग जायगा। लगभग दो मिनट और प्रतीक्षा करनेके बाद पम्पको जोरोंके साथ कई बार चलाइये यहाँ तक कि स्टोव ख़ूब जोर-शोरसे जलने लगे। कभी-कभी ऐसा होता है कि जिस समय आप पहले दो चार हाथ पम्पके लगाते हैं— गर्म गैस के बर्नरसे निकलते-निकलते प्यालीकी सारी स्पिरिट जल कर खत्म हो जाती है। ऐसे मौके पर आपको बहुत ही फुर्तीके साथ काम लेना है। फौरन ही दियासलाईकी बत्ती जलाकर उसकी लौ बर्नरके ऊपर लोहेके टुकड़ेके नीचे ले आइये। तब गैस आग पकड़ लेगी और स्टोव जलने लग जायगा। इस मौक़े पर दो चार क्षणकी भी देर हुई कि बर्नर ठंडा हो जाता है और उसमेंसे होकर निकलनेवाली गैस भी ठंडी होकर पुनः मिट्टीके तेलके रूपमें परिणत हो जाती है और ऊपर आने पर लौ दिखाने पर यह निरे मिट्टीके तेलकी लाल रंगकी लपटोंमें धुँआ देकर जलेगी, आँच उससे प्राप्त न हो सकेगी।

ठीक तौर पर स्टोवके जल जानेके उपरान्त ही स्टोवके ऊपर देगची या कड़ाही जिसमें चीजें गरम करनी हों, रखिये।

स्टोवके जलानेके लिये कभी-कभी स्पिरिट न रहने पर आप मिट्टीके तेलका भी प्रयोग कर सकते हैं, किन्तु यह तरीका मजबूरीकी दशामें ही इस्तेमाल कीजिये क्योंकि मिट्टीके तेलकी कालिखसे बर्नरका सूराख जल्दी ही भठ जाता है। कपड़ेके फटे टुकड़ेको मिट्टीके तेलमें तर करके उसे प्याली पर रखिये और बर्नरके चारों ओर उसे लपेट दीजिये और तब उसमें दियासलाईकी लौ लगा दीजिये। कपड़ा जब करीब-करीब समूचा ही जल जाय, तब पम्प करना आरम्भ कीजिये।

चित्र ३—जलते हुये स्टोव को एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाना अनुचित है।

स्टोवको बुझाएँ कैसे ?—स्टोवका बुझाना अपेक्षाकृत आसान है। जिस वक्त स्टोव को बुझाना हो, टंकीमें लगी हुई टोंटीको उलटी ओर घुमा कर ढीली कर दीजिये। टंकीमें भरी हुई हवा आवाज़ करती हुई इस टोंटीके रास्ते बाहर निकल जायगी। अतः तेलका बर्नर मेंसे होकर ऊपर चढ़ना रुक जायगा।

स्टोवको धीमी करनेके लिये भी इसी टोंटीकी सहायता लेते हैं। टोंटीको सावधानीके साथ जरा सी ढीली कीजिये—हवाके बाहर निकलते ही तेलके ऊपर चढ़नेका वेग कम हो जायगा। फलस्वरूप स्टोवकी आँच मन्द पड़ने लग जायगी। ज्योंही आपने देखा कि जितनी धीमी आंच बनाना चाहते थे, उतनी धीमी वह हो गयी, पुनः इस टोंटीको दाहिनी ओर घुमाकर कस दीजिये। उतनी ही आंच पर स्टोव देर तक जलता रहेगा। इसके प्रतिकूल यदि आप आंचकी तेजी बढ़ाना चाहते हैं तो टोंटीको कसी रहने दीजिये और पम्पको दो चार हाथ और चलाइए। ऐसा करनेसे टंकीके भीतर और अधिक हवा प्रवेश कर जायगी, इस कारण बर्नरमें तेल और भी वेगसे चढ़ने लग जायगा, और आँचकी तेज़ी भी बढ़ जायगी। जितनी

तेज़ आप चाहते हैं, उतनी तेज आँच हो जाने पर पम्प का चलाना बन्द कर दीजिये।

स्टोवमें खराबियाँ और उनका निराकरण—स्टोव इस्तेमाल करते समय आपके रास्तेमें अनेक कठिनाइयाँ आ सकती हैं। हम उनका जिक्र एक-एक करके करेंगे।

१—स्टोवकी आंच नीले वर्णकी पारदर्शक न होकर लाल रंगकी है और उसमें से धुँआ भी निकल रहा है। इस खराबीके कई कारण हो सकते हैं—या तो आपके स्टोवके बर्नरके अन्दर तारकी जाली नहीं है, और इस कारण तेल अपनी कीट और गन्दगीके संग ऊपर चढ़ रहा है और उसकी गन्दगी जलते समय धुँआ और लाल रंगकी लौ दे रही है; या बर्नरका सूराख़, उसे साफ करनेमें असावधानी बरतनेके कारण, अधिक चौड़ा हो गया है जिससे बर्नरसे तेलकी इतनी मोटी धार निकल रही है कि वह सबको सब बर्नरमें से गुजरते वक्त गैसमें परिणत नहीं हो पाती; अतएव कच्चा तेल धुएँ और लाल रंगके साथ जल
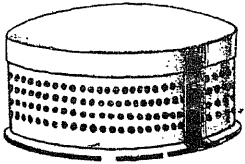
चित्र ४ – सायलेंसर। स्टोव के ऊपर इसको फिट कर देने से स्टोव का शब्द (फरफराना) बहुत-कुछ मन्द पड़ जाता है।

रहा है; या सम्भवतः आपने जिस वक्त बर्नरकी कटोरीमें स्पिरिट डाल कर बर्नरको गर्म किया, बर्नर पूर्णतया गर्म नहीं हो पाया, कदाचित इसलिये कि आपने बहुत कम स्पिरिट कटोरीमें उँडेली या इस लिये कि टिनकी चद्दरके ठीक न लग पानेसे इधर-उधरसे हवाके झोकों ने स्पिरिट की लपटोंको बर्नरसे अलग बहका दिया।

इन कारणोंको दूर करनेका फौरन प्रयत्न कीजिए वरना स्टोव पर रक्खी हुई चीजमें मिट्टीके तेलकी बास आयेगी और यह खाने योग्य न रहेगी। स्टोवको तो आप आँचमें खराबी देखते ही बुझा दीजिये। बर्नरको खोल कर उसमें देखिये कि तारकी जाली है या नहीं। यदि नहीं है तो पतले तारकी जाली लेकर उसके अन्दर डाल दीजिये। और स्टोवको पुनः उपर्युक्त रीतिसे जलाइये। यदि बर्नर का सूराख बड़ा हो गया है तो उस बर्नरके प्रति अपना मोह सदैवके लिये त्याग दीजिये और बाजारसे अपने स्टोव के साइज़ का दूसरा नया बर्नर मँगाइये। मेरे अनेक मित्रों ने ऐसे बर्नरको जिसका सूराख़ चौड़ा हो गया था, दुरुस्त करनेका निष्फल प्रयत्न किया है। बर्नरके सूराखको टाँके से बन्द करके नया सूराख उचित साइज़का बनाया जा सकता है। किन्तु टाँकेमें इस्तेमाल होनेवाली धातुओं का द्रवणाङ्क (पिघलनेका टेम्परेचर) इतना कम होता है कि स्टोवकी तेज़ आंचमें वे शीघ्र ही पिघल जाते हैं, और बर्नरका सूराख फिर पहले इतना चौड़ा हो जाता है। यदि आप देखते हैं कि आपके स्टोव के बर्नरमें कोई दोष नहीं तो निस्सन्देह आँचकी खराबी बर्नरके ठीक रूपसे न गर्म होनेके कारण उत्पन्न हुई थी। इस बार बर्नरकी प्याली में स्पिरिट काफ़ी मात्रामें डालिये और स्पिरिटकी लौ को हवाके झोंकोंसे बचाइये। बर्नरके ठीक तौर पर गर्म हो जाने पर स्टोव की आंच बिना रंग और धुँएकी निकलेगी।

२—स्टोवमें दूसरी खराबी यह हो सकती है कि थोड़ी देर तक बिल्कुल सही ढंग पर जलनेके बाद इसकी आंच ग़ायब हो जाती है किन्तु गैस सूँ सूँ करके निकलती रहती है। कुछ देर बाद गैसका निकलना भी बन्द हो जाता है। इस दोषका कारण केवल एक ही बात हो सकती है कि आपके स्टोवकी टंकीमें तेल या तो बिल्कुल ही नहीं रहा या बहुत कम, दो चार बूँद पेंदे में। टंकीके सूराखका ढक्कन खोलकर उसमें तेल भरिये और स्टोवको पुनः जलाइये।

३—प्रायः ऐसा भी होता है कि स्टोव जलानेके बाद आँच धीमी पड़ने लगती है। पम्पके दो चार हाथ मारने पर फिर आँच बढ़ जाती है किन्तु पम्प करना जहाँ आपने रोका, आँच फिर धीमी होने लगती है। स्पष्ट है कि आपके स्टोवमें टङ्कीके अन्दरसे हवाकी सांस किसी रास्तेसे निकल रही है। टङ्कीके अन्दरसे हवा निकलनेके चार ही रास्ते हो सकते है—या तो टङ्कीके केन्द्रीय सूराख़ पर बर्नर एयर-

टाइट नहीं बैठा है जिसका कारण यह हो सकता है कि बर्नरके नीचे लगा हुआ वाशर जो सीसेका बना होता है, बेकार हो गया है, या तेल डालनेवाले सूराख़का ढक्कन ढीला बैठा है या इसका भी वाशर खराब हो गया है ; या कि इस ढक्कन वाले सूराख़में लगे हुए टोंटीकी पेंच ढीली पड़ गयी है और अन्तमें यह भी हो सकता है कि टङ्कीमें ही किसी स्थान पर टङ्कीकी दीवालमें नन्हा सा सूराख़ हो गया है जिस रास्तेसे हवा निकल जाती है।

सावधानीके साथ उनमेंसे प्रत्येक बातका एक-एक करके निरीक्षण कीजिये और पता लगाइये कि हवा कहाँसे निकल रही है। वाशरकी खराबी है तो उसे बदल कर उसके स्थान पर नया वाशर लगाइये और अगर टोंटीकी पेंच ढीली पड़ गयी है तो उसको जगह नयी पेंच लगाइये या यदि टङ्कीमें सूराख़ हो गया है तो टाँका लगवा कर इस सूराख़को बन्द करिये। टाँका कैसा भी आप लगा सकते हैं क्योंकि टङ्की पर स्टोवकी आँचका कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ता, अतः टाँका पिघलनेका डर नहीं है।

इस बातका इतमीनान करनेके लिये कि आपके स्टोव की टङ्कीमें से हवाकी सांस निकल रही है या नहीं आप टङ्कीमें तेल भर कर टोंटी, ढक्कन और बर्नरको अच्छी तरह बन्द करके (इसके लिये आप प्लायर्स या रिन्च इस्तेमाल कर सकते हैं) पम्पके जरिये टङ्कीमें हवा भरिये। पर्याप्त मात्रामें टङ्कीके अन्दर हवा पहुँचने पर फौआरेकी तरह तेलकी पतली धार बर्नरमें से ऊपरको निकलेगी। इस फौआरेकी धारकी ऊँचाई देर तक यदि एक सी ही बनी रहती है तो आपको इतमीनान हो जाना चाहिये कि आपके स्टोवकी टङ्कीमें से हवाकी सांस बाहर नहीं निकल रही है।*

४ - कभी-कभी दूध या अन्य द्रव पदार्थ जब जलते हुये स्टोव पर उबलता होता है, तो उफन कर इस द्रवका कुछ भाग स्टोवके बर्नर और उसके ऊपर लगे हुये लोहेके टुकड़े पर गिर जाता है। इस दशामें बर्नर और लोहेके टुकड़ेके अचानक ठण्डा हो जानेसे स्टोवकी आंच बुझ जाती है, किन्तु सी-सी करती हुई गर्म गैस जोरोंके साथ बाहर निकलती ही रहती है यदि आप स्टोवके समीप

चित्र ५—बटलोई चढ़े स्टोव को पंप करना भी अच्छा नहीं है। बटलोई उलट जा सकती है जिससे हाँथ-पैर जल जायगा।

मौजूद हैं तो तुरन्त दियासलाईको लौ बर्नरके सूराख़के पास ले आइये, स्टोव पुनः पूर्ववत जलने लगेगा। किन्तु यदि ऐसा होनेके आध मिनट बाद आप स्टोवके पास पहुँचते हैं, तो आपके लिये केवल एक ही चारा बाकी रह जाता है। टोंटीकी पेंच उलटा घुमाकर टङ्कीकी हवा फौरन बाहर निकाल कर स्टोवको पूर्णतया शान्त कर दीजिए—क्योंकि इतनी देर बाद यदि आप दियासलाईकी लौ बर्नरके ऊपर ले जायँगे तो आपको ठण्डे हो चुके बर्नरमें से निकलता हुआ कच्चा तेल ही मिलेगा जो लाल लौ के साथ धुँआ देकर जलेगा और स्टोव पर रखे हुए द्रवको चौपट कर देगा।

५ - जलते हुये स्टोवमें एक और खराबी प्रायः देखने में आती है जिसकी लोग अधिक परवा नहीं करते। स्टोव की आंच बर्नरके बाहर लोहेके टुकड़ेके चारों ओर समान रूपसे नहीं निकलती। किसी ओर तो लौ जरा सी या बिलकुल ही नहीं निकलती और किसी ओर लौ खूब ऊँची रहती है। इसके पीछे केवल एक ही कारण होता है कि बर्नरका सूराख़ आंशिक रूपसे भठा हुआ है; जिस ओर सूराख़में कीट जमा रहती है, उधर लौ ऊँची नहीं उठ

* या तेलकी धारको अँगूठेसे बन्द करके स्टोवको पानीके हौज़में डुबाकर देखिये कि हवा कहाँसे निकल रही है—सम्पादक।

पाती। इस खराबीको दूर करनेके लिये स्टोव बुझानेकी आवश्यकता नहीं। पतले तार वाली पिन उठाइए और सावधानीके साथ इसे बर्नरके ऊपर इस प्रकार रखिये कि पिन बर्नरके सूराख़ को छूद ले। दो तीन बार पिनको सूराख़ में आप ऊपर नीचे चलाइये और उसे निकाल लीजिए। बहुत सम्भव है ऐसा करते समय आपका स्टोव बुझ जाय; फौरन ही दियासलाईकी बत्ती जलाकर उसे बर्नरके सूराख़ पर ले आइए, स्टोव पूर्ववत जलने लग जायगा।

सायलेन्सरका प्रयोग—साधारण स्टोवमें उसके जलते समय अत्यधिक शोर होता है। इसी कारण बर्नरके ऊपर रखे हुए लोहेके टुकड़ेको 'रोरर' कहते हैं। ऐसे स्टोव को कमरेमें यदि जलाया जाय तो उस कमरेमें बात-चीत करना असम्भव हो जाता है। इस परीशानीसे बचनेके लिए 'सायलेन्सर' का प्रयोग करते हैं। सायलेन्सर उलटी टोपीनुमा पीतलका बना होता है। इसकी गोल दीवालमें नन्हें-नन्हें सूराख बने रहते हैं। दीवालके ऊपर पीतलका ढक्कन रहता है। बर्नरके ऊपरसे लोहेके टुकड़ेको हटा देते हैं और उसकी जगह सायलेन्सर रख देते हैं। अब स्टोव को साधारण रीतिसे जलाने पर बर्नरके अन्दरसे निकलने वाली गैस सायलेन्सर की दीवालके सूराखोंमें से होकर निकलती है और यद्यपि इसकी आँच में तेज़ी ख़ूब रहती है किन्तु जलते वक्त अब शोर नहीं होता। सायलेन्सर लगे हुए स्टोवके जलानेमें अपेक्षाकृत अधिक सावधानी बरतने की आवश्यकता होती है। बर्नरकी कटोरीमें स्पिरिटके जल चुकनेके आखीर क्षणोंमें जब आप पम्प चलाते हैं, तो स्टोव को जरा भी हिलने मत दीजिये। अन्यथा सायलेन्सरसे गैस ऊपर निकल कर आग पकड़ेगी और तब न आँच तेज़ होगी और न सायलेन्सर स्टोवके शोरको ही बन्द कर सकेगा। इसके प्रतिकूल जब सायलेन्सरके भीतरकी गैस आग पकड़ती है, तब आँच भी तेज़ होती है और छोटी-छोटी सैकड़ों नीली लौ के साथ गैस भी तेज़ आँचसे जलती है।

दुर्घटनाएँ स्टोवके इस्तेमालमें अज्ञानके कारण या असावधानी होनेसे तरह-तरहकी दुर्घटनाएँ हो सकती हैं।

बर्नरकी कटोरीमें बोतलसे स्पिरिट उडेलते समय यदि बोतलको हटानेके पहले ही आप दियासलाईकी लौ स्पिरिट से छुला दें, तो बोतलकी स्पिरिट आग पकड़ लेती है और स्पिरिटके अचानक जल उठनेसे आपका शरीर भी बुरी तरह जल सकता है। इस प्रकारकी दुर्घटनाओंसे अक्सर मृत्यु भी हो गयी है। यदि स्टोव ठीक नहीं जल रहा है या यदि उसकी लौ लाल रंगकी है, तो स्टोवको बुझाये बिना बर्नरकी कटोरीमें स्पिरिट फिर मत डालिये नहीं तो स्पिरिट की शीशीमें आग लग जायगी।

साड़ी पहने हुये महिलाओंको या शाल ओढ़े हुए व्यक्तियोंको स्टोव जलानेमें और भी अधिक सतर्क रहना चाहिये। यदि आँच तेज़ करनी है तो स्टोव परसे दूधकी पतीली या कड़ाही नीचे उतार कर ही पम्प कीजिये अन्यथा स्टोवके जरासे हिलने पर ऊपरका खौलता हुआ द्रव आपके हाथों पर गिर पड़ेगा और उन्हें बुरी तरह जला सकता है। जलते हुये स्टोवको उठाकर एक स्थानसे दूसरे स्थान पर ले जाना भी निरापद नहीं है क्योंकि बर्नरके ऊपर रखा हुआ तप्त लोहेका टुकड़ा आपके हाथों पर या पैरों पर गिर सकता है।

एक बात और है, स्टोवकी आँच तेज करनेके प्रयास में पम्पको अन्धाधुन्ध मत चलाइये, क्योंकि स्टोवकी टङ्कीमें हवाकी एक परिमित मात्रा ही आ सकती है। टङ्कीमें हदसे ज्यादा हवा भरने पर टङ्की फट जाती है और पासमें बैठे हुए लोगोंको भयानक चोट आ सकती है।

टेपिओका और शकरकन्द

टेपिओका एक भारी जड़ होती है। त्रावनकोरमें वर्माके चावल आना बन्द हो जानेके कारण पेपिओका का व्यवहार बहुत बढ़ा दिया गया है और इस प्रकार लोगोंको भूखों मरनेसे रक्षा करनेमें सहायता मिली है। टेपिओकाकी उपज अच्छी होती है और मांडके समान यह लाभप्रद होता है। शकरकन्दकी उपज भी अच्छी होती है और टेपिओकाकी अपेक्षा वह अधिक पोषक होता है। जहां तक खाद्यसे शक्ति प्राप्त करनेका सम्बन्ध है अनाजके स्थान पर टेपिओका और शकरकन्द दोनोंका ही प्रयोग किया जा सकता है।

— भारतीय समाचार

विज्ञान-परिषद् प्रयागके तीसवें वर्ष (१९४२-४३) का कार्य-विवरण

विज्ञान परिषद् प्रयागका तीसवां वर्ष गत वर्षोंकी भांति सुचारु रूपसे समाप्त हुआ। आयके विचारसे यह वर्ष बहुत ही संतोषजनक रहा। परिषद्‌की छपी हुई पुस्तकें अधिक संख्यामें बिकीं और विज्ञानके ग्राहकोंकी संख्या भी वर्षके आरंभमें जितनी थी उसकी प्रायः दुगुनी हो गयी। नये साधारण और आजीवन सभ्य भी पर्याप्त मात्रामें बढ़े। हमारे उत्साही आजीवन सभ्य श्री वेदमित्रजी इंजीनियर ने आजीवन और साधारण सभ्योंकी संख्या बढ़ानेमें परिषद्‌की बड़ी सहायता की और पं० बेंकटलाल ओझाजी ने परिषद्‌की पुस्तकें और विज्ञानका विज्ञापन हिन्दी और अंग्रेजीके कई पत्रोंमें अपने खर्चसे छपवाकर दूर-दूरके सज्जनोंको परिषद्‌की ओर बहुत आकर्षित किया जिसके लिये परिषद् इन सज्जनोंका अत्यन्त ऋणी है। विज्ञानका खर्च चलानेके लिए हमारे सभापति प्रो० सालगराम भार्गव ने वर्ष भर तक ३०) महीना देनेका जो वचन दिया था उसे इस मंहगीमें भी पूरा करके विज्ञान परिषद्‌का बड़ा उपकार किया है जिसके लिये परिषद् उनका अत्यन्त ऋणी है। स्वामी हरिशरणानन्दजी ने गत वर्षोंकी भांति इस वर्ष भी ३५७॥।-)॥ से परिषद्‌की सहायता की है जिसके लिये हम उनके बहुत आभारी हैं। आशा है कि स्वामीजी भविष्यमें भी ऐसी उदारता करते रहेंगे। सरकारसे हमे अन्य वर्षोंकी भांति इस वर्ष भी 'विज्ञान' के लिये ६००) की सहायता मिली है जिसके लिये हम शिक्षा विभागके अत्यन्त आभारी हैं। सरकारके शिक्षा-प्रसार विभाग ने मधुमक्खी पालनकी ४९ प्रतियां खरीद कर ग्राम पुस्तकालयोंमें भेजीं जिससे विज्ञान-परिषद्‌को आर्थिक सहायता ही नहीं मिली वरन् इसकी चर्चा गांवोंमें भी हो गयी। इसके लिये हम शिक्षा-प्रसार विभागके बहुत कृतज्ञ हैं।

'विज्ञान' के प्रकाशनके सिवा वैज्ञानिक तथा अन्य उपयोगी पुस्तकों का प्रकाशन भी परिषद्‌का मुख्य कार्य है परन्तु काग़ज़की महर्घताके कारण यह काम कुछ कम हुआ। 'घरेलू डाक्टर' जो चार वर्षसे छप रहा था तैयार है और जिल्द बांधनेवालेके यहांसे आते ही सभ्योंकी सेवामें शीघ्र भेजा जायगा। 'त्रिफला' का दूसरा संस्करण प्रायः छप चुका है। पं० रामेशवेदी आयुर्वेदालंकारकी दूसरी पुस्तक 'अंजीर' भी एक महीनेमें निकल जायगी।

'सरल विज्ञान सागर' विज्ञानमें क्रमशः छप रहा है और वर्तमान वर्षमें पूरा हो जायगा। इससे हिन्दी साहित्य का एक बड़ा अभाव सहज ही में पूर्ण हो जायगा।

इस वर्ष निम्नलिखित सज्जन परिषद्‌के पदाधिकारी रहे :—

प्रो० सालगराम भार्गव, इला० विश्वविद्यालय	सभापति
डा० धीरेन्द्र वर्मा, इलाहाबाद विश्वविद्यालय	उपसभापति
प्रो० फूलदेव सहाय वर्मा, हिन्दू विश्वविद्यालय	,,
श्री महावीरप्रसाद श्रीवास्तव, इलाहाबाद	प्रधान मन्त्री
डा० रामशरण दास, इलाहाबाद विश्वविद्यालय	मन्त्री
श्री मनोहर शरण कमठान ,, ,,	कोषाध्यक्ष
डा० श्रीरंजन, इलाहाबाद विश्वविद्यालय स्था०	अन्तरंगी
प्रो० ए० सी० बैनर्जी इलाहाबाद विश्वविद्यालय	,,
डा० सन्तप्रसाद टंडन, इलाहाबाद विश्वविद्यालय	,,
श्री सत्यजीवन वर्मा, हिन्दुस्तानी एकेडेमी	,,
डा० गोरख प्रसाद, इलाहाबाद विश्वविद्यालय	प्रधान सम्पादक
श्री बेंकटलाल ओझा (हैदराबाद)	बाहरी अन्तरंगी
श्री हीरालाल खन्ना, कानपुर	,,
प्रो० एम० एल० शराफ, हिन्दू विश्वविद्यालय	,,
श्री छोटूभाई सुथार (नडियाद)	,,
डा० दौलतसिंह कोठारी, देहली विश्वविद्यालय	,,
डा० सत्यप्रकाश, इलाहाबाद विश्वविद्यालय	आय-व्यय परीक्षक

सितम्बर १९४३ के अंत तक रायबरेली ज़िलेके तिलोई रियासतके राजा बहादुर श्री मान विश्वनाथ शरण सिंहजी परिषद्‌के संरक्षक तथा नीचे लिखे सज्जन आजीवन सभ्य हुये :—

१—श्री वेदमित्रजी इंजीनियर इलाहाबाद
२—प्रो० तोताराम शर्मा डी० ए० वी० कालेज, कानपुर
३—श्री चन्द्रप्रकाश गोविल सिविल इंजीनियर इलाहाबाद
४ श्री आर० वी० लाल सुपरिटेंडेंट क्रेम्स एंड रिफंड्स इ० आई० आर० बनारस

५—श्री पुरुषोत्तमदास स्वामी प्रो० डूंगर कालेज बीकानेर
६—डाक्टर श्री रंजन, इलाहाबाद विश्वविद्यालय
७—डाक्टर सद्‌गोपाल, बैंकरोड, इलाहाबाद।

निम्नांकित सज्जन परिषद्‌के सभ्य हुए :—

१—श्री यादव मोहन इंजीनियर
२—श्री हीरालाल दुबे, मेरठ
३—प्रिन्सिपल गुरुकुल रावल पिंडी
४—श्री श्यामसुन्दर जी गुप्त, कानपुर
५—मन्त्री शारदासदन पुस्तकालय, रायबरेली
६—श्री राधेश्याम कौशल, नवलगढ़
७—श्री महेशचन्द्रजी इंजीनियर, इलाहाबाद
८—श्री बाबूराम सक्सेना, इलाहाबाद
९—डाक्टर अवधेश नारायण सिंह गणित विभागके प्रधान आचार्य लखनऊ विश्वविद्यालय
१०—श्री रामदासजी दौराला शुगर वर्क्स
११—हेड मास्टर लवेट हाई स्कूल, ज्ञानपुर
१२—श्री रामेश्वरप्रसाद गोल्ड ऐंड सिल्वर मर्चैंट, छपरा
१३—श्री—भैरोदान भंसाली मैमनसिंह
१४—श्री ्री सार्वजनिक पुस्तकालय तारानगर बीकानेर
१५—श्री बलवीर सिंहजी पुरकाजी (मुजफ्फर नगर)
१६—श्री जगेश्वर दयाल वैश्य हेडमास्टर स्टेट हाई स्कूल चूरू
१७—श्री वामनराव बलवंत पतके, धार
१८—श्री जी० पी० सहाय लाहौर
१९—श्री के० पी० सेगरिया, नागपुर
२०—श्री रामनारायण कपूर, बाली, हवड़ा
२०—श्री ठा० नरेन्द्रसिंह, मेरठ
२१—श्री प्रिन्सिपल जैनेन्द्र गुरुकुल पंचकूला (अम्बाला)
२२—श्री सुदामालाल अग्रवाल, रायपुर
२३—श्री पुस्तकाध्यक्ष माखरिया पुस्तकालय बगड़ जयपुर
२४—श्री निरंजनलाल हरिशंकर महाबीरगंज अलीगढ़
२५—श्री रामनायण लाल गोयंदका टुंदलोप पो० नवलगढ़ जयपुर
२६—श्री रामशंकर पांडे प्रतापगढ़ (अवध)
२७—श्री रामनारायण जोशी साहित्यरत्न, चूरू, बीकानेर।

हमें खेद है कि हमारे उत्साही नवयुवक सभ्य श्री ब्रजमोहनशरणका देहान्त कानपुर रेलवे स्टेशन पर आकस्मिक घटनासे हो गया।

अक्टूबर १९४२ से सितम्बर १९४३ तक के आय व्ययका लेखा यह है :—

आय

संरक्षक से	२००)
आजीवन सभ्योंसे	४५१।)
साधारण सभ्योंसे	५७१।।।=)
विज्ञानके ग्राहकोंसे	५२१।=)
अपनी पुस्तकोंकी बिक्रीसे	१०३७।-)।।
अन्य पुस्तकोंकी बिक्रीसे	२८१)।।
स्वामी हरिशरणानन्दजीसे	३५७।।-)।।
सं० प्रा० की सरकारसे	६००)
प्रो० सालगराम भार्गवसे	२१०)
रद्दी कागज बेचनेसे	१६।।)
गत वर्षकी रोकड़ बाकी	३०३-)।।।
	४५५०।।।-)।।

व्यय

सहायक सम्पादकका वेतन		×
चपरासीका वेतन		×
क्लार्कका वेतन		१५६।-)।
दफ़्तरका किराया		२२)
ब्लाक		४७३-)।।।
तांगा, इक्का, ठेला आदि		२६=)।।
डाक व्यय		२७२।=)।।
साइकिलकी मरम्मत		२।)
स्टेशनरी और पैकिंग आदिके लिये		२४)।।।
कागज़		४००)
रेलभाड़ा आदि		७४।=)।।
सम्पादनके लिये पुस्तकें खरीदीं		२०।)
बिक्रीके लिये पुस्तकें खरीदी		१६१।=)।।
म्यूनिसिपैलिटीको टैक्स मकानका		५≡)
छपाई इलाहाबाद में	५३५=)	६०८।)
स्वा० ह० श० नन्द द्वारा	७३=)	
पेशगी आया हुआ लौटाया		२१-)।।

जिल्दबंदी विक्रीकी पुस्तकोंकी, दफ़्तरकी पुस्तकोंकी	२७४।)॥
इंसीडेंटल चार्ज बैंकको	७॥।)॥
गोदाममें टांड़ लगवाने और पुस्तकों पर कागज लपेटनेका खर्च	११२=)॥।
दफ़्तरकी सामग्री मरम्मत आदि	६॥≡)
रोकड़बाकी	१८५३)।
	४५५०॥।-)॥

विज्ञानके सम्बन्धमें आय-व्ययका ब्यौरा नीचे दिया जाता है :—

आय

ग्राहकोंसे	५२१।=)
सरकारसे	६००)
प्रो० सालगराम भार्गवसे	२१०)
घाटा हुआ जिसे परिषद् ने पूरा किया	२४४॥।)॥
	१५७६=)॥

व्यय

सहायक सम्पादक	×
चपरासी	×
क्लार्कका वेतन	१५६।-)।
दफ़्तरका किराया	२२)
ब्लाक	४७३-)॥
तांगा, इक्का, ठेला आदि	२६)
डाक व्यय	८८॥≡)॥।
कागज	२४६॥)
साइकिलकी मरम्मत	२।)
स्टेशनरी	१०)
सम्पादनके लिए पुस्तकें	२०।)
छपाई	५२८)
	१५७६=)॥

इस प्रकार सहायक सम्पादक और चपरासीके न रखने पर तथा प्रो० सालगराम भार्गवकी २१०) की विशेष सहायता पर भी विज्ञानके सम्बन्धमें २४४॥।)॥ का घाटा रहा।

आगामी वर्षके लिये परिषदके आय-व्ययका अनुमान पत्र निम्नांकित है :—

आय

सरकार से	६००)
विज्ञानके ग्राहकोंसे	९००)
सभ्योंसे	४००)
विज्ञापनसे	२५)
स्वामी हरिशरणानन्दजी से	२००)
भूमिके किरायेसे बकाया १३०) वर्तमान ६०)	१९०)
अपनी पुस्तकोंकी बिक्रीसे	१५००)
अन्यकी पुस्तकोंकी बिक्रीसे	५०)
गत वर्षकी रोकड़ बाकी (संरक्षक और आजीवन सभ्योंका रुपेया छोड़कर)	१२०१॥)।
	५०६६॥)।

व्यय

विज्ञानके लिये

प्रतिमास ५०० प्रतियां छपाने में —

२॥ रीम कागज	३०)
५ फर्मोंकी छपाई	६०)
५ दस्ता सफेद कागज कवर के लिए	३॥)
कवरकी छपाई	६)
रैपरका कागज २॥ दस्ता	१।)
इक्केका किराया	१)
५०० प्रतियोंका डाक व्यय	८)
वी० पी० भेजनेका व्यय	५)
क्लार्क	२५)
चपरासी	१४)
स्टेशनरी	१)
ब्लाक बनवाई	५०)
प्रूफ देखने वालेको	१०)
सम्पादनके लिए पुस्तकें अखबार आदि	१०)
सहायक सम्पादक	३०)
	२५४॥।) या

२५५) × १२ = ३०६०)

अन्य मासिक खर्च: —

स्टेशनरी	१)
डाक व्यय	१५)
तांगा, इक्का, ठेला आदि	२)
साइकिलकी मरम्मत टैक्स आदि	२)
पैकिंगका सामान	२)
रेल भाड़ा आदि	२)
दफ्तर का किराया	५)
	२९) × १२ = ३४८)

वार्षिक खर्च—

म्यूनिसिपैलिटीको कर आदि	१०)
जिल्द बंदी बिक्रीकी पुस्तकोंकी ३००) + दफ़्तरकी २५)	= ३२५)
बैंकको इंसीडेंटल चार्ज	१०)
दफ्तरका सामान आदि	१५०)
बकाया किराया वसूल करनेके लिये मुकदमेका खर्च	५०)
नयी पुस्तकोंके छपानेका खर्च	१११३॥)।
	५०६९॥)।

युद्ध के कारण वर्तमान असाधारण दशामें प्रेसोंकी कठिनाइयाँ इतनी बढ़ गयी हैं कि कई महीनेसे विज्ञान समय पर नहीं प्रकाशित किया जा सका। तो भी 'विज्ञान' कुल एक महीने ही पिछड़ा है।

अब पूरी चेष्टा की जा रही है कि विज्ञान समय पर निकला करे और विश्वास है कि दो ही तीन महीनेमें विज्ञान फिर समयसे निकलने लगेगा। आशा है, समयको देखते हुए, हमारे कृपालु ग्राहक और सभासद बराबर समयसे विज्ञान न निकाल सकनेके लिये हमें क्षमा करेंगे।

कागजकी कठिनाईके कारण पुस्तकें भी इस वर्ष पर्याप्त संख्यामें नहीं निकल सकीं परन्तु आशा है कि वर्तमान वर्षमें यह कमी पूरी कर दी जायगी।

विज्ञानके सम्पादक डाक्टर गोरखप्रसादजीको धन्यवाद है जिनके अथक परिश्रम और कार्यशीलताके कारण विज्ञानके लिये लेखोंकी कमी नहीं रही और जो 'सरल विज्ञान सागर' का सम्पादन करके हिन्दी जनताको विज्ञान के विविध उपयोगी विषयों पर विज्ञानके आकारके लगभग ८०० पृष्ठोंका साहित्य एक वर्षके भीतर सस्तेमें सुलभ कर देंगे।

अंतरंग सभा श्री महाबीर प्रसाद श्रीवास्तव, प्रधान-मंत्रीको धन्यवाद देती है जिन्होंने अपना अधिकांश समय परिषदकी व्यवस्था करनेमें लगाकर परिषदकी स्थितिको बहुत कुछ सुधार दिया है।

महावीर प्रसाद श्रीवास्तव
प्र० प्र० मंत्री
११-१२-४३

डायनेमो

[श्री आर० जी० सक्सेना, एम० एस-सी०]

दो ऐसे भिन्न धातुओं के पत्रों को जिनमेंसे एक पर तेज़ाबका कोई असर न हो तेज़ाबमें डालकर दोनोंको एक तारसे मिला देनेसे व्होल्टाका विद्युत घट बन जाता है। इस घटमें जो रासायनिक क्रिया होती है उसके फलस्वरूप बिजलीकी धारा तारमें से बहने लगती है। अध्याय २ में बता आये हैं कि इन घटोंको पंक्ति रूपमें जोड़कर धारा का भार अथवा व्होल्टेज बढ़ाया जा सकता है और समानान्तर रूपमें जोड़कर धारा की मात्रा बढ़ाई जा सकती है। उपरोक्त वर्णित दो धातु-पत्रोंमें से एक जस्तेका होता है। यह धातु-पत्र और तेज़ाब रासायनिक क्रियासे घुलते रहते हैं। इसलिये इनमें बार-बार नये धातु पत्र और तेज़ाब डालने पड़ते हैं। इस तरह पैदाकी हुई विद्युत शक्ति अधिक लागत की हो जाती है। इसके अतिरिक्त तेज़ाब की वाष्प सब वस्तुओंके लिये विनष्टकारी साबित हुई है। अतएव ख़र्च और कठिनाई दोनों दृष्टिसे बिजली पैदा करने का यह तरीक़ा अनुपयोगी सिद्ध हुआ है। जहां बड़े पैमाने पर बिजलीकी आवश्यकता होती है यह तरीक़ा काममें नहीं लाया जाता। पिछले अध्यायमें चुम्बकसे विद्युत पैदा करनेका ज़िक्र किया गया था अब यहाँ उसका पूर्ण वर्णन करते हैं।

फेराडे ने सर्व प्रथम यह बतलाया था कि यदि कोई चालक चुम्बकीय शक्ति रेखाओंको काटता है तो उसके

दोनों सिरोंमें अवस्था भेद प्रकट हो जाता है। इस नियम को कार्यमें दो प्रकारसे लिया जा सकता है। अ एक
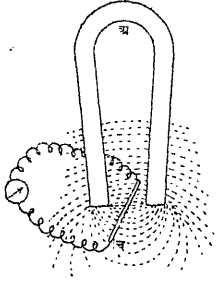
यदि कोई चालक चुम्बकीय शक्ति रेखाओंको काटता है तो उसके दोनों सिरोंमें अवस्था-भेद प्रकट हो जाता है।

अश्वनाल आकृतिका चुम्बक है। च एक चालक है जिसके दोनों सिरे तार द्वारा एक धारा मापकसे जोड़े गये हैं। इस चालक को तेज़ीसे ध्रुवोंके बीच बाहरसे भीतरकी ओर अथवा भीतरसे बाहरकी ओर ले जानेसे चालकमें बिजली का बहना धारामापक बतलाता है। जब चालक बाहरसे भीतरकी ओर जाता है तो धारामापककी सुई एक दिशा में घूमती है और जब चालक भीतरसे बाहरकी ओर आता है तो यंत्रकी सुई दूसरी दिशामें घूमती है। इससे यह स्पष्ट है कि पहिली क्रियासे धारा प्रवाह जिस दिशामें होता है दूसरी क्रियासे उसकी विपरीत दिशामें धारा प्रवाह होता है। इस प्रयोगमें शक्ति रेखाएँ स्थिर रखी गईं और चालक
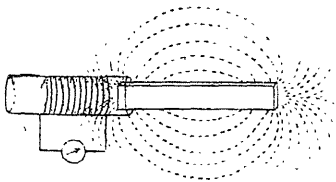
कांचकी नली पर तारके कुछ अंटे लगे हुए हैं।

को चलाया गया। यही प्रयोग दूसरी प्रकार यों भी किया जा सकता है। चित्रमें एक कांचकी नली पर तारके कुछ अंटे लगे हुए हैं, और इसके दोनों सिरे एक धारा मापक से जुड़े हुये हैं। एक चुम्बकके सरियेको, जो नलीके अंदर जा सकता है, तेज़ीसे बाहर से भीतरकी ओर ले जाने अथवा भीतरसे बाहरकी ओर लानेसे भी चालक शक्ति-रेखाओंको काटेगा। तेज़ीसे ले जानेका तात्पर्य यह है कि जितनी अधिक शक्ति-रेखाएँ प्रति सेकंड चालक काटेगा उतना ही अधिक अवस्था-भेद (Potential Difference) उसके सिरोंमें उत्पन्न होगा। यही प्रभाव

तारके अंटे बढ़ाकर भी अधिक मात्रामें प्राप्त किया जा सकता है।

पहिले प्रयोगमें चुम्बकीय शक्तिरेखाएँ स्थिर थीं और चालक चलाया गया था। दूसरे प्रयोगमें चालक स्थिर रखा गया और शक्ति-रेखाएँ चलाई गई थीं। सिद्धान्त रूपसे क्रिया वही हुई, अर्थात् चालक ने शक्ति-रेखाओं को काटा। इसी नियम पर सीधी धारा वाले और बदलने वाली धारा वाले (अर्थात् प्रत्यावर्तक) डायनेमो का आविष्कार हुआ। उपरोक्त वर्णित दोनों प्रयोगोंमें धारा-प्रवाह क्षणिक ही था क्योंकि चालकसे शक्तिरेखाएँ ऐसी स्थितिमें थोड़ी ही देर तक कट सकती थीं। इसी प्रभाव को स्थायी रूपमें देखनेके लिये एक यंत्र इस प्रकार बनाया जा सकता है।

चित्र में क एक अश्वनाल आकृतिका चुम्बक है। प एक पहिया है जिसका घेरा तांबेका बना हुआ है और जिसमें तांबेके ही सरियोंकी तानें लगी हुई हैं। प की धुरी इस प्रकार स्थिर की गई है कि जब वह घुमाया जावे तो पहियेकी तानें शक्तिरेखाओं को लम्बाकार काटें। इस पहियेको चुम्बकके ध्रुवोंके बीचमें अनवरत घुमाये जानेके लिये उसकी धुरीमें एक मुठिया लगा दिया है। तानोंके एक ओरके सिरे धुरीसे जुड़े हुए हैं। उनके दूसरे सिरे घेरे से जुड़े हुये हैं। ब एक पीतलके पतले तारोंका बना हुआ ब्रश तख्ते पर इस तरह जड़ा हुआ है कि घूमती हुई दशा में ब हमेशा प को छूता रहे। एक तार धुरीसे जोड़ दिया गया है और दूसरा तार ब ब्रुशसे। इन तारोंके अन्य
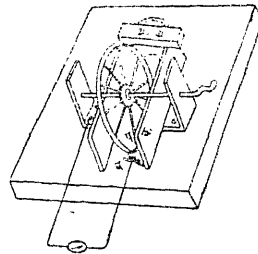
यदि पहिया मुठिया द्वारा लगातार घुमाया जावे तो धारामापककी सुई तारों में से बिजलीका दौड़ना बताती रहेगी।

सिरे एक धारामापकसे जोड़ने पर यदि पहिया मुठिया द्वारा लगातार घुमाया जावे तो धारापामककी सुई जब तक पहिया घूमता रहेगा तारों मेंसे बिजलीका दौड़ना बताती रहेगी। सिद्धांत रूपसे यह यंत्र एक सुगम डायनेमो कहा

जा सकता है, यद्यपि आधुनिक डायनेमो और इसकी यंत्रकी आकृतियोंमें आकाश पातालका अन्तर है।

वर्णित डायनेमोकी न्यूनताएँ

यह बताया जा चुका है कि एक चालक प्रति सेकन्ड जितनी अधिक शक्ति रेखाएँ काटेगा उतना ही अधिक अवस्था भेद उसके सिरोंमें पैदा होगा। प्रति सेकन्ड कितनी शक्ति रेखाएँ कट सकती है इसका सम्बन्ध चुम्बक की शक्ति और चालककी गति अथवा रफ़्तार एवं काटनेवाले चालकोंकी संख्यासे होता है। वर्णित यंत्रमें अश्वनाल आकृतिका स्थायी चुम्बक जो विद्युत-चुम्बकसे अपेक्षाकृत हल्का होता है इस्तेमाल किया गया है। स्थाई चुम्बक कालान्तर से सदा क्षीण होते रहते हैं। इस यंत्रमें तांबेके सरियोंकी संख्या एक परिमित मात्रा से अधिक नहीं बढ़ाई जा सकती। चुम्बकीय ध्रुवोंके बीचका अन्तर वायु पूर्ण होनेसे उसमेंसे जाने वाली रेखाओंकी शक्ति क्षीण हो जाती है। इन कारणोंसे यह डायनेमो अधिकसे अधिक ८ व्होल्ट की ही विद्युत उत्पन्न कर सकता है।

पोले बेलनमें चार अथवा अधिक लोहेके सरिये कसे रहते हैं जो भीतरकी ओर निकले रहते हैं। इन सरियोंमें बेलनाकार झुके हुए लोहेके टुकड़े जिन्हें पोल पीसेज़ (pole pieces) अथवा ध्रुव खंड कहते हैं पेचदार कीलोंसे जड़े रहते हैं। सरियोंके ऊपर गिर्रियों पर लपेटा हुआ तारका बेठन चढ़ा रहता है। लोहेके जिस पोले बेलनमें सरिये जड़े रहते हैं उसे अंग्रेज़ीमें योक (yoke) कहते हैं। यह सब मिलकर डायनेमोंका चुम्बकीय पार्श्व कहलाता है। दूसरा भाग आर्मेचर (Armature) कहलाता है। यह लोहेका ठोस बेलन-जैसा होता है जिसमें कि खाँचे कटे हुये रहते हैं। परन्तु यह ठोस लोहेका नहीं बनाया जाता। इसको बनानेके लिये लोहेकी चादरमें से, जिसके एक ओर एनेमल अथवा कागज़ मढ़ा रहता है, चित्रमें बताई हुई शक्लके ठप्पे काट लिये जाते हैं। फिर उन्हें एकत्रित कर एक सरिये पर जड़ लिया जाता है। कागज़ प्रत्येक दो ठप्पोंके बीच पृथकन्यासक (Insulator) का कार्य करता है। इससे फूकाल्ट धाराएँ जिनका ज़िक्र पहले
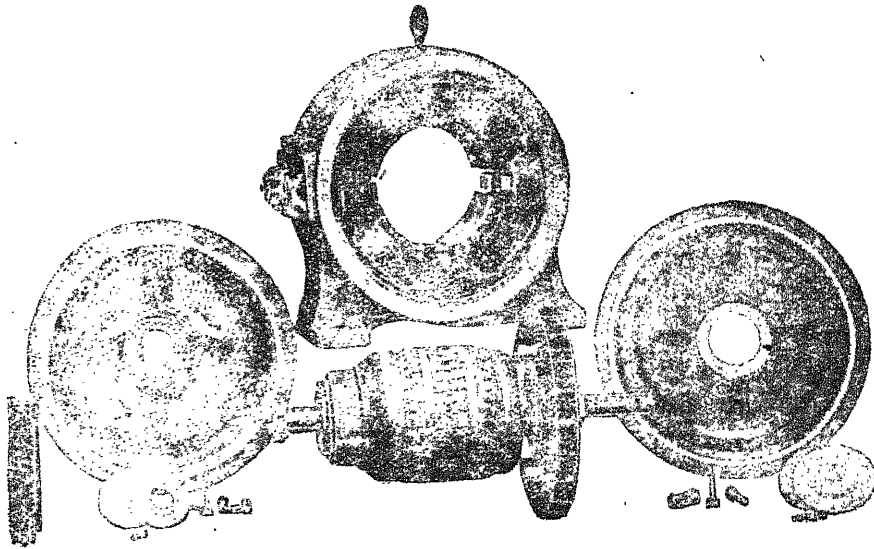
आधुनिक डायनेमो।
सीधी धारावाला डायनेमों और इसके विविध अंग।

आधुनिक डायनेमोमें यह सब न्यूनताएँ पृथक-पृथक उपायोंसे दूर की गई हैं। स्थायी चुम्बकके स्थान पर विद्युत-चुम्बकके प्रयोगका नियम सा हो गया है। लोहेके एक

किया गया है अधिक शक्तिशाली होकर लोहेको गर्म नहीं करने पातीं। जो खांचे इस बेलनमें बने रहते हैं उनमें तांबेका तार भरा रहता है। ठप्पोंके बीचके गोल छिद्रमें

एक और छोटा-सा खांचा रहता है। जोकि सरियेके वैसे ही उभरे हुए भागमें ठीक बैठ जाता है। इससे ठप्पे सरिये के चारों ओर घूमने नहीं पाते। खांचेमें तार भरे जानेकी यह उपयोगिता है कि पहिले तो बेलनके घूमनेसे तार
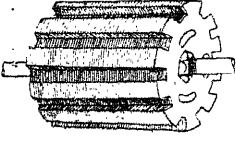
लोहेकी चादरमें से, जिसके एक ओर एनेमल अथवा कागज़ मढ़ा रहता है, चित्रमें बताई हुई शक्लके ठप्पे काट लिये जाते हैं। फिर उन्हें एकत्रित कर एक सरिये पर जड़ लिया जाता है।

उसपर फिसलने नहीं पाते। दूसरे आर्मेचर और ध्रुव खंडोंके बीच कमसे कम फ़ासला रखा जा सकता है जिससे शक्ति रेखाएँ कमसे कम हवामें होकर जावें और इस प्रकार क्षीण न हों, क्योंकि लोहेकी प्रवेश क्षमता वायुकी अपेक्षा ३००० गुनी अधिक है।

दो प्रकारके डायनेमो

चुम्बकीय पार्श्व और आर्मेचरके अतिरिक्त डायनेमोका एक और भाग भी होता है। यह भाग दो भिन्न प्रकारके डायनेमो, अर्थात् (१) सीधी धारावाले और (२) बदलनेवाली धारावालेमें पृथक-पृथक रूपका हो जाता है। सीधी धारा वाले डायनेमोमें इसे दिशापरिवर्तक और ब्रश (Commutator and Brush) कहते हैं और बदलनेवाली धाराके डायनेमोमें इसे स्लिपरिंग और ब्रश (Slip ring and Brush) कहा जाता है। पिछले पृष्ट पर दिये हुए चित्रमें सीधी धारावाले डायनेमोके सब भाग बताये गये हैं।

फ्लेमिंगका सीधे हाथवाला नियम

एक चालक जब शक्ति रेखाएँ काटता है तो उसमें आवेशित विद्युत धाराकी दिशा फ्लेमिंगके सीधे हाथवाले नियमसे मालूम की जा सकती है। यह नियम इस प्रकार है। सीधे हाथकी हथेलीको इस प्रकार फैलाया कि अंगूठा पहिली उंगलीसे समकोण बनावे। अब दूसरी उंगलीको हथेलीसे समकोण बनाती हुई झुकाया। पहिली उंगलीको उत्तरीसे दक्षिणी ध्रुवकी ओर जानेवाली शक्ति रेखाओंकी दिशामें कर लिया और हथेलीको ऐसा घुमाया कि अंगूठा चालकके घूमनेकी दिशा बतलावे तो बीचकी उँगली चालकमें बहनेवाली धाराकी दिशा बतलावेगी।

उपयोग — चित्रमें एक चुम्बकीय क्षेत्र बतलाया गया है शक्ति रेखाओंकी दिशा नीचेसे ऊपरकी ओर है। जिससे चौकोर झुका हुआ तार अ ब स द घूमता है। जब स द ऊपरकी ओर जाता है तो अ ब नीचेकी ओर अ ब और स द दोनों चालकों पर जब फ्लेमिंगका सीधे हाथ वाला नियम लगाया जाता है तो चालक अ ब में धाराकी दिशा अ ब की ओर, और चालक स द में क से द की ओर ज्ञात होती है। ब स चालक रेखाओंके समानान्तर घूमनेके कारण उसके सिरोंमें कोई अवस्था भेद नहीं होता। वह केवल, अ ब और स द चालकोंको जोड़नेका कार्य ही करता है। अब इन घूमनेवाली तारोंको दो स्लिप रिंगोंसे जोड़ दिया जो एक धारा मापकसे जुड़े हुए हैं। तो धाराका यंत्रमें द से अ की ओर और तारमें अ, द, स, द की दिशामें जाना यंत्र बतलाता है। इससे यह सिद्ध होता है कि अ ब और स द चालकोंका अवस्था भेद एक दूसरेको सहायता देता है। इसी प्रकार अ सिरेको स्लिप रिंगसे न

जब फ्लेमिंगका सीधे हाथ वाला नियम लगाया जाता है तो चालक अ ब में धाराकी दिशा अ ब की ओर, और चालक स द में क से द की ओर ज्ञात होती है।

जोड़कर एक और चौकोर अंटा उसी तारका लगा दिया जावे और तब उसे स्लिपरिंगसे जोड़ दें तो बेठनको पहिली चालसे घुमाने पर अवस्था भेद पहिलेसे दुगना हो जाता है। इसी तरह जितने अंटे होंगे उतना ही गुना अवस्था भेद बढ़ जावेगा। चालकके घुमनेकी गति पहिलेसे दूनी कर देनेसे भी अवस्था भेद पहिलेसे दुगना किया जा सकता है। विद्युत चुम्बककी शक्ति भी इसी प्रकार अधिक अंटे लगाकर बढ़ाई जा सकती है।

डायनेमोके व्होल्टेजका गणित

मान लिया कि एक चुम्बकीय क्षेत्रका घनत्व अर्थात् उसके १वर्ग से. मी. में से जानेवाली शक्ति रेखाओंकी संख्या

च है। यदि चालककी लम्बाई ल मान ली जावे तो चित्रमें बतलाये हुए चालककी आवेशित संचालन शक्ति

= च × ल × २...(३)

२ के स्थान पर जितने आंटे लगे हुये हों उनके दुगनी संख्याको समीकरणमें रखना चाहिये। संचालन शक्तिको व्होल्टमें निकालनेके लिये युक्त गुणनफलको १० से विभाजित करना चाहिये। ऊपरके समीकरणसे यह स्पष्ट है कि चालककी संचालन शक्ति चुम्बकीय क्षेत्रके घनत्व, चालककी लम्बाई, उसकी गति, और संख्या, के समानुपाती होती है।

प्रचलित डायनेमोमें चालक एक ही दिशामें नहीं चलाये जाते। वरन् वह वृत्ताकार चक्कर लगाते हैं, यानी घूमते हैं। इस कारण किसी क्षण जब वे शक्ति रेखाओं पर लम्बाकार घूमते हैं सबसे अधिक रेखाएं काटते हैं; दूसरे क्षण जब वे इन रेखाओंके समानान्तर घूमते हैं बहुत कम रेखाओंको काटते हैं।

बदलने वाली धारा और प्रत्यावर्तक डायनेमो [Alternating Current and Alternators]

जैसा कि पहिले बता आये हैं सीधी धारा विद्युत घट और डायनेमो दोनोंसे मिल सकती है परन्तु बदलनेवाली धारा केवल डायनेमोसे ही प्राप्त की जा सकती है। कई गुणोंके कारण जो इसकी विशेषताएँ हैं और जो आगे चल कर बताई जायँगी बदलने वाली अथवा प्रत्यावर्तक धारा सीधी धारा से अधिक उपयोगी सिद्ध हुई है। इसके गुणों के वर्णनसे पहिले हम उसे प्राप्त करनेके यंत्र अर्थात् प्रत्यावर्तक डायनेमो का वर्णन करते हैं।
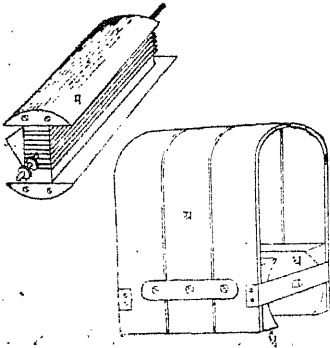
प्रत्यावर्तक डायनेमो।

अ एक अश्वनाल आकृति का चुम्बक है जिसमें ध ध दो ध्रुवखंड कसे हुये हैं। म एक स्तरोंका बना हुआ आर्मेचर है। उसके स्तरोंसे बनाये जानेका कारण ऊपर बता चुके हैं। स्पष्टता के कारण ताँबेके ढके हुये तार के कुछ ही आंटे उस पर लगे हुये दिखाये गये हैं। वास्तव में पूरा खाँचा वैसे ही आँटोंसे भरा रहता है। आर्मेचरमें भरे हुये तारके दोनों सिरे दो स्लिपरिंगसे जो आर्मेचरकी धुरी पर ही कसी हुई हैं जुड़े हुए हैं। आर्मेचरको ध्रुवखुडोंके बीच दो धुराधारों पर जिससे कि वह उनको बिना छुए घूम सके, रखा जाता है। स्लिपरिंग पर दो ब्रश ऐसे रखे रहते हैं कि आर्मेचरकी घूमती हुई दशा में वह रिंगों को सदैव छूते रहें। चित्र के देखनेसे ज्ञात होता है कि जब चालक अ ब और स द १८०° घूमकर आवेंगे तो अ ब का स्थान स द की जगह और स द का अ ब की जगह होगा। घूमनेकी वही दिशा जारी रखने पर अ ब ऊपर से नीचेकी ओर और स द नीचे से ऊपर की ओर जायेगा। फ्लेमिंगका नियम लगाने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि धाराकी दिशा इन चालकोंमें पहिलेसे विपरीत हो जाती है। चालक के अ और द सिरे उन्हीं स्लिपरिंगों को छूते रहनेके कारण बाहिरी चक्रमें बिजलीके बहने की दिशा बदल जावेगी। यदि यह चालक १ सेकन्ड में २५ बार घुमाया जावे तो बिजली की दिशा ५० बार बदलेगी। ऐसी धारा को ५० चक्र की धारा (50 cycle current) कहा जाता है।

अधिक व्होल्ट (जैसे ३००० व्होल्ट) के डायनेमोमें चालक स्थाई रखे जाते हैं, और चुम्बकीय पार्श्व (Magnetic System) घुमाया जाता है। इनके चुम्बकीय पार्श्वमें विद्युत चुम्बकका उपयोग किया जाता है, जिसे एक सीधी धार वाले डायनेमो से उत्तेजित (Excite) किया जाता है। इस सीधी धारावाले डायनेमो का आर्मेचर उसी धुरी पर घूमता है जिस पर प्रत्यावर्तक डायनेमोका चुम्बकीय पार्श्व जड़ा रहता है। प्रत्यावर्तक डायनेमोमें चालकोंके स्थायी रखनेका कारण यह है कि चालकके तारोंमें अवस्थाभेद ३००० व्होल्ट होता है। अतएव उन्हें स्थिर अवस्थामें एक दूसरेसे पृथक आसानीसे रखा जा सकता है। उसके विद्युत चुम्बकके तारोंमें अवस्था
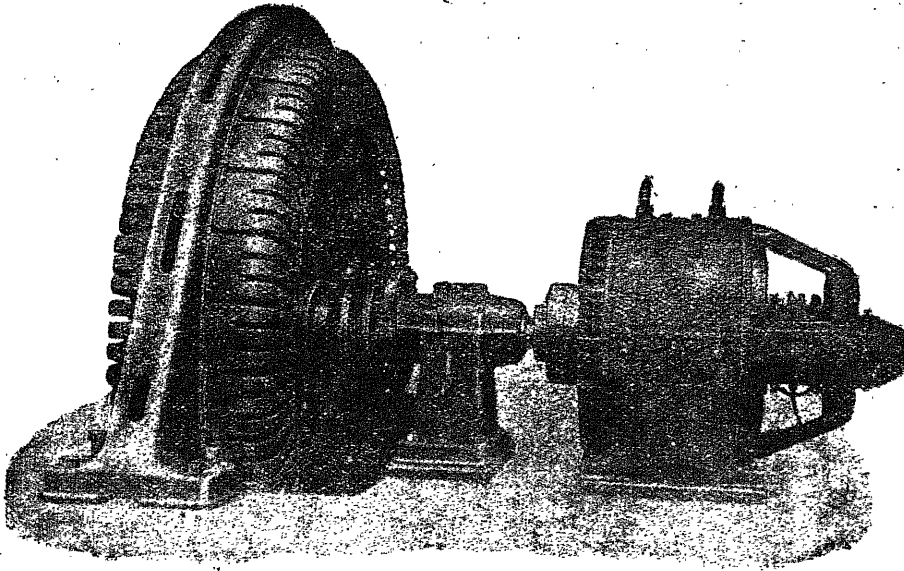
बदलनेवाली धाराका डायनेमो।

भेद १०० अथवा २०० व्होल्ट ही रखा जाता है क्योंकि इसी व्होल्टेजके सीधी धारा वाले डायनेमोसे उसे उत्तेजित किया जाता है। कम व्होल्टेजके कारण. उनका घुमाना आपत्तिपूर्ण नहीं समझा जाता।

बदलनेवाली विद्युतधाराके गुण

सीधी धाराका व्होल्टेज जब हम कम करना चाहते हैं तो उसे उचित बाधाके चालकमेंसे प्रवाहित करते हैं। इससे हमको पर्याप्त व्होल्टेज तो मिल जाता है परन्तु कितनी ही बिजली तापमें बदलकर नष्ट हो जाती है। क्योंकि सीधी धारा जब किसी बाधामें से जाती है तो वह तापमें रूपान्तरित हो जाती है। यह ताप जितनी अधिक बाधा होगी अथवा जितने अधिक समय तक धारा प्रवाहित होगी उतनी ही अधिक होगी। और धाराकी मात्रासे तो उसका वर्गीय अनुपात होता है। परन्तु बदलने वाली धाराका व्होल्टेज बहुत आसानीसे घटाया अथवा बढ़या जा सकता है। यह कार्य एक परिवर्तक [Transformer] द्वारा होता है।

परिवर्तक [Transformer]

लोहेके सरिये पर ढके हुये तारका एक बेठन लगाकर उसमेंसे यदि सीधी धारा भेजी जावे तो जितनी देर तक धारा जाती रहेगी लोहेका सरिया चुम्बक बना रहेगा। उसकी चुम्बकीय शक्ति बढ़ानेके लिये या तो बेठनके अंटे बढ़ाना चाहिये या तो बेठनमें से जाने वाली धाराकी मात्रा बढ़ानी चाहिये। अब सीधी धाराके बजाय बेठनमें से बदलने वाली धारा भेजी जावे जो १ सेकन्डमें ५० बार बदलती है तो लोहेके सरियेमें ५० बार ध्रुवत्व बदलेगा, यानी उसका प्रत्येक सिरा १ सेकन्ड में ५० बार क्रमशः उत्तरी और दक्षिणी ध्रुव बनेगा। अथवा यों भी कहा जा सकता है कि शक्ति रेखाएँ उसमें १ सेकन्ड में ५० बार दिशा बदलेंगी। इसी सरिये पर यदि एक पतले ढके हुये तांबेके तारका दूसरा बेठन लगा दिया जावे जिसके अंटे प्रमुख बेठनके अंटोंसे १० गुने हों तो फैराडेके नियमके अनुसार दूसरे अथवा गौण बेठनके सिरोंमें शक्ति रेखाओंके काटनेसे अवस्था भेद पैदा हो जावेगा। इन सिरोंको बदलने वाली धाराके व्होल्ट मापकसे जोड़ने पर इस बेठनकी आवेशित विद्युत का व्होल्टेज प्रमुख बेठनकी विद्युतसे १० गुना पाया जाता है। यही यंत्र साधारण रूपका परिवर्तक कहलाता है। चूँकि परिवर्तकके अन्तरलोहमें शक्तिरेखाएँ बनती और बिगड़ती रहती हैं इसलिये वह स्तरों अथवा लोहेके पतले तारोंका बनाया जाता है। और उसकी आकृति वृत्ताकार अथवा चौकोर रहती है। परिवर्तक कम व्होल्टेजकी बदलनेवाली धाराका व्होल्टेज बढ़ा सकता है

और अधिक व्होल्टकी बदलनेवाली धाराका व्होल्टेज घटा भी सकता है। व्होल्टेजके घटने और बढ़नेका परिवर्तकके बेठनोंसे क्या सम्बन्ध है यह समीकरण ४ में बताया गया है।

$$\frac{\text{गौण बेठनके अंटोंकी संख्या}}{\text{प्रमुख बेठनके अंटोंकी संख्या}} = \frac{\text{गौण बेठनके सिरोंका अवस्थाभेद}}{\text{प्रमुख बेठनके सिरोंका अ० भेद}} \quad \ldots (४)$$

बदलनेवाली विद्युत धारा व परिवर्तक के संयुक्त आविष्कारसे आज यह संभव हो गया है कि एक शहर विद्युत शक्तिगृहसे कोसों दूर होते हुए भी उस शक्तिका फायदा उठा लेता है।

समीकरण नम्बर (४) में यह बताया गया है कि परिवर्तक बदलनेवाली धाराके व्होल्टेजको प्रमुख और गौण बेठनके अनुपातसे घटा या बढ़ा सकता है। यदि मान लिया जावे कि गौण बेठनके अंटे प्रमुख बेठनसे १० गुने हैं तो गौण बेठनकी धाराका व्होल्टेज प्रमुख बेठनकी धारासे १० गुना हो जायगा। अब यह प्रश्न उठता है कि प्रमुख और गौण बेठनोंमें बहनेवाली धाराकी मात्राओंमें क्या अनुपात होगा?

विद्युत शक्तिकी इकाई
[Unit of current]

यह बताया जा चुका है कि विद्युतघटमें रासायनिक शक्ति विद्युत शक्तिमें बदल जाती है। विद्युत धाराके मार्गमें बाधा आने पर वह ताप, शक्तिका रूप धारण कर लेती है। डायनेमो यांत्रिक शक्ति [Mechanical energy] को विद्युत शक्तिमें बदलनेवाला यंत्र है। इसी प्रकार सारी भिन्न-भिन्न शक्तियाँ एक दूसरेमें बदली जा सकती हैं अर्थात् शक्तियोंका रूपान्तर होता है। न तो वह विनिष्ट की जा सकती है न उसकी सृष्टि की जा सकती है। कार्य करनेकी क्षमताका नाम ही शक्ति है। यदि किसी पंखेको चलानेके लिये १ व्होल्टके विद्युत घटसे १ एम्पीअरकी धारा एक घंटे तक आवश्यक होती है तो कहा जायगा कि उस पंखेके लिये "एक वाट प्रति घंटा" शक्तिकी ज़रूरत है। अर्थात् एक एम्पीअरकी धारा एक व्होल्ट पर एक घंटेतक प्रवाहित करना चाहिये। अँग्रेजीमें शक्तिका पर्यायी शब्द Energy है। जिस गतिसे शक्ति व्ययकी आवश्यकता होती है उसे सामर्थ्य, बल, या power कहते हैं। यदि १ घन्टेमें १ वाट प्रति घन्टा शक्ति व्ययकी आवश्यकता हो तो कहा जायगा कि एक वाट सामर्थ्य वांछित है। इसे एक दृष्टान्तसे स्पष्ट करते हैं।

एक चक्की चलानेके विद्युत-मोटर में ४० एम्पीअरकी धारा ५५० व्होल्ट पर आवश्यक होती है तो बताओ कितने बलकी ज़रूरत है और ४० घंटेमें कितने यूनिट विद्युत ख़र्च होगी?

वांछित सामर्थ्य = व्होल्ट × एम्पीआर = ४० × ५५० = २२००० वाट। ४० घंटेमें जो शक्ति व्यय होगी = ४० × ५५० × ४० = ८८०००० वाट-घंटाके। बिजली नापनेकी इकाई जो कि बोर्ड-आफ़ ट्रेड यूनिट कहलाती है, १००० वाट-घंटाके बराबर मानी गई है। इसलिये मोटर में व्यय होनेवाली शक्ति $= \frac{८८००००}{१०००} = ८८०$ युनिटोंके।

परिवर्तकके वर्णनमें यह बताया जा चुका है कि इस यंत्रके द्वारा बदलनेवाली विद्युतका व्होल्टेज घटाया अथवा बढ़ाया जा सकता है। घटानेवाले परिवर्तकको अवरोही परिवर्तक [Stepdown transformer] और बढ़ानेवाले परिवर्तकको आरोही परिवर्तक [Step-up transformer] कहते हैं। बढ़ाने अथवा घटानेवाले परिवर्तक के गौण बेठनमें विद्युत धाराकी मात्रा क्या होगी यह विचारणीय प्रश्न था। ऊपर यह बता आये हैं कि शक्ति बनाई अथवा नष्ट नहीं की जा सकती। अतएव एक आदर्श परिवर्तकमें जिसमें कि विद्युत शक्ति तापमें रूपान्तरित नहीं होती, प्राथमिक और गौण बेठनके विद्युतोंके व्होल्ट और एम्पीअरका गुणनफल अचल रहता है। यानी अगर व्होल्टेज १० गुना परिवर्तक द्वारा बढ़ा दिया जावेगा तो ऐम्पीअरेज गौण बेठनमें प्राथमिक बेठनका दशमांश रह जायगा। गौण बेठनके एम्पीअरेज और अंटोंका सम्बन्ध समीकरण (५) द्वारा बताया जाता है।

$$\frac{\text{गौण बेठनकी धारा}}{\text{प्रमुख बेठनकी धारा}} = \frac{\text{प्रमुख बेठनके अंटोंकी संख्या}}{\text{गौण बेठनके अंटोंकी संख्या}} \quad (५)$$

एक दृष्टान्तसे समीकरण (४) और (५) की क्रिया स्पष्ट की जाती है।

मुद्रक तथा प्रकाशक—विश्वप्रकाश, कला प्रेस, प्रयाग।

विज्ञानं ब्रह्मेति व्याजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते।
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति ॥ तै० उ० ।३।५।

भाग ५८ | कुंभ, सम्वत् २००० । फरवरी १९४४ | संख्या ५

खदिर

[श्रीयुत रामेश बेदी आयुर्वेदालङ्कार]

नाम

हिन्दी—खैर।

संस्कृत ※—परिचय ज्ञापक नाम :—बालपत्रक (सूक्ष्म पत्तों वाला); रक्तसार (काष्ठ मज्जा रक्तवर्ण होती है); श्याम सारक (कई वृक्षोंमें अन्तः काष्ठ का रंग इतना अधिक गूढ़ा लाल होता है कि काला सा प्रतीत होता है); कंटकी शल्यक (कांटोंवाला वृक्ष); बहुशल्यक (बहुत कांटोंवाला); खदिर (कांटों से जैसे आकाशको फाड़ रहा हो, खम् आकाश दारयति)।

गुण प्रकाशक संज्ञा - गायत्री (रोग दूर करके प्राणों की रक्षा करनेवाला, गयान् प्राणान् त्रायते; अथवा मन्त्रों को गानेवाले ब्राह्मणों—के स्वरों—की रक्षा करनेवाला, गायतो विप्रान् त्रायते); खदिर रोगोंको खाने वाला, खाद्द भक्षणे; या स्रावोंको स्थिर करने—सुखाने—वाला—ग्राही द्रव्य, खदति, खद् स्थैर्ये अथवा दांतोंको स्थिर करनेवाला); कुष्ठघ्न (कुष्ठ आदि त्वचाके रोगोंका नाशक); गीत (ऋषियों ने इसकी महिमा गाई है); यज्ञिय (यज्ञपात्र बनानेमें लकड़ीका प्रयोग होनेसे); दन्तधावन (शाखाकी दातुन बनाये जाने से)।

बंगाली—खयेर।
गुजराती—खेर, खेरीओ।
मराठी - खैर, खदेरी।
सन्थाली—खैयर।
तेलगु - कवीरी खन्द्रा, नल्ला सन्द्रा।
आसामी - खोइरा, कोइर।
उड़िया—खोइरु।
तामिल—वोथालय।
सिंहाली - रत्कहीरी।
बर्मी - शा।

लैटिन - एकेशिया कैटेचु (Acacia catechu willd), माइमोसा कैटेचु (Mimosa catechu willd), एकेशिया पौलिकैन्था (Acacia polycantha willd.)।

※ १—गायत्री खदिरो गीतः कुष्ठघ्नो बालपत्रकः।
क्षितिक्षयो रक्तसारो शल्यको बहुशल्यकः॥
— कैयदेव निघण्टु ; औषधिवर्ग; श्लोक ७५२, ७५३।

२—खदिरो रक्तसारश्च गायत्री दन्तधावनः।
कंटको बालपत्रश्च बहुशल्यश्च यज्ञियः॥
— भा० प्र०, पूर्वखण्ड, प्रक० ५, वटादि वर्ग, २६।

३—खदिरो रक्तसारः स्याद् गायत्री बालपत्रकः।
म. पा. नि. वटादि.।

नैसर्गिक वर्ग—शिम्बी वर्ग (लेगुमिनोसी, Leguminose)।

प्राप्ति स्थान तथा विस्तार—

बहुत अधिक नमी वाले प्रदेशोंको छोड़कर भारत और बर्माके अधिक भाग में होता है। मुख्यतया यह दो प्रकार के प्रदेशोंमें मिलता है—(१) वे प्रदेश जो नदियोंके पास हैं और (२) नदीसे दूर उच्च शुष्क स्थानोंमें।

रेतीली और कंकरीली ज़मीनमें यह निस्सन्देह अच्छा होता है। कृष्ण कार्पासी-मृत्तिका (black cotton soil) पर भी यह उगता है। सूखी जमीन, जिसमें कम गहराई पर पत्थर हों, यह बहुधा होता है और चट्टानों वाली ज़मीन पर भी उगता है। कंकर मिश्रित कमज़ोर भूमिमें जहां कोई भी दूसरे पौदे उग सकते हैं यह उगता है। कठोर चिकनी ज़मीनमें जिसमें पानीका निकास ख़राब है, इसकी वृद्धि रुक जाती है और जल्दी ही मरने लगता है।

खैर वास्तवमें अपेक्षाकृत शुष्क प्रदेशोंका वृक्ष है यद्यपि निम्न-हिमालय पथ (sub-Himalayan tracts) जैसे उच्च वर्षा वाले प्रदेशोंमें भी, जहाँ १५० इंच वर्षा होती है, यह पहुँच गया है। जलीय मार्गोंसे दूर यह आमतौर पर उन स्थानोंमें होता है जहाँ औसत वर्षा बीस से पच्चासी इञ्च तक भिन्न भिन्न होती है। प्राकृतिक निवासमें इसका उच्चतम छाया तापमान १०५° से १२०° फार्नहाइट और निम्नतम ३०° से ५५° फार्नहाइट है।

सिन्धसे आसाम तक निम्न-हिमालय-पथमें सर्वत्र, हिमालयकी घाटियोंमें तीन हज़ार फुट और कभी कभी चार हज़ार फुट ऊँचाई तक खैर साधारण वृक्ष है। यमुना से पूर्वकी ओर नदियोंके पठारोंमें यह समूहोंमें उगा हुआ होता है अथवा विभिन्न प्रकारके शुष्क मिश्रित (dry mixed) जंगलोंमे यह समूहोंमें उगा हुआ या बिखरा हुआ मिलता है। उत्तर भारतके नदियोंके पास के खैर विशेष प्रकारके हैं। बाह्य हिमालय (outer Himalaya) और शिवालिक श्रृंखलाकी घाटियोंमें नदियों और जल प्रवाहोंके किनारे या नदियोंसे बनाई गई रेतीली और कंकरीली नमीदार भूमिमें यह उगता है। मैदानमें भी कुछ दूर तक जहाँ नदियोंकी बनाई गई भूमि रेतीली और कंकरीली हो और भूमि कोमल कीचड़ की सान्द्रता तक न पहुँची हो यह होता है। इन जंगलोंमें खैर अकेला या शीशमके साथ और कभी कभी सिम्बल, सफेद शिरीष (Albizzia piscera Benth.) एकेशिया एबूनिया (Acacia ebuanea willd.) और कुछ अन्य वृक्षों के साथ मिला होता है। कुछ विशेष घासोंके साथ भी यह सम्बन्धित है। जिनमें से मुख्य हैं – मूञ्ज (Saccharum munja R.), कास (Saccharum spontaneum linn), एरिस्टीडा सायनेन्था (Aristida cyanantha), ट्रिरैफिस मेडागास्केरिएन्सिस (Triraphis madagascariensis) और एण्ड्रोपोगन मोण्टिकोला (Andropogan monticola)। इन नदी समीपके जंगलोंमें नीचे प्रायः बांसा (adhatoda nasica rees) खूब घना उगा होता है।

अधिक उच्च सतह पर खैर पहाड़ी वृक्षोंके साथ मिल जाता है। उदाहरणके लिये नैनीताल पहाड़में रतिघाटके ऊपर चार हज़ार फुट पर यह एक नदीके रास्तेमें बान (Iuercus incana Roxb.) और चीड़के साथ मिला हुआ पहाड़के ढाल पर नीचे नदीके किनारे तक उगा हुआ है। उसी स्थान पर नदियोंके पथरीले पुराने रास्तों पर यह सेल्टिस औस्ट्रेलिस (celtis australis) के साथ मिला हुआ मिलता है।

नदियोंसे दूर अधिक शुष्क और निर्बल भूमिमें इसकी वृद्धि नहीं होती परन्तु ऐसी अवस्थाओं यह हो जाता है जो प्रायः किसी भी दूसरे वृक्षके लिये अनुकूल नहीं होतीं।

यमुनाके पश्चिममें नदीके रास्तोंमें कहीं-कहीं होता है, जैसे कांगड़ा घाटीमें मिलता है परन्तु शुष्क पर्वतों पर फलाई (Acacia moderta Wall) के साथ आम है और कुछ स्थानों पर चीड़के जंगलोंमें भी चला गया है।

सरल विज्ञान-सागर

अपनी योजनाके अनुसार हम सरल विज्ञान-सागरका एक और अंश यहाँ देते हैं।

हमारी सहायता पहुँचनेसे पूर्व गीदड़की सवगतियोंको अजगरने निश्चेष्ट कर दिया था।

इसलिए रातको वह जिस कमरेमें बन्द किया जाता था, अब उसकी खिड़की बन्द करनेमें भी उपेक्षाकी जाने लगी। अवसर पाकर एक दिन वह फिर खुली खिड़कीसे निकल गया। इस बार अवश्य हम उसके भागनेके प्रयत्नकी प्रशंसा किये बिना न रहेंगे। यह दूसरा पलायन कोई दो मास बाद हुआ। इस प्रकार कुल तीन महीनोंसे अधिक हमारे पास रह कर भी वह भाग गया। इसीसे हमें अनुभव हुआ कि अजगर कभी पालतू नहीं हो सकता। तोते की तरह वह भी अवसर पाकर स्वतंत्र होनेका प्रयत्न करता है। परन्तु, साथ ही यह सुन कर कम आश्चर्य नहीं होता कि सिखाया हुआ एक अजगर हालीवुडमें प्रति सप्ताह पाँच पौण्ड कमाता है।

× × ×

दूसरे साल जूनके एक दिनकी बात है। दोपहरका समय था। नहरके किनारे सघन आम्रकुञ्ज के नीचे छोटी छोटी काँटेदार और बहुत घनी बिछी हुई झाड़ियोंके बीचमें चीख़ते चिल्लाते हुए वानरोंके एक झुण्ड ने किसानोंका ध्यान आकर्षित किया। पास जाकर किसानों ने विस्मयसे देखा कि एक वन्दर, जो डील-डौलसे उस बानर-टोलीका सरदार मालूम होता था, एक शक्तिशाली अजगरके सुदृढ़ आवेष्टनोंमें आबद्ध है और मुक्त होनेके विफल प्रयत्नमें भींचा जाकर मारा जा चुका है। परन्तु फिर भी अपने यूथाधिपकी मृतदेह-प्राप्तिके लिये बानर-टोली भरसक प्रयत्न कर रही है। किसानों द्वारा सहायताके लिए बुलाये जाने पर हम लोग घटनास्थल पर पहुँचे। इतने आदमियोंको देख कर अजगर भाग कर आत्मरक्षाके लिए एक वृक्ष पर चढ़ गया और बन्दरकी मृतदेहको उठा कर बानर-टोली जंगलकी झाड़ियोंमें खिसक गई। एक लम्बे बाँसके आँकड़ेसे अजगर नीचे उतार कर पकड़ लिया गया। यह अजगर वही पिछले साल वाला था, यह बात उसकी गरदन और पीठ पर बने घावके चिन्होंसे स्पष्ट हो गई। इस प्रकार लगभग एक सालके अज्ञातवासके बाद वह फिर अपने पिछले साल वाले स्थान पर ले आया गया। इस बार यह लोहेके जालीदार पिंजरेमें दिन भर बन्द पड़ा रहता था।

× × ×

अजगर प्रायः ठण्डी जगहमें रहना पसन्द करता है, इसलिए उसके पिंजरेमें मिट्टी बिछा दी जाती है और समय-समय पर पानी छिड़क कर उसे तर रखा जाता है। जब उसे पक्के फ़र्शके कमरेमें रखा जाता है, तो एक कोनेमें छोटा सा उथला हौज बनवा दिया जाता है, जिसमें सदा ताज़ा पानी रहता है। इस पानीमें वह बहुधा बैठा रहा करता है। कमरेमें कमसे कम एक ओर अवश्य जाली लगी होती है और बीचमें एकाध हरा वृक्ष भी होता है। हरे वृक्षके अभावमें किसी वृक्षका शाखायित तना गाड़ा जा सकता है।

एक स्थानसे दूसरे स्थान पर भेजनेके लिए अजगरके लिए चार फुट चौड़ा और इतना ही लम्बा तथा ऊँचा लकड़ीका बक्स काफ़ी होता है। उसमें स्थान-स्थान पर हवाके प्रवेशके लिए छिद्रोंकी पंक्तियाँ होनी चाहिए। दरवाज़ा ऊपरको उठाने वाला होना चाहिए जिसमें ताला लगानेका भी प्रबन्ध हो। दरवाज़ेके अन्दर प्रायः जाली भी लगा दी जाती है। निर्दिष्ट स्थान पर पहुँचने पर जब पहले दरवाज़ा खोला जाता है तो विशेष घबराने की आवश्यकता नहीं होनी चाहिए क्योंकि अन्धेरेसे सहसा तीव्र प्रकाशमें आने पर साँप कुछ क्षणके लिए अन्धा-सा

होता है और देर तक बन्द पड़ा रहनेसे सोता हुआ-सा होता है। पर यह बात तभी तक है यदि पेटी दस मिनिट से अधिक नहीं खुली रही। इसके बाद वह दर्शकोंको अपना शिकार बनानेका निश्चय कर सकता है। और तब ऐसे दैत्यको फिर पिंजरेमें वापिस भेजनेके लिए दर्जन आदमियोंकी आवश्यकता पड़ सकती है।
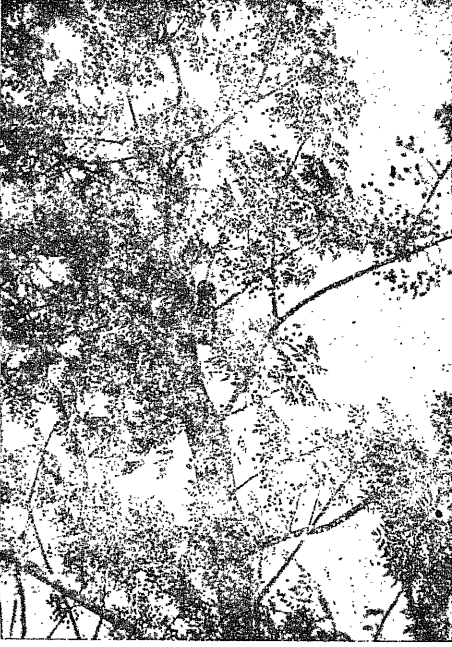
अजगर भाग कर आत्मरक्षाके लिए वृक्ष पर चढ़ गया

अजगरको पकड़ना बहुत सुगम नहीं होता है। आम तौर पर यह जीव जितना सुस्त समझा जाता है, वास्तवमें उतना है नहीं। शिकारके समय या दूसरे जीवोंसे युद्ध करते समय इसकी चुस्ती देखते ही बनती है। दौड़ता भी काफ़ी तेज़ है। बहुत कठिनतासे हाथ आता है और पकड़ने वाले पर बहुधा आक्रमण भी करता है। विष न होनेसे इसका डंश घातक तो नहीं होता परन्तु बड़ा, चौड़ा, मुँह होनेसे घाव बड़ा बनाता है, और यदि मनुष्य इसके आवेष्टनमें आ जाय तो दूसरेकी सहायताके बिना बचना कठिन होता है। इसलिए सबसे पूर्व इसके मुखको वशमें करना चाहिए। एक व्यक्ति ज़रा दूरसे कपड़ेको उसके आगे करता है और ज्योंही साँप ने उसे काटा एक तेज़ गतिमान् हाथ उसकी गरदनको मज़बूतीसे दबोच लेता है, दूसरा आदमी उसकी पूछको दबा लेता है जिससे वह किसी को अपने आवेष्टनोंमें न बांध सके। सपेरे बड़े अजगरोंको बोरियों में रखते हैं।

अजगरको गलेमें लपेट कर जब सँपेरा किसी चौराहे या सड़कके किनारे बैठ जाता है तो उत्सुक और आश्चर्य-चकित दर्शकोंकी भीड़ लग जाती है और शीघ्र ही भूमि पर फैले हुए भिक्षापट पर एक-एक दो-दो पैसे-धेले गिरने लगते हैं। हरद्वार जैसे तीर्थ स्थानोंमें इन छोटे-छोटे सिक्कों की संख्या-वृद्धि करनेमें उन भक्त स्त्रियोंका अधिक हाथ होता है जो इस जीवको नाग देवता समझ कर भेंट पूजा चढ़ाती हैं। पूजा द्रव्योंमें मुख्य पदार्थ दुग्ध होता है। इसलिए भिक्षापटके कोनेमें दूध भरा प्याला भी प्रायः देखा जा सकता है।

पूजा का सर्प, जो नाग देवताके नामसे पूजा जाता है, वास्तवमें फनियर (कोबरा) या शेषनाग (King Cobra) है। बंगाल, आसाम, बिहार आदिमें नाग-पञ्चमीके दिन इसी की पूजा होती है। उत्तर भारतमें सर्प-पूजा इतना अधिक प्रचलित नहीं। इसलिए अज्ञानवश बड़े डील-डौलके कारण अजगरको ही यह प्रतिष्ठा प्राप्त हो गई है।

अजगर हिमालयकी तराई, बर्मा, आसाम, राजपूताना, बंगाल और सुन्दर बनके जंगलोंमें पाया जाता है। कहते हैं कि बर्मा और मलायाके अजगर चालीस फ़ुट तक लम्बे होते हैं। संसारके बड़े-बड़े शहरोंके चिड़ियाघरोंमें अजगर को प्रतिष्ठास्पद स्थान प्राप्त है। इसके सिर पर भालाकार एक कालासा चिन्ह होता है और पीठकी दोनों ओर लगातार धब्बे रहते हैं। अजगरकी पिछली टांगोंके अवशेष (rudiments) छोटे पञ्जोंके रूपमें होते हैं। पिछली पसलियों (dorsal ribs) की संख्या बहुत अधिक होती है। ये पसलियाँ बड़े साँपके शरीरके निचले भागमें स्थित बड़े अधोवल्कलों (ventral scales) के साथ सम्बन्धित होती हैं। साँप वास्तवमें अपनी पसलियोंके सिरों पर चलता है। पतला और लम्बा शरीर

होनेसे साँपोंमें केवल एक फेफड़ा होता है और वृक्क भी एक ही और बहुत लम्बा। निचले जबड़ोंके साथ एक लचीला बन्धन (ligament) होता है, जो शिकार निगलते समय आश्चर्यजनक रीतिसे फैल जाता है। इसमें रबरसे भी अधिक फैलनेकी शक्ति होती है, जिसके कारण अपने मुखके विस्तारकी अपेक्षा कई गुना अधिक बड़ा शिकार यह निगल जाता है। जिन हरिण, गीदड़ आदि को हमने अजगरको निगलते देखा है या निगले हुओंको अजगरका पेट चीर कर निकाला है वे मोटाइमें साँपकी मोटाईसे दुगने या तिगुने मोटे थे। देहरादूनके जंगलोंमें गोलीसे मारे गये बीस फुट लम्बे एक अजगरके पेटसे सात मनका जंगली सूअर निकला था। मेगस्थनीज़ जब भारत आया था, तो उसने भी देखा कि यहाँके अजगर हरिण, बकरी और बैल तकको निगल जाते हैं। वैदिक ऋषियों ने अजगरका वर्णन किया है (देखिये अथर्व० १२।२।२५; २०, १२६, १७) और बकरे (अज) को निगलते देख कर ही उन्होंने उसका नाम अजगर रक्खा था (गर = निकलना)।

अजगरके शिकार पकड़नेके तरीके बहुत मनोरंजक होते हैं। किसी हरे-भरे स्थान या झाड़ी में यह छिप कर बैठ जाता है। खरगोश, हिरण, सूअर आदि जब भोजनकी खोजमें वहाँ पहुँचते हैं, तो यह झपट कर उन्हें पकड़ लेता है। शिकारके लिये यह कभी-कभी वृक्षों पर भी चढ़ जाता है। अपनी गरदन नीचे लटका कर गुजरते हुये जानवरोंको यह गौर से देखता रहता है। जब शिकार उसके ठीक नीचे आ जाता है और यह उसे सुगमतासे पकड़ सकता है, तो तुरन्त उस पर कूद पड़ता है। उसके बोझसे ही शिकार गिर पड़ता है और यह आसानीसे उसके चारों ओर घेरा डाल कर उसे पकड़ लेता है। पूरे आवेष्टनमें लेकर वह शिकारको इतनी ज़ोरसे मींचता है कि उसका दम निकल जाता है, तब वह शिकारको निगलना आरंभ करता है। निगलनेकी यह क्रिया बहुत धीरे-धीरे होती है। एक बार हमारे देखते हुये हरिणको पूरा निगलनेमें एक अजगरको लगभग सोलह घण्टे तक लग गये थे। चीतेको निगलनेमें उससे भी अधिक समय लगता है। मुर्गा, मुर्गी तो वह कुछ ही मिनटोंमें पेट तक पहुँचा देता है और चूहे आदि तो एक साँस में उदरस्थ हो जाते हैं। चूहेको निगलनेके पहले अजगर उसे कुण्डलोंमें मींच कर निश्चेष्ट कर देता है। उसमें थोड़ी देर ज़रूर लगती है।

अजगर शिकारको चबाता नहीं। उदरस्थ करनेके लिये उसे शिकारके टुकड़े करनेकी भी आवश्यकता नहीं होती। वह उसे सम्पूर्ण निगल जाता है। उसके आमाशयमें एक विशेष प्रकारका पाचक रस उत्पन्न होता है, जिसमें बाल, सींग, हड्डियाँ आदि सब गल जाते हैं।

चूहेको निगलनेके पहले अजगर उसे कुण्डलोंमें मींच कर निश्चेष्ट कर देता है।

प्रायः पन्द्रह बीस फुट लम्बे अजगरकी क्षुधा-शान्तिके लिये एक मुर्गी पन्द्रह दिन काफी होती है। खरगोश करीब आठ दिनका गुजारा कर देता है। छिंकारा लगभग दो मास और गीदड़ तथा लोमड़ी भी इतने समयके लिये पर्याप्त होते हैं। बड़ा शिकार खानेके बाद यह सुस्त पड़ जाता है और काफी समयमें धीरे-धीरे रेंगकर किसी ऐसे स्थानमें पहुँच जाता है जहाँ कोई पहुँच न पाये। इस अवस्थामें यह अर्द्धमूर्छित-सा हो जाता है। इस समय इसे पकड़ना या मारना कठिन नहीं होता। एक बड़े छिंकारेको निगलने

के चौबीस घंटे बाद हमने अजगरको घने छायादार वृक्षोंमें अर्द्धमूर्च्छित या प्रसुप्तावस्थामें पाया। हम दस-पन्द्रह व्यक्ति कुछ दूरी पर खड़े उसे देखते रहे, परन्तु उसने हमारे ऊपर आक्रमण नहीं किया और न भागनेका ही प्रयत्न किया। जब उसे पहली गोली लगी तो वह ज़ोरसे हम पर झपटा; पर दूसरी गोली ने उसका काम तमाम कर दिया। जब हमने उसका पेट चीर कर निगले हुये छिंकोरेको निकाला, उसके बाल और खाल कहीं कहीं से गल चुके थे। छिंकोरेको निगले हुये अब तक लगभग चौबीस घण्टे हो चुके थे। मृत अजगर की लम्बाई साढ़े सत्रह फुट और वज़न डेढ़ मनके लगभग था। यह अजगर अब गुरुकुल कांगड़ीके संग्रहालयमें रक्खा हुआ है।

एक अजगरका अनशन भंग करनेके लिये हमने उसे छः फुट लम्बा जीवित धामन साँप खिला दिया।

सिंगापुरके सूअरोंके फ़ार्मसे एक दिन सूअरके दो बच्चे गुम हो गये। बहुत खोज करने पर कुछ दूरी पर एक अजगर मूर्च्छामें पाया गया। मार कर उसका पेट चीरा गया तो ज्ञात हुआ कि उन बच्चोंका चोर वही था। बच्चोंका वज़न सवा मनके करीब था।

शिकार निगलनेके बाद तुरन्त अजगरको छेड़ा जाय तो वह उसे उगल देता है। गंगापार पुराने गुरुकुलके पास एक बार हमने बारह फुट लम्बे अजगरको हरिणके एक छोटे बच्चेको निगलते देखा। निगलनेकी प्रक्रिया आरम्भ थी और हरिण आधेसे अधिक अन्दर जा चुका था। हम झाड़ी में छिप कर यह देखते रहे। उसे निगल जानेके बाद अजगर जब धीरे धीरे रेंग कर किसी सुरक्षित स्थानमें जाने लगा, तो हमने उसे पकड़ लिया। उसे बोरेमें बन्द करके जब लाया जा रहा था, तो रास्ते ही में उसने वमन कर दिया और वह हरिणका बच्चा पूरा बाहर आ गया! इस प्रकार वमन करनेका कारण यह प्रतीत होता है कि अजगर भागनेकी सुविधाके लिये अपने शिकारको बाहर फेंकता है। जहाँ जीवनके लाले पड़े हों, वहाँ पेटका ख्याल नहीं किया जाता।

बन्दी बनाये जाने पर अजगर प्रायः भूख-हड़ताल कर देता है। उसे खिलानेके लिये पहले प्रायः बल प्रयोग करना पड़ता है। आटेका घोल या दूध हम बलात् अजगरको खिलाते रहे हैं परन्तु यह अच्छा भोजन सिद्ध नहीं हुआ। संपेरे लोग दूध और आटेके मिश्रणमें अण्डेको फेंट कर अजगरको खिलाते हैं और उनका यह विश्वास है कि यह अच्छा पुष्टिकर पेय होता है। यदि अजगर ज़िद पकड़ ले तो चूहें और मेंढक उसके पिंजरेमें फुदकते रहें, यह उनकी ज़रा भी परवाह नहीं करता। एक अजगरका अनशन भंग करनेके लिये हमने उसे छः फुट लम्बा जीवित धामन साँप खिला दिया था। धामन अजगरके पिंजड़ेमें छोड़ दिया गया; परन्तु अजगर ने कोई प्रतिक्रिया न दिखाई। फिर धामनको मुँहकी ओरसे पकड़ कर अजगरके मुँहमें बलपूर्वक प्रविष्ट करा दिया गया। अजगर ने वमन करनेका प्रयत्न किया पर हमने उसका मुँह कुछ देर पकड़ रक्खा। कुछ देर बाद वह उसे निगल गया और शांतिसे पिंजरेमें जा लेटा। श्रीयुत रेमौण्ड एल० डिटमार अपने एक अजगरको बल प्रयोगसे ख़रगोश खिलाते रहे हैं। दो दो खरगोश इकट्ठे सी कर उन्होंने एक लम्बी शृंखला बना ली थी। सिरेवाले खरगोशकी खोपड़ीमें उन्होंने एक चिकनी लम्बी लग्गीको डाल कर अजगरके मुँहमें प्रविष्ट कर दिया। अजगरका मुँह एक आदमीने पकड़ रक्खा था

और प्रत्येक दो फ़ुटकी दूरी पर उसे कुछ लोगों ने उठा रक्खा था। बाँससे खरगोशको अन्दर ढकेला जाता था; नीचे हाथों पर उसका अनुभव होता था, जिससे यह पता लग जाता कि खरगोश कितनी दूरी तक पहुँच गये हैं। आमाशयमें पहुँचा कर बाँस बाहर निकाल लिया जाता था।

—रामेश बेदी

१०

मेढक

बरसातके दिनोंमें चारों तरफ "टर्र टर्र" की ही आवाज़ सुनाई पड़ती है, यहाँ तक कि कभी-कभी तो नींद तक हराम हो जाती है। कहने की ज़रूरत नहीं कि यह आवाज़ किसकी है। यह हमारे वही मेढक महाशय हैं, जिनका हमारे कवियोंने जगह-जगह वर्णन किया है, तथा साधारणतः मनुष्य सोचते हैं कि यह तो एक बहुत मामूली जानवर है जिसे कि हर एक जानता है। परन्तु मैं दावे के साथ कह सकता हूँ कि हमारे अधिकांश भाई मेढक को पहचान भी नहीं सकते, जानना तो दूर रहा।

साधारणतः मनुष्य "स्थल-मेढक" (टोड) और "जल-मेढक" (फ्राग) में अन्तर नहीं कर पाते। वे दोनोंको एक-सा ही समझते हैं। उनका ख्याल है कि जलमें रहने वाले मेढक (जिनपर प्रायः पीली-पीली धारियाँ पड़ी रहती हैं) ज़हरीले होते हैं। अगर वास्तवमें देखा जाय तो मालूम होगा कि उनका ख़्याल करीब-करीब उलटा ही है। उनके लिए उनमें उतना ही फ़र्क है, जितना कि एक साधारण कुत्ते तथा एक पागल कुत्तेमें। बचपनमें मुझे स्थल-मेढकको पकड़ कर (चूँकि वे आसानीसे पकड़में आते हैं) लोगोंको तङ्ग करनेमें बड़ा मज़ा आया करता था। इस पर लोग मुझे बताया करते थे कि "अरे म्याँ, अगर कहीं तुम्हारी अँगुली पकड़ ली तो छूटना आफत हो जायगा।" अब सुनिये, "एक रात संयोगवश मेरा हाथ चारपाईके नीचे लटक रहा था। एक मेढक साहब ने मेरी अँगुलीको देख कर समझा कि क्या बढ़िया भोजन है, और मेरी अँगुली उसने मुँहमें गप्पसे रख तो ली ही। मगर अब उसे पेट में पहुँचाना उनके बाप-दादाओं के बस की भी नहीं थी। एकाएक मैंने हाथ ऊपर खींचा। मेरी अँगुली तो खैर फौरन छूट ही गई, परन्तु उस झटकेके साथ मेढक भी मेरे बिस्तरे पर आ पड़ा। अब आप ही बतलाइये लोगोंको मेढकके बारेमें कितना ज्ञान है। कुछ लोग तो इससे भी आगे बढ़े हुये हैं। कहीं-कहीं गावोंमें यह कथा प्रचलित है कि यदि किसी जलाशयमें एक सूखे मेढकको चूर करके डाल दिया जाय तो बरसात आने पर वहाँ असंख्य मेढक उत्पन्न हो जाते हैं। कुछ लोग समझते हैं कि मेढक जाड़े तथा गर्मियों में मर जाते हैं तथा बरसात आने पर फिर ज़िन्दा हो उठते हैं। पूरा लेख पढ़नेके बाद पाठक स्वयं सोच सकते हैं कि इन सबमें कितना सत्यांश है, तथा हमें मेढकोंके बारे में कितना ज्ञान है।

आइये, पहले हम मेढकको पहचाननेकी कोशिश करें। यहाँ हमें उस जन्तुसे तात्पर्य है, जो साधारणतः जलमें रहता है और जिसे कि अंग्रेज़ी में फ्राग कहते हैं। इसीसे मिलता-जुलता एक दूसरा जानवर है जिसे कि अंग्रेज़ीमें टोड कहते हैं। जहाँ तक मेरा ख़्याल है हमारी भाषामें इनके लिए कोई अलग प्रचलित नाम नहीं है। कुछ शब्द-कोशोंने इनके लिए क्रमशः 'जल-मेढक' तथा 'स्थल-मेढक' नाम दिये हैं। परन्तु यहाँ पर हम सरलताके लिए मेढक और टोड शब्द ही प्रयोगमें लायेंगे।

टोड और मेढकोंमें कितने ही वाह्य और आन्तरिक अन्तर होते हैं, परन्तु इनमें वाह्य-अन्तर अधिक महत्वके हैं, क्योंकि एक साधारण पाठकके काममें वे ही आ सकते हैं।

मेढक और टोडमें सबसे बड़ा अन्तर उनकी खालमें है। मेढक की खाल चिकनी तथा तर होती है। यदि उसकी खाल तर न रहे तो कुछ ही समयके बाद वह मर जाता है। यही कारण है कि मेढक ज़्यादातर पानीके पास रहते हैं। उनकी खालमें पसीनेकी भाँति एक लसदार पदार्थ निकलता रहता है जो कि खालको चिकना बनाये रखता है। इसी चिकनाईके कारण वह आसानीसे पकड़में नहीं आता। अगर पकड़ भी जाय तो मौका पाते ही हाथमें से फिसल कर निकल भागता है। साधारणतः इसकी

खाल कुछ पीलापन लिये हरे रंगकी होती है, जिसपर अनेक छोटे-बड़े काले-काले धब्बे पड़े होते हैं। परन्तु मेढक की खालका रङ्ग कभी एक-सा नहीं रहता। समय तथा परिस्थितिके अनुसार अपने दुश्मनोंसे बचनेके लिये उसका रंग सदा बदलता रहता है। अँधेरे तथा कम रोशनीमें वह काला पड़ जाता है, परन्तु रोशनीमें आते ही वह फिर पीला-सा होने लगता है। कहीं-कहीं पर, विशेषतः जाँघोंपर, खाल ज़हरीली होती है। कहीं-कहीं आदिम-निवासी इसकी खालमेंसे ज़हर निकालते हैं। दूसरी जगह टोडकी खाल सूखी, खुरदरी तथा, मेढकके मुकाबलेमें, अधिक ज़हरीली होती है। टोड बाल्यावस्था तथा सन्तानोत्पत्ति-कालको छोड़कर वह जलसे दूर ही रहता है।

मेढककी पिछली टांगें तथा अँगुलियाँ बहुत लम्बी होती हैं। इसी लम्बाईके कारण वह आसानीसे लम्बी-लम्बी छलाँगें ले सकता है। बतककी तरह इनके पैरोंकी अँगु-लियों के बीच एक पतली-सी खालकी झिल्ली होती है, जिससे उसे तैरनेमें बड़ी सहायता मिलती है।

दूसरी तरफ टोडकी टांगोंमें न तो वह लम्बाई है, और न वह झिल्ली, जिसके कारण न तो वह लम्बी-लम्बी छलाँगें ले सकता है, न वह अच्छी तरहसे तैर सकता है।

अब हम इनके मुँह और सिर पर आते हैं। मेढकका सिर टोडकी अपेक्षाकृत सामने की ओर अधिक नुकीला होता है। यदि वास्तवमें देखा जाय तो टोडके मुकाबलेमें मेढक अधिक सुन्दर मालूम पड़ता है। मेढकके केवल ऊपरी जबड़े पर छोटे-छोटे घने दाँतोंकी एक कतार होती है। दूसरी तरफ टोड बिलकुल दन्त-विहीन है। मेढकों और टोड की जीभमें एक बहुत बड़ी विशेषता है। मनुष्य तथा अन्य सब जन्तुओंमें जीभ पीछेकी ओर मुँहसे जुड़ी होती है और आगेकी तरफ बिलकुल स्वतन्त्र होती है। परन्तु मेढक तथा टोडमें बिलकुल इसका उलटा है।

मेढककी आँखें और कान भी विशेष ध्यान देने योग्य अंग हैं। आँखें बड़ी, गोल, ऊँची उठी हुई तथा सुन्दर नीले रङ्गकी होती हैं। कुछ प्राणीयशास्त्रवेत्ताओंके अनुसार मेढककी आँखें प्राणी-जगतमें सबसे अधिक सुन्दर होती हैं। ऊँची उठी होनेके कारण वह जलसे केवल सिरका थोड़ा-सा हिस्सा निकाल कर अपने चारों ओर देख सकता है।

इसके कान भी मनुष्यके समान नहीं होते, वरन् आँखोंके पीछे एक काली-सी तनी हुई झिल्ली होती है, यह कानके भीतरी अंगोंसे सम्बन्धित होती है।

जानवरोंके जीवनके ढंगका उनके अस्थि-पंजर तथा अंगों पर कितना अधिक प्रभाव पड़ता है, यह मेढकमें साफ़ दिखलाई पड़ता है। तैरने तथा छलाँगें मारनेमें मुख्यतः उसके पिछले ही पैर काममें आते हैं। इसलिये वे बढ़कर खूब लम्बे हो गये हैं। इसके विपरीत अगली टाँगें ज़्यादा काममें न आनेके कारण छोटी रह गई हैं।

यद्यपि देखनेमें मेढककी खोपड़ी काफी बड़ी होती है परन्तु उसका मस्तिष्क बहुत छोटा होता है। यह करीब ½″ से कुछ अधिक लम्बा और करीब ½″ मोटा होता है। इसकी बुद्धि बहुत ही साधारण होती है, यहाँ तक कि उसमें अनेक छोटे-मोटे कीड़ोंके बराबर भी अक्ल नहीं होती है। वह अपनी साधारण जीवनचर्याके अलावा और कोई कार्य नहीं कर सकता है।

मेढकोंमें एक बहुत बड़ी विशेषता यह है कि इनमें मलद्वार, मूत्रद्वार, जननेन्द्रियद्वार अलग-अलग नहीं होते बल्कि वे सब कार्य एक ही छिद्र द्वारा होते हैं।

आहारके विषयमें मेढक पूरा मांस-भोजी है। साधा-रणतः इसका भोजन अनेक प्रकारके कीड़े-मकोड़े तथा केंचुये होते हैं। भोजन को यह एक दम निगल जाता है तथा पाचन-क्रिया पेटमें पहुँचने पर शुरू होती है।

मेढक अधिक सर्दी या गर्मी नहीं सह सकते हैं। इसीलिये वे ज़्यादातर बरसातमें ही दिखलाई पड़ते हैं। जाड़ेके दिनोंमें सर्दीसे बचनेके लिये, किसी दलदल तथा किसी अन्य सुरक्षित स्थानमें पड़े रहते हैं। इस अवस्थामें न तो यह कुछ खाता है, न पीता है, न कुछ कार्य करता है, बल्कि घोर निद्रामें पड़ा रहता है। इसे कुम्भकर्णी नींद कहते हैं। इस समय इसका कार्य 'पूर्व संचित चर्बी' से चलता रहता है। इसके बाद जब ये वसन्तऋतु में निकलते हैं, तो दुबले-पतले होते हैं। गर्मीमें किसी ठंडे स्थानमें पड़े रहते हैं।

मेढकोंमें भी नर तथा मादा अलग-अलग होते हैं, परंतु वे आसानीसे पहचाने नहीं जा सकते हैं। साधारणतः हम इन्हें इनकी बोली ही के कारण पहचान सकते हैं। मादा मेढक कभी-कभी नहीं बोलती है, और अगर कभी बोलती है तो बहुत धीरे। बरसातमें जो शोर सुनाई पड़ता है वह नर मेढकोंके कारण होता है। इस शोरका भी एक विशेष तात्पर्य होता है। प्रत्येक नर ज़ोर-ज़ोरसे बोल कर मादाओं को अपनी ओर आकर्षित करना चाहता है, और इसलिये प्रायः उनमें होड़ लग जाती है और तब फिर हमें घंटों तक "टर्र टर्र" सुनाई पड़ता है।

हमें मेढककी शरीर-रचनाके बारेमें साधारण ज्ञान-प्राप्त हो चुका है। अब संक्षेपमें हमें इनका जीवन-इतिहास और देखना है। जीवन-इतिहाससे यह मतलब है कि कब और कैसे इनके बच्चे पैदा होते हैं, तथा किन अवस्थाओंमेंसे होकर पूर्ण वयको प्राप्त होते हैं।

मेढकीके बच्चे मेढकोंके समान नहीं होते, वरन् शुरूमें मछलीके आकारके होते हैं, जो लगभग तीन महीनोंके बाद, अनेक बड़े-बड़े परिवर्तनों के अनन्तर, मेढकका रूप धारण करते हैं।

मेढक अपने अंडे बरसात के शुरूमें देते हैं। एक बार एक मेढकी हज़ारों अंडे देती है, परन्तु उनमेंसे बहुत कम पूर्ण वयको पहुँच पाते हैं। ये अंडे करीब एक बिन्दु (.) के बराबर होते हैं और पानी के ऊपर तैरते रहते हैं। आपसमें ये एक दूसरे से एक चिपचिपे पदार्थ द्वारा चिपके रहते हैं। बरसातके शुरूके दिनोंमें ये अधिकतर तालाबों तथा अन्य जलाशयोंमें मिल सकते हैं। यदि इच्छा हो तो कोई भी इन्हें किसी बड़े बरतनमें रखकर खुद इनके जीवन-की सब अवस्थायें देख सकता है। हाँ, हर दूसरे दिन पानी बदलना होगा तथा खानेके लिये पानीमें कुछ घास-पात तथा काई इत्यादि डालनी होगी। इसमें कुछ मेहनत ज़रूर है, परन्तु जिसे कुछ भी उत्कंठा होगी उसके लिये कुछ नहीं है।

गर्भित होनेके बाद अंडे बढ़ना शुरू कर देते हैं। लगभग एक सप्ताहमें अंडा एक छोटीसी मछलीके आकारमें परिवर्तित हो जाता है जिसे टैडपोल कहते हैं। कुछ ही समयमें इसके आँख, मुँह और सिरके दोनों तरफ तीन जोड़े बाहरी गलफड़े निकल आते हैं। जिस तरह हम लोगोंमें हवा लेनेके लिये फेफड़े होते हैं, उसी प्रकार मछलियोंमें जलमें घुली हुई हवा लेनेके लिये सिरके दोनों तरफ गलफड़े होते हैं। भीतर ही भीतर इस समय लीवर, पेट, अँतड़ियाँ, हृदय आदि अंगोंकी रचना होती रहती है। इन सब अवस्थाओंमें टैडपाल भोजनके लिये वनस्पति ही पर आश्रित रहता है।

लगभग एक महीने बाद बाहरी गलफड़े भीतरी गलफड़ोंमें परिवर्तित हो जाते हैं। दुम लम्बी होती जाती है, जिससे उसे तैरनेमें बड़ी सहायता मिलती है। इसके बाद पहले पिछले पैर और फिर अगले पैर धीरे-धीरे निकलते और बढ़ते हैं। यद्यपि अगले और पिछले पैर साथ-साथ निकलते हैं, परंतु शुरूमें अगले पैर खाल से ढके रहते हैं, और इसलिये वे दिखलाई नहीं पड़ते।

लगभग दो महीनेकी उम्रमें फेफड़े भी बन कर तैयार हो जाते हैं। इस अवस्थामें इसके फेफड़े भी होते हैं और गलफड़े भी, और एक तरहसे वह दो तरहका जीवन व्यतीत करता है। फेफड़ों तथा पैरोंके कारण स्थल-वासियों जैसा और गलफड़ोंके कारण मछलियों जैसा। इस अवस्थामें इसके पैर भी होते हैं और दुम भी। फेफड़ोंके कारण अब वह पानीकी सतहके ऊपर हवा लेनेके लिये आने लगता है। परन्तु कुछ ही समयके बाद टैडपोलकी काया-पलट हो जाती है, और वह एक पूर्ण मेढकके रूपमें परिवर्तित हो जाता है।

इस महान् परिवर्तनके अन्तर्गत टैडपोलका मुँह चौड़ा हो जाता है, दुम घटने लगती है और अन्तमें वह बिल्कुल लुप्त हो जाती है। आँखें बड़ी हो जाती हैं। शाकाहारीसे मांसाहारी हो जाता है जिसके परिणाम-स्वरूप अँतड़ियाँ छोटी हो जाती हैं, क्योंकि शाकाहारी भोजनमें 'भोजन तत्व' कम होता है, इसलिये उसे ज़्यादा भोजन खाना पड़ता है और ज़्यादा खानेके लिये ज़्यादा जगह (पेट) चाहिये इन सब परिवर्तनोंके उपरान्त टैडपोल एक छोटेसे मेढक के रूपमें हो जाता है, जो बरसातके दिनोंमें इधर-उधर उछलते-फिरते हैं।

ऊपर हम देख चुके हैं कि बालकालमें मेढक कितनी अवस्थाओंमें होकर गुज़रता है। कभी तो ज़रासा अंडा है,

तो कभी मछलीके समान, कभी मेढक और मछलीके बीच और कभी मेढक। आखिर इन सब परिवर्तनोंकी क्या ज़रूरत थी? यदि वास्तवमें देखा जाय तो इस तरहके परिवर्तन सभी उन्नत जीवोंमें मिलते हैं। चिड़ियोंमें उनके अंडेके अन्दर, स्तन-पोषित जीवोंमें उनके गर्भमें, कीड़ों-मकोड़ोंमें उनके कुकून, लार्वा तथा प्यूपामें। अगर कहीं समानता देखी जाती है, तो इन सबके बिलकुल शुरूमें जबकि शुक्र-कीटाणु और रजकीटाणुके संयोगसे एक अत्यन्त क्षुद्र प्राणीकी रचना होती है। बस समानताके नाते हम केवल इस नवनिर्मित प्राणीमें समानता देख सकते हैं और कहीं नहीं। यह सब देखते हुये पाठक स्वयं निष्कर्ष निकाल सकते हैं। अर्थात्, संसारके समस्त प्राणियोंका विकास एक अत्यन्त क्षुद्र प्राणीसे हुआ, जिनमें परिस्थिति और समयके अनुसार अनेक अन्तर आ गये। यही कारण है कि संसारमें इतने प्रकारके पशु-पक्षी मिलते हैं। ये अन्तर दो-चार सालमें नहीं, वरन् हजारों-लाखों सालमें जाकर धीरे-धीरे होते हैं। इस 'विकासवाद' से हमारी समस्या (अर्थात् टैडपोलमें इतने परिवर्तन क्यों होते हैं) हल हो जाती है। इसीको प्रसिद्ध जर्मन प्राणीशास्त्रवेत्ता हैकेलने संक्षेपमें कहा है कि अपने विकास इतिहासमें कोई जन्तु जिन-जिन अवस्थाओंमेंसे होकर गुज़रता है उन सब अवस्थाओंको उस जातिके समस्त प्राणी अपने बालकालमें दुहराते हैं। मेढकोंका विकास भी एक प्रोटोजोआसे हुआ जो धीरे-धीरे एक मछलीके समान जीवमें तथा फिर मेढकके रूपमें परिवर्तित हो गया। यही कारण है कि मेढक तथा अन्य सब जीवोंके बालकालमें इतने परिवर्तन दिखलाई पड़ते हैं।—रमेश चन्द्र शर्मा

११

मछलियाँ

मछलियों की प्रजनन शक्ति आश्चर्यजनक है। एक मछली एक ऋतुमें लाखों अंडे देती है। परंतु कुछ बड़ी मछलियाँ, जैसे शार्क और रे, थोड़ी-ही संख्यामें अंडा देती हैं। ऐसी मछलियों का प्रत्येक अंडा संरक्षक म्यानके भीतर बंद रहता है और म्यानके कोने इस प्रकार बढ़े रहते हैं कि मछली उन्हें किसी पत्थरमें सुगमतासे चिपका सके और इस प्रकार उनके नष्ट होने की संभावना कम हो जाय।

कुछ मछलियाँ तो एक ऋतुमें ढाई-तीन करोड़ अंडे देती हैं। परंतु इनमेंसे थोड़े-से ही अंडे अंत तक बच पाते हैं क्योंकि तरह-तरह की मछलियाँ उनको खाती रहती हैं। फिर जो बच्चे अंडोंसे निकलते हैं उनमेंसे भी अधिकांश बड़े होनेके पहले ही किसी बड़ी मछली की उदरपूर्तिमें बलिदान हो जाते हैं। थोड़ेसे ही बच्चे इतने बड़े हो पाते हैं कि वे स्वयं अंडे दे पायें। यही कारण है कि मछलियाँ—विकास सिद्धांतानुसार—इतने अधिक अंडे देती हैं। जो जातियाँ अधिक अंडा न दे पायी होंगी उनका लोप हो गया होगा। फिर, यह भी विचार करने योग्य है कि यदि अंडे इतनी अधिक संख्यामें परिपक्व होने के पहले ही न खप जायँ, और सबमेंसे मछली निकले, तो कुछ ही समयमें इतनी मछलियाँ हो जायँगी कि पानी उनसे खचाखच भर जायगा!

नापमें मछलियोंमें बड़ा अंतर होता है। सबसे बड़ी मछली वह शार्क है जिसका नाम इसके विशाल शरीरके कारण व्हेल-शार्क पड़ गया है। यह पचहत्तर फुट लम्बी होती है और तौल में सवासौ, डेढ़सौ, मन की होती है। उधर, छोटी-से-छोटी मछली एक इंचसे भी छोटी होती है।

मछलियों की आकृतियोंमें भी बड़ा अंतर होता है। अधिकांश मछलियों की आकृतियाँ एक दूसरेसे मिलती-जुलती हैं, परंतु ईल मछली साँप की तरह होती है; कुछ मछलियाँ चिपटी होती हैं और उनका चिपटा शरीर खड़ी दिशा (उर्ध्वाधर तल) में रहता है; कुछ, जैसे रे मछली, चिपटी तो होती है, परंतु उसका शरीर बेंड़ा रहता है। एक मछली प्रायः गोल, गेंद की तरह, होती है, परंतु यह गोलाई मांसके कारण नहीं, वायुके कारण रहती है। एक मछली तिकोने बकस की तरह होता है।

मछलियोंके वाज (डैने) कभी-कभी इतने बड़े होते हैं कि वे शरीरसे भी बड़े रहते हैं। कुछ मछलियोंके वाज इतने कड़े होते हैं कि ऐसी मछलियाँ उनसे अपने शत्रुओं को घायल कर सकती हैं। कुछके वाज पोले होते हैं और विष-

ग्रंथियोंसे उनका संबंध रहता है, जिससे वे साधारण घाव ही नहीं करतीं, वे शत्रु के शरीर में विष पिला देती हैं। एक मछलीके सामने वाले बाजमें तीन लंबी-लंबी अँगुलियाँ निकली रहती हैं जिनके सहारे मछली नदी की पेंदी पर चल सकती है। इस प्रकार उनका चलना बड़ा विचित्र जान पड़ता है। कुछ मछलियोंके शल्कों का किनारा आरी की दाँती की तरह होता है, और कुछमें तो काँटे उभड़े रहते हैं।

मछलियाँ साधारणतः सादे रंग की होती हैं, परंतु कुछ तो ऐसी रंग-बिरंगी होती हैं कि वे तितलियों को भी मात कर देती हैं। रंगीन मछलियों को लोग शौकसे पालते हैं और कुछ नवीन मछलियाँ, जो आधुनिक सुप्र-जनन रीतियोंसे उत्पन्न की गयी हैं और उनकी संख्या अभी बढ़ नहीं पायी है, सोनेके मोल बिकती हैं।

कुछ मछलियाँ अपना रंग बदल सकती हैं। वे मछलियोंमें गिरगिटान हैं। एक धारीदार और चित्तीदार मछली इच्छानुसार अपनी धारियों और चित्तियों को मिटा सकती है। इन बहुरूपी मछलियोंके शरीरमें रंग-उत्पादक कोष होते हैं जो मछलियोंके वशमें रहते हैं। इन कोषों को खोल या बंद करके मछलियाँ अपना रंग बदल लेती हैं। संभवतः इससे मछलियों को छिपने या अपनी पृष्ठिभूमि के सामने शत्रुओं की आँखोंमें अदृश्य हो जानेमें उन्हें सुविधा होती होगी। चटक रंगों वाली मछलियाँ भी ऐसे रंग की होती हैं कि अपने प्राकृतिक निवास-स्थानमें वे शत्रुओं की आँखोंमें प्रायः अदृश्य रहें। उदाहरणतः, लाल मछलियाँ मूँगेके टापुओंके आस-पास होती हैं और वे अपने रंगके कारण शीघ्र दिखलाई नहीं पड़तीं।

मछलियोंका मस्तिष्क छोटा अवश्य होता है, परंतु वे बुद्धिमत्तामें विशेष पिछड़ी नहीं हैं। कुछ मछलियाँ अपने बाल-बच्चोंके लिए घोंसला (पानीके भीतर, तलहटी पर) बनाती हैं, जिससे उनका मातृ-प्रेम प्रदर्शित होता है। पाली हुई मछलियाँ अपने खिलाने वाले को पहचानती हैं। संकेत पाते ही वे खाने को दौड़ आयेंगी। कुछ मछलियों ने तो लटकती हुई डोर को खींचकर घंटी बजाना भी सीख लिया है। जब वे भूखी रहती हैं तो डोर खींचती हैं।

एक फैंसी मछली। कुछ मछलियाँ सोनेके मोल बिकती हैं।

कुछ मछलियाँ बहुत दीर्घजीवी होती हैं। पालतू मछलियोंको ३८ वर्ष तक जीवित रहते देखा गया है।

निस्संदेह प्रकृतिमें कुछ मछलियाँ इससे भी अधिक काल तक जीवित रहती होंगी, यद्यपि अधिकांश जीवन-संघर्षमें हार कर बहुत पहले ही मर जाती होंगी।

मछलियाँ पानीमें अपनी पूँछ को अगल-बगल चला कर तैरती हैं। बाजोंसे वे मुड़ने का काम लेती हैं। परंतु कुछ मछलियाँ बाजोंसे तैरती हैं। कुछ मछलियाँ खूब ऊँचा उछल सकती हैं। नदीसे उछलकर मछलियोंका नावमें आजाना कोई असाधारण बात नहीं है। सामन मछली कई फुट ऊँचे कूद सकती है और छिछली नदियोंमें तैरते रहने पर मार्गकी बाधाओं को वह उछल कर ही पार करती है। उड़ंकू

मछली तो पानीसे उछलने पर हवामें कतराती हुई बहुत दूर तक निकल जाती है। इसमें उसे छातीके वाजोंसे सहायता मिलती है। उड़ंकू मछलीमें ये वाज बहुत बड़े होते हैं। कुछ मछलियाँ पानीसे निकलकर भूमि पर वाजोंके सहारे चल भी सकती हैं।

अधिकांश मछलियाँ गूँगी होती हैं, परंतु कुछ मछलियाँ शब्द कर सकती हैं। एक मछली कुछ-कुछ मुर्गे की तरह बोल सकती है। एक मछली का नाम 'बँसुरिया' (पाइपर) पड़ गया है क्योंकि उसकी बोल बाँसुरी बजने की तरह होती है। कुछ मछलियाँ गाती भी हैं।
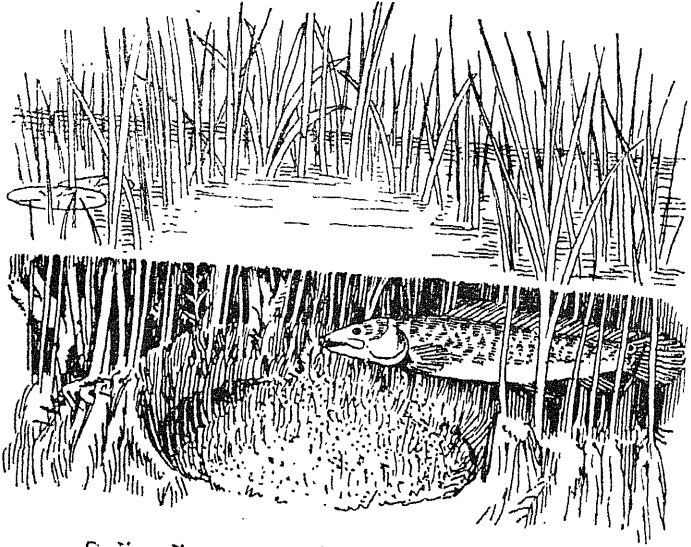
मछलियोंका घोंसला। कुछ ही मछलियाँ घोंसला बनाती हैं। चित्रमें घोंसला तलहटी पर है।

मछलियोंसे मनुष्य का बहुत-सा काम निकलता है। एक तो उसे आहार मिलता है। फिर, कुछ मछलियोंसे निकला तेल, विशेषकर काड मछली का तेल, इतना पौष्टिक होता है कि वह औषधि का काम देता है। मछलियोंके कुछ अंगोंसे बढ़िया सरेस निकलता है। ईल मछलियोंकी खालसे चाबुक बनता है। मछलियोंके शल्कोंसे नकली मोती बनती हैं। शल्कोंके कृत्रिम फूल भी बनते हैं। बड़ी मछलियों की खालोंसे तैयार किया गया चमड़ा छोटी-मोटी फैंसी वस्तुओंके बनानेके काममें आता है। बहुत छोटी मछलियाँ कुछ मलेरियाग्रस्त देशोंमें तालाबोंमें इसलिए छोड़ी गयी हैं कि वे मच्छरोंके ढोलों को खा जाया करें और इस प्रकार अधिक मच्छर न उत्पन्न होने पायें।

शार्क

शार्क नामक मछली प्रायः सभी समुद्रोंमें होती है, परंतु गरम प्रदेशोंमें अधिक होती है। इसकी कई जातियाँ हैं, जिनमेंसे कोई छोटी हैं, कोई बड़ी। शार्कके दाँत बड़े पैने होते हैं। मछुओंके जालोंको काटकर उनके भीतर फँसी हुई मछलियों को हड़प कर जाना उनके लिए कोई बड़ी बात नहीं है। कुछ शार्क तो मनुष्यके अंगों को काट ले जाते हैं।

एक बार एक शार्क एक १५ वर्षीया बालिका की टाँग को जाँघके पाससे काट लेकर देखते-देखते चलता बना। बेचारी लड़की दवा होने पर भी न बच सकी।

बड़े शार्कों को लोग भाला मारकर पकड़ते हैं। भालेका फल कँटियादार होता है, जिससे चुभ जाने पर उसका निकलना कठिन होता है। भालेके दूसरे छोर पर रस्सी बँधी रहती है जिससे शार्क भाला लेकर भाग नहीं सकता। छोटी जातिके शार्क जालोंमें फँसाये जाते हैं। शार्कोंका तेल और चमड़ा दोनों काममें आता है, परंतु मांस केवल पेड़-पौधोंमें खादकी तरह डालनेके काममें आता है।

कुछ लोग डोर और कँटियासे शार्क को पकड़ते हैं, परंतु इसके लिए हिम्मत चाहिये। एक साहब लिखते हैं कि एक बार उनके कँटियेमें एक १५ फुटा शार्क फँसा। परंतु फँसते ही वह इतने बलसे भागा कि नाव बहुत दूर तक उसके साथ चली गयी। तब शार्क और शिकारीमें घोर संघर्ष हुआ। एक अपनी ओर खींचता, दूसरा अपनी ओर। अंतमें शार्क थक गया और शिकारीने उसे पानी तक खींच कर और गोली दाग कर मार डाला। यह शार्क तौलमें ७३० सेर का था और घेरेमें सवा ग्यारह फुट। ऐसे शार्कों के पकड़नेके लिए बहुत बड़ी कँटिया बनती है और उसपर मछली का चारा लगाया जाता है। कँटियामें छः फुट तक इस्पात की मजबूत जंजीर लगी रहती है और तब रस्सी, नहीं तो शार्क रस्सी को तुरंत चबा डालेगा।

आजकल बिजलीका उपयोग लगभग प्रत्येक काममें होता है। बिजलीके द्वारा ट्राम-गाड़ियाँ, कारखानोंमें मशीन, इंजिन और मकानोंमें पंखे चलते हैं। समुद्री तार, तारवाणी, बेतारका तार, सिनेमा आदि आविष्कारों में भी बिजलीका प्रयोग होता है और भविष्यमें बिजलीके द्वारा और भी अद्भुत आविष्कारोंके होनेकी आशा है। जब कि आदमी पानी और झरनोंसे बिजली पैदाकर उसे असंख्य मनुष्योपयोगी कामोंमे लाते हैं, कुछ जन्तु ऐसे हैं जिनके शरीरके ही कुछ अंगोंमें बिजली पैदा होती है। इसके द्वारा ये केवल अपनी रक्षा ही नहीं करते, बल्कि उन जन्तुओंको जो कि उनके भोजन हैं बिजलीका तेज धक्का मार सन्न कर देनेके बाद सरलता-पूर्वक निगल जाते हैं।

उल्लूकी सूरतके बन्दर ब्रैज़ीलमें अमेज़न नदीके किनारे सघन जंगलोंमें पाये जाते हैं। यह सदैव रातके समय अँधेरेमें चिड़ियोंके अण्डोंकी खोजमें निकलते हैं। जिस समय इनके झुण्डके झुण्ड पेड़ोंपर चलते हैं उनके घने और काले बाल डालियों और पत्तोंसे रगड़ खाते हैं। इस रगड़के कारण घर्षण-विद्युत् पैदा होती है जिसकी वजहसे अँधेरेमें बराबर चिनगारी निकलती है और इतना प्रकाश हो जाता है कि ये बंदर सरलता-पूर्वक अण्डे ढूँढ निकालते हैं।

कुछ मछलियाँ ऐसी मिलती हैं जिनके शरीरके कुछ अंगोंकी तुलना बैटरीसे की जा सकती है। विद्युत्-ईल (एलेक्ट्रिक-ईल) और रे (एलेक्ट्रिक) इनमें सबसे मशहूर हैं। विद्युत्-ईल मछली उत्तरी और दक्षिणी अमेरिका की नदियोंमें मिलती हैं। ये ८-१० फुट तक लम्बी और १० इञ्च तक चौड़ी होती हैं। इनका रंग सलेटी और आँखें बहुत ही छोटी होती हैं। केवल पूँछकी लंबाई जो कि बैटरीका काम करती है, ६-८ फुट तक होती है। खोजके बाद पता चला है कि पूँछकी मांस-पेशियोंके असंख्य कोष्ठोंमें बिजली पैदा होती है। इन कोष्ठोंकी तुलना गालवैनिक सेलससे की जा सकती है। ऐसा अनुमान किया जाता है कि २०० वोल्ट तक ताकतकी बिजली केवल एक मछलीकी पूँछमें पैदा होती है। वैज्ञानिकोंका ख्याल है कि अगर १०,००० विद्युत्-ईल एक साथ रक्खी जायँ तो एक बिजलीकी रेलगाड़ी आसानी-से ८-१० मिनट तक चल सकेगी। इसके बाद २४ घंटे आराम और भर पेट भोजन करनेके बाद ही इनकी पूँछकी मांसपेशियोंके असंख्य कोष्ठोंमें बिजलीका संचार होगा और तब फिर गाड़ी आगे बढ़ सकेगी।

सुविख्यात वैज्ञानिक हैम्बोल्टके कथनानुसार ब्रैज़ील के निवासी इन ईल मछलियोंको बड़े स्वादसे खाते हैं। इनका पकड़ना कुछ आसान काम नहीं है। इनको पकड़नेके लिये यहाँके निवासी झुण्डके झुण्ड घोड़े नदियों और तालाबोंके अन्दरसे ले जाते हैं। ये मछ-लियाँ अपने शरीरको धनुषाकार बना घोड़ोंके बदनको अपने सर और पूँछसे एक ही साथ छू लेती हैं तो कुंडली (सर्किट) पूरा होनेके कारण बिजलीका इतना तेज़ धक्का लगता है कि मज़बूतसे मज़बूत घोड़े भी इन धक्कोंको खा तिलमिला कर अकसर पानीमें डूब कर मर जाते हैं। लेकिन प्रायः ईल मछली केवल अपनी पूँछ हीसे हमला करती है जिसके कारण कमजोर बिजलीके धक्कोंका घोड़ोंपर कोई विशेष असर नहीं होता। बराबर हमला करनेसे इनकी पूँछकी बिजली खतम हो जाती है और तब ये बेचारी किनारे आ लगती हैं और लोग इन्हें बिना किसी खतरेके पकड़ लेते हैं।

विद्युत्-रे भूमध्य और हिन्द महासागरमें मिलती हैं। इनके शरीरका अगला भाग चपटा और गोलाकार होता है। पूँछ लम्बी होती है। इनका मटीला या बदामी रंग समुद्रकी तहसे जहाँ इनका वासस्थान है, बिलकुल मिलता, जुलता है। वर्णकी यह समानता इनके लिये दो प्रकारसे हितकारी होती है। प्रथम तो इसके द्वारा इनके शत्रु आसानीसे इन्हें देख नहीं पाते जिसकी वजहसे रे-मछलियाँ अपनी प्राणरक्षा अन्य हिंसक जन्तुओंसे कर सकती हैं। दूसरे, इनका यह रक्षार्थ वर्ण-साम्य इनको भोजनकी प्राप्तिमें भी बहुत सहायक होता है। दूरसे न देख पड़नेके कारण यह निर्बल और निस्सहाय जन्तुओंको अपने सिरकी बिजली से सुन्न कर देती है और फिर ज़िन्दा ही निगल जाती है। दो वृक्काकार बैटरी इनके सरमें मस्तिष्कके दोनों तरफ होती हैं। बिजली इसी भागकी मांस-पेशियोंके कोष्ठोंमें पैदा होती हैं। १०० पौंड तक वज़नकी रे-मछलीमें १००१०५

वोल्ट तक ताकतकी बिजली पैदा होती है। रोमन्स लोग इन मछलियोंके द्वारा गठियासे पीड़ित लोगों का इलाज भी करते थे।

अमेरिकाके आसपासके समुद्रोंमें कुछ विद्युत्-मछलियाँ मिलती हैं जो कि 'स्टार गेजर' के नामसे मशहूर हैं। बिजली इनके नेत्र की चालनी मांस-पेशियोंमें पैदा होती है। जब कभी समुद्रके छोटे-मोटे जन्तु इनकी कुछ उठी हुई आँखोंको छू लेते हैं तो उनको फौरन मौतके घाट उतरना पड़ता है। नाइल नदीमें कैट-फिश मिलती है। इनका पूरा शरीर विद्युत्-मय रहता है। बिजली उनके शरीरके किसी विशेष अंगमें न पैदा होकर त्वचाकी ग्रन्थियोंमें पैदा होती है। उनके शरीरके किसी भी अंगको छूनेसे तेज धक्का पहुँचता है। अरब देशमें एक मछली मिलती है जिसे यहाँके निवासी राड कहते हैं। इसके भोजन-प्राप्तिका एक अनोखा तरीका है। यह दूसरी मछलियोंको छू तैरकर आगे बढ़ जाती है। बिजलीके धक्केको खाते ही बेचारी मछलीके मुँहमें जो कुछ अधकचरा खाना होता है बाहर निकल आता है और उसे राड फौरन हड़प कर जाती है।

लोगोंका ख्याल था कि जन्तु-विद्युत् मामूली बिजलीसे भिन्न है। फैरेडेके कई एक प्रयोग करनेके बाद यह स्पष्ट हुआ कि इन दोनोंमें कोई अन्तर नहीं है। अब तो वैज्ञानिकों ने यह भी सिद्ध कर दिया है कि हर एक जन्तुके शरीरमें बिजली पैदा होती है। आदमीके हृदयकी प्रत्येक धड़कनके साथ बिजली पैदा होती है और जो चाहे सो इस बिजलीका बहाव कारडीयोग्राफ यंत्र के द्वारा देख भी सकता है।

विदीप्त मत्स्य

प्रकृतिमें कुछ ऐसे जन्तु मिलते हैं जिनके शरीरके कुछ अंगोंसे सदैव प्रकाश निकला करता है। सामुद्रिक जीवोंके लगभग प्रत्येक समूह और समुदायमें विदीप्त जन्तु पाये जाते हैं। नभचर जीवोंमें जुगनूको तो प्रायः सभी ने देखा होगा। इनका और दूसरे सामुद्रिक जन्तुओंका वृत्तान्त अत्यन्त रोचक है।

उन विदीप्त जन्तुओंके शरीर पर जो अगाध जलमें एक मीलकी गहराईपर रहते हैं पानीका बहुत अधिक दबाव होता है। एक मीलकी गहराई पर एक वर्ग फुट पर १३७ टन अथवा ३८-३६ मनका बोझ होता है। इस आधार पर हम आसानीसे अनुमान कर सकते हैं कि विदीप्त मछलियों, केकड़ों, घोंघों तथा अन्य जन्तुओंके शरीरके ऊपर कितना पानीका दबाव होता होगा। जलके इतने बड़े बोझसे तो इन प्राणियों का शरीर पिचनी हो जाना चाहिये, किन्तु प्रकृति ने इनको अगाध जलके जीवनके लिये पूर्णतया तैयार कर दिया है। उदाहरणके तौर पर मछलियोंकी अधिकांश हड्डियाँ जोड़ पर कोमलास्थि विशिष्ट होती हैं और कोई कोई ढीले बन्धनोंसे बंधी होती हैं। अतः पानी-का दबाव पड़नेसे वे लचक खा जाती हैं, टूटती नहीं। इतनी गहराईमें रहनेके लिये इनकी शरीर-रचना इतनी पूर्ण होती है कि यदि वे समुद्रकी सतह पर लाई जावें तो फौरन उनका शरीर फट जाय। समुद्रके इस घोर अंधकार-मय प्रदेशको इन्हीं जन्तुओंके विदीप्त अंग थोड़ा बहुत प्रकाशित करते हैं।

विदीप्त अंगोंसे इन जन्तुओंको क्या-क्या लाभ हैं, इस विषय पर विज्ञान-वेत्ताओंमें बड़ा मतभेद है। कुछ वैज्ञानिकोंका मत है कि प्रकृति ने कुछ जीव-जन्तुओंको विदीप्त अंग प्रदान करनेमें इनके हितपर विशेष दृष्टि रक्खी है। ये अंग इन जन्तुओंको अनेक अद्भुत तरीकोंसे सहायता देते हैं। इनके द्वारा कुछ जन्तु निर्बल और निस्सहाय मछलियोंको अपनी तरफ बहका कर आकर्षित कर लेते हैं और फिर उन्हें हड़प कर जाते है। इस तरह इनको भोजनकी प्राप्तिमें बड़ी सहायता मिलती है। कुछ जातियों और उपजातियोंके विदीप्त-अंग भिन्न-भिन्न रंग और आकारके होनेके कारण विज्ञापन का भी काम देते हैं। इन्हींकी सहायतासे ये अपनी जाति और उपजातिके जीवों को दूर ही से पहचान लेते हैं और आकर अपने-अपने समूहमें मिल जाते हैं। विज्ञापन की यह विभिन्नता मादा-को अपने उपजातिके नरकी खोजमेंभी पूरी सहायता पहुँचती है। तीसरा उपयोग यह है कि इन अंगोंके द्वारा विदीप्त जन्तु अपने क्रूर और बलवान शत्रुओंको डरा कर भगा देते हैं। किसी-किसीमें ये अंग 'टार्च' का भी काम करते हैं और अपना या इस स्थानके दूसरे जीवोंके मार्गको प्रकाशित कर भोजनकी खोज-बीन बहुत कुछ आसान कर देते हैं। प्रकाश पैदा करने वाले अंगोंकी रचना बड़ी ही

आश्चर्यजनक है। इन विदीप्त अंगोंके तन्तु लेन्स और परावर्तकका काम करते हैं और सफेद, सुनहरा, लाल, नीला और हरा प्रकाश पैदा करके उसे प्रायः आवश्यकतानुसार मनचाही दिशामें फेंक सकते हैं। लोगों का यह अनुमान है कि इन अंगोंकी दमक का स्फुरससे कुछ विशेष सम्बन्ध है, किन्तु वास्तवमें ऐसा नहीं है। आधुनिक रसायनाचार्योंने स्पष्ट कर दिया है कि पानी और ओषजनकी उपस्थितिमें 'लूसिफरेज' पर 'लूसीफरिन' की जो प्रक्रिया होती है, उसीसे यह तापरहित प्रकाश उत्पन्न होता है। अतएव इस प्रकाशको वैज्ञानिक दृष्टिसे दमक न कह कर दीप्ति ही कहना उचित और ठीक है।

उपरोक्त पंक्तियोंमें लेखक ने इन जन्तुओंका एक सामूहिक विवरण देने का प्रयास किया है। निम्नलिखित पंक्तियोंमें इन असंख्य प्राणियोंमें से कुछ जो विशेष महत्वपूर्ण और रोचक हैं उन्हींका संक्षिप्त विवरण दिया जाता है।

समुद्रके अगाध जलमें स्टोमिया और पैकी स्टोमिया मछलियोंके शरीरके दोनों तरफ विदीप्त अंगोंकी दो कतारें होती हैं। इनको देखनेसे ऐसा मालूम होता है कि मानों इनकी काली त्वचामें बिजलीके छोटे-छोटे बल्ब जड़े हों। बांडा टापुओंके आस-पासके छिछले पानीमें फोटोब्लिफेरान मछलियाँ मिलती हैं। इनके प्रत्येक नेत्रके नीचे एक विदीप्त अंग होता है जो इनके नेत्रसे प्रायः तुगना बड़ा होता है। इनकी सहायतासे ये रात्रिके समय भी छोटी-छोटी मछलियों और घोंघोंको पकड़ कर अपनी क्षुधा शान्त करती हैं। लेकिन दिनमें जब इस प्रकारकी आवश्यकता नहीं रहती, वे प्रायः अपनी काली त्वचा को इनके ऊपर खींच इन्हें ढक लेती हैं। (चित्र नं० ।)। सबसे अधिक आश्चर्यजनक विदीप्त अंग "मछुआ मत्स्य" का होता है। ये करीब १२०० फुटकी गहराई पर मिलती हैं। इनकी सूरत बड़ी भयानक होती है। विशेषकर मुंह खोलने पर इनकी आकृति और ज्यादा डरावनी मालूम पड़ती है। सर पर एक लम्बी शुंड होती है जो कि मछुओं को मछली पकड़ने वाली बंसी का काम देती है। इस बंशीके मध्यममें विदीप्त अंग और दूसरे सिरे पर एक कटिया होती है। छोटी-छोटी मछलियाँ और दूसरे जन्तु इस प्रकाश को देखकर आकर्षित होते हैं और कटियामें फँस जाते हैं। फँसते ही मछली एक जोर का झटका मार अपने शिकार को मुँहमें रख लेती है।

एक दूसरा मछुआ-मत्स्य (लेटिन नाम मिलानोसटिस) भी समुद्र की अथाह गहराईमें मिलता है। इसे 'सामुद्रिक दानव' कहना बिलकुल ठीक है, क्योंकि इसकी सूरत बड़ी ही भयानक होती है। इसके दाँत बड़े ही खौफनाक और नुकीले होते हैं। इसके विदीप्त अंगसे छोटी-छोटी मछलियाँ आकर्षित हो इसके मुँहकी विशाल गुफामें घुस जाती हैं। वास्तवमें ये 'मौतके मुँह' में घुसती हैं।

'साधु केकड़े' (हरामिट क्रैब) की कहानी बड़ी मनोरंजक है। यह केकड़ा शंखके अन्दर रहता है और शंखके ऊपर उसका परम हितकारी मित्र 'सी-एनीमोन' अपना डेरा डालता है। ये केवल केकड़ेकी रक्षा ही नहीं करता वरन् अपने विदीप्त अंगोंके प्रकाशसे इसके रास्तेको भी सदैव प्रकाशित करता रहता है। इस सेवाके बदलेमें उसे अपनी क्षुधा शान्त करनेके लिये साधु केकड़ेकी जूंठन मिल जाती है [चित्र नं० ४] इस प्रकारके पारस्परिक-लाभजनक-सहयोगके दृष्टान्त जन्तु-जगतमें बहुतेरे हैं।

एक केकड़ा ऐसा मिलता है जिसके स्पृश्य-शुंडके निचले भागमें दो ग्रन्थियाँ होती हैं जिनमेंसे आवश्यकता के समय एक रासायनिक-द्रव निकलकर आसपासके पानीमें घुल जाता है। पानीमें घुलते ही कुछ ऐसी प्रक्रिया होती है कि यह पानी सुन्दर नीले प्रकाशसे दमकने लगता है। चित्र नं० ५।

'कंघी-झारी' (स्टेनोफेरा) जन्तु प्रायः बहुत छोटे और गोलाकार शरीरके होते हैं। ये बड़ी तेजीके साथ पानीमें तैरते हैं। गर्मीके दिनोंमें जब ये लाखोंकी संख्यामें समुद्रकी सतह पर आजाते हैं तब इनके विदीप्त अंगोंके तेज़ प्रकाशसे लहरें जगमगाने लगती हैं। इस समुदायका सबसे सुन्दर जन्तु 'मदन मेखला' (वीनस गर्डिल) है। ये भूमध्य और अटलांटिक महासागरमें मिलते हैं। दूसरे 'टीनोफरा' की तरह इनका शरीर गोलमटोल नहीं होता। ये पेटकी शक्लके हल्के लाल और नीले रंगके होते हैं। इनकी लम्बाई तीन फीट और चौड़ाई दो इंचकी होती है। रात्रिके अंधकारमें इनका पारदर्शक विदीप्त शरीर नीले प्रकाशसे दमकने लगता है। इसकी सुन्दरता को देखकर हमें यह मानना पड़ता है कि

भावुक वैज्ञानिकों ने इस जन्तुका नाम 'मदन मेखला' उपयुक्त चुना है।

घोंघा-वंशमें कुटिल मत्स्य (स्क्विड) नामके जन्तु जापान के आस-पास पाये जाते हैं। जाड़ेके दिनोंमें यह समुद्रकी अथाह गहराईमें चले जाते हैं। लेकिन गर्मीके दिनोंमें कुछ ऊपर आजाते हैं। विदीप्त अंग प्रायः इनके शरीरके हर एक भागमें होते हैं। इन्हें हम वास्तवमें 'जीवित टार्च' कह सकते हैं।

गर्मीके दिनोंमें समुद्रकी सतह पर अनेक प्रकारके छोटे-छोटे जन्तु मिलते हैं। इनमें प्रायः एक कोष्ट जन्तु और कुछ घोंघा और केकड़ाके लार्वा होते हैं। ये करीब-करीब सभी विदीप्त होते हैं। ग्रीष्म ऋतुमें रात्रिके समय जब कभी समुद्र शान्त रहता है तब यहाँका दृश्य देखने योग्य रहता है। जो लहरें किनारेकी चट्टानोंसे टकरा-टकरा बिखर जाती हैं, जलमें असंख्य विदीप्त जन्तुओंके मौजूद होनेके कारण वे नीली लपकोंके समान मालूम पड़ती हैं। नाविक लोग जब रातको मछलीके शिकारके लिये निकलते हैं तब उन्हें एक अनोखा आनन्द अनुभव होता है। नाव खेते समय जब डांड पानीकी सतहसे ऊपर उठते हैं तब वे इन सूक्ष्म जन्तुओंके नीले प्रकाशसे जगमगाने लगते हैं। उष्ण कटिबन्धमें इन विदीप्त जन्तुओंका प्रकाश और भी ज्यादा तेज़ रहता है। इन्हीं असंख्य 'जीवित ज्योति' के प्रकाशके कारण समुद्रका शान्त वक्षस्थल रातके घोर अन्धकारमें दूधिया चद्दर की तरह सुन्दर प्रतीत होता है। इस प्रकाश को पैदा करनेमें एक कोष्टक जन्तु नाटकी ल्यूका का विशेष हाथ रहता है। ये प्रायः १/२५ इंच चौड़े होते हैं। इनके शरीरकी रचना केवल अन्वीक्षण यंत्रके ही द्वारा देखी जा सकती है। इनके मुँहके पास एक सेलांकुर होता है जिसकी सहायतासे ये सूक्ष्म जीवाणु पानीमें तैरते हैं। इनका पूरा शरीर विदीप्त नहीं होता। इनके शरीरसे इतना तेज प्रकाश निकलता है कि अगर एक छोटी सी कांचकी नलीमें कुछ नाटकी ल्यूका इकट्ठी की जाय तो हम आसानी से एक फुट पर रक्खी हुई हाथकी घड़ीमें समय देख सकते हैं। वास्तवमें यही सामुद्रिक 'जीवित ज्योति' हैं।

नभचर प्रदीप्त जन्तुओंमें ज्वलन्त कपिशा (फायर-फ्लाइ बीटल) और जुगुनू सबसे ज्यादा विख्यात हैं। आर्द्र जल-वायुमें झाड़ियोंके आसपास जुगुनू नं० ८ दिखलाई पड़ते हैं परविहीन मादा परदार नरसे कहीं ज्यादा प्रकाश पैदा करती हैं। इनके अण्डे लार्वा और प्यूपे सभीमें 'दीप्त' होते हैं। मादामें दो विदीप्त अंग उदरकी आखिरी तीन कुण्डलियोंके निचली तरफ होते हैं। लैंगले और वैरी ने यह सिद्ध कर दिया है कि मोमबत्तीकी अपेक्षा १/४०० भाग सामर्थ्य खर्च करके जुगुनू प्रकाश उत्पन्न करता है। इन अंगोंके द्वारा मादा नरका ध्यान अपनी ओर आकर्षित करती है। ऐसा देखा गया है कि मादा जुगुनू घासकी फुनगी पर जा बैठती है और बड़ी नजाकतके साथ नाच-नाच कर अपने प्रेमीके पास प्रेम-संकेत भेजती है। दक्षिणी अमेरिका की ज्वलन्त टिड्डियाँ जुगुनूसे कहीं ज्यादा बड़ी होती हैं। इनके सीनेके दोनों तरफ गोलाकार विदीप्त अंग होते हैं और एक उदरके निचले भागमें भी होता है। इनमें जुगनू के विदीप्त अंगोंसे कहीं ज्यादा लाल और हरे रंगका प्रकाश निकलता है। ब्रेज़ीलके जंगली लोग इन्हें लालटेनकी जगह भी इस्तेमाल करते हैं।

कुछ दंडाणु (बैक्टीरिया) भी विदीप्त होते हैं। कुछ बगुले और उल्लुओंके सीनेसे कभी-कभी प्रकाश निकलते देखा गया है। यह प्रकाश वास्तवमें इन्हीं निर्दोष लेक्ष्म जीवाणुकी उपस्थितिके कारण होता है। विदीप्त जन्तुओंके शीतल प्रकाशका उपयोग अनेक मनुष्योपयोगी कामोंमें भी हुआ है, और सम्भव है कि निकट भविष्यमें और ज्यादा हो। हरे और लाल रंगके प्रकाशकी टिड्डियोंको तो अमेरिकाकी स्त्रियाँ अपने बालोंमें लगा शृंगार करती हैं। बांदा टापूके आदिम निवासी फोटो ब्लिफिरान मछलीके विदीप्त अंगोंके छोटे-छोटे टुकड़े कटियामें लगा मछलीका शिकार करते हैं। विदीप्त सूक्ष्म जीवाणु का शीतल प्रकाश बारूद खानोंमें इस्तेमाल किया जाता है इनके तापहीन प्रकाशके प्रयोगसे आग लगनेका कुछ भी डर नहीं रहता। इसमें कुछ भी आश्चर्य न होगा यदि भविष्यमें विज्ञान-वेत्ता इन जन्तुओंके शीतल प्रकाशके रसायनको भली-भांति समझनेके बाद प्रयोगशालामें रासायनिक शीतल प्रकाश पैदा करनेमें सफ-लता प्राप्त करें।

१२
कुछ विशेष कीट

मच्छर

भारतवासियोंको दुख देने वाले रोग तो बहुत हैं पर जूड़ी, जिसके जड़य्या, जाड़ेका बुखार, अंतरा, चौथिया, आदि अनेक नाम और रूप हैं, सबसे अधिक दुःखदायिनी है और ताऊन और हैज़ेके समान हज़ारोंका संहार करती है। यह रोग कुछ थोड़ेसे टापुओंको छोड़कर जो महासागरमें इधर-उधर छिटके हुए हैं पृथ्वीके समस्त देशोंमें होता है। उत्तर और दक्खिनके ठंडे देशोंमें रहने वाले इससे इतने परिचित नहीं हैं। सुना गया है कि एक बार इस रोग ने इंगलैण्ड पर भी कोप किया था। इस रोगको अंगरेज़ीमें मलेरिया कहते हैं। यह रोग दलदल और नीची धरतीमें बहुधा अपना जन्म ग्रहण करता है। नदियोंके मुहानेके पास और उन स्थानोंमें जहाँ पानी जमा रहता है और जहाँ धरती भीगी रहती है, इसकी जन्म-भूमि है। बहुत दिनों तक लोग यह समझते थे कि दलदलों से जो विषभरी हवायें निकलती हैं उन्हीं से यह रोग उत्पन्न होता है। पीछे जब लोगों ने जाना कि अनेक प्रकार के कीटाणु (जर्म्स) से अनेक रोग उत्पन्न होते हैं तो विद्वानों ने अनुमान किया कि मलेरियाके छोटे-छोटे कीड़े होते हैं जो मनुष्यके शरीरमें मैला पानी पीनेसे प्रविष्ट हो जाते हैं। पर इस बातको प्राचीन समयमें भी विद्वानों ने देखा था कि जहाँ जूड़ीका बुखार बड़े वेगसे फैलता था उसीके साथ ही मच्छर और भुनगोंकी भी अधिकता होती थी। अब यह बात सिद्ध हो गई है कि मलेरिया ज्वरको फैलाने वाले मच्छर ही हैं। यह सम्भव है कि किसी प्रान्तमें मच्छर हों पर मलेरिया न हो। पर ऐसा कभी देखनेमें नहीं आया कि जहाँ मलेरिया हो वहाँ मच्छर न हों। मलेरियाका कीटाणु मच्छरके शरीरमें ऐसेही रहता है जैसे वृक्षों पर अमरबेल और उसीके द्वारा मनुष्यके रक्तमें पहुँचता है। यहाँ हम मलेरिया ज्वर और मलेरियाके कीटाणुको छोड़कर मच्छर ही का जीवन-वृत्तान्त लिखना चाहते हैं। उसका जीवन इस प्रकार आरम्भ होता है। मादा मच्छर भन-भनाती हुई मैले पानीके कुंडके ऊपर अपनी अगली टांगोंके बल किसी बहती हुई लकड़ीके टुकड़े पर बैठती है और वहीं अंडे देने लगती है। इसके घंटे भर पीछे उसकी पिछली टांगोंके बीचमें एक छोटी सी नौकाके आकारकी वस्तु दीख पड़ती है जिस पर दो तीन सौ अंडे अलग-अलग रक्खे रहते हैं। अंडे एक दूसरेसे एक ऐसे रससे जुड़े रहते हैं जिसमें पानी नहीं समा सकता। यह अंडे बहुधा सूर्यो-दयसे पहले दिये जाते हैं। अंडोंका बेड़ा बनते ही मादा मच्छरका काम निबट जाता है और वह उनको पानीमें छोड़कर उड़ जाती है। अंडोंका यह बेड़ा पानीमें डूब नहीं सकता। झकोरा आनेपर या ठेला जाने पर नीचे चला जाता है परन्तु फिर उतराने लगता है। उस पर पानीका कुछ भी असर नहीं होता। एक दिन व रात बीत जाने पर हर अंडेके नीचेके भागसे एक कीट निकलता है। यह छोटा कीट पानीके भीतर पैदा होता है। हवामें सांस लेता है और इस हवाके लिये इसको बार-बार पानीके तल पर आना पड़ता है। हवा को यह दुमकी ओरसे एक नलीके द्वारा खींचता है। यह कीट बहुधा पानीके तल पर ही उलटा लटका रहता है और उसकी दुमका छोर जहाँ नली का मुंह होता है हवामें निकला रहता है। चित्र ४)।

पहले चित्रमें अंडोंके कई बेड़े दिखाये गये हैं जिनमें कीट अंडोंसे निकल रहे हैं और बहुतसे पानीके तल पर लटके हैं। यह याद रखना चाहिये कि जन्तु लगभग चार गुना बड़े दिखाये गये हैं। इन अंडोंके बेड़ोंके परिमाणका अनुमान इससे हो सकता है कि यदि दस या बारह ऐसे बराबर रक्खे जावें तो शायद एक इंचके बराबर हों। कीट तो इस समय और भी छोटे होते हैं।

चित्रमें पानीका तल सीधी सतरसे दिखाया गया है सैकड़ों कीट हैं और हवामें सांस ले रहे हैं। आठ नौ घंटेके पीछे सैकड़ों कीट दिखाई देते हैं। उनमेंसे बहुतसे तो पानी के तल पर हैं और बहुतसे पानीमें बिलबिला रहे हैं बरसातमें गड्ढोंमें जहाँ पानी बहने नहीं पाता यह कीट बहुत दिखाई देते हैं। पुराने घड़ों और टूटे बरतनोंमें जो बरसातमें खुले पड़े रहते हैं और जिनमें बरसाती पानी

जमा हो जाता है उनमें और जिन घड़ोंका पानी कई दिन तक नहीं बदला जाता उनमें भी ये कीट बिलबिलाते हुए देखे जा सकते हैं।

ये कीट बहुत जल्दी बढ़ते हैं। जो कुछ घंटे पहले अंडोंसे निकलते हैं वे पीछे निकलने वालोंसे अलग पहचाने जा सकते हैं। चित्र ४ में ये कीट चार दिनके दिखाये गये हैं जिनमें यह अपनी सांस लेने वाली नलियोंके सहारे उलटे लटके हुये हैं। ये कीट ऐसे ही उलटे लटके रहते हैं पर यदि कोई पानीके पास पहुँचता है तो ये चट नीचे गोता लगा जाते हैं। छाया पड़नेसे भी ये तुरन्त ही पानीमें चले जाते हैं। यदि खाने पीनेका सामान कीटके लिये बहुतायतसे हुआ तो ये कीट दस दिनके भीतर अपनी सूरत बदलते हैं। इन दस दिनों तक यह कुछ खाता दिखाई नहीं देता। इसका कारण यह है कि हम लोग उतनी छोटी खानेकी चीज़ें जो यह खाता है नहीं देख सकते। ये चीज़ें इस कीटके मुँहमें पानीके प्रवाहके साथ चली जाती हैं। जब खानेकी कमी होती है तब यह कीट महीनों ऐसा ही रह सकता है मरता नहीं और खाना पाने पर फिर ठीक हो जाता है।

हम अपने लेख के लिये यह मान लेंगे कि हमारे कीट को न तो किसी दूसरे जन्तुने खाया और न उस पानीमें जिसमें यह पैदा हुआ कुछ खाने ही की कमी हुई। दस बारह दिन पीछे इस कीटका एक विचित्र रूप हो जाता है। यह बिलकुल गोलाकार हो जाता है और सिर ही सिर दीख पड़ता है। यह सूरत इसकी बारहवें दिन हो जाती है जब यह पहिली बार केंचुल बदलता है।

इस रूपमें भी मच्छर हवामें सांस लेता है परन्तु पूँछ की नली द्वारा नहीं। यह पूँछ छोटी होती है और पानीके नीचे रहती है। इसमें दो डांड़ ऐसे लगे रहते हैं जो उसको तैरनेमें सहारा देते हैं। इस कीटकी पीठ पानीके तलके ऊपर निकली रहती है। इसका सिर नीचेकी ओर मुड़ा रहता है। इसकी पीठकी दोनों ओर दो नलियाँ निकली रहती हैं। जिनसे यह साँस लेता है)। यह नलियाँ पानीके ऊपर निकली रहती हैं। कीटके इस रूपको अँगरेज़ीमें प्यूपा (pupa) कहते हैं। यह कीट इस समय तक कुछ खाता नहीं, क्योंकि इस समय इसका मुँह और धड़का बीच वाला भाग बिलकुल गोलेके भीतर बन्द रहता है और इसी समय उसके मुँहके वे भाग, जो बड़े मच्छरमें सुई और छोटे मच्छरमें छुरेकी भाँति होते हैं जिनको गड़ो कर मच्छर रक्त चूसता है, बनते हैं। यह दशा चार पाँच दिन तक रहती है और इसी समयमें मच्छरका पूरा शरीर बन जाता है। इसके छोटे-छोटे चिकने पंख, इसकी ६ लम्बी टाँगें इसका सिर, दो आँखें और उसकी सुई भीतर ही भीतर बन जाती हैं। इसके पीछे यह जन्तु टेढ़ा हो जाता है। जहाँ पर साँस लेने वाली नलियाँ होती हैं वहाँकी खाल चिटकती है और धीरे-धीरे मच्छर निकलने लगता है। सबके पीछे टाँगें निकलती हैं। उसके पीछे मच्छर पानी से उड़ने का उद्योग करता है। यह पहिले अपने पर

मच्छरोंकी वृद्धि

बायें स्तंभमें सबसे ऊपर ऐके फ़िलीज़ (मलेरिया उत्पादक) मच्छर के अंडे, नीचे ढोला, उसके नीचे कुप्पा और अंतमें तरुण मच्छर दिखलाया गया है। दाहिने स्तंभमें ऊपर क्यूलेक्स (साधारण) मच्छरके अंडे, ढोला, कुप्पा और तरुण अवस्था प्रदर्शित है।

सम्हालता है और खालको धक्का देकर हवामें उड़ जाता है। इस रीतिसे निश्शंक अंतरिक्षमें उड़ जानेका ज्ञान उसको कहाँसे हुआ यह ईश्वर ही जानता है। मच्छरके सांसारिक जीवनका यही श्रीगणेश है जो पीछे अधिकांश मनुष्य जातिको रात्रिके समय अपना गाना सुनानेके लिये बाध्य करता है। कोई बिरला ही भाग्यहीन होगा जिसको इनका गाना सुननेका सौभाग्य न प्राप्त हुआ हो।

दीमक

दीमकको सभी लोग जानते हैं। इसका अंग्रेजी नाम 'ह्वाइट एँट' है। इस शब्दका अर्थ है सफेद चींटी। तथापि कीट शास्त्रकी दृष्टिसे दीमक और चींटी भिन्न-भिन्न वर्गके प्राणी हैं और दोनोंके जीवन-इतिहासमें कुछ भी साम्य नहीं है। अफ्रीका और अमेरिकामें दीमक बहुत होती है। यूरोपके कुछ देशोंमें भी यह पाई जाती है। संभवतः अफ्रीका और अमेरिकासे ही यह प्राणी यूरोप गया हो। भारतवर्षमें भी दीमक बहुत पाई जाती है। कह नहीं सकते कि भारतवर्षमें भी दीमक अमेरिका और अफ्रीकासे ही आई है या नहीं।

दीमकके छत्तेमें तीन प्रकारके प्राणी पाये जाते हैं—राजा, रानी, सैनिक और मजदूरिन (या कमेरी)। मजदूरिनोंमें नर और नारी दोनों होते हैं, किन्तु सन्तति उत्पन्न करनेकी शक्ति उनके नहीं होती। इनके पंख भी नहीं होते। छत्तेकी दुरुस्ती करना, नवीन छत्ता बनाना और अंडोंकी व्यवस्था करनेका काम इनके ज़िम्मे रहता है। सैनिकोंके नर और नारी दोनों होते हैं। इनका सिर मज़दूरिनोंके सिरसे बड़ा होता है और ये हृष्ट-पुष्ट भी होते हैं। छत्तेकी रक्षाका भार इन्हींके जिम्मे रहता है और यही कारण है कि इन्हें सैनिक कहते हैं। छत्तेको ज़रा सा धक्का लगते ही सैनिक मुँह फाड़कर बाहर दौड़ आते हैं। डर किसे कहते हैं यह तो वह जानते ही नहीं। वे साहसपूर्वक शत्रुपर आक्रमण कर उसे नोच डालते हैं। छत्तेके टूट जाने पर वे मज़दूरोंको बुलाकर उसकी दुरुस्ती करवाते हैं और जब तक काम जारी रहता है, मज़दूरोंकी रक्षाके लिये वहीं डटे रहते हैं। मज़दूर और सैनिक दीमकके आँखें नहीं होतीं। बड़े आश्चर्यकी बात है कि वे बिना आंखोंके छत्तेके टूटे भागको किस प्रकार देख पाते हैं! इस प्रश्नका सन्तोषजनक उत्तर आज तक नहीं मिला है।

भारतवर्ष और अन्य देशोंकी दीमकका जीवनक्रम करीब-करीब एकसा है। यही कारण है कि भारतीय दीमक पर यहाँ कुछ नहीं लिखा गया है। अफ्रीकामें दीमक की अनेक जातियाँ हैं। हर एक जातिमें कुछ न कुछ विशेषता रहती है। अफ्रीकाकी एक जातिकी दीमकका वृत्तान्त पाठकोंके मनोरंजनार्थ नीचे दिया जाता है।

दीमक

बीचमें वृहत्काय जंतु रानी है, जो अंडे देती है। उसको घेरे हुए कमेरी दीमकें हैं। बाहर पंक्तिबद्ध होकर सिपाही दीमकें पहरा दे रही हैं।

मज़दूरिन दीमकको लम्बाई $\frac{1}{5}$ इंच होती है। उसका शरीर बहुत नाज़ुक होता है, किन्तु मुँह बड़ा मजबूत होता है। अतएव वह कठिन पदार्थोंको भी चबा डालती हैं। सैनिक मज़दूरिनसे दूना बड़ा होता है। एक सैनिकका वज़न १५ मज़दूरों के वजनके बराबर होता है। सैनिकका मुख बहुत ही मज़बूत होता है। शरीरके मानसे उनका

सिर ज्यादा बड़ा होता है। इनके दो स्पर्शेन्द्रिय होती हैं। नर (राजा) करीब ½ इञ्च लम्बा होता है। सैनिक और मजदूर की अपेक्षा नर अधिक बड़ा होता है। एक नरका वज़न दो सैनिकोंके बराबर होता है। फिर भी मादाके आगे नर बहुत ही छोटा नज़र आता है। गर्भवती मादाका पेट शरीरके अन्य भागसे हज़ार गुना बड़ा होता है। मादा छः इञ्च तक लम्बी होती है।

रानी चींटीकी तरह रानी दीमक भी पूर्णावस्था प्राप्त होते ही हवामें उड़ जाती है। हवामें ही नरके संयोगसे वह गर्भवती होती है। गर्भाधान होते ही वह छत्तेमें लौट आती है और तब पंख उखाड़ कर फेंक देती है। ज्यों-ज्यों गर्भ बड़ा होता जाता है रानीका पेट बढ़ने लगता है। पेटके बढ़ जाने पर मादा हिलडोल भी नहीं सकती। वह एक ही स्थान पर बैठकर अपना सब व्यवहार चलाती है। रानीको भोजन कराना, अण्डोंकी व्यवस्था करना, आदि छत्तेमेंका सब काम मज़दूरोंको ही करना पड़ता है। रानी एक ही स्थान पर पड़ी-पड़ी अण्डे देती रहती है। अण्डे देनेके सिवा उसे दूसरा काम ही नहीं रहता। साधारणतया वह एक दिनमें ६०-८० हज़ार अण्डे देती है। यदि प्रकृति माता उन्हें सम्भव बनाये रखनेकी व्यवस्था की होती, तो सारा संसार दीमकसे भर जाता। दीमकके असंख्य शत्रु हैं। पक्षी उसे बड़े चावसे खाते हैं। अफ्रीकाके हबशी भी दीमक खाते हैं। वे लोग छत्तेके चारों ओर नाली खोद कर उसमें पानी भर देते हैं, और तब दूर खड़े होकर छत्ते पर लाठियाँ मारते हैं। दीमक छत्तेमें से निकल कर पानीमें गिर पड़ती हैं। हबशी इन्हें अंजुलि भर-भर कर खाते हैं। दीमकको आटेमें मिलाकर रोटी भी बनाते हैं। अफ्रीकामें जाने पर यूरोपवासी भी दीमक खाना सीख गये हैं। कुछ देशोंके लोग दीमकको चिलममें भर कर तमाखू की तरह पीते हैं।

अफ्रीकामें दीमकका छत्ता कुछ तो ज़मीनके अन्दर होता है और कुछ बाहर। रानी जमीनके ऊपरके भागमें रहती है। रानी एक कमरेमें रक्खी जाती है; इसका प्रबंध दीमक समाजके अन्य सदस्य करते हैं। इस कमरेमें कई छोटे-छोटे दरवाजे बने रहते हैं। दरवाजे इतने छोटे बनाये जाते हैं कि रानी बाहर न निकल सके। रानीके महलके चारों ओर छोटे-छोटे कमरे बनाये जाते हैं। इनमें सैनिक रहते हैं। पास ही अण्डे रखनेके तहखाने भी होते हैं। अफ्रीकामें छत्ते १०-१२ फुट ऊँचे होते हैं। जानसन नामक एक प्रवासी ने एक स्थान पर २० फुट ऊँचा छत्ता देखा था।
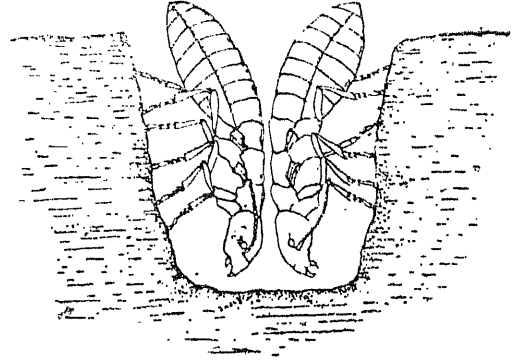
नर और रानी

बरसातके दिनोंमें चित्रके आकार के, परंतु पंख-युक्त, जो फतिंगे किसी-किसी दिन बहुत अधिक संख्यामें दीमकके पास उड़ कर आते हैं, वे नर और रानी दीमक होते हैं। उसी दिन उसका पंख झड़ जाता है। तब एक-एक नर एक-एक रानीको लेकर भूमिमें कहीं बिल खोदते हैं (जैसा इस चित्रमें दिखलाया गया है। और वहीं दीमकोंकी एक बस्ती बस जाती है। रानीके गर्भित होनेके बाद उसका पेट बहुत बड़ा हो जाता है (पिछला चित्र देखें)।

दीमक के छत्ते बहुत मजबूत होते हैं। कहीं-कहीं तो दीवारें १५ इञ्च तक चौड़ी होती हैं। उनपर जंगली भैंसोंके ऊपर खड़े हो जाने पर भी छत्ता नहीं टूटता।

दीमक लकड़ीके सामान, पुस्तक आदि खाकर नष्ट कर डालती हैं। उसके खानेकी रीति भी बड़ी विचित्र है। वह लकड़ीके भीतर घुस जाती है और तब भीतर ही भीतर उसे खाती रहती है। बाहरसे तो लकड़ी ज्यों की त्यों नजर आती है, किन्तु जरा सा धक्का लगते ही सब चूर-चूर हो जाती है। पुस्तकोंकी जिल्द भी वह इसी तरहसे खाती है। आज तक अरबों रुपयेका सामान दीमक ने नष्ट कर डाला है। लाखों अमूल्य और दुर्लभ ग्रन्थ इसने खा डाले

हैं। दीमकके कारण मानव समाजको प्रति वर्ष करोड़ों रुपयेका नुक़सान उठाना पड़ता है।

एक बार घरमें घुस जाने पर दीमकसे सामानकी रक्षा करना असंभव हो जाता है। थोड़े ही दिनोंमें वह मकानको ज़मींदोज़ कर देती है। आज तक हजारों उपाय काममें लाये गये हैं; किन्तु अभी तक एक भी कारगर नहीं हुआ। तारपीनका तेल और साबुनसे दीमकका नाश किया जा सकता है, किन्तु ये पदार्थ सब जगह काममें नहीं लाये जा सकते। क्लोरीन गैससे भी दीमक मर जाती है। छत्तेमें क्लोरीन डालनेसे अधिकांश प्राणी मर जाते हैं। सबसे अच्छा उपाय तो यह है कि छत्ता खोदकर 'रानी' मार डाली जाय। जब तक रानी नष्ट न की जायगी मजदूरों और सैनिकोंके मारनेसे कुछ भी लाभ न होगा। कभी-कभी रानी जमीनके अन्दर बहुत गहराई पर रहती है। अतएव उसे ढूँढ़ निकालनेमें बड़ी दिक़्क़त उठानी पड़ती है। यदि मकानमें दीमक लग जाय तो फ़र्श पक्का कर देना चाहिये; क्योंकि मिट्टीकी सहायताके बिना दीमक एक स्थानसे दूसरे स्थानको जा ही नहीं सकती। थोड़ी दूर जानेके लिये वह आस-पासकी मिट्टी इकट्ठी कर उसे चिपका देती है और तब मिट्टीके अन्दर ही अन्दर आगे बढ़ती है। रोज़ झाड़ू देते रहनेसे मिट्टी फर्श परसे निकल जाती है; जिससे उसका ज्यादा जोर नहीं चलता।

चींटियाँ

चींटियोंके विभिन्न प्रकार व विशाल संख्या, उनका कार्यक्रम और व्यस्त जीवन अन्य जीवों एवं वनस्पतियोंके साथ उनका सम्बन्ध और प्राकृतिक अनुकूलताके साथ उनके रहनेके ढंगके कारण जीव-संसारमें उनका एक विशेष स्थान है। उत्तरी ध्रुवसे लेकर दक्षिणी ध्रुव तक, घने जंगलोंसे लेकर मरुस्थलमें, पहाड़ोंकी चोटियों एवं समुद्रके किनारों तकमें—जहाँ कहीं भी हम जायें चींटियोंको अनेक संख्यामें पा सकेंगे। अन्य जीवोंकी भाँति इनकी जीवन यात्रामें किसी प्रकारकी असुविधा नहीं है। एक पीढ़ी आयु तक ये जीवित रहती हैं; कारण यह है कि न तो इनको कोई विशेष भोजन और न रहनेके लिए घर बनानेमें किसी विशेष वस्तुकी आवश्यकता ही पड़ती है। ऐसी अवस्थामें जब कभी भी उनके रहनेके स्थानके नष्ट होने का भय हुआ, अथवा जलवायु उनके प्रतिकूल हो गई, वे बिना किसी कठिनाईके अपने बच्चों सहित सुरक्षित स्थान में पहुँच जाती हैं। अन्य जीवोंके लिये ही घर बनानेकी विशेष प्रकारके सामानकी आवश्यकता पड़ती है। बिना उसकी सहायताके वे घर-निर्माण करनेमें असमर्थ हैं, किन्तु चींटियोंके लिये जो कुछ भी सरलतापूर्वक प्राप्त हो जाता है उसीकी सहायतासे वे अपना घर स्थापित कर लेती हैं। कुछ अन्य जीव इनके शत्रु होते हैं, किंतु सबसे अधिक शत्रुता एक प्रकारकी चींटियोंसे दूसरी प्रकारकी चींटियोंसे होती है। बड़ी जातिकी चींटियाँ, छोटी जाति वालियोंको प्रायः निगलनेकी चेष्टामें रहती है।

जिस प्रकार कुछ मनुष्य शिकार करके, जीवोंको पाल कर अथवा कृषि करके अपना जीवन निर्वाह करते हैं, उसी प्रकार कुछ चींटियाँ ऐसी हैं जो अन्य छोटे जीवोंका शिकार करके अपना जीवन निर्वाह करती हैं। कुछ चींटियाँ वनस्पति तथा छोटे कीड़ोंको पालते हैं। कृषक-चींटियाँ वृक्षोंके बीजोंका संग्रह करती हैं। किंतु चींटियोंका सामाजिक जीवन मुख्यतः मादा द्वारा निर्वाह होता है। नर-चींटियोंको उनके झुण्डसे कोई सम्बन्ध नहीं होता। एक बड़े परिवारमें इनकी संख्या ५० लाख तककी होती है और प्रत्येक मादाको एक कार्य विशेष करना होता है। यह अपने रहनेका स्थान पृथ्वीके अन्तर्गत अथवा ऊपर, वृक्षोंके तनोंमें या लकड़ीके कुंदेमें बना लेती है। कुछ जातिकी चींटियोंको छोड़कर प्रायः सबोंके रहनेका ढंग एक ही प्रकारका है। वैवाहिक उड़ानके पश्चात् मादा-चींटी अपने छिपनेके स्थान पर आ जाती हैं और उसका जो सर्वप्रथम कार्य होता है वह है पंखोंसे छुटकारा पाना, जिसका कि भविष्यमें कोई कार्य नहीं होता। वह अपने पंखोंको छोटे पत्थर अथवा घासके प्रतिकूल रगड़ कर गिरा देती है। इस आपरेशनकी क्रियामें उसे कोई विशेष कष्ट नहीं होता, कारण यह है कि एक ही उड़ानके पश्चात् वे अत्यन्त जीर्ण हो जाते हैं और सरलतासे अलग हो जाते हैं। फिर वह मिट्टी खोद कर बिलका भीतरी भाग बड़ा करके कमरा तैयार करती है। इस कठिन क्रियाके बाद एकदम अकेले शिथिल होकर अपने निर्माण किये हुए घरमें चुपचाप बैठ जाती है। ऐसी अवस्थामें उसे प्रायः दिनों, सप्ताहों अथवा महीनों बैठना पड़ता है, तब जाकर

उसके अंडे तैयार होते हैं। ये अंडे छोटे झुंडमें निकलते हैं, जिनमेंसे सूक्ष्म जीव बाहर आते हैं। रानी चींटीकी चर्बी द्वारा लारका निर्माण होता है, जिसके द्वारा इन नये बच्चोंका प्रतिपालन होता है। परिवारके निर्मित करने की क्रियामें मादा भोजन नहीं करती। छोटे बच्चे क्रमशः बढ़कर छिद्र द्वार खोलते हैं और बाहरसे अपना भोजन ले आते हैं; किंतु रानीको उससे कोई सरोकार नहीं होता, वह और भी शिथिल पड़ जाती है और उसका मुख्य कार्य केवल अधिकसे-अधिक अंडे देना रह जाता है। कुछ तरल खाद्य पदार्थ, जो उसके बच्चे ले आते हैं, उनमेंसे थोड़ा सेवन कर वह पुनः कुछ स्वस्थ हो जाती है, किंतु अपने जीवनका प्रायः सारा समय, संभवतः १५ वर्ष तक, वह एकान्त रूपसे अंडे देनेके यन्त्रका कार्य करती है।

केवल थोड़े ही समयमें उनका विशाल परिवार पूर्ण रूपसे सम्पन्न हो जाता है। ज्यों ही बच्चे पूर्ण रूपसे स्वस्थ हो जाते हैं, वे उन रिक्त स्थानोंकी पूर्ति करते हैं जो कि आरम्भके जीर्ण कार्यकर्त्ताओं द्वारा खाली होता है। अंडों का रंग पीला होता है और वे कुछ लम्बे होते हैं। चींटीके नये बच्चे इन अंडोंकी रक्षा अत्यन्त सावधानीसे करते हैं। प्रायः घंटों वे उसे चाटते हैं, जिससे उनका लार अंडोंको एक झुंडमें एकत्रित रखता है और उनपर फफूंद उत्पन्न नहीं होने देता। अंडोंका एक झुण्ड में रखना अत्यन्त आवश्यक है, क्योंकि आवश्यकता पड़ने पर वे शीघ्रतासे एक-एकके बजाय सरलतासे दूसरे सुरक्षित स्थानको ले जाये जा सकते हैं। इसके अतिरिक्त, चूंकि वातावरणका तापक्रम प्रति घंटे बदलता रहता है, उन अंडोंको एक प्रकारके वातावरणमें रखनेके लिये कार्य-कर्त्ताओंको एक कमरेसे दूसरे कमरेमें ले जाना पड़ता है। रानी-चींटीके, जिसकी संख्या एक स्थानमें ३० तक हो सकती है, अंडोंसे कुछ समयके पश्चात् अर्द्धपारदर्शक, नग्न, अंधे सूक्ष्म जीव निकलते हैं। अधिकांशके शरीर पर रोयें होते हैं जिसके कारण वे भूमि की नमीके प्रभावसे सुरक्षित रहते हैं। इसके अतिरिक्त भूख की अवस्थामें जब कभी इनके बड़े भाई इनकी क्षुधा दूर करने का साधन बनानेका प्रयत्न करते हैं तो वही रोयें उनकी रक्षा करते हैं। कभी-कभी इनके रोयें कड़ियादार होते हैं, जो कि दीवारके सहारे एक दूसरेसे लटकनेमें सहायता करते हैं। इन सूक्ष्म जीवोंकी रक्षा करने में नर्सोंको विशेष सावधानीसे कार्य करना पड़ता है। उनको अपने मुखसे भोजन खिलाना पड़ता है। प्रायः एक मास तक विभिन्न अवस्थाओंमें विभिन्न तापक्रम पर रखनेके लिये नर्सों को बहुत कठिनाई उठानी पड़ती है, ताकि बच्चे भली-भाँति विकसित होकर पूर्णरूपसे स्वस्थ हों। शरीरमें मिट्टी न लगने पावे, इसलिये वे बराबर चाटे जाते हैं। नर्सोंकी रालसे उनके कोमल शरीर सुवासित रहते हैं। इसके अतिरिक्त प्रकाश और शत्रुओंसे बचानेके लिये छोटे बच्चोंको एकदम अँधेरे कमरे में रक्खा जाता है।

जब ये सूक्ष्म जीव बड़े हो जाते हैं तो नर्सों द्वारा भूमि के अन्दर जमा दिये जाते हैं, जहाँ पर प्रत्येक जीव स्वयं अपना ककून निर्माण करता है। जब यह क्रिया समाप्त हो जाती है तो पुनः वे भूमिसे बाहर निकाल लिये जाते हैं और उनकी आयुके अनुसार अलग-अलग ढेरमें रख दिये जाते हैं। ककूनके अन्दर आश्चर्यजनक परिवर्तन हो कर वह क्षुद्र जीव युवा चींटीमें परिणित हो जाता है। जिस समय वे ककूनसे बाहर निकलते हैं इनके हाथ, पैर, पंख आदि जुड़े रहते हैं जो कि नर्सों द्वारा अत्यन्त सावधानीसे चाट कर अलग-अलग किये जाते हैं। अब वे चींटियाँ पूर्णरूपसे विकसित होकर नये परिवारके बसानेके योग्य हो जाती हैं। प्रायः प्रत्येक जीवमें वैवाहिक संबंध निकट संबंधियोंमें अच्छा नहीं समझा जाता। उसी प्रकार चींटियोंमें भी इस बातका ध्यान रक्खा जाता है। इसको कार्यरूपमें परिणित करनेके लिये वैवाहिक उड़ानके समय कई एक घरोंकी चींटियाँ एक साथ उड़ती हैं जिसके कारण अधिकतर एक घरके नर चींटी के साथ दूसरे घरकी मादा-चींटीका संबध हो जाता है।

समस्त जाति की चींटियाँ अत्यन्त स्वच्छ होती हैं। समस्त मलमूत्र एवं कूड़ा-करकट आदि हटाकर मजदूरोंको रहने का स्थान पूर्ण रूपसे स्वच्छ रखना पड़ता है। यदि किसी दुर्गंधित पदार्थके हटानेमें वे असमर्थ होती हैं तो उसको उसी स्थान पर भली-भाँति मिट्टीसे ढक देती हैं। कुछ जातिकी चींटियोंको छोड़कर जो मांसप्रिय होती हैं प्रायः समस्त जातिकी चींटियाँ मधुर पदार्थ को बहुत पसन्द करती हैं। इस सम्बन्धमें अमेरिकन जातिकी एक चींटी का 'मधु-पात्र' बहुत ही अनूठा उदाहरण है। ये चींटियाँ अपना

छोटा घर ओक वृक्षके तनोंके समीप निर्माण करती हैं। दिनमें ये चींटियाँ कोई विशेष कार्य नहीं करतीं, किन्तु रात्रि होते ही हजारोंकी संख्यामें ओक वृक्ष पर चढ़ जाती हैं। इन वृक्षों पर अन्य कीड़ोंके कारण कुछ मधु एकत्रित रहता है, जिसको ये चींटियाँ चाटकर अपने घर वापस चली आती हैं। वहाँ पर अन्य चींटियाँ इनकी प्रतीक्षा करती रहती हैं और उनके 'मधु-पात्र' से समस्त मधु एकत्रित कर लिया जाता है। उपरोक्त चींटियाँ भण्डार-घरका कार्य करती हैं और इतनी अधिक मात्रामें उनमें मधु होता है कि यदि वे संयोगवश दीवारसे गिर पड़ें तो उसके बोझसे उनका अन्त हो जाए। आपको आश्चर्य होगा कि ये चींटियाँ इतने परिश्रमसे मधु लाकर क्यों दूसरे को दे देती हैं। इसका भी एक कारण है। प्रतिकूल अवस्थाओंमें जब मधु या अन्य प्रकार का भोजन मिलना असम्भव हो जाता है तब यही 'मधुपात्र' वाली चींटियाँ अन्य चींटियों को भोजन प्रदान करती हैं और अपने परिवारके जीवोंकी रक्षा करती हैं।

अमेरिकामें ही एक जाति की ऐसी चींटी पायी जाती है जो भूमिमें अपने घरोंके अन्दर फफूंद उत्पन्न करती है। ये चींटियाँ पेड़ोंकी पत्तियों को लाकर अपने घरमें रखती हैं। कुछ विशारदोंका विचार था कि पत्तियाँ उनका भोज्य पदार्थ हैं, कुछ की यह धारणा थी कि वे पत्तियोंसे अपने घरों का निर्माण करती हैं, किन्तु इसका मुख्य कारण यह है कि ये पत्तियाँ फफूंदके उत्पन्न करनेमें खादका कार्य करती हैं। इन चींटियोंके कमरे पृथ्वीके भीतर एक मनुष्य के सिरके बराबर होते हैं और कई एक कमरे एक पतले रास्तेसे जुड़े रहते हैं। इन कमरोंमें पत्तियोंके महीन टुकड़ों से बना हुआ सफेद रंग का फफूंद होता है। संतरेके सफेद छिल्के एवं अन्य वनस्पति पदार्थ भी इसके लिये उपयुक्त होते हैं। इन चींटियोंके सम्बन्धमें सबसे आश्चर्यजनक बात यह है कि इन फफूंदोंके लिये वायुके निरन्तर आवागमन-का विशेष ध्यान रखती है। वायुके अनेक रास्ते कभी बंद किये जाते हैं और कभी खोले जाते हैं, ताकि वातावरण का तापक्रम एक समान रहे। कुछ चींटियों का कार्य अन्य प्रकारके फफूंदोंकी उत्पत्तिको रोकना होता है। ज्यों ही दूसरे प्रकारकी वनस्पति का निर्माण हुआ, वे शीघ्रतासे उखाड़ कर फेंक दिये जाते हैं। यही विशेष प्रकारके फफूंद इन चींटियों का भोजन है। जब वे अपना स्थान बदलती हैं, तो इन फफूंदों को साथ ले जाती हैं, जिससे उनके भोजनमें कमी न पड़े। जब मादा-चींटी अपने वैवाहिक उड़ानके लिये घरसे बाहर निकलती है तो अपने अन्तिम भोजन का बचा हुआ फफूंद अपने साथ ले जाती है। उड़ानके पश्चात् भूमिमें छेद कर भीतर जाकर छिद्र को बन्द कर देती है और अपने नूतन परिवारको उत्पन्न करनेमें संलग्न हो जाती है। वह फफूंदको उत्पन्न करनेके साथ ही साथ अण्डे भी देती जाती है, एवं लहर्वा का सेवन भी करती जाती है। ज्यों ही बच्चे बड़े होते हैं, फफूँद का अधिक मात्रामें उत्पन्न होना भी आवश्यक हो जाता है। कारण यह है कि भोजन की खपत अधिक हो जाती है; किन्तु रानी अत्यन्त सुगमतापूर्वक फफूंदकी अधिक मात्रा में उत्पत्ति करती जाती है। परन्तु आरम्भमें फफूंद का भोजन न देकर अण्डोंके द्वारा बच्चोंका पालन करती है, ज्योंही वे बड़े हो जाते हैं, बाहरसे पेड़की पत्तियाँ लाकर फफूंदकी उत्पत्ति में सहायक हो जाती है। फिर रानी-चींटी उसमें कोई सहायता नहीं करती, वह केवल अण्डे देनेके एक शिथिल यन्त्रमें परिणित हो जाती है।

वे चींटियाँ, जो अनाजके टुकड़ों को एकत्रित करती हैं, संसारके समस्त उष्ण भागोंमें अधिकतासे पायी जाती हैं। चारों ओरसे अनाजको एकत्रित कर वे अपने भण्डार घरको भरती हैं। अङ्कुरदार अनाजोंको वे काटती नहीं, किन्तु जब उनके भण्डार घरमें वे उग आते हैं तो उनको उखाड़कर फेंक देती हैं। निस्सन्देह भण्डार करनेसे पहले वे अनाजके छिलकों को निकाल डालती हैं। इन चींटियोंके विषयमें यह भी कहा गया है कि ये एक प्रकारकी वनस्पतिका उत्पा-दन करती हैं; किन्तु ध्यानपूर्वक अध्ययन करनेपर यह ज्ञात हुआ है कि इनके निवास-स्थानके छिद्रोंके समीप जो वन-स्पतिके समान उपज होती है, वह केवल उन चींटियोंके फेंके हुये अनाजके छिलके एवं इसी प्रकारकी अन्य सामग्रियोंके ढेर मात्र होते हैं।

चींटियों की विभिन्न जातियोंमें एक लड़ाकू चींटी भी होती है जो दूसरी जातिकी चींटियोंके निवास-स्थान पर धावा करके उनके छोटे बच्चोंको पकड़ लाती है और

उसे दास की भाँति रखती है। ये लकड़ीके कुंदों अथवा पत्थरोंके नीचे रहती हैं अथवा घर स्वयं बनाती हैं, भोजन एकत्रित करती और बच्चों का पालन करती हैं। पकड़े हुये नौकर केवल घरके बाहर का कार्य करते हैं। ये चीटियाँ जुलाई-अगस्तमें धावा करती हैं। पहले वे अपने स्काउटों द्वारा धावा करनेके उपयुक्त स्थानोंका पता लगवाती हैं, फिर वे कई झुण्डमें प्रस्थान करती हैं और चींटियोंके निवास-स्थानको चारों ओरसे घेर लेती हैं, इस बीचमें घरकी चींटियाँ अपने बच्चों को छिपानेकी चेष्टा करती हैं; किन्तु उसका कोई परिणाम नहीं होता। कारण यह है कि धावा होते ही वे बच्चे उनसे छीन लिये जाते हैं। फिर वे चींटियाँ गर्वपूर्वक अनेक छोटे बच्चोंसे लदे हुए घर को वापस आती हैं। इस प्रकार उनका सफल धावा समाप्त होता है।

यूरोप और अमेरिकामें इसी लड़ाकू जाति की एक और चींटी पाई जाती है जो न अपना घर निर्माण करती है, न भोजन की चिन्ता करती है और न अपने बच्चोंका ही पालन कर सकती है। इन समस्त कार्योंके लिये वे पूर्णरूपसे अपने नौकरों पर निर्भर करती हैं। उन्हीं नौकरोंके बनाये हुये घरोंमें वे निवास करती हैं, नौकरोंकी सहायताके बिना उनका जीवित रहना असंभव है। यद्यपि घरके अन्दर वे स्थिर रूपसे पड़ी रहती हैं और नौकरोंसे अपने शरीर की सफाई और भोजन आदिका प्रबन्ध कराती हैं, तथापि धावा करते समय घरसे बाहर निकलकर वे विशेष रूपसे सचेष्ट हो जाती हैं और एक संगठित नौकर सेनाके सिपाहियोंकी भाँति कार्य करती हैं। वापस आने तक वे भाग नहीं जाते, किन्तु मालिक की अनुपस्थितिमें घर की रखवाली सावधानीपूर्वक करते हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि विभिन्न चींटियोंकी कार्यकुशलता मनुष्यसे किसी प्रकार कम नहीं है।

ब्राज़ीलमें एक दूसरी प्रकार की चींटी पायी जाती है जो वृक्षों पर स्वयं अपना उपवन निर्माण करती है। उनका उपवन मिट्टीके बने हुए स्पञ्ज की भाँति होता है। जिनमें वे कुछ वृक्ष-विशेषके बीज लाकर जमा देती हैं, जिससे उनकी जड़ें मिट्टीके कणों को भली-भाँति थाम लें। एक अन्य जाति की चींटी बबूलके काँटों पर निवास करती है जिससे वे उन चींटियोंसे रक्षा कर सकें जो पत्तियोंके लिये वृक्षों पर चढ़ जाती हैं और उनकी शत्रु होती हैं। दूसरी जाति की चींटी बड़े माजूफलोंके भीतर अपना निवासस्थान स्थापित करती है। इनमेंसे कुछ सिपाही का कार्य करती हैं। उनके सिर बड़े एवं बलवान् जबड़े होते हैं। वे फल जिनमें ये निवास करती हैं, खोखले सन्तरे की भाँति होते हैं और उसमें आने-जाने का केवल एक रास्ता होता है जो सिपाही चींटीके सिरके नाप के बराबर होता है, जहाँ वह २४ घण्टे पहरा देती रहती है। जब किसी चींटी को बाहर जाना होता है तो वह पीछे से सिपाही को छूकर इशारा करती है, जिससे वह अपना सिर छेद परसे हटा लेती है; किन्तु चींटीके निकलनेके बाद ही वह फौरन रास्ते को ढक देती है। इसी प्रकार जब चींटियों को बाहरसे अन्दर आना होता है तो वे क्षण मात्र के लिये अपना सिर हटा लेती हैं।

घरेलू मक्खी

जाँच-पड़ताल और प्रयोगोंसे यह सिद्ध हो गया है कि घरेलू मक्खीका हमारे स्वास्थ्यसे घनिष्ठ सम्बन्ध है। इस प्राणीकी सहायतासे मनुष्य जातिमें बहुतसे रोग फैलते हैं, जैसे—

हैज़ा, पेचिश, टायफॉयड ज्वर, क्षयरोग, बच्चोंके दस्त, आँख आना, कुष्ट (?), कृमि रोग (?),

इनके अतिरिक्त संभव है चेचक, सुर्खबादा, अन्थ्रैक्स (Anthrax) इत्यादि रोग भी उसके द्वारा फैलते हैं।

मक्खीकी आदतें

१. मनुष्यका मल (विष्ठा) मक्खीको अत्यंत प्यारा होता है। मलमें अनेक प्रकारके रोगाणु रहते हैं। जब मक्खी मलको खाती है तो ये रोगाणु भी उसके पेटमें चले जाते हैं और फिर उसकी विष्ठामें निकलते हैं। जहाँ मक्खी विष्ठा करेगी वहीं वे रोगाणु, जिनमेंसे अधिकतर जीवित होते हैं, पहुँच जावेंगे।

२. पाख़ाना खानेके पश्चात् या पाख़ाने पर बैठनेके पश्चात् मक्खी बहुधा मनुष्यके भोजन, जैसे रोटी, दूध, मिठाई पर जा बैठती है। उसकी टाँगों और परोंमें अनेक

रोगाणु लगे रहते हैं। ये भोजनमें मिल जाते हैं। खाते-खाते मक्खी विष्ठा भी त्यागती है, उसकी विष्ठा द्वारा रोगाणु भोजनमें मिल जाते हैं। वह भोजनको अपने थूकमें घोल कर चूसा करती है; इस थूकमें भी अनेक रोगाणु लगे रहते हैं और उसके द्वारा भोजनमें पहुँच जाते हैं। मक्खी द्वारा एक मनुष्यका पाख़ाना दूसरे मनुष्यके भोजनमें मिल जाता है। यदि कान्यकुब्ज ब्राह्मणोंको कोई अकान्यकुब्ज पवित्रतासे बना भोजन खिलाना चाहे तो वे कभी न खावेंगे। यदि उनको सहस्रों मक्खियों द्वारा गू मिली हुई बाज़ारकी मिठाई, जो अत्यन्त अपवित्रतासे बनाई जाती है, खानेको दी जावे तो तुरन्त हड़प कर जावेंगे। अज्ञानता! तेरा सत्यानाश हो। हैज़ा, पेचिश, टायफॉयड इत्यादि रोग पाखाना या वमन (कै) के खानेसे होते हैं। चाहे ये चीज़ें थोड़ी खाई जावें चाहे बहुत; इनसे कोई फ़र्क नहीं पड़ता।

मक्खीके परों और टाँगों पर ५७० से ४४,००० कीटाणु और उसकी आँतोंमें १६,००० से २,८०,००,००० कीटाणु तक पाये जाते हैं।

३. आँखों पर बैठनेसे मक्खी द्वारा अक्षिकलाका प्रदाह एक व्यक्तिसे दूसरे व्यक्तिको विशेषकर बालकोंको लग जाता है।

४. मक्खी ज़ख्मों पर बैठ कर मवादको एक स्थानसे दूसरे स्थानको पहुँचा देती है। चेचकके दानोंसे चेचकाणु, कुष्ठके ज़खमोंसे कुष्ठाणु, सुर्खबादासे सुर्खबादाणु, चर्याके बलग़मसे चयाणु दूसरोंकी त्वचा, ज़ख्म और भोजनमें मिला देती है।

मक्खीकी जीवनी

१. मक्खी अंडे देती है। एक समयमें ५०-१००-१५० अंडे तक दे सकती है। अंडेकी लम्बाई $\frac{1}{24}$ इंचके लगभग होती है; उसका रंग सफ़ेद होता है। अंडेकी आयु ६-१२ घंटे तक होती है।

२. ६-१२ घंटेमें (कभी-कभी २४ घंटोंसे ३ दिन तक) अंडेसे एक ढोला निकलता है जिसे लोग 'सूंडी' कहते हैं। सूंडीकी आयु ५-६ दिन तक होती है। इस आयुमें वह तीन चोलियाँ बदलती है। सूंडीका अगला सिरा नुकीला और पिछला मोटा होता है। पिछले सिरे पर श्वास पथके दो छिद्र होते हैं। सूंडी खूब रेंगती है और खूब खाती है।

३. ५-६ दिन पीछे लार्वासे 'कुप्पा' बन जाता है। कुप्पा स्थिर अवस्था है और उसका रंग भूरा होता है। कुप्पे की आयु ३-७ दिन।

४. कुप्पेसे ५-६ दिनमें मक्खी निकलती है। कुप्पा आगेसे फट जाता है और नयी मक्खी, जिसे इस अवस्थामें
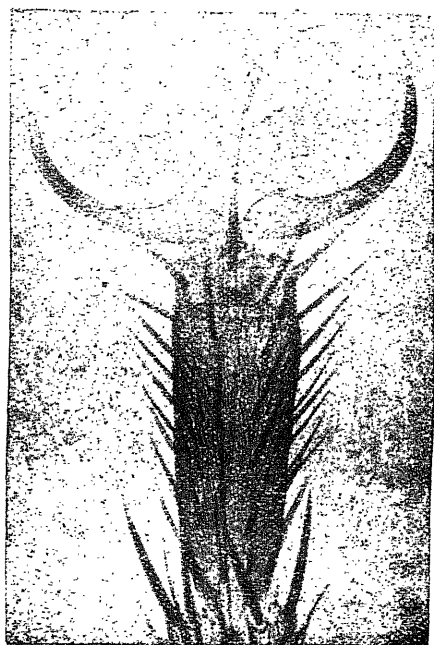
घरेलू मक्खी की टाँग
सूक्ष्मदर्शकसे घरेलू मक्खी की टाँग इस प्रकार
कँटीली दिखलाई पड़ती है।

डिंभ मक्खी कहते हैं, बाहर आ जाती है। मक्खी जितनी बड़ी निकलती है वह उतनी ही बड़ी हमेशा रहती है। आम तौरसे छोटी मक्खीको लोग मक्खीका बच्चा समझा करते हैं; वास्तवमें वह जाति ही और होती है। वह मक्खी पैदायशी ही छोटी होती है।

ग्रीष्म ऋतुमें मक्खीके बननेमें ७-८ दिन लगते हैं (औसत १०-१२ दिनका समझना चाहिये)। यदि मौसम

ख़ूब मिलता है तो समय कम लगता है; भोजनकी कमी होती है या सर्दी अधिक पड़ती है तो समय भी अधिक लगता है।

मक्खीकी आयु ३१ दिनके लगभग होती है। अपने जीवनमें ५-६ बार अंडे जन सकती है। इससे यह समझना कठिन नहीं कि गर्मीके मौसममें मक्खियाँ क्यों शीघ्र बढ़ जाती हैं। २,८८० मक्खियोंका भार ½ छटाँकके लगभग होता है। मक्खीसे ४० दिनमें १४० पौंड मक्खियाँ बन जाती हैं यदि उनमेंसे केवल आधी ही जीवित रहें। एक नारी मक्खीको मारना २,००० मक्खियोंको कम करनेके बराबर है।

मक्खी कहाँ-कहाँ अंडे देती है

मक्खी इन स्थानों और चीज़ों पर अंडे देती है—

१. घोड़ेकी लीद पर।

२. रसोई घरके कूड़े पर, विशेषकर तरकारियोंके टुकड़े या छीलन पर।

३. मनुष्यके पाख़ाने पर।

४. जहाँ शराब खींची जाती है वहाँके कूड़े पर (जहाँ महुआ, अंगूर इत्यादि चीज़ें रहती हैं)।

सूखी राख पर यह कभी नहीं ब्याती।

लहर्वेके पलनेके लिये तीन बातोंकी ज़रूरत है—

१. जहाँ वह हो वहाँ अधिक गर्मी न हो।

२. वहाँ तरी होनी चाहिये।

३. वहाँ रोशनी न हो अर्थात् उसे अँधेरा पसन्द है।

खाद, कूड़ा-करकटके ढेरोंमें लहर्वे ऊपरकी तहमें नहीं रहते, क्योंकि वहाँ उपरोक्त तीनों चीज़ें नहीं मिलतीं; ढेरके भीतर भी नहीं रहते, क्योंकि वहाँ सड़ावके कारण गर्मी अधिक हो जाती है। वे ऊपरकी तहके नीचे रहते हैं।

मक्खी रोग कैसे फैलाती है

१. घरेलू मक्खीको मनुष्यके पाख़ाने, बलग़म इत्यादि से अत्यन्त प्रेम है यह सभी जानते हैं।

२. पाख़ाने और बलगममें रोगोंके रोगाणु रहते हैं।

३. मक्खीको मनुष्यके भोजन—मिठाई, दूध, शक्कर, रोटी इत्यादि भी बहुत अच्छा लगता है।

४. जब मक्खी थूक, बलग़म और पाख़ानेको खाती है तो इन रोगाणुओंको भी खा लेती है। ये रोगाणु और कृमियोंके अंडे उसके पाख़ानेमें अकसर ज़िन्दा पाए जाते हैं।

५. जहाँ मक्खी बैठती है वहाँका मल उसके परों और टाँगोंमें भी चिपट जाता है और जहाँ वह हगती है वहाँ मल द्वारा निकले हुए रोगाणु भोजन इत्यादिमें मिल जाते हैं।

उसकी टाँगों पर नन्हें-नन्हें बाल होते हैं। इन बालों में हज़ारों रोगाणु लगे रहते हैं। जब वह भोजन पर बैठती है तो रोगाणु भोजनमें मिल जाते हैं।

६. मक्खी केवल तरल पदार्थोंको ही ग्रहण कर सकती है। जब वह ठोस चीज़ों पर बैठती है जैसे मिश्री, मिठाई तो वह अपना थूक निकाल कर उस पदार्थका घोल बना लेती है और फिर उस घोलको चूस जाती है। थूकका बुलबुला आपने अकसर देखा होगा। थूक द्वारा कुछ रोगाणु भोजनमें मिल जाते हैं।

—त्रिलोकीनाथ वर्मा की लिखी 'स्वास्थ्य और रोग' से। इस पुस्तकमें मक्खीसे बचनेके उपाय तथा रोगोंसे बचनेके संबंधमें अन्य अनेक उपयोगी बातें हैं।

जुगनू

मेघदूतमें जुगनूके सम्बन्धमें लिखा है—

खद्योताली विलसित निभां विद्युदुन्मेष दृष्टिं।

जुगनूके पंख नाजुक होते हैं। पूर्ण बाढ़को पहुँचा हुआ प्राणी लतादि पर रहता है। इसके शरीरमेंसे एक प्रकारका प्रकाश निकलता है। जिससे अँधेरी रातमें वृक्ष ऐसे मनोहर मालूम होते हैं मानों हीरोंकी प्रभासे देदीप्यमान हो रहे हैं। यह प्राणी अपनी इच्छानुसार प्रकाश कम-ज्यादा कर सकता है।

मादाके शरीरमेंसे ही प्रकाश निकलता है। भिन्न-भिन्न जातिके जुगनूके शरीरके भिन्न-भिन्न भागसे प्रकाश निकलता है। भारतीय खद्योतके प्रकाशका स्थान उसके गुदाद्वारके पास है। अभी तक इस बातका पता नहीं चला है कि यह प्रकाश कैसे उत्पन्न होता है। कुछ विद्वानोंका अनुमान है कि प्राणीके शरीरमेंसे एक प्रकारकी गैस निकलती है जिसका वातावरणमेंके आक्सीजनसे संयोग होनेके कारण

प्रकाश बन जाता है। परन्तु इस गैसके सम्बन्धमें अभी तक निश्चयात्मक कुछ नहीं कहा जा सकता। प्रयोगोंसे पता चला है कि जहाँ ऑक्सीजन ज्यादा होती है वहाँ प्रकाश भी ज्यादा तेज़ होता है। जिस वायुमें दहन-क्रिया बिलकुल नहीं होती, अर्थात् आक्सीजनका एक दम अभाव होता है, वहाँ प्रकाश भी नहीं होता। जुगनूका प्रकाश कुछ हरा होता है।

ऊपर लिख आये हैं कि मादाके शरीरमेंसे ही प्रकाश निकलता है। नर प्रकाश नहीं देता। इस प्रकाशसे ही नर मादाकी ओर आकर्षित होता है और तब उसे प्रसन्न करने के लिए भाँति-भांतिकी चेष्टायें करता है।

यूरोप देशमें मादा जुगनूके पंख नहीं होते। कीटावस्थामें मादाके शरीरमेंसे कम प्रकाश निकलता है। पूर्ण बाढ़ हो जाने पर उसका शरीर बड़ा हो जाता है और प्रकाश भी अधिक निकलने लगता है। नरके पंख होते हैं और वह उड़ता है।

कुछ जातियोंमें मादाके समान नरके भी पंख होते हैं। परन्तु जुगनूकी कुछ जातियाँ ऐसी भी हैं, जिनमें नर और मादा दोनोंके ही पंख नहीं होते।

अधिकांश जातिके जुगनुओंका रंग पीला झाई युत ऊदी होता है। वह अन्य कीड़ों पर निर्वाह करते हैं।

टिड्डा (ड्रैगन फ्लाई)

तालाबों और नदी तटपर या खेतोंमें बड़े पंख और लम्बे पेटवाले प्राणी उड़ा करते हैं। हमारे अधिकांश पाठकोंने इस प्राणीको अवश्य ही देखा होगा। इनके चार पंख होते हैं और वह चार-पाँच अंगुल लम्बा होता है, इन्हें लोग टिड्डा कहते हैं (देखो हिंदी शब्दसागर)।

यह प्राणी पानीके आसपास बहुत पाया जाता है। इसका पेट लम्बा होता है। इसके पेटकी लम्बाई इसके सिर और छाती की लम्बाईसे पँचगुनी होती है। पंखोंपर नसें रहती हैं। शांत बैठे रहने पर भी इसके पंख फैले रहते हैं। यह प्राणी उड़ते हुए भक्ष्यका पीछा कर उसे पकड़ लेता है।

टिड्डा कई प्रकारका होता है। भिन्न-भिन्न जातिके प्राणीका स्वरूप भिन्न-भिन्न प्रकार का होता है। नारंगी रंगका टिड्डा बड़ा मनोहर मालूम होता है। इस प्राणीका रंग सजीवावस्थामें ही रहता है। मरने पर रंग बदल कर काला हो जाता है।

इस प्राणीकी कीटावस्था जलमें ही बीतती है। डांसकी तरह टिड्डा भी अपने अण्डे जलमें रखता है। अण्डेमेंसे निकला हुआ कीड़ा भी पानीमें रहता है; इस कीड़ेका नीचेका ओष्ठ बहुत लम्बा होता है। भक्ष्य प्राप्त करनेमें यह ओष्ठ कीड़ेको बहुत मदद पहुँचाता है। कीड़ा अपनी इच्छानुसार ओष्ठको लम्बा कर सकता या सिकोड़ सकता है। कीड़ा जलाशय की तलीमें कंकड़ पत्थरके पास दबकर रहता है। किसी अन्य कीड़ेके पास आते ही यह यमराज-की तरह उस पर टूट पड़ता है और तब अपने लम्बे ओंठ से उसे खींचकर हड़प कर जाता है।
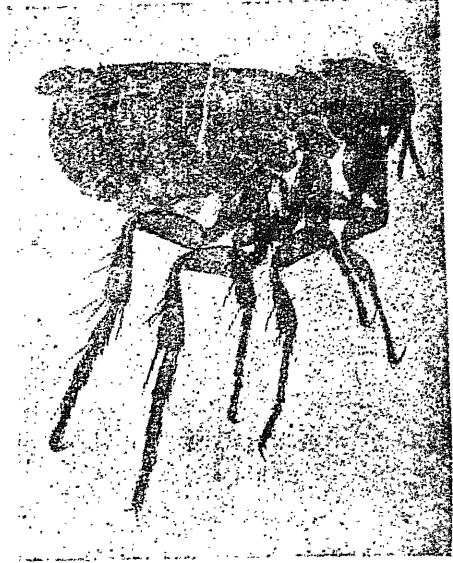
फुदकु (फ्ली)
ये नन्हें कीड़े लगभग १/२० इंच लम्बे होते हैं। ये रेंगते नहीं हैं और उड़ते भी नहीं हैं क्योंकि इनके पर नहीं होते, ये एक स्थानसे दूसरे स्थान पर फुदक कर जाते हैं।

भक्ष्य प्राप्तिके लिए परमेश्वरने इस प्राणीको एक और साधन दिया है। इस साधन की मददसे प्राणी तीन फुटकी दूरी पर जानेवाले कीड़ेको कूदकर पकड़ सकता है।

कीटावस्था समाप्त होने पर कीड़ेकी कोशावस्था का प्रारंभ होता है। कोशावस्थामें पंख निकल आते हैं। कोशावस्था समाप्त होने पर ही कोश जलके बाहर निकल आता है और तब उसमेंसे पूर्ण बाढ़को पहुँचा हुआ प्राणी निकल कर इधर-उधर उड़ने लगता है।

चोर कीड़ा

पूर्णावस्था प्राप्त कीड़ेके पंख नहीं होते। इसका पेट कुछ लम्बा होता है। पूर्ण बाढ़को पहुँचे हुए कीड़ेमें कुछ भी विशेष गुण नहीं होता। किन्तु कीटावस्थामें भक्ष्य प्राप्त करनेकी रीति बड़ी आश्चर्योत्पादक है। कीटावस्थामें इस प्राणीके सबसे पीछेके पैर बहुत ही छोटे होते हैं। अतएव
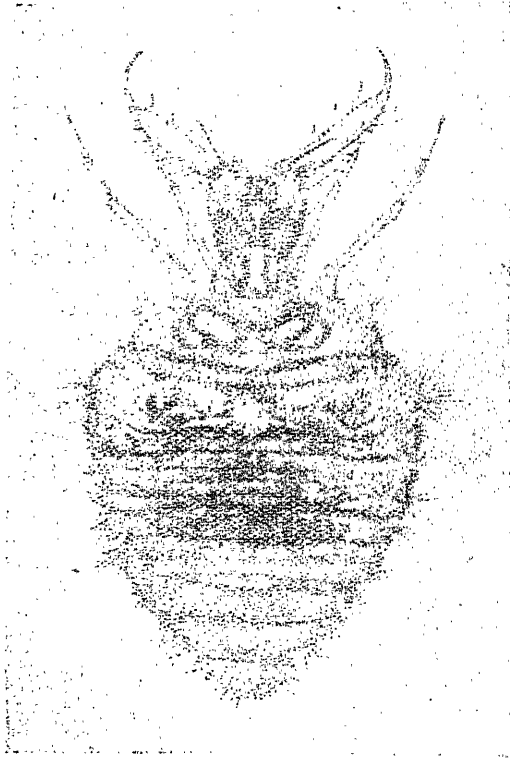
चोर कीड़ा

यह कीड़ा चषकाकार गड्ढा बनाकर बीचमें बालूमें बैठा छिपा रहता है। भक्ष्य कीड़े को देखते ही उन पर बालू फेंक कर उनको गिरा लेता है और तब उनका रक्त चूस लेता है।

वह आगे चल ही नहीं सकता। पीछेकी ओर सरकता हुआ पीछेको जाता है और यही कारण है कि किसी प्राणी का पीछा करना इसके लिए एकदम असम्भव है।

यह प्राणी ऐसे स्थान पर रहता है जहाँ मनुष्य और पशु का आना-जाना बहुत ही कम हो और जहाँ धूल बहुत ही ज्यादा हो। कीड़ा एक वर्तुलाकार घर बनाता है। इस घर का मुख ऊपरसे बहुतही चौड़ा और नीचेकी ओरको बहुत ही सकड़ा होता है। घरके सकड़े भागमें कीड़ा दब कर बैठा रहता है। एक आध चींटी या अन्य कीड़े-मकोड़े के आनेकी खबर पाते ही यह ज़ोरसे धूल उड़ाता है। अचानक इस संकटमें आ फँसनेके कारण कीड़े आदि प्राणी घबराकर घरके नीचे की तरफ लुढ़क जाते हैं और सीधे चोर कीड़ेके मुँहमें चले जाते हैं। भक्ष्यको खाकर वह अपने छिद्रकी मरम्मत कर पुनः पूर्ववत् बैठ जाता है।

अधिकतर चींटियाँ ही इसके चंगुलमें फँसती हैं और इसलिए इसे अँगरेज़ीमें ऐंटलायन (चींटीका शेर) कहते हैं। भारतवर्षमें यह कीड़े बहुत पाये जाते हैं। चोर की तरह छिपकर बैठनेके कारण ही इसे यह नाम दिया गया है।

झींगुर

झींगुर एक कीट है जो प्रायः प्रत्येक घरमें रहता है। इसकी छोटी-बड़ी कई जातियाँ होती हैं। यह सफेद, काला और भूरा कई रंगों का होता है। इसकी ६ः टाँगें और बहुत बड़ी मूँछें होती हैं।

झींगुर दिनभर तो अँधेरे स्थानमें छिपा रहता है और रातको भोजनकी तलाशमें बाहर निकलता है। प्रकाश भी इसे अप्रिय है। अतएव रातको दिया बुझा देनेके बाद ही यह अपने बिलसे बाहर निकलता है। आटा, ताज़े और सड़े गले फल, कागज़, चमड़ा, मांस आदि सभी पदार्थोंपर यह अपना जीवन निर्वाह करता है। यह अपने मृत सजातीयको भी खा जाता है। रसोईघर इसका प्रिय निवास-स्थान है। कारण कि इसे वहाँ खानेको भी मिल जाया करता है और दूसरे कमरोंकी अपेक्षा इसमें उष्णता भी अधिक रहती है। झींगुरकी निशाचर वृत्तिके सम्बन्धमें एक महाशय लिखते हैं—

"मेरे घरमें एक बड़ा झींगुर था। मैंने उसको पकड़नेके लिए नाना उपाय किये, परन्तु वह हाथ नहीं आया।

न जाने वह कहाँ छिपकर बैठ जाता था। मेरे सोनेके कमरे-में पायतानेकी तरफ एक आलमारी रखी थी। वह उसपर बैठकर अपनी मूँछोंपर ताव दिया करता था—स्पर्शेन्द्रिय हिलाया करता था। उसे मारनेके लिये ज्योंही मैं एक आध पुस्तक या लकड़ी उठाता, त्योंही वह नीचे कूदकर न जाने कहाँ छिप जाया करता था। इस झींगुरने कई दिन तक मुझे बड़ा कष्ट दिया। दीपक बुझाकर बिस्तर पर लेटते ही यह एकदम प्रकट होकर मेरे मुखपरका पसीना चाटने लग जाता था। इसके पावों या मूँछोंका स्पर्श होते ही मैं एकदम चौंक उठता था। मैंने इसे मारनेके लिए कई बार पुस्तकें, लकड़ी आदि पदार्थ फेंक मारे, परन्तु यह न मालूम कहाँ चम्पत हो जाता था।

अन्य कीड़ोंकी तरह पूर्ण बाढ़को पहुँचनेके पहले झींगुर भी कई बार त्वचा बदलता है। पहले एक सालमें वह तीन बार त्वचा बदलता है—पहली बार अण्डेमेंसे निकलनेपर, दूसरी बार इससे करीब एक महीने बाद और तीसरी बार वर्षके अन्तमें। पूर्ण बाढ़को पहुँचनेके पहले झींगुर को सात बार त्वचा बदलनी पड़ती है। पहले वर्षके बाद वह वर्षमें एक बार त्वचा बदलता है। इसपरसे तो यही अनुमान निकलता है कि झींगुर कमसे कम पाँच साल तक तो जरूर जिन्दा रहता होगा। परन्तु शायद ही एक आध झींगुर इतने लम्बे समय तक जीवित रहता हो। अनेक संकटोंके कारण ९९ फी सदी झींगुर पूर्ण बाढ़को पहुँचनेके पहले ही कालके गालमें चले जाते हैं। फिर भी झींगुरोंके मारे मनुष्यकी नाकोंमें दम आ जाता है।

कांचली उतारनेका (त्वचा बदलते) समय आते ही उसकी त्वचा सिरके ऊपरसे फट जाती है और तब झींगुर इसी मार्ग द्वारा बाहर निकल आता है। सांपकी कांचली-की तरह झींगुरकी कांचली भी सारीकी सारी निकल आती है। यहाँ तक कि उसकी लम्बी स्पर्शेन्द्रिय भी ज्योंकी त्यों निकल आती है। दूरसे देखने वाले को कांचली देखकर ऐसा मालूम होता है, मानो झींगुर ही बैठा है। कांचली डालनेके बाद उसकी त्वचा इतनी महीन रहती है कि उस-के हृदय की धड़कन गिनी जा सकती है। एक विद्वान्ने पता लगाया है कि झींगुरका हृदय एक मिनटमें ८० बार धड़कता है। परन्तु यहाँ इतना अवश्य स्मरण रखना चाहिये कि कांचली छोड़नेके कुछ समय पहलेसे लगाकर कांचली उतारनेके कुछ समय बाद तक वह बीमार रहता है। अतएव उक्त संख्या बीमारी की दशाकी समझनी चाहिये। निरोग अवस्थामें यह संख्या कुछ कम अवश्य रहती होगी।

रामजी का घोड़ा

इनकी मुद्रा ऐसी होती है मानों कोई हाथ जोड़कर प्रार्थना कर रहा हो, इसी लिए अँग्रेजीमें इसे प्रेइंग इन्सेक्ट (प्रार्थी कीट) कहते हैं।

छठी बार त्वचा बदलनेके बाद झींगुरके पंख निकलने लगते हैं। नरके पंख तो बढ़ते जाते हैं, परन्तु मादाके शरीरपर पंखोंके चिन्ह मात्र रह जाते हैं। जिस अवस्थामें पंख फूटते हैं, वह कीड़ेकी कोषावस्था है। दूसरे कीड़े निश्चेष्ट पड़े रहते हैं। उस अवस्थामें उनका खान पानादि व्यापार बन्द रहता है। परन्तु इस अवस्था में भी झींगुरके सब व्यापार

पूर्ववत जारी रहते हैं।—श्रीयुत शंकरराव जोशी

रामजीका घोड़ा

इस कीड़ेको हमारे अधिकांश पाठकोंने देखा होगा। इनका शरीर लम्बा और पंख हरे होते हैं। आकार अधिकांशमें टिड्डीके समान ही होता है। झाड़पर बैठने पर यह कीड़ा पत्तोंके रंगमें बिलकुल छिप जाता है। यह मांसाहारी है। यह प्राणी अपने आगेके पांव छातीके सामने रखकर घंटों बैठा रहता है। देखनेवालेको ऐसा मालूम होता है मानों वह ईश्वरकी प्रार्थना कर रहा है। इसीलिए इसे अंगरेजीमें 'प्रेइंग इन्सेक्ट' (प्रार्थना करने वाला कीड़ा) कहते हैं। यह अपने भक्ष्य को पानेके लिए दोनों हाथको जोड़कर घंटों समाधिमें मग्न रहता है। एक आध कीड़े को पहुँचके भीतर पाते ही इसकी समाधि भंग हो जाती है और तब एकदम हमलाकर यह उसे मार डालता है।

दो कीड़ोंको एक स्थानमें कैदकर रखने पर सबल निबलको मारकर खा जाता है। जब तक दोनोंमेंसे एक मर नहीं जाता, इनकी लड़ाई जारी रहती है। चीनमें लड़केदो कीड़ोंको एक जगहमें रखकर उनकी लड़ाईकी मौज देखते हैं।

झिल्ली

झिल्ली शब्द तो विज्ञानके पाठकोंने ज़रूर सुना होगा, किन्तु इसका दर्शन बहुत ही कम लोग कर पाये होंगे। यह प्राणी बहुत कम बाहर निकलता है। इसीलिए संस्कृतमें 'अदृश्य झिल्ली स्वन' के समान प्रयोग पाये जाते हैं। यह प्राणी इंच डेढ़ इंचके ज़्यादा बड़ा नहीं होता इसका रंग घना ऊदी होता है। यह सहज ही पकड़ा जा सकता है। बिलमें एक काड़ी डालनेसे कीड़ा उसे पकड़ लेता है और तब काड़ी बाहर निकालने पर उसके साथ यह भी निकल आता है। बिलसे बाहर आते ही प्रकाशसे उसकी आँखें चौंधिया जाती हैं, जिससे वह भाग नहीं सकता। बिलमें डाली हुई काड़ीको पकड़, जानबूझकर दूसरोंके अधीन होनेकी प्रवृत्तिके कारण फ्रेंच भाषामें एक कहावत पड़ गई है, जिसका अर्थ है, 'झिल्लीसे भी मूर्ख'।

झिल्ली दिनको अपने बिलके बाहर नहीं निकलती। रातको ही वह भोजनकी तलाशमें निकलती है। वह टिड्डी के समान उछलती हुई चलती है। पंख होने पर भी वह बहुत कम उड़ती है। यह प्राणी शाकाहारी है। दो झिल्लियोंको एक ही स्थानमें कैदकर भोजन न देने पर। सबल अवश्य ही निबल को खा जायगी। परंतु इसी परसे उसे मांसाहारी मान बैठना बड़ी भारी भूल है। क्षुधाकी प्रबल यातनासे उत्पीड़ित हो अपने प्राण रक्षार्थ, ऐसा कौन प्राणी है जो अपने सजातीयको भी मार कर खानेसे चूकता है।

झिल्ली एक बारमें ३०० तक अण्डे देती है। अण्डेमेंसे निकलनेपर कीड़ेका रंग सफेद होता है, परन्तु कुछ दिन बाद काला हो जाता है एवं अन्तमें ऊदी। ऊदी रंग होते ही कीड़ेके पंख निकलने लगते हैं। पंखोंके निकलते ही समझ लेना चाहिये कि झिल्लीकी पूर्ण बाढ़ हो गई है।

नर एक प्रकार की आवाज़ निकालता है। वह आवाज़ वह मुँहसे नहीं करता। मादाको वशमें करनेके लिए ही नर यह शब्द करता है। पंखोंमें आरेके समान दाँतियाँ होती हैं। नर इन पंखोंको एक दूसरेसे रगड़ता है, जिससे आवाज पैदा होती है। इस शब्दको सुननेके लिए ईश्वरने मादाके कर्णेन्द्रिय भी दी है। मादाके आगेके पाँव संधिकी जगह पोले होते हैं। इस संधिमें आमने-सामने दो छेद होते हैं, जिनका मुख महीन त्वचासे मढ़ा हुआ होता है। इस त्वचाके भीतरकी ओर ज्ञान तन्तु रहते हैं। हवामें शब्द होने पर इस त्वचा और ज्ञान तन्तुके द्वारा मादाको उसका ज्ञान होता है। मादा न तो शब्द ही करती है और न उसके पास शब्द करनेका कोई साधन ही है।

टिड्डी

मादा टिड्डीका पेट मोटा होता है। इसीकी सहायतासे वह रेतेली जमीनमें छेदकरके अण्डे रखती है। प्रसवका समय आनेपर मादा अपने अण्डे एक दूसरेसे चिपकाकर रखती है। छेदके भर जाने पर मादा अण्डोंपर एक प्रकार का पदार्थ चुपड़ देती है, जिससे वह एक दूसरेसे अच्छी तरह चिपक जाते हैं। सूखने पर इस पदार्थ का रंग रेतके रंगमें मिल जाता है, जिससे अण्डोंका पता लगाना कठिन हो जाता है।

[विज्ञान, फरवरी, १९४४

मादा प्रत्येक बार ५० से १०० तक अण्डे देती है। यह अण्डे तीन अठवारे तक ज़मीनमें रहते हैं और तब उनमेंसे हरे रंगके छोटे कीड़े निकल आते हैं। कुछ घंटे बाद कीड़ा त्वचा बदलता है, जिससे उसका रंग काला हो जाता है। यह इधर-उधर उछलता फिरता है और वनस्पति पर अपना जीवन निर्वाह करता है। कीड़ा धीरे-धीरे बढ़ता रहता है और तब यथासमय इसके पंख फूट आते हैं। पंखोंके निकल आने पर टिड्डेका शरीर लाल रंगका नजर आने लगता है। उसका सिर और पेट भी लाल हो जाता है। यह स्थिति प्राप्त होते ही समझ लेना चाहिये कि उसकी पूर्ण बाढ़ हो गई है। अण्डेमेंसे निकलनेके बाद करीब एक महीनेमें कीड़ेकी पूर्ण बाढ़ हो जाती है।

पूर्ण बाढ़को पहुँचे हुये कीड़ेके शरीर पर टिपके रहते हैं एवं उसके पिछले पैर बहुत मजबूत होते हैं। अतएव यह बहुत दूर तक कूद सकता है। टिड्डी न तो चलती और न दौड़ती है। दूर जानेके लिये वह उड़ती है और पास जानेके लिये छलांग मारती है।

नर मादाको खुश करनेके लिए गाना गाता है। वह यह गाना मुँहसे नहीं गाता। पिछले पैर और पंखके घिसनेसे एक प्रकारका शब्द निकलता है। यही उसका गाना है। आवाज गूँजनेके लिए ईश्वरने उसके पिछले पैरोंके पास एक गढ़ा बनाया है, जिसका मुख महीन त्वचा-से मढ़ा होता है। सितारकी तुम्बीकी तरह ये गढ़ा काम देता है। नर पहले एक पाँव पंख पर घिसता है और थक जाने पर दूसरा पाँव। गानेका शब्द सुनते ही मादा सब सुध-बुध भूलकर नरके पास दौड़ जाती है।

भारतवर्षमें कभी-कभी टिड्डी की संख्या बहुत बढ़ जाती है, जिससे फसलका सत्यानाश हो जाता है। देश पर आनेवाली छः ईतियोंमें 'टिड्डी दल' (शलभ) का भी समावेश होता है। भारतवर्षमें बहुत करके सीमान्त प्रदेश, राजपूताने का पश्चिमी भाग और मैसूरके पश्चिमवाले कूर्ग आदि प्रान्तों पर ही टिड्डी दलके आक्रमण ज्यादा होते रहते हैं। अन्य प्रदेशोंपर भी इनके आक्रमण होते तो जरूर हैं, परन्तु बहुत कम।

एक स्थानसे दूसरे स्थानपर जानेकी इच्छा होनेपर टिड्डी पहले अपना शरीर फुलाती है और तब बड़े वेगसे उड़ जाती है। वह एक दिनमें ४० मील तक का प्रवास करती हैं। शीत प्रधान देशोंमें यह कम पाई जाती हैं। हिन्दुस्तान की तरह चीन, मिश्र आदि उष्ण कटिबंधके देशोंपर भी टिड्डीका आक्रमण होता है। मिश्र देशमें टिड्डी दल आठवाँ अरिष्ट माना गया है।

जिस समय टिड्डी दल आकाश मार्गसे प्रवास करता है उस समय ऐसा शब्द होता है, मानों ऊँचे पहाड़ परसे जल गिर रहा है। दिनमें अँधेरा हो जाता है और दशों दिशायें टिड्डियोंसे भर जाती हैं। एक आध वृक्षपर टिड्डियाँ बैठते ही, इनके वजनसे डालियाँ टूट जाती हैं। सारे प्रदेशके वृक्षोंपर पत्ते तक नहीं रहने पाते हैं। इस प्रकार थोड़े ही समयमें सारे देशकी वनस्पतिको चटकर यह दल वहाँसे कूच बोल देता है।

टिड्डी दलके आक्रमणसे तो, फसलके नष्ट हो जानेके कारण अकालकी भयङ्कर ज्वालासे, प्रजाको कष्ट होता ही है, परन्तु उनके मर जानेसे भी भयङ्कर हानि होती है। टिड्डी दल एकदम पैदा होता है और एकदम मर भी जाता है। उनके असंख्य शरीर सड़ने लगते हैं, जिससे हवा दूषित हो जाती है और तब रोग फैलकर हजारों व्यक्ति अकालमें ही कालके गालमें चले जाते हैं।

ईसाइयोंके धर्मग्रंथोंमें भी टिड्डी दलका उल्लेख पाया जाता है। जब इसराईल लोग मिश्र देश छोड़कर पैलस्टाइन जाने लगे, तब मिश्रके परधर्मी राजा फाराओने उन्हें मार्गमें ही रोक दिया। इससे क्रुद्ध हो मूसाने अपनी लकड़ी की सहायतासे टिड्डी दलकी उत्पत्ति की, जिसने फाराओके सारे देशकी फसल खा डाली। इससे डरकर राजाने शरणागत हो उनसे टिड्डी दलका नाश करनेकी प्रार्थना की और कहा कि अब आपको न रोकेंगे। मूसाको राजापर दया आई और उसने टिड्डी दल नष्टकर डाला। यह कथा अंजीलके एक्सोडस भागमें लिखी है।

अरबिस्तान, तुर्किस्तान आदि देशोंके लोग टिड्डी बड़े चावसे खाते हैं। उनके मतसे उसका स्वाद केकड़ेके स्वादके समान होता है। कहीं-कहीं टिड्डी मारकर सुखाई जाती है और तब उसके आटेको दूधमें सानकर रोटी बनाते हैं। कभी-कभी बाजारमें टिड्डीके ज्यादा आनेपर गोश्तकी दर भी गिर जाती है। अरबिस्तानके हकीमोंका मत है कि

टिड्डी पौष्टिक है। अरब लोग ऊँटोंको टिड्डी चंदीकी तरह खिलाते हैं। वहाँ दवाइयोंमें भी इसका उपयोग किया जाता है। टिड्डी दलको देख कर अरबोंको कितना आनन्द होता है और वह उसे खानेके लिए कितने उत्सुक रहते हैं, इस सम्बन्धमें पालग्रेव एक जगह लिखते हैं—

"हम बहुत थक गये थे। हाफहूफ नगर अभी १५ मीलकी दूरी पर था। यदि हम अपनी यह चाल कायम रखते तो सूर्य निकलनेके पहले ही वहाँ पहुँच जाते। परन्तु मार्गमें एक विघ्न उपस्थित हो जानेसे एक कदम आगे बढ़ना भी मुश्किल हो गया। हम हूसाके मैदानमेंसे गुज़र रहे थे। एकाएक सामने कुछ काला-काला पहाड़ सा नज़र आया और तब जल प्रपातका सा शब्द होने लगा। इससे डर कर हमारे ऊँट उछलने लगे। ध्यान लगाकर देखने पर पता चला कि यह सब टिड्डी दल की करामात है। 'दल' जमीन पर विश्राम ले रहा था। वह सूर्योदय तक वहीं बैठा रहता; परन्तु हमारे ऊँटोंने उनके आराममें खलल डाल दिया। हमारे साथ ऊँट भी कम न थे। 'दल' ऊँटोंसे डर कर आकाशमें चक्कर काटने लगा। टिड्डी दल डरा ऊँटोंसे और ऊँट डरे टिड्डियोंसे! ऊँटोंके तो होश हवास हवा हो गये! परन्तु ऊँटों पर बैठे हुए लोगोंको टिड्डी दल देखकर बड़ा आनन्द हुआ। इस प्रान्तमें टिड्डी एक स्वादिष्ट खाद्य पदार्थ, पकवान, माना जाता है। भारत और सीरियाके लोग टिड्डी दलसे बहुत डरते हैं। परन्तु वहाँके लोग इसके आक्रमणके लिए ईश्वरसे प्रार्थना करते हैं। इसका कारण भी है। अरबिस्तान और उत्तरकी ओरके सीरिया आदि प्रान्तोंकी टिड्डियोंमें बड़ा अन्तर है। उसका रंग ताँबेके समान लाल होता है और मोटाई और लम्बाईमें आदमीकी छोटी अँगुलीके समान होती है। इनमें रानी नहीं होती। कहा जाता है कि तवे पर सेकने या उबालने पर इनका स्वाद रुचिकर हो जाता है। उधरके लोग ज्यादातर उबालकर ही खाते हैं। टिड्डी देखते ही उनके मुँह में पानी भर आता है। हमें रास्तेमें टिड्डी मिली थीं। अरबोंने सोचा कि ईश्वरने ही उनके लिए उन्हें भेजा है। ऐसा कौन मूर्ख है जो घर आई लक्ष्मी को लात मारे! टिड्डियाँ देखते ही उनकी भूख-प्यास सब भाग गई। वह एकदम ऊँटों परसे कूद पड़े और लगे टिड्डियाँ समेट-समेट कर घोड़ोंके तोबरों, चादरों और कपड़ोंमें भरने! हर एकने जिससे जितनी हो सकी उतनी टिड्डियाँ बाँध लीं। सूर्योदय नहीं हुआ था। लोग उन्हें पकाकर खानेके लिये इतने उत्सुक हो रहे थे कि पल-पल युगके समान बीतने लगा। इस प्रकार बहुत सा समय नष्ट करने पर हम हाफहूफ की ओर बढ़े।"

मालवा, दक्षिण भारत आदि प्रदेशोंमें, जहाँ करीब-करीब सब कृषि योग्य भूमि जोत ली गई है, टिड्डियोंको अण्डे रखनेके लिए स्थान नहीं मिलता। इसलिए वह वहाँ स्थायी रूपसे नहीं रह सकती। परन्तु पंजाब और

घासपर फुदकने वाले हरे फतिंगेका सिर।
वास्तविक नापसे बड़े पैमानेपर खींचा फोटो।

राजस्थानकी जमीन रेतीली है। यह ज़मीन अण्डे रखनेके लिये उपयुक्त है और यही कारण है कि वहाँ टिड्डियाँ स्थायी रूपसे रहने लगती हैं। उन प्रान्तोंमें इनसे फसल को बहुत हानि पहुँचती है।

टिड्डियोंके प्रतिकारका एक मात्र उपाय उनको मार

डालना ही है। पूर्ण बाढ़ हो जाने पर उनका नाश करनेकी अपेक्षा अण्डावस्थामें उनका संहार करना अधिक सहज है। टिड्डी मार्च अप्रैलमें अण्डे देती है। अण्डोंका पता लगा कर उनका कुचल डालना ही सर्वोत्तम उपाय है। जमीन में हल चलाने या अण्डोंको जमीनमें गाड़नेसे काम नहीं चल सकता। टिड्डीका नाश ही करना हो तो दया-माया छोड़कर अण्डोंको चकनाचूर ही कर डालना चाहिये। यह काम ज्यादा कठिन भी नहीं है। रावलपिंडीमें एक बार इसी तरह अण्डोंका नाश किया गया था। वहाँ डेढ़ दो मासमें करीब ५ मन अण्डे तोड़े गये थे।

यदि अण्डावस्थामें कीड़ोंका संहार न किया जा सके, तो 'परी' अवस्थामें तो ज़रूर किया जाना चाहिये। इस अवस्थामें प्राणीके पंख नहीं होते, जिससे वह उड़ नहीं सकता। 'परी' (अँग्रेज़ीमें निंफ़) हमेशा एक ही दिशाकी ओर जाती हैं। इसलिए जिधर की ओर कीड़े जाते हों उधर स्थान पर एक-एक फीट गहरी नालियाँ खोद दी जायं और तब उन्हें झाड़ूसे इन नालियोंमें गिरा कर ऊपर मिट्टी डाल दी जाय। मिट्टीमें दब जानेसे दम घुटकर कीड़ा मर जायगा। टिड्डीके नाशकी एक युक्ति और है। पतंगकी तरह टिड्डी भी प्रकाशकी ओर आकर्षित होती है। अतएव रातको खेतोंमें आग जलानेसे टिड्डियाँ उसमें कूद कर प्राण विसर्जन कर देंगी। इस युक्तिसे भी कई बार हजारों मन टिड्डियोंका नाश किया गया है।

पंख निकल आने पर ज़रा इनका मरना कठिन है। कपड़े आदिकी फटकारोंसे और ढोल कनस्तर आदि पीटकर डरानेसे थोड़ा बहुत फायदा हो तो हो। पूर्ण अवस्थामें उनके मारने का उपाय यह है कि सूर्योदयके पहले वह लाठियोंसे पीटकर नष्ट की जायं। कारण की ज़रा सी ठंडसे भी वह इतनी अकड़ जाती हैं कि उड़ तक नहीं सकतीं।—श्रीयुत शंकराव जोशी

जुएँ

जुएँ बेपरके कीड़े हैं। खाना खानेकी विधिके अनुसार इनके दो प्रकार हैं—एक वे जो काटते हैं और जानवरोंके रोयें तथा परोंपर जीवित रहते हैं पर खून नहीं पीते हैं और जहाँ तक पता लगा है इनके द्वारा कोई बीमारी नहीं फैलती है। जुएँकी दूसरी किस्म वह है जो खून चूसती है, खूनपर ही ज़िन्दा रहती है और बीमारी फैलानेमें बहुत बड़ा भाग लेती है।

जीवन-इतिहास

आदमियोंके शरीरमें पैदा हो जानेवाले जुएँ तीन किस्मके हैं। (१) ढील—जो सिरके बालोंमें (२) चीलर—जो कपड़ों और शरीरमें और (३) जो गुप्त भागके पास बालोंमें हो जाते हैं।

तीनों किस्मोंके जुएँ अंडेकी हालतके बाद ३ शक्लोंमें बदलते हैं और तबसे अंडा देनेके लायक होकर पूरे तैयार हो जाते हैं।

जूएँ अपने अंडे या लीखें कपड़ोंमें या बालोंमें देते हैं। अंडा देनेके लिये सूखा कपड़ा, ऊन आदि ज़्यादा पसंद करते हैं लेकिन रेशमपर भी अंडे देते हैं। अंडे कुछ लम्बाई लिये $\frac{1}{25}$ इंच लम्बे और खुरदुरी तहके होते हैं जो बालों में ज़ोरसे चिपके रहते हैं। हालका दिया अंडा करीब पारदर्शक होता है पर जैसे-जैसे अंडा बड़ा होता है, इसके रंगमें भी पीलापन आने लगता है। जब अंडेसे कीड़ा बाहर निकल जाता है तब भी अंडेका छिलका बालमें चिपका रहता है और बहुत कड़ा होता है। अंडेके छिलकों और मसाले (जिससे यह छिलका बालमें चिपका रहता है) पर दवाइयोंका असर नहीं होता है और कोई भी दवाका घोल बालोंको या कपड़ोंको, जिसपर अंडा चिपका रहता है, खराब किये बग़ैर उसे नहीं अलग कर सकता है। मामूली तरहसे उस गरमीमें, जो बदनके चमड़े और कपड़े वगैरहमें होती है, अंडा ७ से १० दिनमें फूटता है; पर यदि अंडा ठंडी हालतमें रहेगा तब इसके फूटनेमें कुछ और ज़्यादा दिन लगेंगे। अंडे फूटनेके २ दिन बाद पहली केंचुल बदलते हैं, दूसरी दो दिन बाद और तीसरी तीन दिन बाद। इस तरह पूरे १६ दिन लगते हैं।

तीसरे केंचुलसे निकलकर पूरा कीड़ा बन जानेके २४ से ३३ घंटे बाद नया मादा-कीड़ा अंडा देने लगता है। इन अंडोंकी संख्या मादाकी खुराक और गरमीपर निर्भर है। मामूली कुदरती हालतमें ४ से ५ हफ्तेतक कीड़ा रोज़ ४-५ अंडे देता है। इस तरह अनुकूल स्थितिमें १ मादा कीड़ा अपनी ज़िन्दगीमें चार हज़ार अंडे दे सकती

है। मादा कीड़ेकी औसत आयु ३५ से ४० दिन है और कुछ कम दिन जीवित रहता है। अंडे ३२० श० गरमीमें आठ दिनमें तैयार हो जाते हैं। गरमी और सर्दीको बदलनेसे इसमें कुछ फ़र्क पड़ सकता है। इसलिए जो लोग रातको सोते वक्त अपना कपड़ा उतार कर सोते हैं उनके कम कीड़े पड़ेंगे पर जो लोग कपड़े बराबर पहने रहते हैं उन्हें कीड़े ज्यादा तंग करेंगे। कपड़ोंको समय-समयपर ठंडा कर देने या खूब धूपमें डाल देनेसे कीड़ोंकी शक्ति और संख्या बहुत कम हो जाती है।

जूएँ अंडेसे निकलते ही खाना खानेकी फिराकमें पड़ जाते हैं। बच्चा जुआँ अगर २४ घंटेमें कुछ खुराक नहीं पा सकेगा तो मर जायगा पर जो जुआँ खूब पेटभर खुराक पा लेगा वह अगर अपने मेज़मानसे १० दिन अलग भी रहे तो भी ज़िन्दा रहेगा। जूएँ दिनभरमें कई बार खाते हैं क्योंकि उस वक्त इनका मेज़मान चुपचाप लेटा रहता है। जब इन्हें भूख बहुत सताती है तो इतना ज्यादा खा लेते हैं कि इनका पेट फट जाता है। खून चूसनेमें इनकी लार (थूक) चमड़ेमें लगनेसे चमड़े की खूनकी नसें फैल जाती हैं और खून ज्यादा वहाँ आने लगता है जिससे खून पीनेमें इन्हें बड़ी आसानी पड़ती है। लालची कीड़े तो खून चूसते जाते हैं और बीट करते जाते हैं जिसमें खूनके अणु बहुत रहते हैं क्योंकि जल्दीमें हज़म करनेका वक्त भी उनकी आँतोंको नहीं मिल पाता है।

छूत फैलना

जुआँ पड़े आदमीकी छूतसे, या ऐसे आदमियोंके कपड़ोंसे ही ये कीड़े फैलकर दूसरोंमें पैदा होते हैं। एक छूतवाले आदमीसे उसके कई दोस्तोंको छूत लग सकती है। लड़ाईमें पलटनोंमें यह बीमारी बहुत मिलती है। खासकर खाइयोंमें छिपे सिपाहियोंमें तो यह एक बलाकी बीमारी हो जाती है। आदमीको यदि बुखार होता है या वह मर जाता है तो जुएँ उसके बदनसे रेंगकर बाहर आजाते हैं क्योंकि पहली हालतमें बुखारकी गरमी इनसे बरदाश्त नहीं होती और दूसरी हालतमें भूखके मारे खुराककी तलाशमें इन्हें दूसरी जगह जाना पड़ता है। कंघी या ब्रुशसे झाड़नेसे जुएँ अपनी जगहसे बाहर निकाले जा सकते हैं। ज़मीनमें ४ इंचकी गहराईमें गाड़नेपर भी ये रेंगकर फिर सतहपर आ जाते हैं। हवा भी इन्हें एक जगहसे दूसरी जगह उड़ा ले जा सकती है। मामूली तौर पर कम्बल और चारपाइयोंमें जुएँ नहीं पाये जाते हैं अगर थोड़ी देर पहले जुएँवाला आदमी उन्हें न इस्तेमाल किये हो। कपड़ोंमें पड़े जुएँ रातमें एक ढेरसे कपड़ोंके दूसरे ढेरमें चले जायेंगे। घरमें ये जुएँ धोबीके कपड़ोंमें आ सकते हैं या रेलगाड़ीमें सफ़र करते वक्त होटलोंमें, टैक्सी वगैरह छूतवाले यात्रियों द्वारा फैल सकते हैं।

ज्यादातर जुएँ कपड़ोंके उन हिस्सोंमें पाये जाते हैं जो बदनसे बहुत सटे रहते हैं जैसे पाजामेकी रानका हिस्सा, काँख या गरदनके पासका हिस्सा। नीचे पहननेके कपड़े जैसे बनियाइनमें और ऊपर पहननेवाले कपड़े—दोनोंमें ही मिलते हैं। जिस आदमीके बदनमें जुएँ पड़े हों उसके किसी भी पहने कपड़ेमें जुएँ मिल सकते हैं। जुएँमें ग्रसित मनुष्यको ढूंढ़नेमें इस बातकी स्मृति रखनी चाहिए और ध्यान रखना चाहिए कि ये जुएँ बदनपरसे रेंगकर सिरके बालोंमें या बदनके दूसरे हिस्सेके बालोंमें भी अंडे देते हैं। इस बातको भूलनेसे कीड़ा दूर करनेमें पूरी सफलता नहीं मिल सकती है क्योंकि ऐसे आदमीके कपड़ों ही को दवाइयों द्वारा साफ़ करनेसे कुछ फायदा न होगा।

चीलर

बदनपर या कपड़ोंमें रहनेवाले जुओंको चीलर कहते हैं। अच्छी तरह ज़िन्दा रहकर अपनी औलाद बढ़ानेके लिए इस कीड़ेको मनुष्यके खूनसे पेट भरना ज़रूरी है। आयुके अनुसार कीड़ेका क़द होता है। अंडेसे निकलनेपर इसका क़द आलपीनके सिरके बराबर होता है पर पूरी आयु और क़दका कीड़ा १/६ इंच लम्बा होता है। जुएँके ऊपरका चमड़ा कड़ा, और चिकना होता है जिसके भीतर दवाइयाँ नहीं घुस सकती हैं।

इसके बदनके तीन भाग हैं—सिर, सीना और पेट। सिरकी बगलमें दो लम्बे मूंछकी तरहके हिस्से हैं, जिनसे टटोलनेका काम लिया जाता है। मुँहमें एक लम्बी सुईकी तरह चीज़ है जो चमड़ा छेदनेके काममें आती है। यह सूई अन्दरसे खोखली होती है जिसमेंसे खून चूसा जाता है। सीनेमें छः पैर लगे रहते हैं जिनके दूसरे सिरेपर एक

बड़ा और तेज़ पंजा रहता है। पेटमें ६ या ८ धारियाँ होती हैं। आखिरी धारीका हिस्सा मादा कीड़ोंमें दाँतेदार होता है और नरमें गोलाकार। मादाका पेट नरके पेटसे ज्यादा चौड़ा होता है। मादाकी संख्या नरसे ज्यादा होती है। नर और मादा दोनों ही काटते हैं और बीमारी फैलाते हैं।

सिरके जुएँ

मामूली तौरपर सिरके ही जुएँ लोगोंमें देखनेमें आते हैं। इनका रहन-सहन, आदत वगैरह बदनमें मिलनेवाले जुओंकी ही तरह होता है। ये तादादमें कम अंडे देते हैं और इनकी आयु भी कुछ कम होती है। ज्यादातर ये बच्चोंमें पाये जाते हैं, लड़कियोंमें लम्बे बालके कारण और बूढ़ोंमें सुस्तीके कारण जुएँ ज्यादा मिलते हैं। सिरके बालों में रहते हुए भी ये जुएँ बदनके दूसरे हिस्सोंमें भी मिलते हैं। स्कूलमें लड़कियोंकी छूतसे और एक ही कंघी या टोपी के इस्तेमालसे ये कीड़े फैलते हैं।

इनको दूर करना आसान है। इसके लिए साबुनसे बाल धोना, नहाना, कंघी करना और बाल छोटा रखना आवश्यक है। मिट्टीका तेल और सिरका या मिट्टीका तेल और जैतून या मीठा तेल फ़ायदेका है। फिनाइल २·५% या लाइसॉल १% पानीमें घोलकर सिरके बालोंमें १-२ घंटे लगानेसे भी लाभ होता है।

रानोंके बालमें रहनेवाले जुएँमें ऊपर दी गई बातें पाई जाती हैं। कमरके बालोंके अलावा सीनेके बालों या काँखके बालोंमें भी यह पाया जाता है। इसका अंडा बालकी जड़में रहता है और कीड़ा अंडेसे बाहर आते ही खाना खाने लगता है इसलिए बदनसे अलग करनेपर यह जल्द मर जाता है। मादा अपनी ज़िन्दगीमें करीब २५ अंडे देती है जो २५ दिनमें फूटते हैं। सरायोंमें, वेश्याओंके यहाँ और हम्माममें यह छूतसे फैलता है। इससे बचनेके लिए बदनके बालोंको उस्तरेसे साफ़ कर देना चाहिए। यदि चमड़ेमें कुछ खुजली या जलन हो तो कोई ठंढा मरहम लगाना चाहिए।

जुएँ और उनसे बीमारियोंका फैलना

जुओंसे एक ख़ास बुखार "टाइफस" फैलता है। मियादी बुखार और ट्रेंच बुखार भी इनसे फैलते हैं। जब यह कीड़ा ख़ून चूसता है तो बदनके चमड़ेमें बहुत बारीक छेद हो जाता है। इस कीड़ेके सबबसे बदनमें खुजली होती है और खुजलानेपर नाखूनसे खरोंचें पड़ जाती हैं। इन्हीं खरोंचों और सूराखोंमें जुओंकी बीट लग जाती है और उपर्युक्त बुखारोंके विशेष कीड़े, जो जुओंकी बीटमें रहते हैं, बदनमें घुस जाते हैं।

बदनपर जुओंके रहनेका असर आदमीकी सहनशीलता के अनुसार होता है। जिन आदमियोंमें जुएँ हमेशा ही पड़े रहते हैं, जैसा भिखमंगोंमें देखा जाता है, उनकी त्वचा पर इन जुओंकी लारका असर बहुत कम होता है; पर जिन आदमियोंमें कभी जुआँ नहीं पड़ता उनके बदनमें जुओंके काटनेसे चर्मपर बड़े ददोरे उभड़ आते हैं और जल-फुन्सियाँ बन जाती हैं। जुओंके काटनेसे भी हल्का बुखार और त्वचापर दाने हो जाते हैं।

जुओंको मारना

जुओंको मारनेकी सबसे उत्तम विधि वह होगी जिसमें सिर्फ जुएँ और उनके अंडे ही न मरें बल्कि जुओंसे फैलने-वाली बीमारियोंके कीड़े भी खतम हो जावें। जुएँ और उनके अंडे ५५° श० की सूखी गरमीमें मर जाते हैं। मारनेके उपायोंमें गरमी और दवाएँ ही कामकी हैं।

गरमी—सूखी गरमीका उपाय बहुत आसान है लेकिन जहाँ बहुतसे कपड़ों और सामानको साफ़ करना रहता है वहाँ यह विधि असफल रहती है क्योंकि सूखी गरमीमें कपड़ोंके ढेरमें घुसनेकी ताकत नहीं होती है। लेकिन सूखी गरमी चमड़े और रबड़के सामानके लिए बहुत लाभदायक है क्योंकि इस तरह ये चीजें खराब नहीं हो पाती हैं। सूखी गरमीकी अपेक्षा भाप बहुत जल्दी कपड़ोंकी तहोंमें घुस जाती है और इस विधिसे कीड़ोंको मारनेमें कम समय लगता है और सफलता निश्चय होती है।

गरमीको काममें लानेके कई तरीके हैं। उबलता पानी, खास पीपा—सर्बियन बेरिल-भाप, धोबीका गरम लोहा, गरम भट्टी, गरम बक्स या आजकलकी भापकी कल (स्टीम डिसइन्फ़ेक्टर) आदि काममें लाये जाते हैं।

७०°श० या १५८°फा० गरम पानीमें आधे घंटेतक कपड़ोंके रखनेसे कीड़े और अंडे अवश्य ही मर जाते हैं। यह उपाय थोड़े ही कपड़ोंके लिए ठीक है पर जहाँ शहर

असर पहुँचता है वहाँ इस विधि द्वारा सफलता नहीं मिलती है। ऐसी हालतमें भापसे कीड़े मारने के काम बड़े-बड़े औज़ार बहुत आते हैं। बहुत ज्यादा सामान बहुत जल्दी और पूर्णरूपसे साफ़ किया जा सकता है।

(१) धुआँ निकलनेकी चिमनी

पीपेवाला तरीक़ा भापके ज़ोर द्वारा बहुत अच्छी तरह काम किया जाता है। यह एक बड़ा पीपा है जिसके पेंदेमें बहुत-से छेद होते हैं और ऊपरका ढकना बहुत भारी होता है। नीचेके किनारे बालू भरा एक गोल गद्दा रहता है जिसपर यह पीपा रखनेसे भाप बाहर नहीं निकल सकती है। यह भाप एक बड़े लोहेके पानी भरे बरतनसे निकलती है और इसी बरतनपर बालूवाला गद्दा रक्खा रहता है। पानीका बरतन और पीपेका पेंदा दोनों भट्टीकी ईंटोंकी दीवारमें जुड़े रहते हैं। भाप बहुत जल्द बनकर ऊपर जाने लगती है। तब सब कपड़ोंको जिनके जुएँ मारना हो पीपेमें लकड़ीके पटरेपर रखकर ढकना अच्छी तरह बन्द कर दिया जाता है। भाप तेज़ीसे बनने लगती है और कपड़ोंको १ घंटेतक इस भापमें रहने दिया जाता है। इस तरीक़ेसे चमड़ा, रबड़ और सेलुलॉइडके सामानको छोड़कर और सब साफ़ किये जा सकते हैं।

रासायनिक दवाइयाँ दो बातोंके लिए काममें लाई जाती हैं, कपड़े और बदनके बालोंके अंडों और जुओंको मारनेके लिए या उनको दूर भगा देनेके लिए। जुएँ दूर भगानेवाली दवाइयाँ बेकार ही रहती हैं क्योंकि ये पूरा काम नहीं करती हैं।

मिट्टीका तेल जुओंको मारनेमें बहुत सफल औषधि है। नैपथेलीन और अमोनिया भी बड़े कामकी हैं। बाज़ार के मिलनेवाले पाउडर-विशेषपर बहुत भरोसा नहीं करना चाहिए। अक्सर उनकी बनावट इस तरहकी होती है— नैपथेलीन ९६ भाग, क्रियोसोट २ भाग और आइडोफॉर्म २ भाग। इनसे चमड़ेमें जलन होने लगती है।
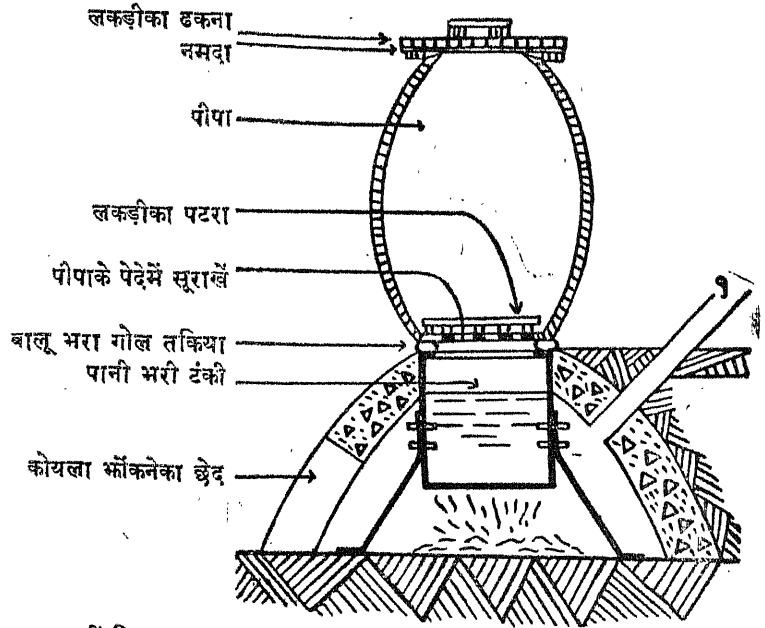
कई दवाइयोंका धुआँ भी काममें लाया जा सकता है लेकिन अनुभवसे यह मालूम हुआ है कि अधिकांश ये दवाएँ जैसे गन्धक आदि अंडोंको नहीं मार सकती हैं। साइनाइड गैसको खास औज़ारसे रुई और बड़े-बड़े कपड़ेकी गाँठोंमें फैला देनेसे जुएँ, अंडे और दूसरे कीड़े मर जाते हैं। यह साइनाइडका धुआँ बहुत ज़हरीला होता है इसलिए इससे काम नहीं लिया जा सकता है।

गत महायुद्धमें फौजोंमें जुओंसे बचनेका बहुत टेढ़ा प्रश्न था। खाई वगैरहमें सिपाहियोंको बड़ी गन्दी हालतमें रहना पड़ता था और उनके कपड़ोंमें जुएँ बहुत ज्यादा भरते थे। सभी पलटनें जुओंके द्वारा फैलनेवाली बीमारियोंसे, जैसे मोतीझरा बुखारसे, परेशान थीं। इन बातों के कारण बदनमें बहुत खुजली मचती थी और फौजोंको कवायदमें चुपचाप खड़ा रहना मुश्किल हो जाता था। रातको अच्छी तरह आराम और नींद नहीं आ सकती थी जिससे दिनमें कड़ी मेहनत नहीं हो सकती थी।

सरबिया और रूमानियाकी फ़ौजोंमें मोतीझरा बुखार से बहुत ज्यादा मौतें हुई थीं। जरमनीमें जगह-जगह पड़ाव बसे थे और फ़ौजको जुएँ मारनेकी तरकीबोंके बतलानेके बाद आगे बढ़नेका हुक्म मिलता था।

[विज्ञान, फरवरी, १९४४

किताबके कीड़े

आपको यह सुनकर आश्चर्य होगा कि संसारमें जितनी किताबें तथा कागज आगसे जलकर या सीड़के कारण खराब होते हैं उनसे बहुत अधिक संख्यामें कीड़ोंसे खराब होते हैं। उत्तरी प्रदेशोंमें तो किताबोंको कीड़ोंसे कम नुकसान होता है किन्तु उष्ण जलवायु वाले प्रदेशोंमें ये बहुत ही हानि पहुँचाते हैं।

जहाँकी जलवायु जितनी अधिक गर्म तथा नम होगी उतना ही वहां किताबोंको कीड़ोंसे नुकसान पहुँचनेका अधिक डर रहेगा। पुस्तकालयके वे विभाग जिनकी पुस्तकें अधिक काममें नहीं आतीं वहां पर ही ये कीड़े अधिक लगते हैं। जैसे छूतकी बीमारी लगातार बढ़ती चली जाती है इसी प्रकार जब कीड़ा एक किताबको लग जाता है तो दूसरी किताबोंमें भी बड़ी शीघ्रतासे फैल जाता है। इसलिये लाइब्रेरियन बहुत हुशियारीसे प्रायः इन स्थानोंको देखा करते हैं कि किसी किताबमें कीड़ा लगना शुरू तो नहीं होगया। इसके साथ-साथ जो किताबें बाहरसे आती हैं या पढ़नेवाले लौटाते हैं उन्हें देखते हैं कि कहीं इनमें तो यह छूतकी बीमारी नहीं लग आई है।

संसारके महान् व्यक्तियोंकी हस्त लिखित पोथियां इन कीड़ोंने खाकर बर्बाद कर दी हैं। इन कीड़ोंके विषयमें बहुत से पुराने लेखकोंने लिखा है। अरस्तु सन् ३६५ ई० पू० में लिखता है कि जैसे कीड़ा ऊनी कपड़ोंमें लग जाता है इसी प्रकार पुस्तकोंमें भी लग जाता है। इसके अतिरिक्त और भी पुराने लेखोंसे पता चलता है कि उस समयके मनुष्य इस कीड़ेसे कितने डरते थे। उस समय प्रेस तो था नहीं, ये ही हस्त लिखित पोथियां किसी राष्ट्रकी अमूल्य सम्पत्ति होती थीं।

बड़े-बड़े दफ्तरों तथा पुस्तकालयोंमें बहुत सी पुस्तकें तहखानोंमें बिल्कुल बन्द करके रख दी जाती हैं। इन तहखानोंमें हवा आने जानेका कोई ठीक तरीका नहीं रहता। इसके साथ-साथ पृथ्वीके स्थलसे नीचे होनेके कारण प्रायः इनमें सीड़ भी अधिक रहती है। जब कभी इन तहखानों के कागजोंकी आवश्यकता पड़ती है तो प्रायः वे कीड़ेके खाये हुये ही मिलते हैं।

बड़े आश्चर्यकी बात तो यह है कि कभी-कभी कोई किताब बड़ी बुरी तरहसे कीड़ोंसे खाई हुई मिलती है किन्तु जब उस किताबको सावधानीसे देखा जाता है तो उसमें कीड़ेका नाम निशान भी नहीं मिलता। किन्तु इसमें
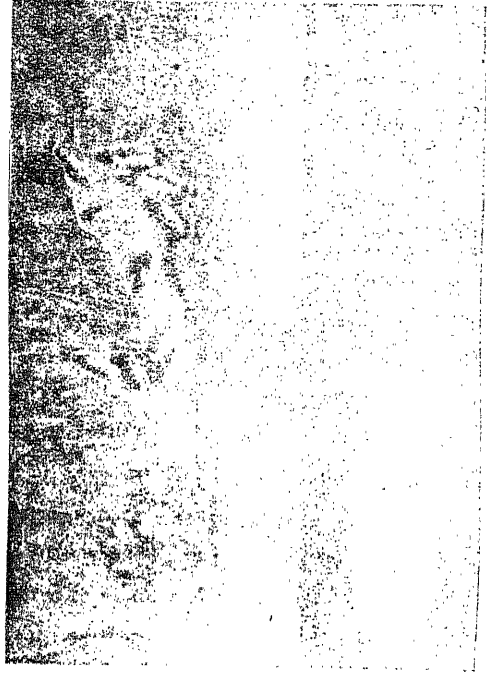
किताबके कीड़े

दाहिनी तरफ नीचे कीड़ा है (अपने आकारसे काफी बड़ा बना कर दिखाया गया) और ऊपर उसके अण्डे हैं। बाईं तरफ कीड़ोंसे नुकसानका नमूना है।

कोई रहस्यकी बात नहीं। प्रकृति ने इन किताबोंके कीड़ों को भी नष्ट करनेके लिये शत्रु उत्पन्न किये हैं जो बहुत छोटे-छोटे होते हैं और खाली आंखोंसे दिखाई नहीं पड़ते। ये किताबके कीड़ोंको मार डालते हैं। उन्हें खानेके पश्चात् ये छोटे-छोटे कीड़े स्वयं दूसरी जगह चले जाते हैं। मरे हुए कीड़ोंकी लाशोंको समाप्त करनेके लिये दूसरे वाले कीड़े उत्पन्न होते हैं। ये कीड़े मरे कीड़ोंके शरीर तथा किताबमें चमड़ा या जानवरकी चर्बी इत्यादि यदि कुछ लगी हो तो उसे खा डालते हैं। [illegible]

भी कुछ समय पश्चात् मर जाते हैं। इस प्रकार यदि कोई पुरानी किताब कीड़ोंकी खाई हुई मिले और उसमें कीड़ोंका नाम निशान भी न हो तो समझना चाहिये कि बहुत पहले यह पुस्तक भिन्न-भिन्न प्रकारके कीड़ोंकी संग्रामभूमि रह चुकी है और उस संग्राममें कोई भी लड़नेवाला बाकी नहीं बचा। यदि सूक्ष्म दर्शक-यन्त्रसे देखा जाय तो इन कीड़ोंके शरीरके छोटे छोटे टुकड़े कहीं न कहीं लगे मिल सकते हैं। इन टुकड़ोंकी परीक्षा करनेसे यह ज्ञात हो सकता है कि उस संग्राममें किस जातिके तथा कैसे कीड़ों ने भाग लिया था।

कभी-कभी पुस्तकें इन कीड़ोंकी बिमारीको दूर देशोंमें भी अपने साथ ले जाती हैं। इसलिये पुरानी पुस्तकें खरीदनेवाले आदमियोंको होशियारीसे काम लेना चाहिए। कहीं ऐसा न हो कि कम दामोंकी एक पुरानी पुस्तक लाकर अपने सारे पुस्तकालयको ही कीड़ोंसे बर्बाद कर दें।

एक बार सेन्ट लिओ-ऐब्बेके पुस्तकालयमें बहुत सी पुस्तकें कीड़ों ने खा डालीं। जब पुस्तकालयकी परीक्षाकी गई तो एक नये प्रकारका कीड़ा मिला। अभी तक वहांपर जो कीड़ा मिलता था उससे यह बिल्कुल भिन्न था। बहुत समय तक उसकी खोजकी गई किन्तु ठीक-ठीक पता न चला। इसके बाद जब और अधिक ध्यानसे देखा गया तो पुस्तकालयके एक विभागमें कुछ ही साल पहले हवाना द्वीपके चर्चके एक पोपकी बहुत सी हस्तलिखित पोथियां आई थीं। ये पोथियां ही सबसे अधिक खराब हुई थी। इस बातका निर्णय करनेके लिये हवाना द्वीपके उस चर्चके पुस्तकालयकी जांचकी गई तो वहां पर उस प्रकारके कीड़ों की बहुत अधिक संख्या मिली। इतना ही नहीं हवाना द्वीप में बहुत सी किताबोंकी दुकानोंमें भी वह कीड़ा पर्याप्त संख्यामें मिला।

किताबमें जितने कीड़े होते हैं वे सब ही किताबके पृष्ठोंको खराब नहीं करते। इन्हें तीन भागोंमें विभाजित किया जा सकता है। (१) जो वास्तवमें पुस्तकके पृष्ठोंको खराब करते हैं, (२) जो दीमककी जातिके हैं (३) जो पुस्तकके ऊपरी भागको खराब करते हैं।

वे कीड़े जो वास्तवमें पुस्तकके पृष्ठोंको खराब करते हैं बहुत छोटे होते हैं और प्रायः १/८ या १/१० इंचसे अधिक बड़े नहीं होते। जो बड़े होते हैं उनका रंग कुछ काला या कत्थई सा होता है। किताब खोलने पर ये अपने बनाये हुये छेदोंमें सिकुड़ कर बिल्कुल गोल गेंदके समान हो जाते हैं और ज्योंही पृष्ठ पलटे जाते हैं यह या तो नीचे गिर पड़ते हैं या किताबके पन्नोंमें दबकर मर जाते हैं। ये कीड़े अपने अंडे पुस्तकके पुट्ठोंके पास देते हैं। जब ये बड़े होते हैं तो किताबके पिछले भागसे—जहाँ धागोंसे पुट्ठे बंधे रहते हैं—ये किताबके पिछले भागमें चले जाते हैं। पहले ये इन धागोंको खाते हैं जिससे सारी पुस्तकके पन्ने अलग-अलग हो जाते हैं फिर किताबोंके पीछेसे कागजको खा-खाकर एक छेद बनाते हुए आगे बढ़ते हैं, और इस छेदकी दीवारोंको अपने थूकसे मजबूत सा कर देते हैं इसलिये जब पुस्तक खोली जाती है तो पन्ने चिपकेसे मिलते हैं।

दीमककी जातिके कीड़े दो प्रकारके होते हैं। एक तो वे जो पृथ्वीमें रहते हैं तथा एक वे जो सूखी लकड़ीमें रहते हैं। सूखी लकड़ीमें रहनेवाले कीड़े 'दीमक' के नामसे पुकारे जाते हैं। ये सफेद रंगके चींटियोंकी शकलकेसे होते हैं। ये कीड़े पहले किताब रखनेकी आलमारीके तख्तेको भीतर ही भीतर खाना शुरू करते हैं। जब खाते-खाते इनके छेदका मुंह तख्तेके धरातल तक पहुँच जाता है तो थोड़ा और खानेसे सुराखका मुंह खुल जाता है। इसके बाद ये आलमारीमें तथा किताबोंमें घूमने लगते हैं और किताबों तथा आलमारीके ऊपरी भाग दोनोंको खराब करना आरम्भ कर देते।

पृथ्वीमें रहनेवाले कीड़े इनसे इस बातमें भिन्न होते हैं। उन्हें सीड़के लिये पृथ्वीमें जाना पड़ता है। आधुनिक पुस्तकालयोंमें इनसे रक्षाके पर्याप्त साधन किये जाते हैं। अलमारियां लोहेकी बनाई जाती हैं और दीवारें तथा फर्श इस प्रकार बनाये जाते हैं कि उनमें इन कीड़ोंके लिये छेद न हो सके। लेकिन फर्श या दीवारमें दरार पड़ जाने पर कीड़े इनमेंसे होकर इन पुस्तकालयोंमें भी पहुँच सकते हैं।

जिन घरोंमें ये पृथ्वीमें रहनेवाले कीड़े होते हैं वहांपर लकड़ीके बक्समें बिल्कुल बन्द किताबें भी प्रायः चार महीनेमें कीड़ोंसे खराब हो जाती हैं। ये कीड़े जिस स्थान पर पुस्तकको खाते हैं वहां थोड़ी सी मिट्टी लगी रह जाती

है। यह मिट्टी ये कीड़े अपने साथ पृथ्वीके निचले हिस्सेसे ले आते हैं और उसकी सहायतासे अपने लिये बनाये गये छेदोंको सुरक्षित रखते हैं।

सूखी लकड़ीमें रहनेवाले कीड़े पृथ्वीसे कोई सम्बन्ध नहीं रखते वे तो जहां उत्पन्न होते हैं वहींसे बर्बादीका कार्य प्रारम्भ कर देते हैं। वे अपने सुराखोंकी दीवारें मिट्टी से नहीं पोतते। किन्तु उनके छेदोंमें बहुत छोटे-छोटे काले टुकड़े भरे रहते हैं। जो किताब खोलते ही एकदम बाहर निकल पड़ते।

भाग्यवश कुछ कीड़े इस प्रकारके होते हैं कि वे किताब के ऊपरी चमड़े तथा पुट्ठोंको खानेके पश्चात् किताबमें अधिक दूर तक पन्नों को खराब नहीं करते। यदि बहुत समय तक पुस्तक अपने स्थानपर ही रक्खी रहे तो वे पुट्ठे को खाकर उनके छोटे-छोटे टुकड़ों को छेदके बाहर निकालते रहते हैं। इस प्रकार किताबके पास इन छोटे छोटे टुकड़ोंका एक ढेर सा इकट्ठा हो जाता है।

एक और बहुत छोटे-छोटे सफेदसे कीड़े पुस्तकोंमें घूमा करते हैं। ये बहुत कमजोर होते हैं और किताबको कोई हानि नहीं पहुँचा सकते। न तो ये आदमियोंको काटते हैं और न किसी प्रकारकी बीमारी फैलाते हैं, लेकिन किताब पढ़ते समय उनसे बड़ी घिन होती है। ये गर्म और तर स्थानमें बहुत अधिक उत्पन्न होते हैं।

इन कीड़ोंसे बचानेके लिये पुस्तकोंको खास प्रकारकी धूनी (Fumigation) देनेकी आवश्यकता है। एक खास प्रकारका बना यन्त्र होता है जिसकी सहायतासे कीड़ोंको मारनेवाली गैस उससे निकल कर पुस्तकके कीड़ोंको मार डालती है। लाइब्रेरियनको यह ध्यान रखना चाहिये कि पुस्तकालयका कौन सा भाग अधिक नम तथा अधियारा है। वहाँ पर प्रायः इस प्रकारकी गैस छोड़नेसे पुस्तकोंकी रक्षा की जा सकती है। यदि किसी किताबमें सन्देह हो कि इसमें किताबको खराब करनेवाले कीड़े हैं तो अकेली किताब भी धूनी देकर कीड़ोंसे मुक्त की जा सकती है।

तुच्छ कीड़ोंसे भारी हानि

घरेलू मक्खियाँ हमारी भारी बैरिन हैं

घरेलू मक्खियाँ हमारे भोज्य पदार्थोंको अपनी छूतसे दूषित करके हमें विविध भाँतिके संकटोंमें डालती हैं। यदि हम अपनी खाद्य सामग्रीको सम्यकरूपसे ढाँककर सुरक्षित रखें और मक्खियों को उनके संसर्गमें न आने दें तो वे हमें तनिक भी हानि न पहुँचा सकें।

मक्खियाँ अत्याहार-प्रिय होनेके कारण दिन-भर खाती हैं। खानेके पदार्थ को देखते ही 'परान्नं दुर्लभं लोके, शरीराणि पुनः पुनः' मंत्रका जाप करती हुई वे उस पर टूट पड़ती हैं।
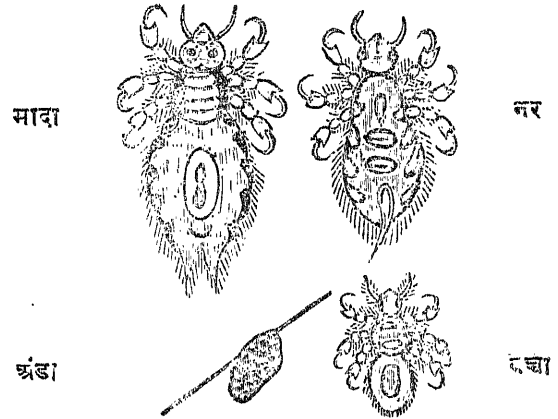
जूँ

जिस भाँति घरेलू मक्खियाँ स्वतः रोग-वाहकका कार्य करती हैं और इनके द्वारा हैजा, प्रवाहिका, मोतीझिरा (टाईफोइड), विसूचिका आदि छूतके रोगोंका प्रचार होता है यह पहले बतलाया जा चुका है।

जूँ, खटमल और मच्छर भी रोगवाहक कीड़े हैं

सन् १९१९में विलायत-बोर्डके मदरसोंके बीस प्रतिशत विद्यार्थियोंमें जुएँ मौजूद थे। किन्तु आजकल सभ्य समाज जूँको हेय दृष्टिसे देखता है यद्यपि अभीतक निश्चय-पूर्वक यह नहीं कहा जा सकता कि यह प्राणी स्वतः मनुष्योंको कोई हानि पहुँचाता है। हाँ, वे मक्खियोंकी भाँति एक पुरुषसे दूसरे पुरुष तक रोगवाहकका कार्य अवश्य करते हैं। टाइफस जैसे घातक एवं भयानक रोगका प्रचार और विस्तार वहीं हो सकता है जहाँ जूँ और खटमलोंका बाहुल्य होता है।

जूँ, खटमल और घरेलू मक्खियों की भाँति कुछ मच्छर

भी ऐसे पाये जाते हैं जो मनुष्यों, पक्षियों तथा अन्य प्राणियोंमें नाना भाँतिके रोगोंके विशेषकर मलेरियाके विस्तारके कारण होते हैं। फीलपावका प्रचार-प्रसार भी मच्छरों द्वारा ही होता है। अफ्रीकाके ढोरोंमें एक अत्यन्त घातक रोग का संक्रमण खीखी मक्खी द्वारा होता है; नारू रोग का विस्तार साइक्लाप्स कीड़ों द्वारा होता है। यह रोग उन्हीं मनुष्योंमें पाया जाता है जो गंदे तालाबों के जलको पीते हैं।
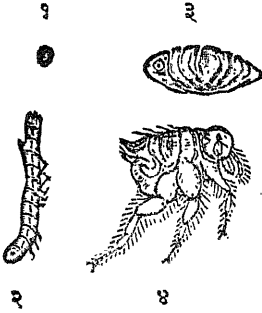
प्लेगका पिस्सू

१. अंडा। २. लड़रवा। ३ शंखी। ४. पूरा कीड़ा। इसके जीवन-चक्रकी ये चार अवस्थाएँ होती हैं।

वे कीड़े जो रोगके कारण हैं (पिस्सू और जिग्गर)

अनेक कीड़े ऐसे भी होते हैं जो रोगोंके वाहक न होकर स्वयं उनके कारण होते हैं। हमारे पाठक पिस्सुओंसे सुपरिचित होंगे। वे भी मच्छरों और मक्खियोंकी भाँति प्लेग जैसे सांघातिक रोगके कीटाणुवाहकमात्र हैं किन्तु जिग्गर अथवा शीगो पिस्सू तो स्वयम् मानव-शरीरको नोच-नोच कर घाव कर देते हैं जो कभी-कभी भयंकर रूप धारण कर लेते हैं। किन्तु सीधे हानि पहुँचाने वाले कीड़ोंमें सबसे अधिक दुःखदायी मक्खियाँ ही होती हैं क्योंकि जब इनकी इल्लियाँ मानव-शरीरमें पायी जाती हैं तब चिकित्साविशारदोंके मतमें मियासिस रोगका होना निश्चय-सा हो जाता है।

पशुओंको कष्टदायी कीड़े-मकोड़े

बघई मक्खीकी रामकहानी

कीड़े हमारे पालतू जानवरोंको भी खूब सताते हैं। कुछ रोग-वाहकका काम करते हैं तो कुछ स्वयं दुःखदायी होते हैं। बघई मक्खी पशुओंके बालोंमें अंडे देती है। अंडोंसे ढोले निकलते हैं जो पशुकी त्वचाको छेदकर उसके शरीरमें पैठ जाते हैं। वहाँ वे भ्रमण करते हुए पशुकी पीठके अधोभागमें पहुँच जाते हैं। इतने कालमें वे बढ़ भी काफी जाते हैं। वहाँ पहुँचकर वे पीठ की त्वचाको छेदते हैं और उस छिद्रके सन्निकट अपने श्वासोच्छ्वास-छिद्रको मिलाकर रखते हैं ताकि साँस लेनेमें बाहरी वायुका उपयोग कर सकें। त्वचाके छेदे हुए स्थान पककर घाव हो जाते हैं और कभी-कभी इनके कारण पशुओंको असहनीय व्यथाका सामना करना पड़ता है। इसके अतिरिक्त छिद्रोंके कारण इन पशुओंके चरसे (खाल) भी खराब हो जाते हैं और उनका मूल्य अधिक घट जाता है। इस तरह इन नन्हे-नन्हे कीड़ोंके कारण देशको प्रतिवर्ष लाखों और करोड़ों रुपये का घाटा सहन करना पड़ता है।

वनस्पतिको हानि पहुँचाने वाले कीड़े

वनस्पतिका भयंकर शत्रु टिड्डीदल

विरली ही वनस्पति ऐसी होगी जिसकी उपज और रक्षामें हमें कीड़ोंसे विपुल हानि न उठानी पड़ती हो। टिड्डियोंके उपद्रवोंसे हमारे पाठक सुपरिचित ही होंगे।
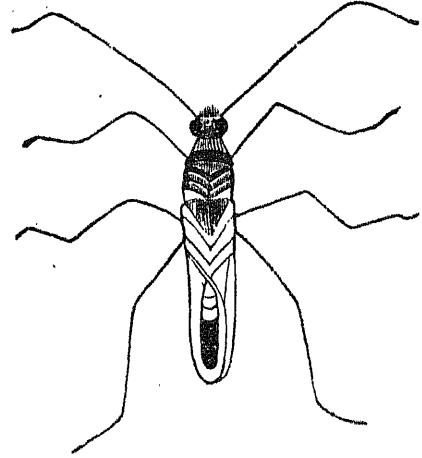
गंधी

यह कीड़ा बालियों और पत्तोंको हानि पहुँचाता है। खेतमें एकबार भी प्रवेश हो जानेसे फसलकी रक्षा करना दुस्तर हो जाता है। धुँआ करनेसे यह खेतमें नहीं घुसता।

जब ये अपने कूचका बिगुल बजाकर किसी देश या प्रान्तमें धावा बोल देती हैं तो चारों ओर त्राहि-त्राहि मच जाती है। क्षति की सीमा यहाँ तक पहुँच जाती है कि फसलों और वन-वाटिकाओंकी पत्तियों और छालतकको सफाचट कर जाती हैं, फल-फूलोंकी तो गणना ही क्या?
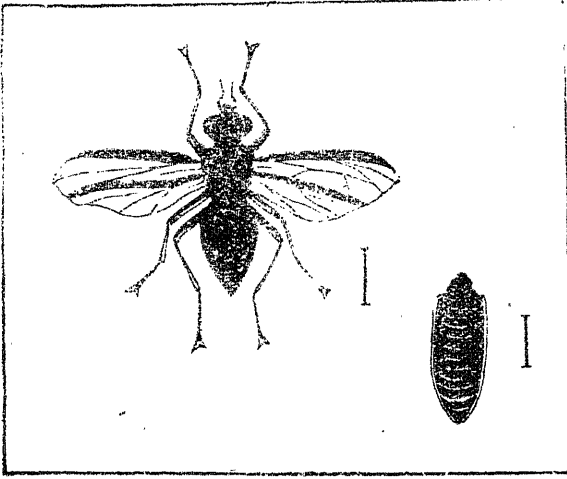
अंडीके बीजका कीड़ा और इल्ली
दोनों वास्तविकसे बड़े पैमाने पर दिखाये गये हैं।
वास्तविक नाप खड़ी लकीरोंसे प्रदर्शित किया गया है।

ऐसे विकट शत्रुओंसे अपनी रक्षा किस भाँति की जावे, यह समस्या संसारके सम्मुख बहुत दिनोंसे उपस्थित है। अनेकों उपाय किये गये किन्तु अबतक उनमें अचूक एक भी सिद्ध न हुआ। आजकल उड़ती हुई टिड्डियोंपर विषैले चूर्णके छिड़कनेमें वायुयानोंसे भारी मदद मिलती है। सभी समृद्धि शाली देश इस ओर कुछ-न-कुछ कर रहे हैं। सोडियम आरसिनाइटके महीन चूर्णसे टिड्डियाँ फौरन मर जाती हैं। अफ्रीकाके केवल कुछ प्रान्तोंमें टिड्डीके कारण प्रतिवर्ष लगभग पन्द्रह लाख पौंड की हानि होती है। फिर इनके द्वारा मानव-समाजको जो क्षति पहुँचती है उसका तो वारापार ही नहीं।

विभिन्न फसलोंको हानि पहुँचानेवाले विभिन्न कीड़े

टिड्डियोंके सिवा और कीड़े भी हमारी फसलोंको बरबाद करते हैं। घोट कीड़ा चनेके दाने, पोस्तकी डोंड़ी, बाजरेकी बाली आदिको खाते हैं। कपासके बिनौलोंको भी इस कीड़ेसे भारी क्षति पहुँचती है। गंधी धानकी खेतीको नष्ट-भ्रष्ट करती है। गोभी का पतंगा गोभीकी फसलको नष्ट-भ्रष्ट कर देता है। झींगुर भी हमारी खूब ही हानि करता है। सूड़ी कपासकी खेतीको हानि पहुँचाती है। काकचैफर भी बनस्पतियों को बड़े चावसे खाता है और कभी-कभी तो यह खेत-के-खेत सफाचट कर जाते हैं। शिकरा तितली आलूकी फसलको हानिकर है। सेब-तितलीके ढोले सेबके फलोंको खाते हैं और मैगपाईतितली दाख और करौंदेके पौधोंको हानि पहुँचाती हैं। चिकटा (प्लैंट-लाइस) शीतकालमें अमरूद आदिके वृक्षोंपर दिखाई देता है और ग्रीष्म-ऋतुमें गुलाबके पत्तों पर। यह पत्तोंका रस चूस लेता है और पौधा कुछ दिनोंके बाद जीर्ण-शीर्ण होकर मुरझा जाता है। गुलाबकी पँखुरियोंका विनाशक कीड़ा 'ऐफिड' कहलाता है। एक प्रकारका कीड़ा अंडीके पत्तों और बीजोंको भारी हानि पहुँचाता है।

चीटियोंसे हानि

चीटियाँ भी मनुष्योंको हानि ही अधिक पहुँचाती हैं। अपने छत्तोंको निर्माण करते समय खलियानों और कोठारोंसे अनाज ढोकर अपने छत्तोंमें भर लेती हैं। कहींपर उनके छत्तों में दो-दो तीन-तीन मन तक अन्न एकत्रित पाया जाता है। भोजनकी टोहमें वे निशि-दिन घूमा करती हैं और ज्यों ही उसकी गंधतक मिली हजारोंकी संख्यामें पहुँच जाती हैं। मिठाईको कहीं रखिये, चीटियाँ वहाँ किसी-न-किसी तरह पहुँच ही जायँगी। जहाँ रविकी भी पहुँच नहीं, वहाँ कविकी भाँति चीटियाँ पहुँच जाती हैं। लाखकी खेतीको चीटियोंसे बड़ी हानि पहुँचती है। कभी-कभी इनके काटनेसे मनुष्य व्याकुल हो जाता है।

घरेलू भयानक शत्रुओंमें मक्खीकी नानी दीमकें

कठफोड़ा कीड़ा
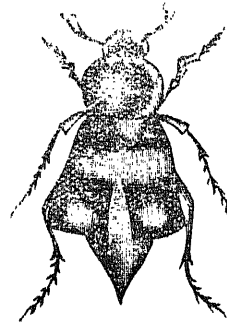
जिस लकड़ीका हमारे घरों और घरेलू वस्तुओंके निर्माणमें उपयोग होता है उसे भी कीड़े बहुत हानि पहुँचाते हैं। ऐसे कीड़ोंमें दीमक प्रधान हैं। ये प्रकाशसे भागती हैं, अतः घरोंमें नहीं दिखाई देतीं। इनकी उपस्थितिका आभास हमें तभी होता है जब ये किसी लकड़ीको काट कर भीतर-ही-

भारतीय मधु-मक्खिका
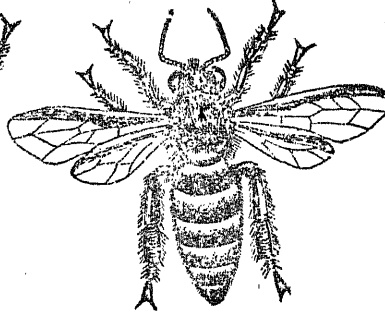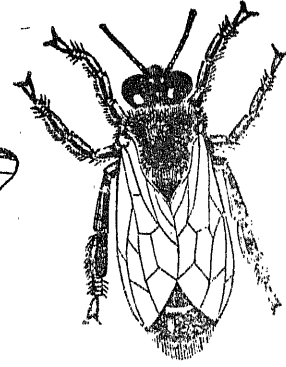
रानी मक्खी   कमेरिन या मजदूर   नर

शहदके छत्तोंमें पायी जानेवाली तीन प्रकारकी मक्खियाँ

भीतर खोखली कर देती हैं। हानिकी मात्रा यहाँतक पहुँच जाती है कि लकड़ी अंगुली तकके इशारेसे धसक जाती है किन्तु उसका बाह्य-रूप ज्यों-का-त्यों बना रहता है। बाहरसे उसकी भीतरी दशाका ज्ञान नहीं होता।

दीमककी करतूतोंकी एक मजेदार कहानी

मिसेज लीने एक स्थान पर लिखा है कि एक बार कार्यवश उन्हें चार-पाँच मासके लिये बाहर जाना पड़ा और इस अवधिके लिये उन्हें अपना मकान बंद करना पड़ा। लौटनेपर एक अनोखा दृश्य दिखाई दिया। मेज कुर्सी आदि देखनेमें तो वैसी ही प्रतीत होती थीं जैसी चलते समय उन्हें वे छोड़ गयी थीं किन्तु कमरेके अन्दरकी मेज़पर सामान रखते हीं वह भरभरा गयी और सारा सामान नीचे गिर पड़ा। उस समय मेम साहिबाने एक कुर्सीपर बैठना चाहा किन्तु जैसे ही उसकी बाँहपर उन्होंने हाथ रखा, कुर्सीकी बाँह गायब हो गयी। यह देख उनके विस्मयका ठिकाना न रहा। तब वे उस आराम कुर्सी की ओर बढ़ीं जो देखनेमें अच्छी दशामें प्रतीत होती थी किन्तु उसपर लेटते ही वह चरचराकर बैठ गयी और मेम साहिबाको धराशायी होना पड़ा। अब तो मेम साहिबा बहुत परेशान हुईं। बहुत देखभाल और सोच-विचारके उपरान्त उनकी समझमें आया कि यह सब दीमकोंकी करनीका फल है। श्रीमिटरलिंकका कथन है कि दीमकें हम लोगोंसे अधिक विवेकी होती हैं क्योंकि वे काठको पचाने, कंकड़ोंको घोलने और शरीररचनामें इच्छानुकूल परिवर्तन करनेमें अतीव निपुण होती हैं।
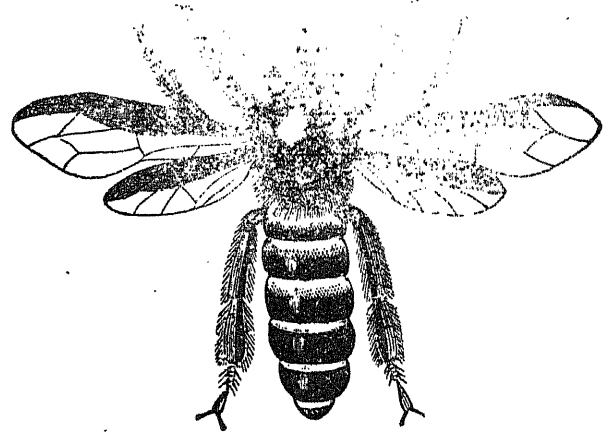
चट्टानी मधु-मक्खिका

मजदूर

अत्यन्त विषैलीहोनेके कारण यह मक्खियाँ हाथीतकको मार डालती हैं

लकड़ीके अतिरिक्त अन्य घरेलू सामानकी भी इनके कारण भयानक स्थिति रहती है। वस्त्र, पुस्तक अथवा अन्य कोई

विज्ञानं ब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते ।
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति ॥ तै० उ० ।३।५।

भाग ५८ | मीन, सम्वत् २००० । मार्च, १९४४ | संख्या ६

मेरे वैज्ञानिक संस्मरण*

[ले० बाबा करतार सिंह, एम० ए०, एस-सी० डी० (कैम्ब्रिज और डबलिन), एफ० आई० सी०, आई० ई० एस० (रिटायर्ड), प्रधान आचार्य, रसायन विभाग, प्रयाग विश्वविद्यालय, प्रयाग]

आपने आज मुझे जो अपने वार्षिक उत्सवमें बोलनेकेलिये बुलाया है, इसकेलिये मैं आपको धन्यवाद देता हूँ। अच्छा तो यह होता कि आप इस अवसरपर बोलनेकेलिये मुझसे योग्य कोई आदमी बुलाते। आपके सभापतिजीसे मैंने कहा भी था कि मैं इस कामके लायक नहीं हूँ। मैंने अपनी भाषामें बहुत कम शिक्षा पाई है जिसका कारण मैं अपने भाषणमें आगे बताऊँगा। परन्तु आपके सभापतिजी अपनी बातपर अड़े रहे और इस काममें उनकी सहायता हमारे मित्र डा० सत्य-प्रकाशजीने भी की। इन सब बातोंके सामने मैं 'न' न कर सका और मैं आप लोगोंके सामने उपस्थित हूँ। आजकी बातचीतका विषय "मेरे वैज्ञानिक संस्मरण" भी उन्हींका चुना हुआ है।

सन् १९०० में मैंने डी० ए० वी० कालीजियेट स्कूल लाहौरसे पंजाब यूनिवर्सिटीकी मिडिल परीक्षा हिन्दी और संस्कृत लेकर पास की। इसके पहले प्रारंभिक तीन कक्षाओंमें मैंने उर्दू अपने गाँवके स्कूलमें पढ़ी थी। यह बहुत ही पुराने ढंग-का स्कूल था जिसमें दो मौलवी आपसमें मिल कर तीनों दर्जों को पढ़ाते थे।

मिडिलके बाद लगभग २ वर्षतक मैंने किसी स्कूलमें नहीं पढ़ा, कारण मेरे चाचा स्कूली पढ़ाई-को बहुत आवश्यक नहीं समझते थे। सन् १९०१

* सन् १९४३ के विज्ञान परिषद्के वार्षिक उत्सवमें दिया हुआ भाषण

के आखिरमें जब मेरे पिता बरमासे छुट्टीपर आये तो यह तै हुआ कि मैं बरमा जाकर पढ़ूँ। १९०२ के शुरूमें मैं बरमा गया और वहाँ रंगून कालीजियेट स्कूलमें भर्ती हुआ। १९०३ में कलकत्ता युनिवर्सिटीसे मैंने इन्ट्रेन्स परीक्षा पास की।

अप्रैल १९०३ में मैं विलायतकेलिये रवाना हुआ। इन्ट्रेन्सका परीक्षाफल मुझे वहाँ पहुँचने पर मालूम हुआ। मैं प्रथम श्रेणीमें पास हुआ था और सूबेमें मेरा स्थान सातवाँ था। इस बातका ध्यान रखते हुये कि मैंने भाषामें बहुत कम शिक्षा पाई थी और परीक्षाके एक ही महीना पहले उर्दू ले ली थी, इस नतीजेको बहुत अच्छा मानना पड़ता है। अब इसके बाद मेरी हिन्दी-उर्दूकी शिक्षाका खातमा हो गया।

चूँकि मैं हिन्दुस्तानकी किसी यूनिवर्सिटीका ग्रेजुयेट न था इससे मुझे कैम्ब्रिजमें इंट्रेंस इम्तहान पास करना पड़ा। इस इम्तहानको लिटिलगो या प्रीवियस भी कहते हैं। इसके तीनों हिस्से मैंने तीन ही महीनेमें पास कर लिये। लैटिन तो मैंने पाँच ही हफ्तेमें तैयार कर ली थी। इस बातको देखते हुए कि बहुत-से लोगोंको इस इम्तहानके पास करनेमें दो साल लग जाते हैं यह बहुत ही बड़ी बात है। सन् १९०४ के अक्टूबरमें मैं यूनिवर्सिटीमें भर्ती होगया। यहाँ मेरे विषय रसायन, वनस्पतिशास्त्र, भौतिक और भूगर्भशास्त्र थे। हिसाब मैं घरपर ही पढ़ता था। सालके पहले हिस्सेमें वनस्पतिशास्त्रका विषय मुझे बहुत कठिन मालूम हुआ। वनस्पति-आकृत-विज्ञान (प्लाण्ट मारफोलॉजी) में बहुत-से शब्द ऐसे थे जिनको मैं नहीं समझता था, परन्तु कुछ ही दिनोंमें यह मालूम पड़ा कि यह विषय सबसे आसान है।

पृथ्वी की आयु धर्म और विज्ञानका संघर्ष

जियोलोजीको मैंने बहुत-ही सांस्कृतिक पाया। पत्थरों व भग्नाव शेषोंका अध्ययन बड़ा ही मनोरंजक था। इससे भूमंडलके इतिहासके सम्बन्धमें जो बातें मालूम होती हैं वह बहुत ही ज्ञानदायक हैं। भूगर्भवेत्ता जमीनकी आयु कुछ अरब वर्ष बताते हैं और भौतिक विज्ञानके प्रमाणोंसे भी यही बात मालूम होती है। ५० साल पहले इंगलैण्डके चर्चवाले इस बातको नहीं मानते थे। कारण यह था कि पुरानी बाइबिलमें जमीनकी उम्र कुछ हजार वर्ष ही दी है। इस प्रकार जमीनकी उम्रके भौगर्भिक और बाइबिलके अनुमानोंमें बड़ा अंतर था। गुरु नानकने इसके सम्बन्धमें "जपजी" में जो लिखा है वह आजकलके वैज्ञानिक मतोंसे मिलता है—

कवन सु वेला, वखत कवन, कवन थित, कवन वार। कवन सि रुती माह कवन, जित होआ आकार ॥५॥ वेल न पाईआ पण्डिती ज होवे लेख पुराण। वखत न पाइओ कदिया, ज लिक्खन लेख कुराण ॥६॥ थित वार नाजोगी जाने रुत्त माहना कोई जा करता सिरठी को साजे आपे जाने सोई ॥७॥ २१ पौरी

अनुवाद—५—वह कौन-सा शुभ समय था, कौन-सी घड़ी थी, कौन तिथि थी, कौन मौसम था और कौन महीना था, जब यह संसार बनाया गया।

६—इसका पता पंडित नहीं लगा सके नहीं तो पुराणोंमें लिखते। न काजी ही इसे मालूम कर सके हैं, वरना कुरानमें इसका जिक्र होता।

७—कोई योगी या और कोई उस तिथि, दिन, महीना व मौसमको नहीं जानते। इसको वही ईश्वर जानता है जिसने इसे बनाया है।

मेरे लड़कपनमें पंजाबमें यह विश्वास फैला हुआ था कि जमीन सांड़की सींगोंपर रक्खी है। जब सांड़ इसे इस सींगसे उस सींगपर ले जाता है तो जमीन हिलती है जिससे भूचाल आता है। मैं भूगर्भविज्ञान पढ़कर जिस नतीजेपर पहुँचा वह

इससे बिलकुल दूसरा था। भूगर्भ विज्ञानके अनुसार जमीनकी पपड़ीके ऊपर दबाब पड़नेसे भूचाल आता है। जहाँ पहाड़ बन रहा होता है, वहाँ यह अधिकतर आता है। इसी कारणसे हिन्दुस्तानमें भूचाल अधिकतर हिमालयके हिस्सेमें आते हैं दक्षिणी भारतमें बहुत-ही कम। 'जपजी'में गुरु नानकने जो सांड़का बयान दिया है वह भी विज्ञानके ज़रियेसे पहुँचे हुये नतीजोंसे मिलता है।

धौल धर्म दया का पूत। सन्तोख थाप रखिआ जिन सूत ॥४॥ जे को बूझै होवै सच्यार। धवने ऊपर केता भार ॥५॥ धरती होर परे होर होर। तिसते भार तले कवन जोर ॥६॥ १६ पौरी

४– सांड़ कुदरती नियम है, जो भगवानकी देन है और जो दुनियाको रोके हुये हैं।

५—जो इस बातको समझता है, सचाई पर पहुँच जाता है, वरना भला सांड़ इतना बोझ कहाँ उठा सकता है।

६– इस दुनियाके अलावा और भी दुनिया हैं। भला कौन सी ताकत है जो उनको रोके है।

कैम्ब्रिज की शिक्षण-पद्धति

कैम्ब्रिजकी साइन्सकी पढ़ाई तथा इस देशकी साइन्सकी पढ़ाईमें काफ़ी अन्तर है। वहाँके पढ़ानेवाले बहुत काबिल थे, उनमेंसे अधिकतर रायल सोसायटीके फेलो (एफ० आर० एस०) थे या वह थे जो आगे चलकर एफ० आर० एस० हो गये। पढ़ने वाला जिस लेक्चरमें चाहे जाय, कोई हाज़िरी इत्यादि नहीं ली जाती थी। प्रयोगशालाका नौकर आरंभमें एक कागज़में नाम लिखवा लेता था, २-३ लेक्चरके बाद यह भी बन्द हो जाता था। आरंभमें नाम इसलिये लिखवाते थे जिसमें फीस लेनेमें आसानी रहे, कारण हर एक लेक्चर और प्रैक्टीकल की फीस अलग-अलग देनी पड़ती थी। हिन्दुस्तानके विद्यार्थी जो उस समय मेरे साथ वहाँ पढ़ते थे उनमें डा० पन्नालाल और प्रिन्सिपल संजीवाराव (जो पहले क्वीन्स कालेज बनारसमें थे) भी थे। सरकारकी तरफसे पन्नालाल यहाँ से केमिस्ट्रीमें एम० ए० करनेके बाद गये थे। संजीवाराव मदरास यूनिवर्सिटीसे साइन्समें आनर्स डिगरी लेकर गये थे। हम तीनोंने एक साथ सन् १९०६ में साइन्स लेकर ट्राइपासका इम्तहान दिया। इस डिगरीके इम्तहानके लिये हमारी योग्यता जाननेके लिये कोई इम्तहान न होता था जैसा कि यहाँ होता है। जब इम्तहान देनेवालोंकी सूची वहाँके हालमें टाँगी गई तो मेरे हिन्दुस्तानी दोस्तोंने जो मुझसे बड़े थे मुझे यह समझाया कि मैं यह इम्तहान तीसरे साल या एक साल और काम करनेके बाद दूँ। मैंने अपने कालेजके ट्यूटरसे कहा कि वह मुझे अगले इम्तहानमें बैठनेकी इजाजत दे दें। परन्तु मेरे ट्यूटरने कहा कि तुम्हारे बारेमें यूनिवर्सिटीके पढ़ाने वालोंसे पूछताछ करली है और तुम्हें यह इम्तहान जरूर देना चाहिये। यहाँकी यूनिवर्सिटियोंकी तरह वहाँ तैयारीकी छुट्टी नहीं होती और मैंने इम्तहान शुरु होनेके १ या २ दिन पहले तक क्लासमें जाकर लेक्चर सुने।

हमारे साथ ए० टी० राजन नामका एक विद्यार्थी मद्रासका था जो हिसाबमें बहुत तेज़ था। वह सन् १९०६ में सीनियर रैंगलर होगया। इस प्रकार इस पदको पाने वाला वह दूसरा हिन्दुस्तानी था। इस सम्मानको पाने वाले सबमें प्रथम आर० पी० परांजपे थे जो कुछ दिन लखनऊ यूनिवर्सिटी के वाइस चान्सलर रह चुके हैं। आपमेंसे बहुतोंने राजनका नाम न सुना होगा, कारण कि बादको वह आई० सी० एस० होगये और अब वरमामें जजीसे पेन्शन ले चुके हैं। मेरे समयमें कैम्ब्रिजमें एक टर्म ६-७ हफ्ते का होता था और साल में ३ टर्म होते थे। यहाँ की तरह एक टर्म के बीच में छुट्टियाँ

न होती थीं जिससे कामका हर्जा न हो। हर एक टर्मके बाद लम्बी छुट्टियाँ होती थीं।

ट्राइपासके बाद कैम्ब्रिज तथा और जगहोंमें मैने चार साल १९०६ से १९१० तक काम किया। साइन्सके चार विषयोंके अलावा मैने हिसाब, क़ानून (लॉ) और अर्थशास्त्र भी पढ़ा। लन्दनमें मैंने एडवर्डसे भी हिसाब पढ़ा जिसकी केलक्यूलस की किताबें काफी मशहूर हैं। अर्थशास्त्र में और लोगोंके अलावा मैंने कीन्ससे भी जो अब लार्ड कीन्स हैं, पढ़ा और प्रोफ़ेसर पिगौ जो कैम्ब्रिजमें मार्शलकी जगह पर हुये थे, उनके भी लेक्चर सुने। और लोगोंके अलावा साइन्समें मुझे इन लोगोंने भी पढ़ाया :—

रसायन—पोप, फैंटन, जोन्स; जेम्सडीवार, हेकॉक, रूहेमेन

भौतिक—बेवन, जे० जे० टामसन, सर्ल, विलसन, वेदम

वनस्पतिशास्त्र—मार्शल वार्ड, सेवार्ड, ब्लैकमैन, टैन्सले, ब्रूक्स, कबल

अर्थशास्त्र—मेकेनी, हग्स, मार, वुड्स, हार्कर, बोनी और लेक

भारतमें वैज्ञानिक शिक्षणके प्रारम्भिक दिवस

सितम्बर १९१० में मैं हिन्दुस्तान लौट आया और नवम्बरमें गवर्नमेंट कालेज ढाकामें केमिस्ट्री का प्रोफेसर बना दिया गया। यह जगह ई० आर० वाटसनकी थी जो छुट्टी पर गये थे। उनके लौटने पर सन् १९११ में मैं ढाका कालेजमें केमिस्ट्री और फिजिक्सका प्रोफेसर बना दिया गया। सन् १९१३ में मैं अपने ही कहने पर फिजिक्ससे मुक्त कर दिया गया जिससे मैं सिर्फ केमिस्ट्रीमें अच्छी तरह काम कर सकूँ। यह आठ साल मेरे लिये काफी महत्वके थे, कारण यहीं पर मेरे भविष्यकी नींव पड़ी। ढाकामें उस समय रिसर्चकेलिये साधन बहुत कम थे जो आजकल यूनिवर्सिटियोंमें हैं। फिर भी हम लोग अनुसंधानका कार्य्य ज़ोर-शोरसे चलाते थे। डबल्यू० आर० आरचिबोल्ड वहाँ प्रिन्सिपल थे। आपलोग आरचिबोल्डको जानते होंगे क्योंकि वह १९१७ में म्योर सेन्ट्रल कालेजके प्रिन्सिपल बने। डा० ई० आर० वाटसन जो केमिस्ट्रीके बड़े प्रोफेसर थे बाद में हरकोर्ट बटलर टेकनालॉजीकल इन्स्टीट्यूट, कानपुर, के पहले प्रिन्सिपल हुये, उनके नामसे भी आप लोग परिचित होंगे। वहाँ और लोगोंके अलावा सर आशुतोष मुकर्जी, प्रफुल्ल चन्द्र राय, जगदीश चन्द्र वसु तथा रमन से मेरी दोस्ती हुई।

सन् १९१८ में पंजाब सरकारने मुझे डनकिलिफ के स्थान पर गवर्नमेण्ट कालेज लाहौरमें बुला लिया। यहाँ मैने तीन साल काम किया। यूनिवर्सिटी की शिक्षाकी देख-रेख सर जान मेनार्ड जो उस समय वाइसचान्सलर थे बहुत ही अच्छी तरहसे करते थे। जीवविज्ञानमें वहाँ कर्नल स्टीफेन्सन और डा० जी० मेठाइ थे तथा अर्थशास्त्रमें शिवराम कश्यप और बीरबल सहानी। चूँकि उसी समय १९२२ में केमिस्ट्रीकी नई प्रयोगशाला बनी थी वहाँ काफी उन्नति पर थी। लाहौरमें सर जान मेनार्ड, बुलनर, सर शादीलाल, बख्शी टेकचन्द और मनोहर लाल इत्यादिसे मेरी जान-पहचान हुई। सन् १९२१ में डनकिलिफके लौटने पर मुझे पंजाब यूनिवर्सिटी की केमिस्ट्रीकी प्रोफेसरी जो उसी समय क़ायम हुई थी दी गई, परन्तु आई० ई० एस०में होनेके कारण कुछ ऐसी मुश्किलें पड़ीं कि मैं यह पद न ले सका। केमिस्ट्रीकी प्रयोगशाला मेरे तथा विल्सडनके बनाये हुये नकशे के आधार पर बनी।

सन् १९२१ में मेरा तबादिला बिहार उड़ीसाको हो गया। पहले अप्रैल १९२१ से नवम्बर तक मैं पटना रहा फिर सन् १९२१ से १९३६ तक राबीन्शाँ कालेज, कटक। सन् १९२४-२६ में मैं फिर यूरोप गया। वहाँ कैम्ब्रिज व सेण्ट एण्ड्रूज में मैंने रिसर्च का काम किया। इसके अलावा लन्दन, आक्सफोर्ड

एडिनबरा तथा पेरिसमें भी घूमा । कैम्ब्रिजमें और लोगोंके अलावा लौरी, रिडियल, और नौरिश से मेरी मुलाकात हुई। सन् १६०५में डा० श्री रंजन कैम्ब्रिज में पढ़ते थे। वहाँ उनकी मेरी जान-पहचान मेरे विद्यार्थी डा० दिलीपसिंहके जरिये हुई। लंदन में मैं प्रो० जे० एफ० थार्प, केन्योन आस्टिन और फिलिपसे मिला। पेरिसमें प्रसिद्ध फिजिसिस्ट प्रो० ए० कौटाँने मुझे अपने यहाँ दावत दी। वहाँ उन्होंने मुझे साइन्स एकेडेमीमें परिचित कराया।

यूरोपकी इस दूसरी यात्रामें मैंने आक्सफोर्डमें फेरडे सोसाइटीके फोटोकेमिस्ट्रीके वादविवाद में हिस्सा लिया। यहाँ यूरोपके वहुत ही प्रसिद्ध केमिस्ट आये थे। परकन (जूनियर), डानन, वाइगर्ट वानहाल्बन, बोडेन्सटाइन, सिजविक, और ऑनसटाइन इत्यादिसे यहाँ मेरी मुलाकात हुई। सन् १६२५ में साउथैम्पटनमें ब्रिटिश एसोसियेशनकी मीटिंगमें राविन्सन, इनगोल्ड तथा और कई केमिस्टोंसे मेरी जान-पहचान हुई। यहाँ मेरे हिन्दुस्तानके पुराने दोस्त कर्नल स्टीफेन्सन, गिलबर्ट, वाकर, हेमी, और विल्सडन भी मिले।

भारतीय वैज्ञानिक परिषदों में दलबन्दी

हिन्दुस्तान में ब्रिटिश एसोसियेशन का दूसरा रूप इण्डियन सायंस कांग्रेस है जो दिनपर दिन उन्नति करती गई। पहले आजकलकी तरह वहुत कम पेपर पढ़े जाते थे और जहाँ कांग्रेस होती थी लोग जाने वालोंकी बड़ी खातिर करते थे और हमारे काममें दिलचस्पी लेते थे। सबसे पहले सन् १६१७ में मैंने बँगलौरकी साइन्स कांग्रेसमें भाग लिया, फिर १६१८में लाहौरमें और १६१६में बम्बईमें। यहाँ नागपुरमें होने वाली सन् १६२०की कांग्रेसके लिए रसायन विभागका प्रेसीडेण्ट मुझे चुना गया। यह दुःखके साथ कहना पड़ता है कि कुछ वर्षोंसे साइन्स कांग्रेस गिरोहबन्दीके चक्करमें पड़कर बिगड़ती जा रही है। इसीसे कुछ वैज्ञानिक इससे अलग होकर एकेडेमियोंके द्वारा अपनी सभायें अलग किया करते हैं। यह बड़े दुःखकी बात है। जिस तरह राजनीतिमें दलबन्दीने हमारी उन्नतिको रोक रक्खा है, क्या वही हाल साइन्स का भी होगा? हमें इन बातोंको रोकना चाहिये और इस देशके वैज्ञानिकोंको फिर आज़ादीसे आपस में मिलकर सब समस्याओं पर विचार करना चाहिये जिससे पुरानी वैज्ञानिक भावना हम फिर लोगोंमें पैदा कर सकें।

उड़ीसा में

कटकमें पाँच साल मैं रावीन्शां कालेजमें रहा। यह उड़ीसाका सबसे बड़ा कालेज है और प्रत्येक प्रसिद्ध उड़िया यहाँ अवश्य पढ़ चुका है। सन् १६३४-३५में मैं यहाँ प्रिन्सिपल भी था। साल में एक बार पुराने लड़कोंका एक बड़ा जलसा यहाँ होता है। सन् १६३४में आपके वाइस चान्सलर पं० इकबाल नारायण गुर्टू हमारे खास मेहमान थे। इसके अलावा सर राधाकृष्णन, रमन, सर्वाधिकारी, रास मसूद, परांजपे इत्यादि भी हमारे ऐसे जलसोंमें शामिल हो चुके हैं।

उड़ीसा में रहकर मेरी काफी बड़े-बड़े लोगोंसे जान-पहिचान हुई। उनमेंसे स्वर्गीय मधुसूदनदास भी थे। उन्होंने बताया कि उन्होंने सर आशुतोष मुकर्जीको पढ़ाया है। माण्टफोर्ड सुधारके बाद बिहारके पहले मंत्रिमंडलमें भी यह थे।

मैंने उड़ीसामें १५ साल रहकर यह अनुभव किया कि वहाँके मनुष्योंमें अपनेपनका ज्ञान बढ़ता गया और धीरे-धीरे वे साम्प्रदायिक होते गये। वे अपनी भाषाको चाहने लगे। बंगालियोंके विरुद्ध भावनायें उनमें जागृत होने लगीं। बादमें बिहारमें भी लोगोंमें बंगालियोंके विरुद्ध यही विचार बढ़ते देखे।

पटनाकी प्रयोगशाला

जनवरी सन् १६३६में बिहार व उड़ीसाके अलग होनेके कुछ ही पहले मेरा तबादला साइन्स कालेज

पटनाको हो गया। यहाँ मैं केमिस्ट्रीका हेड तथा बिहार सरकारके औद्योगिक विभागका केमिकल एडवाइज़र बनाया गया। साइन्स कालेज पटनाकी प्रयोगशाला भारतवर्षकी अच्छी प्रयोगशालाओंमें से है और बहुत ही अच्छे ढंगसे बनाई गई है। इसको बनवाने व सुसज्जित करनेका श्रेय डा० कैडवलको है जो इसकेलिये हमेशा याद रक्खे जायेंगे। यहाँ १३ लेक्चरर, १० ग्रेजुयेट असिस्टेण्ट तथा एक अच्छी वर्क शाप भी है। केमिकल और एपरेटसकेलिये सालाना ग्राण्ट भी काफी मिलती है। परन्तु इस प्रयोगशालाको देखते हुये यहाँका किया गया रिसर्च बहुत ही कम था। यह इसलिये हो सकता है कि यहाँ रिसर्च स्टूडेण्ट नहीं होते थे। वास्तवमें इसे हम आत्माके बिना शरीर कह सकते हैं। बादमें इस कमीको पूरा करनेकी कोशिश की गयी। रिसर्च स्कालर तो यहाँ असलमें इसकी शुरुआत सन् १९२७ से ही होने चाहिये थे।

सरकारके केमिकल एडवाइजरकी हैसियत से और कामोंमें मेरा एक काम यह भी था कि मैंने एक इंडस्ट्रियल केमिस्ट्री विभाग खोला। डिपलोमा क्लासमें १२ मैट्रिक पास लिये जाते थे और उनको साबुन स्याही, बालोंके तैल इत्यादि बनानेकी शिक्षा दी जाती थी। इसके खोलनेमें लगभग ५०,००० रुपया खर्च हुआ। सन् १९४० में पटनासे मैं यहां चला आया। लड़कोंके सिखानेका काम एक तजुर्बेकार केमिस्ट पी० एस० मेननके हाथ सौपा गया जिनको साबुन बनानेके कारखानोंका काफी तजुर्बा था। यह विभाग साइन्स कालेजके ही मैदानमें था और वहां केमिस्ट्री डिपार्टमेण्टके ही देख-रेखमें था। इंडस्ट्रीज विभाग में एक इंडस्ट्रियल केमिस्टकी जगह बनाई गई। आन्ध्र युनीवर्सिटीके केमिकल टेकनोलॉजी विभागके एन० एल० विद्यार्थी साहब इसमें नियुक्त किये गये। एक एनालिटिकल रिसर्च असिस्टेण्ट भी नियुक्त किया गया जिससे बिहारकी जनता अपनी चीजों की जांच बिना कुछ दिये करवा सकती थी। यह काम काफी तरक्की करता गया। एक्साइज़के कामके लिये मैं शक्करके कारखानोंका केमिकल इक्ज़ामिनर भी था।

बँगलौर इन्स्टीट्यूटमें विक्षोभ

सन् १९३५-३७ में मैं यू० पी०, बिहार और सी० पी० की यूनिवर्सिटियोंका प्रतिनिधि बनाकर इन्डियन इन्स्टीट्यूट आफ साइन्स बँगलौरकी कार्यकारिणी सभामें भेजा गया इसकेलिये मैंने कभी कोशिश भी न की थी। वास्तवमें यह तब मुझे मालूम हुआ जब मैं चुना जा चुका था। सर सी० वी० रमन इन्स्टीट्यूटके डाइरेक्टर थे। वह इन्स्टीट्यूटमें प्रसिद्ध वैज्ञानिक रखना चाहते थे। इसके फलस्वरूप डा० मैक्सबार्न, मैथमेटिकल व थ्येोरेटिकल फिजिक्समें रीडर नियुक्त हुये। रमनके सुधारके इस जोशको यहाँके कर्मचारियों ने गलत समझा। उनका ख्याल हुआ कि इससे उनकी हानि होगी। इन्स्टीट्यूटके ये तीन साल बहुत ही महत्वपूर्ण थे। सेण्ट ऐण्ड्रूज यूनीवर्सिटीके वाइसचान्सलर सर जे० सी० इरविन की अध्यक्षता में जो ५ साल के कार्य का सिंहावलोकन करने की कमेटी (Quinquennial Reviewing Committee) जो १९३६ में बैठी उसने और रायोंके अलावा यह राय भी दी कि एक रजिस्ट्रार रक्खा जाय जो इन्स्टीट्यूटके सारे कार्य की देख-रेख करे। इस प्रकार डाइरेक्टर रिसर्च करने तथा वहाँ और रिसर्च कराने के लिये काफी समय दे सकेगा। कौंसिलके अधिकांश मेम्बर जिनके लीडर डा० श्यामाप्रसाद मुकर्जी थे सर सी० वी० रमनकी डाइरेक्टरी खतम करने पर उतारू थे। भारत सरकारकी इस सलाहके होते हुये भी कि रमन साहबके इन्स्टीट्यूट में रहनेसे इसकी इज्जत है, इन लोगोंकी विजय हुई।

प्रयाग विश्वविद्यालय

पिछले ३ सालोंसे मेरा सम्बन्ध इस यूनिवर्सिटीसे है। यहाँ परीक्षा और पढ़ाईका आदर्श बहुत ऊँचा है। हमारे मौजूदा वाइस चान्सलर साहब की देख-रेखमें इसकी हरप्रकारसे तरक्की हुई है। परन्तु जो सुधार और बढ़ाव यूनिवर्सिटी करना चाहती थी, लड़ाईके कारण, असम्भव हो गये है। चूँकि मैं यहाँ अभी नया हूँ यहाँके बारेमें कुछ कहना बहुत ही जल्दी करना है। आप लोगोंमेंसे ज्यादातर यहाँ के बारेमें मुझसे अधिक जानते होंगे।

वैज्ञानिक साहित्य की भाषा

अब मैं विज्ञान परिषद्के सम्बन्धमें कुछ कहना चाहता हूँ। मैं समझता हूँ कि इस संस्थाका उद्देश्य इसी सूबेकी भाषा में साइन्सका प्रचार करना है। यह एक बहुत ही महत्वपूर्ण उद्देश्य है। इसी प्रकार साइन्सका ज्ञान जनता तक पहुँचाया जा सकता है। परन्तु यदि भाषा मुश्किल हुई तो लोग उसे समझ न सकेंगे। इस प्रकार उनमें साइन्स का ज्ञान आसानीसे नहीं फैलेगा और संस्थाका उद्देश्य पूरा नहीं होगा। यदि हम इतिहासकी ओर देखें तो सिक्ख गुरुओंका कार्य हमें ठीक रास्ता दिखायेगा। पन्द्रहवीं शताब्दीमें पंजाबमें संस्कृत समझना मुश्किल था। ब्राह्मण भी हिन्दी और संस्कृत उन लोगोंको सिखानेके लिए तैयार न थे जो द्विज नहीं थे। सिक्खोंके दूसरे गुरू अंगद जो नानक के बाद हुये उन्होंने गुरुमुखीका प्रचार किया और इसी लिपिमें उन्होंने गुरुबानी लिखी। श्री गुरु-ग्रन्थ साहबकी भाषा आसान है। इसमें हिन्दी, उर्दू, फारसी, संस्कृत आदि भाषाओंके शब्द हैं तथा पंजाबके अलावा और सूबोंमें प्रचलित शब्द भी हैं। जैसा कि आप लोग जानते हैं इसको समझना बहुत आसान है। गुरुओंकी शिक्षायें आसान भाषामें लिखी होने के कारण अपढ़ आदमी भी इनको आसानीसे समझ सकता है। इनका असर जादू-सा पड़ा और पंजाबके गँवार लोग भी फिलोसफिकल बन गये। इस प्रकार यह लोग गुरु गोविन्दसिंहके स्वतंत्र आदमी बने। इससे यह बात साफ जाहिर होती है कि हमें अपनी उर्दू या हिन्दी बहुत सरल बनानी चाहिये। हमें पुराने लेखकोंकी भाँति साधारण शब्द प्रयोग करना चाहिये। मीरने अपने दीवानमें हिन्दी वा संस्कृत के शब्द प्रयोग किये हैं। सूरदास, तुलसीदास, आदिने उर्दू व फारसीके शब्दोंका प्रयोग किया है। कबीर व नानकके गीत साधारण भाषामें होनेके कारण अब तक करोड़ों गँवारों द्वारा भी गाये जाते हैं। इससे उनकी मानसिक व आध्यात्मिक उन्नति हुई। आजकलके लेखक इसके बिलकुल खिलाफ हैं जिससे दो भाषायें एक दूसरे से काफी भिन्न हो गयी हैं। यह शोककी बात है। यह उम्मीद करना चाहिये कि आपके विज्ञान परिषद्की सी संस्थायें मिल कर हिन्दी व उर्दूको मिलानेकी कोशिश करें। इस प्रकार देशके लिए हिन्दुस्तानीके रूपमें एक भाषा निकल आवेगी जिसकी हमें आवश्यकता है और जो एक बहुत बड़ी कमी को पूरा करेगी।

व्यावहारिक मनोविज्ञान

मन की यंत्र-रचना (The Mechanism of the Mind)

(*श्री राजेन्द्र बिहारी लाल, एम० एस, सी०—इण्डियन स्टेट रेलवेज़*)

अगर आप अपने मनको ठीक ढंगसे काममें लाकर उससे पूरा-पूरा लाभ उठाना चाहते हैं तो आपके लिये यह आवश्यक है कि आप मनके यंत्र-विज्ञानका अध्ययन करें, उसके कल-पुर्जोंसे परिचय प्राप्त करें और उनकी क्रियाओं तथा उनसे काम लेने की विधियोंको अच्छी तरह समझें। मानसिक क्रियाके मुख्य तत्त्व क्या हैं? वे किस प्रकार काम करते हैं और उनका एक दूसरेसे क्या सम्बन्ध है? क्या वे तत्त्व किसी हद तक हमारे क़ाबूके अन्दर रहते हैं और अगर ऐसा है तो उन पर किस प्रकारसे शासन किया जा सकता है? इन्हीं प्रश्नों पर यहाँ विचार किया जायगा।

मोटरकार की उपमा

क्या कभी आपने एक चलती हुई मोटरकार को देखकर यह विचार किया है कि इस बलशाली और द्रुतगामी सवारीके चलनेके प्रधान अंग क्या हैं? लचकदार गद्दियाँ, बैठने और टांग फैलानेके के लिये कुशादा जगह, गाड़ीके रंग और रूप इत्यादिकी ओर तो आपका ध्यान अवश्य ही आकृष्ट हुआ होगा, पर यह सब चीजें कारके चलनेके आवश्यक या प्रधान अंग नहीं कहे जा सकते। ये सब निस्सन्देह गाड़ीको आरामदेह बनानेमें सहायक हैं, पर गाड़ीके मुख्य गुण उसकी चाल पर इन चीजोंका कोई विशेष असर नहीं पड़ता। ध्यानपूर्वक विचार कर। देखनेसे ज्ञात होगा कि मोटरकारके संचालनके तीन मुख्य तत्त्व हैं :—१—उसका इञ्जिन २—टंकीमें पेट्रोल और ३ संचालक। इञ्जिन कारका अत्यन्त ही आवश्यक भाग है। जितना ही शक्तिशाली और बढ़िया यह इंजिन होगा उतनी ही अच्छी गाड़ी होगी। एक चार सिलिण्डर और दस घोड़ोंके बल वाली गाड़ी एक आठ सिलिण्डर और ३० हार्स पावर की गाड़ीका मुकाबिला कदापि नहीं कर सकती। मगर कार-संचालन-गुर केवल इंजिन तक ही नहीं समाप्त हो जाता। शक्तिशालीसे शक्तिशाली इंजिन भी आप से आप नहीं चल सकता। उसके संचालनके लिए पेट्रोल अथवा उसके अभावमें मिट्टी का तेल, या कोयले की गैस उसको मिलना आवश्यक है। इतने पर भी, जैसा कि आप फौरन ही समझ लेंगे, केवल बलवान इंजिन और पेट्रोलसे ही मोटरका चलना सम्भव नहीं। उसकेलिए एक सुयोग्य और निपुण संचालककी भी आवश्यकता है जो उसको निर्दिष्ट लक्ष्यकी ओर रुकावटोंके बीचसे बचाता हुआ, सुरक्षित निकाल ले जा सके। संचालककी ही सहायतासे उस शक्तिमान इंजिन और सामर्थ्यके भण्डार पेट्रोलसे लाभ उठाया जा सकता है। अगर इंजिनको इच्छा और आवश्यकतानुसार काममें न लाया जा सके तो उसके केवल रक्खे रहनेसे किसीको लाभ ही क्या?

मानसिक योग्यता के तीन तत्त्व

ठीक यही हालत मनके यंत्रकी भी है। मोटर इंजिनके समान ही मनके यंत्रके भी काम करने के तीन मुख्य तत्त्व दिखाई पड़ते हैं। एक तो दिमाग़ की प्राकृतिक या जन्म-प्राप्त शक्ति, दूसरे उस शक्ति से काम करनेकी लगन या भावना-जनित-उत्साह और तीसरे मनको निर्दिष्ट दिशा या कार्यमें लगाने और बराबर लगाये रखने का संकल्प जिसका नाम हम व्यवसाय या इच्छा शक्ति रखेंगे। यद्यपि मनकी क्रियाओंको हमने तीन खण्डोंमें विभाजित

किया है तथापि इससे यह न समझना चाहिये कि मन तीन हैं या उसमें अलग-अलग तीन खाने हैं। वास्तवमें मन एकही पदार्थ है जो भिन्न-भिन्न ढंगसे आविर्भूत होता है।

मन की वास्तविक शक्ति

मानसिक क्रियाओंमें मनकी स्वाभाविक या प्राकृतिक शक्तिका वही स्थान है जो मोटर-कारमें उसके इंजिनका है। जैसे मोटर गाड़ियोंकी शक्तिमें भिन्नता होती है उसी प्रकार मनुष्योंकी प्रकृति से मिली हुई शक्तिकी पूँजीमें भी बड़ा अन्तर होता है। बल्कि कहना तो यह चाहिए कि बिरलेही ऐसे दो व्यक्ति मिलेंगे जिनकी ईश्वरप्रदत्त मानसिक शक्तियाँ हरप्रकारसे समान हों। मनकी प्राकृतिक शक्तियोंमें समझनेकी शक्ति (बुद्धि), याद रखनेकी शक्ति (मेधा) और नये विचारोंको पैदा करनेकी शक्ति (कल्पना शक्ति) ही प्रधान हैं। किसी व्यक्तिके पास ये शक्तियाँ बराबर मात्रामें नहीं रहतीं और यदि भिन्न-भिन्न व्यक्तियोंकी तुलना करें तो उनकी इन शक्तियोंकी मात्रामें भी विभिन्नता दिखाई पड़ेगी।

इसमें कोई सन्देह नहीं कि यदि दूसरी सब बातें समान हों तो वह व्यक्ति जिसके मन की वास्तविक शक्ति जिसका दिमाग़ अच्छा है, दुनियामें ज़्यादा सफलता प्राप्त कर सकेगा बनिस्बत एक दूसरे व्यक्तिके जिसका दिमाग़ कुछ कमज़ोर है या उतना अच्छा नहीं है। पर क्या मानसिक उद्योग का सर्वस्व केवल ये प्राकृतिक शक्तियाँ ही हैं? क्या किसी मनुष्यका सफल या असफल होना केवल इन स्वाभाविक या जन्म-प्राप्त शक्तियों पर ही निर्भर है? क्या जीवन में सफलता इन शक्तियोंकी मात्राके अनुसार ही होती है? कदापि नहीं! अनुभव इसके बिल्कुल विपरीत बताता है। कितने कम बुद्धि वाले दुनियामें बड़ी सफलता और यश प्राप्त कर लेते हैं और कितने मनुष्य जिन्हें प्रकृतिने पर्याप्त मात्रामें बुद्धि दी है उससे लाभ नहीं उठा पाते और जीवनकी दौड़में पीछे ही रह जाते हैं। यह उसी तरह है जैसे कोई बलवती मोटर गाड़ी पेट्रोल या अच्छे ड्राइवरके अभावमें या किसी कल-पुर्ज़ेके बिगड़ जानेसे रुकी पड़ी रहे। और यहीं हमें एक क्रियात्मक मनके शेष दो तत्त्वों—भावना और इच्छा शक्ति—की महत्ताका आभास होता है क्योंकि उनके बिना कोई दिमाग, चाहे वह स्वयं कितनाही ताकतवर क्यों न हो, उपयोगी या प्रभावशाली नहीं बन सकता।

भावना की व्याख्या

मानसिक क्रियाका दूसरा तत्त्व भावना है। पहले यह अच्छी तरह समझ लेना चाहिए कि भावना या अन्तःक्षोभका अर्थ क्या है। हम इन दोनों शब्दोंको एक ही मानेमें प्रयोग करेंगे। मनोविज्ञानने सिद्ध किया है कि मनुष्यों और जानवरोंमें भी कुछ स्वाभाविक मनोवृत्तियाँ होती हैं—जैसे सुखकी-कल्पना, भय, घृणा, झगड़ालूपन, अनुकरण, हँसना तथा संग्रह इत्यादिकी प्रवृत्ति। इनमेंसे हर एक मनोवृत्ति परिस्थितिओं द्वारा उत्तेजित होकर मनुष्यमें एक भावना या अन्तःक्षोभ पैदा कर सकती है जिससे मनुष्यके शरीरमें स्फूर्ति या बलका संचार होता है। शिकारी कुत्तोंको देखकर एक हिरन या खरगोश में जो भय उत्पन्न होता है वह उसकी टाँगोंको आत्म-रक्षाके हेतु भागनेके लिए अपूर्व शक्ति प्रदान करता है। क्रोधसे जिस शक्तिका संचार होता है वह शत्रुपर आक्रमण करनेमें काम आती है। जब हम सितारोंका अध्ययन करते हैं तो हमें आकाश और उसमें दीखने वाले असंख्य सितारोंके वृहत् होनेका आभास होता है जिसे हम आश्चर्यकी भावना कहेंगे। इसी आश्चर्य या कौतूहल की भावनासे प्रेरित होकर ही मनुष्योंने भाँति-भाँतिके आविष्कार किये हैं। इसी प्रकार हम समय-समयपर क्रोध, भय, सुख इत्यादिकी भावनाका अनुभव करते हैं।

तीन प्रधान मनोवृत्तियाँ

मनोवृत्तियोंके व्योरेवार वर्णनकी यहाँ आवश्यकता नहीं। केवल तीन ही प्रकारकी भावनायें यहाँ उल्लेखनीय हैं। प्रथम सुख या आरामकी चाह, दूसरे किसी चीजको पसन्द करना या उससे घृणा करना, तीसरे विजयाकांक्षा या यश तथा कीर्ति पानेकी इच्छा रखना।

सुखकी कामनासे मनुष्य अतीत कालसे कितना कड़ा परिश्रम, कितनी कठिनाइयों और कष्टोंका सामना करता आया है यह सभी जानते हैं। सुख ही की इच्छासे कितने विद्यार्थी रात-रात भर पढ़ते रहते हैं और दूसरी तरफ कितने लोग चोरी तथा अन्य नीच कर्मों में व्यस्त हो जाते हैं। मानव जातिके इतिहास में सुख-कामनाका कितना बड़ा हाथ रहा है यह सभी लोगोंको स्पष्ट रूपसे विदित है। इस सम्बन्धमें अधिक कहनेकी आवश्यकता नहीं।

आप किसी चीज या कामको पसन्द करते हैं या उससे घृणा करते हैं। केवल इतने ही से मानसिक दृष्टिकोणमें और इससे आपकी शक्तियोंके प्रभावमें भी महान् अन्तर हो जाता है। जिस कामका आपको शौक़ नहीं है, जिसमें केवल आपका आधा मन लगता है, उसे आप कदापि उतनी सफलतासे नहीं कर सकते जितना एक दूसरे कामको जिसमें आपको रुचि है और जिसे आप उत्साहसे करते हैं। आपकी पूरी शक्तियाँ उसी काममें लगेंगी जिसे आप अपने हृदयसे पसन्द करते हों। जिस विषयमें एक विद्यार्थी की अधिक रुचि होगी उसमें वह अधिक योग्यता प्राप्त कर सकेगा।

विजयाकांक्षा—अपने साथियोंपर विजय, उनमें नाम और उनका सम्मान प्राप्त करनेकी इच्छा-मनुष्योंसे काम तथा कड़ा परिश्रम करनेको उसकाने वाली प्रेरणाओंमें अत्यन्त ही महत्त्वपूर्ण है। मानव जातिकी उन्नतिका बहुत बड़े अंशमें श्रेय इसीको है। और यदि यह न होती तो इसके बिना दुनिया का इतिहास कुछ और ही रूपमें होता। जो विद्यार्थी रात-रात भर टिमटिमाती हुई लालटेनके मन्द प्रकाशमें किताबपर आँखें गड़ाकर पढ़ता रहता है उससे मेहनत कराने वाली प्रेरणाओंमें यदि एक ओर सुखकी इच्छा है तो दूसरी ओर पुरस्कारकी लालसा, अपने सहपाठियोंका सम्मान और अपने अध्यापकोंसे शाबाशी प्राप्त करनेकी कामना। मनुष्यों को पशुओंसे विशिष्ट करनेवाली प्राकृतिक प्रवृत्ति विजयाकांक्षा ही है।

इच्छाशक्ति या व्यवसाय

अब हमने देख लिया कि भावना ही से वह शक्ति उत्पन्न होती है जो मनके यन्त्रका संचालन करती है। मनके क्रियात्मक उपयोगमें तीसरा मुख्य तत्त्व इच्छाशक्ति या व्यवसाय है। इसीके द्वारा मनुष्य मनको एक लक्ष्यकी ओर केन्द्रित करता है या एक दिशामें लगाता है। इसीके द्वारा कई दिखाई देते हुये रास्तोंमें से मन एकको चुनता या निर्धारित करता है। इसीके द्वारा वह अपनी स्फूर्ति तथा शक्तिको कार्य रूपमें परिणत करता है। उद्योग इसका स्वरूप है और क्रिया इसका फल। मनके घोड़ेके लिए यह एक सवारका काम करता है। जब कठिनाइयोंसे हताश होने या उत्साहकी आग मन्द हो जानेके कारण मनुष्यकी गति रुकनेसी लगती है उस समय यह दृढ़ संकल्पसे उद्योगके घोड़ेको एँड़ लगा कर फिर दौड़ चलने के लिए उत्तेजित करता है। बहुतसे व्यक्ति जिन्हें अच्छा दिमाग मिला है और जो दुनियामें कुछ कर दिखानेके बड़े इच्छुक हैं इसी शक्तिके अभाव या दुर्बलताके कारण मनके लड्डू ही खाते रह जाते हैं और कर कुछ नहीं पाते, इच्छा और इच्छाशक्तिमें यही अन्तर है। एक तो अनिश्चित सुख, सफलता तथा यश प्राप्त करनेकी कामना है और दूसरी उस कामनाको वास्तविक बनानेके लिए दृढ़ संकल्प और उद्योग है।

सारांश यह कि मनके तीन मुख्य तत्त्वोंमें विशुद्ध मानसिक बलका धर्म है सोचना, विचारना, स्मरण करना और नये विचारोंका उत्पादन करना। भावना

या अन्तःक्षोभ, शौक, लगन तथा उत्साह मनमें आवेश या स्फूर्ति पैदा करते है। इच्छाशक्तिका मुख्य स्वरूप है उद्योग और उसका मुख्य धर्म है मानसिक या शारीरिक शक्ति अथवा सामर्थ्यको कार्य रूपमें परिणत करना।

तीनों तत्वों की पारिस्परिक क्रिया

हमने दिमागसे काम लेने की उपमा एक मोटर-कारके इंजिनके संचालनसे दी है। अगर आपने ध्यानपूर्वक विचार किया होगा तो सम्भवतः इन दोनोंमें एक भेद की ओर आपकी दृष्टि आकर्षित हो गई होगी। वह यह कि मोटरके चलनेके तीन मुख्य अंग—इंजिन, पेट्रोल, और संचालक एक दूसरे से बिल्कुल पृथक और बाहर की चीजें हैं। लेकिन मानसिक क्षेत्र इसके बिलकुल विपरीत है। उसमें भावना, बुद्धि और इच्छाशक्ति एक दूसरे से बिल्कुल पृथक होनेके बजाय एक ही मनके तीन पार्श्व या पहलू हैं जो आपस में मिले-जुले हैं, क्रिया प्रतिक्रिया करके एकदूसरे पर काफी प्रभाव डालते हैं और बड़ी हदतक या तो एक दूसरे की दुर्बलता या अभाव को पूरा कर देते हैं या उस दुर्बलताके कारण स्वयम् भी निकम्मे बन जाते हैं। इस बातको और स्पष्ट करने के लिए नीचे कुछ उदाहरण दिये जाते हैं।

आप एक नई पुस्तक पढ़ने बैठते हैं। यदि पुस्तक आपको पसन्द है तो आप उसे शौक से पढ़ते हैं, आपका ध्यान उसपर खूब जमता है, आप उसे समझते जाते हैं और पढ़ी हुई वस्तु याद भी होती जाती है। यह सब भावना-जनित उत्साह का ही फल है। इसके विपरीत, यदि आपकी रुचि उस किताबमें नहीं तो आपकी आँखें भले ही उस पर लगी रहें आपका ध्यान बहक कर कहीं और पहुँचेगा और आपकी बुद्धि चाहे तीव्र भी हो पर विषयको न तो समझ ही सकेगी और न याद ही कर सकेगी। ऐसी अवस्थामें आप क्या करते हैं ? शौक या भावनाकी कमी को पूरा करनेके लिए अपनी इच्छाशक्ति या व्यवसाय को काममें लाते हैं। इसके द्वारा अपने भटकते हुए मनको बार-बार अपने सामनेके विषयपर खींचकर ले आते हैं। अगर आपकी इच्छाशक्ति कमजोर हुई या आपने उसको पूरी तरह से प्रयुक्त न किया तो कदाचित् आपको उस पुस्तकको बन्द करके रख ही देना पड़ेगा। पर यदि आप अपनी इच्छाशक्ति द्वारा भावना के अभाव पर विजय पाकर उस पुस्तक के पढ़ने में लगे रहें तो आप देखेंगे कि कुछ समय बाद आपके मनमें उसकी ओरसे रुचि भी पैदा हो जायगी। क्रियात्मक मनके तीनों तत्त्व- बुद्धि, भावना और इच्छाशक्ति इतना मिल-जुल कर काम करते हैं कि एक किताब के पढ़ने की क्रियाका विश्लेषण कर यह कहना असम्भव है कि उस पढ़ने की सफलता का कितना अंश किसी विशेष तत्व के कारण है।

एक व्यक्ति है जिसे प्रकृतिने जी खोलकर मानसिक बल प्रदान किया है। विलक्षण बुद्धिके साथ-साथ उसे लगन या उत्साह भी खूब मिला है। बुद्धिमान वह इतना है कि जब कोई प्रश्न उसके सम्मुख आता है तो जहाँ आप और हम उस प्रश्नमें केवल दोही पहलू देख पाते हैं वह तुरन्त ऐसे पहलू देख लेता है और उनपर बड़ी तत्परताके साथ विचार करने लग जाता है। उस प्रश्नपर किसीभी निर्णयके पक्ष या विपक्षमें उसे कितनी ही बातें दीखती हैं, वह उनको बड़ी ईमानदारीसे तौलता रहता है, इसी तरह समय बीतता जाता है, पर वह किसी दृढ़ निश्चय पर नहीं पहुँच पाता और न अपने निर्णय को कार्य रूपमें ही परिणत कर पाता है। कारण यह कि उसकी इच्छा-शक्ति की दुर्बलता, उसकी बुद्धि और उत्साह की प्रतिभाको बिल्कुल प्रभाहीन कर देती है।

एक और उदाहरण लीजिए। एक विद्यार्थी पढ़नेमें अभिरुचि न होनेके कारण अपना समय व्यर्थकी गप-सप या आमोद-प्रमोदमें नष्टकर देता है। उसकी बुद्धि तेज होते हुये भी उसे कोई फायदा नहीं पहुँचाती, ठीक उसीप्रकार जैसे कि खानमें पड़ा हुआ खनिज पदार्थ कोई लाभ नहीं पहुँचा सकता जब तक कि वह खोदकर बाहर न निकाला जाय।

एक दूसरे विद्यार्थीकी ओर देखिये। उसे नैसर्गिक बुद्धि एवं पढ़नेका शौक दोनों प्राप्त हैं। पढ़नेकी धुनमें वह कितनी ही पुस्तकें पढ़ डालता है। अगर कभी इतिहास तो कभी मनोरंजक विज्ञान, कभी भूगोल तो कभी दर्शन, जिस भी विषयकी पुस्तककी ओर ध्यान आकर्षित हुआ उसीको उठाया और पढ़ना आरम्भ कर दिया—पढ़नेमें न कोई नियम न कोई योजना और न कोई लक्ष्य। वे पेंदेके लोटेकी भाँति जिधर ही हुआ ढुलक गये। यह क्या है ? केवल इच्छा-शक्तिकी दुर्बलता या उसका दुरुपयोग।

भावना का महत्त्व

इस तरहकी और भी कितनी मिसालें दी जा सकती हैं। पर अब इसकी आवश्यकता नहीं। उपर्युक्त उदाहरणों से यह स्पष्ट हो गया होगा कि मनके तीनों तत्त्व मिलकर एक दूसरे पर क्रिया-प्रतिक्रिया करते हुए और एक दूसरे पर प्रभाव डालते हुए काम करते हैं—उनमें घना पारस्परिक सम्बन्ध है। यों तो मानसिक क्रियाओंके तीनों ही तत्त्व अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं, मगर भावनाका स्थान सबसे ऊँचा है। आइये, इस बातपर विचार करें कि भावनाको मनकी क्रियाओंमें प्रधान क्यों कहते हैं। इसके कई कारण हैं—प्रथम यह कि इच्छाका रूप धारण करके भावनायें ही मानसिक शक्तियों को पूर्णतया और एकरस करके किसी काममें लगाती हैं। किसी पुस्तक में यदि आपको अधिक रुचि है तभी आप उसे मन लगाकर पढ़ेंगे, तभी आपका ध्यान उस पर जमेगा और तभी आप उसे सफलतापूर्वक याद भी कर सकेंगे। कल्पनाशक्ति भी रुचि या शौकसे प्रेरित होकर ही अपना काम करती है।

भावना या अन्तःक्षोभ यदि एक ओर मनकी शक्तियोंको मिलाकर उन्हें एक दिशामें लगाता है तो दूसरी ओर वह उस गर्म भावका काम करता है जो हमारे मनके इञ्जिनका संचालन करती है।

अन्तःक्षोभकी भाप न केवल मानसिक शक्तियों का संचालन करती है, बल्कि शारीरिक शक्तियोंका भी। यह सभी जानते हैं कि भय या क्रोध जानवरों या मनुष्योंके शरीरमें बलका संचार कर देता है जो आत्म-रक्षा या दूसरे पर आक्रमण करनेमें सहायक होता है। शौक या रुचि-जनित उत्साहसे ही मनुष्य कठिनाइयों या संकटोंके होते हुए भी परिश्रमसे नहीं थकता और बड़े-बड़े काम कर डालता है। जहाँ शौक कम हुआ या उत्साहकी अग्नि मन्द पड़ी बस काम भी ढीला पड़ा।

भावनाका तीसरा बड़ा काम यह है कि वह मनुष्यके मनमें बैठकर उसके विचारोंको रंग देती है। एक मनुष्यने कोई सुझाव पेश किया। अगर उस व्यक्तिकी ओरसे आपके भाव प्रेम या दयाके हैं अथवा आप उस व्यक्तिको पसन्द करते हैं तो आप उसके सुझावकी भी प्रशंसा कर देंगे अथवा आपके विचार उस सुझावकी ओरसे भी अच्छे बन जायँगे। इसके विरुद्ध, यदि आप उस व्यक्तिसे अप्रसन्न हैं या घृणा करते हैं अथवा डरते हैं तो सम्भावना तो यही है कि आपके विचार भी उसके सुझावकी काट करनेके लिए भाँति-भाँतिकी युक्तियाँ निकालेंगे। यहाँ यह कदापि न समझ लेना चाहिए कि आपको इस बातका लेश-मात्र भी ज्ञान होगा कि आप जान-बूझकर अपने भावोंसे अपने विचारोंको प्रभावित होने दे रहे हैं। ऐसे मनुष्य संसारमें बिरले ही होंगे जो अपने विचारोंको अपने भावोंसे बिल्कुल पृथक रख सकें। हाँ, विज्ञानके क्षेत्रमें ऐसा अवश्य है कि विचारों, प्रयोगों या सिद्धान्तोंको भावना या अन्तःक्षोभ द्वारा प्रभावित नहीं होने दिया जाता।

भावनाका यह गहरा, विचित्र और जटिल जीवन विचारके जीवनकी अपेक्षा कहीं पुराना और गहन है। मनुष्यको एक सूक्ष्म दिमाग मिलना और उसके द्वारा विचारोंका उत्पन्न होना तो अपेक्षाकृत हालकी घटना है। उससे कहीं पहले जीव-जन्तुओंकी सारी क्रियायें उनकी भावनाकी प्रेरणाओं पर निर्भर

करती थीं। मनकी शिक्षामें भावनाकी शिक्षाका स्थान इसीलिए अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है।

भावना-जनित-कार्य शक्तिका स्थान सर्वप्रथम है। दूसरे शब्दजो इसके लिए कभी-कभी प्रयुक्त किए जाते हैं आन्तरिक प्रेरणा, जोश और उत्साह हैं। आपको अपनी या किसी दूसरे व्यक्तिकी मानसिक योग्यता माननेमें सबसे पहले यह निर्णय करना पड़ेगा कि भावना या अन्तःक्षोभकी गहराई और तेजी कितनी है जैसाकि एक उद्देश्यया महत्वाकांक्षा अथवा किसी लक्ष्यको प्राप्त करनेके लिए आन्तरिक प्रेरणासे विदित होगा। यह प्रबल इच्छा कारोबारमें उन्नति करनेकी, सुन्दर चित्र बनानेकी, दुखियोंका कष्टनिवारण करनेकी या केवल अपने कार्यको और भी सुचारु रूपसे करनेकी हो सकती है। खास बात यह है कि मानसिक योग्यता मुख्यत: भावजन्य है। और दूसरी सब शक्तियाँ जिन्हें हम शुद्ध दिमागी कहते हैं वे सब मनके कल-समूहकी तरह हैं। आन्तरिक उसकाव ही वह भाव है जो उस यन्त्र-समूहको सञ्चालित करती है।

परन्तु इस बातका कैसे पता चले कि हमारे पास जोश, उत्साह या आन्तरिक प्रेरणा है या नहीं? थोड़ेसे आत्म-विश्लेषण द्वारा। उदाहरणके लिए क्या आपको छोटी अवस्थासे विचार या कार्यकी किसी विशेष धाराकी ओर एक निश्चित झुकाव रहा है? क्या अपने मौजूदा पेशेको अख्तियार करनेके लिये इच्छुक थे? दुनियामें ऐसी कौनसी बात है जिसे करने या होनेके लिए आप हर चीजकी अपेक्षा अधिक उत्सुक हों? इन प्रश्नोंके उत्तर असंख्य प्रकारके हो सकते हैं। लेकिन अगर आप निश्चित रूपसे कह सकते हैं कि आप विचार या क्रियात्मक उद्योगके अमुक क्षेत्रमें गहरी और चिरस्थायी दिलचस्पी लेते हैं तो निस्सन्देह आप और दिशाओंकी अपेक्षा उस दिशामें अपनी योग्यताको अधिक बढ़ा सकेंगे।

मानसिक कार्यक्षमता

इस लेखका सारांश यह है कि किसी मनुष्यकी समस्त मानसिक कार्यक्षमता उसकी सारी शक्तियोंके एक साथ काम करनेका संयुक्त फल है। मनुष्य इतना जटिल प्राणी है कि किसी एक शक्तिको उसे बनाने या बिगाड़नेकी सामर्थ्य नहीं। हाँ! अगर किसी शक्ति में कुछ हद तक ऐसी सामर्थ्य है तो वह शक्ति उसकी इच्छा या उत्साह की प्रबलता है अथवा उस दिलचस्पी की तेजी जो वह अपनेमें लेता है। एकाग्रता, मेधा, तर्कशक्ति, मौलिकता, इन्द्रियोंकी श्रेष्ठता—ये सब इसके केवल सहायक मात्र ही हैं। उत्साह अन्य सब शक्तियोंके अभावको बहुत कुछ पूरा कर सकता है मगर उत्साह की कमीको दूसरी कोई शक्ति पूरा नहीं कर सकती। यदि किसी व्यक्तिको अपनी नैसर्गिक बुद्धिकी पूँजी कुछ अपर्याप्त जान पड़ती हो तोभी उसे कदापि निराश न होना चाहिए। यह निश्चय जानिये कि अगर वह अपनी बुद्धिको सुव्यवस्थित ढङ्गसे और नियमपूर्वक काममें लावे और उत्साह तथा लगन और दृढ़ संकल्पसे अपने काम पर डटा रहे तो वह अपने लक्ष्यकी ओर अवश्यही अग्रसर हो सकेगा और उसका भविष्य निस्सन्देह सफल और उज्ज्वल बन सकेगा।

सन्तरेका इत्र—सन्तरेके फूलको गुलाबके फूलकी तरह पानीके साथ भभकेमें चुआनेसे सन्तरेका जो इत्र मिलता है उसे अंग्रेजीमें ऑयल आफ़ निरोली कहते हैं। पत्तियों, डंठलों और छोटे-छोटे कच्चे फलोंको (जो आपसे आप झड़कर गिर पड़ते हैं) गुलाबकी तरह भभकेमें चुआनेसे जो इत्र मिलता है उसको अंग्रेजीमें ऑयल आफ़ पेटिट ग्रेन कहते हैं। पके नारंगीके छिलकोंको निचोड़नेसे और उसको स्थिर रखकर नीचे बैठे जलयुक्त रससे पृथक् करनेपर जो इत्र मिलता है उसे ऑयल आफ़ आरेंज कहते हैं। सन्तरेके फूलोंसे मद्यसारकी सहायतासे निकाले गये इनको अँग्रेजीमें आरेंज फ्लावर ऐबसोल्यूट कहते हैं।

फोटोग्राफ़ी संबंधी कुछ ज्ञातव्य बातें

डा० गोरख प्रसाद

नौसिखियेको कैटलगकी बहुत-सी बातें इसलिए समझमें नहीं आतीं कि वह बहुतसे शब्दोंका अर्थ नहीं जानता। ये शब्दकोशमें भी नहीं समझाये रहते इसलिये कुछ मुख्य शब्दोंकी परिभाषा और सहायक यंत्रोंकी उपयोगिताके विषयमें सलाह यहाँ दी जाती है। कुछ शब्द पहले आ चुके हैं, जैसे कैमेरा, लेंज़, प्लेट, फ़िल्म, कटफिल्म, फिल्मपैक अडैप्टर, रोल-होल्डर एक्सपोज़र, एक्सपोज़र मीटर, मेनिसकस, ऐक्रोमैटिक रैपिड रेक्टिलीनियर, अप्लैनैट, ऐनैस्टिग-मैट, अपरचर, शटर, कंपूर शटर, फ़ोकल प्लेन शटर, फ़ोल्डिंग कैमेरा, मिनियेचर कैमेरा, रिफ्लेक्स कैमेरा, स्टैंड कैमेरा और स्टूडियो कैमेरा। इनकी व्याख्या नीचे न की जायगी।

मोल्डेड बॉडी (moulded body) - छोटे कैमरा साधारणतः धातुके बनते हैं और उनको या तो रंग दिया जाता है या असली या नकली चमड़े या कपड़ेसे मढ़ दिया जाता है। परन्तु अब कृत्रिम लाह (बेकलाइट आदि) का भी बनाया जाता है। मोल्डेड बॉडीसे समझना चाहिये कि यह बेकलाइट की जातिके किसी पदार्थका बना है। मोल्डेडका अर्थ है नरम वस्तुको दबाकर बनाया गया। चमड़े या कपड़ेसे मढ़े कैमेरोंका चमड़ा और कपड़ा बरसातमें अक्सर उखड़ जाता है और उसमें भुकड़ी (फफूंद) लग जाते हैं या उसे कीड़े काट जाते हैं। बेकलाइट आदिके कैमरेमें यह दोष नहीं होता, परन्तु हाथसे छूटकर गिर पड़ने पर बेकलाइट वाला कैमरा धातुके बने कैमेरेकी अपेक्षा जल्द टूटेगा।

ट्रॉपिकल (tropical अर्थात् गरमदेशीय) कैमेरा—बड़े कैमेरे लकड़ीके बनते हैं। सौंदर्यके ख़याल से साधारणतः वे महोगनी (mahogony) नामक लकड़ीके बनते हैं। ब्रिटेन, यूरोप आदि ठंडे देशोंमें एक ऐसा कैमेरा खूब टिकाऊ होता है, परन्तु भारतवर्षके बरसात और गरमीसे ऐसा कैमेरा ऐंठ जाता है और सरेस सड़ जाता है जिससे जोड़ खुल जाते हैं। इसलिए गरम देशोंके लिए कैमेरा सागौन (teak-टीक) की लकड़ीका बनाया जाता है और जोड़को केवल सरेसके भरोसे न रख कर उसमें पीतलके पेंचका भी इस्तेमाल किया जाता है। इसके अतिरिक्त प्रत्येक कोनेपर पीतलके कोनियाँ भी पेंचसे जड़ दिये जाते हैं। हो सके तो ट्रॉपिकल कैमेरा खरीदना ही अच्छा है यद्यपि इसमें दाम कुछ अधिक लगता है।

बेकलाइट (bakelite)—यह एक प्रकारके कृत्रिम लाहका पेटेंट किया हुआ नाम है। देखो मोल्डेड बॉडी।

क्रोमियम प्लेटेड (chromium plated) अर्थात् क्रोमियमकी कलईकी हुई—पहले निकेल (nickel) की कलईका प्रचार बहुत था और अब भी है, परन्तु अब क्रोमियमकी भी कलई की जा सकती है। निकेल की अपेक्षा क्रोमियम अधिक सुन्दर अधिक चमकदार और अधिक टिकाऊ होता है। अच्छे दामके कैमेरोंके चमकीले भागों पर अब अकसर क्रोमियमकी ही कलई रहती है।

स्टेनलेस स्टील (stainless steel) अर्थात् मुर्चामुक्त इस्पात कुछ वर्षोंसे इस धातुका बहुत प्रचार हो गया है। यह वस्तुतः इस्पात (पक्का लोहा) है, परन्तु इसमें कुछ क्रोमियम धातु भी मिला रहता है जिसके कारण इसमें न मुर्चा लगता है और न इसका रंग बदलता है। एक बार चमका देनेसे चमक प्रायः सदा बनी रहती है। कलई न रहनेके कारण बार-बार पॉलिश करनेसे भी इसका रंग न बदलेगा। अब तो स्टेनलेस स्टीलके चाकू, घड़ियाँ

और तरह-तरहके यंत्र बनते हैं। स्टेनलेस स्टीलके चाकूसे कच्चा केला भी काटा जाय तो चाकू काला नहीं होता। आधुनिक कैमेराके कई भाग अब स्टेनलेस स्टीलके बनते हैं।

स्प्रिंग आउट (spring-out) या सेल्फ़-एरेक्टिंग (self-erecting) फ्रंट (front)—कैमेरेके उस भागको जिसमें लेंज़ लगा रहता है फ्रंट (अगाड़ी या मुख) कहते हैं। स्प्रिंग आउटका अर्थ है स्वयं कूद आने वाला। सेल्फ़ एरेक्टिंगका अर्थ है स्वयं खड़ाहो जानेवाला। जिन कैमेरोंमें इस प्रकारकी अगाड़ी रहती है उसकी अगाड़ीको हाथसे खींचकर आगे नहीं बढ़ाना पड़ता। यह कोई विशेष महत्वका गुण नहीं है।

स्ट्रीमलाइण्ड बॉडी (streamlined body धारावाहिक रूप)—यह शब्द हवाई जहाज़ोंके सम्बन्ध में गढ़ा गया है। ऐसे रूपको जो जल या वायुके धारामें कोई बाधा न डाले स्ट्रीमलाइण्ड आकृति कहते हैं। इस कैमरे के सम्बन्धमें यह शब्द केवल यही सूचित करता है कि कैमेरेके कोर (किनारे) गोल कर दिये गये हैं या कैमेरा मछलीकी शकलका है (बीचमें मोटा और ऊपर-नीचे पतला)। अपने-अपने पसन्दकी बात है कि कौन-सा रूप अधिक अच्छा दिखलाई पड़ता है। स्ट्रीमलाइण्ड होना कोई विशेष महत्वकी बात नहीं है।

रिवॉल्विङ्ग बैक (revolving back)- साधारण कैमेरेसे जब बेड़ा चित्र खींचना होता है तब समूचे कैमेरेको ही बेड़ाकर दिया जाता है, परन्तु रिफ्लेक्स कैमेरामें ऐसा नहीं कियाजा सकता क्योंकि बेड़ा करनेपर दर्पणका इस्तेमाल नहीं कियाजा सकता है। इसलिए रिफ्लेक्स कैमेरोंमें घुमनी पीठ (रिवॉल्विङ्ग बैक) लगी रहती है जिसे घुमाकर प्लेट खड़ा या पड़ा किसीभी स्थितिमें लगायाजा सकता है। साधारण रिफ्लेक्स कैमेरामें ऐसी पीठका रहना ज़रूरी है, परन्तु कुछ कैमरे ऐसेभी बनते हैं जिनमें चित्र बराबर बेंड़ाही आता है जिससे असुविधा होती है। कुछ रिफलेक्समें चौखूँटा २½ × २¼ इञ्चका चित्र उतरता है। उसमें घुमनी पीठ की आवश्यकता नहीं रहती।

कैनडिड कैमेरा (candid camera)—मिनियेचर कैमेराको कैनडिड (स्पष्टवादी) कैमेरा भी कहते हैं। क्योंकि कैमेरा इतना छोटा होता है कि लोग इसे देख नहीं पाते और इसलिये उनको इसका पता नहीं चलता कि उनका फोटो खींचा जा रहा है। जिसका परिणाम यह होता है कि उनके फोटोमें उनका निष्कपट (कैनडिड) भाव आ जाता है।

सिनक्रो फ़्लैश (synchroflash) कुछ वर्षों से एक ऐसा लट्टू (flash bulb फ़्लैश बल्ब) बनने लगा है जिसमें अल्युमिनियमकी पन्नी और ऑक्सिजन गैस रहता है। सूखी बैटरीसे इसमें बिजली भेजते ही अल्युमिनियम क्षणभरमें (प्रायः $\frac{1}{50}$ में) जल उठता है और इससे इतना प्रकाश होता है कि इसमें रातमें भी फोटो खींचीजा सकती है। दिनके समय जब रोशनी काफ़ी नहीं रहती, ऐसे बल्ब का प्रयोग कियाजा सकता है परन्तु यह आवश्यकता पड़ती है कि कैमेराके शटरके खुलतेही बल्ब जलउठे और उसके जल उठनेके बादही शटर बन्दहो जाय। कुछ कैमेरोंमें ऐसा प्रबन्ध लगा रहता है और इसीको सिनक्रो फ़्लैश कहते हैं। साधारणतः लोग फ़्लैश बल्बोंका प्रयोग नहीं करते क्योंकि प्रत्येक चित्रके लिए एक बल्ब ख़र्च होता है जिसका दाम बारहआने या डेढ़ रुपये होता है। परन्तु प्रेस (अर्थात् समाचार पत्रों) के लिए चित्र खींचनेवालोंको अक्सर ऐसे स्थानोंमें फ़ोटो खींचना पड़ता है जहाँ फ़्लैश बल्बके बिना काम नहीं चल सकता। उनको सिनक्रो फ़्लैश लगा कैमेरा लेनेमें सुविधा होगी। सिनक्रो वस्तुतः सिनक्रोनाइज़ शब्दका लघुरूप है और सिनक्रोनाइज़ का अर्थ है एकही समय किसीभी दो कामोंका करना। यहाँ यह भाव है कि शटरका खुलना और फ़्लैश का जलना एक साथ हो।

फ़िक्स्ड फोकस (fixed focus) कैमेरा या

फिक्स्ड फ़ोकस लेंज़ — ऐसे कैमेरेमें लेंज़ और प्लेट (या फ़िल्म) की दूरीको घटाने-बढ़ानेके लिए कोई प्रबन्ध नहीं रहता। इससे कभी-कभी बड़ी असुविधा होती है। विविध फोकल-लंबानोंके पोर्ट्रेट अटैयमेंटसे यह असुविधा बहुत कुछ दूरकी जा सकती है।

डबल एक्स्टेनशन (double extension)—यह सूचित करता है कि लेंज़ और प्लेटके बीचकी दूरी साधारणसे दुगुनी की जा सकती है। समीपस्थ वस्तुओंका फ़ोटो खींचते समय इसकी आवश्यकता पड़ती है। प्लेट कैमेरामें डबल एक्सटेनशन (दोहरा विस्तार) रहे तो बहुत अच्छा है।

ट्रिपॉड सॉकेट (tripod socket)—यह उस ढिबरीको कहते हैं जो कैमेरेमें लगा रहता है और जिसमें तिपाई (ट्रिपॉड) का पेंच कसा जाता है। प्रत्येक कैमेरेमें इस प्रकार जिसमें दो ट्रिपॉड इस प्रकारकी दो ढिबरियाँ लगी रहती हैं। चौखूटा चित्र लेने वाले कैमेरोंमें एक ढिबरीसे ही काम चल जाता है क्योंकि ऐसे कैमेरेको बेंडा नहीं करना पड़ता।

मास्क (mask) युक्त या दो नापके चित्र लेने वाले कैमेरे टीन या अन्य धातुकी चादरके बीचमें छेद काटनेसे मास्क बनता है। इसके प्रयोगसे केवल छेदके नापका चित्र उतरता है। अब कई कैमेरोंमें ऐसा प्रबन्ध रहता है कि छोटा या बड़ा दो नापका चित्र इच्छानुसार उतर सके। उदाहरणात: २¼ × ३¼ इंचके नापके चित्र लेने वाले फ़िल्म कैमेरेमें मास्क लगानेके बाद २¼ × १⅝ इंच उतरते हैं और इस प्रकार ८ बड़े नापके चित्रके बदले १६ छोटे चित्र उतर सकते हैं। यदि कैमेरेमें ऐसा प्रबन्ध रहे तो अच्छा ही है।

लेवेल (level)—बाज कैमेरोंमें लेवेल भी लगा रहता है जिससे पता चलता है कि कैमेरा ठीक रक्खा गया है या तिरछा। इसकी कोई विशेष उपयोगिता नहीं है। आवश्यकता पड़ने पर तागेमें कोई भारी वस्तु बाँधकर बने साहुलसे काम लिया जा सकता है।

प्लेट होल्डर (plate-holder = प्लेट-घर)—यह टीन या अन्य धातु-पत्रका बना एक पतला डिब्बा होता है जिसका ढकना खींचकर हटा दिया जा सकता है। अँधेरी कोठरीमें इन प्लेट घरोंमें भर दिया जाता है और तब बारी-बारीसे प्लेट-घरोंको कैमेरेमें लगाकर फोटो खींचा जाता है। प्लेट कैमेरेके साथ कम-से-कम दो एकहरा (single सिङ्गल) या एक दोहरा (double डबल) प्लेट—घर चाहिये। अधिक हो तो अच्छा है, एकहरेमें एक प्लेट और दोहरेमें दो प्लेट (एक प्लेट एक ओर, दूसरा दूसरी ओर) रक्खा जा सकता है।

डार्क स्लाइड (dark-slide)—प्लेट-घरको डार्क-स्लाइट भी कहते हैं।

बुक फ़ार्म डार्कस्लाइड (book form dark slide) ऐसे डार्क स्लाइड (प्लेट घर)में दो प्लेट भरे जा सकते हैं और इसका नाम बुक फ़ॉर्म इसलिए पड़ा है कि यह पुस्तककी तरह बीचसे खोला जा सकता है (बुक = पुस्तक, फ़ॉर्म = आकार)। इससे बड़ी सुविधा होती है, परन्तु छोटे स्लाइड इस ढंगके नहीं बनते। बड़े स्लाइड जो स्टैंड कैमरोंमें लगते हैं सब इसी ढङ्गके बनते हैं।

स्प्रिङ्ग प्रेशर प्लेट spring pressure plate) रोल फ़िल्म कैमेरोंमें कभी-कभी फ़िल्मको दबाकर सपाट अवस्था में रखने के लिये एक कमानीदार पत्र लगा रहता है। इसी को स्प्रिंग प्रेशर प्लेट कहते हैं। यदि कैमेरे में यह लगा हो तो अच्छा ही है।

फ़िल्म कैसेट (film cassette)—कुछ मिनियेचर कैमेरोंमें साधारण रोल-फ़िल्म लगने के बदले विशेष प्राकार के डिब्बे कैसेटी में रक्खा फ़िल्म लगता है। इसमें कई एक सुविधायें रहती हैं। उदाहरणात:, फ़िल्म का वह अंश जिस प्रकार दर्शन दिया जा चुका है काटकर जब चाहें तब अलग किया जा सकता है और इस प्रकार उसे डेवेलप किया जा सकता है। शेष फ़िल्म पर पीछे प्रकाश-दर्शन दिया जा सकता है। साधारण रोल-फ़िल्म में यह सुबोध नहीं रहती।

ट्यूब-वेल या नल-कूप

महेशचन्द्र, बी० एस०-सी०; सी० आई०; ए० एम० आई० ई०, असिसटेंगट इञ्जीनियर, पी० एच० डी०, इलाहाबाद

१. भूमिका :—संसारमें पानी भी वायुकी तरह एक अत्यन्त आवश्यक वस्तु है। पानी भिन्न-भिन्न प्रकारसे सेवनमें लाया जा सकता है। पीना, नहाना, खेतोंकी सिंचाई इत्यादि। पानीका बहुत कुछ भाग हम देशकी नदियोंसे ले लेते हैं। संयुक्त प्रान्त व पंजाबमें इन नहरोंका एक जाल-सा बिछा हुआ है। सबसे बड़ी नहरें गङ्गा व शारदा हैं। परन्तु ये नहरें देशके हर एक भागमें नदियोंके अभावके कारण नहीं बनाई जा सकतीं। जनता पानी के अथाह समुद्रको जो थलस्थलके नीचे छिपा हुआ है नहीं जानती। बहुत दिनोंसे वैज्ञानिक संसारके समस्त इञ्जीनियर इस खोजमें लगे हुए थे कि इस अथाह समुद्रके पानीको किसी प्रकार थलस्थल पर लाकर लाभदायक कार्योंमें उपयोग किया जावे। अन्तमें उन्होंने 'ट्यूबवेल' का आविष्कार किया। संयुक्त प्रान्तके पश्चिम भागमें लगभग १,५०० ट्यूबवेल चन्दौसी, बदाँयू, मुजफ्फरनगर, मेरठ, बुलन्दशहर जिलोंमें बने हुए हैं और हजारों एकड़ थलकी सिंचाई करते हैं। सर विलियम स्टेम्प, जो संयुक्त प्रान्तके नहर विभागके चीफ इञ्जीनियर थे, इस टयूबवेल स्कीमको स्थापित करनेमें बहुत मेहनत की थी।

२. *ट्यूबवेल बनानेकी विधि* :—थोड़ा पानी निकालनेके लिये हम एबीसीनियन ट्यूबवेल को काममें लाते हैं। यह एक $1\frac{1}{4}''$ या $1\frac{1}{2}''$ व्यासका लोहेका पाइप ४ या ५ फुट लम्बा होता है जिसमें थोड़ी-थोड़ी दूर पर छेद होते हैं जैसा चित्रमें दिखाया गया है। इनके ऊपर एक ताँबे या पीतलकी जाली लिपटी रहती है और फिर इस जालीके ऊपर धातुकी एक पतली जालीदार चद्दर चढ़ी होती है। इस जालीनुमा पाइपका एक किनारा नुकीले लोहेका होता है जो जमीनमें आसानीसे गड़ सकता है और दूसरे किनारेपर सादा पाइप जोड़ दिया जाता है। इस तरहके ट्यूबवेल धरातलमें सीधे गाड़ दिये जाते हैं और हाथसे चलाने वाला पम्प सादे पाइपके किनारेपर लगा दिया जाता है।

एबीसीनियन ट्यूबवेल
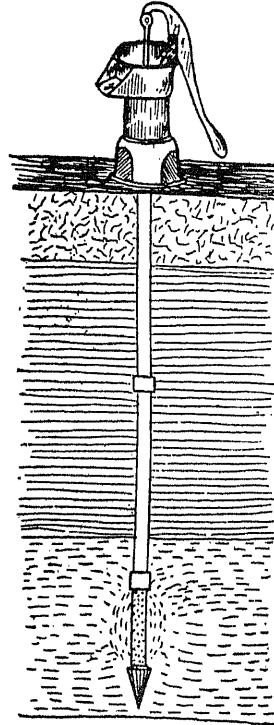
परन्तु सिंचाईके लिए, जो दो या तीन सौ एकड़ जमीनको सींच सके, एक बड़ा ट्यूबवेल बनाना पड़ता है। ऐसा ट्यूबवेल बनानेके लिये सब से पहिले ५ फुट व्यासका १५ फुट गहरा एक गड्ढा हम बना लेते हैं। इसमें सबसे पहला पाइप जिसके एक किनारे पर एक 'कटिंग-शू' लगा रहता है नीचे उतार देते हैं और उसको सीधा करके लकड़ीकी गाइडोंसे सच्चा खड़ा (ऊर्ध्वाधर) कर लेते हैं। इस कार्यमें बहुत चतुराईकी आवश्यकता है। यदि ट्यूबवेल बहुत गहरा बनाना है तो यह गड्ढा ३० फुट लम्बा होना चाहिये और पाइपकी सिधाईमें $\frac{1}{2}''$ से अधिक अन्तर न होना चाहिये। इस पाइपके ऊपर दूसरा पाइप कस दिया जाता है और इस दूसरे पाइपके
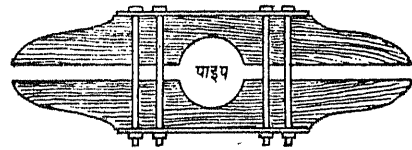
लकड़ी की क्लैंप

ऊपर एक लकड़ीका क्लैंप जैसा चित्र में दिखाया है बाँध देते हैं।

पाइप को गलाने, में बोझ की आवश्यकता है

और रेत की बोरियों को, जो इस कार्य में लाई जाती हैं एक लकड़ीके चबूतरेपर, जो इस क्लैम्पसे कसा होता है, लाद देते हैं। अकसर ऐसा भी करते है कि इस चबूतरेको पृथ्वीपर रख देते हैं और पाइप के ए लिएक सूराख छोड़ देते हैं। इस विधि में 'जैक' (भारी वस्तुओंको उठाने का यंत्र) इत्यादि लगाने की सुविधा रहती है।
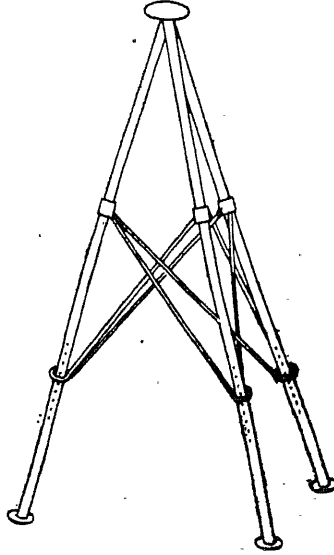
इस बोरिङ्ग पाइप के ऊपर अब एक लोहे की तिपाई (जैसे कि चित्र में बनी है) इस प्रकार खड़ी की जाती है कि एक रस्सी, जो गरारी के ऊपर से आये, बीचो-बीच ट्यूब में पड़े। यह गरारी (pulley) तिपाई की चोटीपर लटका दी जाती है। एक २½ या ३ इंच मोटी सनकी रस्सी, का जो बोरिङ्गकी गहराईसे १०० फुट अधिक लम्बी हो, एक किनारा गरारी के ऊपर से होकर बोरिङ्ग करने के टूल में बाँध दिया जाता है। अधिकतर रेत या मिट्टी में स्लजपंप को चलाने से बोरिङ्ग हो जाती है। इसको रस्सी से कुछ फुट उठाकर पाइप के अन्दर गिराते हैं। इस तरह से मिट्टी या रेत एक रबड़ के वाल्व की सहायता से बोकी में भर जाती है। फिर बोकी निकाल कर खाली कर दी जाती है और इसी काम को दोहराया जाता है। इस तरहसे ट्यूबके अंदर खाली रहनेसे और ऊपरसे बोझा पड़ने से बोरिङ्ग पाइप धँसता चला जाता है। बोरिङ्ग ट्यूब गलाने के और भी कई तरीके हैं, जैसे वाटर जेट सिस्टम। इस विधि में रेत बजाय बोकी से निकालने के, एक पानी की बारीक धार बोरिङ्ग ट्यूब के अन्दर मिट्टी काटने के लिए डाली जाती है। अन्दर की मिट्टी कटती जाती है और बोरिङ्ग पाइप नीचे को फँसता जाता है।

ज्यों-ज्यों पाइप नीचे को गलता है त्यों-त्यों हमें भिन्न-भिन्न प्रकार की बालू या मिट्टी की तह मिलती जाती है। इन सबकी हम एक सूची जिसका नाम स्तर चित्र (strata chart) है बना लेते हैं। उदाहरणके लिए एक सूची नीचे दी हुई है। इस तरहकी सूची देखकर हम जाली लगानेका उचित स्थान एकदम छाँट सकते हैं। बहुधा जिन-जिन स्थानों पर हमें मोटी रेत मिले वहाँ पर हम जाली लगा देते हैं और शेष स्थानोंपर सादा पाइप डाल देते हैं। बहुधा यह जाली ताँबे की होती है और रिलायबिल वाटर सप्लाई कम्पनी ने तो 'तेज स्ट्रेनर' नामसे इसको पेटेंट करा लिया है। इसी तरह मेसर्स स्काट सैक्सबी नामकी कलकत्ते में एक फर्म है जिसने ऐशफोर्ड स्ट्रेनरके नामसे पेटेंट कराया है। जालीको ताँबेकी बनाने का कारण यह है कि इसको हमेशा पानीमें डूबा रहना पड़ता है और कोई सस्ते धातुकी जाली जंग खाकर खराब हो जायेगी। जाली के सबसे नीचे वाले हिस्से में एक लोहेका बेल हुक (bail hook) लगा दिया जाता है। इसका आकार नीचे वाले चित्रमें बना हुआ है। चित्रसे ज्ञात होगा कि जालीवाले पाइपके आखिरमें लोहेकी चादर लगा
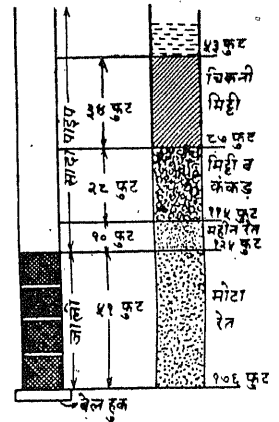
दी गई है जिससे पानीके साथ-साथ नीचेसे रेत खिंच कर न आवे और ट्यूब वेलमें भर जावे। इस बेलहुक द्वारा ट्यूब वेलकी जाली और पाइप लटका कर डाला जाता है।

जाली और पाइप डालनेकी विधिः— सबसे पहले एक भारी सीसेका वजन डाल कर हम यह मालूम कर लेते हैं कि बोरिङ्ग ट्यूबके अन्दर वही गहराई है जहाँ तक बोरिङ्ग किया गया था, यदि नहीं है तो सैंड बकेट चला कर रेतको निकाल फेंकते हैं। इसको सैंड सम्पकी सफ़ाई कहते हैं। इसके बाद एक तारकी रस्सी और हुककी मददसे सबसे पहिला पाइप या जाली लटका कर उसको बोरिङ्ग ट्यूबमें गिराते जाते हैं जब तक कि उसके ऊपरकी चूड़ी लकड़ीके क्लैंपके पास न पहुँच जावे। फिर उसको क्लैंपसे कस कर बाँध देते हैं और दूसरे पाइपको उसके ऊपरसे लाकर साकट (socket) द्वारा जोड़ देते हैं। इसी तरह सब पाइप और स्ट्रेनर (छनना) जोड़-जोड़ कर बोरिङ्ग ट्यूबके अन्दर उतारते चले जाते हैं। साथ-साथ जितने पाइप व स्ट्रेनर डाले जाते हैं, उनको नापते जाते हैं जिससे यह पता चल जाय कि जाली ठीक स्थान पर पहुँच गई या नहीं। जब सब जाली और पाइप अपने स्थानपर पहुँच गई तब केसिंग पाइप को एक-एक करके निकाल लेते हैं। अब ट्यूबवेल तैयार हो गया। यदि हम इस ट्यूबवेल से फौरन ही पानी लेना शुरू कर दें तो अव्वल तो वह गंदा पानी होगा, जिसमें रेत काफी संख्यामें मिली होगी और दूसरे पानी इतनी अधिक मात्रा में नहीं आयेगा। इन दो कारणोंसे ट्यूबवेलको प्रस्फुटित (डेवलप) करना पड़ता है। यदि वह छोटा ट्यूबवेल है, यानी ४ इंच पाइप तक, तब तो उसमें हैण्ड पम्प लगा कर उसे चलाते हैं और यदि वह एक बड़े आकार का ट्यूबवेल है जैसे १०″ का तो उसमें एयर-लिफ्ट-

सिस्टम (air lift system) से प्रस्फुटित करते हैं। प्रस्फुटित करते समय महीन रेत पानीके साथ मिल कर बाहर निकल जाती है और मोटी बालू जाली के चारों तरफ आ जाती है।

ट्यूबवेलसे पानी कई प्रकारसे खींचा जा सकता है। यदि ट्यूबवेल सिर्फ कुएँ का पानी बढ़ाने के लिये बनाया गया है तो एक घंटेमें ५,००० गैलन तक तो मामूली परशियन ह्वील ही काममें लाया
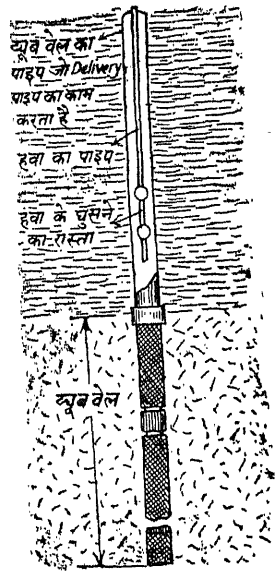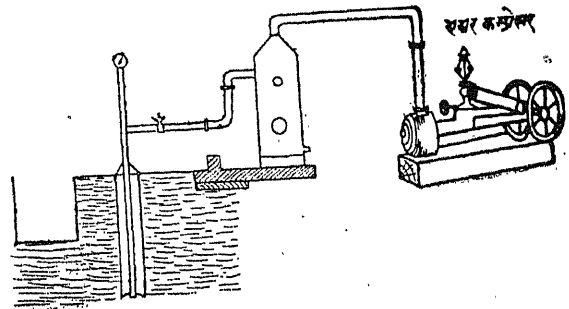
जाता है। लेकिन यदि एक बड़ा ट्यूबवेल है जो किसी नगरके पीनेके पानीके वास्ते या सिंचाईके वास्ते बना है तब उसमें बिजलीसे चलने वाले मोटर

पम्प का प्रयोग किया जाता है। किसी-किसी शहर में पीने का पानी देनेके लिए कई ट्यूबवेल बनाने की आवश्यकता होती है। ऐसे कई ट्यूबवेलमें अलग-अलग मोटर पम्प लगानेमें काफी खर्च भी होता है और परेशानी भी। ऐसी जगहोंमें एक हवा कम्प्रेसर (संकुचित) करने वाली मशीन (air compresser plant) बीचमें लगा दी जाती है और पानी संकुचित वायुके साथ ऊपर खींच लिया जाता है। इस प्रकार संकुचित वायुसे पानी पम्प करने वाली एक मशीन चित्रमें दिखाई गयी है।

ट्यूबवेलका पानी पीनेके काममें लानेसे पहले लोग उसकी जाँच करा लेते हैं। जाँच दो प्रकारकी होती है। पहिली तो रासायनिक और दूसरी जीवाणुओंके लिए। जाँचके लिए पानी जीवाणुरहित किये गये शीशेके डट्टे वाले बोतलोंमें भर कर प्रांतीय हाइजीन इंस्टिट्यूट (Provincial Hygiene Institute) लखनऊको भेजा जाता है। पानीकी बोतल बरफमें दबी रहती है जिससे पानीमें जीवाणु बढ़ने न पायें। जब लखनऊमें पानी जँच कर पीने के योग्य कह दिया जाता है, तब कुएँसे पानी शहर को भेजा जाता है। शहरमें पानी देने वाले ट्यूबवेल मथुरा, फैजाबाद, मुरादाबाद इत्यादिमें देखे जा सकते हैं।

मलेरियाकी अमोघ ओषधि

कुनैन नहीं—'मेपाक्राइन'

प्रस्तुत लेखमें श्री ई० चिशोल्म टामसनने मलेरियाके लिए कुनैनसे भी बढ़कर 'मेपाक्राइन' नामक अव्यर्थ ओषधिके आविष्कारका उल्लेख किया है। आजकल सैनिकोंको मलेरियासे बचानेके लिए यही ओषधि खिलायी जाती है।

सैनिकोंसे भरे हुए जहाज एक दिन तीसरे पहर सीटी बज उठती है और सारे सैनिक अपने-अपने नियत स्थानपर जा पहुँचते है। सीटी बजनेका उद्देश्य किसी पनडुब्बीसे सावधान होना नहीं वरन् मलेरिया विरोधी परेड करना था। अफसर बताना आरम्भ करते हैं कि शीघ्र ही उन्हें मलेरियायुक्त मोर्चे पर लड़ना होगा। यह मलेरिया जर्मन अथवा जापानी किसी भी शत्रुसे कम भयावह नहीं है। मलेरिया-निरोधक शस्त्रोंकी शिक्षा भी किसी प्रकार कम महत्वपूर्ण नहीं है, क्योंकि मलेरिया सेनाको न केवल आक्रमण करनेसे ही रोक सकता है वरन् उसे नष्ट भी कर सकता है। १९१४–१८ का महायुद्ध इसका साक्षी है।

कुछ दिन पूर्व तक मलेरियाका नाश करने वाली हमारी सबसे शक्तिशाली मित्र कुनैन थी जो अब अप्राप्य सी हो गई है। परन्तु अब एक इससे भी अच्छी वस्तु खोज निकाली गई है जो आजकल जहाजोंपर नित्य ही सैनिकोंको दी जा रही है।

नयी ओषधि की कहानी

इस ओषधिकी कहानी १९३८से आरम्भ होती है जब बृटिश चिकित्सा अनुसन्धान परिषद् ने कुछ ओषधियाँ लेकर इस दिशामें अनुसन्धान कार्य आरम्भ किया था। इन ओषधियोंका यूरोपके कुछ डाक्टरोंने कुनैनके स्थानपर काम चलानेके लिये उपयोग करना आरम्भ किया था। परिषद्को इन ओषधियोंसे मलेरिया-निरोध कओषधि तैयार करने में सफलता मिल गई और इसका नाम रखा गया 'मेपाक्राइन'। इसमें कोई गन्ध नहीं होती और यह कड़वी भी कुनैन से कम होती है।
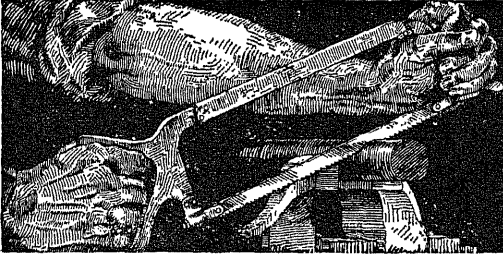
[शेष पृष्ठ २२२ पर]

ख़तमी (हॉलीहॉक)

श्रीमती रत्नकुमारी, एम० ए०

ख़तमी या हॉलीहॉक हमारे बागों में जाड़े के दिनों में फूलता है। लाल, गुलाबी, सफ़ेद, खैरा, बैंगनी आदि कई रंगों के फूल की ख़तमियाँ होती हैं।

पहले कलियाँ बनायी जायँगी, इनके लिए रुई या क्रेप काग़ज़ के रद्दी टुकड़ोंसे लगभग १ इञ्च व्यास की गोली बनाओ और उसे चिकना कर फूलों के लिए चुने हुए रंग के क्रेप काग़ज़का एक टुकड़ा लगाओ। जड़के पास काग़ज़को ऐंठ लो या अच्छी तरह दबा लो और फालतू काग़ज़ काट डालो (चित्र १)। जड़पर पतला तार बाँधो और डंठलके लिए दो इञ्च तार बढ़ा रहने दो। इसके बदले ऐसा भी किया जा सकता है कि तारके सिरेपर हुक बना लिया जाय और उसपर रुई और काग़ज़ लपेटा जाय। तब गोलीकी जड़ को तागेसे कसकर बाँध देना चाहिए। डंठलपर हरे क्रेपकी चिट लपेटो।

अब कलियाँ ढकी जायँगी। इसके लिए हरे क्रेप से १½ इञ्च चौड़ी पट्टी काटो। उसमें चित्र २ के आकारके पुटपत्र की पंक्ति
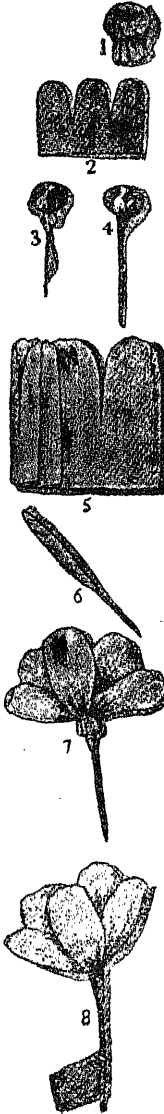
काटो (पुटपत्र उस अंगको कहते हैं जो कलियों में अप्रस्फुटित फूल पर खोल की तरह चढ़े रहते हैं)।

प्रत्येक पुटपत्र ½ इंच चौड़ा, ¾ इंच गहरा हो। सिरा अर्धगोलाकार रहे और जड़के पास पुटपत्र एक दूसरे से जुटे रहें। प्रत्येक कलीपर तीन पुटपत्र लगेंगे। इनको लगाने के लिए गोली (चित्र १) की जड़ पर ज़रा-सी लेई लगाओ और तीन पुटपत्रों की पट्टी उसपर रक्खो और लपेटो। फिर प्रत्येक पुटपत्र के सिरे को गोलीपर चिपका दो (चित्र ३)। भीतरसे गोलीका कुछ भाग दिखलाई पड़ता रहे, जिससे जान पड़े कि कली खिलने ही वाली है। कुछ ऐसी भी कलियाँ बनाओ जिनमें भीतरी भाग पुटपत्रोंसे पूर्णतया ढक

९

जाय। प्रत्येक तनेके लिए कई एक कलियाँ बनाओ। कुछ बंद, कुछ अधखिली, कुछ नाममात्र खुली। अब हरे क्रेप की आधी इंच चौड़ी पट्टी लेकर डंठल पर लपेट दो (चित्र ४)।

फूलके मध्यमें रहनेवाले परागकेसरके लिए ७ इंच लंबा पतला तार लो और एक सिरेपर कई तह पीला क्रेप लपेटकर परागकेसर तैयार कर लो (चित्र ६)। काग़ज़ लिपटा भाग दो इंच लंबा हो। काग़ज़ स्वयं ½ इंच चौड़ा रहे और इसीको
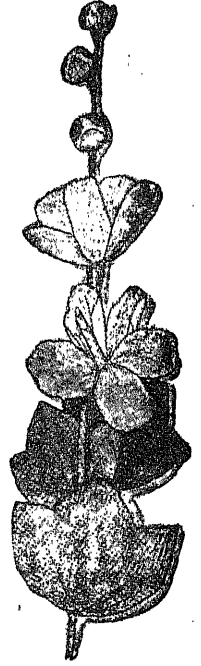
आगे-पीछे कई बार लपेटा जाय तो अच्छा होगा।

पँखुड़ियाँ बनानेके लिए चुने हुए रंगके क्रेप काग़ज़की ३ इंच चौड़ी पट्टी काट लो और इस पट्टी से चित्र ५ में दिखलाये गये आकारकी पँखुड़ियोंकी पंक्ति काटो। सिरा अर्ध गोलाकार रहे। प्रत्येक पँखुड़ी २ इंच गहरी, १½ इंच चौड़ी रहे। अब प्रत्येक पँखुड़ीको छिछली कटोरीके आकारका कर दो। प्रत्येक फूलमें पाँच पँखुड़ियोंकी पट्टी लगेगी। इन पँखुड़ियोंको एक परागकेसरके चारों ओर उचित स्थिति में रखकर बहुत पतले तारसे कसकर बाँध दो। तार दस इंच लंबा रहे और केवल इसके मध्य भागको पँखुड़ियों पर लपेटा जाय। दोनों ओर तारके जो भाग बचें उन्हें मोड़कर परागकेसरके डंठलसे सटा दो (चित्र ७)।

अब डंठल पर हरे काग़ज़की चिट लपेटो (चित्र ८)। चिट १½ इंच चौड़ी रहे तो सुविधा होगी।

फिर उचित आकारकी पत्तियाँ काटो। किसी असली पेड़से पत्तियाँ लेकर उनकी नक़ल उतारी जाय तो अच्छा; अन्यथा चित्र ६ में दिखलाये गये आकारकी पत्तियाँ रहें।

अब हरी चिट लपेटे हुए कुछ मोटे तारपर कलियाँ, फूल, पत्तियाँ सजाकर रक्खो और फिर २½ इंच चौड़ी हरी पट्टीसे तनेपर लपेट दो जिससे कली आदि सब तनेमें बँध जायँ (चित्र ६)।

सामग्री—१ दर्जन तनों के लिए (यदि प्रत्येक तनेपर दो फूल, तीन कलियाँ और तीन पत्तियाँ रहें) निम्न सामग्री चाहिए :—(१) हरा क्रेप काग़ज़, १ थान, (२) फूलके रंगका क्रेप काग़ज़, (३) बहुत पतला तार, (४) पतला तार (५) मोटा तार (२२ नंबर का)।

मलेरियाकी अमोघ ओषधि

[पृष्ठ २२० के आगे]

जापानी अपनी सफलतापर फूल कर डींग हांकने लगे कि बृटिश सेना मलेरियाके खतरेको दूर नहीं कर सकती। यदि यह बात ठीक होती तो वास्तवमें बृटिश सेना बड़ी कठिनाईमें पड़ जाती, क्योंकि इस समय भारत, दक्षिणी प्रशान्त, मध्यपूर्व और दक्षिणी यूरोप में जहाँ कहीं भी वह लड़ रही है सर्वत्र मलेरिया का प्रकोप है। यहाँ मच्छर भी मशीनगन की गोलियों से कम घातक नहीं होते। परन्तु जापानियोंकी डींग सत्य सिद्ध नहीं हुई। 'मेपाक्राइन' का उत्पादन बढ़ते ही उसे तैयार और शुद्ध करनेकी प्रणालियोंमें भी सुधार होने लगा जो अब भी जारी है। मित्रराष्ट्रों के रसायन-शास्त्रियों और मलेरिया विशेषज्ञोंके हालके परीक्षणों से प्रकट हुआ है कि मलेरिया रोकने या दूर करने के लिये 'मेपाक्राइन' कुनैनसे भी अधिक लाभप्रद सिद्ध हुई है। इसकी गोलियोंका नियमानुसार सेवन करने वाले लोग मलेरियासे पीड़ित नहीं होते।

इस सम्बन्धमें स्पष्ट निर्देश दिये गये हैं। बृटिश सेनाकी मलेरिया निरोधक कार्रवाई चिकित्सक दलोंके अधीन कवायदके रूपमें की जाती है। मलेरियायुक्त देशमें सैनिकोंके पहुँचनेसे दस दिन पूर्वसे ही उन्हें ओषधि खिलाई जाने लगती है। इसकी मात्रा देशमें फैले मलेरियाके प्रकोपपर निर्भर रहती है। खतरेके क्षेत्रमें पहुँच जानेपर मात्रा बढ़ा दी जाती है और क्षेत्रसे वापस आ जानेके बाद पर्याप्त दिनों तक इसका सेवन जारी रखना पड़ता है।

सेवनमें सरलता

कुनैन घोल बना कर पिलाई जाती थी। अत्यन्त कड़वी होनेके कारण सैनिकोंको इसकी याद बनी ही रहती थी और वे उसे नित्य खाना कभी नहीं भूलते

[शेष पृष्ठ २२४ पर]
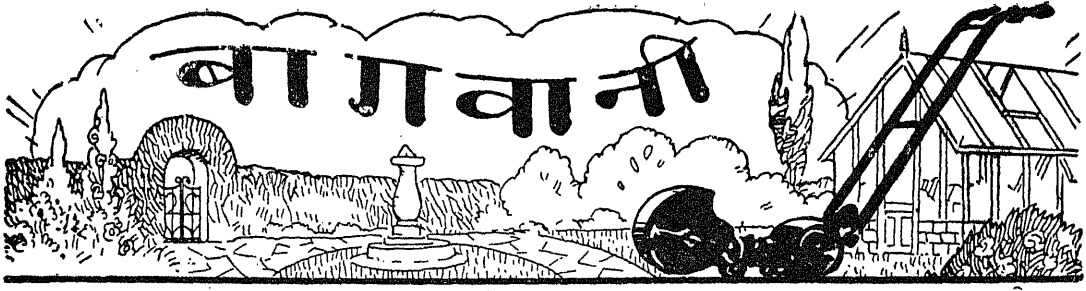
पातगोभी, बन्दगोभी या करमकल्ला

पातगोभीका बीज मध्य अगस्तसे अक्टूबरके अंत तक बोया जाता है। पहाड़ोंपर फरवरीके अंत से मईके अंत तक बीज बोया जा सकता है।

अँग्रेज लोग इसको बहुत पसन्द करते हैं। परन्तु, यद्यपि भारतीय लोग इसको उतना पसन्द नहीं करते, तो भी भारतीयोंमें भी इसकी काफ़ी खपत है। इसकी कई एक जातियाँ हैं, जिनमेंसे कुछ जल्द तैयार होती हैं और कुछ देरमें। कुछ में गोभी छोटी लगती है और कुछमें बड़ी।

बीजको छींटकर बोया जाता है और छींटनेके बाद इसपर अच्छी मिट्टीकी पतली तह (तह ½" मोटी हो) डाल देनी चाहिए। बीज क्यारियों में ऐसी जगह बोया जाय जहाँ खाद थोड़ी-बहुत मात्रा में कभी पहले दी गयी हो। २५ वर्ग फुटमें लगभग आधी छटाँक बीज बोना चाहिए। यदि बीज बोते समय ज़मीन नर्म हो तो तुरन्त सींचने की आवश्यकता नहीं है। परन्तु यदि ज़मीन सूखी हो तो बोने के बाद बारीक फुहारोंसे एक बार सींचना चाहिए और जब-जब ज़मीन सूखी मालूम पड़े सिंचाई करनी चाहिए। दोपहरके समय धूपसे बचानेके लिए चटाई आदिसे घंटा दो घंटा साया कर देना चाहिए। परन्तु इसका ख्याल रखना चाहिए कि बहुत साया भी न किया जाय नहीं तो पौधा कमजोर पड़ जायगा।

बहुत बादमें (जैसे दिसम्बरमें) बोनेसे तैयार होनेके पहिले ही गर्मीके कारण अधिकांश पौधे नष्ट हो जाते हैं बहुत पहले बोनेसे गर्मीके कारण पौधे आरंभ में ही नष्ट होजाते हैं। इसलिए अगस्त और सितम्बरके पहिले भागमें केवल थोड़ा बहुत ही बीज बोना चाहिए। बीजके अधिकांश भागको मध्य सितम्बर और अक्टूबरमें बोना चाहिए। जब पौधे चार-पाँच इंच बड़े हो जायँ तो उनको क्यारियोंमें रोप देना चाहिए। इसके लिए जमीनको निम्न रीतिसे तैयार करना चाहिए। जमीनपर चार-पाँच इंच मोटी खादकी तह बिछा दो। यह काम पौधोंके रोपनेके एक महीने पहले किया जाय तो अच्छा है। फिर जमीनको लगभग एक हाथकी गहराई तक अच्छी तरह फावड़ासे खोद देना चाहिए जिससे मिट्टी और खाद अच्छी तरह मिल जाय। ढेलों को फोड़नेके बाद सतहको चौरस कर दिया जाता है और तब चार इंच चौड़ी तीन इंच गहरी अट्ठारह-अट्ठारह इंचकी दूरी पर नाली बना ली जाती है। और इन नालियोंमें अट्ठारह-अट्ठारह इंचकी दूरी पर पौधा लगाया जाता है। इतनी ही दूरीपर प्रायः सभी तरहकी पातगोभियोंके लिए पौधा रोपना ठीक होगा; परन्तु बड़ी जातिकी पातगोभीके लिए पंक्तियाँ तीन-तीन फुट पर रहें और पौधा पंक्तियों में दो-दो फुट पर हो। पौधा लगानेके बाद तुरन्त पानी देना चाहिए और इसके बाद प्रत्येक सप्ताह में एक बार सींचना चाहिए। जब-जब आवश्यक हो

मिट्टीको खुरपियाना चाहिए। जब पौधा आधा इंच बढ़ चुके तो पौधोंके जड़ोंमें मिट्टीका ढेर लगा देना चाहिए। ऐसा करनेके बाद पौधे ऐसे दिखलाई पड़ते हैं जैसे वे मेंड़पर रोपे गये हों। मेंड़ पाँच से आठ इंच तक ऊँची हो। इसके बाद प्रति सप्ताह सींचना चाहिये और कभी-कभी खुरपियानेके अतिरिक्त किसी और सेवा की आवश्यकता नहीं है। यदि बीजको थोड़ा-थोड़ा करके कुछ समय तक बोया जाय तो पातगोभी लगभग जाड़े के अंत तक खाने को मिल सकेगी। अंतिम बार बीजको दिसम्बरके आरम्भमें बोना चाहिये और पौधोंको जनवरीमें अपने स्थानमें रोपना चाहिये।

कभी-कभी पौधोंमें कीड़े लग जाते हैं। यदि वे दिखलाई पड़ें तो सबसे अच्छी तरकीब यह है कि हर एक पौधेकी जाँच की जाय और पौधोंमें जो कीड़े दिखलाई पड़ें वे मार डाले जायँ।

गोभी या फूलगोभी

मध्य जूनसे अगस्तके अंत तक फूलगोभी का बीज बोया जाता है। विदेशसे मँगाए गए बीजको सितम्बरके आरम्भसे लेकर अक्टूबरके अंत तक बोया जाता है। पहाड़ोंपर फरवरीके अंतसे अप्रैलके अंत तक बीज बोया जाता है। इस तरकारी को लोग बहुत पसन्द करते हैं और इसलिए यह बहुत अधिक मात्रामें बोई जाती है इसकी कई एक जातियाँ हैं। जो उत्तरी भारतमें अच्छी तरह से होती हैं। बाहरसे मँगाए गए बीजसे उत्पन्न पौधोंके बीज पैदा किये जा सकते हैं और इस प्रकार कई वर्षों तक किसी एक जातिसे बिना बाहर से बीज मँगाए पौधे उगाये जा सकते हैं। परन्तु जब तक ठंढक न पड़ने लगे विलायती बीज नहीं बोया जा सकता है। यदि देशी बीज, या विदेशी बीजसे उत्पन्न पौधोंसे देशमें पैदा हुआ बीज, उत्तरी भारतवर्षमें जून, जुलाई और अगस्तके महीनेसे बोया जाय तो इस पौधेमें फूल अच्छे लगेंगे। परन्तु यदि उसी बीजको सितम्बर या अक्टूबरमें बोया जाय तो बहुतसे पौधोंमें फूल लगेंगे ही नहीं और यदि लगेंगे तो उनमें बीज शीघ्र लगने लगेंगे जिससे फूल तरकारीके काम का नहीं रहेगा। यदि विदेशसे मँगाया गया बीज जून, जुलाई और अगस्तमें बोया जाय तो पौधे बहुधा गर्मीके कारण मर जाते हैं।

यदि यह इच्छा है कि गोभी बहुत दिन तक तैयार बनी रहे तो पहले देशी बीज बोना चाहिए और सितम्बर और अक्टूबर में विदेशी बीज।

मलेरियाकी अमोघ औषधि

[पृष्ठ २२२ का शेषांश]

थे। गोलियोंके रूपमें नई औषधिका खाना अत्यन्त सरल तो है परन्तु सैनिक इसे खाना भूल जाते हैं। इसलिये उन्हें इसका नियमपूर्वक सेवन करनेके लिये बराबर समझाया जाता है। इसीलिये उनसे मलेरिया-निरोधक कवायद भी कराई जाती है जिससे लड़ते समय भी वे यथासमय इसकी मात्रा खाना नहीं भूलते।

मलेरिया-निरोधक शस्त्रोंको भी सेनामें प्रथम श्रेणीके रक्षा-साधन माना जाता है। 'मेपाक्राइन' के अतिरिक्त मच्छर नाशक क्रीम भी दी जाती है जिसे सैनिक शरीरके खुले हुए अंगोंपर लगाया करते हैं। जहाँ कहीं सम्भव होता है मच्छरदानियाँ भी दी जाती हैं। मच्छर नाशक दल मच्छर उत्पन्न होनेके स्थानोंपर औषधियाँ छिड़क कर उन्हें नष्ट कर डालते हैं। उपर्युक्त उपायोंके फलस्वरूप मलेरियाको सर्वत्र पराजित किया जा रहा है। 'मेपाक्राइन' भारी नहीं होती। इसे सरलतासे ही पैक करके भेजा जा सकता है। भूमध्य-सागरके फिर खुल जानेसे अब यह जहाजों द्वारा भारत भी भेजी जा सकती हैं।

क्या सूर्यकी गरमी बढ़ रही है ?

[प्रो० चन्दी प्रसाद जी, बनारस]

३० वर्ष पहले वैज्ञानिक यह समझते थे कि सूर्य ठंडा होता जा रहा है और एक समय आयेगा जब वह इतना ठंडा पड़ जायगा कि उससे हमें प्रर्याप्त गर्मी नहीं मिलेगी और हम लोगोंका जीना अ-सम्भव हो जायगा। परन्तु इधरके ३० वर्षोंके अनु-सन्धानोंसे यह पता चलता है कि सूर्यकी गरमी बढ़ रही है, वह सृष्टिक्रममें अभी बच्चा है युवावस्था को नहीं प्राप्त हुआ है। इस समय सूर्यकी आयु १.६ से २ अरब वर्षोंकी आँकी जाती है जो मनुष्य जीवन के लगभग २० वर्षके समान है। इतने ही और बरसोंमें वह पूरी बाढ़पर पहुँचेगा और उसकी गरमी बहुत बढ़ जायगी। यदि ऐसा होगा। तो पृथ्वीपर भी गरमी बढ़ेगी और जो देश आजकल ठंडे समझे जाते हैं वे गरम हो जायँगे। विषुवत् रेखापर इतनी गरमी बढ़ जायगी कि वहाँ मनुष्य जाति रह ही न सकेगी। हिसाब लगाया गया है कि इस समय सूरजसे जितनी गरमी मिलती है वह यदि चौगुनी हो जाय तो महासागरोंका जल उबल कर भाफ बन जायगा। परन्तु यदि किसी समय सूरजसे गरमीका मिलना इस समय से आधा हो जाय तो विषुवत रेखापर भी समुद्रका जल जम कर बर्फ हो जायगा।

पाठकोंके मनमें यह प्रश्न उठ सकता है कि सूर्य की आयु १.६ से २ अरब वर्षकी कैसे जानी गयी। इसका अनुमान दो बातोंसे लगाया जाता है। (१) यूरेनियम आदि (radioaction) पदार्थोंके विश्लेषण (disintegration) से इनके जीवनके इतिहासका पता लगाया गया है जिससे यह ज्ञात होता है कि इनमें जो परिवर्तन होता है उसमें कितना समय लगता है। (२) भूगर्भके शिला प्रस्तरोंके विश्लेषणसे (analysis) पाया गया है कि (radioactive) पदार्थोंके (disintegrated) पदार्थकी मात्रा प्रतिशत क्या है जिससे यह सिद्ध होता है कि इन स्तरोंके ठोस होने का आरम्भ कमसे कम १.६ अरब बरस पहले हुआ होगा क्योंकि ठोस होनेके पहले जब ये शिला खंड युवा-वस्थामें रहे होंगे तब तो disintegrated products अपने स्थानसे convection current धाराओंके द्वारा बह कर दूर चले जाते होंगे और पृथ्वी सूर्यसे ही निकली समझी जाती है। इसलिए सूर्यकी आयु इससे अधिक अवश्य माननी चाहिये।

अब आप कहेंगे कि सूर्यकी आयु २ अरब बरस से अधिक क्यों न मानी जाय। इसके लिए हमें एक वैज्ञानिक मैक्सवेलके distribution of volumes सम्बन्धी नियमका सहारा लेना पड़ेगा। यह नियम बतलाता है कि यदि भिन्न-भिन्न गति वाली वस्तुएँ (कण या तारे) आदि को एक सीमित स्थान (limited space) में छोड़ दी जायँ तो कुछ समय तक इनकी गति घट बढ़ के एक मध्यम (average) गति प्राप्त कर लेती हैं। इस मध्यम गतिके प्राप्त करनेमें कुछ विशेष समय लगता है। इसी नियमके अनुसार जब तारोंकी गति (velocity) पर अनुसन्धान किया गया और तुलना की गयी तो प्रकट होता है कि सूर्यकी आयु दो अरब बरस से अधिक नहीं हो सकती।

यह तो सूर्यके जीवनकी इस समयकी कहानी है। भविष्य क्या होगा इसका अनुमान करनेके लिए हमको इस संबन्ध की और बातों पर भी ध्यान देना होगा।

साधारण दर्शकोंको जान पड़ता है कि आकाश में अनगिनती तारे हैं और उनको कोई गिन नहीं सकता परन्तु यदि हम धैर्यके साथ रातमें आकाशके थोड़े-थोड़े खण्डोको गिनने का साहस करें तो हमें मालूम होगा कि मेरी आँख से देख पड़ने वाले तारे लगभग ६,००० हैं। जैसे-जैसे उच्च कोटिके दूर-दर्शक बनते जाते हैं वैसे-वैसे तारोंकी संख्या भी

बढ़ती जा रही है। हालैंड के एक ज्योतिषी कैपटिन (Kapteyn) ने अनुमान किया है हमारी आकाशगङ्गाके भीतरके तारोंकी संख्या लगभग ४० अरब होगी। इस बड़ी संख्याका अनुमान इस तरह समझमें आ सकता है कि यदि हम एक-एक तारे को एक-एक सेकंडमें गिने तो इतने तारोंके गिननेमें १३०० बरस लग जायगा अर्थात् यदि हम एक जन्म में १०० वर्ष जीवें और बार-बार जन्म लेकर इनको गिने तो १३ जन्म लेने पर इनकी गिनती कर सकते हैं।

अमेरिकाके प्रधान ज्योतिषी एच० एन० रसल ने १९१३ ई०में तारोंके रंग और दीप्ति (luminosity) का वेध करके एक बड़ी सारणी बनायी। फिर इस सारणीके एक-एक तारेका स्थान निश्चय करने के लिए एक विन्दुसे सूचित किया था। इस प्रकार सब तारोंको एक ही ग्राफपेपर पर अंकित कर दिया तो क्या देखता है कि अधिकांश तारों के विन्दु एक ही वक्र रेखा (curve) पर पड़ते हैं। थोड़े से ही तारे ऐसे हैं जो इस वक्रसे तनिक दाहिने या बांये पड़ते हैं। दाहिने पड़ने वाले तारे ऐसे हैं जिनकी चमक कुछ समय तक तो बढ़ती रहती है और कुछ समय तक घटती रहती है अर्थात् उनकी चमक और आकारमें भी स्पन्दन की तरह परिवर्तन होता रहता है। ऐसे तारों को pulsating तारा कहते हैं। परन्तु बायीं ओर पड़ने वाले तारे श्वेत बावने (white dwarf) कहलाते हैं। प्रायः सभी तारे इसी वक्र रेखा पर पड़ते हैं। इसलिये इस रेखा को तारों की जीवन गति की प्रधान रेखा (main sequence) कह सकते हैं। इस रेखापर सूर्यका भी एक स्थिर विन्दु है जो या तो ऊपर जा सकता है या नीचे, दाहिने-बाएं नहीं जा सकता। इस रेखा (चित्रमें नीचे की ओर सप्तरश्मिका लाल किनारा है और ऊपर नीला। और साधारणतः यह देखा गया है कि गरम होने वाले पदार्थों का तापक्रम जैसे-जैसे बढ़ता जाता है वैसे-वैसे उनका रंग लाल से नीला होता जाता है। इस वक्र पर बहुतसे तारे सूरजके स्थानसे ऊपर हैं। इसलिए यह अनुमान हो सकता है कि सूर्यका जीवन ऊपर की ओर जा रहा है। वैज्ञानिकोंका अनुमान है कि सूर्यमें जो हाइड्रोजन है वह धीरे-धीरे जलकर हीलियममें बदल रहा है और इस जलनेमें सूर्यके भीतर जो गरमी पैदा होती है उससे तापक्रम बढ़ता है। हीलियम का एक गुण यह भी है कि इसके आवरणमें से गरमी सुगमतासे नहीं निकलती और इस कारण तापक्रम और अधिक बढ़ेगा और हाइड्रोजनकी आग और जोरसे भभकेगी यद्यपि ईंधन कम होता जा रहा है। सूर्य की रोशनी का तेज बढ़ेगा इसका आकार शुरूमें कुछ प्रतिशत बढ़ेगा और फिर धीरे-धीरे कम होना आरंभ होगा। एक ग्रंथकार का अनुमान है कि हाइड्रोजनका अन्त होने तक सूर्यविकिरण (Solar Radiation) शायद सौ गुना बढ़ जाए। पृथ्वी के निवासी अभी तक यह ख्याल कर डरते थे कि सूर्यकी गरमी खर्च होनेसे हम लोग ठंडसे मरेंगे। परन्तु ठंड आनेके पहिले बड़ी गरमी आने का डर है। इस गरमीसे मनुष्य जाति का अन्त हो जाएगा। यह सब इतने धीरे होगा कि अरबों वर्ष गुज़र जायेंगे। इसलिए अभी कोई डरकी बात नहीं है। फिर गरमीके बाद तो सूर्य ठंडा होता और सिकुड़ता सिकुड़ता संभवतः पृथ्वीके बराबर छोटा हो जायगा। भारतके एक बड़े नामी ज्योतिषी चन्द्रशेखरका अनुमान है कि इस सूर्य के मध्य का पदार्थ इतना भारी होगाकि एक अँगुली के एक पोर के बराबर का टुकड़ा एक हजार मन तौल में होगा। इस साल के इण्डियन सायन्स कांग्रेस के भौतिक विज्ञान विभागके सभापति डाक्टर दौलत सिंह कोठारी ने इसी विषय पर वक्तृता दी थी।

प्रकाश-संश्लेषण अथवा कार्बन-आत्मीकरण

[श्री० अनंत प्रसाद मेहरोत्रा, एम० एस-सी०]

जीवधारियोंके कई ऐसे गुण होते हैं जिनके कारण वे निर्जीव वस्तुओंसे भिन्न हैं। ऐसे कई गुणोंमें एक गुण यह भी है कि प्रत्येक जीवधारी भोजन ग्रहण करता है। जीवधारी दो श्रेणीके हैं : —

(१) जन्तु, तथा

(२) वनस्पति

वनस्पति तो अपना भोजन, बहुत कुछ सीमा तक, जिस स्थान पर वे रहते है वहींसे सोखते हैं। यहाँ पर हमारा प्रश्न है कि जन्तु समुदाय अपना भोजन कहाँसे प्राप्त करते हैं ? इसके दो उत्तर हो सकते है : —

(१) दूसरे जन्तुओं से (मांस इत्यादि)।

(२) वनस्पतिओं से।

दूसरा उत्तर यथार्थ है। पहला उत्तर केवल कुछ सीमा तक ही ठीक है, क्योंकि आहारोपयोगिक जन्तु भी अन्त में अपने भोजन के लिए वनस्पतियों पर अवलंबित हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि जन्तु समुदायको अपने भोजनके लिए अन्त में वनस्पतिपर अवलंबित होना पड़ता है। वास्तवमें वनस्पतियोंका भंडार, मनुष्य व अन्य जन्तुओं के लिए अपरिमित व परमावश्यक है।

वनस्पति समुदाय इस ऐंद्रिक भोजन को तैयार करते है। उस घटना को जिसके कारण वनस्पति ऐंद्रिक भोजन तैयार करते, है उसे कार्बन आत्मीकरण अथवा प्रकाश-संश्लेषण कहते हैं। प्रश्न होता है यह क्यों, कहाँ, और कैसे होता है ?

प्रत्येक जीवन-क्रिया कई कारकों पर अवलंबित होती है। उसी प्रकार वनस्पति का प्रकाश-संश्लेषण भी कई कारकों पर अवंलबित है। ये कारक दो प्रकार के हैं— वाह्यिक व आन्तरिक। प्रत्येक प्रकार के अन्दर कई कारक हैं। वे निम्नलिखित हैं :—

वाह्यिक कारक :—

(१) कार्बन डाइऑक्साइड (२) प्रकाश (३) तापक्रम (४) जल

आन्तरिक कारक :—

(५) हरित द्रव्य (६) पत्तियोंकी आन्तरिक बनावट (७) मूलरस सम्बन्धी कारक (८) कार्बन आत्मीकरण द्वारा तैयार किये हुए पदार्थोंका एकत्रित होना इत्यादि।

प्रकाश-संश्लेषणका ढंग व रासायनिक परिवर्तन पिछले ६० वर्षोंमें इस विषयपर बहुत अन्वेषण हो चुका है। फिर भी ये सब कार्य पूर्ण रूप से सफल नहीं हुए और हम आज भी पूर्ण रूप से यह नहीं जानते कि इन सब कारकोंके संग किस प्रकार से प्रकाश-संश्लेषण होता है। इतना हम निश्चित रूप से जानते हैं कि प्रकाश-संश्लेषण में वनस्पति कार्बन डाइऑक्साइड को प्रयोग करके किसी प्रकार शर्करायें बनाते हैं। कुछ शर्करायें तो यों ही रह जाती हैं, शेष शर्कराओं से फिर श्वेतसार व विभिन्न प्रकार की वस्तुएं जो पेड़ोंमें पाई जाती है, बनती हैं। शर्कराओं से श्वेतसार तथा अन्य वस्तुएं कैसे बनती है, यह जानना तो बहुत कुछ हद तक सरल है। हमारा प्रश्न यहाँ पर यह है कि कार्बन डाइऑक्साइडसे किस प्रकारसे शर्करायें बनती है, कार्बन डाइऑक्साइड और शर्कराओं के बीच में क्या-क्या रूपान्तर होता है और कैसे यह रूपान्तर होता है। इस विषय में अन्वेषण करने वालों का ढंग बड़ा मनोनीत है। वे लोग पहले तो अपने बुद्धि अनुसार निर्धारित करते हैं कि कार्बन डाइ-

ऑक्साइड और शर्करात्रों के बीच में क्या-क्या रूपान्तर हो सकते हैं। फिर वे पेड़ोंमें इन रूपान्तरिक वस्तुओंको पाने की चेष्टा करते हैं यही नहीं वे उन रूपान्तरिक वस्तुओंको पेड़ोंको खिलाते हैं और देखते हैं कि आगे चलकर उनसे शर्करायें बनती है या नहीं।

प्रकाश संश्लेषण क्या है ?– पेड़ों में जो हरित द्रव्य होता है, वह सूर्यके प्रकाशको शोषण करता है। इस प्रकाशके ओजसे प्रकाश-संश्लेषण में जो भी रूपान्तर होना होता है, वह होता है। यह रूपान्तर शायद किसी हद तक भौतिक तथा रासायनिक दोनों होते हैं। जैसा ऊपर कहा जा चुका है हमको इन रूपान्तरों के विषय में अधिक ज्ञान नहीं है, फिर भी रासायनिक रूपान्तर अधिक महत्त्व का प्रतीत होता है। इन रासायनिक रूपान्तरों में मोटे तौर से यह कहा जा सकता है कि पेड़ों द्वारा जो कार्बन डाइऑक्साइड शोषण की जाती है, उससे आगे चल कर शर्करायें बन जाती हैं। इसके लिए प्रकाश ओज-दायक होता है। प्रकाश-संश्लेषण का सारा कार्य केवल उन्हीं स्थानों में होता है जहाँ हरित द्रव्य होता है। जैसा पहले भी कहा जा चुका है कि इन शर्कराओं से आगे चलकर श्वेतसार तथा और कई चीजें जो पेड़ोंमें पाई जाती हैं बनती हैं।

कार्बन डाइऑक्साइड से शर्करायें किस प्रकार बनती हैं, इस विषयपर दो प्रधान विचार प्रकट किये गये हैं :—

(१) ऐंद्रिक-अम्ल सिद्धान्त

(२) फारमलडीहाइड सिद्धान्त

ऐंद्रिक-अम्ल सिद्धान्त के अनुसार—

कार्बन डाइऑक्साइड—ऐंद्रिक अम्ल थारमलडीहाइड – शर्करायें इत्यादि।

अर्थात् कार्बन डाइऑक्साइड से किसी प्रकार ऐंद्रिक अम्ल बनते हैं, फिर इनसे फारमलडीहाइड बनती हैं। फिर फारमलडीहाइडसे शर्करायें बनती हैं। इस मतपर जिन वैज्ञानिकों ने अन्वेषण किया है उनमें उल्लेखनीय ये हैं - लाइबिग, फेन्टन, निडवर्ग व स्वान, निडवर्ग व कर्व, अरलेनमेयर, रजंन व मलिक, बार, इत्यादि।

फारमलडीहाइड सिद्धान्तके अनुसार कार्बन डाइआक्साइड से ऐंद्रिक अम्ल नहीं बनते, वरन् किसी प्रकार सीधे फारमलडीहाइड बनती है। इस फारमलडीहाइड से आगे चल कर शर्करायें इत्यादि बनती हैं। अतएव—

कार्बन डाइऑक्साइड—(फारमलडीहाइड)—शर्करायें इत्यादि।

इस मतको प्रकट करने वालों में उल्लेखनीय ये हैं—बायर, विलस्टाटर, वारवर्ग, बेली इत्यादि।

यों तो सूर्यके प्रकाशसे हम लोगों को अगणित लाभ हैं, परन्तु मुख्य लाभ हमको पेड़ों द्वारा होता है, क्योंकि उनमें सूर्यके प्रकाशके ही कारण कार्बन आत्मीकरण होता है। कार्बन आत्मीकरण के द्वारा इन पेड़ोंमें खाद्य पदार्थ बनता है। इन खाद्य पदार्थोंको पेड़ तो स्वयं केवल कुछ ही हद तक प्रयोग करते है, परन्तु इनसे मुख्य लाभ मनुष्य तथा अन्य जानवरोंको होता है। जानवर इन पेड़ों को आहार बनाते हैं तथा मनुष्य इन खाद्य पदार्थों को फल, तरकारी तथा अन्न में प्राप्त करता है। यदि सूर्य्यको इस प्रकाशके लिए धन्यवाद है तो पेड़ भी इस सूर्य्यके प्रकाश को हम लोगोंके लिए प्रयोग करने के कारण धन्यवाद के पात्र हैं।

अब हम संक्षेपमें यह बतलाने की चेष्टा करेंगे कि भिन्न-भिन्न कारक, जो पहले बतलाए जा चुके हैं, किस प्रकार कार्य कुशल हैं, तथा किस प्रकार कारक एक दूसरेकी मददसे प्रकाश संश्लेषणमें कार्य करते हैं।

इस विषयपर १९०५ में ब्लैकमैन तथा मिस मैथाईने महत्त्वपूर्ण अन्वेषण किया है। जब हर

एक कारक उचित परिमाणमें होता है तब ही प्रकाश संश्लेषण होता है। यदि उन कारकोंमें एक या अधिक कारक पर्याप्त मात्रासे कम हो जावें तो प्रकाश-विश्लेषण बन्द हो जाता है। इसी सिद्धान्त पर ब्लैकमैन का 'सीमित कारक का नियम' अवलम्बित है। समयानुसार इस नियममें सुधार हुए हैं। इन्हीं सुधारोंके फलस्वरूप, हमारे देशके भौतिकशास्त्र तथा वनस्पति विज्ञान के प्रसिद्ध विद्वान, स्वर्गीय जगदीशचन्द्र बोसने 'गुणनफल का नियम' स्थापित किया।

कुछ सीमाके अन्दर यदि कोई भी कारक बढ़ाया जाय तो प्रकाश-विश्लेषण भी बढ़ता है। उदाहरण स्वरूप आप तापक्रम लीजिए। अन्य सब कारकों को अधिक परिमाणमें रख कर, कमसे कम तापक्रम देना शुरू कीजिए। बहुत कम तापमान होनेके कारण पहले तो प्रकाश-विश्लेषण होगा ही नहीं। अब आप तापक्रम बढ़ाते जाइये। जब उपयुक्त तापक्रम आ जायेगा तब प्रकाश-विश्लेषण शुरू हो जायगा। अब जैसे-जैसे आप तापक्रम और बढ़ाते जाइयेगा वैसे-वैसे प्रकाश-विश्लेषण भी बढ़ता जायगा। इसी प्रकार काबन डाइआक्साइड तथा प्रकाश का भी असर होता है। जैसा कहा जा चुका है पानी भी एक कारक है और पानीके परिमाण का असर प्रकाश संश्लेषण पर पड़ता है। यह मालूम किया गया है कि किसी-किसी पत्तियों में यदि पानी ४३-४४ प्रतिशत कम कर दिया जाय तो प्रकाश-संश्लेषण भी ५३-७८ प्रतिशत कम हो जाता है।

प्रकाश-संश्लेषण के लिए पेड़ कार्बन डाइ ऑक्साइड वायुमंडलसे लेते हैं। वायुमंडलसे हरितद्रव्य तक यह कार्बन डाइआक्साइड रंध्र के द्वारा जाती है। यह मालूम किया गया है प्रति वर्ग मिलीमीटर पत्ती में लगभग दो सौ रंध्र होते हैं, तथा पत्तियों के प्रति वर्ग डेसीमीटर क्षेत्र पर प्रति घंटा तेरह घन सेण्टीमीटर कार्बन डाइआक्साइड शोषण की जाती है।

परिचमी देशोंमें वैज्ञानिक मतानुसार मिट्टीके संग खाद देनेके अलावा पेड़ोंके ऊपर हवामें कार्बन डाइआक्साइड की मात्रा कृत्रिम रूपसे बढ़ा देते हैं। इससे बहुत सफलता प्राप्त होती है। पेड़ोंमें फल व फूल पहलेके अपेक्षा शीघ्रतासे लगते हैं, तथा अधिक परिमाणमें लगने लगते हैं।

ख्यूड़ाकी नमककी खान

[श्रीयुत आर० एन० पंडित, बी० एस-सी०]

ख्यूड़ा की नमक की खान विख्यात है। पंजाबके रहने वाले इसी खानसे निकला हुआ नमक खाते हैं। बचपनसे मेरे मनमें यह इच्छा थी कि कभी समय मिलने पर ख्यूड़ेकी नमक की खानको अवश्य देखूं। हालमें ऐसा सुअवसर आ गया कि मैं वहाँ जा सकूं क्योंकि मेरे मित्रों ने कटासराज जाने का फैसला किया।

कटासराज ख्यूड़ेसे लगभग १३ मील दूर है। पहाड़ी रास्ता होनेके कारण यात्रियोंको कुछ कष्ट होता है जिसके लिए ऊँटोंकी सवारीका प्रबन्ध रहता है। कटासराज एक तीर्थ स्थान है। यहाँ एक पानीका बड़ा भारी कुंड है। यह कुंड बहुत पुराना है और कहा जाता है कि बनवास के समय स्थान-स्थान पर फिरते हुए पांडव इस स्थानपर पहुँचे। गर्मी अधिक होनेके कारण प्यास से व्याकुल होकर वे चारों तरफ पानीकी खोज करने लगे और अंतमें

यह सरोवर दिखाई दिया। नकुल, सहदेव, भीम और अर्जुन सब ने इस सरोवर से पानी लाने की कोशिश की लेकिन यक्षके प्रश्नोंका उत्तर न दे सकनेके कारण वे सबके सब पत्थर की शिला बन गये किन्तु युधिष्ठिरके ठीक-ठीक उत्तर देनेसे सबके सब फिरसे यक्ष द्वारा जीवित कर दिये गये।

इसी सरोवर पर प्रत्येक वर्ष बैसाखके प्रथम दिन एक बड़ा मेला लगता है। दूर-दूरसे यात्रियोंके झुण्डके झुण्ड आकर इस सरोवरमें स्नान करते हैं। यात्रियोंके ठहरनेके लिए वहीं एक धर्मशाला है और इसके सिवा कुछ दुकानें भी आ लगती हैं। हम लोग भी सरोवरमें स्नान करनेके उद्देश्यसे लाहौरसे यहाँके लिए चल दिये। इस यात्रामें ख्यूड़े की नमक की खानको देखनेका निश्चय किया गया।

हम सब मित्र मिलकर आठ या दसके लगभग थे। लाहौरसे रात को दस बजे की गाड़ी से चलकर कोई आधी रातको लालामूसा की स्टेशनपर पहुँचे। यहाँपर ख्यूड़ेके लिए गाड़ी बदलनी पड़ती है जो करीब चार बजे रवाना होती है। चार घण्टेका समय व्यतीत करनेके लिए हमारे पास काफी मनोरञ्जनके साधन थे। तुरन्त प्लेटफार्म पर उतरते ही एक दरी और चादर बिछा दी गई, साथही तबला और बाजा भी निकाल कर रख दिया। एक तरफ़ तबले पर थाप पड़ने लगे दूसरी तरफ़ चायके लिए पानी स्टोव पर उबलने लगा। स्टेशनके सब आदमी अपना काम छोड़ कर हमारी मधुर स्वर लहरी तीन बजे तक सुनते और महफिल की शोभा बढ़ाते रहे। स्टेशन का शान्त वातावरण मधुर राग रागनियोंसे अत्यन्त सुन्दर प्रतीत होने लगा।

फिर चायकी पार्टी जम गई जिसकी हंसी-मजाक और कहकहेकी आवाज दूर-दूर तक सुनाई देती थी। चाय पीते-पीते गाड़ी स्टेशनपर आ खड़ी हुई और हमने भी अपने प्रोग्रामके अनुसार सब माल-असबाब गाड़ीके एक डिब्बेमें डाल दिया और गाड़ीके चलने की प्रतीक्षा करने लगे।

यह बात तमाम संसारमें विख्यात है कि पंजाब के रहने वालोंमें सेवाभाव अधिक रहता है और हमें इसका अनुभव मलकवालके स्टेशन पर हुआ। यहाँ पर गाड़ीके रुकते ही स्टेशनके तमाम मुलाज़िमों ने हमारे डिब्बे को आकर घेर लिया। हम सब हैरान थे क्योंकि टिकट इत्यादि तमाम वस्तुयें हमारे पास ठीक होने पर भी उन्होंने हमें मलकवालमें कुछ समय के लिए ठहरने को मजबूर कर दिया और हमारी राग सुनने की उत्कट इच्छा प्रकट की। हम बड़े आश्चर्यचकित हुये कि इन्हें आखिर हमारा कैसे पता चला। बादमें मालूम हुआ कि लालमूसाके स्टेशनसे वहाँके कर्मचारी ने तारके द्वारा हमारी पार्टी का परिचय दे दिया था जिसमें हमारे संगीत का विशेष जिक्र किया गया था। हम शाम तक उनके अतिथि रहे और संगीत कला का प्रदर्शन किया जिससे वे बहुत प्रसन्न हुए।

मलकवालसे चलकर गाड़ी लगभग ढाई घण्टेमें ख्यूड़ा स्टेशनपर पहुँच गई। मलकवाल स्टेशनके कर्मचारियों ने हमारे ठहरनेके लिए स्टेशन मास्टर, ख्यूड़ाको पहले ही से तार द्वारा सूचित कर दिया था जिससे हमें बहुत सुविधा हुई। ठहरने के लिए तुरन्त सेकेंड क्लास वेटिंगरूम मिल गया जहाँ सबने रात भर आराम किया और पौ फटने से कुछ पहले ही कटासराजके लिए चल पड़े। स्टेशन मास्टर ने हमें विश्वास दिलाया कि वे हमारे लिए खान देखने का आज्ञा-पत्र प्राप्त कर लेंगे।

कटासराजसे वापिस लौटने पर हमारे नाम का खान देखनेका आज्ञा-पत्र तैयार था और हम खान देखनेके लिए रवाना हो गए। खानके अन्दर जाने से पहले लोगोंने हमें राय दी कि यदि नमक का तालाब देखना हो तो अपने साथ कुछ आतिश-बाजियाँ अवश्य ले जायें और इस कथनानुसार हम

अपने साथ कुछ आतिशबाजियाँ ले भी गये।

खानके दरवाजेमें प्रविष्ट होते ही आज्ञा-पत्र पहरे वालेको दे दिया जहाँसे एक आदमी खान दिखानेके लिए मिल गया। दरवाजे में दाखिल होते ही नमक से भरी हुई हवा आने लगी और जीभ को होठोंपर फेरनेसे नमक का स्वाद आने लगा। रास्तेमें हमारे पथ-प्रदर्शकने दीवारमें एक वृक्षके तने की बची हुई लकड़ी दिखाई जिसे देख कर बड़ी हैरानी हुई कि इस स्थान पर पेड़ कैसे उग सका। फिर सौ कदम आगे चलने पर बाँये हाथको एक काफी गहरा तालाब मिला जिसके एक किनारे पर छोटी सी नाव थी। उस तालाबके बारेमें यह प्रसिद्ध है कि यदि कोई मनुष्य इसमें डूबना चाहे तो उसकी यह इच्छा पूर्ण न होगी, क्योंकि नमकका पानी साधारण पानीसे अधिक भारी होनेके कारण बोझिल चीजों को अपने ऊपर आसानीसे तैरते रखने का गुण रखता है। आतिशबाजीके जलनेसे एक अत्यन्त सुन्दर, रंग-रँगीला व चित्ताकर्षक दृश्य उपस्थित होगया।

इसी तालाबके दाहिनी तरफ नमककी एक अत्यन्त स्वच्छ और सुन्दर दीवार थी जो लगभग पचास गजसे अधिक ऊँची होगी और चौड़ाईमें तीन गजसे कुछ ज्यादा थी। नमककी यह दीवार स्फटिक की बनी हुई इस तरह प्रतीत होती थी कि हम एक मामूली सी दियासलाई को दीवारके एक-तरफ जला कर दूसरी तरफ अत्यन्त सरलतासे एक पोस्ट कार्ड पढ़ सके। एक कमरेसे दूसरे कमरेमें नमककी गाड़ियाँ ले जानेके लिए रेल की लाइनें पड़ी थीं। इनपर छोटी-छोटी ट्रोलियाँ आसानीसे चलती थीं। एक कमरेमें अत्यधिक लम्बी और पतली छड़ी छतसे नीचे की तरफ लटक रही थी। यह नमककी छड़ें छतसे नमकीन पानीकी बूँदोंके धीरे-धीरे टपकनेसे बन जाती हैं, क्योंकि पानीकी बूंदों का तापक्रम नमक मिलनेसे freezing point से नीचे हो जाता है और एक बूंद जमती जमती छड़ का रूप धारण कर लेती है। कोई-कोई छड़ तो १५ फुटसे भी लम्बी होगी। एक कमरेमें इस प्रकारकी तीन चार सौ छड़ें लटकती थीं। आतिशबाजी जलाकर देखने पर शीश-महल, झाड़ और फानूसों का दृश्य पेश करती हैं।

वहाँ पर सिक्खोंके जमानेके औजार भी रखे थे जिनसे उस जमानेमें नमक निकाला जाता था। नमक निकालनेके लिए दोनों ही तरीके प्रयोग में लाये जाते हैं। एक तो लोहे की लम्बी-लम्बी कुदालों से नमकके ढेलों को दीवारमेंसे फोड़कर निकाला जाता है। दूसरे बारूदसे आग लगाकर बड़े-बड़े टुकड़े अलगकर दिये जाते हैं। इस प्रकार से निकाला हुआ नमक एकदम शुद्ध नहीं होता। यहाँ से नमकके ढेले भर-भर कर एक खास जगह ले जाये जाते हैं जहाँ मशीनोंके द्वारा साफ किया जाता है और बिक्रीके लिए पंजाब भरमें भेज दिया जाता है। रोशनीके लिए खान में बिजली भी लगी हुई है और शुद्ध हवाके लिए रोशनदान बने हुए हैं। यह खान पहाड़ को खोद कर बनाई गई है और जहाँ हम खड़े थे वहाँसे पहाड़की चोटी आध मील से अधिक ऊँची थी।

हम सब ऐसी विचित्र खान देखकर बड़े आश्चर्य-चकित हुए।

मानसिक दक्षताका रहस्य

[राजेन्द्र बिहारी लाल, एम० एस-सी०, इण्डियनस्टेट रेलवेज़]

अगर एक शब्दमें कहा जाय तो मानसिक दक्षताका रहस्य है सीखना। जिस किसी भी विद्या, कला या निपुणता की आवश्यकता हो उसे तत्परतासे सीखिये—यही मानसिक कार्य-क्षमताका गुर है। सीखिये! यह तो बड़ा पुराना और परिचित शब्द है। शायद आप कहेंगे कि आप इस लेखको इस विचारसे नहीं पढ़ रहे हैं कि शिक्षा और उसके महत्व पर एक व्याख्यान सुनें। आप आपत्ति कर सकते हैं कि सीखना तो बहुत ही साधारण बात है न कि मन के विकास की कोई नई युक्ति।

परन्तु मनोविज्ञानके पण्डितोंका ऐसा विचार नहीं। उन्होंने सीखने की क्रियाका वैज्ञानिक ढंगसे अध्ययन किया है और उनकी दृष्टिमें तो यह एक अत्यन्त विचित्र और रोमांचकारी वस्तु है। इसके सम्बन्धमें बहुत कुछ तो अभी तक मालूम भी नहीं। पर वे लोग इतना अवश्य जानते हैं कि होशियारीसे बताया हुआ और दृढ़ संकल्प से किया हुआ सीखना अद्भुत चमत्कार प्राप्त करा सकता है।

सफलता का मूल तत्त्व

मनोविज्ञानी बड़ी दिलचस्पी और कुतूहलके साथ एक औसत आदमीके जीवनकी एक अत्यन्त सफल जीवनसे तुलना करते हैं। हालके कुछ वर्षोंमें वह बड़े आग्रहसे यह प्रश्न पूछते रहें हैं कि कौन सी चीज़ है जो मनुष्यको सफल बनाती है और उसका पता लगानेके लिये वह बड़ी मेहनत और बारीकीसे सफलता के तत्वोंका विश्लेषण करते रहे हैं। इस प्रश्न का उत्तर यह जान पड़ता है कि सफल सीखने वाला ही सफल मनुष्य होता है। चाहे प्रारम्भमें वह कितना ही कच्चा या अयोग्य हो, पर वह अपनेको अनुशासित और सुव्यवस्थित कर लेता है, वह अपनेको गढ़ लेता है और अपनी शक्तियों को अपनी आवश्यकताओं के अनुरूप बना लेता है।

उदाहरण के लिए यह बात अच्छी तरह प्रमाणित हो चुकी है कि यदि एक मनुष्य का चुनाव किसी ऐसे पदके लिए करना हो जहाँसे आगे तरक्कीका अवसर हो तो उस उम्मेदवारसे कहीं ज्यादा आशा की जा सकती है जिसने अपनेको अच्छा सीखने वाला सिद्ध कर दिया है बनिस्बत एक दूसरे व्यक्तिके जो चुनावके समय उससे जानकारीमें श्रेष्ठ है पर जिसकी आदतें बिलकुल जमी हुई हैं और जिसमें नये-नये कामोंके प्रति साहस तथा उत्साहका अभाव है।

इसी तरह किसी संस्थामें नई भरती करनेके लिए जो लोग चुनाव करते हैं उनका ध्यान इस ओर नहीं रहता कि एक नवयुवकके पास कितना ज्ञान उन विशेष क्रियाओंका है जिनपर कि संस्थाका काम अवलम्बित है, बल्कि उनका झुकाव उन नवयुवकों की ओर रहता है जिन्होंने अच्छी सामान्य शिक्षा प्राप्त की है और तीव्र प्रतियोगितामें उत्तमतासे परीक्षायें पास की हैं। अनुभवसे यही सिद्ध होता है कि ऐसे लोग अधिकतर सीखने की योग्यता और तत्परता रखते हैं और स्वयं काम करने वाले होते हैं।

दुनिया में किसी भी क्षेत्रमें जो अनुभवी मनुष्य बड़ी ज़िम्मेदारियोंके काम करते हैं उन्हें जब अपने कार्यको चलानेके लिए सबसे उपयुक्त व्यक्तियों की आवश्यकता होती है तो वे उम्मेदवारोंमें सीखने की प्रमाणित योग्यता ही को सबसे आशाजनक अकेला चिन्ह समझते हैं। जिसने अब तक अपनेको एक उत्सुक और सफल सीखने वाला सिद्ध कर दिया है, उसीसे यह आशा की जा सकती है कि वह आगे चलकर भी नई बातें सीखकर नये प्रश्नों, नये कामों और नई परिस्थितियोंका मुक़ाबला सफलतासे कर सकेगा। यही सिद्धान्त मुक़ाबले की उन परीक्षाओंका आधार है जिनका परिचालन 'पब्लिक सर्विस कमीशन' सबसे ऊँची सार्वजनिक नौकरियोंमें भरती करनेके लिए करता है।

न केवल प्रारम्भिक जीवनोंका बल्कि पूरित जीवनों का भी प्रमाण इसी दिशामें संकेत करता है। जिस किसी

ने भी बड़ी सफलता प्राप्त की है वह पहलेसे ही बड़ा मनुष्य न था वरन् उसने अपनेको बड़ा बनाया। उसने अपनेमें परिवर्तन किया और अपने को विकसित किया। वह तेज़ और योग्य सीखने वाला था।

जब हम महापुरुषों की जीवनियोंपर दृष्टि डालते हैं और उनके अन्तको देखकर प्रारम्भको समझनेका प्रयत्न करते हैं तो और सब सत्योंसे अधिक वे इस सत्यको प्रमाणित करते जान पड़ते हैं कि बड़े लोग बड़े सीखने वाले हुए हैं। वे बड़े आदमी इसी कारण बने कि वे बड़े सीखने वाले थे, वे अपनी सीमाओंसे असन्तुष्ट थे, उन्होंने समस्याओं को लड़ाईके लिए ललकार या चुनौती समझा न कि एक हौआ, क्योंकि उन्होंने अपनी कमज़ोरियोंपर आक्रमण किया और उनपर विजय प्राप्त की। एक बड़े बुद्धिमान मनोविज्ञानाचार्यका, जिन्होंने वर्षों सफलताके अध्ययनमें लगाये, कहना है कि यदि एक मनुष्यमें काम करनेकी इच्छा और काम करनेकी शक्ति हो और तेज़ बुद्धि हो तो मैं परिस्थितियोंके किसी भी ऐसे संयोगकी कल्पना नहीं कर सकता जो उसको श्रेष्ठता तथा ख्याति प्राप्त करनेसे रोक सके।

कितनी ही योग्यतायें हैं जिन्हें आप हासिल करना चाहते होंगे—जैसे गणित, विज्ञान या अँग्रेज़ी भाषामें दक्षता प्राप्त करना, पत्र-पत्रिकाओंके लिए लेख लिखना, लोगोंके सामने भाषण देना, या 'ब्रिज' खेलना। पर आप भरसक प्रयत्न करने पर भी ऐसी मनोवांछित योग्यता प्राप्त करनेमें असमर्थ रहते हैं और आपको कदाचित् ऐसा जान पड़ता है कि आप इन सब सिद्धियोंके लिए बनाये ही नहीं गये।

जब मनोविज्ञानाचार्य आपको ऐसी उत्साहहीनताके बीच छटपटाते देखता है तो उसे दुःख और आश्चर्य होता है और वह अपने से कह उठता है कि इस व्यक्ति को क्या हो गया है? उसकी शिक्षा किस प्रकार की हुई है? कोई उसको यह विश्वास क्यों नहीं दिला देता कि वह सीख सकता है और सीखनेकी विधि उसे क्यों नहीं बता देता?

ये योग्यतायें एक सन्तोषजनक और सफल मात्रामें प्राप्त करनेके लिए यह आवश्यक नहीं कि आप और सब कुछ त्याग दें और प्रति दिन सोलह घण्टे परिश्रम करें। अगर सीखनेका काम उचित ढंगसे किया जाय तो थोड़ीसी मेहनत और थोड़ेसे ही समयमें फल मिल सकता है। यह पिसाईका नहीं बल्कि बड़े मनोरञ्जनका काम है। आप अपने को स्वयंके साधनों पर अधिकार प्राप्त करते, अधिक तेज़ीसे चलते और शक्तिके उतने ही व्यय पर अधिक दूर तक सफ़र करते हुये पाते हैं। इससे अधिक मोह लेने वाली बात और क्या हो सकती है? मनोविज्ञानकी शिक्षा आपके लिए यह है कि अपनी मानसिक कार्य-क्षमताको बढ़ाइये अथवा अपनी शक्तियोंसे पूरा-पूरा लाभ उठाइये। मनोविज्ञान आपको सिखा सकता है कि यह कैसे किया जाय।

आप और हममें कदाचित् महान सफलता प्राप्त करने की योग्यता न हो। पर हमने जो ऊपर लिखा है वह समस्त सफलताका साँचा है। इससे हर प्रकार सफलता प्राप्त की जा सकती है। हममें से कितने हैं जो अपनेको पूरी तरहसे उपयोग नहीं करते। हममें से कितने उत्साहहीन रहते हैं और यह विश्वास करते हैं कि केवल एक शक्ति या गुणसे कुछ नहीं हो सकता और अपनी उस शक्तिको भी अकारथ जाने देते हैं। परन्तु जब तक हम अपनी शक्तियों को काममें न लगायें हमें यह मालूम ही कैसे पड़ सकता है कि हमारे पास कौनसी शक्तियाँ हैं। कमसे कम हम कुछ सफलता अवश्य प्राप्त कर सकते हैं। इसलिये हर विचारसे यह सलाह ठीक है कि आप अपने सीखने की योग्यता का प्रयोग कीजिये और उसे बढ़ाइये।

परन्तु क्या ऐसा करना सम्भव भी है? क्या मनुष्य हमेशा सीख सकता है? क्या यह सच नहीं कि सफलता और असफलता जन्म-प्रदत्त योग्यता की अधिकता या इसकी कमी पर ही निर्भर रहती है और इस सम्बन्धमें हम कुछ भी नहीं कर सकते।

क्या सीखनेमें समय और उद्योगका लगाना बुद्धिमानी है?

ये प्रश्न इतने उचित और महत्त्वपूर्ण हैं कि इनका उत्तर बड़ी सावधानीसे देना चाहिये। यहाँ इस बात पर ज़ोर देना होगा कि सीखने के बारे में हमारे जो विचार हैं वे

अटकलपच्चू नहीं हैं। मनोविज्ञानके पण्डितोंने बड़े परिश्रम से सहस्त्रों प्रयोग किये और तब कहीं वे अपने विचारों को स्थिर कर पाये। इन बातों को अधिकसे अधिक निश्चित रूप से प्रकट करनेके लिये हम यहाँ पर कुछ तथ्य ऐसे दिये देते हैं जो सीखनेके सम्बन्धमें किये गये वैज्ञानिक अध्ययन द्वारा भली-भाँति प्रमाणित हो चुके हैं।

(१) यह सच है कि लोगों की जन्म-प्राप्त योग्यताओं में असमानता रहती है। इससे तो शायद ही किसीको इनकार हो सके। एक मनुष्य के पास दूसरे की अपेक्षा अधिक प्राकृतिक मानसिक बल हो सकता है और यदि वह उसको सुचारु रूप से प्रयोग में लाये तो वह दूसरे की अपेक्षा आगे बढ़ जा सकता है। एक दस हॉर्स पावरकी मोटर गाड़ी कदापि उतनी अच्छी तरह नहीं चल सकती—अगर परिस्थितियाँ एकसी हों—जितना कि एक अस्सी हॉर्स पावर की गाड़ी। परन्तु ऐसी अवस्थामें क्या होगा जबकि छोटी गाड़ी तो भली-भाँति Stream Lined हो और बड़ी गाड़ी न हो! केवल इस बातसे कि कुछ लोगोंके पास आपसे अधिक मानसिक सम्पत्ति है आपको अपनी कोशिशमें ढिलाई कदापि न करनी चाहिये। बल्कि ऐसी अवस्था में तो आपको यह उचित है कि आप अपनी योग्यता और शक्ति के प्रत्येक कणसे पूरा-पूरा लाभ उठायें।

(२) सीखने के विषय पर जो हज़ारों प्रयोग किये गये हैं उनमें बहुत थोड़ोंमें ही ऐसा हुआ कि सीखनेसे कोई उन्नति देखनेमें न आई। अधिकतर में तो काफी तरक्की हुई। अगर कोई मनुष्य सीखने की कोशिश करता है तो वह कामयाब भी हो जाता है।

सीखने के उन कुल कार्यों की सूची देने का—जहाँ पर कि उन्नति की सम्भावना प्रमाणित हो चुकी है—अर्थ यह होगा कि प्रायः जितने भी प्रयोग किये गये हैं उन सभी का वर्णन किया जाय, जो एक असम्भव कार्य होगा। कुल प्रमाण जो मनोविज्ञान ने जमा किये हैं इस विषय में शब्द की कोई गुञ्जायश नहीं छोड़ते। इसलिये यदि कोई आपसे यह कहे या आपको स्वयं ही ऐसा सन्देह हो कि अमुक योग्यता सीखी नहीं जा सकती—चाहे वह खुशखत लिखाई या सही हिज्जे करना या किसी विदेशी भाषा में दक्षता प्राप्त करना या दूसरे मनुष्यों पर शासन करना या उनसे काम करवाना हो—तो आपको स्मरण रखना चाहिये कि विज्ञान ने जिन बातोंका पता लगाया है उनमें से प्रत्येक इसकी विपरीत दिशा में संकेत करती है।

(३) यद्यपि कोई मनुष्य एक कामको बहुत समयसे कर रहा हो और उसको अच्छी तरह करने लगा हो तो भी वह तरक्की कर सकता है। सन् १६०६ में दुनिया में टाइपराइटिंग की सबसे तेज़ गति ८२ शब्द प्रति मिनट थी और वह स्त्री जिसने इसको प्राप्त किया था कहती थी कि इससे आगे कोई न बढ़ सकेगा। मगर उसी स्त्री ने स्वयं अपनी गति को पहले ८७ और फिर ६५ शब्द प्रति मिनट कर दिया। और कुछ वर्ष हुये यह गति १४७ पर पहुँची। टाइप लगानेवाले, जो इस कामको वर्षोंसे कर रहे हैं और जिन्होंने अरसा हुआ तरक्की करनेको कौन कहे तरक्की की सम्भावना में विश्वास करना भी बन्द कर दिया, उनको जब विशेष शिक्षा दी गई तो उन्होंने थोड़ेही महीनोंमें अपने काम करनेकी गतिमें अद्भुत उन्नति कर दिखाई। सीखने के विषयमें की गई खोजोंमें सबसे विचित्र बात है स्थायी उन्नति की सम्भावना। सीखने की क्रियाके प्रमुख अन्वेषकों में से एक का कहना है कि जीवनके साधारण कामोंमें से अधिकांश में—जैसे नामों और चेहरोंका याद रखना, हाथसे लिखना, ज़बानी गणितके सवाल निकालना—हम पच्चीस से चालीस प्रतिशत तक आवश्यकतासे कम दक्ष हैं। आपको अपनेमें ऐसी अयोग्यता सहन करने की कोई ज़रूरत नहीं और न कोई ज़रूरत यह विश्वास करने की है कि आप अपनी योग्यता की सीमा तक पहुँच गये हैं।

(४) आप सीखनेकी विधिको भी सीख सकते हैं। निस्सन्देह आप उस मानसिक सम्पत्तिको नहीं बढ़ा सकते जो प्रकृतिने आपको प्रदान की है। यदि आपमें एक शक्ति है तो आप उसे पाँच नहीं बना सकते। परन्तु जो कुछ आपके पास है उसे आप इस्तेमाल कर सकते हैं, जहाँ ढिलाईहो उसे तान सकते हैं, गतिशक्तिको व्यर्थ जाने देनेसे रोक सकते हैं, जिस दिशामें जाना चाहें जा सकते हैं।

सीखना एक कला है, जिसमें सुबोध और विचारपूर्ण प्रयास द्वारा निपुणता प्राप्त की जा सकती है। यह निपुणता वास्तवमें प्राप्त करने योग्य है।

मानसिक दक्षताका रहस्य है सीखना, पर क्या सफल और तेज़ सीखनेकी कलाका भी कोई गुर है? क्या मनोविज्ञान इस सम्बन्धमें हमारी कोई सहायता कर सकता है?

दुहराना सीखनेका कारण नहीं

आज कलके मनोविज्ञानकी खोजोंके विचित्र नतीजोंके फलस्वरूप यह विश्वास दृढ़ होता जा रहा है कि केवल दुहराना शिक्षा या सीखनेका कारण नहीं। अगर कोई आदमी कोई नई विद्या या कला सीखना चाहता है या किसी जानी हुई विद्या अथवा कलामें उन्नति करना चाहता है तो वह केवल बहुतसे अभ्यास पर ही निर्भर नहीं रह सकता। किसी चीज़ पर अधिकार पानेका सबसे अचूक और जल्दीका तरीका यह नहीं है कि उसको बार-बार किया जाय या दुहराया जाय। सच तो यह है कि अगर कोई व्यक्ति इतना ही करता है तो कदाचित् वह वांछित दक्षता कभी न प्राप्त कर सके।

यह आपने अक्सर सुना होगा कि अभ्यास प्रवीण बनाता है। सुननेमें यह कथन कितना युक्तिपूर्ण और सच मालूम होता है और कितनी आसानीसे हम इसे स्वीकार भी कर लेते हैं। अगर अपने हाथकी लिखावटको और ख़ुशख़त बनाना चाहते हैं तो बहुतसा लिखिये; अगर आप मौखिक अंकगणित या मोटरकार चलाने या टाइप करनेमें निपुणता प्राप्त करना चाहते हैं तो इन कामोंको निरन्तर करते चले जाइये। अगर आप सुयोग्य वक्ता बनना चाहते हैं तो भाषण पर भाषण दिये जाइये। इससे अधिक बुद्धिमानीकी सलाह भला और क्या हो सकती है?

किन्तु यदि आप ज़रा विचारपूर्वक देखें और अभ्यास तथा दुहरानेके फलोंकी जाँच करें, जैसा मनोवैज्ञानिक कहते हैं, तो कुछ अनोखी कठिनाइयाँ सामने आने लगती हैं। उदाहरणार्थ यह स्पष्ट ही है कि एक व्यक्ति किसी क्रियाको हज़ार बार दुहरा सकता है पर सम्भव है कि वह फिर भी कोई उन्नति न कर पावे। बहुतसा चल लेने पर भी सम्भव है कि अधिक अच्छे चलने वाले न बन पावें यद्यपि आपके चलनेकी निपुणता निस्सन्देह बढ़ाई जा सकती है। आप एक मोटरकारको हज़ारों मील चलाते हैं फिर भी कुछ त्रुटियाँ आपमें रह ही जातीं हैं। इसी प्रकार ज्यादा लिखनेसे हाथकी लिखावट सुधरती नहीं बल्कि और भी ख़राब हो जाती है।

इसमें सन्देह नहीं कि किसी कामको बार-बार करके कोई आदमी उसे करनेकी दक्षतामें सुधारकी आशा नहीं रख सकता। यह बात देखनेमें ग़लत जान पड़ती है पर वास्तवमें है बिल्कुल सत्य। कितने ही प्रयोगोंसे यह सिद्ध हो चुका है कि हम लोग वह चीज़ सीखते हैं जिसे नहीं दुहराते बल्कि ज्यादा ठीक तो यह कहना होगा कि उस चीज़को नहीं सीखते जिसे बार-बार दुहराते हैं। यही बात दैनिक जीवनके अनुभवसे भी प्रकट होती है। सीखनेकी किसी क्रियाकी जाँच कीजिये तो देखेंगे कि आपके असफल प्रयत्न सफल प्रयत्नोंकी अपेक्षा गिनतीमें कहीं अधिक हैं तो फिर आपने सफल अथवा सही विधि कैसे सीख ली बजाय ग़लत तरीक़े के? बच्चा जब अपने पैरों पर खड़ा होकर चलना सीखने की कोशिश करता है तो वह बारम्बार गिर पड़ता है मगर क्या वह इन प्रयत्नोंसे गिर पड़नेमें निपुणता प्राप्त कर लेता है? नहीं! वह गिरना नहीं सीखता बल्कि गिरनेका उलटा। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि हम केवल वही बात नहीं सीख लेते जिसे दुहराते हैं। अथवा दुहराना या अनुशीलन सीखनेका कारण नहीं है। सच तो यह है कि यह विचार ही भ्रमपूर्ण है कि दुहरानेसे कोई चीज़ सीखी जा सकती है क्योंकि जब हम किसी नई चीज़को सीखना आरम्भ करते हैं—जब हम उस कामको बिलकुल ही नहीं कर सकते तो ऐसी दशामें हम दुहरायेंगे क्या?

एक और भी बात है कि जब आप किसी कला या निपुणताको सीख लेते हैं। तो क्या इसका अर्थ यह है कि आप केवल उन्हीं बातोंको सफलतापूर्वक कर सकते हैं जिन्हें आपने सीखते समय बार-बार दुहराया था। जब आप यह कहते हैं कि आप मोटरकार चलाना जानते हैं तो आपका मतलब यह कदापि नहीं होता कि आप एक विशेष गाड़ीको

उसी रफ़्तारसे और इन्हीं सड़कों पर चला सकते हैं जहाँ कि आपने उस मोटरको चलाना सीखा था। जब आप यह कहते हैं कि आपने अङ्कगणितमें दक्षता प्राप्त कर ली है तो इसका यह तात्पर्य हरगिज़ नहीं होता कि आप उन्हीं प्रश्नों को हल कर सकते हैं, जिन्हें पहले आप बार-बार लगा चुके हैं। ऐसी निपुणतायें सीखनेका गुरु केवल दुहराना या अभ्यास करना नहीं।

इच्छा-शक्ति ही सीखने का कारण है

हमने यह तो ऊपर देख लिया कि क्या चीज़ सीखने का कारण नहीं है। आइये अब ध्यान उस बात की ओर लगायें जो कि वास्तवमें सीखने का कारण है। यहाँ हमें यह देखना है कि भली-भाँति सीखनेके लिये क्या करना चाहिए। मनोविज्ञानने इस विषयमें बहुतसे प्रमाण इकट्ठे किये हैं जिनसे यह पता चलता है कि सीखने वाले की इच्छाशक्ति (Will) अथवा संकल्प ही इस बात का निर्णय करता है कि वह सीखता है या नहीं और यदि सीखता है तो कितनी अच्छी तरहसे सीखता है और क्या सीखता है। मनोवैज्ञानिक प्रयोगोंके कुछ मनोरंजक परिणाम नीचे दिये जाते हैं।

(१) दो मनोविज्ञानाचार्योंने कुछ निरर्थक शब्दों की सूचियोंके समूहों को रटना शुरू किया। जब उन्होंने शब्दों को शीघ्रातिशीघ्र याद करने पर मन को लगाया तब याद करनेके लिये उनमेंसे एक को औसतन नौ बार और दूसरे को तेरह बार दुहराना पड़ा। पर जब वे केवल उन शब्दों को बिना किसी विशेष उद्देश्यके पढ़ते गये तब एक को औसतन ८६ और दूसरे को १०० बार पढ़ना पड़ा। इतना बड़ा अन्तर केवल सीखने की इच्छा-शक्ति की उपस्थिति अथवा अनुपस्थितिसे हो गया।

(२) कालेजके कुछ लड़कोंके सामने श्यामपट पर अँगरेज़ीके कुछ शब्द लिखे गये और उनसे कहा गया कि उनको काग़ज़ पर नक़ल कर लें। बादमें बिना किसी चेतावनीके उनसे कहा गया कि वे अपने लिखे को ढक कर उन्हीं शब्दों को अपनी यादसे लिख डालें। कुछ दिनोंके बाद यही प्रयोग नये शब्दोंके साथ दुहराया गया पर इस बार लड़कोंसे पहले ही बता दिया गया कि उन्हें बादमें शब्दों को अपनी यादसे लिखना पड़ेगा। दोनों प्रयोगोंमें केवल इतना ही अन्तर था। मगर दूसरी परीक्षा में विद्यार्थियों को ३० प्रतिशत अधिक शब्द याद निकले। केवल उद्देश्यके मौजूद होनेके कारण याद करने की सारी क्रिया ज्यादा गुणकारी बन गई।

(३) दो समुदायों को निरर्थक शब्दांशोंके याद करने का काम दिया गया। एक समुदाय को आज्ञा दी गई कि उन्हें याद करनेके बाद तुरन्त ही उन निरर्थक शब्दांशों को सुनाना पड़ेगा। दूसरे समुदाय को यह बताया गया कि उन्हें उस सामग्री को दो सप्ताहके बाद स्मृतिसे सुनाना होगा। याद करने बाद तुरन्त दोनों समुदायों की परीक्षा ली गई तो मुश्किलसे कोई फ़र्क़ मिला। मगर दो हफ्ता बाद फिर जब उन दोनोंकी जाँच की गई तो दूसरे समुदायको २० प्रतिशतसे भी ऊपर शब्दांश अधिक याद निकले। दोनोंने एक समान आरम्भ किया था। लेकिन उद्देश्यमें अन्तर होनेके कारण उनकी मानसिक क्रियायें विभिन्न रूपोंमें व्यवस्थित हो गईं और उन्होंने समय बीतने पर पृथक-पृथक फलोंको पैदा किया।

ऊपर स्मृति सम्बन्धी तीन बड़े चित्ताकर्षक प्रयोगोंका वर्णन किया गया है जिनसे सीखनेकी सफलता पर सीखनेके संकल्पका बड़ा प्रभाव स्पष्ट हो जाता है। बहुतसे और प्रयोग किये गये हैं जिनका दूसरे प्रकारके सीखनेसे सम्बन्ध है तथा उनका नतीजा भी ऐसा ही निकला। तार सीखनेके सम्बन्ध में कुछ ऐसे लोगों पर प्रयोग किया गया जो बीस-बीस वर्षसे तारका काम कर रहे थे, मगर छोटे ही तार घरोंमें रखे गये थे क्योंकि वे तारकी मुख्य लाइनोंकी कमसे कम गतिको कभी प्राप्त ही न कर सके थे। इन सबको यह विश्वास था कि वे अपने काममें कभी तरक्की न कर सकेंगे क्योंकि उनके भाग्य ही में यही लिखा था। मगर ज्योंही इनको मनोविज्ञानियोंके सुपुर्द करके प्रयोगशालाके अन्दर जबर्दस्त उत्तेजन और प्रोत्साहनके नीचे रखा गया उन सबने उन्नति करना आरम्भ कर दिया।

हाल ही में एक मनोविज्ञानाचार्यने दो समुदायोंको

अँग्रेज़ी के छोटे ए (a) अक्षरको बार-बार शीघ्रतासे और ठीक-ठीक लिखनेका अभ्यास करनेके काम पर लगाया। दोनों समुदायोंने उस कार्यको ७५ बार किया मगर उनमेंसे एकको, थोड़े-थोड़े समय पर यह बता कर कि काम कितनी अच्छाईसे हो रहा है, विशेष रूपसे उत्तेजित किया गया। दूसरा समुदाय लिखाईको बार-बार दुहराता रहा पर बग़ैर अपनी उन्नतिको जाने। दोनोंमें से उत्तेजित किये हुये समुदायका काम बहुत अच्छा रहा।

पहेलियों और प्रश्नोंको हल करना सीखनेकी क्रियायोंके जो बहुतसे अध्ययन किये गये हैं वे सब इसी नतीजे पर पहुँचाते हैं कि सफल, प्रभावशाली और तीव्र प्रगतिमें सीखने वालेकी उन प्रश्नों पर आक्रमण करनेकी सक्रिय भावना बड़ी सहायक होती है।

देखनेमें आया है कि काफ़ी उम्र वालों ने भी, न कि बच्चों ने जिन्हें आगे बहुत-सी तरक्की करनी बाक़ी है, अपने पढ़नेकी गतिको छः ही हफ्तोंमें दुगने तक बढ़ा लिया और ऐसा करनेकी सबसे महत्वपूर्ण शर्त थी केवल एक विचारपूर्ण उद्देश्यका होना या उस फलको प्राप्त करनेके के लिये एक तीव्र और लक्षित आकांक्षाका रखना।

कोई भी व्यक्ति जाग्रत और विचारपूर्ण संकल्प द्वारा अपनी कार्यक्षमतामें बड़ी वृद्धि कर सकता है। एक अनजान मनुष्यसे आपका परिचय कराया जाता है और आपको उसका नाम बतलाया जाता है। अगर आप उसे याद कर लेना चाहते हैं और उसके चेहरेसे नामका सम्बन्ध स्थापित करना चाहते हैं जिससे फिर कभी मिलने पर चेहरा देखकर नाम याद आ जाय तो ऐसा करनेके लिये ध्यानपूर्वक और सचेत प्रयत्न कीजिये। आपको एक नया काम मिला है और उसे सफलतापूर्वक करनेके लिए एक ऐसी विद्या या निपुणता सीखनेकी आवश्यकता है जिसे आप इस समय नहीं जानते। बड़े एकाग्र मनसे उसे प्राप्त करनेका उद्योग कीजिये, क्योंकि ऐसा करना सफलताका आधार बनेगा।

सीखनेके प्रति एक आक्रमणात्मक संकल्प का अभाव ही शायद अपूर्ण और असफल सीखनेका सबसे बड़ा कारण है। इसी वजहसे हम बहुतसे कामोंको बार-बार करते रहने पर भी पहलेकी अपेक्षा अच्छे ढङ्गसे नहीं कर पाते। हमारा इशारा उन चीजोंकी तरफ़ है जैसे हाथकी लिखावट, शब्दों के हिज्जे, नाम और चेहरोंको याद रखना इत्यादि जिन्हें लोग हज़ारों बार करकेभी सफलतासे नहीं कर पाते। अगर आप किसी क्रियाको बिना किसी विचार या इरादेके कर डालते हैं तो उसका असर चिकने घड़े पर पानीकी बूँदका सा होता है और आपकी कोई उन्नति नहीं होती। पर ज्यों ही आप यह मान लेते हैं कि वह क्रिया सीखनेके वास्ते एक चुनौती है और उसको पहलेसे अधिक सुचारु रूपसे करनेका बीड़ा उठा लेते हैं त्यों ही आपके करनेके ढङ्गमें सुधार होने लगता है। तरक्की जभी हो सकती है जब सीखनेके लिये दृढ़ संकल्प हो। अगर कोई व्यक्ति किसीको सिर्फ बार-बार करता रहता है पर उसे पहले की अपेक्षा अच्छे ढङ्गसे करनेकी कोई सक्रिय कामना नहीं रखता, तो वह सीख नहीं सकता। आपको चाहिये कि हरेक कामको सीखनेके लिये एक चुनौती समझ कर करें चाहे उसका सम्बन्ध आपके कारोबारसे हो, अथवा खेल-कूदसे अथवा सामाजिक व्यापार से हो।

इच्छा और इच्छा शक्ति

अब यह देखना चाहिए कि सीखनेके लिए इच्छा शक्ति (Will) और दृढ़ संकल्प (Will to learn) का ठीक ठीक अर्थ क्या है। पहली बात जो हमें अच्छी तरह समझ लेनी चाहिए वह यह है कि सीखनेकी इच्छा और सीखने की इच्छा शक्ति तथा सीखनेके लिए दृढ़ संकल्पमें बड़ा अन्तर है। पहली तो सुधार या उन्नति करनेके लिए एक प्रकारकी साधारण अभिलाषा है और दूसरी उस अभिलाषा के लिए साहसपूर्ण और सक्रिय प्रयत्न है। सीखनेकी इच्छा बिखरी हुई और सामान्य होती है। सीखनेकी इच्छा शक्ति केन्द्रीय और निश्चित वस्तु है। सीखनेकी इच्छाका अर्थ यह होता है कि हम एक क्रियाको बार-बार दुहराते जाते हैं और यह आशा करते जाते हैं कि उससे कुछ नफ़ा होगा। सीखनेकी इच्छा शक्तिका अर्थ यह है कि हम छान-बीन और विश्लेषण करते हैं और इस बातका ठीक-ठीक पता लगाने की चेष्टा करते हैं कि क्या गड़बड़ी या कमी रह गई है और उसको कैसे सुधारा जा सकता है। (अपूर्ण)

विज्ञान-भाष्य पर पुरस्कार और पदक

हमें यह जानकर बड़ी प्रसन्नता हुई कि इस वर्ष काशी नागरी प्रचारिणी सभा ने अपना छन्नूलाल पुरस्कार और रेडिचे पदक श्रीयुत बाबू महाबीर प्रसाद जी श्रीवास्तव को उनके सूर्य-सिद्धांत के विज्ञान-भाष्य नामक ग्रंथ पर प्रदान किया है। यह सब प्रकार से संतोषजनक है। हाल में प्रकाशित हुए वैज्ञानिक हिंदी ग्रंथों में "विज्ञान भाष्य" अत्यंत महत्वपूर्ण है, इसमें संदेह नहीं। इस अवसर पर हम बाबू महाबीर प्रसाद जी को बधाई देते हैं और आशा करते हैं कि वे भविष्य में भी अपने अमूल्य ज्ञान को अन्य ज्योतिष-ग्रंथों की हिंदी व्याख्या करने में लगाकर हिंदी प्रेमी जनता की ऐसी ही उच्च कोटि की सेवा करते रहेंगे।

इस पुरस्कार से हमें विशेष संतोष इस बात पर है कि "विज्ञान-भाष्य" का अधिकांश हमारे इसी "विज्ञान' में क्रमशः छप चुका है और विज्ञान-भाष्य का प्रकाशक है विज्ञान-परिषद, प्रयाग।

—संपादक

समालोचनाएँ

(१) **मेडिकल प्रैक्टिशनर**—लेखक और प्रकाशक डाक्टर उमर मान जी चौहान, एल० सी० पी० एस०, एच० एम० बी०, आदि। डबल क्राउन १६ पेजी। ४०० पृष्ठ, दफ्ती की जिल्द, मूल्य ५)

(२) **कंपाउंडर्स हैंडबुक**—लेखक और प्रकाशक वही। डबल क्राउन १६ पेजी। ३१२ पृष्ठ, दफ्ती की जिल्द। मूल्य ५)

दोनों पुस्तकें विषय के दृष्टिकोण से अच्छी हैं, परंतु भाषा के दृष्टिकोण से भ्रष्ट हैं। कारण यह है कि हिंदी पर लेखक का विशेष अधिकार नहीं है। ये पुस्तकें गुजराती में भी छपी हैं, जो लेखक की मातृभाषा है। यदि लेखक किसी हिंदी के ज्ञाता से अनुवाद करा लेता तो अधिक उत्तम होता।

ये दोनों पुस्तकें कम्पाउंडरों केलिए विशेष उपयोगी होंगी। ये गृहस्थों के काम की भी सिद्ध हो सकती हैं, परंतु अधिकांश भाग उनके काम का नहीं है। ये पुस्तकें डाक्टर के लिए शायद ही उपयोगी हों, क्योंकि इनमें विषय का इतना ब्योरेवार वर्णन नहीं है जितना डाक्टरों के लिए आवश्यक होता है। कई अध्याय दोनों पुस्तकों में ठीक एक से हैं।

मेडिकल प्रैक्टिशनर के अध्यायों के विषय ये हैं—सरल शरीर-रचना, रोग परीक्षा, नुसखों के अनुसार दवाएँ बनाना, घाव आदि की चिकित्सा और पट्टी बाँधना, आकस्मिक घटनाएँ, इनजेक्शन, पेटेंट दवाएँ, आयुर्वेदिक औषधें, शस्त्र, प्रयोग, प्रसूति-विज्ञान, कानूनी डाक्टरी, उपयोगी बातें। इससे पाठक देख सकेंगे कि इस पुस्तक में सभी बातों पर थोड़ा-बहुत विवेचन है।

स्वर्गीय श्री ब्रजराज जी

रविवार ता० १ अप्रैल के दोपहर में अचानक यह सुनकर कि श्री ब्रजराज जी का देहावसान गत रात्रि को १ बजे के लगभग हो गया हृदय को बड़ा धक्का लगा। ब्रजराज जी विज्ञान परिषद् की स्थापना के समय से इसके सभ्य रहे हैं और मंत्री, कोषाध्यक्ष तथा अंतरंगी के पदों से इसकी अनेक सेवाएँ की हैं। कई वर्ष तक 'विज्ञान' का सम्पादन भी बड़ी योग्यता से किया था। मृत्यु से लगभग दो सप्ताह पूर्व जब इन पंक्तियों का लेखक उनको देखने गया था तब बोलने की शक्ति क्षीण होने पर भी अपने पुत्र के कान में कहकर परिषद् की ही बातें बराबर पूछते रहे। आप हिन्दी के बड़े भक्त थे और आरंभ में परीक्षा मंत्री के पद से हिन्दी साहित्य सम्मेलन की भी बहुत सेवा की है। उनके अचानक मृत्यु से हमें बड़ा दुःख है। ईश्वर से प्रार्थना है कि उनकी आत्मा को शान्ति तथा उनके दुःखी परिवार को दुःख सहने की शक्ति प्रदान करे। श्री ब्रजराज जी की आयु लगभग ५६ वर्ष की थी। हम उनके बूढ़े माता-पिता, धर्मपत्नी, उनके पुत्र—डाक्टर सिद्धार्थ तथा अन्य पुत्र-पुत्रियों से समवेदना प्रकट करते हैं।

महाबीर प्रसाद श्रीवास्तव,
प्रधान मंत्री

प्रयागकी विज्ञान-परिषद्का मुखपत्र

प्रधान सम्पादक

डाक्टर गोरखप्रसाद, डी० एस-सी० (एडिन०)

विशेष सम्पादक

डाक्टर श्रीरंजन
डाक्टर सत्यप्रकाश
डाक्टर रामशरणदास
डाक्टर विशम्भरनाथ श्रीवास्तव
श्री श्रीचरण वर्मा
स्वामी हरिशरणानंद

भाग ५८

अक्टूबर १९४३—मार्च १९४४

प्रकाशक

विज्ञान-परिषद्, इलाहाबाद

अनुक्रमणिका

विज्ञान, भाग ५८

इंजिनियरिंग

उपयोगी कलाएँ

गणित और ज्योतिष

चिकित्सा शास्त्र

जंतुविज्ञान

भौतिक विज्ञान

मनोविज्ञान

रसायन

वनस्पति शास्त्र

विविध

विज्ञानं ब्रह्मेति व्याजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते।
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति ॥ तै० उ० ।३।५।

भाग ५९ | कुंभ, सम्वत् २००१ । अप्रैल १९४४ | संख्या १

खदिर

[श्री रामेशबेदी, आयुर्वेदालंकार]

निम्न हिमालय मार्ग (sub-Himalayan tracts) में खदिर उन स्थानों पर होता है जहाँ वर्षा २५ से १८० इञ्च तक होती है। सिन्धसे पूर्व की ओर निम्न-हिमालय पथ की घाटियोंमें तीन हज़ार फ़ीट तक, अरावली पहाड़ों और पश्चिमीय प्रायद्वीप (western peninsula) में खैर आम उगता है।

मध्य प्रान्तमें यह विलासपुर, चाँदा और रामपुरके जङ्गलों में बहुत होता है। आश्चर्य है कि रामपुरके देशीय निवासी (natives) इसकी उपयोगिता से अपरिचित हैं, जहाँ तक ज्ञात हुआ है वहाँ कथा निकालने का अभी प्रयत्न नही किया गया। गोण्डा, अवधमें यह बहुतायतमें है। ऊपर गोदावरीके जङ्गलों में भी छोटा नागपुरके जङ्गलों से उत्तर-पश्चिम प्रान्तों की ओर फैलता गया है। मध्य-प्रान्त और दूसरे स्थानों पर यह खुले घासके मैदानोंमें और शुष्क टाइपके सागौन जङ्गलोंमें और सागौन-शून्य जङ्गलोंमें भी यह आम है। इसके साथ असन, हरड़, लाजेस्ट्रोमिया पैर्विफोलिया (Lagestromia parvifolia) बेर, बिल्व, ढाक, कुटज, आंवला, बांस तथा अनेक दूसरे वृक्ष उगते हैं। छोटा नागपुरमें न केवल शुष्क जंगलोंमें पर बहुधा साल के साथ मिला हुआ भी होता है। मध्य भारत और राजपूताना के शुष्क जंगलोंमें होता है। मारवाड़में बहुत होता है।

बॉम्बे प्रेसिडेन्सीमें यह अहमदाबाद, भरुच, पञ्चमहाल, सूरत और बड़ौदामें बहुत बहुतायतमें होता है। बॉम्बे; गुजरात, दक्षिण और दक्षिण महाराष्ट्रमें खुले शुष्क कण्टकित जंगलोंमें पाया जाता है।

उत्तर केनरा और कोंकणमें होता है। मद्रासमें यह अमलतास, बेर, चन्दन तथा दूसरे वृक्षों के साथ बहुत उगता है।

अपर बर्माके शुष्क प्रदेशों में खैर बहुत साधारण वृक्षों में से है। वहाँ विशुद्ध रूपमें यह नदियों के पास रेतीली ज़मीनपर और कुछ अंशमें नदियोंसे दूर शुष्क भूमिमें

होता है। इस शुष्क प्रदेश में, जहाँ वर्षा तेईस से चालीस इञ्च तक भिन्न-भिन्न होती है और भूमि प्रायः निर्बल और उथली होती है, वृक्ष छोटे आकार के होते हैं। बर्मा में ६५ इञ्च से अधिक वर्षा होने वाले प्रदेश में नहीं होता। इस प्रकार की बहुत अधिक आर्द्र जगहोंको छोड़कर बर्मा और स्यामके अधिक भागों में मिलता है।

वानस्पतिक वर्णन

एक मध्यमाकार सामयिक वृक्ष है। शाखाएं पतली, कण्टकित, स्निग्ध, चमकदार और रंग में भूरी या जामनी होती है। शाखाओंपर थोड़े मुड़े हुये और दबे हुये काँटे युगलमें होते हैं। छाल ०.४ से ०.५ इञ्च मोटी, गहरी भूरी या भूरी सी धूसर (greyish brown) खुरदरी, अन्दर से धूसर और लाल लम्बी पतली परतोंमें स्वयं उतरती रहती है और प्रायः काण्डके साथ लटकी होती है। बाह्य काष्ठ (sapwood) पीताभ श्वेत, अन्तर्दारु (heart wood) गहरी या हल्की लाल, बहुत सख्त और टिकाऊ होती है।

फूल सफेद या पीत पिंगल वर्ण और सवृन्त (peduncled) होते हैं। "खैर का जो फूल प्रत्यक्ष में हम देखते हैं वह एक फूल नहीं है अपितु अनेक छोटे-छोटे फूलों का समूह है। पुष्प दल (petals) पुष्प छद (calyx) की अपेक्षा तीन गुनी लम्बी होती है। पत्तों में साठ से सौ तक छोटी-छोटी पत्तियाँ (leaflets) होती है।

ग्रीष्म ऋतुमें वृक्ष कुछ समयके लिये पत्रविहीन हो जाता है। उत्तर भारतमें लगभग फरवरीमें पत्ते गिर पड़ते हैं। नये पत्ते अप्रैलके अन्तमें या मईमें निकल आते हैं। जून तक खैर जङ्गल नये कोमल हरे पंख सदृश (feathery) पत्ते प्राप्त कर लेते हैं और तब ये सुन्दर दीखते हैं। नयी शाखाओंके अन्तमें २ से ३.५ इञ्च लम्बे श्वेताभ पुष्प स्तबक (flowering spike) नये पत्तोंके साथ पत्तोंके अक्षों (axils) में निकलते हुये वृक्षों की शोभा बढ़ा देते हैं। वृक्ष जुलाई या अगस्त कभी-कभी और अधिक देर तक फूलमें रहता है। फलियाँ जल्दी ही बन जाती हैं और सितम्बर या अक्तूबर तक पूरे आकार की हो जाती हैं और हरेसे रक्ताभ हरित और फिर मटियालेसे रङ्गमें बदलने लगती हैं। नवम्बर की समाप्ति तक ये पकना आरम्भ होती हैं और दिसम्बर तथा जनवरी के पहले हिस्से तक पकती रहती हैं। फलियाँ दोसे चार इञ्च तक लम्बी, ०.४ – ०.६ इञ्च चौड़ी, सीधी, चपटी, गहरी भूरी, चमकदार, फट जाने वाली (dehiscent) प्रायः तीनसे छः बीजों वाली होती हैं। बीज ०.२५ – ०.३५″ × ०.२ – ०.३ इञ्च चौड़ाई लिये अण्डाकृति (ovate) या वर्तुल (oibicular), हरे रङ्गकी आभा लिए मूड़े धूसर रङ्गके, चिकने, चमकदार, कुछ होते हैं। इनके ऊपर कठोर छिलका (testa) होता है जो पानीमें भिगोने पर मृदु और लचकीला हो जाता है। लगभग सौ बीजोंका भार एक औंस होता है।

फलियाँ (pods) पकनेके बाद शीघ्र ही फट जाती हैं और जनवरीमें गिरना आरम्भ करती हैं तथा कुछ महीनों तक गिरती रहती हैं। बीज फलियोंके साथ रहते हैं और बादमें हल्के हो जाकर वृक्षसे काफी दूर उड़ा दिये जाते हैं। इस प्रकार बीजका प्रकृतिमें फैलाव (dissemination) होता है। नदियोंके आसपास बीजोंका फैलाव इसके बाद भी पानी द्वारा किया जाता है। कई फलियाँ वृक्षपर आगामी अक्टूबर तक रहती हैं। यद्यपि इस समय तक बीज कीड़ोंसे खाया जाकर निकम्मा हो जाता है।

सामान्यतया वृक्ष हर साल काफी बीज देता है। बीज इकट्ठा करनेके लिए दिसम्बर या प्रारम्भिक जनवरीमें वृक्ष परसे फलियाँ तोड़ ली जानी चाहिए और कुछ दिन उन्हें धूपमें फैला देना चाहिए। बीज फलियोंके किनारोंके साथ जोरसे चिपके होते हैं। उनको अलग करनेके लिए आवश्यक है कि फलियोंके ढेरको एक बड़े कपड़ेमें डालकर छड़ियोंसे अच्छी तरह पीटा जाय। उसके बाद छाजसे बीज अलग किये जा सकते हैं।

सरल-विज्ञान-सागर

अपनी योजनाके अनुसार हम यहाँ एक अङ्क और देते हैं।

सामान तनिक असावधानीसे रख दिया कि उसका कुशल नहीं है। यह बात विशेषकर उन्हीं स्थानोंपर होती है जहाँ दीमकोंकी भरमार होती है।

ऊनी कपड़ों और स्निग्ध पदार्थोंके कीड़े

दीमककी भाँति किसारी-पतंग (टेनी पेलिओनेला) भी सूती और ऊनी वस्त्रोंको खाकर नष्ट कर देती है। किसारीकी एक अन्य जातिका कीड़ा ऊनी कालीनको नष्ट करता है। ग्रीज़-माथ चर्बी, मक्खन आदि स्निग्ध पदार्थोंको बरबाद करती हैं।

कठफोड़े कीड़े

दीमकके अतिरिक्त और भी अनेकों ऐसे कीड़े हैं जो मकानोंमें लगी हुई अथवा रखी हुई लकड़ीको विशेष क्षति पहुँचाते हैं। परंतु उन सबका ब्यौरेवार वर्णन रोचक न होगा। केवल एक जीव देखने योग्य है।

भारतवर्षमें एक मक्खी पायी जाती है जिसे बढ़ई-मक्खी कहते हैं। देखनेमें तो यह बड़ी भली मालूम होती है किन्तु कर्म इसके अत्यंत क्षुद्र होते हैं। घरोंकी धरनी और काठ-कबाड़की लकड़ीसे यह अपने बच्चोंके रहनेके लिये छोटी-छोटी कोठरियाँ बनाकर उन्हींमें अंडे देती है। कोठरियोंके मुँह बन्द करनेके लिये यह लकड़ीके छोटे-छोटे टुकड़ोंको काटकर लगाती है। इन टुकड़ोंको मक्खी अपने लसदार थूकसे सटा देती है। कोठरीके भीतर जब बच्चे बड़े हो जाते हैं तो वे उनकी दीवारोंको काटकर बाहर निकल आते हैं।

भौंरा भी हमारे मकानकी लकड़ीको बहुत हानि पहुँचाता है।

झींगुर, घुन और आटेके कीड़े

झींगुर, घुन और आटेके कीड़ोंकी काली करतूतें भी हमारे पाठकोंसे छिपी नहीं हैं। झींगुर कागज, फल और आटेसे अपना भरण-पोषण करते हैं। इनके मुँहसे एक लसदार पदार्थ निकलता है जिसके लगनेसे खाने-पीनेकी वस्तुएँ खराब हो जाती हैं। घुन और आटेके कीड़ोंने महायुद्धके अवसरपर भोजनकी सामग्रीको इस वेगसे बरबाद किया था कि यदि कहीं कुछ दिन और युद्ध जारी रहता तो युद्धके परिणामके निर्णयकर्त्ता यही कीड़े होते।

प्रकृतिने कीड़े-मकोड़ोंकी सृष्टि क्यों की ?

कीड़ोंके इस संक्षिप्त विवरणसे पाठकोंको स्पष्ट रूपसे यह विदित हो गया होगा कि कीट-वर्गके अधिकतर प्राणी मनुष्य जातिको हानि ही पहुँचाते हैं। मधु-मक्खिका, लाह, रेशम आदिके लाभदायक कीड़ोंकी उपादेयता हानिकारक कीड़ोंकी तुलनामें कुछ भी नहीं ठहरती है। सचमुच यह दैव-दुर्विपाक ही है कि कीड़ोंके समान समर्थ और सुव्यवस्थित प्राणी-समूह मानव-समाजके लिये हानिकारक हो।

मकड़ी और उनका कार्य

संसारके जीवोंमें मकड़ीका वर्गीकरण उस समूहमें किया जा सकता है जिससे मनुष्य जातिको लाभ पहुँचता है। यदि मकड़ी इस विशाल संख्यामें उन कीड़े-मकोड़ों का संहार न करे जो मनुष्यकी कृषिको एवं अन्य प्रकारसे हानिकारक हैं तो उनकी सम्पूर्ण वृद्धिसे जितनी हानि होनेकी सम्भावना है उसका अनुमान नहीं किया जा सकता। मकड़ियाँ दो प्रकारका सूत बनाती हैं। एक तो वह जिससे वे अपना जाल बुनती हैं। यह कुछ कमजोर होता है। दूसरे प्रकारका सूत ककूनका होता है जो अत्यन्त शक्तिशाली होता है और, अनुमान किया गया था, रेशमके कीड़ों द्वारा निर्माण किये हुए रेशमके स्थानपर प्रयोग किया जा सकता है; एवं कुछ वस्त्र भी उसके बनाये गये, किंतु वह हर प्रकारसे असली रेशमसे घटिया प्रमाणित हुआ। इसके अतिरिक्त रेशमके कीड़े सरलतापूर्वक पाले जा सकते हैं, किन्तु चंचल प्रकृति होनेके कारण मकड़ीको बन्द करके रखना असम्भव सा ज्ञात हुआ, जो रेशमके कार्यालयके लिये अत्यन्त आवश्यक है।

मकड़ीकी अनेक जातियाँ हैं। प्रत्येकका रहन-सहन एक दूसरेसे भिन्न होता है; उनके नाम जाल भी बुननेके ढंगपर रखे जाते हैं, जैसे—कूदनेवाली, फंदेदार, पक्षी-भक्षक, भेड़िया एवं केकड़ा मकड़ी आदि। समस्त मकड़ी जातिमें पक्षी-भक्षक मकड़ी सबसे विशालकाय होती है। यद्यपि जैसा नामसे विदित है यह प्रायः पक्षी-भक्षक नहीं होती और पूर्ण रूपसे बड़े कीड़े-मकोड़ों पर ही निर्वाह करती है, फिर भी इस निर्दयी जीवके अनेक विषैले पंजे होते हैं जिनकी सहायतासे यह चिड़ियों एवं अन्य छोटे-छोटे जीवोंको

मार डालनेकी क्षमता रखती है। ये मकड़ियाँ किसी प्रकार का जाल नहीं बुनतीं; बल्कि भूमिमें छेद करके अथवा खोखले पेड़ोंके तनोंमें रहती हैं। अपने शिकारके लिये रात्रिमें बाहर निकलती हैं। इनमें सूँघने एवं सुननेकी शक्ति कम होती है। उनके आठ नेत्र केवल प्रकाश और अन्धकारका अन्तर ज्ञात कर सकते हैं। ये अधिकतर दीर्घजीवी होती हैं। इन जीवोंका स्पर्श-ज्ञान पूर्ण रूपसे विकसित होता है, इसीसे स्पर्शकर्त्ताका परिचय प्राप्त कर लेती हैं। ज्यों ही किसी कीड़े-मकोड़ेका शरीर इनसे स्पर्श होता है, अत्यन्त फुर्तीसे ये उसे झपट कर दबोच लेती हैं, किन्तु यदि वह भाग्यसे बच गया तो फिर उसे अपने जीवनका कोई भय नहीं रहता। कारण यह है कि अन्य ज्ञान-शक्तियोंके अभावके कारण, यह मकड़ी उस जीवका पीछा करनेमें पूर्णरूपसे असमर्थ है। मकड़ियोंका एक अपूर्व लक्षण, जो प्रायः सब जातियोंमें पाया जाता है, यह है कि मादा-मकड़ी नर-मकड़ीसे बड़ी होती है, एवं मादा-मकड़ी एक युवा नर अथवा बच्चा नर मकड़ीमें विशेष अन्तर नहीं कर पाती।

मकड़ियाँ प्रायः हर स्थानपर पाई जाती हैं। वे अपना जाल, कमरे, बगीचे और तालाबके ऊपर जहाँ कहीं भी स्थान मिला, बुन लेती हैं। मकड़ियोंके विषयमें सबसे मनोरञ्जक बात उनके निर्मित सूत एवं उसके प्रयोग के संबंधमें है। रेशमके कीड़ों एवं मकड़ियोंमें सूतनिर्माण की क्रिया भिन्न है। मकड़ीमें सूत उसके उदरके समीप एक अंग-विशेषसे उत्पन्न होता है, जो तरल-पदार्थ की भाँति निकल कर वायुके सम्पर्कसे कठिन रूपमें परिणित हो जाता है। इन अंग-विशेषोंकी संख्या मकड़ीकी प्रत्येक जातिमें भिन्न होती है। किसीमें वे शरीरके पीछे दृष्टिगोचर होते हैं एवं किसीमें नहीं भी होते। बागकी मकड़ियोंमें इन सूत निर्माण करनेवाले अंगोंकी संख्या अधिक होती है। अतः वे अन्य जातिकी मकड़ियोंसे अधिक सूत भी उत्पन्न करती हैं। इन अंग-विशेषकी संख्या २ से ८ तक होती है। किन्तु प्रायः ६ पाये जाते हैं। ये अंग छोटे और गोलाकार होते हैं। इनमें अनेक नलीदार छोटे-बड़े छिद्र होते हैं। इन्हीं महीन नलियों द्वारा सूत शरीरसे बाहर आता है। ध्यान देनेकी बात यह है कि मकड़ीके इस छोटेसे शरीरमें इस प्रकारकी ६०० नलियाँ होती हैं, जो एक बड़े यन्त्रकी भाँति निरन्तर सूतका निर्माण करती रहती हैं। किन्तु सूतका निर्माण आवश्यकतानुसार होता है; एवं प्रत्येक छिद्रसे एक ही प्रकारका सूत नहीं निकलता। जालेकी नींव डालनेके लिये शक्तिशाली सूतकी आवश्यकता पड़ती है। यह काम मकड़ीके सिरके समीप वाले अङ्ग करते हैं। आवश्यकता पड़ने पर और भी अधिक मजबूत धागे बीचवाले अंगोंसे प्राप्त होते हैं। अन्य अंग कम लचक वाला और अधिक शक्तिशाली सूत तैयार करते हैं जो ककूनके निर्माणमें प्रयुक्त होते हैं। बचे हुए अंग लसीले धागोंका निर्माण करते हैं, जिनकी सहायतासे मकड़ी अपने शिकारको जालमें फँसाती है।

जालोंके निर्माणमें मकड़ियोंकी कार्यकुशलता प्रशंसनीय है। यदि हम बगीचेमें मकड़ीके जालेको देखें तो वह प्रायः गोलाकार दिखाई देगा। उसमें जो लम्बी धारियाँ पड़ी होती हैं, वे अधिक मजबूत धागेकी होती हैं। कारण यह है कि उसीपर जालेकी नींव पड़ी होती है। वृत्ताकार जालेके केन्द्रमें कुछ छितरे हुए धागोंका समूह होता है। मकड़ी किस प्रकार जाला बनाती है, इसका सरलतापूर्वक अध्ययन किया जा सकता है। जाला-निर्माणका समस्त कार्य मादा-मकड़ी ही करती है। नर महोदय इस आशासे एक कोनेमें पड़े रहते हैं कि मादा-मकड़ी की तनिक असावधानीके कारण, यदि अवकाश मिले, तो पकड़े हुए शिकारको हजम कर ले। मादा-मकड़ीको नींववाले धागोंकी, जिनपर उसके समस्त निवासस्थानकी कुशलता निर्भर करती है, विशेष चिन्ता होती है। उसको उन स्थानोंके चुनावमें सावधानी रखनी पड़ती है जिनमें ये धागे बाँधे जाते हैं। अपने चुने हुए स्थानके सहारे, धागोंका एक सिरा बाँध कर, वह दूसरे सिरेपर पहुँचती है और एक बार ढीले सूतको तानकर, दूसरे सहारेमें बाँध देती है। इस प्रकार वह चारों ओरकी लम्बी धारियोंका निर्माण करती है। जब तक वह पूर्ण रूपसे निश्चिन्त नहीं हो जाती जाला बनानेके आगेका कार्य स्थगित रहता है। तत्पश्चात् वह जालके संपूर्ण भागका निर्माण करती है, एवं बीचकी धारियोंका ऐसा स्थान निश्चित करती है जिससे सारे जालेपर दबाव एवं तनाव बराबर पड़े। इन धारियोंसे वह

लसीले धागोंका सम्बन्ध स्थापित करती है जिनके द्वारा शिकार पकड़े जाते हैं। प्रत्येक धारीमें इस धागेको जोड़कर वह तान देती है और यदि केन्द्रके अतिरिक्त मकड़ी जालेके किसी दूसरे भागसे छिप कर निकलती है, तो वह एक धागेसे वहाँका संबंध भी जोड़ लेती है, जिससे शिकारके आने पर फौरन उसे सूचना प्राप्त हो जाती है और वह घटनास्थलपर पहुँच कर अपना कार्य आरम्भ कर देती है।

ये लसदार धागे, अन्य धागोंकी अपेक्षा, मोटे एवं एक लसीले पदार्थसे ढके दिखलाई पड़ते हैं। जब ये धागे ताने जाते हैं, तो बराबर बराबर दूरीपर लसीले पदार्थके

मकड़ीका जाला।
मकड़ियाँ तरह-तरहके जाले बुनती हैं, परन्तु प्रत्येक जाति की मकड़ी एक तरहका जाला बुनती है।

विन्दु बन जाते हैं। विन्दुओं इनकी संख्या इतनी अधिक होती है कि एक बड़े जालेमें अनुमानतः १,२०,००० विंदु पाये जाते हैं। इन विन्दुओंका निर्माण बहुत काल तक वैज्ञानिकोंके विचारका साधन बना रहा; किन्तु अब हमें विदित हुआ है कि यदि कोई लचकदार तरल लसीले पदार्थसे ढका हुआ धागा तना जाता है, तो उसपर उसी प्रकारकी विंदुओंकी रचना हो जाती है, जिस प्रकार मकड़ी अपने लसीले धागेको तान कर निर्माण करती है। अब हमें देखना है कि किस प्रकार मकड़ी अपने शिकारको फँसाती है। चूंकि मकड़ियोंमें देखनेकी शक्तिका अभाव होता है, इस कारण वे केवल स्पर्श-ज्ञान द्वारा शिकार करती हैं। ज्योंही कोई कीड़ा जालेके लसीले धागेमें फँस जाता है, उसके भाग्यका निर्णय हो जाता है। उसको निकल भागने की कोशिश करना एकदम व्यर्थ होता है। ऐसी चेष्टा उस अभागे जन्तुको और भी जकड़ देती है और साथ ही साथ मकड़ीको सूचना भी दे देती है। जालेकी प्रकम्पन-क्रियासे मकड़ी झपटकर उस स्थानपर पहुँचती है, किन्तु स्वयं उस लसीले धागेमें न फँस जाये, इस बातकी सावधानी रखती है। शिकारके पास पहुँचते ही उसको मुँहसे पकड़ लेती है और अपने आगेकी प्रायः २०० नलियों द्वारा सूत निकाल कर उसको लपेटना आरम्भ कर देती है। इतनी शीघ्रतासे यह कार्य करती है कि थोड़े समयमें ही उस जीवमें हिलने-डुलनेकी सामर्थ्य नहीं रहती। फिर उसको सुरक्षित स्थानमें ले जाती है और आरामसे उसका रस चूस लेती है। इस खींचातानीमें जालेका कुछ हिस्सा टूट-फूट भी जाता है, जिसकी शीघ्रतापूर्वक मरम्मत कर ली जाती है और पुनः मकड़ी दूसरे शिकारकी प्रतीक्षा में बैठ जाती है।

शिकारको फँसानेके लिये जालोंका विभिन्न प्रकारसे निर्माण होता है। हमारे बगीचेकी मकड़ीसे मिलती-जुलती अमेरिका की एक जातिकी मकड़ी अपने सम्पूर्ण जाले को धागेकी एक चौड़ी पंक्तिसे ढक देती है। इस प्रकारके ऊपरी सजावका एक कारण है। इस मकड़ीको प्रायः बड़े जीवोंका सामना करना पड़ता है। ऐसी अवस्थामें ज्योंही वह जालमें फँस जाता है उसको शीघ्रतासे धागों द्वारा लपेटनेकी आवश्यकता पड़ती है। यद्यपि धागोंका निर्माण मकड़ीके कुछ ही पलका कार्य होता है, किंतु फिर भी ऊपरके सजे हुए धागे द्वारा कीड़ेको बाँधनेका कार्य जल्दी होता है और उसको भाग निकलनेका अवसर नहीं मिलता; किंतु यदि फंसा हुआ जीव अधिक बलवान हुआ और मकड़ी उसे पकड़े रखनेमें असमर्थ हुई, तो वह शीघ्रता से छिपनेके स्थानमें वापस चली जाती है और उस समय

तक प्रतीक्षा करती है जब तक वह बलवान कीड़ा अपना सारा बल लगाकर जालेको तोड़कर निकल भागे। जैसा ऊपर कहा जा चुका है, लसदार धागे केवल थोड़े समय के लिये ही शिकारको फँसाकर रख सकते हैं, उनको पूर्ण-रूपसे अधिकारमें करनेके लिये मकड़ीको ऊपरसे सावधान होना आवश्यक हो जाता है। शिकार तक पहुँचनेके लिये एक ऐसे रास्तेका निर्माण होता है, जिस पर लसदार रेशे नहीं होते, अन्यथा स्वयं मकड़ीके फँस जानेकी सम्भावना होती है। एक अँग्रेजी मकड़ीका जाल और भी कुशलतासे निर्माण होता है। पूरे जालेका केवल छठा हिस्सा लसदार होता है और देखनेमें एक त्रिकोणकी भाँति होता है। इसमें केवल चार धारियाँ होती हैं। प्रत्येकसे एक धागा निकलकर समीपके किसी स्थानसे जुड़ा हुआ होता है। इन्हीं किसी एक फँसानेवाले धागेसे मकड़ी लटक जाती है और अपने शिकारकी प्रतीक्षा करती रहती है। धागेके हिलनेसे शिकारके फँसनेकी शीघ्र ही खबर मिल जाती है। तुरन्त मकड़ी अगले सभी पंजोंसे धागेको छोड़ देती है जिसमें वह उछलकर शिकारको फँसा लेती है; किंतु यदि उसे प्रथम बार सफलता नहीं मिली तो वह पुनः धागेको खींचकर तोड़ देती है। इस प्रकारकी चेष्टा करनेसे या तो शिकार पूर्ण रूपसे फँस जाता है अथवा भाग निकलता है। एक दूसरे प्रकारकी मकड़ी फँसाने वाले धागोंको पंजोंसे इस प्रकार खींचकर बैठती है कि वह एक खुले हुये छत्तेके समान दीख पड़ता है और ज्योंही उसे शिकारकी सूचना मिलती है वह धागोंको एकाएक छोड़ देती है, जिसमें कीड़ा चारों ओरसे घिरकर पूर्णरूपसे फँस जाता है।

घरोंमें पाई जानेवाली मकड़ियोंका जाला किसी विशेष प्रकारका नहीं होता। अधिकतर धागे लसदार नहीं होते। शिकारको फँसानेके लसदार धागोंकी थोड़ी संख्या होती है। अन्य वर्गकी मकड़ियाँ अत्यन्त सुन्दर रेशमी धागोंका निर्माण करती हैं एवं उनके जालेमें ऐसे ही रेशमी धागे फैले रहते हैं। साधारण धागोंके निर्माणक अंगोंके अति-रिक्त इन रेशमी धागोंके निर्मित करनेके लिए इन मकड़ियों के अंग विशेष होते हैं, जो सामनेके हिस्से में होते हैं, एवं उनमें बहुत छिद्र होते हैं जिनसे रेशम निकलता है। इस रेशमके धागोंको संपूर्ण जालेमें फैलानेके लिये मादा-मकड़ीमें एक महीन कंघी होती है। जलमें रहनेवाली मकड़ियोंको हम छोटे तालाबोंमें देख सकते हैं। मादा-मकड़ी अपने जालेको किसी उपयुक्त पौधेकी डालियों एवं पत्तियोंमें बुनती है। संपूर्ण जाल निर्माण करनेके पश्चात् उनके छिद्रोंमें मकड़ी वायु भरती है। वह जलके अन्दर चली जाती है और निकलकर वायुके बिन्दुको पिछले पंजेमें भर लेती है और जालेमें पहुँचकर निकाल देती है। इस प्रकार अनेक बार करनेसे चिपटा जाल फूल जाता है। अपने शिकारके लिये मादा-मकड़ी जालकी सतहके ऊपर ही प्रतीक्षा करती है। शिकारको पकड़नेके बाद वह अपने जालेमें वापस आती है। गर्मीके अन्तमें मादा-मकड़ीका निवास-स्थान छोटे बच्चोंका पालन-गृह बन जाता है। एक दीवार खींचकर जालेके ऊपरी भागमें वह अपने अंडे देती है। अपना कार्य समाप्त करनेके पश्चात् मादा कुछ गहरे जल में जाकर दूसरे जालेका निर्माण करती है, जिसमें वह जाड़ेमें आराम करती है। अंडोंसे निकलनेके बाद छोटे बच्चे जाला बनानेके बजाय खाली घोंघोंमें जल भरकर उसीमें तैरते रहते हैं। जलकी मकड़ियोंमें एक दूसरी जातिकी अंग्रेजी मकड़ीका रहन-सहन इन सभीसे बिल्कुल भिन्न है। इनके देखनेकी शक्ति तीव्र होती है जिसके कारण वे अपने शिकारकी खोज करती हैं। जालोंका निर्माण बहुत कम करती हैं, एवं मादा अपने अंडोंको एक थैलेमें साथ लिये रहती है और जब बच्चे निकल आते हैं तो कुछ दिनों तक माँकी पीठपर निवास करनेके पश्चात् अलग होकर अपनी जीविका पैदा करते हैं। यद्यपि वे जलके ऊपर तैर सकते हैं; किंतु फिर भी उनको एक निवासस्थान की आवश्यकता होती है। अतः कुछ सूखी पत्तियोंको एकत्रित कर उनको वे धागोंसे बाँध देते हैं। इसीके सहारे खड़े होकर वे जलके कीड़ोंका शिकार करनेकी प्रतीक्षा करते हैं; कभी-कभी इसको छोड़कर शिकार करने चले जाते हैं, फिर वापस चले आते हैं। काई के सहारे वे जलके भीतर भी भ्रमण कर कुछ स्वादिष्ट भोजन पा जाते हैं।

फंदे बनानेवाली मकड़ियोंका पता लगाना कठिन कार्य है, क्योंकि वे अत्यन्त सावधानीसे छिपकर उनका निर्माण करती हैं। उनके निवासस्थानका साधारण ढांचा भूमिके अन्दर एक सीधे-सादे लम्बे छिद्रके समान होता है। छिद्रका

मुख मोटे धागोंसे ढका रहता है, ताकि मिट्टी न गिरने पावे। छिद्रका भीतरी भाग रेशमी धागोंसे घिरा होता है। बाहर जानेका रास्ता एक ढक्कनसे ढका रहता है। आरम्भमें जब यह मकड़ी अपना घर बनाती है, तो मार्ग छोटा रखती है, किन्तु ज्यों-ज्यों वह बढ़ती जाती है, अपने घर और रास्ते दोनोंको बड़ा करती जाती है एवं ऊपरका ढक्कन ऐसे मिश्रित पदार्थोंसे निर्माण करती है कि वह बाह्य वातावरणके तदाकार हो जाता है। यही कारण है कि उसका पता लगाना कठिन हो जाता है। छिद्र बनानेका सारा कार्य मकड़ी अपने मुखसे करती है और मिट्टीको दूर फेंकती जाती है। तैयार होनेके पश्चात् मकड़ी बैठकर शिकारकी प्रतीक्षा करती है और किसी कीड़ेको पा जाने पर वह अंदर चली जाती है और आनन्दसे भोजन करती है। यद्यपि मकड़ी बहुत छिपाकर अपना घर बनाती है फिर भी उसके शत्रु पता पा जाने पर द्वारको खोलनेकी चेष्टा करते हैं; किन्तु मकड़ी भीतरसे सारी शक्ति लगाकर द्वारके ढक्कनको बन्द किये रहती है और अपनी रक्षा करती है; किन्तु यदि शत्रु बलवान् हुआ तो द्वारको तोड़ डालता है। ऐसी अवस्थामें मकड़ी शीघ्रतापूर्वक भूमिके भीतर जा छिपती है। इस जातिकी कुछ मकड़ियाँ और भी पेंचदार निवासस्थानका निर्माण करती हैं और अँग्रेजीके 'वाई' शब्द की भाँति उनका ढाँचा होता है; अर्थात् दो द्वार होते हैं। एक द्वार तो उपर्युक्त रूपसे ढक्कनसे ढका होता है और दूसरा घास अथवा काईसे छिपा होता है जो शत्रुसे हारने पर भाग निकलनेके कार्यमें लाया जाता है। कभी-कभी एक तीसरा रास्ता भी होता है जिससे मकड़ी अपने शिकारको फँसाती है। इसके सभी द्वारपर एक फन्दा होता है जिसमें उसके शिकार फँस जाते हैं। उसका निर्माण इस ढंगका होता है कि भूमिके कीड़े-मकोड़ोंको उसका ज्ञान नहीं होता, जिससे वे उसमें आ फँसते हैं। विभिन्न जातिकी मकड़ियोंकी कार्य-पटुता, जालेका संगठित निर्माण एवं शिकार फँसानेकी अनेक विधियाँ निस्सन्देह प्रशंसनीय हैं।

—वीरेंद्र नारायण सिंह

बिच्छूका गृहस्थाश्रम

बिच्छू बहुधा गर्म देशोंमें ही होते हैं, किन्तु युरोपके दक्षिणी भागोंमें भी उनकी कुछ जातियाँ पाई जाती हैं। वे अपना समस्त कार्य रात्रिको ही करते हैं। दिनमें तो वे पत्थरों इत्यादिके नीचे छिपकर बैठे या सोते रहते हैं। इनकी इस निशाचरी प्रवृत्तिके कारण, एवं डर और घृणाके कारण अभी कुछ वर्षों पहले तक इनके जीवनके विषयमें बहुत ही कम बातें ज्ञात थीं। थोड़ा समय हुआ कि प्रसिद्ध फ्रांसीसी जीव-विज्ञान-वेत्ता फ़ेबर (Faber) ने युरोपके दो साधारण जातिके बिच्छुओंकी रीति-रिवाजोंका अध्ययन किया है। नीचे लिखी हुई बातें भी उन्हींके लिखे हुए मनोरंजक वृत्तान्तसे ली गई हैं।

ये बिच्छू साढ़े तीन इंच तक लम्बे होते हैं और इनका रंग प्रायः हलका बादामी होता है। वे उन पहाड़ी देशोंमें रहते हैं जहाँ, अधिक कड़ी धूपके कारण, प्रायः कुछ पेड़-पौधे न उगते हों। ऐसे स्थानोंमें वे इधर-उधर बिखरे हुए पत्थरोंके नीचे पाये जाते हैं। यदि किसी पत्थरको उलट दिया जाय तो उसके नीचे कई इंच गहरा एक गोल छिद्र मिलेगा जिसके द्वारपर बहुधा बिच्छू महाशय पंजे फैलाये हुए और डंकमयी पूँछको पीठके ऊपरकी ओर मरोड़े हुए आगन्तुकोंका स्वागत करनेको बैठे होंगे। गर्मियोंमें इसी प्रकार पत्थरके नीचे बैठकर धूपसे तपे हुए पत्थरसे अपने शरीरको सेंकना बिच्छूको बहुत अच्छा मालूम होता है; किन्तु थोड़ी भी ठंड पड़ी या पानी बरसा कि आप अपने बिलमें घुस जाते हैं।

बिच्छू अपने चिमटीके सदृश बड़े-बड़े पंजोंसे शिकार पर आक्रमण करता है और उन्हींसे पकड़ कर उसे अपने मुँहमें रखता है। इन पंजोंकी स्पर्श-ज्ञान शक्ति बहुत तीव्र होती है और जब यह जन्तु चलता है तब वह इन्हें आगेकी ओर फैलाकर धीरे-धीरे ऊपर-नीचे फैलाता हुआ चलता है; यद्यपि इसके नेत्र आठ होते हैं किन्तु वे ऐसे स्थानपर स्थित होते हैं कि बिच्छूको सामनेकी तरफ कुछ नहीं दिखलाई देता। इसी कारण उसे अपने इन स्पर्शकुशल पंजोंके भरोसे रहना पड़ता है। इन्हींके द्वारा उसे यह ज्ञात होता है कि वह किधर जा रहा है। उसकी दुम, जिसके सिरेपर विषैला डंक लगा रहता है, चलते समय पीठके ऊपरकी ओर मुड़ी रहती है, किन्तु आराम करते समय वह शरीरके एक तरफ़ मुड़ जाती है।

शिकारपर आक्रमण करते समय बिच्छू चुपचाप

निकट जाकर अपने पंजोंकी चिमटियोंसे उसे पकड़ लेता है। यदि मक्खी चुप रही तब तो जाकर उसे मुँहसे पकड़ लेता है और फ़ुरसतसे खाता रहता है। ऐसी दशामें डंक मारनेकी आवश्यकता नहीं होती। किन्तु यदि मक्खी छटपटाई और दंगा करने लगी तो बिच्छू महाशय अपनी दुमको आगेकी ओर झुकाते हैं और पल भर निशाना बाँधकर एक दो बार डंक मार उसे चुप कर देते हैं, क्योंकि उन्हें इस प्रकारके दंगा-फ़सादसे सख़्त नफ़रत है। इतना सोच-विचारकर काम करनेपर बिच्छू इस बातकी पर्वाह नहीं करता कि शिकार मुँहमें कैसे पकड़ा गया या डंक उसके शरीरके किस स्थान पर लगा।

उसके विषका असर भिन्न-भिन्न जन्तुओंपर भिन्न-भिन्न प्रकारका होता है। इस बातकी परीक्षा अनेक जन्तुओंको डंक लगवाकर की गई है। मकड़ियाँ तुरन्त ही सिकुडकर मर गईं। प्रायः सब ही प्रकारके कीड़े सुन्न हो गये और थोड़ी बहुत देरमें मृत्युको भी प्राप्त हो गये। किन्तु एक बड़ा सा शतपद कई दिन तक जीता रहा। यह बड़े आश्चर्यकी बात है कि यद्यपि कीड़े डंक लगनेके थोड़ी ही देरके बाद मर जाते हैं किन्तु उनके बच्चों- (grubs) पर इस विषका कुछ भी असर नहीं होता। उनके गरम शरीरमें कितनी ही बार डंक द्वारा छिद्र हो जाने पर भी उनसे यथासमय ऐसे कीड़े बन जाते हैं मानो कभी कुछ हुआ ही नहीं। इस प्रकारके एक कीड़ेको फिर डंक लगवाया गया किन्तु वह झट मर गया। (समझा गया था कि प्लेग आदिका एक बार टीका लग जानेसे जैसे फिर उस बीमारी का डर नहीं रहता वैसे ही शायद बिच्छूका विष भी न चढ़े किन्तु आशा विफल हुई।) खेदकी बात है कि ये प्रयोग मनुष्योंपर नहीं किये गये, किन्तु दूसरी रिपोर्टोंसे ज्ञात हुआ है कि यद्यपि कभी-कभी बिच्छूके डंकसे मनुष्य की मृत्यु हो जाती है किन्तु यह प्रायः तभी होता है जब उस मनुष्यका रक्त बहुत ही विकृत अवस्थामें हो।

बिच्छू महाशयकी प्रेम कथा बहुत ही मनोरंजक है। नर बिच्छू अप्रैल या मई मासमें जब संध्याके समय टहलने निकलता है तब बहुधा अपनेसे बड़ी एक श्रीमतीजीसे भेंट हो जाती है। दोनों एक दूसरेके सम्मुख पंजे फैलाकर खड़े हो जाते हैं। तब शरीरके आगेका भाग पृथ्वीपर दृढ़तासे स्थिर कर दोनों अपनी पूँछें और पिछला भाग ऊपर उठाते हैं मानों सिरके बल खड़े होनेका प्रयत्न कर रहे हों। ऐसा करते-करते दोनोंकी पूँछें मिल जाती हैं। तब वे बड़े प्रेमसे पूंछें रगड़ते हैं और डंकोंको एक दूसरेसे हुककी (hook) तरह मिला लेते हैं। ऐसा व्यवहार शायद सभ्य बिच्छू समाजमें साधारण प्रणाम या हाथ मिलाना समझा जाता है। किन्तु जो तरुण जोड़ी विवाह करना चाहती है उनमें यह सब बहुत ही तकल्लुफ़के साथ होता है। यदि श्रीमतीजी उपयुक्त समझी गईं और उन्होंने अनुमति दी तो बिच्छू महाशय उनके दोनों हाथ पकड़ लेते हैं और उन्हें अपनी ओर खींचते हुए पीछेकी ओर चलना प्रारम्भ करते हैं। इस प्रकार वे कई घंटोंतक टहलते रहते हैं अंतमें किसी पत्थरके नीचेकी दरारको उपयुक्त समझकर बिच्छू महाशय अपनी टाँगोंसे खोद-खोद कर और पूँछसे मिट्टी हटा-हटाकर उसे बढ़ा लेते हैं। किन्तु यह कार्य करते समय भी वे श्रीमतीजीके हाथ नहीं छोड़ते। जब घर ठीक बन जाता है तब वे धीरे-धीरे उसमें पिछले पाँवों द्वारा प्रवेश करते हैं। यदि श्रीमतीजीको यह घर पसंद आया तो ठीक ही है अन्यथा वहाँसे निकलकर दूसरे स्थानकी खोज की जाती है।

कभी-कभी इस प्रकारके परिभ्रमणमें इन बिच्छूरामसे बड़ा कोई दूसरा बिच्छू श्रीमतीजीके लिये अपनेको अधिक योग्य पात्र समझकर इन्हें ललकार देता है। तब दोनोंमें युद्ध हो जाता है किन्तु अन्य जन्तुओंकी भाँति ऐसा नहीं कि जिसमें किसीके गहरी चोट लगे या मृत्यु हो जाय। केवल एक दूसरेके पंजे पकड़कर बलसे खींचते हैं, जो खींच ले जाता है उसकी विजय होती है और पराजित बिच्छू किसी दूसरे स्थानपर अपने भाग्यकी परीक्षा करने चला जाता है। किन्तु जब इस प्रकारके विघ्न उपस्थित नहीं होते और प्रेमके पथमें कुछ बाधाएं नहीं पड़तीं तब कोई गृह पसंद आ जानेपर वे उसमें रात भर विश्राम करते हैं। दूसरे दिन यदि वह पत्थर उलट दिया जाय तो उस गृहपर श्रीमतीजीका ही पूर्ण अधिकार पाया जाता है क्योंकि या तो बिच्छू महाशयका कुछ पता नहीं चलता या उनके शरीरके कुछ टुकड़े इधर-उधर बिखरे हुए मिलते हैं। इस दुःखान्त घटनाका सविस्तार वृत्तान्त तो ज्ञात

नहीं है किन्तु ऐसा जान पड़ता है कि अब तक जो श्रीमतीजी अपने पतिकी आज्ञानुसार सब काम करती थीं वे ही अब सहसा स्वतंत्र होकर गृहका अधिकार अपने हाथमें ले लेती हैं और अपने पतिको ही काट-पीटकर भोजनके लिए परोस लेती हैं। यह ठीक-ठीक नहीं मालूम कि यद्यपि बिच्छू इनके दोनों हाथ पकड़े होता है तो भी ये उसको कैसे दबा लेती हैं। किंतु होता सदा यही है।

इस घटनाके कारण श्रीमतीजीके पत्नी-धर्म पालनके विषयमें चाहे कुछ समझा जाय किन्तु इसमें कोई सन्देह नहीं कि उनका मातृधर्म पालन अनुकरणीय है। उपरोक्त घटनाके १४ महीनोंके पश्चात् वे अंडे देती हैं। पहिले ऐसा समझा जाता था कि बिच्छूके बच्चे सर्वांग परिपूर्ण पैदा होते हैं। किन्तु फेबर महाशयकी खोजसे सिद्ध हो गया है कि बच्चे अंडोंसे ही पैदा होते हैं। यह सच है कि अंडोंपरकी झिल्ली इतनी नरम और कमज़ोर होती है कि बिना माताकी सहायताके भी बच्चे उनसे बाहर निकल आते हैं। अंडोंके दे चुकते ही माता अपने पंजोंसे बड़ी चतुराईके साथ झिल्ली तोड़ती है और उससे बच्चोंको पृथक कर देती है। जब बच्चे पृथक हो जाते हैं तब वह उन झिल्लीके टुकड़ोंको खा जाती है।

यह सफ़ेद बच्चे अब प्रायः एक तिहाई इंच लम्बे होते हैं और बड़ी कठिनाईसे बेचारे अपनी माँकी पीठपर चढ़ पाते हैं। यहाँ ये कई एक सप्ताहतक इकट्ठे होकर बैठे रहते हैं। इस बीचमें वे कुछ खाते-पीते भी नहीं। इसके बाद उनका चमड़ा फट-फट कर उतर जाता है और माताकी पीठपर कम्बलकी भाँति ढका हुआ मालूम होता है। ऐसा इसी बार होता है। फिर जब कभी चमड़ा उतरता है तब वह फटता नहीं, ज्योंका त्यों रहता है। अब बच्चे अंडोंसे निकलते ही जितने बड़े थे उससे डेढ़ गुना हो चुकते हैं और अब उनमें चंचलता भी बहुत कुछ आ जाती है। वे अपनी माताकी पीठपर चढ़ते हैं और कभी-कभी इधर-उधर सैर करनेका भी इरादा करते हैं किन्तु माता झटसे पकड़कर अपने पास लौटा लाती है। इसके एक सप्ताह बाद वे अपने आप शिकार करके भोजन प्राप्त कर सकते हैं। तब माता भी उनके लिए चिन्ता करना और कष्ट उठाना छोड़ देती है। अब यह कुटुम्ब बिखर जाता है। प्रत्येक बालक अब अपनी इच्छानुसार जीवन संग्राम करनेको चल देता है।

—डा० निहालकरण सेठी

१३

दो उपयोगी कीट

मधुमक्खी

[विज्ञान परिषद्‌से प्रकाशित 'मधुमक्खी पालन' से]

यदि किसी छत्तेकी मधुमक्खियों को देखा जाय तो उनमें तीन जातिकी मक्खियाँ दिखलाई पड़ेंगी—(१) कमेरियाँ; यही बाहर जाती हैं और मधु लाती हैं। (२) नर; ये घर पर बैठे मौज करते हैं और प्रायः कुछ भी काम नहीं करते; (३) रानी; यह कमेरी मक्खीकी तरह है,

खैरा मक्खीका छत्ता।
खैरा मक्खी कई एक आस-पास समानान्तर छत्ते लगाती है। गँवार लोगोंका विश्वास है कि छत्ते सदा सात होते हैं; इसलिए वे इस मक्खीको 'सातकोंचवा' कहते हैं।

पर उनसे बड़ी होती है (चित्र देखो)। प्रत्येक कुटुम्बमें एक ही रानी होती है। यही अंडे देती है, जिससे कमेरियाँ, नर और नवीन रानी उत्पन्न होती है।

कमेरीकी शरीर-रचना नीचे दिखलाई गई है। स्पर्श-शृंगसे मक्खियाँ टटोलती हैं। आँखें दो प्रकारकी होती हैं, एकसे दूरकी वस्तुयें और दूसरीसे निकटकी वस्तुयें स्पष्ट दिखलाई पड़ती हैं।

मधुमक्खियाँ फूलोंका रस पीती हैं और पराग (फूलों की धूलो) खाती हैं। ऐसे कुसमय के लिये जब फूल कम रहें, या वर्षा या अधिक ठंड या गर्मीके कारण बाहर निकलना कठिन हो जाय, मधुमक्खियाँ अपने छत्तेमें रस और पराग बटोर कर रख लेती हैं। जब मक्खियोंको पराग लाना होता है तो वे उसे अपनी टाँगोंपर चिपका कर लाती हैं। फूलके रसको वे अपने मधुकोषमें रख कर लाती हैं। यह पेटके भीतरकी एक थैली है और सिर और धड़में पतली नलीके रूपमें रहती है। पेटमें आ-कर यह फूल कर मधुकोष और उसके बाद क्षुद्रांत्र, तब बृहदंत्र और अंतमें गुदाके रूपमें परिवर्तित हो जाती है।

छत्तेपर पहुँच कर मक्खियाँ रस उगल देती हैं। पीछे उसे अपने पंखसे हवा करके गाढ़ा कर लेती हैं। फूलोंके इसी गाढ़ा किये हुए रस को मधु या शहद कहते हैं।

मक्खियोंकी जातियाँ

भारतीय मधुमक्खियों की चार जातियाँ होती हैं। सबसे बडी मक्खियाँ सारंग कहलाती हैं। इनके छत्ते बहुत बड़े होते हैं और उनमें मधुभी बहुत निकलता है परन्तु ये मक्खियाँ बहुत क्रोधी स्वभाव की होती हैं और इनके डङ्कमें बहुत विष होता है। इनके लिपट जाने पर मनुष्य क्या हाथी घोड़ों तककी मृत्यु हो गई है। इसलिए ये मक्खियाँ पाली नहीं जातीं। सारंग से कुछ छोटी मक्खियाँ वे होती हैं जिन्हें खैरा कहते हैं, ये बहुत भोले स्वभावकी होती हैं और काफी मधु एकत्रित करती हैं; ये ही साधारणतः पाली जाती हैं। तीसरी और चौथी जातियाँ वे हैं जिन्हें क्रमानुसार भुनगा और छोटी भुनगा कहा जाता है। एक चित्र में चारों जाति की मधु मक्खियाँ दिखलाई गई हैं।

खैरा मक्खियोंका स्वभाव ऐसा है कि वे अँधेरा पसन्द करती हैं और अक्सर पेड़ोंके खोलोंमें या दीवारके दरारोंमें छत्ते बनाती हैं। जहाँ उन्हें काफी स्थान मिलता है वहाँ वे अक्सर चार-पाँच या अधिक छत्ते बनाती हैं। इनके पालने के लिये लोग अक्सर खाली बक्स या ढोल रख देते हैं। इन्हें वैज्ञानिक रीतिसे पालनेके लिये विशेष रीति से बने बक्सोंका उपयोग किया जाता है जिन्हें अङ्गरेजीमें हाइव कहते हैं। इसके लिए हिन्दीमें करण्ड शब्द बहुत उपयुक्त जान पड़ता है क्योंकि संस्कृतमें 'करण्ड' शब्द का अर्थ बक्स भी है और मधुमक्खियों का छत्ता भी है।

आधुनिक करण्ड इन दिनों खरीदे जा सकते हैं। ज्योली कोट जिला नैनीतालके सरकारी एपियरीमें ये बिकते हैं। वहाँ मधुमक्खियाँ भी बिकती हैं परन्तु बहुतसे लोग किसी प्राकृतिक छत्ते को डाल समेत काट लाकर या जालीदार कपड़ेमें केवल मक्खियों को बाँध लाकर उन करण्डोंमें बसाते हैं।

मधुमक्खियोंका जीवनचरित्र

कमेरियोंका जन्म—कमेरी, रानी और नर तीनोंके जन्मकी रीति बहुत-कुछ एक-सी है। इसलिए केवल कमेरीके जन्मका ही ब्योरेवार वर्णन काफी होगा। अंडेसे मधुमक्खी
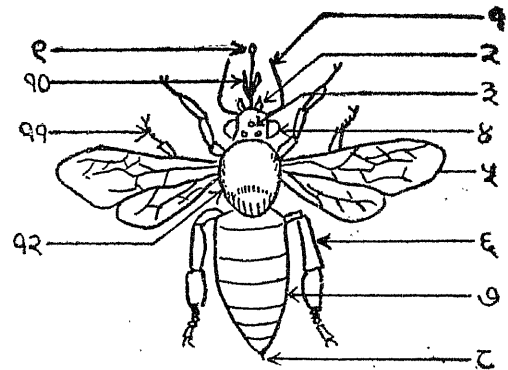
मधुमक्खीकी शरीर रचना।
१—स्पर्शशृंग; २—जबड़ा; ३—सरल आँखें; ४—मिश्रित आँख; ५—पंख; ६—पिछला पैर; ७—पेट; ८—डंक; ९—जीभ; १०—ओंठ; ११—बीचवाला पैर; १२—धड़।

नहीं निकलती, उसमेंसे ढोला निकलता है। खा-पीकर यह बढ़ता है और फिर इस प्रकार सो जाता है कि मरा-सा जान पड़ता है, परन्तु इसी सुषुप्तावस्थामें इसमें विचित्र परिवर्तन हो जाता है—ढोलासे यह मधुमक्खी हो जाता है! परिवर्तन अत्यन्त आश्चर्यजनक होता है।

रानी प्रतिदिन हज़ार-दो हज़ार अंडे तक दे सकती है, और जब शहदकी फसल अच्छी रहती है तो इतने अंडे प्रतिदिन देती भी है। अंडा बाहरसे मुर्गीके अंडेकी तरह कड़ा नहीं होता, यह नरम होता है और ऊपर केवल झिल्ली रहती है। यह देखकर कि रानी एक दिनमें हज़ार या अधिक अंडे देती है लोग कदाचित् समझेंगे कि वह परेशान रहती होगी और सदा उसे हड़बड़ी लगी रहती होगी। परन्तु बात ऐसी नहीं है। वह काममें फँसी अपनी प्रजाकी भीड़के बीच बड़ी शान्तिसे चलती है। केवल इसीलिए कि वह विश्राम कम करती है और प्रातःसे सायं तक काम करती रहती है वह इतना काम कर पाती है।

कमेरी मक्खियाँ छत्तेके कोठों (कोष्ठों) को अंडा देनेके लिए साफ-सुथरा कर देती हैं। इस प्रकार साफ किये कोठों में रानी पारी-पारीसे काफी तेज़ीसे अंडा देती है; परन्तु कुछ अंडोंमें से ढोल नहीं निकलते। इसलिए रानी पीछे सब कोठोंकी जाँच करती है और जब उसे कोई कोठा ऐसा दिखलाई पड़ता है जिसमें नये अंडेकी आवश्यकता रहती है तो चाहे दूसरी मक्खियोंकी कितनी भी भीड़ हो वह उस कोठेसे नहीं हटती। अवसर पाते ही वह अपना पेट उस कोठेमें घुसा देती है और एक अंडा दे देती है। इसमें उसे दस-पंद्रह सेकंड लगता है। फिर निकलकर वह अन्य खाली कोठोंकी खोज करती है।

अंडा कोठेकी जड़के पास दिया जाता है। यह जड़से लंब रूप (चौचक), और इसलिए कोठेके पार्श्वोंके समानान्तर, खड़ा रहता है। यह इसी स्थितिमें तीन दिन तक पड़ा रहता है। जब ढोलेके निकलनेका समय आता है उसके कुछ घंटे पहलेसे इसमें परिवर्तन दिखाई पड़ने लगता है, परन्तु अंडा इतना छोटा होता है कि इस परिवर्तनके देखनेके लिए प्रवर्द्धक ताल (आतिशी शीशा) रहना चाहिए। अंडेकी ऊपरी खोल अब अधिक पारदर्शक हो जाती है और अंडा लटककर कोठेके फ़र्शको छू लेता है। तबसे कमेरी मक्खियाँभी कई बार कोठेमें झाँक जाती हैं और जब वे जान जाती हैं कि ढोला निकलनेवाला है तो थोड़ा-सा भोजन उस स्थानके ऊपर रख जाती हैं जहाँ अंडा कोठेकी जड़पर जुड़ा रहता है। कदाचित् इस भोजनके स्पर्शसे या अपनेसे ही बाहरी खोल अब फट जाता है और नन्हा-सा ढोला निकल आता है। कमेरी मक्खियाँ इसे बराबर भोजन खिलाती जाती हैं। ढोला निरंतर अपने कोठेमें ही रहता है; उसीमें कुछ रेंग लेता है। जब ढोला पूरा बढ़ जाता है तब वह अपना मुँह कोठेके मुँहकी ओर करके
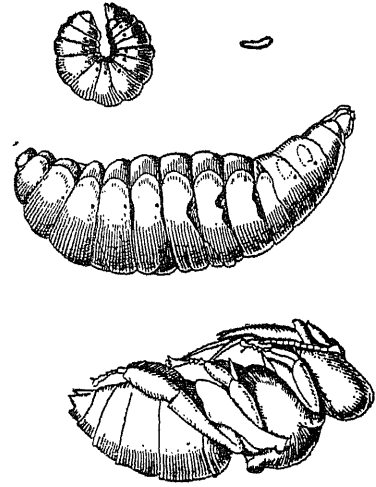
मधुमक्खीका जन्म।

ऊपरकी पंक्तिमें दाहिनी ओर अण्डा है। इसमेंसे ढोला निकलता है जो पहले छोटा (बाईं ओर देखें) और पाँच-छः दिनमें बड़ा हो जाता है (बीचकी पंक्ति देखें)। यही ढोला जब खा-पीकर सो रहता है तब धीरे-धीरे मधुमक्खीमें परिवर्तित हो जाता है (नीचेकी पंक्ति देखें)।

सो जाता है और जब तक वह मधुमक्खीमें परिवर्तित नहीं हो जाता तब तक सोता रहता है। इस सुषुप्तावस्थामें वह कुछ भी भोजन नहीं करता। उसके सो जानेपर कमेरी मक्खियाँ कोठेके मुँहको मोमसे बंदकर देती हैं। जब भीतर

मधुमक्खी तैयार हो जाती है तो वह कोठेके ढक्कनको कुतर कर बाहर निकाल आती है।

सुषुप्तावस्था पड़े ढोलेको प्यूपा (pupa) कहते हैं। पिछले पृष्ठके चित्रमें ऊपर दाहिनी ओर अंडा, बाईं ओर अर्धवयस्क ढोला, बीचकी पंक्तिमें पूरी उमरवाला ढोला और नीचेकी पंक्तिमें उस अवस्थाका प्यूपा दिखलाया गया है जिस अवस्थामें वह प्रायः मधुमक्खीमें परिवर्तित हो चुका रहता है। ये सभी चित्र वास्तविक नापसे कई गुने बड़े पैमानेपर बने हैं।

जब ढोला सुषुप्तावस्थामें जाता है और कमेरी मक्खियाँ कोठेको बंदकर देती हैं तो ढोलेका शरीर दो स्थानोंसे संकुचित होने लगता है। इस प्रकार सिर, धड़ और पेट पृथक् होने लगते हैं। फिर मुख, मिश्रित आँखें, टाँगें और पंख बनने लगते हैं। इस प्रकारके परिवर्तनोंके होते रहनेपर कुछ समयमें सर्वांग-पूर्ण मधुमक्खी बन जाती है, परन्तु इस समय इसका रंग सफेद रहता है। कुछ समयमें बड़ी मिश्रित आँखोंमें लाली आती है और शरीरमें रंग। फिर आँखें गाढ़े रंगकी और अंतमें काली हो जाती हैं। तब तक शरीर भी अपने स्वाभाविक रंगका हो जाता है और उसपर धारियाँ पड़ जाती हैं।। इन सब आश्चर्यजनक परिवर्तनोंको कोई भी कोठेके ढक्कनको काटकर और भीतरसे भिन्न-भिन्न अवस्थाओंके प्यूपोंको निकालकर देख सकता है।

नन्हें-से अंडेसे निकला नन्हा-सा ढोला तीव्र गतिसे बढ़ता है। एक वैज्ञानिकने देखा है कि कमेरी मक्खियाँ ढोलेको दिनमें लगभग सवा हज़ार बार खिलाती हैं। पूर्ण आकार तक बढ़नेमें ढोला पाँच बार केंचुली छोड़ता है। अंडे देनेसे लेकर मक्खीके निकलनेतकका समय कमेरी, नर और रानीके लिए भिन्न-भिन्न है। यूरोपकी मक्खियोंके लिए निम्न सारिणी ठीक है। भारतीय मक्खियोंके लिए कोई सारिणी लेखकके देखनेमें अभी नहीं आई।

सारिणी १—मधुमक्खीके उत्पन्न होनेमें लगने वाले दिनोंकी संख्या

	रानी	कमेरी	नर
अंडा	३	३	३
ढोला	४½	६	६½
प्यूपा	७½	१२	१४½

बाहर निकलनेपर—अल्पवयस्यक मधुमक्खी कोठेके ढक्कनको कुतरकर जब बाहर निकलती है तो वह अपने सिरमें बुरुश करती है, अपने पंख फैलाती है और मग्न हो मक्खियोंकी भीड़में मिल जाती है। पहले दिन तो छत्तेपर केवल इधर-

मधुमक्खीकी भोजन-प्रणाली
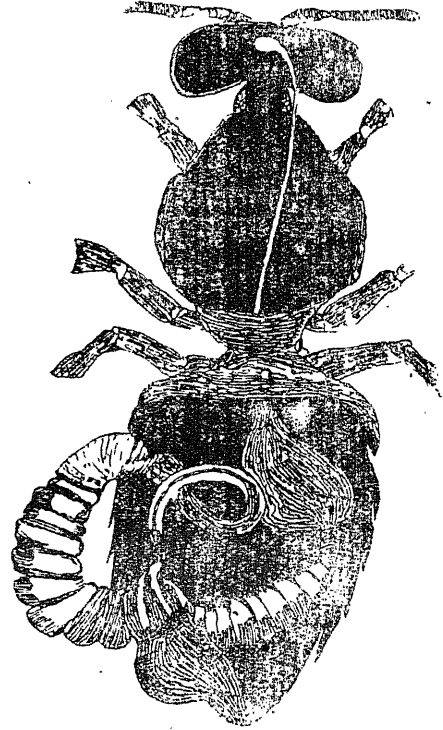
यह सर और धड़में पतली नलीके रूपमें रहती है। पेटमें आकर यह फूलकर मधुकोष और उसके बाद क्षुद्रांत्र, तब बृहदंत्र और अन्तमें गुदा के रूपमें परिवर्तित हो जाती है।

उधर घूमनेके सिवा और कुछ नहीं कर पाती। वह ललचायी-सी मधु खोजती रहती है। जहाँ कहीं भी मधु खुले कोठोंमें देख पाती है टूट पड़ती है और खूब खाती है। पहले दिनके बादसे ही काम भी करने लगती है। पहला काम जो इसके जिम्मे पड़ता है वह उन कोठोंकी सफ़ाई करना है जिनमें रानी अंडे देगी। इसके लिए कोठेकी दीवारोंको ये अल्पवयस्क कमेरी मक्खियाँ चाटती हैं। शायद

इससे उसमें कोई विशेष गंध आ जाती है जिससे रानी पहचान लेती है कि घर साफ किया गया है या नहीं, क्योंकि वैज्ञानिकोंने देखा है कि बिना साफ किये घरोंमें रानी कभी अंडे नहीं देती। इसके बाद वे पहले बड़े ढोलोंको, और अनुभव प्राप्त करनेपर छोटे ढोलोंको, आहार पहुँचानेका काम करतीं हैं। वे मधुमें पराग मिलाकर उचित भोजन बनाकर ले जाती हैं। आश्चर्यकी बात है कि वे कैसे यह सब काम अपने आप सीख जाती हैं। इस आयुकी मक्खियाँ, या कुछ अधिक आयुकी मक्खियाँ, अपने पेटसे राजसी आहार निकालकर राजसी घरोंके ढोलोंको देती हैं। धीरे-धीरे वे अन्य काम, जैसे बाहरसे आये परागको विधिवत रखना, छत्तेकी मरम्मत, मधु पकाना, छता बनाना आदि, काम करने लगती हैं। अल्पवयस्क मधुमक्खियाँ प्रत्यक्ष रूपसे सुकुमार और कुछ हलके रंगकी जान पड़ती हैं। लगभग दो सप्ताहके उपरांत उनमें और युवा मक्खियोंमें कोई अन्तर नहीं दिखलाई पड़ता। इस समय वे ढोलोंको खिलानेका काम छोड़कर छत्तेमें नये कोठे बनानेका काम करती हैं। आठ-दस दिनकी आयु होते ही वे उड़नेकी भी चेष्टा करती हैं परन्तु छत्तेसे दूर नहीं जातीं, आस-पास ही खेलती हैं। थोड़ा-बहुत उड़ सकनेपर भी दसवें दिनसे बीसवें दिन तक वे अन्यान्य घरेलू धंधोंमें ही जुटी रहती हैं, जैसे अपने कुटुम्बकी प्रौढ़ा कमेरियोंका सत्कार, शहदका पकना आदि।

इसके अतिरिक्त ये ही मक्खियाँ घरको साफ़ रखती हैं, रानीको खाना खिलाती हैं और उसका शृंगार करती हैं।

इस प्रकार तीन सप्ताह तक घरमें काम करनेके बाद ये बाहर काम करनेवाली हो जाती हैं और मकरंद (अर्थात् पुष्परस) और पानी लाना आरंभ कर देती हैं। अल्पवयस्क मक्खियाँ बरसते हुए पानी में नहीं उड़ सकतीं; इसलिए वे उस समय तक साधारणतः बाहर नहीं निकलती हैं जब तक सूरज अच्छी तरह न निकल आये।

नर, मादा और रानीके उत्पन्न करने अथवा शहद और पराग रखनेके लिये विभिन्न आकार-प्रकारके घरोंको बनानेमें इसके गृह-रचना सम्बन्धी बुद्धि-कौशलको देखा जा सकता है। अपने और अपने कुटुम्बकी रक्षाके लिए ये डंकका प्रयोग करती हैं। डंक मारनेसे जो कष्ट ये दूसरोंको पहुँचाती हैं उससे अधिक कष्ट बहुधा इनको होता है, क्योंकि जब डंक टूट जाता है तो वहाँ घाव हो जाता है। यह घाव बहुधा मक्खीका प्राण ही ले लेता है। कमेरियोंमें कुछ स्वयं-सेवक मक्खियाँ होती हैं जो स्थान-परिवर्तनके समय घरकी खोज तथा भेदियोंका अन्य काम करती हैं। मानसिक विकासकी दृष्टिसे कुटुम्बके अन्य प्राणियोंसे कमेरियाँ
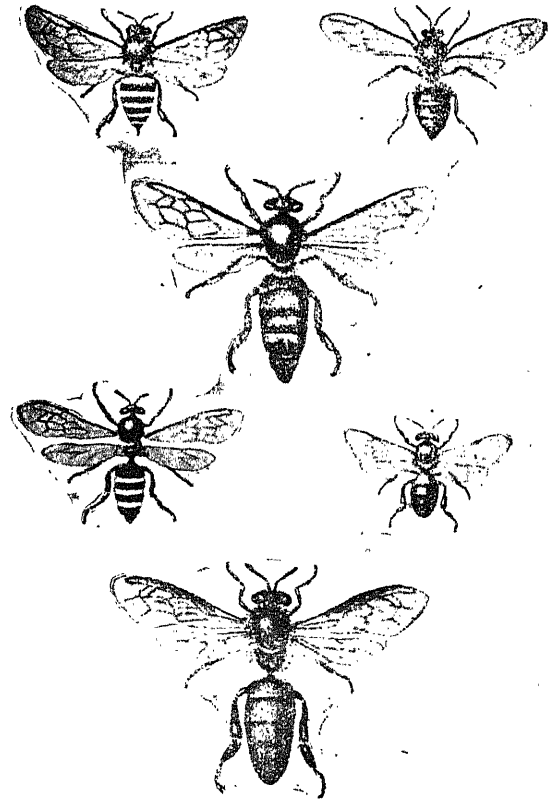
भारतीय मधुमक्खियाँ।
ऊपर बाईं ओर खैरा कमेरी है, दाहिनी ओर खैरा नर और उसके नीचे खैरा रानी। तीसरी पंक्तिमें बाईं ओर भुनगा और दाहिनी ओर छोटी भुनगा कमेरी। सबसे नीचे सारंग कमेरी है।

अधिक चतुर होती हैं। कमेरी मक्खियाँ भी अंडे दे सकती हैं लेकिन अनगर्भित। ऐसा काम ये उस समय करती हैं जब कुटुम्बकी रानीके मर जानेपर

छत्तेमें कोई गर्भित अंडा नहीं रहता । तब कमेरी मक्खियाँ नई रानी पैदा करनेमें असमर्थ हो जाती हैं । कमेरियोंके अंडेसे केवल नर ही पैदा होते हैं । कमेरी-मक्खियोंका नित्य-दिन काम करनेका पक्का विधान होता है जिसको कोई भी शक्ति बदल नहीं सकती । कमेरीका अधिक समय काम करनेमें ही बीतता है । यदि इनको बेकार काम करनेसे बचाया जाय तो वे अधिक समय तक जीवित रह सकती हैं । इनको अधिक काम जाड़ेमें करना पड़ता है । इस कालमें इनकी समस्त आयु लगभग ६ सप्ताह होती है । गर्मीमें आयु लगभग तीन महीने होती है । कमेरी ही
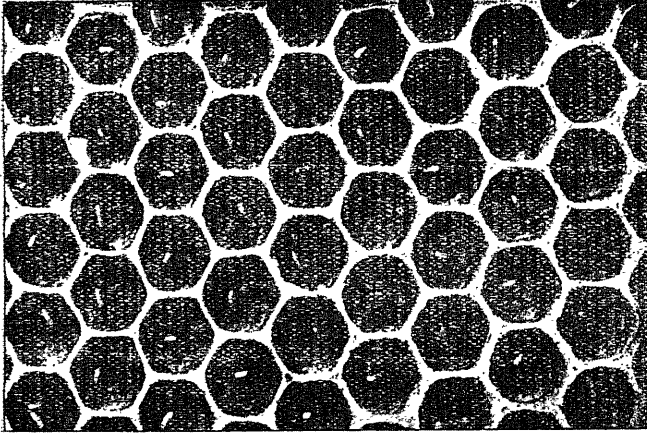
छत्तेका वह भाग जहाँ नवीन अंडे रहते हैं । असली छत्तेसे बड़े पैमानेपर यह चित्र बनाया गया है । देखो कि नीचेके बायें कोने वाले कोष्ठमें दो अंडे हैं और दाहिने वाले कोनेमें अंडेसे कीड़ा निकल आया है ।

शत्रुओंसे घरकी रक्षा करती हैं । इनके घरके सब काम अपने आप ही चलते रहते हैं; उनको किसी राजा अथवा परिषद्की आवश्यकता नहीं होती । आहार लानेके लिए जब ये किसी अनजान जगह जाती हैं तो रास्तेकी वस्तुओं और चिह्नोंको याद रखती हैं जिसमें लौटते समय रास्ता भूल न जायँ ।

रानी—मधु-मक्खियोंके कुटुम्बमें रानी ही असली मादा है । एक कुटुम्बमें एक ही रानी होती है जो बहुधा सारे कुटुम्बकी माँ होती है । रानी घरकी अन्य मक्खियोंसे बड़ी होती है । उसका कद लम्बा, बदन चमकीला, पर छोटे और शरीर शानदार होता है । रानीके न तो पराग लानेकी टोकरी होती है और न मोम उपजानेकी ग्रन्थि । रानीका डंक कमेरी मक्खियोंके डंकसे लम्बा लेकिन तलवारकी तरह कुछ वक्र होता है । यद्यपि रानी सारे कुटुम्बकी माँ होती है तो भी उसमें माँके पूरे गुण नहीं पाये जाते । अन्य माताएँ अपने बच्चोंका लाड-प्यार, पालन-पोषण करती हैं और उनके अन्य कष्ट-निवारणके हेतु सदा उद्यत रहती हैं लेकिन रानी यह सब काम नहीं करती । उसका काम केवल अंडे देनेका है । इसलिए हम इसको अंडे देनेकी मशीन कह सकते हैं । छत्तेमें रानीके रहनेके लिए कोई विशेष नियत स्थान नहीं होता । वह छत्तेमें अन्य मक्खियोंके साथ रहती है और अंडे देनेके लिए छत्तोंमें बराबर चक्कर लगाती रहती है । रानीको हम मक्खियोंके घरका शासक भी नहीं कह सकते हैं, परन्तु ध्यान रहे कि मक्खियोंके प्रत्येक कुटुम्बकी जन-संख्याकी उन्नति तथा अवनति रानीपर ही निर्भर है । बिना रानीके कोई भी कुटुम्ब शीघ्र ही नष्ट हो जायगा क्योंकि कमेरी मक्खियाँ बहुत दिन तक जीवित नहीं रहती हैं, और वे गर्भित अंडे नहीं दे सकतीं । जब रानी बूढ़ी हो जाती है और उसकी काम करनेकी शक्ति कम होने लगती है तो कमेरी मक्खियाँ पुरानी रानीके अंडेसे नई रानी पैदा करती हैं और या तो वे पुरानी रानीको स्वयं मार डालती हैं या नई रानीपर ही अपने शत्रुको मारनेका भार छोड़ देती हैं ।

रानी ऋतुके अनुसार अंडे देती है । ऐसी ऋतुमें जब फूल नहीं रहते या कम रहते हैं, अर्थात् जब मधुकी ऋतु नहीं रहती तो कम, और अधिक मधुकी ऋतुमें अधिक अंडे देती है । रानी गर्भित अंडोंको कमेरी पैदा होने वाले कोठोंमें और अनगर्भित अंडोंको नर पैदा होने वाले कोठोंमें देती है । रानी अपनी इच्छानुसारही गर्भित और अन-गर्भित अंडे देती है ।

रानी का जन्म—रानी एक विशेष प्रकारके बने हुए कोष्ठमें पैदाकी जाती है जो खैरा रानीके लिए लगभग १ इंच

लम्बा और आध इंच व्यास का होता है। जब कमेरी मक्खियोंको अपने कुटुम्बमें रानीकी आवश्यकता प्रतीत होती है तो वे किसी गर्भित अंडेको लेकर उस पर नई रानीके लिए राजसी कोष्ठ (queen cell) बनाना आरम्भ करती हैं। मक्खियाँ रानीका कोष्ट प्रायः छत्तेके निचले भागमें बनाती हैं। इसका आकार मूँगफली-सा होता है। कोष्ठमें अंडा राजसी भोजन (royal jelly) में डुबो दिया जाता है। ढोलाके निकलनेपर उसे बराबर राजसी भोजन मिलता है। यह कोई रस है जो तरुण कमेरी मक्खियोंके पेटसे निकलता है। यह इतना पौष्टिक होता है कि इसके खानेसे अंडेसे निकला ढोला १६ दिनमें ही पूरा बढ़कर इतना बड़ा हो जाता है कि उससे रानी बनती है। वही ढोला साधारण भोजन (मधु और पराग) खाकर २१ दिनमें कुल इतना ही बढ़ा हो पाता है कि उससे कमेरी बनती है। विश्वास किया जाता है कि ढोलों को प्रथम तीन दिनतक राजसी भोजन ही दिया जाता है। उसके बाद रानी उत्पन्न करनेके लिए राजसी भोजन और कमेरी उत्पन्न होनेके लिए साधारण भोजन दिया जाता है। यदि रानीका कोष्ट एक ओरसे कटा हुआ हो तो समझना चाहिये कि मक्खियोंने रानीको सुरक्षित पैदा नहीं होने दिया, अर्थात् उसे मार डाला है, क्योंकि उनको रानी की आवश्यकता नहीं थी। परन्तु यदि रानीके कोष्ठकी टोपी सिरेसे उतरी हो, अथवा कोष्टसे लटक रही हो तो समझना चाहिये कि रानी कुशलपूर्वक पैदा हो गई है। रानी निकलनेके बाद ३-४ दिन तक अपने कुटुम्बमें घूमती और उसको पहचाननेका यत्न करती है। इसके ५-७ दिन बाद वह नर-मक्खीसे मैथुन करानेके लिए घरसे बाहर निकलती है। रानीके इस प्रकार भोग करनेके निमित्त घरसे बाहर उड़नेको संभोग उड़ान (mating flight) कहते हैं।

रानीका विवाह—सुषुप्तावस्थासे निकलनेके १० दिनके भीतर अवसर देकर रानी संभोगके लिए छत्तेसे बाहर उड़ती है और खूब ऊँचे निकल जाती है। उसके उड़नेके शब्दको सुनकर या उसकी गंध पाकर या किसी अन्य प्रकारसे—अभी ठीक ज्ञात नहीं है कि कैसे—नर मधुमक्खियोंको रानीका पता चल जाता है और सब छत्तोंसे नर उसके पीछे दौड़ पड़ते हैं। रानी इतना तेज़ उड़ती है कि कई नर थककर गिर पड़ते हैं। केवल सबसे बलवान नरको ही रानी पसंद करती हैं। जैसे ही नर रानीसे भोग कर चुकता है मर जाता है और इस प्रकार रानी गर्भधारण करते ही विधवा हो जाती है। रानी उड़ते-उड़ते ही हवामें भोग करती है। कभी-कभी कुमारी रानी ऐसे नरके बीजसे गर्भ धारण करती है जो उसीके छत्तेमें रहते हैं परन्तु ऐसी भेंटसे अच्छी सन्तान पैदा नहीं होती। रानी साधारणतः अन्य छत्तोंके नरोंके साथ भोग करके अपने छत्तेमें लौट आती है। घरकी अन्य मक्खियाँ रानीका स्वागत मधुर भिनभिनाहटसे करती हैं। जब रानी कुशल-पूर्वक घरमें प्रवेश कर लेती है तो मक्खियाँ भी अपने नित्य कर्ममें लग जाती हैं। गर्भाधानके बाद रानीका पेट बढ़ने लगता है और २४ घंटे बाद वह अंडा देने लगती है। पैदा होनेसे

मधुमक्खी अपनी टाँगोंमें पराग लपेट कर छत्तेपर जा रही है।

लेकर अंडे देना प्रारंभ करने तक रानी भोजन अपने-आप खाती है, परन्तु जबसे वह अंडा देना प्रारंभ कर देती है तबसे कमेरी मक्खियाँ ही उसको खिलाती हैं।

यदि रानी पहली उड़ानमें नरसे नहीं मिल सकती है तो दूसरे दिन फिर बाहर उड़ती है। वह ऐसा तीन सप्ताह तक कर सकती है और यदि अपने काममें इतने पर भी सफल न हो तो फिर वह इसका विचार छोड़ देती है और कुमारी ही रह जाती है। रानी बिना गर्भाधानके भी अंडे देती है, लेकिन ऐसे अंडोंसे नर ही पैदा होते हैं। अनगर्भित अंडे देने वाली रानीको शीघ्र ही मार डालना चाहिये क्योंकि यदि ऐसी रानी न हटाई जायगी तो थोड़े ही समयमें सारे छत्तेमें नर ही नर हो जायेंगे और कमेरी मक्खियाँ धीरे-धीरे

कम हो जायँगी। अयोग्य रानीको पहिले तो मक्खियाँ स्वयं ही मार डालती हैं और यदि ऐसा न हो सके तो मधुमक्खी-पालकको यह काम करना चाहिये।

कुमारी रानी संभोगके लिए अनुकूल ऋतुमें साधारणतः ८ बजेसे ३ बजेके अन्दर दिनमें बाहर निकलती है।

रानीका जीवन—रानीका जीवनकाल लगभग तीन वर्ष होता है। कुछ विशेषज्ञ कहते हैं कि प्रत्येक वर्ष या दूसरे वर्षके अन्तमें मक्खियोंके घरोंमें नई रानी देनी चाहिये, क्योंकि लगातार दो वर्षके कठिन परिश्रमसे एक ही रानी तीसरे वर्ष अधिक अंडे नहीं दे सकती। यूरोप और अमेरिकामें मक्खियोंके घरकी रानियाँ तीन वर्ष तक अच्छी तरह तक अंडे देती हैं परन्तु हिन्दुस्तानी रानी लगभग २ साल तक। मधुमक्खियोंके कुटुम्बका बल रानीपर ही निर्भर रहता है; इसलिए प्रत्येक मधुमक्खी-पालकका कर्तव्य है कि वह रानीका विशेष ध्यान रक्खे। डंक होते हुए भी रानी ऐसे-ही कभी इसका प्रयोग करती है। हाँ, यदि कोई दूसरी रानी उसके कुटुम्बमें प्रवेश करे या उसी कुटुम्बमें नई रानी पैदा हो जाय तो जी-जानसे उसके साथ लड़कर उसे नष्ट करके दम लेती है। इस युद्धमें रानियाँ जी खोल कर अपने डंकका प्रयोग करती हैं। एक कुटुम्बमें एकसे अधिक रानी नहीं रह सकती।
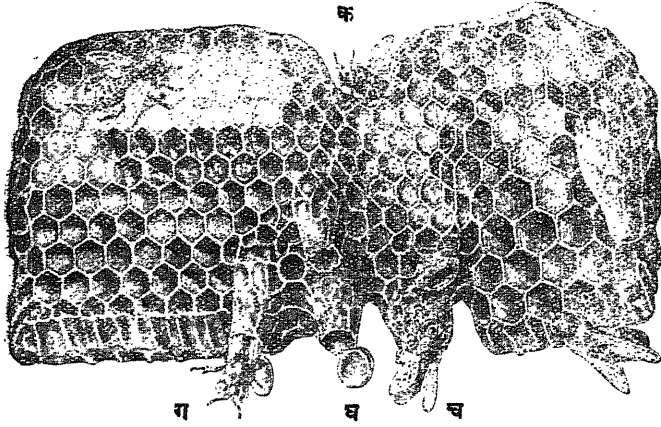
रानी मक्खीका जन्म।

बाईं ओर, ऊपरके भागमें, कुछ कोष्ठ बन्द हैं। इनमें शहद भरा है। उनपर एक कमेरी मक्खी बैठी है। उनके नीचे-वाले कोष्ठोंमें अंडे और ढोले हैं। इनसे भी नीचेवाले कोष्ठोंमें पराग भरा है। सबसे ऊपर, बीचमें, एक छत्तेसे दूसरे छत्तेतक जानेके लिए रास्ता छूटा है जिससे मक्खी (क) आ रही है। इसके नीचेवाले कोष्ठ शहद से भरे हैं। जो कोष्ठ औरोंसे बड़े हैं उनमें नर उत्पन्न होंगे। मूँगफलोंके आकारके जो घर लटकते हुए दिखलाये गये हैं उनमें रानियाँ पैदा होती हैं। चित्रमें ऐसे छः घर हैं, जिनमें एक घर (ख) बन्द है (इसमेंसे) कुछ दिनोंमें रानी निकलेगी), एक घरसे रानी मक्खी (ग) निकल रही है और दो घरों (घ) के मुँह खुले हैं, जिनमेंसे निकली रानियाँ उड़ गई हैं। च कमेरी है जो रानी उत्पन्न करनेके लिए ढोलेको राजसी भोजन खिला रही है।

नर-मक्खी (drone)—नर कदमें रानीसे छोटा और कमेरीसे कुछ बड़ा होता है। नरका पिछला भाग निपट काला और गोल होता है। माथेके ऊपरी भागमें लगातार दो बड़ी-बड़ी आँखें होती हैं परन्तु कमेरी मक्खियों और रानीकी आँखें सिरके अगल-बगलमें होती हैं। नर स्वयं कुछ काम नहीं करता, जीवन भर कमेरी मक्खियोंकी कमाई खाता है। इसका मुख्य काम अवसर मिलनेपर जीवनमें एक बार किसी कुमारी रानीको गर्भ-धारण करानेका है। इसके अतिरिक्त नर घरके तापक्रम बढ़ानेमें कमेरियोंको सहायता देते हैं। वंशवृद्धिके लिए,स्थान-परिवर्तनसे कुछ दिन पूर्व, मक्खियाँ इन्हें पैदा करती हैं। कुमारी रानियोंके गर्भाधानके समय बीतने और शहदकी ऋतु समाप्त होनेपर इनकी कोई आवश्यकता न देखकर कमेरी मक्खियाँ इनको घरसे बाहर निकाल देती या मार डालती हैं। नर-मक्खियोंको डंक नहीं होता जिससे वे शत्रुसे अपनी रक्षा कर सकें। नरोंकी विशेषता यह है कि वे एक कुटुम्बसे दूसरे कुटुम्बमें बिना किसी रुकावटके घुस जाते हैं। कमेरी मक्खियाँ ऐसा नहीं कर सकतीं। रानीकी तरह इन्हें भी न तो पराग

खानेकी टोकरी होती है और न मोम वाली ग्रन्थि। नरोंकी जीभ बहुत छोटी है। नरोंकी आयु कमेरीसे कम होती है; यदि इनको रानी-रहित घरमें रख दिया जाय तो ये ३-४ महीने तक जीवित रह सकते हैं। अन्यथा इनकी सामान्य आयु लगभग दो महीने होती है। नरोंके कोठे प्रायः छत्तेके निचले भागमें होते हैं। वे कमेरी मक्खियोंके कोठोंसे कुछ बड़े होते हैं। इन कोठोंके सिरेकी चौड़ाई करीब ¼ इंच होती है इसलिए जब रानी इन बड़े कोठोंमें अंडे देती है तो उसे अपना शरीर संकुचित नहीं करना पड़ता। फलतः शुक्रपातसे शुक्रके आनेका मार्ग बंद रहता है; इसलिए अंडा अनगर्भित ही रह जाता है। यही कारण है कि इससे नरका जन्म होता है।

कमेरी—मक्खियोंके कुटुम्बमें कमेरियाँ ही अधिक संख्यामें होती हैं, घरका सम्पूर्ण काम ये ही मक्खियाँ करती हैं। कमेरियाँ भी उन्हीं गर्भित अंडोंसे पैदा होती हैं जिनसे रानी लेकिन साधारण भोजन मिलनेके कारण ये रानीकी तरह नहीं बढ़ सकतीं और उनमें जननशक्ति नहीं आ पाती। वे रानीकी तरह नरसे भोग नहीं कर सकतीं, और न गर्भित अंडा ही दे सकती हैं। खैरा कमेरी मक्खियोंके जन्मके लिए जो कोठे बनाये जाते हैं उनकी चौड़ाई ⅕ इंच होती है।

निरीक्षण छत्ते—मधुमक्खियोंकी सच्ची जीवनी जाननेमें निरीक्षण-छत्तोंसे विशेष सहायता मिली है। ये शीशा लगे बक्स होते हैं जिनमें कुल एक छत्ता लगाने भरकी जगह रहती है। ऐसे छत्ते ग्राहकोंको आकर्षित करनेके लिए भी काम आते हैं। जिस किसी दूकानमें ऐसा छत्ता लगा हो वहाँ ग्राहक अधिक जाते हैं क्योंकि मधुमक्खियोंको निकटसे देखनेमें, डंकसे मारे जानेका भय न रहनेपर, अच्छा लगता है।

विदेशमें ऐसे छत्ते पाठशालाओंमें भी रहते हैं क्योंकि इनकी सहायतासे बच्चे शीघ्र मधुमक्खियोंके विषयमें बहुत-सी बात सीख लेते हैं। ऐसे स्थानोंमें छत्तेवाले बक्सको जँगलेपर रक्खा जाता है। बक्सका द्वार बाहरकी ओर रहता है और जँगलेका शेष भाग इस प्रकार बन्द रहता है कि बाहरकी मक्खियाँ घरके भीतर किसी प्रकार न घुस सकें। इस प्रकार बच्चोंके डंककी मार खानेकी कोई संभावना नहीं रहती।

बहुतसे मधुमक्खी-पालक स्वयं एक निरीक्षण-छत्ता रखते हैं। मधुमक्खियोंकी रहन-सहनके ज्ञानसे उन्हें लाभ होता है।

एक विशेषज्ञ कई बार असफल होनेपर ऐसा प्रबन्धकर सका कि मक्खियोंने शीशेके समानान्तर कोठे बनाये और कई कोठे ऐसे थे कि उनके ६ पहलोंमेंसे एक पहलका काम मक्खियोंने शीशेसे-ही चला लिया। इन छत्तोंके निरन्तर

प्राकृतिक छत्ते को काटकर मक्खियाँ इच्छानुसार स्थानमें ले जायी जा सकती हैं।

निरीक्षणसे अंडे देना, ढोले निकलना, प्यूपा बनना, मक्खी निकलना आदि बड़ी सुगमता और सूक्ष्मतासे देखा जा सका।

जो निरीक्षण छत्ते बनाना चाहें उन्हें ए० आई० और ई० आर० रूठकी पुस्तक (दि ए-बी-सी ऐंड एक्स-वाई-ज़ेड ऑफ बी कलचर) पढ़नी चाहिए।

मक्खियोंकी रहन-सहन

सहयोग—प्राणी-संसारमें विरला ही कोई ऐसा कुटुम्ब होगा जिसमें इतना सहयोग देखनेमें आवे जितना मधुमक्खियोंके कुटुम्बमें। मधुमक्खियोंके छत्तेमें कोई राजा या

शासक नहीं होता। रानी-मक्खी नामभरकी ही रानी है। उसका काम केवल अंडा देना होता है और वह दूसरों पर किसी प्रकारका शासन नहीं करती। कमेरी मक्खियोंको उनके कामके अनुसार दो विभागोंमें बाँटा जा सकता है। (१) घरपर काम करनेवाली और (२) बाहर काम करनेवाली। बाहर काम करनेवाली मक्खियाँ छत्तेके भीतर कुछ भी काम नहीं करतीं। न तो वे अंडेसे निकले ढोलोंको खिलाती हैं, न छत्ता बनाती हैं और न छत्तोंकी सफ़ाई करती हैं। ये सब काम कम आयु वाली मक्खियों पर छोड़ दिया जाता है। कम आयु वाली मक्खियोंको जो-जो काम करने पड़ते हैं वे ऊपर बताये जा चुके हैं। मकानकी सफ़ाईमें उन्हें मरे ढोलों या मक्खियोंको बाहर फेंकनेका भी काम करना पड़ता है। जब उनकी आयु कुछ अधिक हो चलती है तो उनमेंसे कुछको छत्तेके दरवाज़ेपर पहरा देनेका कार्य भी करना पड़ता है। कामोंका बँटवारा ऐसा सच्चा रहता है कि आश्चर्य होता है। सभी मक्खियाँ अपना अपना काम अच्छी तरह जानती हैं। इतनी मक्खियोंके होते हुए भी उनके काममें किसी प्रकारकी गड़बड़ी होते नहीं देखी गई।

जब फूलोंकी ऋतु बीत जाती है और इसलिए मकरंद नहीं आता रहता तो रानी अंडे देना भी प्रायः बन्दकर देती है। उस समय मक्खियाँ सुस्त और चुपचाप छत्तेपर पड़ी रहती हैं। जब जाड़ा पड़ता है तब एक दूसरेसे इस प्रकार सट जाती हैं कि सर्दीसे कुछ बचाव हो सके।

कुटुम्बोंकी चित्तवृत्ति—सभी जानते हैं कि कोई कुटुम्ब बहुत-सा मधु-एकत्रित करता है, कोई कुटुम्ब बहुत ही कम। यह भी सत्य है कि कभी-कभी निर्बल कुटुम्ब किसी अन्य अत्यन्त सबल कुटुम्बकी अपेक्षा अधिक मधु-एकत्रित करता है। किसी-किसी कुटुम्बकी मक्खियाँ अति परिश्रमी होती हैं। इसलिए मधुमक्खी-पालक ऐसे कुटुम्बकी रानीकी संतानसे ही कुटुम्बोंकी संख्या बढ़ाते हैं।

वैज्ञानिकोंने विविध कुटुम्बोंकी विभिन्न चित्तवृत्तियोंके समझनेकी चेष्टा की है। एक कुटुम्बके सदस्योंकी संख्या दूसरे कुटुम्बके सदस्योंकी संख्याके बराबर हो सकती है, परन्तु संभवतः एकमें अल्पवयस्क और बूढ़ी मक्खियोंकी संख्या दूसरे कुटुम्बकी अपेक्षा बहुत अधिक हो सकती है; अर्थात् उसमें प्रौढ़ा कमेरियोंकी संख्या अपेक्षाकृत बहुत कम रह सकती है और तब यह कुटुम्ब बहुत कम मधुसंचय कर पायेगा। प्रौढ़ा कमेरियाँ ही मधु एकत्रित करनेका असली काम करती हैं और उन्हींकी संख्यापर मधुका परिमाण निर्भर है। परन्तु इसके अतिरिक्त कुटुम्बकी चित्त-वृत्ति—परिश्रमी होना या आलसी होना—मक्खियोंके गोत्रपर भी निर्भर होता होगा।

स्त्री राज्य—कुटुम्बपर शासन रानी नहीं करती। राजा कोई होता ही नहीं। शासन वस्तुतः प्रौढ़ा कमेरियाँ ही करती हैं। वे ही कुटुम्बकी नीति और भाग्य निर्धारित करती हैं। वे रानीपर भी शासन करती हैं। इन प्रौढ़ाओंकी आयु १४ दिनसे २१ दिनकी रहती होगी और उस समय उनका शारीरिक बल महत्तम रहता है। ये ही प्रौढ़ा निश्चित करती हैं कि कितने नर उत्पन्न किये जायँ और उसी के अनुसार वे बड़े कोठे बनाती हैं जिनमें जब कभी रानी अंडा देती है

प्रकृतिक छत्तेसे मक्खियाँ जालमें फँसा कर भी इच्छानुसार स्थान ले जायी जा सकती हैं।

तो शरीरके संकुचित न होनेके कारण अनगर्भित अंडे ही उतरते हैं और इसलिए नर उत्पन्न होते हैं। ये ही प्रौढ़ा मक्खियाँ निश्चित करती हैं कि नवीन रानीकी आवश्यकता है या नहीं। आवश्यकता होनेपर वे रानीके साधारण अंडे-

ज्योलीकोट मधुवटी (एपियरी) में कृत्रिम छत्ते।
लेखक छत्तोंका निरीक्षण कर रहा है।

को राजसी भोजन खिलाकर और विशेष बड़े राजसी कोठेमें पालकर रानी उत्पन्न करती हैं। वे एक रानी-ढोला पालकर राम-आसरे नहीं बैठी रहतीं। जब उन्हें एक रानीकी आवश्यकता पड़ती है तो वे पाँच या छः रानी उत्पन्न करती हैं, जिनमें यदि एक मर जाय तो दूसरी तैयार रहे। रानियोंके उत्पन्न होनेपर ये रानियाँ एक दूसरे से लड़ती हैं और इस प्रकार सबसे बलवती रानी कुटुम्बको प्राप्त होती है। प्रौढ़ा मक्खियाँ ही निश्चित करती हैं कि कुटुम्ब कब इतना बड़ा हो गया कि पोए निकाले जायँ। प्रौढ़ा ही मक्खियाँमेंसे कुछ द्वारपर रक्षकका काम करती हैं और जब कभी विजय-युद्ध या लूटके लिए मक्खियोंका समुदाय चलता है तो प्रौढ़ा ही अगुआ बनती हैं।

जब पोआ निकलता है तो उनमें अधिकांश मक्खियाँ प्रौढ़ा ही रहती हैं। अल्पवयस्क और बूढ़ी मक्खियाँ दोनों अच्छी तरह काम नहीं कर सकतीं। बूढ़ी मक्खियोंके पंख अकसर कटे-फटे रहते हैं और वे अच्छी तरह उड़ नहीं सकतीं। इसलिए जब कुटुम्बकी जनसंख्या इतनी अधिक हो जाती है कि पुराने छत्तोंमें रहनेमें कष्ट होता है तो प्रौढ़ा मक्खियाँ पुराने कुटुम्बके संचालनके लिए पाँच छः रानी-प्यूपाको घरोंमें बन्द करके और इस प्रकार रानी के उत्पन्न होनेका प्रबंध करके पुरानी रानीको साथ लेकर या, यदि वह निकम्मी हो चली हो तो एक नयी गर्भित रानीको साथ लेकर अन्यत्र उड़ जाती हैं और नयी जगह छत्ता बनाती हैं।

इसी प्रकार जब रानी निकम्मी हो जाती है तो प्रौढ़ा मक्खियाँ उसे मार डालती हैं। निकम्मी बूढ़ी मक्खियोंको, लूली-लँगड़ी पैदा हुई अल्पवयस्क मक्खियोंको और अनावश्यक नरोंको प्रौढ़ा ही छत्तेसे बाहर गिरा देती हैं।

कुटुम्ब-गंध—विश्वास किया जाता है कि प्रत्येक कुटुम्बकी अपनी विशिष्ट गंध होती है। इसीके कारण कोई अपरिचित मक्खी छत्तेमें घुस नहीं पाती। यदि वह घुसनेकी चेष्टा करती है तो द्वार-रक्षक मक्खियाँ उसे पकड़कर डंक मारती हैं और जान ले लेती हैं। केवल नर और अत्यंत अल्पवयस्क मक्खियाँ ही दूसरे छत्तोंमें शरण पा सकती हैं। अपरिचित प्रौढ़ा मक्खियाँ लुटेरिन समझी जाती हैं और इसलिए उनके साथ उपर्युक्त बर्ताव किया जाता है। यदि ऐसा प्रबंध न होता तो अवश्य ही अनजान मक्खियाँ आकर छत्तेका संचित मधु चुरा या लूट ले जाया करतीं।

कुटुम्ब-गंधके अतिरिक्त प्रत्येक रानीकी भी अपनी विशिष्ट गंध होती है। परिणाम यह होता है कि यदि किसी कुटुम्बमें नवीन रानी रख दी जाय तो वह तुरन्त पकड़ जायगी—और इसे प्रौढ़ा मक्खियाँ मार डालेंगी। मधुमक्खी-पालकोंको इससे विशेष असुविधा होती है, और किसी कुटुम्बमें नवीन रानी देनेके लिए अनेक उपाय करने पड़ते हैं जिनका ब्योरा अन्यत्र दिया जायगा।

विश्राम—मकरंद या परागसे लदी उड़ती हुई आनेके कारण मक्खियाँ थक जाती हैं। बोझ उतारनेपर कमेरी

कभी-कभी तुरंत वापस चली जाती है, परन्तु साधारणतः वह कुछ विश्राम करके बाहर जाती है। विश्राम-काल दो-चार मिनटसे लेकर आधे दिन तक हो सकता है। कदाचित यह इसपर निर्भर है कि बाहर कितना आहार प्राप्य है। जब अधिक पराग या मकरंद मिलता होगा तो विश्राम-कालकी मात्रा घटा दी जाती होगी।

विश्रामकेलिए मक्खी किसी खाली कोष्ठमें घुस जाती है और सो रहती है। अकसर वह सोती तभी है जब घंटे-आध घंटे तक विश्राम करना रहता है। सोनेपर साँसकी गति भी धीमी पड़ जाती है। नींद खुलनेपर, मक्खी पीछे चलकर कोठेसे बाहर निकल आती है, अपने सिरमें कंघी करती है और फिर मकरंद आदिकी खोजमें वेगसे निकल पड़ती है।

विश्वास किया जाता है कि कुटुम्बके सभी सदस्य इसी प्रकार सोते हैं। रानी और नर भी इसी प्रकार सोते हैं, परन्तु वे कोठेमें नहीं सोते।

जब मक्खियाँ लूटमें लगी रहती हैं तब बात ही कुछ दूसरी हो जाती है। तब छत्तेपर लौटकर आने वाली कमेरियाँ अत्यंत उत्तेजित रहती हैं और थोड़े ही समयमें सारे कुटुम्ब में खलबली मच जाती है। तब कोई नहीं सोता और सभी मक्खियाँ अधिक-से-अधिक लूटका माल छत्तेमें भर लेनेपर तुली रहती हैं।

निद्रा—ऊपर दिनके समयका सोना बतलाया गया है। जब अनुकूल ऋतु बीत जाती है और फूलोंसे रस नहीं निकलता, और इसलिए रातमें मक्खियोंको इस रसको गाढ़ा करने का काम नहीं करना पड़ता, तो मक्खियाँ रात को प्रशांत हो जाती हैं जो प्रायः निद्रा ही है।

पहाड़ी स्थानोंमें जब जाड़ेकी ऋतु आती है तो मक्खियाँ एक दूसरेसे अधिकाधिक सटकर रात बिताती हैं। जब कड़ाकेकी सर्दी पड़ती है तो वे एक दूसरेपर लद जाती हैं और मक्खियोंका समूह इस समय गेंद-सा बन जाता है। ठंडकके कम होने पर ये फिर बिखरकर छत्तेपर फैल जाती हैं। यदि किसी समय तापक्रम ५७ डिगरी फारन-हाइटसे कम हो जाता है तो मक्खियाँ व्यायाम करके अपना तापक्रम बढ़ाने लगती हैं। अभी ठीक नहीं ज्ञात है कि यह व्यायाम किस प्रकार का है। अनुमान किया जाता है कि संभवतः मक्खियाँ एक दूसरे को खींचती होंगी या आगे-पीछे झूमती होंगी या अपने-अपने पंख चलाती होंगी। जब बाहर इतनी ठंडक पड़ती है कि मक्खियोंके समूह-का तापक्रम ३२ डिगरी फारनहाइटके लगभग हो जाता है तब मक्खियाँ मर जाती हैं (स्मरण रहे कि इस तापक्रम पर पानी जम कर बरफ हो गया)।

खेल—मक्खियाँ केवल परिश्रम और विश्राम में ही समय नहीं बिताती, वे खेलके लिए भी कुछ समय निकाल
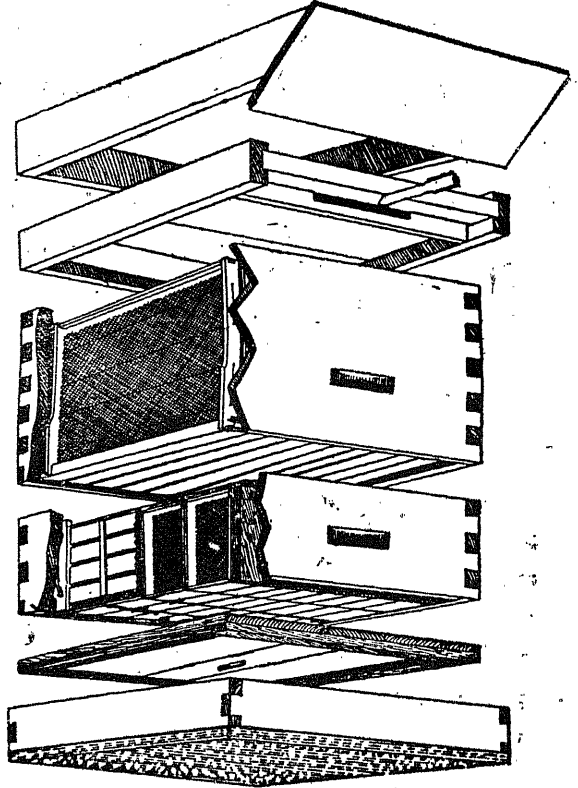
आधुनिक करंडकी बनावट।
इसके विविध खंड एकके ऊपर एक रक्खे रहते हैं

लेती हैं, विशेषकर अल्पवयस्क मक्खियाँ। कभी-कभी तो छत्तेके आस-पास इतनी मक्खियाँ एकत्रित हो जाती हैं और इतनी चहल-पहल दिखलाई पड़ती है कि जान पड़ता है कि लूट मची है (लूटका वर्णन एक अलग अध्यायमें

दिया जायगा)। परन्तु दो-चार मिनट तक ध्यानपूर्वक देखने से तुरन्त पता चल जाता है कि यह लूट नहीं है, क्योंकि खेलमें लगातार एक तरहसे धमाचौकड़ी नहीं मची रहती। इस प्रकारकी उछल-कूद प्रायः ऐसे अवसरोंपर होती है जब दिन अच्छा रहता है और वर्षा या सर्दीके कारण मक्खियाँ कुछ दिनोंतक बाहर नहीं निकल पायी रहतीं। यदि पानी बरसनेके लक्षण दिखलाई पड़ते हैं
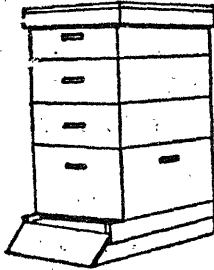
करंडोंका बाह्य आकार

नीचे मक्खियोंके उतरनेकेलिए पटरा और करंडका पाया है। ऊपर शिशुखंड है उसके ऊपर तीन मधुखंड हैं। सबसे ऊपर ढक्कन है। भारतवर्षमें साधारणतः एक ही मधुखंडसे काम चल जाता है।

और आकाश बादलोंसे ढका रहता है तो इस प्रकारके खेलके लिए मक्खियाँ कभी नहीं निकलतीं।

नाच—जब कोई कमेरी मकरंद लेकर आती है तो भार उतारनेके बाद वह विशेष प्रकारसे नाचकर चलती है। वह छोटा सा चक्कर उचक-उचक कर लगाती है और फिर उसी चक्करको उलटी दिशासे लगाती है। नाचनेमें लगभग आधा मिनट लगता है। कभी-कभी मक्खी छत्तेपर तीन-चार जगह नाचती है। वैज्ञानिकोंका विचार है कि यह नाच अन्य कमेरियोंको सूचना है कि मकरंदसे भरे फूल देखे गये हैं। जब किसी मक्खीको परागसे लदे फूल मिलते हैं तो छत्तेपर जाकर वह दूसरे प्रकारसे नाचती है। तब वह अपनी पूँछको हिलाती हुई अगल-बगल कूदती है। अन्य प्रकारके नाच भी हैं, परन्तु सबका अर्थ अभी तक समझमें नहीं आया है।

रंगोंकी पहचान—अब सिद्ध हो चुका है कि मक्खियाँ रङ्ग भी पहचानती हैं और गंध भी। जहाँ मधुमक्खियोंके बहुतसे कुटुम्ब पाले जाते हैं और इसलिए उनके कृत्रिम घरोंको पास-पास रखना पड़ता है वहाँ इन घरोंको भिन्न-भिन्न रङ्गोंसे रङ्ग देना पड़ता है, अन्यथा बड़ी गड़बड़ी होती हैं। कई मक्खियाँ भूलसे गलत घरमें घुसने लगती हैं और इसलिए मारी जाती हैं। रंग जानेपर मक्खियाँ रङ्ग पहचान कर भीतर घुसती हैं और कभी गड़बड़ी नहीं होती। परन्तु ऐसा जान पड़ता है कि मक्खियाँ लाल रङ्ग नहीं देख पातीं। उनको लाल प्रायः कालेकी तरह दिखलाई पड़ता होगा।

गृह-प्रेम—मधुमक्खियोंका गृह-प्रेम बड़ा सुदृढ़ होता है। यदि इनके कृत्रिम घरको उठाकर नवीन जगह रख दिया जाय तो बाहर निकलनेपर घरसे दूर जानेके पहिले मक्खियाँ घरके चारों ओर चक्कर काटकर आस-पासकी वस्तुओंको देख अपने घरका स्थान अच्छी तरह पहचान
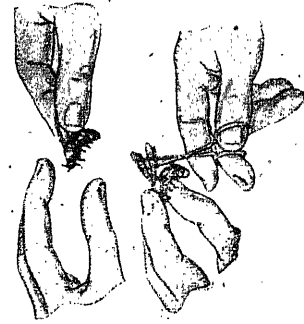
(क) रानी का पर काटना।

पर काटकर रखनेसे रानीके भाग जानेका डर नहीं रहता, परन्तु पर काटते समय ध्यान रखना चाहिए कि रानी का पेट ज़रा भी न दबे; उसे पर या धड़के सहारे पकड़ना चाहिए।

लेंगी और तब दूर जायँगी। परन्तु यदि घरको दो चार फुट ही हटाया जाय तो मक्खियाँ घरपर न लौटकर घरके पुराने स्थान पर लौटेंगी। इटैलियन मधुमक्खियाँ तो अपने पुराने स्थानपर आकर, न कुछ मिला तो ज़मीनपर ही, पड़ रहेंगी और भूखों मर जायँगी, परन्तु फुट-दो फुटपर

हटाये गये घरमें न घुसेंगी। हाँ, घर केवल दो-चार इंच हटाया गया हो तो बात दूसरी है।

योग्यतम ही बचते हैं—मक्खियोंके राजमें भी केवल योग्यतम बचने पाते हैं। मक्खियाँ इस नियमका पालन बड़ी निर्दयतासे सदा करती हैं। जब कोई कमेरी ऋतु भर खूब परिश्रम कर लेती है और कुटुम्बका भांडार भरनेमें भरपूर सहायता कर चुकती है तो उसके पंख अकसर कट-फट जाते हैं, वह बूढ़ी और कमजोर हो जाती है और ठीकसे उड़ नहीं पाती। तब कुटुम्बकी प्रौढ़ा और अल्पवयस्क सदस्याएँ किसी प्रकार भी उसका गुण नहीं मानतीं। उसको वे भांडारमें संचित मधु खाने नहीं देतीं। इतना ही नहीं उसे छत्तेके बाहर निकाल देती हैं जहाँ वह भूखों मर
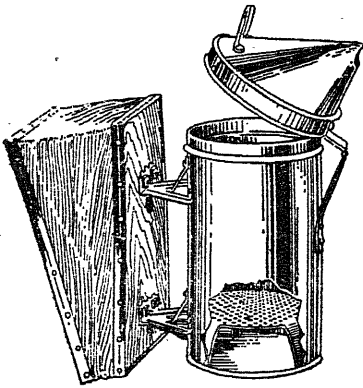
धुआँकर।
इसमें चीथड़ा जलाकर भाथी दबाने से धुआँ निकलता है।

जाती है। कभी-कभी तो प्रौढ़ाएँ बूढ़ी मक्खियोंको आध मील दूरपर छोड़ आती हैं जहाँ से वे न उड़ आ सकती हैं और न रेंग कर सकती हैं; वे वहीं मर जाती हैं।

इसी प्रकार लूली-लँगड़ी अल्पवयस्क मक्खीपर भी कोई दया नहीं करता। उन्हें भी ढकेल कर गिरा दिया जाता है। यदि इनमें इतनी शक्ति हुई कि वे रेंगकर छत्तेपर लौट आ सकें तो कोई प्रौढ़ा उसे पकड़कर उड़ जायगी और दूर छोड़ आयेगी।

केवल योग्यतम बचेंगे (Survival of the fittest) वाला नियम रानीपर भी लगाया जाता है। जब वह पर्याप्त मात्रामें अंडे देनेसे अयोग्य हो जाती है तो उसे भी प्राण खोना पड़ता है। उसे तुरंत मार डालना मूर्खता होगी, इसलिये वह छत्तेमें ही रहने दी जाती है, परन्तु रानी-कोष्ठ बना दिये जाते हैं जिनमेंसे नई रानियाँ उत्पन्न होंगी। जब कोई नयी रानी अंडे देने लगती है तो पुरानी राजमाताको या तो वही मार डालती है, या प्रौढ़ा मक्खियाँ मार डालती हैं, या नयी और पुरानी रानियाँ दोनों कुछ समय तक अंडे देती हैं और अन्तमें बूढ़ी रानी काफी तो मार डाली जाती है। छत्तेका नियम यही जान पड़ता कि काम करो तो खाओ, नहीं तो जाओ।

रानी—भिन्न-भिन्न रानियोंके स्वभावमें बड़ा अन्तर रहता है। कुछ तो बड़ी डरपोक होती हैं और जरा-सा भी खटका होने पर भागने लगती हैं। दूसरी रानियाँ जरा भी नहीं डरतीं और अपना काम करती चलती हैं। यदि रानी इतनी डरपोक हो कि अपने ही कुटुम्बकी कमेरियोंके छू जानेसे या पराग आदिके लग जानेसे घबड़ा जावे तो कमेरियाँ उसे मार ही डालती हैं।

गर्भित होनेके पहले रानी स्वयं अपना आहार लेती है परंतु जब वह अंडे देने लगती है तब कमेरियाँ उसे खिलाती हैं। इसके लिए रानी अपने स्पर्शश्रृङ्गसे कमेरियोंके स्पर्शश्रृङ्गोंको छूती रहती है और जब कोई ऐसी कमेरी आती है जो अपने पेटमें रानीको खिलानेके लिए उचित आहार लिये रहती है तो वह अपना मुँह खोल देती है। तब रानी अपनी जीभ उसके मुँहमें डालकर भोजन ग्रहण कर लेती है। नर भी इसी तरह भोजन पाते हैं।

अंडों की संख्या ऋतुपर और अल्पवयस्क मधुमक्खियों की संख्या पर निर्भर है। अंडेसे निकलने ढोलोंको पहले राजसी भोजन, फिर मधु और पराग चाहिये। राजसी अल्प वयस्क मधुमक्खियोंके पेटसे निकलता है। वे ही खिलाने का काम भी करती हैं। इसलिये उनकी संख्या कम रहने पर रानी अंडे कम देती है। ऋतुके प्रतिकूल रहनेपर भी रानी अंडे कम देती है, क्योंकि तब काफी प्राग और मधु नहीं मिलता। अंडों की संख्या रानीकी आयुपर भी निर्भर है। जब उसकी आयु अधिक हो चलती है। नवीन रानियाँ गर्भित होनेके बाद खूब अंडे देती है। यदि छत्तेमें कोठोंकी कमी रहती है तो रानी कभी-कभी

एक कोठेमें दो-दो अंडे देती है (प्लेट ३ देखें)। यदि नर कोष्ठ (जो कमेरियोंके कोष्ठसे बड़े होते हैं) छत्तेमें कहीं न रहें तो रानी कमेरियोंके कोठेमें ही ऐसे अंडे देती है जिससे नर उत्पन्न होते हैं। इसलिए नर उत्पन्न करना या न करना रानीकी इच्छापर भी निर्भर है।

जब कुटुम्ब आनंदसे उन्नति करता रहता है तो रानी का बड़ा आदर-सत्कार होता है। अल्पवयस्क मधुमक्खियाँ पंक्ति-बद्ध होकर रानीको घेरे रहती हैं (मुखपृष्ठका रंगीन चित्र देखें)। वे रानीको खिलानेके लिए उत्सुक रहती हैं और सभी अपने बुरुशोंसे रानीको सँवारनेके लिए तैयार रहती हैं। वे केवल उसका लाड़-प्यार ही नहीं करतीं, वे उसको कंघी करती हैं, उसे स्नान कराती हैं और उसके मल-मूत्रको दूर फेंकती हैं। जब रानी अपनी मत्त गज-गामिनी गतिसे चलती है—और सभी रानियाँ इसी प्रकार राजसी ठाटसे चलती हैं—तो अल्पवयस्क मक्खियाँ एक दूसरेसे मानो होड़ लगाती हैं कि रानीका सत्कार कौन अधिक कर पायेगा। उन्हें कोई पारितोषिक पानेकी आशा नहीं रहती। मनुष्योंमें तो जब कोई नेता किसी व्यक्ति-विशेषपर दयालु होता है तो, जैसा सभी जानते हैं, इसमें कुछ स्वार्थ रहता है; और नहीं कुछ तो आगामी चुनावमें वोट चाहिए। परन्तु मधुमक्खियोंके राजमें ऐसी क्षुद्रता नहीं देखी जाती।

रानियोंको मृत्यु-दंड—जब कभी मधुमक्खियाँ अपनी रानीके असंतुष्ट हो जाती हैं तो उसे घेरकर खड़ी हो जाती हैं और पागलकी तरह उसपर टूट पड़ती हैं। कोई उसे डंक मारनेकी चेष्टा करती हैं तो कोई उसकी टाँग तोड़ना चाहती है और कोई पंख ही नोच लेती है। पहले दस बारह मक्खियाँ रानीपर टूटती हैं परन्तु पीछे तो इतनी मक्खियाँ पिल पड़ती हैं कि मक्खियोंका समूह गेंद-सा दिखलाई पड़ता है। कभी-कभी तो पालककी असावधानी-से रानियाँ इस प्रकार मारी जाती हैं। यदि कृत्रिम घरोंके खोलनेमें कोई खटर-पटर हुई और कमेरियाँ यह न समझ पाईं कि कोई मनुष्य यह सब कर रहा है तो वे रानी बेचारीपर ही धावा कर देती हैं। अभी तक कोई नहीं बतला सका है कि मक्खियाँ कैसे ऐसी ना समझी कर बैठती हैं।

जब कभी कोई अपरिचित रानी किसी कुटुम्बके बीच रख दी जाती है तो उसपर भी धावा उपर्युक्त रीतिसे ही होता है। — दयाराम जुगड़ान

रेशमके कीड़े

रेशमी वस्त्र अति कोमल और सुन्दर होते हैं। भारत-वासी तो उसे अत्यंत पवित्र समझते हैं और भोजन करते समय रेशमी या ऊनी वस्त्रोंका ही उपयोग करते हैं।

आजकल बाज़ारोंमें दो प्रकारकी रेशम पायी जाती है, एक बनावटी रेशम और दूसरी प्राकृतिक। 'प्राकृतिक रेशम' छोटे-छोटे कीड़ोंसे प्राप्त होती है। रेशम उत्पन्न करने वाले कुछ कीड़े तो स्वाभाविक अवस्थाहीमें पाये जाते हैं और कुछ पाले भी जाते हैं।

व्यवसायकी दृष्टिसे वही रेशम महत्वपूर्ण है जिसे पालतू कीड़े उत्पन्न करते हैं। रेशम पैदा करने वाले चार प्रकारके पालतू कीड़े होते हैं जो भिन्न-भिन्न प्रकारकी रेशम पैदा करते हैं।

तूत या मलबरी-रेशमको उत्पन्न करनेवाले कीड़ोंका प्रधान भोजन शहतूतकी पत्तियाँ है।

टसर-रेशम उत्पन्न करने वाले कीड़े जङ्गली वृक्षोंकी पत्तियोंको खाकर अपना गुजर बसर करते हैं।

मूँगा-रेशमके उत्पन्न करनेवाले कीड़े प्रधानतः पालतू अवस्थाहीमें पाये जाते हैं। आसाम और पूर्वीय बङ्गालमें अपने उपयोग भरको लोग पैदा कर लेते हैं।

जिन कीड़ोंकी बदौलत हमें अंडी रेशम प्राप्त होती है उन्हें अटैकस रेसिनाई कहते हैं। ये कीड़े प्रमुखतः पालतू ही अवस्थामें पाये जाते हैं और एकमात्र अंडीके पत्तोंको खाते हैं। अंडी-रेशमके कीड़ोंका घर आसाम है। अंडी-रेशम कुछ-कुछ लाल लिये हुए सफेद होता है।

प्राकृतिक रेशमोंमें अंडी-रेशमही 'घरेलू-रोज़गार' के लिये अधिक उपयुक्त है, संयुक्तप्रान्तका जलवायु भी इस कारबारके लिये ठीक ही है। इसलिये यहाँ भी यह काम लाभदायक होगा। प्रायः सभी ज़मीदारों और किसानोंके खेतों और बाड़ियोंमें अंडी बोयी जाती है। इन्हींके पत्तों-को खिलाकर ये कीड़े पाले जा सकते हैं।

अन्य बहुतसे कीड़ोंकी भाँति अंडी-रेशमके कीड़ोंके जीवन-क्रमकी भी चार अवस्थाएँ होती हैं। अर्थात् अंडे, इल्लियाँ भुइली, या भुदिली। रेशम कीड़ोंके मुँहसे निकली हुई लारसे बनती है। वायुके संसर्गमें आनेसे लारके तार कड़े और मजबूत हो जाते हैं।

अंडी-रेशम उत्पन्न करनेके लिये उनके कीड़ोंको पालना

तूत-रेशमकेकीड़ेका जीवन-क्रम
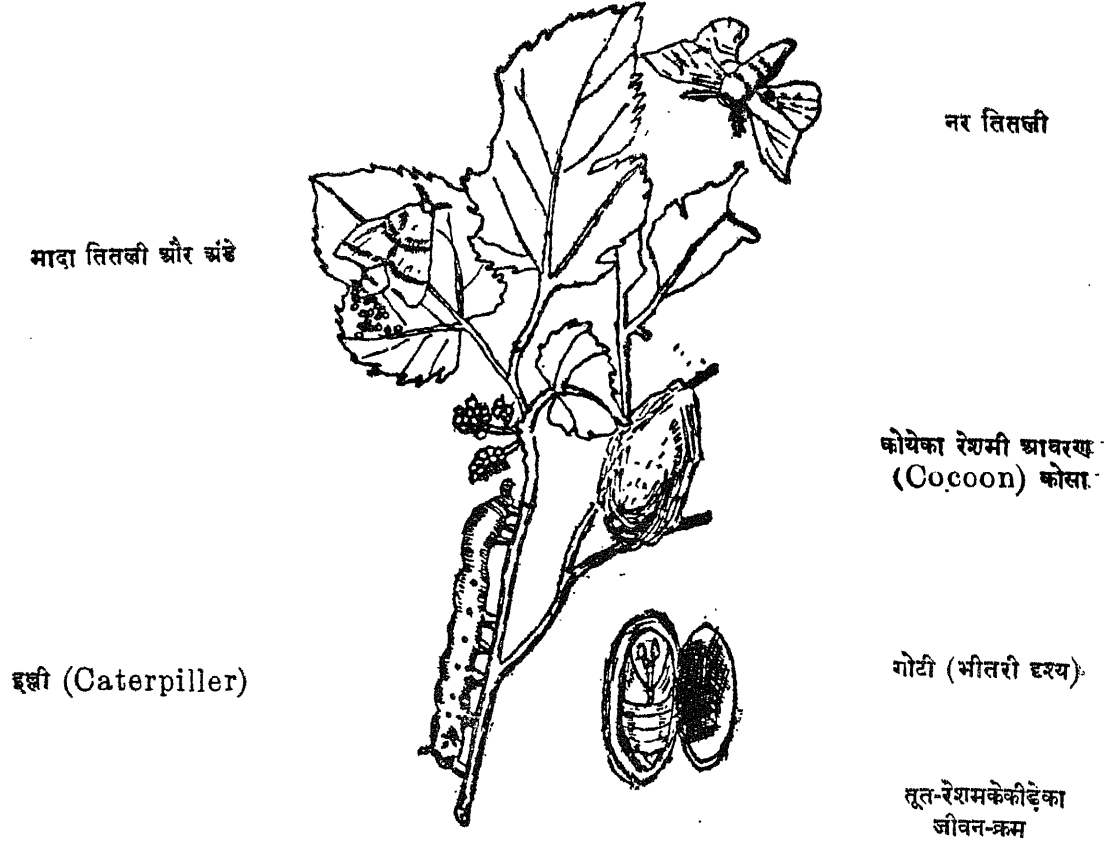
आवश्यक है। पूसासे नीरोग अंडे प्राप्त हो सकते हैं।

बाहरसे जब अंडे आ जावें तो उन्हें छेद वाले बक्स या चलनीमें कागज अथवा वस्त्रके टुकड़ोंपर रख देना चाहिये। अंडे गोल और चपटे होते हैं और उनका रंग प्रायः भद्दा सफेद होता है। अंडोंसे कीड़े (इल्लियाँ) निकलनेकी अवधि गर्मीमें एक सप्ताह और सर्दीमें लगभग तीन सप्ताह होती है।

जब अंडोंसे कीड़े निकलने वाले हों तो उनपर अंडीकी मुलायम पत्तियाँ बिछा देनी चाहिये। अंडोंसे निकलकर नन्हीं-नन्हीं इल्लियाँ (कीड़े) इन पत्तियोंपर रेंगने लगेंगी। जब वे खा ली जावें तो ताज़ी पत्तियाँ देनी चाहिये।

कीड़ोंके जीवन चक्रमें इल्लीकी अवस्था बाढ़की अवस्था है। इस अवस्थामें वे कई बार अपनी चमड़ी या केंचुल बदलते हैं। ये कीड़े चार बार प्रायः हर तीसरे दिन केंचुल बदलकर बढ़ते हैं। इस अवस्थामें यह खूब भोजन करते हैं।

पूर्ण बाढ़को पहुँच जानेपर ये कीड़े लगभग साढ़े तीन इञ्चके हो जाते हैं। अब ये कीड़े इधर उधर रेंगने लगते
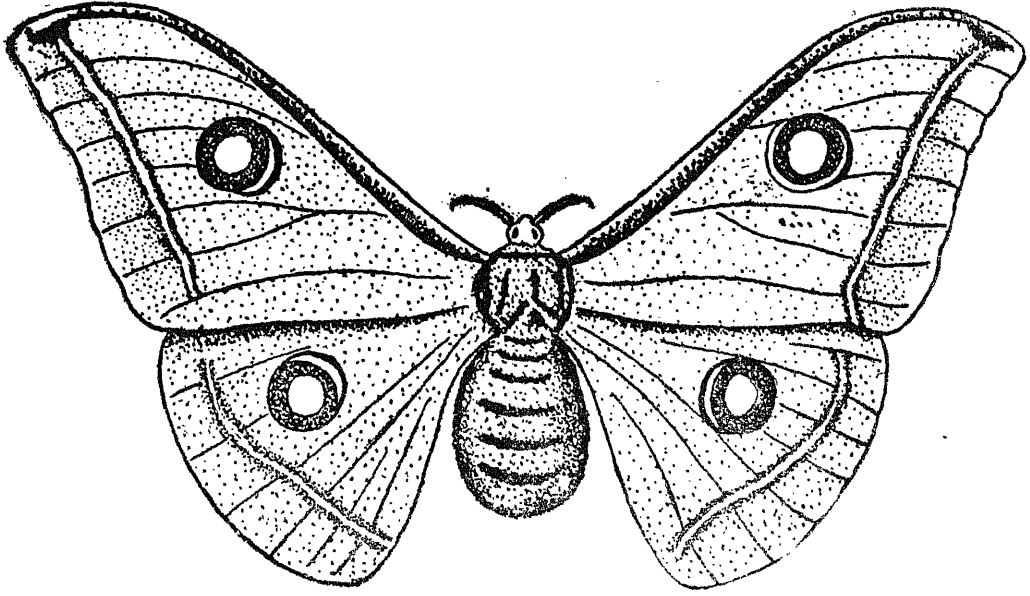
टसरी-रेशमकी नर-तितली

हैं और सफेद कीड़ोंका रङ्ग पीला हो जाता है।

कीड़े रातको गोटियाँ (कोए) बनाना आरंभ कर देते हैं। गर्मियोंमें पाँच दिन और जाड़ोंमें आठ दिनके बाद गोटियाँ बनकर तैयार हो जाती हैं। इन्हीं गोटियोंके भीतर
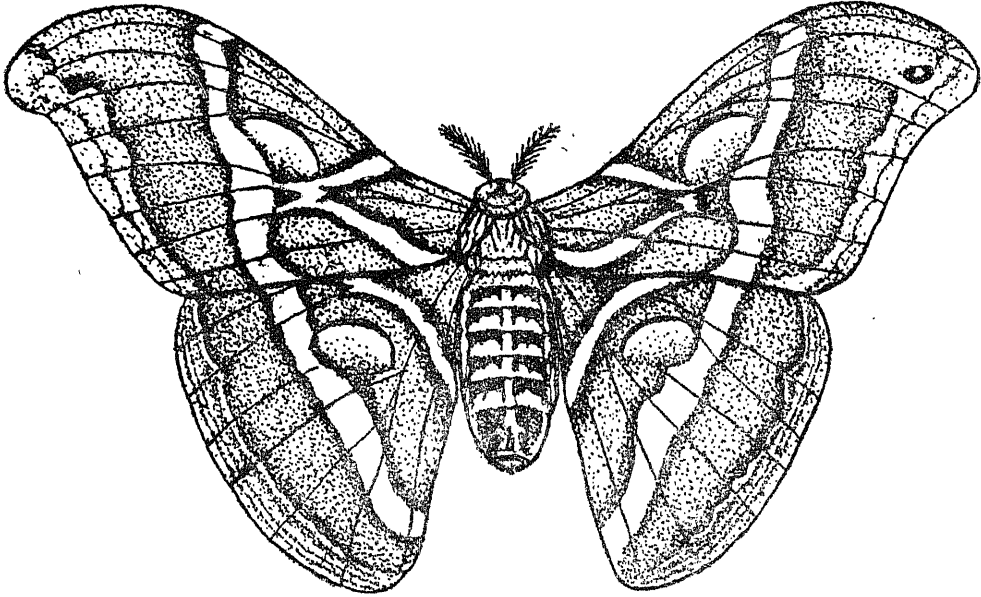
अंडी-रेशमकी मादा-तितली
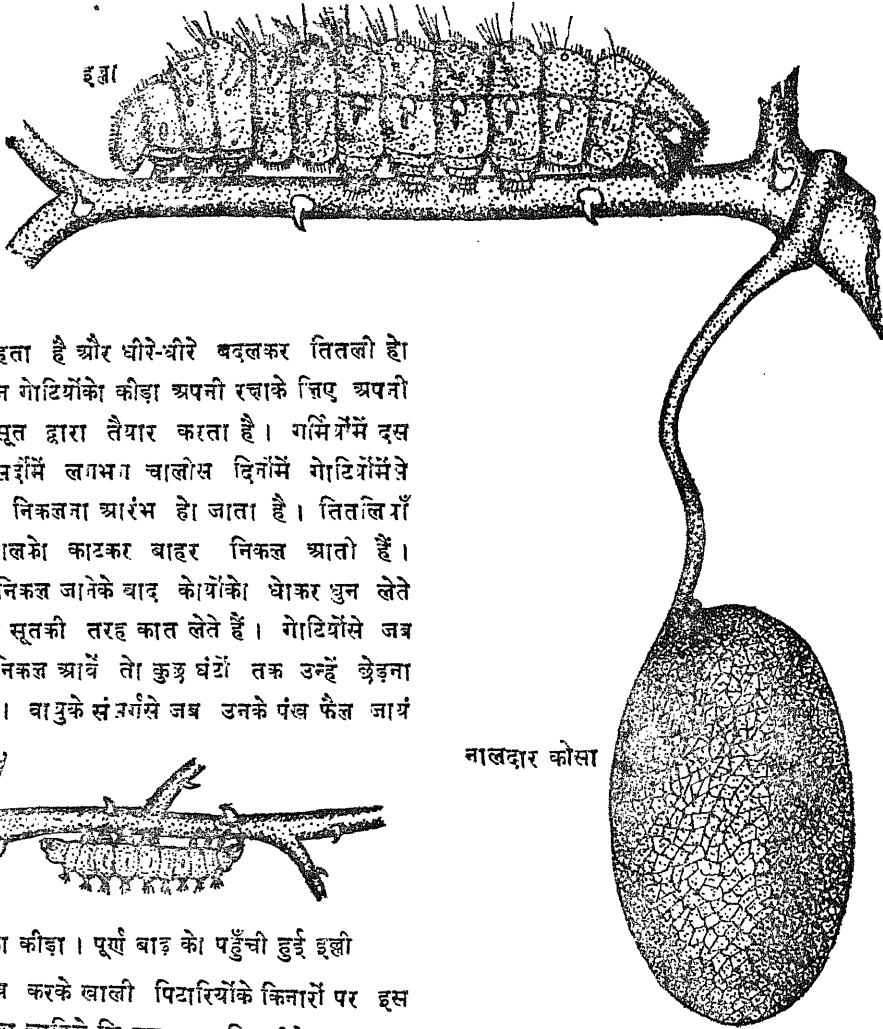
कीड़ा पड़ा रहता है और धीरे-धीरे बदलकर तितली हो जाता है। इन गोटियोंको कीड़ा अपनी रक्षाके लिए अपनी लारसे बने सूत द्वारा तैयार करता है। गर्मियोंमें दस दिनोंमें और सर्दीमें लगभग चालीस दिनोंमें गोटियोंमेंसे तितलियोंका निकलना आरंभ हो जाता है। तितलियाँ गोटियोंके खोलको काटकर बाहर निकल आती हैं। तितलियोंके निकल जानेके बाद कोयोंको धोकर धुन लेते हैं और फिर सूतकी तरह कात लेते हैं। गोटियोंसे जब तितलियाँ निकल आवें तो कुछ घंटों तक उन्हें छेड़ना नहीं चाहिये। वायुके संसर्गसे जब उनके पंख फैल जायं
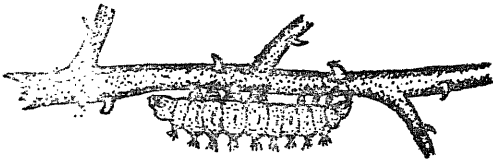
रेशमका कीड़ा। पूर्ण बाढ़ को पहुँची हुई इल्ली

तो उन्हें एकत्र करके खाली पिटारियोंके किनारों पर इस प्रकार रख देना चाहिये कि एक मादा तितलीके पास एक नर तितली होवे। नर और मादा तितलियोंकी पहिचान उनके शरीरकी बनावटसे सहजमें की जा सकती है। मादा तितलीका शरीर मोटा और बड़ा होता है और नरका शरीर पतला और छोटा होता है। एक दिन रातके बाद पिटारी खोलकर यह देखना चाहिये कि कौन-कौनसी तितलियाँ 'जोड़ा' खाती हैं और कौन-कौन सी नहीं। जो जोड़ा खाती दिखाई दें उन्हें दूसरे दिनतक जैसे-के-तैसे छोड़ देना चाहिये।

तितलियाँ जब 'जोड़ा' खा चुकें तो नरोंको मादोंसे अलग कर लेना चाहिये। फिर मादा तितलियोंको खाली टोकरियोंके किनारेपर स्वतंत्रता पूर्वक अंडे रखनेको छोड़ देना चाहिये। प्रत्येक मादा-तितली दो-तीन सौ अंडे देती है।

तूत-रेशम बनानेमें कोयोंमेंसे तितलियोंके निकलनेके पहले ही कोयों को खौलते पानी में डाल देते हैं। इससे तितलियाँ भीतर-ही-भीतर मर जाती हैं, और कोयेके

रेशमी तागेको जोड़नेवाली चिपचिपी वस्तु नरम पड़ जाती है। तब रेशमका तागा अत्यंत महीन रूपमें ही समूचाका समूचा उधेड़ा जा सकता हैं। इसलिए तूत-रेशमको धुनने और कातने की आवश्यकता नहीं पड़ती और उससे बुना हुआ कपड़ा बहुत बारीक और चिकना बनता है।

[ठाकुर शिरोमणि सिंह चौहान, विद्यालंकार,
एम० एस—सी०, विशारद,
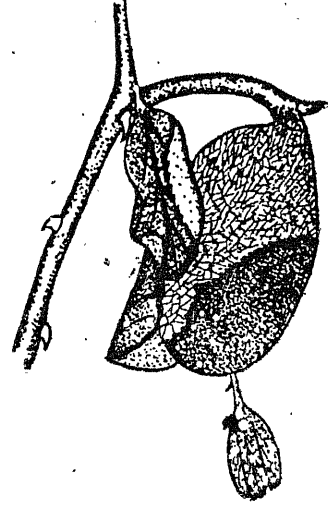
बेरपर टसरी रेशम का कुकून (कोसा)
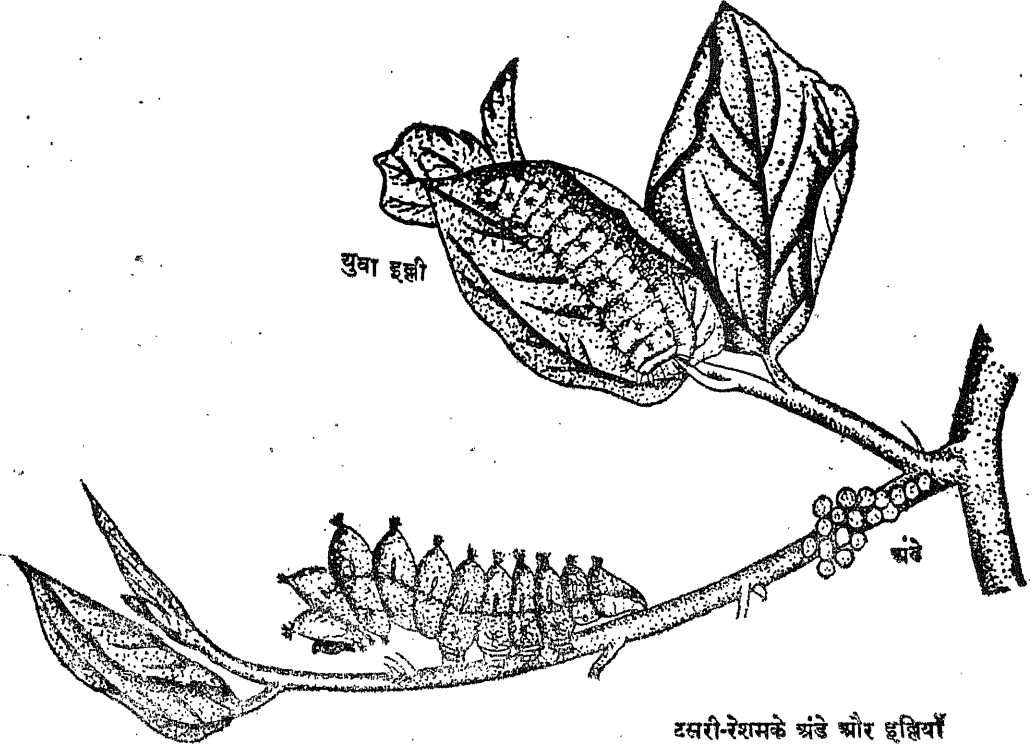
टसरी-रेशमके अंडे और इल्लियाँ

नवजात इल्ली

१४

कुछ वलकवतियाँ

अष्टपादोंसे मुठभेड़

प्रसिद्ध गोताखोर क्रेग लिखता हैं—

मेरी पहली डुबकी कैसी रोमांचकारी थी ! मेरे लिये सबसे आश्चर्यजनक बात वहाँकी पूर्ण निःशब्दता थी। गहरे समुद्रके विचित्र तलपर इतना सन्नाटा रहता है कि भय लगता है। पहली बार डुबकी लगानेपर समुद्रके भीतर रहनेवाले अनेक विचित्र और अद्भुत निवासियोंने मुझे घेर कर स्वागत किया। वे मुझसे डरते नहीं थे, परन्तु यही जान पड़ता था कि वे बेचारे मुझे भी एक मछली समझते थे।

पत्थरोंके अंधेरे कोनों-अंतरोंमेंसे केकड़े और झींगे आँख फाड़कर मेरी ओर देख रहे थे। प्रकाश वहाँ बहुत मंद और हरा-हरा था। छोटी-छोटी मछलियोंका एक समूह चाँदीके समान चमकते बादल की तरह हमारे सरके ऊपर तैरता हुआ निकल गया। एक छः फुटी मछली अंधकार से निकल पड़ी और मेरे चारों ओर मंडराने लगी। उसने भी बड़ी-बड़ी आँखें निकालकर मुझको देखा और फिर अंधेरे में विलीन हो गयी। मैं उस क्षण एक साथ ही उल्लसित, भयभीत और श्वास रहित हो रहा था। खैर, किसी प्रकार शिक्षककी बातोंमेंसे इतना स्मरण रह गया था कि मैं ऊपर निकल सकूँ, और उसी दिनसे मैं समुद्रमें डुबकी लगानेका भक्त हो गया।

उस दिनसे आज तक मैंने सैकड़ों गोते लगाये होंगे। प्रत्येक डुबकीमें नयी-नयी रोमांचकारी घटनाएँ हुआ करती हैं। मैं सच कहता हूँ कि प्रत्येक डुबकी में मैं कोई-न-कोई नयी बात अवश्य सीखता हूँ।

पहली डुबकी मैंने मेक्सिकोके दक्षिणी तटके पास लगायी थी। मेरे शिक्षक जापानी थे। डुबकी लगानेका पहिनावा जो उस समय मैं पहने था वह ऐसे पुराने ज़माने का था कि मुझे आज भी आश्चर्य होता है कि मैं कैसे जीता-जागता निकल आया। जापानी सारगासाकी खेती करते हैं। उनके खेत समुद्रके पेंदे पर थे। समुद्रमें डुबकी लगाकर वे सचमुच वहाँ जोतते-बोते हैं। परंतु डुबकी लगानेका यंत्र उनका सन् १६०५ के ज़मानेका है. उनकी फसल सारगासा नामक समुद्री पौधेकी होती है। यह पौधा दवाके काममें आता है और इसका दाम भी खूब मिलता है। 'अगर-अगर' नामक सुगंध भी इसीसे निकाला जाता है।

समुद्रकी तली को तैयार करने में और वहाँ से जंगली पौधोंको जड़से खोदकर निकाल फेंकनेमें चारसे नौ वर्ष तक लगता है। तब कहीं सारगासाकी अच्छी फ़सल तैयार होती है। जपानी लोग सारगासाको सुखाकर, मशीनमें उसे दबाकर बड़े-बड़े गट्ठर बनाते हैं और तब जापान भेज देते हैं। एकबार जब सारगासाकी फ़सल समुद्रतलमें जड़ पकड़ लेती है तब वह बराबर उगता रहता है और प्रत्येक अच्छा गोताखोर ढाई सौ से लेकर एक हजार रुपयेका माल एक दिनमें बटोर लाता है। उनकी इतनी आमदनी उचित ही है क्योंकि मृत्युसे उनकी भयानक मुठभेड़ अकसर ही हुआ करती है।

ऐसी कठिन पाठशालामें मुझे गहरे समुद्रकी गोताखोरीका जान-जोखिम काम सीखना पड़ा। परन्तु जापानी बड़े अच्छे शिक्षक होते हैं और मैंने उनसे कई भेद सीखे जिनसे पीछे मेरी जान कई बार बच गयी। मैंने डुबकी लगाना इसलिये सीखा, कि मैं देखूं कि समुद्रकी तलीपर सिनेमा खींचना संभव होगा या नहीं। नहीं, तो स्टूडियोंमें टंकी बनाकर उसमें सिनेमा खींचना पड़ता परन्तु तब चित्र इतना स्वाभाविक न बन सकता। अन्तमें यही निश्चय हुआ कि समुद्रकी तलीपर जाकर सिनेमा खींचा जा सकता है। तबसे आजतक मैंने कई एक चित्र गहरे समुद्रके भी तैयार किये हैं। समुद्रके भीतर खींचे गये चित्रोंकी बात ही कुछ और है। वहाँ कई घटनायें ऐसी घटित होती हैं, जिन्हें देखकर रोंगटे खड़े हो जाते हैं।

मेरे नाविकोंमें से चार जवान अब डुब्बी लगानेमें उस्ताद हो गये हैं। अब भी जब हम सबको अपनी पहली डुब्बीका ख्याल आता है तो रोंगटे खड़े हो जाते हैं। कैसा पुराना सामान पहनकर हमलोगोंने वह डुब्बी लगायी थी? अभी हालमें जब मैं उधर गुज़रा तब देखा कि वहां छोटेसे जापानी क़बरिस्तानमें बाइस कब्रें थीं। जब मैंने डुब्बी

सीखना आरम्भ किया था तब वहाँ केवल ६ कब्रें थीं। परन्तु जापानी अब भी वही पुरानी चालकी पोशाक पहिन कर डुब्बी लगाते हैं। पूछनेसे पता चला है, कि इन जवानों मेंसे अधिकांशकी जान बासमें फँस जानेके कारण गयी है। करेंगे। हो जायकी क्या बात, कई बार हो गया है। ऐसे अवसरपर मैं पत्थरकी मूर्तिकी तरह निश्चल हो खड़ा हो जाता हूँ, साँस रोक लेता हूँ और परमेश्वरपर भरोसा रखता हूँ।

अष्टपाद

जब ऊपरसे उनको खींचा गया तो रस्सी टूट गयी और सदाके लिये उनका निवास समुद्र ही हो गया। मैंटा नामक मछलियाँ भी जो देखनेमें दैत्याकार चिमगादड़ोंकी तरह होती हैं उधर बहुत पायी जाती हैं। कुछ रस्सियों को तो इन मछलियोंने तोड़ दिया होगा। डुब्बी लगाना कोई खेल नहीं है। हमलोगोंको यह बला अपने सरपर इसलिये लेनी पड़ती हैं कि जनता असली चित्र चाहती है।

सैकड़ों बार मुझसे पूछा गया है "यदि कहीं समुद्र-तलपर आपकी अष्टपादसे मुठभेड़ हो जाय तो आप क्या

मेरे उस्तादोंने मुझे बार-बार समझाया था, कि जब अष्टपाद तुमको पकड़ ले तो हिलो-डोलो मत। यदि तुम छटपटाओगे तो उसको भी जोश आ जायगा और तुम्हारा सत्यानाश कर डालेगा, परन्तु यदि तुम स्थिर रहोगे तो शायद वह तुमको अपनी एक सूँड़से यहाँ-वहाँ छू-टटोलकर और अपनी जिज्ञासाकी शान्तिकर चला जायगा। इस सलाहने मुझे कई बार पन्द्रह-पन्द्रह और अट्ठारह-अट्ठारह फुटके अष्टपादोंकी भुजाओंमें फँसकर भयानक मृत्यु पानेसे बचाया है। इससे भी बड़े अष्टपाद होते हैं, परन्तु मुझसे

उनसे भेंट नहीं हुई है। केवल आठ या नौ फुटके अष्टपादमें भी भयानक बल होता है और यदि एक बार उसे क्रोध आ जाय तो आपका वह भीषण शत्रु हो जायगा। ये दीर्घकाय जन्तु मनुष्यको आसानीसे भक्षण कर सकता है और सब माँस चटकर जानेमें उसे कुल पन्द्रह बीस मिनट लगेंगे।

अष्टपाद अकसर समुद्र तलके चट्टानोंके बीच अंधेरे स्थानों में रहते हैं। बड़े अष्टपाद केवल ठंडे समुद्रोंमें पाये जाते हैं। मादा अष्टपाद एकबारमें चालीस या पचास हज़ार अंडे देती है। समुद्रतलकी किसी गुफाके मुँहमें अंडे देकर वह बच्चोंके निकल न आनेतक वहीं पहरा दिया करती है। इसमें करीब पचास दिन लगते हैं। इस समय वह सहज हीमें कुपित हो जाती है और जो ही समुद्री-जानवर उधर चला जायगा उसीपर धावा करेगी। इसलिये उससे सभी जानवर दूर ही रहते हैं। अण्डेसे निकलनेपर अष्टपाद के बच्चे करीब मटरके बराबर होते हैं। उनकी भुजायें उस समय बड़ी छोटी होती हैं और भुजायें ही टाँगका काम करती हैं। इसलिये बच्चे समुद्र तलपर चल नहीं सकते, पानीमें तैर सकते हैं। साधारणतया वे तुरन्त धूपसे गरम हुए ऊपरी जलमें उठ आते हैं। परन्तु शीघ्र ही उनको चिड़ियाँ और मछलियाँ हज़ारोंकी संख्यामें हड़प कर जाती हैं। यदि कहीं ऐसा न होता तो समुद्र अष्टपादोंसे ठसाठस भर जाता। बचे-खुचे बच्चे छिछले चट्टानी किनारोंके पास अपना अड्डा जमाते हैं। उनका आहार छोटी-छोटी वे मछलियाँ और कीड़े-मकोड़े होते हैं जो जलमें तैरा करते हैं।

जैसे-जैसे वे बड़े होते हैं वैसे-वैसे वे अधिकाधिक गहरे पानीमें चले जाते हैं। सालभर हीमें बढ़कर वे चार-पाँच फुटके हो जाते हैं और तब वे मछलियाँ खाकर अपना उदर-पोषण करते हैं। जब वे चलते हैं, तब वे अपने आठों भुजाओंसे चलते हैं। तैरनेके लिये वे सिरके नीचे स्थित नलीसे बड़े जोरसे पानी बाहर फेंकते हैं और इस प्रकार वे पीछे मुँह तैरते हैं। बड़े बड़े अष्टपाद इस रीतिसे इतनी तेजीसे लपकते हैं कि आश्चर्य होता है। प्रत्येक भुजामें १६३ से लेकर २४० तक चूसनेके मुंह होते हैं। प्रत्येक मुँहके खिंचावका जोर एक वर्ग इञ्चपर १० सेरका पड़ता है। जब वे किसी शत्रुसे भिड़ते हैं तो तीन या चार भुजाओंके मुँहोंसे चूसकर समुद्रतलकी चट्टानोंको जोरसे पकड़े रहते हैं और शेष भुजाओंसे प्रतिद्वंदीको पकड़ते हैं।

अष्टपादोंका प्रधान शस्त्र उनकी चोंच है। यह सुग्गेकी चोंचकी तरह टेढ़ी होती है और उनके सरके बीच स्थित रहती है। इस चोंचसे बड़े अष्टपाद गोताखोरकी पोशाक को सुगमतासे फाड़ सकते हैं। ऐसे दुश्मनसे बचनेके लिये मनुष्यका सबसे अच्छा शस्त्र तेज़ाबी तमञ्चा है। इसमें शीशे की नलियोंमें बन्द शोरेका तेज़ाब भरा रहता है और घोड़ा खींचनेसे तेज़ाब पानीमें फैल जाता है। जब इस पिस्तौलको अष्टपादके पास चलाया जाता है तब तेज़ाब पानीमें मिल जाता है। साँस लेते ही यह तेज़ाबी पानी उसके पेटमें चला जाता है, जिससे अष्टपाद तुरन्त मर जाता है। यह पिस्तौल अभी हालहीमें ईजाद हुआ है। जब मैं मेक्सिकोके तटपर समुद्रके भीतर सिनेमा ले रहा था तब ऐसा पिस्तौल नहीं चला था।

तो भी मेरे जापानी शिक्षकोंने एक बात ऐसी बतलायी थी जिससे काम चल जाता था। यदि अष्टपादको चूसनेके लिये कोई अच्छी सितह न मिले तो वह हार जाता है। जबतक कोई चिकनी ठोस सितह उसे नहीं मिलेगी तब तक वह चूसकर किसी जीवधारीको पकड़ ही न सकेगा। साधारणतः अपनी भुजाओंमें लपेटकर वह अपने शत्रुको नहीं पकड़ना चाहता और जब वह जान जाता है कि दुश्मन ठीक तरहसे नहीं पकड़ा जा सकता तो उसे छोड़कर चुपकेसे चल देता है। जापानियोंने यह बतलाया कि लोहेके कवच पर बोरे का ओवरकोट पहन लेनेसे अष्टपाद नहीं पकड़ सकेगा और यह बात ठीक निकली।

साधारणतः अष्टपाद बड़ा सङ्कोची और डरपोक होता है। जब वह किसी गोताखोरको पहले पकड़ता है तो केवल यही देखनेके लिये कि यह क्या है। यदि कोई दुर्घटना हो तो इसका कारण यही होता है कि गोताखोर कोई गलत चाल चल पड़ता है। सभी गोताखोर अपने साथ छुरा रखते हैं परन्तु अष्टपादकी भुजाको काटनेकी चेष्टा करना बेवकूफी है क्योंकि छुरा चलातेही वह वार करेगा। गोताखोरों को अष्टपादसे डर इसलिये लगता है, कि वह उनको समुद्र-तलपर पकड़ रख सकता है और गोताखोर लोग अधिक

समयतक समुद्रके नीचे नहीं ठहर सकते। गहराईके अनुसार एक नियत समय होता है जिससे अधिक समयतक गोताखोर यदि पानीमें ठहरे तो बड़ी हानि होती है, क्योंकि अधिक दबावके कारण नोषजन गैस उसके खूनमें भिन जाती है और जब वह बाहर लाया जायगा तो उसे बेहद पीड़ा होगी। उसकी धमनियाँ फट जायँगी और वह तुरन्त मर जायगा। इसलिये यदि गोताखोर गहरे पानीमें अधिक समय तक रहे तो उसे कुछ ऊपर आकर पानीमें ही लटका रहना पड़ता है। कुछ समयके बीतनेपर वह थोड़ा और ऊपर आ सकता है। इसी प्रकार उसे धीरे-ही-धीरे उपर आना पड़ता है और इसमें उसे घन्टों लग जाते हैं।

सबसे रोमांचकारी घटनायें वे होती हैं, जो इतनी अचानक आ जाती हैं कि क्षण भरमें वे घटित हो जाती हैं और पीछे पता चलता है कि कैसी भारी दुर्घटनासे छुटकारा मिला। चार वर्षसे मैं डुब्बी मार रहा हूँ। इतने दिनोंमें केवल एक बार एक अष्टपादसे भिड़न्त हुई थी। कसूर मेरा ही था। बात यह हुई कि मैं काफ़ी देरतक चुप-चाप खड़ा नहीं रहा। इस गलतीसे मेरा प्राण प्रायः चला ही गया था। यादगारतके लिये मैंने उस भुजाको जिसने मुझे यमराजकी तरह पकड़ रक्खा था अब भी बड़े बोतलमें सुरक्षित कर रक्खा है। यह आठ फुट लम्बा है इसलिये वह अष्टपाद कमसे कम १६ फुटका तो जरूर ही रहा होगा।

यह घटना मेक्सिकोके दक्षिणी तटपर हुई थी। हमलोग पनडुब्बी जहाज़की फ़िल्म खींचनेके लिये उपयुक्त स्थान खोज रहे थे। समुद्र वहाँ ४० फुट गहरा मिला और मैं नीचे देखने उतरा। सोच रहा था कि कहीं किसी पुराने जहाज़का भग्नावशेष मिल जाय तो फिल्ममें जान आ जाय। मुझे चट्टानोंके बीचमें गहरी, काली गुफा मिली और मैंने सोचा कि देखना चाहिये इसमें क्या है। बड़ी सावधानीसे मैं इस गुफामें उतरा। यह लगभग २० फुट गहरी और ७० फुट व्यासकी रही होगी। मैं तलके पास पहुँचा तो मेरा एक पैर एक उभरी हुई चट्टानपर पड़ा। उसीपर मैं खड़ा हो गया। उस अंधकारमें घूरनेसे मुझे दो बड़े अष्टपाद दिखलाई पड़े। वे इतने बड़े थे कि कुल गुफा उन्हींसे ढँकी हुई दिखलाई पड़ रही थी। पहली बात तो मुझे यही सूझी कि मैं वहाँसे भाग चलूँ। परन्तु इस इच्छाको मैंने दबा रक्खा। मैंने निश्चय किया कि भलाई इसीमें है कि पहले स्थिर रहकर पता लगाऊँ कि अष्टपादोंने मुझे देख तो नहीं लिया है।

इस प्रश्नका उत्तर मुझे तुरन्त मिल गया; क्योंकि बड़े अष्टपादने तुरन्त एक भुजा बढ़ाकर मेरा पैर टटोलना आरंभ किया। मैं तो डरके मारे काठ हो गया। अपनी खुली हथेली को बग़लमें दबाकर पूर्णतया स्थिर होकर खड़ा रहा। ग़नीमत हुई कि उस दैत्यने अपनी भुजाओंको मेरे पैरमें लपेट कर मुझे खींच नहीं लिया।

एक या दो मिनट बाद—और इतना समय मुझे पहाड़ ऐसा जान पड़ा—अष्टपाद अपने साथीके पास चला गया। अपने जूतेको चट्टानमें फँसाकर मैंने अपनी पोशाकमें गैस भरली, जिसमें मैं जल्दीसे ऊपर उठ सकूँ। ज्योंही मैं पैर छुड़ाकर ऊपर उठा त्योंही मुझे ख्याल हुआ कि इतना जल्द चल पड़नेमें मैंने अच्छा नहीं किया। बात भी यही ठीक निकली, क्योंकि अष्टपादसे का काफ़ी दूर होने पाया था कि इतनेमें उस शैतानने सड़ाकेसे एक भुजा फैलाकर मेरी टांग पकड़ ही तो ली। कदाचित अभीतक उसका कौतूहल शान्त नहीं हुआ था। सौभाग्यवश वह उस समयतक शायद रोड़ों और टूटे-फूटे पत्थरोंपर बैठा था क्योंकि वह ज़मीन पर चिपक न सका और मेरे साथ ऊपर घसिट आया।

साधारणतः जब अष्टपाद समुद्रतलको नहीं पकड़ सकता तो अपने शिकारको छोड़ देता है। परन्तु इसने हमको नहीं छोड़ा। जबतक मैं सतहपर पहुँचा तबतक मुझसे चिपटा रहा और थोड़े ही सययमें अपनी बलिष्ट भुजाओंसे हमारी हड्डी-पसली चूर कर देता, परन्तु तबसे मेरे सहकारियोंने उसकी भुजाओंको कुल्हाड़ीसे टुकड़े-टुकड़े काट डाले।

इस स्थानसे जानेके पहले हमको कई एक और भी गुफायें दिखलाई दीं जिनमें बड़े-बड़े अष्टपाद अवश्य रहे होंगे। अबकी साल गरमीमें हमलोग फिर वहीं जानेवाले हैं और निश्चय ही अबकी बार तेजाबी पिस्तौल, बोरेके ओवरकोट और अन्य शस्त्र जो कुछ भी उस समयतक आविष्कृत हो सकेंगे, साथ रक्खेंगे। सदा ही हमलोगोंकी इच्छा रही है कि एक बार दैत्याकार अष्टपाद और शार्क मछलीकी असली लड़ाईकी फिल्म लें। कदाचित शायद इस खोजमें

हम सबको बार-बार निराश होना पड़े, तो भी जब यह युद्ध चित्रित करनेका अवसर मिलेगा तब सब परिश्रम सफल हो जायगा। क्या कोई हमारे साथ इस युद्धमें पक्ष बनने चलना चाहता है?

अष्टपाद और कुटिल मछली

अष्टपाद और कुटिल मछली शंख और घोंघे आदिकी जातिके जल-जन्तु हैं, यद्यपि यह अपने वर्गके अन्य जन्तुओं से बहुत भिन्न हैं। इनका इन्द्रिय विन्यास, अन्य शंख-और घोंघे आदिसे अधिक उत्तम और श्रेष्ठ है। बहुत सी बातों में, यथा—आहार पकड़नेमें, धूर्तता और भयङ्करतामें ये मछलियोंसे भी बढ़कर हैं। इस वर्गमें अष्टपाद और कुटिल मछलीके अतिरिक्त मोतिया, नौटिलस, कागजी नौटिलस, दशपाद, सेपिया इत्यादि भी सम्मिलित हैं। यह सब सामुद्रिक जन्तु हैं तथा इनमेंसे कोई भी स्थल, झील या नदियों आदिमें नहीं पाया जाता।

यह मांसभक्षी अति भयङ्कर होते हैं। छोटे छोटे अष्टपादों और कुटिल मछलियोंसे तो नहीं, लेकिन बड़े अष्टपादों और कुटिल मछलियोंसे मछुए और गोताखोर भी भयभीत रहते हैं।

अष्टपाद और कुटिल मछलीका शरीर मांसल थैली का बना हुआ होता है, जिसमें गलफड़े और पाचक अंग बन्द रहते हैं। शरीरके सन्मुख एक सिर होता है। यह बहुतसे पैरों—बहुधा इन्हें हाथ भी कहा जाता है—से घिरा होता है। इन पैरों या हाथोंपर गोल गोल गड्ढे होते हैं। प्रत्येक हाथमें यह दो पंक्तियोंमें होते हैं। इनके किनारे मोटे और उठे हुए होते हैं। जिस प्रकार पिचकारी-में ढट्टा (पिस्टन) होता है उसी प्रकार इन गड्ढोंमें भी ढट्टेके समान एक बटन होता है यह ऊपर और नीचे आ जा सकता है। किसी वस्तुके छूने और स्पर्श करने पर यह ढट्टा ऊपर खींच लिया जाता है। ढट्टेके खिंचते ही वह स्थान पूर्णतया शून्य हो जाता है और किनारे कसकर उस वस्तुसे चिपक जाते हैं। इन अद्भुत यन्त्रोंके कारण अष्टपाद और कुटिल मछली जिस वस्तुको पकड़ना चाहती है बहुत
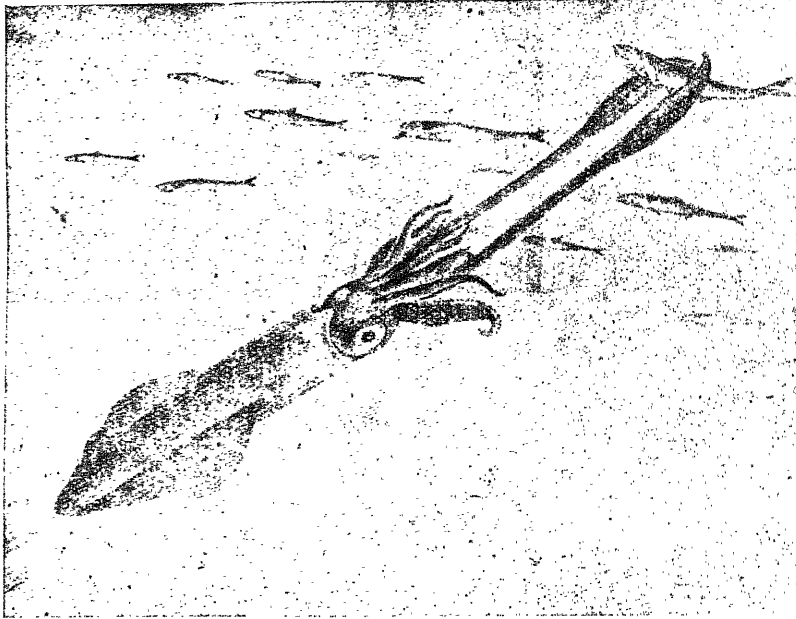
कुटिल मत्स्य।
कुटिल मत्स्य (अँग्रेज़ी कटल फ़िश) भागता है तो काला तरल फेंकता है जिससे पानी गंदा हो जाता है और शत्रु उसे देख नहीं पाता।
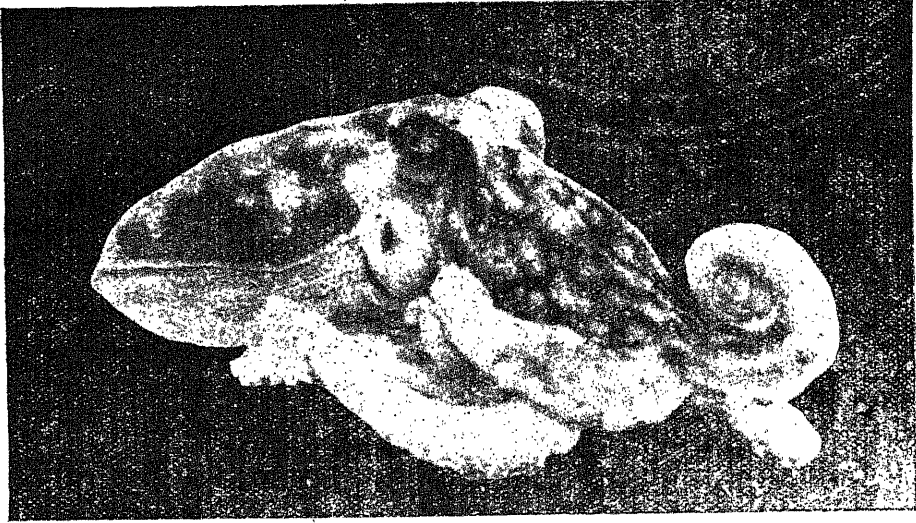
अष्टपाद

इसके आठ पैर होते हैं। पैरोंपर जो गड्ढे दिखाई पड़ते हैं चूसक हैं। दोनों ओर उभरे हुए स्थानोंपर एक एक आंख है। बाईं तरफ आवरण प्रकोष्ठ है। इसमें शरीरके अन्य कोमल अवयव हैं।

दृढतासे पकड़ लेती हैं। एक बार इनकी पकड़ाईमें आनेके पश्चात् बिचारे शिकारका छूटना एक प्रकारसे असम्भव-सा हो जाता है। इन गड्ढोंको चूसक (अंग्रेजीमें सकर) कहते हैं और यह प्रत्येक पांवपर आरम्भसे लेकर अन्त तक होते हैं।

अष्टपादके सिरके नीचे एक चौड़ा छिद्र होता है, जिसमेंसे पानी गलफड़में जाता है। नीचे कीओर एक छोटी नलिका बाहर निकली रहती है। उसमेंसे मल मूत्र बाहर निकलता है। यह नलिका विशेष कार्यमें भी लाई जाती है। जिस समय यह जन्तु एका-एक भयभीत हो जाता है या अपने शत्रुसे हारने लगता है उस समय यह नलिकामेंसे एक स्याहीके सदृश तरल पदार्थ बाहर निकालता है। इससे समीपका पानी गंदला हो जाता है और शत्रु कुछ देख नहीं पाता। ऐसे अवसरमें यह भाग निकलता है। यह स्याहीके समान तरल पदार्थ, एक विशेष ग्रन्थिमें जिसको मसि ग्रंथि कहते हैं बनता है। वहाँसे यह मलाशयमेंसे होकर नलिका द्वारा बाहर निकलता है।

मध्यमें हाथोंके बीच मुंह है। मुंहके दोनों ओर एक-एक बड़ी-बड़ी आँख है। मुंह एक जोड़ी पैनी दाढ़ोंसे सुसज्ज रहता है। यह दाढ़ें तोतेकी चोंचसे बहुत कुछ समानता रखती हैं। अष्टपाद आगे पीछे, दायें बायें सब ओर जा सकता है। चलते समय इसका सिर पैरोंकी तरफ नीचेको रहता है। यह बहुत अच्छी तरह तैरता भी है। ऐसी दशामें हाथ पतवारका काम देते हैं।

साधारण अष्टपाद कुछ आलसी होता है, लेकिन शिकार पकड़ते समय या शत्रु द्वारा आक्रमण किये जानेके समय यह जीवनके लिये बहुत अच्छी तरहसे लड़ता है। दिनके समय यह बहुधा चट्टानोंकी दरारोंमें पड़ा रहता है। कभी कभी यह अपनी खोहके मुंहके आस पास चक्कर लगाता है और मछलियों या जल-जन्तुओं को, जो इसके लम्बे हाथों और पैरोंकी पहुँचमें आ जाते हैं, पकड़ कर खा जाता है। यह संध्या समय बाहर निकलनेका साहस करता है। एक वीभत्स कृत्रिम राक्षसकी भाँति यह अपने सर्प स्वरूप पैरोंसे समुद्रकी तलहटीपर रेंगता है या

बड़ी मन्थर गतिसे तैरता है। लेकिन सर्वदा इसकी दुष्टता भरी आंखें चौकस रहती हैं।
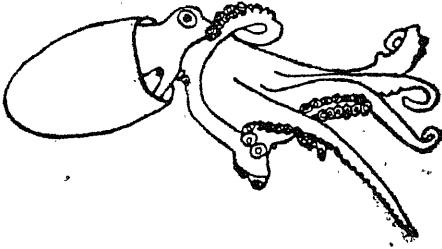
अष्टपाद तैरते हुए

यह चुपके चुपके किसी बेसुध अभागे शिकारके पास जाता है और एकाएक झपट कर, उसको चारों ओरसे अपने ज़ोरसे ऐंठे हुए हाथों द्वारा जकड़ लेता है। इन हाथोंसे बच निकलनेकी आशा बहुत ही कम होती है। तब अपने शिकारको मुंहके समीप लाकर अष्टपाद उसे अपनी चोंचसे चीरता है और अपनी दृढ़ और मांसल जीभ द्वारा उसे खाता है। जीभपर नुकीले दांतोंकी पंक्तियां रहती हैं। प्रातःकाल तक अष्टपाद अपनी क्षुधा शान्त कर फिर अपनी सुरक्षित खोहमें भोजन पचानेके लिये घुस जाता है।

यद्यपि अष्टपाद इतना क्रूर जन्तु है, नारी अष्टपाद बहुत ही सावधान जननी है और अपने अण्डोंको सफलता पूर्वक सेनेके लिये बहुत कष्ट उठाती है। एक बड़ी नारी अष्टपादके चालीससे लेकर ४० हजार तक अण्डे होते हैं। श्रीयुत् हेनरी लो, जिनको अष्टपादके स्वभावके निरीक्षणका भाग्यवश अवसर मिला था, सेनेका वर्णन इस प्रकार करते हैं—"भाग्यवश हमारी अष्टपादने एक ऐसा स्थान चुना जहाँसे उसकी गतिको भली भांति देखा जा सकता था। उसका सारा शरीर खोहके मुँहमें आ जाता था तिस पर भी उसने सम्भवतः दो दर्जन घोंघों को पकड़ कर उनको एक दूसरे पर रख बाड़ा बनाया और उसके पीछे वह स्वयं बैठी। इसपर चढ़ कर वह दिन रात निद्रारहित आँखोंसे देखा करती, उसके दो हाथ सर्वदा बाहर रहते, मानो पहले ही से किसी शान्ति भंग करने वालेकी राह देख रहे हों। उसके साथी भी उन लम्बे लम्बे हाथोंके निकट जाना भयावह समझते थे; यहाँ तक कि वह अपने पतिको भी अविश्वासकी दृष्टिसे देख कर दूर ही रखती थी। यदि कभी वह निकट आनेका साहस भी करता तो उसको देखकर डरावनी मुद्रा धारण कर उठती, उसके शरीरमें क्रोधकी लहर दौड़ जाती और वह अपने हाथोंको सीधा और लम्बा कर अपने स्वामी का स्वागत करनेको उद्यत होता। बेचारा अपमानित अष्टपाद उस भीषण स्पर्शके विचार मात्र ही से कांप कर, पैरयुक्त सिर वाले जन्तुओंके अल्प सामयिक दाम्पत्य सुखपर उदास मनसे विचार करते हुये, एक ओर चला जाता।"

"जब कभी नारी अष्टपादको छेड़ा जाता तो वह अपने दोनों ओरकी झिल्लीको चौड़ाकर उसे नौकाके समान बना कर उसमें अंडोंको भर लेती। कभी-कभी वह मुँहके नीचे वाले छिद्रसे पानीकी धार छोड़ कर उन्हें धोती भी थी। वह केवल आहार प्राप्त करनेके समयको छोड़ कर सर्वदा अंडोंके पास रहती थी।"

अष्टपादके अंडे छोटे और चिकने होते हैं, उनका उपरी खोल लचीला होता है। अंडे अंगूरोंके गुच्छेके समान इकट्ठे रहते हैं और एक दूसरेमें एक रज्जु द्वारा जुड़े रहते हैं। बच्चा पैदा होनेमें सम्भवतः पचास दिन लगते हैं। अंडेसे निकलते समय तक बच्चेके सम्पूर्ण अवयव पूर्ण रूपसे बन जाते हैं। अंडेसे निकलनेके पश्चात् थोड़े समय तक अष्टपाद समुद्रकी ऊपरी सतह पर धूपमें घूमता रहता है लेकिन बड़े होने पर शनैः शनैः प्रकाश से दूर भागता है और अचल आलसी होने लगता है। कुछ अण्डे हजारों मछलियों और जल जन्तुओंकि शिकार हो जानेके कारण परिपक्व नहीं हो पाते।

कागजी नौटिलस (पेपर नौटिलस)

कागजी नौटिलस और अष्टपादमें इतना ही अन्तर है कि कागजी नौटिलसमें बहुत सुन्दर बना हुआ बाहरी कवच होता है। कवच अन्य शंख घोंघे आदिमें मांस पेशियों से बँधा होता है, लेकिन कागजी नौटिलसमें यह दो हाथोंकी सहायतासे अपने स्थानपर रहता है। इसके हाथ विशेष रूपसे इस कार्यके लिये ही बन गए हैं। कागजी नौटिलसका कवच वास्तविक कवच नहीं है क्योंकि यद्यपि यह शरीरकी रक्षा करता है तथापि इसका मुख्य उद्देश्य अंडोंकी

रखा है; केवल स्त्री नौटिलस ही में कवच होता है। नर नौटिलसमें नहीं।

कागजी नौटिलस
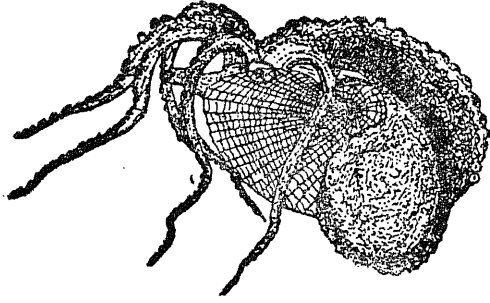
यह नारी नौटिलस है। शरीर पर कवच है

कागजी नौटिलस पुराने समयके लोगोंको भी मालूम था। (अरस्तू) अरीस्टोटेल ने शान्त समुद्रमें तैरते हुये नौटिलसकी उपमा महासागरमें तैरते हुए उस जहाजसे दी है जिसके पास हवा भरनेके लिये पाल उठे हुये हों।

नौटिलस समुद्रकी तलहटी पर रेंगता हुआ चलता है। जब यह तैरता है तो इसके हाथ पतवार का काम नहीं देते, लेकिन सिरके नीचेके छिद्रसे पानीकी धारा पीछे फेंक कर उसके कारण आगे बढ़ता है।

नौटिलसके बच्चोंमें अंडेसे निकलनेके दस या बारह दिन पश्चात् कवचका बनना आरम्भ होता है।

कुटिल मछली

कई बातोंमें कुटिल मछली अष्टपादसे भिन्न है। मुँहके चारों ओर आठ हाथ होते हैं। यह अष्टपादके हाथोंसे छोटे होते हैं। इन हाथोंकी भीतरी सतह पर चूसकोंकी कई पंक्तियाँ रहती हैं। हाथोंके झुण्डमें से दो विशेष हाथ निकले रहते हैं, इनकी लम्बाई कभी कभी सम्पूर्ण शरीरसे तिगुनी होती है। इनके सिरे मोटे होते हैं और इन स्थानोंको छोड़ कर और कहीं चूसक नहीं होते। चूसक हाथकी सतहसे मिले नहीं होते, लेकिन छोटी छोटी नालों पर स्थित होते हैं। यह एक चक्रसे घिरे रहते हैं जो चिकना या दाँतीदार होता है और किन्हीं किन्हीं जातियोंमें इनमें बिल्ली के समान पंजे होते हैं। कुटिल मछली की दाढ़ें, अष्टपादके ही सामान होती हैं या कुछ छोटी होती हैं। अष्टपाद और इसमें एक विशेष अन्तर यह भी है कि इनमें आन्तरिक कवच होता है।

कुटिल मछलियोंके शरीरका परिमाण भिन्न भिन्न होता है। कुछ ६० फुट लम्बी होती हैं, कुछ दो इञ्चसे भी अधिक नहीं बढ़ने पातीं। इसी प्रकार इनकी बाहरी बनावट भी भिन्न होती है।

कुटिल मछलियाँ झुण्डमें और समुद्रके किनारेके समीप रहती हैं। यह सभी समुद्रोंमें पाई जाती हैं लेकिन शीतोष्ण समुद्रोंमें अधिक पाई जाती हैं।

इस वर्णनसे ऐसी प्रतीत होगा कि अष्टपाद और कुटिल मछली अजेय हैं और समुद्रके अन्य जीव इनसे कभी न जीत पाते होंगे, लेकिन सर्वदा ही ऐसा नहीं होता है। एक ह्वेल और कुटिल मछलीके युद्धका वर्णन श्री एफ. टी. बुलेनने लिखा है—"रातके ११ बजेके समय मैं जहाज परसे झुक कर समुद्रको देख रहा था कि एकाएक पानीमें जोरकी हलचल दिखाई दी। मैंने समझा कि कदाचित् समुद्रमेंसे कोई ज्वालामुखी पर्वत उभर आया है। रातके समय दूरबीन लाकर देखनेसे एक आश्चर्यजनक दृश्य दिखाई पड़ा। एक बड़ी ह्वेल अपने ही बराबरकी कुटिल मछलीसे भयङ्कर और डरावने रूपमें फंसी हुई थी। ह्वेलके मुंहमें कुटिल मछलीकी पूंछकी ओरका हिस्सा था और ह्वेलके चारों ओर कुटिल मछली के हाथ लिपटे हुए थे। उनको देखने मात्रसे ही मुझे डर लगता था। कदाचित् सपनेमें भी ऐसी लड़ाई का विचार न आया होगा। कुटिलकी आंखें बहुत बड़ी और काली काली थीं। चांदनीमें मटियाले शरीर पर वे आंखें बहुत चमक रही थीं। चारों तरफ बहुत सी मछलियां तथा अन्य जानवर घूम रहे थे। ये लूट खसोटकी चिन्तामें थे। इस भयङ्कर लड़ाईका अंत नहीं मालूम हुआ लेकिन कदाचित् ह्वेल अधिक शक्तिशाली साबित हुई।"

कुटिल मछलीका बच्चा

कभी कभी स्त्री अष्टपाद और कुटिल मछली बहुत भयंकर हो जाती हैं और वे नर अष्टपाद या नर कुटिल मछलीको जो उनके समीप आते हैं खा डालती हैं।

लेकिन जातिका उत्पादन करना ही पड़ता है अतः नर अष्टपाद या कुटिल मछली अपने एक हाथमें शुक्र भर कर उसे स्त्री अष्टपाद या कुटिल मछलीके समीप फेंककर भाग आता है। वह हाथ बहुधा स्त्रीके आवरण प्रकोष्ठमें पहुँच जाता है इस प्रकार स्त्रीके अण्डों का बीजारोपन हो जाता है।
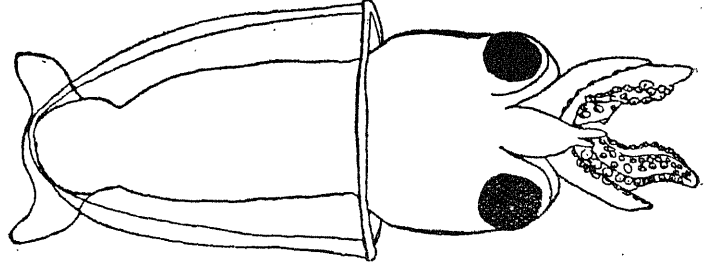
कुटिल मछलीका बच्चा

बारनैकल

वल्कवतियोंमें एक रोचक जीव वह है जिसे बारनैकल कहते हैं। सितुहीके आकारके दो खोलोंके बीच इसके शरीर का मुख्य भाग रहता है, परन्तु इसका गरदन लंबा और मांसल होता है। यह अपने सिरसे जिस वस्तुपर चाहे चिपक सकता है। बारनैकल जहाजोंके पेंदोंमें बहुत संख्या में चिपके रहते हैं, यहाँ तक कि उनके कारण जहाजोंके वेगमें अंतर पड़ जाता है, और यदि जहाजोंके पेंदोंको समय-समयपर साफ़ न किया जाय तो अवश्य ही जहाज वालोंको बड़ा घाटा रहेगा। ये जन्तु अपने सिरसे तो जहाज में चिपके रहते हैं और अपने सूतके समान बहुसंख्यक पैरोंको हिलाकर आहार खोजते रहते हैं। बचपनमें ये जन्तु अपने सिर और गरदन को अपने खोलमें छिपा सकते हैं और स्वतंत्र रूपसे तैरते भी हैं, परन्तु प्रौढ़ होनेपर जहाजोंमें चिपके रहना ही वे अधिक पसंद करते हैं।

एक समय लोगोंका विश्वास था कि बारनैकल कुछ काल बाद बदलकर हंस बन जाते हैं! ऐसी ऊटपटांग बात पर कैसे लोगोंकी श्रद्धा हो पाती थी, पता नहीं। परंतु एक बार लंडनके प्रसिद्ध रॉयल सोसायटीके सभापतिने एक लेख पढ़ा था जिसमें बारनैकलका हंसमें बदलना ब्योरेवार रूपसे वर्णन किया गया था!

मोती

मोती एक रत्न है, जो संसारके बहुतसे समुद्रों और नदियोंमें पाया जाता है। हिन्दू लोग बहुत प्राचीन समय से इसे रत्न मानते हैं। पुराने ग्रंथ देखनेसे जहांतक पता चला है, उससे यह विदित होता है कि ऋग्वेदके समयमें आर्य्य लोग इस अपूर्व, आभापूर्ण अलंकारिक पदार्थसे अपरिचित थे। पौराणिक कालमें इस रत्नका व्यवहार भली भांति हो गया था, और इस समयके आर्य्य लोग इसे केवल अपने ही व्यवहारमें नहीं लाते थे, वरन् इसके व्यापार से खूब धन पैदा करते थे। मोतीकी पहचान, तथा उत्पत्ति आदिका ब्योरा हमें कौटिल्यके अर्थशास्त्रसे भी मिलता है। इस समय मोती राजकोषमें रखने योग्य पदार्थ हो चुका था।

प्राचीन कालमें भारतीय समुद्र, तथा फारसकी (ईरान) खाड़ीसे ही मोती निकाले जाते थे, पर अब तो यह सुलू समुद्र, आस्ट्रेलिया द्वीपके किनारे, मध्य अमेरिका तथा प्रशान्त महासागरके द्वीपोंमें भी पाये जाते हैं। प्राचीन समयमें मद्रास और तूतीकोरन तथा मन्नारकी खाड़ीमें ही मोती निकालनेका व्यापार अधिक होता है।

मोती एक प्रकारके कीड़ेकी समाधि या क़ब्र है, जिसे सीपी अपने शरीरमें घुसे कीड़ेसे बचनेके लिए कीड़े पर बना देती है। मोती ठीक उसी पदार्थका बना हुआ है जो सीपी के खोलके भीतरी भागमें पाया जाता है और जिसे हम 'सितुही' के नामसे पुकारते हैं। बहुत सी सुंदरियोंको, जिनके उरपर सदा ही मुक्तमाल विराजमान रहती है, यह जानकर आश्चर्य होगा कि जिस रत्नको वे इतने चावसे पहने हुये हैं वह यथार्थमें एक मांसाशी कीटकी क़ब्र है।

घरके बने असली मोती

जिस दिनसे किसी आदिमनिवासीने किसी सीपीको पत्थरसे फोड़कर देखा होगा कि मांसके भीतर एक चमचमाता रत्न छिपा हुआ हैं, उसी दिनसे मनुष्य मोतियोंके पीछे पड़ गया। आजतक वह उनके पीछे पड़ा हुआ है। वह सदा चेष्टा करता है कि प्राकृतिक मोतियोंकी उपज बढ़ जाय, या वैसे ही मोती कृत्रिम रीतियोंसे बन सकें।

मनुष्यको असली मोती बनानेका भेद अब मिल गया है और उसको अब इसका ज्ञान है कि मोतियोंकी खेती वह कर सके और सीपियों और घोंघोंसे इच्छानुसार मोती बनवा सके। वर्षोंके अथक परिश्रम और असंख्य प्रयोगोंके बाद अमरीकाके एक वैज्ञानिक श्री बोस्टविक महाशयने अब अमरीकाके समुद्री सीपियोंमें दोषरहित मोती पैदा करने में सफलता पायी है। इनमें किसीमें हल्का हरा, किसीमें आसमानी और किसीमें गुलाबी आब भी रहता है।

सीपीके गर्भसे मनचाहे मोती

पापुलर मिकैनिक्स नामक मासिक पत्र लिखता है कि इसके पहले श्री बोस्टविकने गोल और अंडाकार मोती झीलों और नदियोंकी सीपियोंमें पैदा किया था। ये सफेद भी होते थे और रङ्गीन भी और बाज़ बाज़ तो वजनमें ५ रत्तीके थे। शंखोंमें उन्होंने शंखकी हड्डीसे लगेहुए गोल और लम्बे मोती पैदा किये थे जो वज़नमें बीस रत्ती तक थे, परन्तु उनका नया अविष्कार ऐसा है कि प्रशांत महासागर के सारे तटपर अब शायद मोतियोंकी खेती होने लगेगी। अमरीका निवासियोंको ख़ुशी है कि अब शायद वे जापानियों को मात कर सकेंगे। जापानी लोग तो वर्षोंसे मोतीकी खेती कर रहे हैं। उनको वे जापानी सीपोंमें पैदा करते हैं पर उनके मोती छोटे, गोल और सफेद ही होते हैं।

यह बड़ी अच्छी बात हुई कि मनुष्यको मोती पैदा करनेका भेद मालूम हो गया, नहीं तो आज मोती मिलना दुर्लभ हो जाता, क्योंकि गत पचास वर्षोंमें प्राकृतिक मोतियोंके पानेका कोई नवीन स्थान नहीं पाया गया है,और पुराने स्थानोंसे मोती यथासंभव सब निकाल लिये गये हैं।

पुराने जमानेके गड़े मोती

जान पड़ता है कि पुराने जमानेसे ही प्रकृति-माताको पर्याप्त मात्रामें मोती पैदा करनेमें कठिनाई पड़ती रही होगी, क्योंकि पुराने समयकी जातियाँ भी मोतियोंकी बड़ी शौकीन थीं। एक पुरानी क़ब्रमें १ घड़ा मोती मिला है शायद उस जमानेमें भी लोग कृत्रिम रीतिसे सीपियोंमें मोती पैदा करते रहे होंगे। मिश्र देशकी कब्रोंमें भी अनेक बहुमूल्य मोती मिले हैं और उस देशके साहित्यमें मोतीकी बड़ी प्रशंसा है।

सीपके बटनोंने रोजगार बढ़ाया

जब पहले-पहल यूरोपियनोंने अमरीकापर विजय पायी तब वे वर्षोंतक वहाँके आदिम निवासियोंसे मोती मोल लिया करते थे। उनको यह पता न था कि ये मोती पासके झीलों और नदियोंकी सीपियों ही में मिलते हैं। कुछ लोगोंने खोज भी की तो उनको छोटे ही छोटे मोती मिले और निराश हो गये। यह तो जब सीपके बटन बनने लगे तब अमरीकामें मोतियोंका व्यवसाय जोरोंका चला। बटनोंके कई एक कारखाने खुले और उनके लिये सीपी बटोरने वाले झुण्डके झुण्ड नदी और झीलोंके किनारेपर खेमे डाल-डाल जा बसे।

परन्तु उन सीपियोंमें मोती अकसर मिलते थे। अधिकांश छोटे, या टेढ़े-मेढ़े होते, परन्तु कभी-कभी वे बड़े और उत्कृष्ट आकारके भी होते। एक सालमें करोड़ों रुपयोंका मोती निकलने लगा और बाज मोतियोंके दाम तो प्रति मोती पाँच-पाँच हजार और दस-दस हजार रुपये मिले। कुछ मोतियोंके दाम तो लाख, सवा लाख रुपये तक लग गये। सीपी बटोरनेवालोंके सम्मुख खजाना मिल जानेकी संभावना मृगतृष्णाकी तरह सदा ही नाचा करती थी और एक ज़माना आया कि अच्छे-अच्छे रोजगार छोड़ कर सीपी बटोरनेके काममें जा लगे। इस प्रकार अमरिकामें प्राकृतिक मोतियोंका भंडार शीघ्र ही खाली हो चला।

मोती बनानेकी असफल कोशिशें

मनुष्य मोतियोंके पैदा करनेमें प्रकृतिकी सहायता करनेके लिये सैकड़ों और शायद हज़ारों वर्षसे चेष्टा कर रहा है। अमरीकाके आदिम निवासियोंने, ऐसा जान पड़ता है, चेष्टा की थी और असफल हुए थे। चीनियोंने बड़ी चेष्टा की थी परन्तु उनको भी सफलता नहीं मिली।

यह तो १९१३की बात है जब जापानी वैज्ञानिक मीकीमोतीको हड्डीसे सटे मोतियोंके बनानेमें सफलता मिली। पीछे वह छोटे-छोटे गोल मोतियोंके भी बनानेमें सफल हुआ। वह सीपियोंके मांसके भीतर सितुहियोंके चूरका एक नन्हा-सा गोला घुसेड़ दिया करता था और उसीपर मोती बनाने लगते थे। जापानके सरकारने इस व्यवसायकी पूरी सहायताकी और शीघ्र ही जापानी मोतियोंका व्यवसाय करोड़ रुपये वार्षिकतक पहुँच गया।
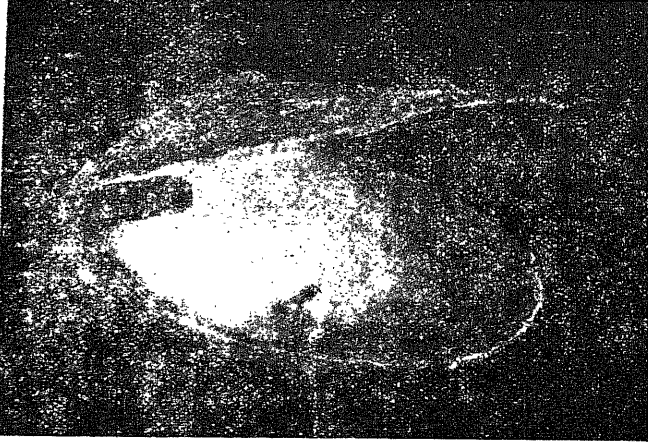
सीपमें मोती। सीपके बीचसे खोलकर दिखलाया गया है।

कैसे बनाये जाते हैं ?

कुछ तरहकी सीपियोंके शरीरमें जब नन्हे-नन्हे कीड़े घुस जाते हैं तब उनमें मोती बन जाता है। प्रकृतिने उन सीपियोंकी रक्षाका यह प्रबन्ध किया है कि उन कीड़ोंपर मोतीका मसाला जमा होने लगता है और राईके समान नन्हे-नन्हे मोती बन जाते हैं। साधारणतया ये मोती सीपी के शरीरसे निकलकर बाहर हो जाते हैं और इस प्रकार सीपीकी जान बच जाती है। परन्तु यदि कीड़ा सीपीके शरीरके किसी ऐसे स्थानमें घुस जाय जहाँसे मोतीका निकल जाना संभव न हो तो वहां उसपर बराबर मोतीका मसाला चढ़ता जाता है। यह समय पाकर कड़ा हो जाता है। यह अर्धपारदर्शक होता है और इसमें झलक होती हूँ। यदि यह सीपीकी हड्डीके पास होता है तो मोती बढ़ते-बढ़ते हड्डी पकड़ लेता है। इस प्रकार हड्डीमें लगा हुआ मोती अच्छे दाममें नहीं बिकता क्योंकि उसका आकार गोल नहीं होता। परन्तु यदि असली गांठ समीपके मांसमें करीब बीचमें पड़े तो मोती प्रतिवर्ष बढ़ता ही जाता है और समय पाकर बहुमूल्य बड़ा-सा गोल मोती होता है। तो भी स्वाभाविक मोतियोंमें बिरले ही मोती सीपीके मांसके ठीक बीचमें होते हैं। जो मोती हड्डीसे छू नहीं भी जाते वे किसी नसके पास पड़नेसे नसके खिंचाव-तनावसे टेढ़े-मेढ़े हो जाते हैं। यही कारण है कि सभी स्वाभाविक मोती बहुमूल्य नहीं होते।

कृत्रिम मोती पैदा करनेवाले हीरको सावधानीसे ऐसे स्थानमें रखते हैं जहाँ उस पर मोतीका मसाला चारों ओरसे बराबर चढ़ सके, हड्डीसे छू जानेका भय न रहे, नसोंसे विकृत हो जानेकी संभवना न रहे और जहाँसे मोतीके बाहर निकल जानेका डर न रहे। पढ़नेमें यह बहुत आसान मालूम पड़ता है, परन्तु इसका पता कि हीर कहाँ रक्खा जाय और वहाँ कैसे पहुँचाया जाय वर्षों निरन्तर प्रयोग करते रहने पर लगा है।

बोस्टविकके प्रयोग

श्रीबोस्टविकने अपनी प्रयोगशाला आसोवा नदीके किनारे बनवाया था। फर्श सीमेंटका था। इसमें कई एक नहरें कटी थीं। प्रत्येक करीब ८ इञ्च गहरी थी। कम्पसे इन नहरों में पानी बराबर धीरे-धीरे बहता रक्खा जाता था। पेंदीमें बालू, कीचड़, मिट्टी, रोड़े, सेवार इत्यादि सीपियों और घोंघोंके आवश्यकतानुसार रक्खे जाते थे। सीमेंटकी एक मेज़ भी बनी थी जिसपर तीन इञ्च गहरा बहता हुआ पानी बराबर रहता था। इसीपर चीड़फाड़ किया जाता था।

प्रकृतिक दशामें बने मोती और इन पालतू सीपियों में जबरदस्ती बनाये गये मोतीमें एक अन्तर यह होता है कि स्वाभाविक मोतीके केन्द्रमें बालूका कण, या हड्डीका टुकड़ा या जरा सा कीचड़ रह सकता है, जिसपर मोती बनना प्रारम्भ हुआ हो। परन्तु पालतू सीपियोंके मांसमें नन्हा-सा असली मोती घुसा देनेसे ऐसे मोती बनते हैं जो भीतरसे बाहरतक मोतीके ही मसालेके बने होते हैं। उसके भीतर कोई रद्दी माल नहीं रहता।

बोस्टविकका कहना है कि मोतियोंका उगाना बहुत कठिन नहीं है, केवल सीपियों या घोंघोंके भीतर ठीक जगह में हीर रखनेकी क्रिया सूक्ष्म होनेके कारण देरमें आती है। प्रत्येक जातिकी सीपी या घोंघोंकी शरीर-रचना भिन्न होती है, इसलिये प्रत्येक जातिके लिये नया प्रयोग करना पड़ता है। वैज्ञानिक प्रकृतिके मनुष्योंको इन कठिनाइयों पर विजय पानेमें बड़ा मजा मिलता है। मोतियोंके पैदा करनेके लिये शल्यशास्त्र जर्राहीकी एक विशेष सूक्ष्म क्रिया करनी

पड़ती है और उसके लिये विशेष रूपसे यन्त्र बनवाने पड़ते हैं। यदि हीर उचित स्थानमें रक्खा जायगा तो अच्छा मोती अवश्य बनेगा जिसका आकार बड़ा होगा और जो पूर्णतया गोल होगा।

सीपियोंमें मोती पैदा करनेके बाद वोस्टविकने शंखोंमें मोती उत्पन्न करनेमें सफलता पायी। फिर कैलिफोरनिया से उनका बुलावा आया और वहाँकी एक विशेष जातिकी सीप पर वे वर्षों प्रयोग करते रहे। अभी-अभी उनको सफलता मिली है। बड़े और अत्यन्त सुन्दर मोती इस जाति की सीपोंमें उगाये जा सकते हैं और ऐसा प्रतीत होता है कि भविष्यमें इच्छानुसार बड़े आकार और आबके मोती उत्पन्न किये जा सकेंगे।

परन्तु रोजगारके लिये मोती पैदा करनेका काम वोस्टविकने दूसरोंपर छोड़ दिया है। वे तो इन दिनों एक विशेष जातिके चांदीके समान चमकीले सफेद बड़े घोंघोंपर मुग्ध हो गये हैं। हो सकता है कि इस जातिमें मोती न पैदा हो सके परन्तु बोस्टविक इसी धुनमें हैं कि सच्ची बातका पता लगाया जाय।

और हम ?

भारतवर्षमें भी बड़े बड़े जीव-विज्ञानी हैं और शिल्पशास्त्री भी। क्या यहां कोई सीपी, शंख या घोंघा पालकर और प्रयोग करके मोती पैदा करनेके भेदका पता न लगावेगा ? क्या नहीं है कोई माईका लाल जो इस क्षेत्रमें अग्रसर होकर भारत-माताकी गोद मोतियोंसे भर दे ?

केंचुएका महत्व

संसारमें किसी वस्तुको तुच्छ न समझना चाहिये। संसारके सब प्राणी ईश्वरने बनाये हैं। हमको कोई अधिकार नहीं कि उनको किसी प्रकार कष्ट दें। इतना ही नहीं, न मालूम किसी छोटेसे जीवसे संसारमें क्या काम निकलता हो, या निकले। प्रकृतिकी अद्भुत लीलाका पारावार नहीं है। क्या पता था कि ज़रासी भापसे इतने बड़े इञ्जनकी उत्पत्ति होगी ? कौन जानता था कि साधुओं के माला फेरकर घासपर रखदेनेसे और घासके खिंच आनेसे विद्युत्शास्त्रकी नींव पड़ेगी। इसी प्रकार केंचुए भी तुच्छ दृष्टिसे देखे जाते थे और उनकी कोई परवाह न करता था। जीव विज्ञानके न जानने वाले अब भी इसके गुणोंको नहीं जानते।

पहले इस छोटेसे जानवरके बारेमें हम लोगोंको कुछ विशेष न मालूम था। सम्वत १८३४ वि० में ह्वाइट नामक एक प्रकृतिवेत्ताने एक मित्रको लिखा "छोटेसे छोटे कीड़े मकोड़े भी इतने कामके होते हैं और प्रकृतिके मितव्ययमें इतनी सहायता करते हैं कि मामूली लोग उसका अनुभव नहीं कर सकते। वह इतने छोटे होते हैं कि मनुष्यमात्रका ध्यान उनकी ओर नहीं जाता और इस कारण वे अपना काम बे रोक टोक बड़ी तेजीसे करते हैं। केंचुआ देखनेमें चाहे तुच्छ हो और प्रकृतिके ज़ंजीरका एक हीन ही कीड़ा क्यों न हो, परन्तु यदि संसारसे निकाल दिया जाय तो अनर्थ ही हो जाय। इनसे वनस्पतियोंके उगनेमें बड़ी सहायता मिलती है। यह पृथ्वीको छेदकर मिट्टीको पोली बना देते हैं और इसीसे बरसातका पानी और पौदोंकी जड़ें आसानीसे पृथ्वीमें प्रवेश कर सकती हैं। उनके शरीरमेंसे सेवईकी तरह जो मिट्टी निकलती है वह बड़ी ही महीन होती है और खेती बारीमें वह पौदोंके उगने और उनके खानेमें बड़ी सहायता देती है।" यह ह्वाइटने लिखा तो अवश्य परन्तु केंचुएके विषयमें डारविनने सौ बरससे कुछ ज्यादा हुए भली प्रकार अपनी एक पुस्तकमें लिखा था। बरसों उसने बड़ी छानबीन और परिश्रम किये और तब संसार को पता लगा कि जिस जन्तुको हम लोग बिलकुल बेकाम भद्दा और निकृष्ट समझ रहे थे वह वास्तवमें मनुष्य जातिका उपकारक और सहायक है।

जिस समय डारविन केंचुएके रहन सहन, और उसके जीवनरहस्यका पता लगानेमें कठिन परिश्रम कर रहा था, उसके एक मित्रने कहा कि ऐसी तुच्छ वस्तु पर इतना परिश्रम और समय लगाना बिलकुल भूल है। परन्तु डारविन अच्छी तरह समझता था कि उसका परिश्रम व्यर्थ न होगा।

केंचुएका रहन सहन

केंचुएका शरीर अच्छी तरह देखनेसे पता लगता है कि वह छोटे छोटे छल्लोंसे मिलकर बना हुआ है। भिन्न भिन्न जगहोंके केंचुओंमें छल्लोंकी भिन्न भिन्न संख्यायें होती

हैं। केंचुएके पेटकी ओर दो दो छोटे छोटे महीन कड़े बालके दो जोड़ होते हैं। यह बाल कुछ पीछेकी ओर झुके रहते हैं और इस कारण पीछेकी ओर केंचुआ नहीं हट सकता क्योंकि जब पीछे हटने लगता है तो यह बाल पृथ्वीमें धँस जाते हैं। सरकी ओरका भाग नोकीला होता है। मुंहके ऊपर कुछ चमड़ेका भाग साहब लोगोंकी टोपीकी तरह झुका रहता है। इसीकी सहायतासे पत्तीके टुकड़े तथा भोज्य पदार्थ वह उठा सकता है। हाथीकी सूंड़की अंगुली की भांति इसमें भी बड़ी सचेतनता होती है। यह तो लोग जानते ही हैं कि इसके आंख नहीं होती लेकिन आगे का भाग प्रकाशसे संचेत्य होता है। उसको अंधेरे उजालेका पता लग जाता है, और इसी कारण दिनमें कम निकलता है। बरसातमें उसके बिलमें पानी चले जानेसे वह दिनमें निकल आता है, नहीं तो रातमें ही निकलकर चरता और हवा खाता है। इसके कान भी नहीं होते और न शब्द सुन सकता है परन्तु पृथ्वीके हिलाव को तुरन्त जान जाता है।

वह रहनेके लिये बड़े लम्बे लम्बे बिल बनाता है। इसके बिल तीन या चार फुट तक गहरे होते हैं। मुलायम ज़मीन, जैसे जुते हुये खेतमें, वह केवल अपने मुंहको नीचे करके बरमाकी तरह छेदता हुआ चला जाता है। छेदते समय उसके शरीर लगनेके कारण बिलकी दीवार बिलकुल चिकनी हो जाती है और उसके शरीरके छेदोंमेंसे पसीनेकी भांति एक तरल पदार्थ निकलता है जिससे बिलके दीवार पर पलस्तर हो जाता है और दीवार एक दम गिर नहीं सकती। परन्तु जब कड़ी मिट्टीसे मुकाबला करना होता है, या किसी प्रकारसे मिट्टी ऐसी हो जाती है कि वह अपने शरीरसे छेद नहीं सकता तो वह मिट्टी खाने लगता है। जो मिट्टी वह खाता है वह मुहसे गलेमें जाती है। गलेके बाद एक ८ की शकलकी नली होती है उसमें जाती है। इसके बाद एक मांसकी चक्की होती है जिसमें दो छोटे छोटे पथर भी होते हैं। इन्हीं पथरोंकी सहायतासे कड़ी मिट्टी अथवा पथरके कण या और छोटे छोटे कड़े पदार्थ पीसे जाते हैं। यहांसे पिसकर और बारीक होकर मिट्टी पेटमें जाती है। पेटके भीतर मिट्टीमें मिले हुए जो छोटे छोटे जानवर अथवा पत्तियां हों वह हज़म हो जाती हैं। बाकी मिट्टी, पेटके अन्दरके भोजन पचानेवाले पदार्थोंसे मिलकर पीछेके एक छेदसे सेवईके रूपमें बाहर निकल आती है। इसको जन्तु-मल-त्याग कहते हैं। दिन भर केंचुआ बिलके भीतर रहता है और रातको भी जब बाहर निकलता है अपनी दुम या पिछला भाग बिलके पास ही रखता है, इसलिए यदि कोई भय हो तो तुरन्त सारा शरीर बिलमें खींच लेता है। केंचुआ जो मिट्टी खाता है वही उसकी ख़ोराक नहीं होती। इसके अतिरिक्त सड़ी पत्तियां और घास पात भी खाता है। ऐसा करनेके लिए वह अपनी दुमका थोड़ा भाग छोड़कर सब धड़ बिलके बाहर निकाल लेता है और यथाशक्ति अपने शरीर को लंबा करता है। इसके बाद एक गोलाकारमें जो कुछ पाता है झाड़ूकी तरह बिलके मुंहपर लेता है और तब बिलमें उतरकर थोड़ा थोड़ा खाता है। जो थोड़ीसी पत्तियाँ ऊपरसे अपने भीतरकी कोठरीमें ले जाता है उसे मुंहमेंसे एक प्रकारका लुआब निकालकर ढक देता है। यह भी एक प्रकारका पाचक पदार्थ है। इससे पत्तियां नरम हो जाती हैं और केंचुआ बेदाँत मगर मज़बूत मुँहसे कुतर सकता है। दिनमें अपना बिल केंचुआ पत्तियोंसे ढांक देता है। एक तो इसलिए कि बिलका मुँह छिपा रहै, दूसरे यह कि गर्मी और धूपसे बिल सूखने न लगे, क्योंकि केंचुआ नम बिलमें ही रह सकता है।

केंचुएसे खेती बारीमें क्या लाभ होता है, यह बहुत कुछ तो अभी मालूम ही हो गया होगा। बिल कई इंच गहरे होते हैं जिससे पृथ्वीके भीतर हवा और पानीकी बूंदें सरलतासे प्रवेश करती हैं, और पेड़ोंकी बारीक जड़ें भी आसानीसे ज़मीनके भीतर जाती हैं। इससे उन्हें खूब भोजन और तरावट मिलती है। जब केंचुए बिल छोड़ देते हैं तो वह कुछ समयमें गिरकर चूर चूर हो जाते हैं। इस प्रकारसे धीरे धीरे परन्तु निरन्तर मिट्टी एक स्थानसे दूसरे स्थानको चला करती है और नीचेकी मिट्टी ऊपर आती है जिसपर हवा, पानीका खूब असर होता है। ऊपरकी भी मिट्टी इसी प्रकार नीचे जाती है।

सड़ी हुई पत्तियां जिन्हें केंचुआ बिलके भीतर ले जाता है पौदोंके उगनेमें बड़ी सहायक होती हैं, और लुआब जिनसे पत्तियां ढकी रहती हैं पौदोंकेलिए सोनेमें

सुहागेका काम देता है। ऊपर जो 'सेवई' होती वह क्या हैं? नीचेके तहकी उत्तम मिट्टी जिसे केंचुएने और भी बारीक पीस दी है ऊपर पृथ्वीकी सतहपर आ जाती है और इस प्रकार पृथ्वीके ऊपरकी सतह सुन्दर बारीक मिट्टी से ढक जाती है।

डारविनने किस प्रकार अनुसन्धान किया उसका भी कुछ उल्लेख आवश्यक है। अपने कमरेके चारों तरफ़ उसने गमलोंमें केंचुए पाल रक्खे, और बराबर उनको देखता रहा कि वे किस प्रकारका भोजन बहुत पसन्द करते हैं? किस प्रकार वे दो चार तरहके भोज्य पदार्थोंमेंसे अपनी रुचिके भोजनको चुन लेते हैं? कैसे वह अन्य अन्य प्रकारकी पत्तियोंको खींचते हैं? एक दिनमें कितनी मिट्टी उनके पेटमेंसे निकलती है? पत्तियोंपर लुआबका क्या असर पड़ता है? किस समय वह बड़े फुरतीले होते हैं? इत्यादि। यह भी समझकर कि शायद गमलोंकी तङ्ग जगह अथवा घरमें रखनेमें उनके रहन सहनमें कुछ परिवर्तन हो जाय रातको लालटेन लेकर खेतोंमें जाकर भी वह देख भाल किया करता था।

इसके अतिरिक्त उसने और भी देख भाल शुरू की। पत्थरके ढोंके देखे गये। यह पाया गया कि वह धीरे धीरे धंसते जाते हैं। फिर यह देखा गया कि वह किस हिसाबसे धंस रहे हैं। एक खेतमें कुछ हिस्सेपर खड़ियाके छोटे छोटे टुकड़े बिछा दिये गये। तीस वर्षतक ज्योंका त्यों वह खेत पड़ा रहा। इसके बाद वही खड़ियाके ढोंके पृथ्वीकी सतहके सात इंच नीचे बिछे हुए पाये गये। दूसरे खेतमें बड़े पत्थर के टुकड़े बिछा दिये गये। इसे भी तीस सालतक छोड़ दिया। तीस सालके बाद उसपर आसानीसे घोड़ा दौड़ाया जा सकता था और पत्थर लापता थे।

एक और जाँचकी गयी। वह इससे भी ठीक थी। खेतमें एक गज़ लम्बी और एक गज़ चौड़ी ज़मीन नाप ली गयी और सैकड़ों ऐसे टुकड़े नापकर निशान बनाकर छोड़ दिये गये। एक साल तक बराबर हर टुकड़ेकी रोज़ जाँच होती रही। सालभरमें एक एक वर्ग गज़की 'सेंवई' वाली मिट्टी तौली गयी और फ़ी वर्ग गज़ एक सेर ११ छटांक पायी गयी। इससे यह स्पष्ट हुआ कि ऐसी ही एक एकड़ ज़मीन पर सालभरमें लगभग ११२ मन मिट्टी नीचे से ऊपर आती है।

इतिहासमें बहुत ही प्रचीन कालमें हलका वर्णन आता है। इस यंत्रकी ईजाद बहुत ही प्राचीन कालमें हुई थी परन्तु उसके पहले भी खेत इस प्राकृतिक हलद्वारा जोता जाता था। अब भी यह प्राकृतिक हल मनुष्यके कामको आसान करता है तथा उसे सहायता देता है। संभव है कि ऐसे और जानवर हों जिनका पता अभी मनुष्यको नहीं मिला है और वह भी मानवजातिको सहायता देते हों।

परन्तु हमें यह न समझना चाहिये कि केंचुए जान बूझकर हम लोगोंको मदद दे रहे हैं अथवा वे इस बातकी चेष्टा करते हैं कि मनुष्यजातिको फ़ायदा पहुँचावें। इसके विपरीत गोभी तथा छोटे छोटे मुलायम पौदोंको कुतरकर वे हम लोगोंको हानि पहुँचाते हैं। गाजर और अजवायन जब नयी नयी पत्तियां पृथ्वीके भीतरसे फेंकती हैं तब तो उनको बेतरह खाते हैं। तब भी उनकी जातिसे कोई विशेष हानि नहीं पहुँच सकती।

हम लोगोंके अतिरिक्त और जीव जन्तुओंको भी इनसे लाभ ही पहुँचता है। गोजर तो इनके बिलोंमें घुस जाता है और इनका खूब भोजन करता है। तीतर, श्यामा इत्यादि, ज्योंही इनका सर बिलके बाहर देखते हैं, तुरन्त चोंचमें पकड़कर पेटमें पहुँचानेकी कोशिश करते हैं और अनजानमें उनसे लाभ भी पहुँच जाता है।

संसारके प्रत्येक हिस्से में १०,००० फुट ऊँची ज़मीनतकमें केंचुए पाये जाते हैं। जैसा ऊपर लिखा जा चुका है उनके रहनेके लिए कुछ नमीकी आवश्यकता है, इस कारण बहुत सूखे स्थानमें वे नहीं रह सकते। एक ही देशमें भिन्न भिन्न स्थानोंपरके केंचुओंकी बनावट भिन्न हो जाती है। उनका प्रयोजन, उनके शारीरिक धर्म, उनकी भीतरी बनावट इत्यादि भी विचित्र होती हैं।

गिजगिजिया

गिजगिजिया (अँग्रेज़ी नाम जेली फ़िश) बड़ी ही सुन्दर होती है। उसका मनमोहक रूप देख कर मनुष्य आश्चर्यचकित रह जाता है। इनके शरीरकी
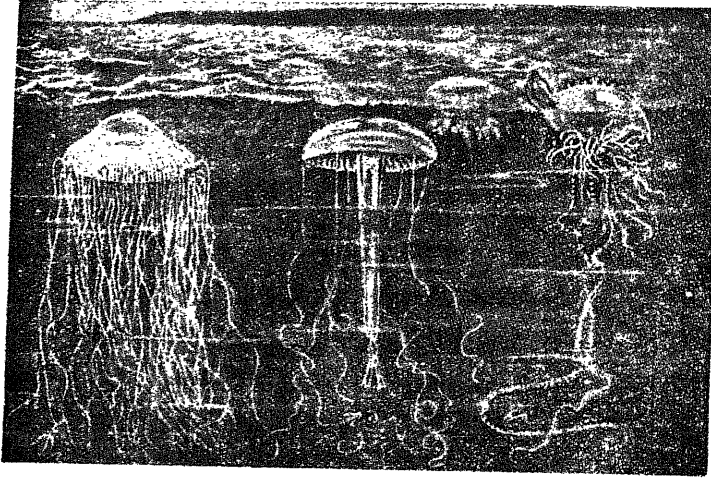
गिजगिजिया।
ये जन्तु बहुत सुन्दर, झालरदार छातेकी तरह, होते हैं और समुद्रमें तैरते या बहते रहते हैं।

बनावट तंतुमय होती है। न बाहर हड्डी होती है और न भीतर। इनके भीतर बहुत-सा जल रहता है। इसीलिए पानीके बाहर निकाले जानेपर वे चिचुक जाती हैं और उनकी सुन्दरता जाती रहती है।

समुद्र तटपर खड़े होनेसे ये जन्तु पानीमें तैरते हुए कभी-न-कभी दिखलाई पड़ ही जाते हैं। उनके हाथ (या चाहे इन अंगोंको पाँव कहिये) नीचे झूलते रहते हैं और ऊपर छतरीकी तरह उनका शरीर फूला रहता है। जान पड़ता है कि वे लाचार हैं और पानी जिधर चाहे उधर उन्हें बहा ले जायगा, परन्तु बात ऐसी नहीं है। वे इच्छानुसार दिशामें जा सकते हैं; हाँ, वे तेज नहीं तैर सकते। तैरनेके लिए वे अपने छतरी-जैसे अंगको बार-बार फुलाते पिचकाते हैं।

गिजगिजियाँ कई जातियोंकी होती हैं। कुछमें छतरी तीन फुट व्यासकी होती है, परन्तु अन्य जातियोंमें छतरियाँ छोटी होती हैं। गिजगिजियाँ विविध सुन्दर रङ्गोंकी होती हैं,परन्तु तैरने वालोंको उनसे बचा ही रहना चाहिए, क्योंकि उनके बाहुओं में अनेक सूत्र होते हैं जो शरीरमें डंककी तरह लगते हैं। बड़ी गिजगिजियोंकी बाहें कई गज़ लम्बी होती हैं। एककी चपेटमें आ जानेसे मनुष्यको घंटों पीड़ा होती है।

गिजगिजियेका जीवन इतिहास बड़ा मनोरंजक है। इनके अंडोंमेंसे गोल इल्लियाँ निकलती हैं जिनमें अति सूक्ष्म लोम लगे रहते हैं। इन्हींसे इल्लियाँ तैर सकती हैं। ये इल्लियाँ किसी पत्थर या शैवालमें जा चिपकती हैं और तब प्रत्येक इल्लीसे एक बस्ती बस चलती है, क्योंकि इल्लीमेंसे विशेष कलियाँ निकलती हैं, ठीक उसी प्रकार जैसे पौधोंमें, और इन कलियोंमेंसे गिजगिजिया निकलती हैं, जो अंडे दे सकती हैं।
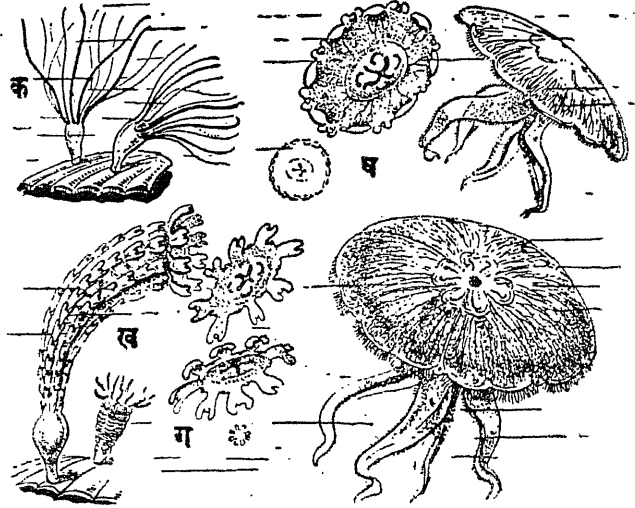
गिजगिजियेका जीवन इतिहास
क—इल्लियाँ किसी पत्थरसे जा चिपकती हैं। ख—प्रत्येक इल्लीसे एक बस्ती बस जाती है, जो पौधों-सी जान पड़ती है। इनमेंसे कलियाँ निकलती हैं (ग) और प्रत्येकसे गिजगिजिया (घ) उत्पन्न होती है। जब गिजगिजिया तरुण हो जाती है तो उसका रूप झालरदार छाते-सा हो जाता है।

मुद्रक तथा प्रकाशक—विश्वप्रकाश, कला प्रेस, प्रयाग।

विज्ञानं ब्रह्मेति व्याजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते ।
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति ।। तै० उ० ।३।५।

भाग ५६ | वृष, सम्वत् २००१ । मई १९४४ | संख्या २

जंगलोंके विस्तारकी आवश्यकता

गाँवोंके लिए जंगलोंका महत्व

"हमारी उन्नति सम्बन्धी योजनाएँ जब पूर्णतः तैयार हो जायँगी तो हमें आवश्यक वैज्ञानिक योग्यतासे भली प्रकार सम्पन्न ऐसे अफसरोंके दलोंकी आवश्यकता पड़ेगी जो उन ७, ००, ००० गावोंमें जाकर काम कर सकें जिनसे मिलकर ही भारतका निर्माण हुआ है। हमें अभीसे अतिरिक्त कर्मचारियोंको शिक्षित करनेकी योजना बना लेनी चाहिये और यदि इन योजनाओंको कार्यान्वित करनेके लिए आदमी उपलब्ध करना है तो शिक्षणके सुविधाओंमें पर्याप्त विस्तार कर देना चाहिए" ये हैं वे शब्द जो शिक्षा, स्वास्थ्य और भूमि विभागके सदस्य, माननीय सरदार सर जोगेन्द्रसिंहने गत गत १ अप्रैलको देहरादूनमें इंडियन फारेस्ट कालेज और इण्डियन फारेस्ट रेंजर कालेजके सम्मिलित दीक्षान्त समारोहमें भाषण करते हुए कहे।

गाँव वालोंके लिये ईंधन

उन्होंने कहा कि हमारी योजना यह है कि बृटिश भारतमें १,००,०००० वर्ग मील क्षेत्रमें और बन लगा दिये जांय जिससे बर्तमान वन्यक्षेत्र दुगना हो जाय और फिर भारत जैसे देशके जितने प्रतिशत भागमें वन होना आवश्यक है उतनेमें वन हो जांय। ये बन गाँव वालोंके घरोंके निकट ही लगाये जायँगे और इनके लगानेके पाँच वर्षोंके अन्दर ही इनकी जो काटछाँट होगी उससे उन्हें ईंधन मिलने लगेगा। इस प्रकार अभी जो गोबर जलानेके काममें लाया जाता है वह बच जाया करेगा और उनसे ७ करोड़ २० लाख एकड़, अर्थात् हमारी खेती की ३० प्रतिशत भूमिके लिए खाद मिल जाया करेगी। इससे भारतके खाद्य उत्पादनमें प्रायः ५० प्रतिशतकी वृद्धि हो जायगी।

युद्धोत्तर समस्याएँ

सर जोगेन्द्रसिंह ने आगे चलकर कहा कि कुछ समस्याएँ ऐसी है जिनपर युद्ध समाप्त होते ही विचार करना पड़ेगा। इनमेंसे कुछ तो अभी ही हमारे सम्मुख उपस्थित हो गयी हैं। एक साधारण व्यक्तिके रूपमें मैं अनुभव

करता हूँ कि समस्त समस्याओंमें तीन सबसे अधिक महत्वपूर्ण हैं। ये समस्याएँ हैं; (१) वर्तमान सुरक्षित जंगलों-को फिरसे उस स्थितिमें लाना जिनमें वे युद्धसे पहले थे और भूमिकी उत्पादन शक्तिके अनुसार अधिकतम उपज करना, (२) पानी बह जाने, बाढ़ और भूमि कटनेकी समस्याएँ और उनके परिणाम, सूखते और अनुत्पादक बनते जाने वाले क्षेत्रोंकी समस्या, बहुत विस्तृत क्षेत्रमें बन लगाने की अतीव आवश्यकता; (३) खेतीमें बनोंसे सहायता लेने की अत्यन्त आवश्यक समस्या।

कृषिके कार्यका सर्वोत्तम उदाहरण हमारे जंगलोंमें पाया जाता है। वृक्ष सीधे धूपसे भूमिकी रक्षा करते हैं। उनके पत्तोंसे चंदोवा बन जाता है, जिसमेंसे वर्षाकी बूँदें फुहारके रूपमें भूमिपर पड़ती हैं और पौदोंके नीचे जमा होने वाले कूड़ा कर्कट और जानवरोंके मलमूत्रको भूमिके खाद्यके रूपमें बदल देती हैं। वृक्षोंसे न केवल ईंधन और इमारती लकड़ी प्राप्त होती है बल्कि उनसे हवाके झोंके मन्द समीरमें परिवर्तित हो जाते हैं और जमीके नियंत्रण तथा संरक्षणमें भी सहायता मिलती है।

भूमिकी रक्षा

भूमिकी रक्षाकी साधारण समस्या जंगलों तथा नहरोंके अफसरोंके लिए बड़ी महत्वपूर्ण है। यदि नदी-नालोंके उद्गम स्थानोंपर पानीके प्रवाहपर नियंत्रण कर लिया जाय तो बाढ़में होने वाली क्षतिसे रक्षा हो सकती है। हिमालय और मध्य भारतके उत्तरी भागके प्रदेशोंमें जंगलों को काट देनेके कारण ही गंगामें बाढ़ आ जाती है, जिससे बंगालकी जनताके स्वास्थ्य और सुख-समृद्धिपर प्रभाव पड़ता है। इसलिए यह समस्या प्रान्तों और देशी राज्योंतक ही सीमित नहीं रह जाती। जंगलोंकी रक्षा तथा नये इलाकोंमें जंगल लगाना कृषिके लिए अत्यधिक महत्वपूर्ण है।

गोबरकी जगह लकड़ी

हमारी समस्या ग्रमीण जनताको जलानेके लिए गोबर की जगह लकड़ी देनेका प्रबन्ध करना भी है। क्योंकि मैं अनुभव करता हूँ कि हमारा प्रथम कर्तव्य भूमिके लिए गोबरकी प्राप्ति है। अनुमान लगाया गया है कि भूमिसे प्रतिवर्ष २५ करोड़ टन फसल होती है, इसलिए हमें इतनी खाद चाहिए जिससे ७ करोड़ २० लाख एकड़ अथवा बोये जाने वाले ३० प्रतिशत क्षेत्रकी पूर्ति हो सके। देशमें ही समस्त तेलहनको पेरनेसे भूमि और पशुओंके लिए अतिरिक्त खाद्यका प्रबन्ध हो सकता है।

खादका फसलके उत्पादनपर विविध रूपसे प्रभाव पड़ता है। परन्तु यदि यह मान लिया जाय कि खाद लगे प्रदेशमें खाद्यका उत्पादन लगभग तिगुना हो जाता है तो इसका मतलब यह हुआ कि यदि गोबर जलाया न जाय और खादके रूपमें काममें लाया जाय तो इससे भारत भरमें खाद्यके उत्पादनमें लगभग ५० प्रतिशतकी वृद्धि हो हो जायगी। किसान बहुत ही अपरिवर्तनशील और बहुत ही निर्धन होता है। उसे रासायनिक खादके लाभ का विश्वास दिलाना सदा सरल नहीं होता और यदि विश्वास हो भी जाय तो निर्धनताके कारण वह उसे खरीदनेमें असमर्थ रहता है। परन्तु खादके रूपमें गोबरकी कितनी उपयोगिता है यह किसानको बतानेकी आवश्यकता नहीं पड़ेगी।

और जंगल चाहिये

गाँव वाले गोबर इसलिए जलाते हैं कि उनके पास ईंधनका और कोई साधन नहीं है। उसके गांवके निकट जंगलोंका अभाव है, जिनसे उन्हें इमारती लकड़ी और ईंधन मिल सके। हमें गाँव वालोंके द्वारपर ही जंगल लगानेकी आवश्यकता है। इन छोटे कृषि सम्बन्धी जंगलोंके लिए भूमि निस्संदेह उपलब्ध है। बृटिश भारतकी ९,००,००० वर्गमील भूमिमें खेती होती है अथवा जंगल है और ३,००,००० वर्ग मील भूमि कृषि सम्बन्धी जंगल लगानेके लिए प्राप्तकी जा सकता है।

—भारतीय समाचार से

सरल विज्ञान सागर

अपनी योजनाके अनुसार हम यहाँ एक अङ्क और देते हैं।

इस प्रकार गिजगिजियेका वंश दो रूपका होता है जो पारी-पारीसे उत्पन्न होता रहता है। प्रत्यक्ष है कि गिजगिजिया अपनी दादीके समान होती है, न कि माँके समान। माँ एकदम दूसरे रूपकी होती है।

कुछ गिजगिजियाँ बहुत ही बड़ी होती हैं। आर्कटिक सागरमें एक गिजगिजिया इतनी बड़ी होती है कि उसका छाता साढ़े सात फुट व्यासका होता है। उसके ग्राहक अंग (हाथ या पैर) सवा सौ फुट तक पहुँच जाते हैं।

गिजगिजिया अपने ग्राहक अंगको लपेटकर अपने पास खींच सकती है। शिकार दिखायी देनेपर वह विद्युत गतिसे इस अंगको बढ़ाकर उसे पकड़ लेती है।

गिजगिजियाँ छोटी मछलियों और वल्कवतियोंपर निर्वाह करती है। गिजगिजियाकी पकड़में आते ही मछली आदि बेदम हो जाती हैं, क्योंकि उसके डंकसे जो विष निकलता है उससे इन छोटे जानवरोंमें मुर्च्छा आ जाती है।

इतनी विषाक्त होते हुए भी इसे समुद्री घोंघे और कछुए खा जाया करते हैं। कछुए तो इसे आँख मूँद कर खाते हैं, जिसमें विष आँखोंमें छटक कर उन्हें अंधा न कर दे।

स्पंज

पाश्चात्य सभ्यताके प्रेमी स्पंजको स्नानागारका आवश्यक अंग समझते हैं। जैसे यहाँ लोग तौलियेसे अपना शरीर रगड़ते हैं वैसे धनी लोग वहाँ स्पंज से।

स्पंज
यूरोपियनोंके स्नानागारोंमें काममें आने वाले स्पंज जीवित स्पंजों की ठठरियाँ होती हैं। चित्रमें समुद्रके भीतरका जीवित स्पंज दिखलाया गया है।

स्पंज, जैसा पहिले बतलाया जा चुका है, एक जन्तुकी ठठरी है। परन्तु यह ठठरी नरम तथा छिद्रमय होती है, और पानी खूब सोख सकती है। इन्हीं गुणोंके कारण इसका प्रयोग होता है।

बहुत समय तक पहले इस विषयपर बहुत वाद-विवाद हुआ करता था कि स्पंज वनस्पति है या प्राणी। अरस्तू (अरिस्टॉटल), जो चतुर्थ शताब्दी ईसा पूर्वमें था, कहता था कि वे जन्तु हैं; परन्तु उसके पश्चात् जेराडकी सम्मति थी कि वे समुद्रके फेनसे बने हैं। पीछे, प्रायः आधुनिक समयोंमें, कुछ ने अवश्य कहा कि स्पंज कुछ कीड़ों के छत्ते हैं, परन्तु प्रथम बार सन् १७६५ में ठीक बातका पता चला। उस वर्ष एक वैज्ञानिकने देखा कि जीवित अवस्थामें स्पंज पानी चूसता और बाहर फेंकता है। इसलिए उसकी सम्मति थी कि स्पंज अवश्य जीवित प्राणी है और बाजारका स्पंज जीवित स्पंजोंकी ठठरी है। इसपर एक पत्रिका ने प्रौढ़ बच्चोंके लिए 'नवीन पंक्तियाँ,' शीर्षकके नीचे निम्न चुटकी ली थी :—

स्पंज नहीं है, सच तुम जानो,
कोई खर पतवार,
वह रहता है नील सिंधुमें,
तुम सम, मुझ सम, प्राण है उसमें;
ईश्वर सिरजानहार,
जब बेचारा सो जाता है,
घुसते गोता खोर,
उसको निर्दयतासे कोचें,
उसकी बीबीको भी नोचें,
यही तो दुख है घोर।
समझ रहा हूँ बुरी लगेंगी
आपको ये सब बातें,
शोक! हाय! मैं करूँ तो क्या फिर;
आप कभी जब धोते हैं सिर,
घिसते लाखों लाशें।

वस्तुतः बहुत दिनों बाद, १८२५ में, यह निर्विवाद रूपमें निश्चित हो

गया कि स्पंज प्राणी हैं। उस वर्ष एक वैज्ञानिकने सूक्ष्म-दर्शकसे देखा कि स्पंज बड़ी तेजीसे पानी चूस रहा था और उसे बाहर निकाल रहा था। यह क्रम घंटों जारी रहा। फिर पानीमें अत्यन्त सूक्ष्म चूर्ण मिला कर परीक्षण करनेपर पता चला कि स्पंज चूर्णको अपने शरीर में रख लेता है। अन्य अनेक परीक्षणोंसे भी सिद्ध किया गया कि स्पंज जीवित प्राणी है और जलके अति सूक्ष्म प्राणियोंको पचाकर अपना पोषण करता है।

स्पंजोंकी खेती की जाती है। इसके लिए स्पंजोंको एक-एक इञ्चके टुकड़ोंमें काट कर और बाँस या बेंतके झाबोंमें थोड़े-थोड़े टुकड़ोंको रख कर झाबोंको समुद्रकी तली तक उतार दिया जाता है। वहाँ स्पंजके टुकड़े बढ़ने लगते हैं। छः-सात वर्षमें स्पंज बटोरने योग्य हो जाता है। यह खेती अठारह-बीस फुट गहरे समुद्रमें ही की जाती है। बहुत छिछलेमें स्पंज बढ़ ही न पायेंगे। बहुत गहरेमें उनका बटोरना कठिन होता है।

यह न समझना चाहिए कि काटनेसे स्पंज मर जायँगे। जब केंचुआ जैसे बड़े जीवको काटने पर भी वह दो होकर जीवित रह सकता है तो स्पंजकी बात ही क्या है। स्पंजको तो कीमाकी तरह कूट कर बखेर देनेपर भी कुछ टुकड़े बढ़ने लगते हैं।

स्पंज कई रङ्गके होते हैं। कुछ ललछौंह, कुछ निल-छौंह। काले, सफेद, बैगनी, पीले, कत्थई, गुलाबी, नारङ्गी और हरे स्पंज भी होते हैं।

एक प्रकारका केकड़ा स्पंजोंसे अनोखा लाभ उठता है। वह अपनी पीठ पर स्पंज लाद लेता है और उसे वहाँसे हटने नहीं देता। कुछ समयमें उसकी पीठ स्पंजसे ढक जाती है। इस प्रकार वह केकड़ा अपने शत्रुओंसे और अपने शिकारसे छिपा रहता है; इससे उसकी जान बचने और आहार मिलने, दोनोंमें सुविधा होती है।

स्पंजोंका जीवन-इतिहास बहुत रोचक है। कुछ जातियोंमें प्रारंभिक जीवन अपनी माताके भीतर व्यतीत होता है। माताओंसे अंडेके आकार के नन्हें-नन्हें पिंड निकलते हैं जो आलपीनके माथेके बराबर होते हैं। इनपर अनेक नन्हें-नन्हें लोम होते हैं जिन्हें चलाकर ये पिंड तैर सकते हैं। परन्तु वे शीघ्र अपना भ्रमण बन्द कर देते हैं और किसी पत्थर आदिसे चिपक रहते हैं। स्पंजोंकी कुछ जातियोंमें कलियाँ निकलती हैं और पृथक्क हो जाती हैं। ये ही कलियाँ नवीन स्पंज हो जाती है।

स्पंजोंके बटोरनेके लिये पहले गोताखोर नंगे शरीर समुद्रमें पैठा करते थे और अब भी बहुत स्थानोंमें ऐसा

स्पंज और मूँगे।
थूहरके पेड़के समान वस्तु मूँगा है।

किया जाता है। परन्तु अब कुछ गोताखोर विशेष वस्त्र पहन कर उतरते हैं। इन वस्त्रोंमें सरपर पहनने वाला टोप घड़ेके आकारका होता है, जिसमें रबड़की नली द्वारा वायु पंपसे बराबर संचालित होती रहती है। आँखोंके सामने मोटा स्वच्छ शीशा लगा रहता है। स्पंजोंको उखाड़नेके लिए त्रिशूलका प्रयोग किया जाता है।

१५
प्राणी कैसे बढ़ते हैं।

सभी प्राणी डिंबसे निकलते हैं। डिंब अंडेके प्रारंभिक रूपको कहते हैं जो नारीके शरीरमें बनता है। जब नरसे निकला एक शुक्राणु डिंबसे जा मिलता है तब गर्भाधान होता है पीछे उसकी चारों ओर पोषक पदार्थ जम जाता है। पक्षी आदि साधारण अंडेमें एक नन्हा-सा सजीव केन्द्र होता है जिसे नाभि कहते हैं। नाभिकी चारों ओर, नाभिके पोषणके लिए, पोषक पदार्थ रहता है।

गर्भित अंडेसे केवल वही निकल सकता है जो उसमें उस समय अप्रस्फुटित रूपमें रहता है। बत्तखके अंडेपर चाहे मुर्गी ही बैठे परन्तु अंडेसे बत्तख ही निकलेगी। गर्भाधान होते ही उत्पन्न होने वाले बच्चेका रूप, गुण, आदि निश्चित हो जाता है—वस्तुतः वे सभी बातें जो बच्चेको माता-पितासे मिलती हैं पूर्णतया निश्चित हो जाती हैं। यों तो बच्चेको अपने माता-पितासे केवल दो कण— एक डिंब, दूसरा शुक्राणु—मिलते हैं; परन्तु इन्हीं अति सूक्ष्म कणोंमें सभी पैतृक गुण वर्तमान रहते हैं

आरम्भमें बत्तखके अंडेमें बत्तख नहीं रहती। नाभिमें केवल एक सजीव कण रहता है जिसमें कोई भी अंग नहीं बना रहता। इस प्रकार आरम्भमें सभी जातिके प्राणी—उसीमें मनुष्य भी है—एक ही अवस्थामें रहते हैं। उस जातिने लाखो वर्षोंमें जो कुछ भी उन्नतियाँ प्राप्त की हैं उन सब उन्नतियोंको बच्चेको अपने बढ़नेके समयमें ही प्राप्त करना पड़ता है। यह बड़े महत्वकी बात है।

अंडोंमें क्या अन्तर रहता है।

ऊपरसे देखनेमें अंडोंकी नाप और आकृतिमें महान अन्तर रहता है। उस नन्हेंसे सजीव केन्द्रके, जो अंडेका सार अंश है, चारों ओर पोषक पदार्थ और संरक्षक खोल रहता है। इसी पोषक पदार्थकी मात्राके अनुसार अंडा
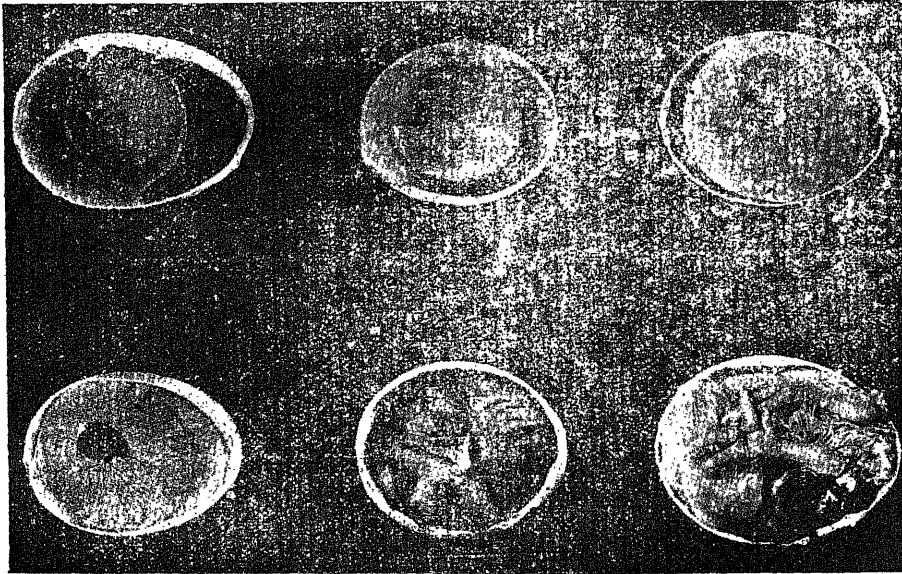
अंडेके भीतर भ्रूणका बढ़ना।

अंडेके भीतर आरम्भमें एक सूक्ष्म जीवित केंद्र (भ्रूण) रहता है। वही बढ़ता और रूप बदलता रहता है और अन्तमें मुर्गी (या अन्य जीव) में परिवर्तित हो जाता है। अंडेके सफेद और पीले भाग बढ़ते हुए भ्रूणके लिए आहार-मात्र हैं।

बड़ा या छोटा होता है। एक ओर तो सीपका अंडा है जो इतना सूक्ष्म रहता है कि आँखसे दिखलाई नहीं पड़ता। दूसरी ओर शुतुरमुर्गका अंडा है जो सेर भरका हो सकता है। जैसे-जैसे हम प्राणी-संसारमें सरलसे अधिक विकसित जीवकी ओर बढ़ते हैं तैसे-तैसे अंडा अधिकाधिक बड़ा होता है। नाभि (जिसे भ्रूण भी कहते हैं) की चारों ओर अधिक मात्रामें पोषक पदार्थके रहनेसे संसारके संघर्षमें पड़नेके पहले बच्चा अधिक बड़े आकारका हो पाता है और इस प्रकार वह अधिक सुगमतासे जीवनमें सफलता प्राप्त कर सकता है। अंडेका सबसे उत्तम रूप वह है जिसमें भ्रूणकी चारों ओर पहले पीला पदार्थ रहता है, फिर सफेद भाग (ऐल्ब्यूमिन) रहता है और ऊपरसे कड़ा खोल रहता है।

स्तनपोषियोंमें भ्रूणका पालन-पोषण दूसरे ही प्रकार होता है। डिंब इतना सूक्ष्म रहता है कि कोरी आँखसे—बिना सूक्ष्म दर्शककी सहायता लिए—दिखलायी ही नहीं पड़ता, या सुगमतासे दिखायी नहीं पड़ता। उसमें पोषक पदार्थ नाम मात्र ही रहता हैं। परन्तु ये डिंब माताके गर्भाशयमें ही रहते हैं और वहीं उससे भ्रूण निकलता है। भ्रूण पेटसे बाहर निकलने तक अपनी माताके रक्तसे पोषित होता है। इस प्रकार वह और भी प्रस्फुटित अवस्था में पेटसे बाहर आता है।

अंडोंकी संख्या

विभिन्न जातियोंके प्राणियोंमें अंडोंकी संख्या बड़ी विभिन्न होती है। वह उस जातिकी आवश्यकताओं और कठिनाइयोंपर निर्भर है। उदाहरणतः पेट्रेल नामक समुद्री चिड़िया एक ऋतुमें कुल एक अंडा देती है। परन्तु यह चिड़िया समुद्रके किनारे ऊँचे-ऊँचे पहाड़ी चट्टानोंके खोहोंमें अपना घोंसला बनाती है जहाँ कोई शत्रु सुगमतासे पहुँच नहीं पाता, और फिर उसे भोजनकी भी कोई कमी नहीं रहती। उसके लिए समुद्रका अगाध भांडार सदा सुगम्य रहता है। दूसरी ओर सितुही है। वह बेचारी छिछले समुद्र में बसती है जहाँ उसे असंख्य शत्रुओंका सामना करना पड़ता है। सभी उसे और उसके अंडेको पाते ही खा जाते हैं, इसलिए प्रत्येक सितुही अपनी जातिकी रक्षाके लिए करोड़ों अंडे देती है। प्राणियोंकी प्रत्येक जातिमें अंडोंकी संख्या साधारणतः बस उतनी ही होती है जिससे उस का अस्तित्व बना रहे।

जन्तु संसारमें प्राकृतिक समतुलन।

प्रकृतिमें मोटे हिसाबसे सब जातियोंके लिये स्थिरता आ गयी है, जिसे वैज्ञानिक लोग प्राकृतिक समतुलन कहते हैं। इसकी उपमा तुलासे दी जा सकती है। एक पलड़े पर अंडों या बच्चोंकी संख्या है। दूसरी ओर शत्रुओं या बुढ़ापे से मरने वालोंकी संख्या है। ये दोनों संख्याएँ प्रायः बराबर होती हैं।

आश्चर्यकी बात है कि अधिकांश प्रदेशोंमें जन्तुओंकी विभिन्न जातियोंकी संख्याएं सैकड़ों वर्षों तक एक-सी रहती हैं। यह अवश्य सच है कि किसी विशेष जातिमें कभी न्यूनता, कभी वृद्धि, हो जाती है, परन्तु साधारणतः दीर्घ कालमें परता वही पड़ता है। केवल जब वातावरणमें कोई विशेष परिवर्तन हो जाता है तब संख्याओंमें विशेष अन्तर पड़ने लगता है। बहुधा मनुष्य ही इन परिवर्तनोंका कारण होता है। साधारणतः, अंडोंकी संख्या आवश्यकता से कहीं अधिक होती है। अंडोंसे ही विनाशका कार्य आरंभ हो जाता है और अन्त तक विनाश होता रहता है। अन्तमें नवीन पीढीमें प्रायः उतने ही व्यक्ति रह जाते हैं जितने पुरानी पीढ़ीमें थे।

कभी-कभी बीचमें मनुष्यके कूद पड़नेसे विशेष परिवर्तन बहुत शीघ्र दिखलाई पड़ जाता है। मलायामें सूअरों और बाघोंके बीच प्राकृतिक समतुलन न जाने कितने प्राचीन समयसे स्थापित हो गया था। जब रबर (रबड़) की लालचसे वहाँ गोरे लोगोंने रबरके कारखाने और रबरके पेड़ोंके जंगल स्थापित किये तो आरम्भमें काम सुचारु रूपसे चला। परन्तु कारखानेके कर्मचारियोंको बाघ के शिकारका बड़ा शौक था। जब बहुतसे बाघ गोलीके शिकार हुए तो सूअरोंकी संख्यामें विशेष वृद्धि हुई, क्योंकि उनका प्राकृतिक शत्रु प्रायः मिट गया। इन सूअरोंकी आदत थी कि वे अपने पैने दाँतोंसे पेड़ोंकी खाल उधेड़ा करते थे। जब सूअरोंकी संख्या बढ़ी तो उनकी दाँतोंकी मारसे बहुसे रबरके पेड़ खराब होने लगे। अन्तमें यह

परिणाम हुआ कि रबरके कई कारखाने केवल इसी कारण बन्द हो गये कि काफ़ी पेड़ नहीं बच पाते थे।

वृद्धि और रूप-परिवर्तन।

वे जन्तु जो जन्म लेनेके पहले या अंडेमेंसे निकलनेके पहले अच्छी तरह पोषित हुए रहते हैं संसारमें अपने भरोसे खड़े होनेके पहले ही अपने माता-पिताकी आकृतिके हो जाते हैं, परन्तु अधिकांश प्राणी अत्यन्त अप्रस्फुटित अवस्थामें उत्पन्न होते हैं और अपने माता-पिताकी आकृति पानेके पहले कई रूप बदलते हैं। उदाहरणतः मेढकके अंडेसे मेढककी तरह जीव नहीं निकलता वरन् बिना पैर,, बिना फेफड़े, यहाँ तक कि बिना नीचे वाले जबड़ेका एक जीव निकलता है। उसके लम्बी-सी पूँछ होती है, और मछलियोंकी तरह गलफड़ तथा उन्हींकी तरह हृदय। वस्तुतः सारी शरीर-रचना ही बहुत प्राथमिक अविकसित प्रकारके जलचरकी-सी होती है। परन्तु थोड़े ही समयमें—यदि वह किसी शत्रुके पेटमें न पहुँच गया तो—उसके सरल बाह्य गलफड़ोंके बदले अधिक अच्छे गलफड़ बन जाते हैं जो पहले वाले गलफड़ोंके भीतरकी ओर होते हैं। उसके पश्चात् उसकी टाँगे उसी प्रकार निकलने लगती हैं जैसे किसी वृक्षकी शाखासे दो जोड़ी अंकुर निकलें। धीरे-धीरे पूँछ भी शरीरमें शोषित हो जाती है। जबड़े प्रौढ़ मेढकके जबड़ोंकी तरह हो जाते हैं। फेफड़ा बन जाता है। पीछेकी टाँगे बहुत लम्बी हो जाती हैं और तब वह उनके बल खूब उछल सकता है। ऐसी अवस्थामें वह पानीके बाहर आकर रह सकता है।

प्राणी-संसारमें इस प्रकारके आकृति-परिवर्तनके अन्य अनेक उदाहरण मिलते हैं। इसको वैज्ञानिक लोग रूपविकार (अंग्रेज़ीमें मेटामॉरफ़ोसिस) कहते हैं। ईल नामक मछलीकी स्वतंत्र अवस्थामें प्रथम रूप अत्यंत विचित्र होता है। जब पहले-पहल वैज्ञानिकोंने इस रूप को देखा तो ईलसे इसका संबंध जोड़ना उनके ध्यानमें ही नहीं आया; यह इतना भिन्न था। पीछे, अधिक अध्ययनसे पता चला कि यह ईलका ही प्राथमिक रूप है।

फिर केकड़ेके जीवन इतिहासमें बच्चेके दो ऐसे विभिन्न रूप होते हैं कि एक समय था जब वैज्ञानिक उनको विभिन्न जंतु मानते थे। पीछे पता चला कि दोनों वस्तुतः केकड़ेके ही विविध रूप हैं। अंडेसे निकलनेपर बच्चा अंडाकार, परंतु कुछ चिपटा, होता है; उसमें तीन जोड़ी पुच्छके समान अवयवोंको छोड़ अन्य कोई अवयव दिखलाई नहीं पड़ते। कुछ समय पीछे शरीरके आगे और पीछेके भागों की आकृतियोंमें बहुत अंतर पड़ जाता है और शरीरसे पूँछ या सूँड़की तरह निकले हुये अंगोंकी संख्या दस जोड़ी हो जाती है। इनमेंसे सिरकी ओर रहने वाली अग्रिम जोड़ी स्पर्शशृंग होती है जिसे चला कर जीव तैरता है। यह केकड़ेकी द्वितीय अवस्था है। अंतिम अवस्थासे सभी परिचित होंगे।

परंतु कीटोंमें तो और भी आश्चर्यजनक परिवर्तन होता है और इस परिवर्तनका देखना सबके लिये सुगम भी है। सब कीटोंमें एक ही प्रकार का रूपविकार नहीं होता, कीटोंके विकासके अनुसार न्यूनाधिक परिवर्तन होता है। पंखयुक्त कीटोंमेंसे सबसे कम विकसित जातियोंमें बच्चे को पहले पंख नहीं रहते, परंतु पीछे वृक्षोंके अंकुरकी तरह पीठपर अंकुर निकलने लगते हैं। कुछ काल पश्चात्, केंचुल बदलने पर, पंख एकाएक बढ़ने लगते हैं और शीघ्र वे प्रौढ़ोंके पंखके बराबर हो जाते हैं। टिड्डों और घास पर फुदकने वाले हरे कीटों (अँखफोड़वों) में ऐसा ही रूपविकार होता है।

परंतु अधिकांश कीटोंके अंडोंसे इल्ली निकलती है जो कृमिकी तरह होती है। उसमें सिर, धड़ और पेटका कुछ भी पृथककरण नहीं दिखलाई पड़ता। शरीरसे बाहर निकले भाग (टाँग आदि) बहुत छोटे होते हैं। तितलियों और पतंगोंकी इल्लियोंको भुइली, भुइला या भुड़िला कहते हैं, कपिशाओं की इल्लियों को सूँड़ी और मक्खियों की इल्लियोंको ढोला। ये एक दूसरेके समान होते हैं। इसलिए बहुधा लोग इन नामोंमें कोई अंतर नहीं मानते। इल्लियों और उनके प्रौढावस्थाप्राप्त रूपोंमें इतना अंतर रहता है कि आश्चर्य होता है। भुइला पत्तियाँ ठूँस-ठूँस कर खाता है और धीरे-धीरे चलता है, रेशम कातता है और यथासंभव एक ही आहारप्रद पौधेपर पड़ा रहता है; परंतु तितली—उसका क्या कहना; यद्यपि वह इसी भुइले की परिवर्तित मूर्ति है, वह अत्यंत चंचल होती है, सदा

एक फूलसे दूसरेपर उड़ा करती है और केवल मकरंद (पुष्परस) पी कर रहती है।

इल्लियों और प्रौढावस्थाके रूपोंमें इतना अधिक अंतर होता है कि सभी उच्च (अधिक विकसित) कीटों

तितलियोंमें रूप-विकार।
बाईं ओर कुप्पा है और दाहिनी ओर उससे निकली नवजात तितली है।

में इन दोनों रूपोंके बीच एक मध्यस्थ रूप भी होता है जिसमें जीव धीरे-धीरे परिवर्तित होता रहता है। इस शांत अवस्था को कुप्पा कहते हैं। भुइला बढ़ जानेके बाद सन्यास ग्रहण कर लेता है, अपने काते हुये रेशमसे अपने लिए घर बना लेता है और उसीमें छिपा पड़ा रहता है। इस विश्रामके पहले वह केंचुल बदलता है। इस केंचुल के नीचे पंख और पैरके प्राथमिक रूप बनते रहते हैं परंतु वे अभी इतने कच्चे रूपमें रहते हैं कि वे निकले रहते हैं। परंतु कुप्पाके रूपमें पड़े रहने पर शरीरमें धीरे-धीरे परिवर्तन होता रहता है और अंतमें जीवको प्रौढ़ अवस्थाका रूप प्राप्त हो जाता है। अब जब रूपविकार परिपूर्ण हो चुकता है, तो जीव अपना ऊपरी खोल फाड़ कर बाहर निकल आता है और हमें भुइलाके बदले तितली या पतंगा दिखलाई पड़ता है। पहले तो तितली अधमरी सी रहती है और रंग भी फीका रहता है; परंतु शीघ्र ही उसमें स्फूर्ति आ जाती है और रंग भी पूरा चढ़ जाता है। अब तितली उड़ने योग्य हो जाती है।

मधुमक्खियों, और अन्य मक्खियों और चपड़ोंमें भी कुप्पावस्था होता है।

परंतु गिजगिजियों (जेली फिशों) में रूपविकार एकदम दूसरी ही रीति से होता है जिसका वर्णन पहले दिया जा चुका है।

१६

प्राणी कैसे देशाटन करते हैं

पंख और पैर जीवोंको उनकी इच्छाके अनुसार एक स्थानसे दूसरे स्थानपर ले जाते है। परंतु कभी-कभी वायु और धारा उनको ऐसे स्थानों पर पहुँचा देती है जहाँ जानेकी उनकी इच्छा नहीं रहती। जलमें वाज, वायुमें पंख ये दोनों गमनागमके उत्तम साधन हैं। परंतु स्थलचर अपनी टाँगोंके भरोसे ही काफ़ी चल लेता है। तो भी, मनुष्य ही एक ऐसा स्थलचर है जो संसारके प्रायः सभी प्रदेशोंमें भ्रमण कर सकता है। मनुष्यके बाद यात्रा करने वालोंमें पक्षियों और मछलियोंकी गिनती है। ये जंतु बहुत दूर-दूर तक प्रवासके लिए जाते हैं।
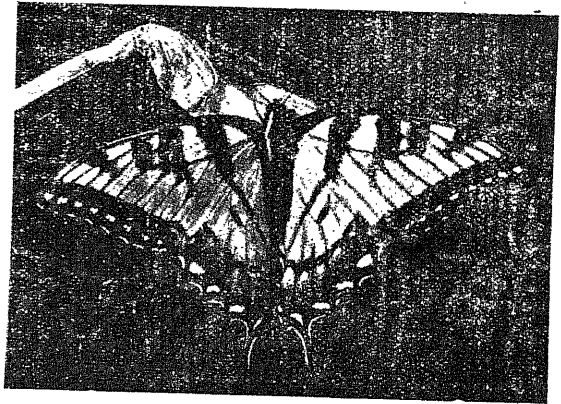
तितलियोंमें रूप-विकार।
कुप्पासे निकलनेके कुछ घंटों बाद पंख कड़ा हो जाता है और तितली उड़ सकती है।

पक्षियोंकी प्रवास यात्राके विषयमें पहले ही बतलाया जा चुका है। हज़ार-हज़ार मील दूर तक जाना उनके लिए कोई बड़ी बात नहीं है।

कीटोंके, विशेष कर टिड्डियोंके, दूर उड़ कर नये देशोंमें जानेकी बात सभी जानते हैं। एक-दो अन्य कीट भी हैं जो इसी प्रकार दूर-दूर तक निकल जाते हैं। परन्तु मछलियोंके प्रवासगमनकी बात लोग कम जानते हैं; कारण यह है कि जलके भीतरका चलना दिखलायी नहीं पड़ता, और उड़ते हुए बगुलोंकी पंक्तियाँ सभी देखते हैं। परन्तु प्रजनन-समयमें कुछ मछलियाँ बहुत दूर निकल जाती हैं। उदाहरणतः, सामन नामकी मछली चार वर्षकी आयुमें समुद्रसे नदियोंमें घुसकर बहुत दूर—कभी-कभी तो समुद्रसे एक हजार मीलसे भी अधिक—चली जाती हैं और वहाँ अंडे देती हैं। नदियोंमें कहीं भी बाधा रहती है जैसे जल-प्रपात आदि, तो फाँद कर वे ऊपर चली जाती हैं। कभी-कभी तो इतनी मछलियाँ एक साथ नदी में चलती रहती हैं कि नदी इन मछलियोंसे भर जाती है। ये मछलियाँ सुविधाजनक स्थान पर पहुँच कर अंडे देती हैं और वहीं मर जाती हैं। बच्चे पहले तो अपने जन्म स्थान में रहते हैं; पीछे वे भी समुद्रमें पहुँचते हैं और वहीं पूरे बड़े होते हैं। अन्तमें वे भी बच्चा जनने आते हैं और साधारणतः वहीं जहाँ उनका जन्म हुआ था। आश्चर्य है कि कैसे मछलियोंको ज्ञात रहता है कि उनका जन्म कहाँ हुआ था और अंडा देने कहाँ जाना चाहिए; बच्चोंको कैसे पता चलता है कि अब समुद्र चलना चाहिए।

ईल मछलियाँ भी बहुत दूर-दूर तक जाती हैं। परंतु वे अपना अधिकांश समय नदियोंमें बिताती हैं और अंडा देने समुद्रमें आती हैं।

नवीन स्थानोंकी खोजमें।

जो जीव चल नहीं पाते, उड़ नहीं पाते, तैर नहीं पाते वे भी किसी-न-किसी प्रकार—कभी-कभी तो बड़ी विचित्र रीतिसे नवीन स्थानोंमें पहुँचते हैं। पौधे तक तो नवीन स्थान ढूंढा करते हैं—अपने बीजोंको दूर-दूर तक वितरित करनेकी चेष्टामें निरन्तर लगे रहते हैं—प्राणियोंकी फिर क्या बात। स्पंज आदि अचर जीव नवीन स्थानमें पहुँचनेका कुछ उपाय कर ही लेते हैं।

उदाहरणतः पानीमें होने वाला खरबूज़ी* तृणांगी (लैटिन नाम पेक्टिनैटेला) एक विचित्र जीव होता है जो अपने जीवन विस्तारके अधिकांश समय तक एक स्थानमें जमा रहता है। यह वृक्षकी तरह अनेक शाखायुक्त होता है और प्रत्येक शाखाके छोर पर एक जीता-हुए सूक्ष्म जीव होता है। इन सब जीवोंसे पारदर्शक लिबलिबा पदार्थ निकलता है। जब इन जीवोंकी कोई बस्ती किसी पौधेकी टहनीपर लगती है तो वह बस्ती खरबूजेकी तरह कुछ गोल कुछ चपटी दिखलायी पड़ती है और जीवधारी शाखाएँ प्रायः समूचे पृष्ठको ढके रहती हैं।

भला यह प्राणी कैसे नवीन स्थानमें पहुँचता होगा? जब वह टहनी मर जाती है जिस पर काई-जन्तुओंकी बस्ती रहती है तो इनको नवीन घर कहाँ और कैसे मिलता है? काई-जन्तु अपना उपाय कर ही लेता है। जब यह प्रौढ़ हो जाता है तो इसमेंसे कुछ कलियाँ निकलती हैं जिनमेंसे प्रत्येक अंडा नहीं, जीवित तंतुओंका नन्हा-सा समूह होता है। ये तंतुएँ मूल बस्तीसे पृथक हो जाती हैं और अपने ऊपर एक संरक्षक खोल चढ़ा लेती हैं। तब पुरानी बस्ती मर मिटती हैं और ये नवीन कलियाँ पानीमें बह चलती हैं।

इन कलियोंसे ही नवीन बस्तियाँ बनती हैं। खोलमें वायुके नन्हें-नन्हें बुलबुले रहते हैं जिनके कारण कलियाँ उतराती रहती हैं। वे पानीके बहावके साथ दूर-दूर तक बह जाती हैं। इतना ही नहीं। उनके चारों ओर नन्हे-नन्हे काँटे निकले रहते हैं जिनकी सहायतासे वे जल-पक्षियोंके शरीरसे चिपक कर अन्य जलाशयोंमें जा पहुँचती हैं। इस प्रकार प्रत्येक खरबूजी बस्तीसे निकली लाखों कलियों में से एक-दोको कहीं-न-कहीं ऐसा ठिकाना लग ही जाता है जहाँ उनसे नयी बस्ती जम सके।

स्पंजोंमें स्थान परिवर्तन होनेकी रीति पहले बतलायी जा चुकी है।

---

*अर्थात् खरबूजेके आकार वाला काईकी तरह दिखलाई पड़ने वाला जंतु।

१७

प्राणी अपनी रक्षा कैसे करते हैं ।

प्राणियोंमें अपनी रक्षाके लिए भाँति-भाँतिके अस्त्र-शस्त्र रहते हैं। कुत्तेके दाँत, बिल्लीके पंजे, साँड़के सींग, गदहेकी लत्ती, और कौएकी चोंचसे सभी परिचित होंगे। हाथी अपने शत्रुको अपने पैरों तले रौंद डालता है। मगर अपनी पूँछकी फटकारसे शत्रुको घायल करता है। परन्तु छोटे-छोटे प्राणियोंमें भी रक्षाके लिए आश्चर्यजनक उत्तम साधन हो सकते हैं, उदाहरणतः मधुमक्खी या बर्रे या बिच्छू का डंक। जिस किसी ने समुद्रमें स्नान करते समय किसी गिजगिजियेको छू दिया होगा और उसके सूत्रोंकी मार खायी होगी, या जिस किसीको सकुचीॐ मछलीसे संपर्क पड़ा होगा, या जिस किसीने कभी ईल मछलीको छू लिया होगा वह भली भाँति समझ सकेगा कि जंतुओंमें कितने विभिन्न अस्त्र-शस्त्र हो सकते हैं।

रक्षा और आक्रमण।

पूर्वोक्त सभी अस्त्रोंसे जंतु अपनी रक्षा करता है और अपने शत्रुपर आक्रमण भी। परंतु कुछ प्राणियोंमें केवल रक्षाका ही उपाय रहता है। उदाहरणतः, कछुए, आरमाडिल्लो, घोंघे, शंख और सितुहियोंमें। इन सब जंतुओं का आवरण कड़ा और सुदृढ़ होता है। कुछ जंतुओंमें इतना ही नहीं, ऊपरी खोलपर काँटे भी निकले रहते हैं, जैसे काँटेदार मेढकों और मछलियोंमें। साहियोंके काँटे अधिकतर केवल रक्षाके साधन हैं। भुइलोंके रोएँ भी उनकी रक्षा करते हैं क्योंकि उनके कारण चिड़ियाँ साधारणतः उनको नहीं खाती। कुछ भुइलोंके रोमोंमेंसे विष निकलता है। ऐसे भुइलोंकी रक्षा बड़ी अच्छी तरह हो जाती है।

फेंक कर मारने वाले अस्त्र जंतुओंमें कम देखनेमें आते हैं, और जहाँ कहीं ऐसा अस्त्र रहता भी है वहाँ केवल रक्षाके लिए। तो भी दक्षिणी अमरीकाका लामा (ऊँटकी तरहका पशु) कुपित होनेपर शत्रुके मुखपर थूक देता है। स्कंकको जरा भी चिढ़ हुई तो वह अपनी पूँछ उठा कर अपनी दुर्गंधमय स्रावकी पिचकारी छोड़ता है, जिससे पशु भी बेचैन हो जाते हैं, मनुष्यकी क्या बात है। स्कंक रासायनिक युद्धका पुराना उस्ताद है! बममार गुबरैला भी रासायनिक युद्ध जानता है, यद्यपि छोटा होनेके कारण लोगों का उधर ध्यान नहीं जाता। जब कोई शत्रु उसका पीछा करता है तो वह विस्फोटक तरल पदार्थकी पिचकारी मारता है। यह पदार्थ शरीरसे निकलनेपर धुएँमें परिवर्तित हो जाता है। इस धुएँकी आड़में वह भाग जाता है और शत्रु चक्करमें पड़ा रह जाता है।
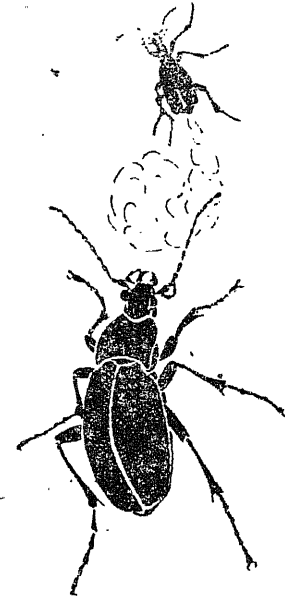
बममार गुबरैला।

जब शत्रु इसका पीछा करता है तब यह विस्फोटक तरल पदार्थ फेंकता है और उसके धुएँकी आड़ पाकर भाग जाता है।

ॐसकुची—(संस्कृत शकुल) एक प्रकारकी मछली जो साधारण मछलियोंसे भिन्न और प्रायः कछुएके आकारकी होती है। इसके छोटे-छोटे चार पैर होते हैं और एक लम्बी पूँछ होती है। इसी पूँछसे यह शत्रु को मारती है। जहाँ पर इसकी चोट लगती है वहाँ घाव हो जाता है और चमड़ा सड़ने लगता है।—शब्दसागर।

कीट अपनी रक्षा कैसे करते हैं।

कीटोंमें रक्षाके कई प्रकारके साधन रहते हैं। एक तो वे अरुचिकर पदार्थोंका उत्तम उपयोग कर लेते हैं। एक प्रकारकी कपिशा जो सोनेकी तरह चमकती है अपनी विष्ठाको एक स्थानपर लादती चली जाती है और पीछे उसीको अपनी पूँछसे उठा कर अपने ऊपर छातेकी तरह लगाये रहती है, इस विचित्र ढालके नीचे वे भली भांति सुरक्षित रहती हैं।

लाला-कीट (लाला = लार या थूक), जो खेतोंमें डंठलों पर चिपके रस चूसा करते हैं, मलत्याग फेनके रूपमें करते हैं जो देखनेमें थूक-सा जान पड़ता है। यह फेन उसके शरीरको चारों ओरसे घेर लेता है और इस प्रकार अपनी विष्ठाके दुर्गमें नन्हा-सा कीट सुखकी नींद सोया करता है। अवश्य ही जब तक उसे पौधेसे पेट भर रस चूसनेको मिल जाया करता है उसके दिन आनंदसे बीतते हैं।

कुछ प्राणियोंमें ऊपरसे कोई संरक्षक खोल नहीं रहता परंतु वे स्वयं अपने लिए खोल तैयार कर लेते हैं। उदाहरणतः, कैडिस कीट अपने लिए घोंघों का-सा आवरण बना लेता है, इसके लिए वह बालूके कणोंको जोड़ता रहता है। इसका खोल घोंघोंके खोलसे इतना मिलता-जुलता है कि पहिली बार तो लोगोंने इसे घोंघाही समझा।

परंतु सभी कैडिस कीट केवल बालूके कण ही नहीं काममें लाते। पत्थर, तिनके, पत्तियाँ सभी कुछ काममें आ सकता है; प्रत्येक जाति अपने-अपने ढंगसे काम करती है। कुछ जातियाँ तिनकों को बेंड़ी रखती हैं, कुछ लंबाई-की दिशामें। अमरीकामें पायी जाने वाली एक जातिके कैडिस कीट पत्तियोंसे टिकलियाँ काट कर अपने ऊपर खोल बनाते हैं।

कैडिस कीटके मुखसे जो लार निकलती है वह पानी लगनेपर कड़ी हो जाती है। कीट इसीसे सूत कात कर पने खोलको दृढ़ करता है। आरंभमें यह पिचपिचा ता है और कीट जिस किसी वस्तुको इससे चिपकाता ा बाँधता है पीछे दृढ़ हो जाता है। जैसे-जैसे कीट बड़ा होता है तैसे-तैसे वह अपने खोलमें नवीन सामग्री जोड़ता चलता है।

रेशमके कीड़े कुप्पाकी अवस्थामें अपने ऊपर रेशमका जो घर बना लेते हैं वह वस्तुतः अपनी रक्षाके लिए ही बनाते हैं।

क्या जंतुओं का स्वभाव लड़ाकू होता है?

अधिकांश जंतु अपने शत्रुसे लड़ते ही नहीं; वे केवल किसी छल-बलसे उनसे भाग निकलते हैं। मेढकके पीछे जब कोई शत्रु लग जाता है तो वह जलमें कूद पड़ता है; उड़ंकू मछलीको जब कोई शत्रु दौड़ाता है तो उछल कर वह हवामें निकल पड़ती हैं। गिलहरियाँ पेड़के खोखलेमें जा छिपती हैं और चूहे अपने बिलमें घुस जाते हैं। वे जंतु जो न तो बली होते हैं, न भागनेमें तेज़, न कवच धारी होते हैं और न फुर्तीले, किसी छल या कौशल से अपनी रक्षा करते हैं। मुरदेकी तरह बन जाना यह विद्या कई जंतुओंको आती है। देखनेमें हमें आश्चर्य होता है, परन्तु इसमें संदेह नहीं कि जंतुओंमें सहजबुद्धि* हीके कारण यह क्रिया संपादित होती है। अमरीकामें अपोसम नाम का जंतु होता है जो अपनेसे अधिक शक्तिशाली शत्रुके सामने पड़ जानेसे ऐसा मुर्दा बन जाता है कि साधारणतः वह बच ही जाता है और अवकाश पाते ही वह चंपत हो जाता है। इस आदतको वहाँके लोग इतनी अच्छी तरह जानते हैं कि किसीको अपोसम कहनेका अर्थ होता है कि वह बड़ा काइयाँ है, जैसे यहाँ सूअर कहनेका अर्थ गन्दा और गधेका अर्थ मूर्ख होता है।

रंगके कारण रक्षा।

सुस्पष्ट रङ्गका होना जन्तुओंके लिए अत्यन्त जोखिम-की बात है। केवल वे ही जानवर सुस्पष्ट रङ्गके हो सकते हैं जो बहुत बली होते हैं और इसलिए अपने शत्रुओंको परास्त कर सकते हैं, या इतने शीघ्रगामी होते हैं कि

*सहजबुद्धि जन्मके साथ उत्पन्न हुई उस प्रवृत्तिको कहते हैं जिसके कारण जन्तु ऐसे कार्य करता है जो बुद्धि-मत्ताके कार्य जान पड़ते हैं, परन्तु जिन्हें जंतु बिना सोचे-विचारे करता है।

शत्रुओंसे भाग कर बच सकते हैं, या इस प्रकार कवचसे सुरक्षित रहते हैं कि अपने अंगोंको अपने कवचके भीतर सिकोड़ लेने पर उन्हें कोई घायल नहीं कर सकता, या वे दुष्ट गंध या स्वादके होते हैं कि उन्हें कोई छेड़ता ही
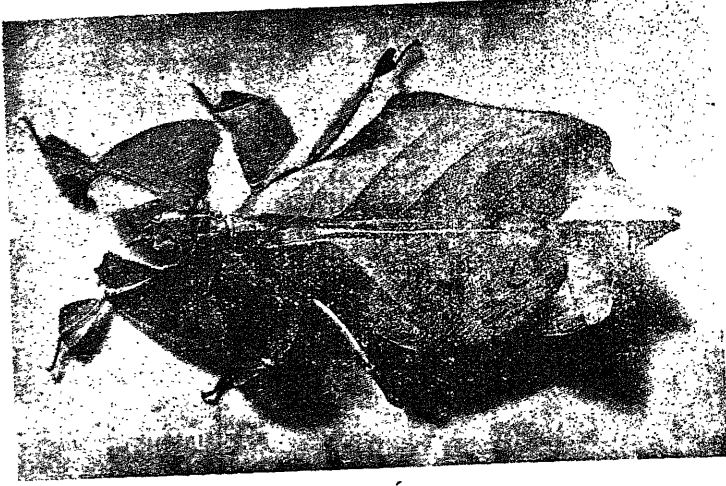
पत्ती या कीट ?

यह कीट ठीक पत्तियों जैसा होता है इसलिए अपने शत्रुओंसे बच जाता है। अगला चित्र देखें।

नहीं। अपनी पृष्ठभूमिसे मिलते-जुलते रङ्गका होना जन्तुओंके लिए बड़ा ही हितकर होता है और अधिकांश जन्तुओंकी रक्षा इसी प्रकार होती है। अस्पष्टता, या पृष्ठभूमिमें मिल जानेकी क्षमता, अधिकतर रङ्गके कारण प्राप्त होती है, परन्तु धारियों, चित्तियों या धब्बोंसे भी बड़ी सहायता मिलती है। खरगोश जो सूखी घासोंमें छिपा करता है, भूरे रंगका होता है, परन्तु तोता, जो वृक्षों पर रहता है, हरे रङ्गका होता है।

प्रायः सभी जन्तुओंमें पीठपर रङ्ग गाढ़ा और पेटकी ओर रङ्ग हलका होता है। इससे ये जन्तु अधिक सुगमता-से अदृश्य हो जाते हैं। कारण यह है कि पीठपर तीव्र प्रकाश पड़ता है, परन्तु पेट छाया में रहता है। पीठ और पेटके रंगोंमें अन्तर रहनेके कारण जन्तु प्रायः एक रङ्गका हो जाता है और इस प्रकार वह अच्छी तरह नहीं दिखलाई पड़ता। यदि इसमें किसीको संदेह हो तो मरी गौरैयेको लेकर वह उसे चित रख दे और तब देखे कि पहलेकी अपेक्षा वह कितनी सुस्पष्ट दिखलाई पड़ती है।

प्रकृतिने अपनी चित्रकारीके ज्ञानका पक्का प्रमाण हमारे सामने रख दिया है। स्लाथ नामक जंतु पेड़ोंसे लटका रहता है और जलमें रहने वाले कुछ जीव चित होकर तैरते हैं। इन सब जंतुओंमें पेट गहरे रङ्गका और पीठ हल्के रङ्गकी होती है। स्थिति उल्टी रहनेपर रङ्ग भी उल्टा रहता है और इस प्रकार सुस्पष्टता नहीं आने पाती।

लोगोंने लड़ाईके जमानेमें कामू-फ्लाज़का नाम सुना ही होगा। इसका अर्थ है कि मोटर आदिको इस प्रकार रंग दिया जाय कि दूरसे ठीक-ठीक पता न चल सके कि वह कौन-सी वस्तु है। साधारणतः रङ्ग इस प्रकार चढ़ाया जाता है कि वस्तुकी रूप-रेखा ही बदल जाय। यह विद्या प्रकृतिको प्राचीन कालसे ही ज्ञात है। बहुत-सी चिड़ियों में गलेपर धारी पड़ी रहती है। दूरसे देखनेपर ऐसी चिड़िया चिड़िया नहीं जान पड़ती, क्योंकि सर कटा-सा दिखलाई पड़ता है। वस्तुतः समूची चिड़िया दिखलाई पड़नेके बदले दो वस्तुएँ दिखलाई पड़ती हैं जिनमें कोई भी चिड़ियेकी आकृतिकी नहीं रहती। चिड़ियोंको प्राकृतिक अवस्थामें ध्यानसे देखनेपर यह बात सहजमें ही समझमें आ जायगी।

चितकबरा मेढक जब पकड़ कर प्रयोगशालामें आता है और चीरे जानेके लिए सफेद तश्तरीमें रक्खा जाता है तब तो वह अवश्य सुस्पष्ट दिखलाई पड़ता है, परन्तु जब वह अपनी प्राकृतिक दशामें घास-पातमें बैठा रहता है तब वह अपने चितकबरेपनके ही कारण छिपा रहता है।

कुछ प्राणियोंमें ऐसे रङ्ग रहते हैं कि वे उनके दौड़ते या उड़ते ही समय दिखलाई पड़ते हैं और उनके स्थिर होते

हीं छिप जाते हैं। गौरैया या मैनाकेडैनोंके नीचेका सफेद रङ्ग उनके उड़ते रहने पर प्रत्यक्ष रूपसे दिखलाई पड़ता है, परन्तु उनके बैठते ही डैनेका वह भाग छिप जाता है और ये चिड़ियां प्रायः अदृश्य हो जाती हैं। उड़ते रहने पर जिस सुगमतासे वे दिखलाई पड़ती हैं वह सुगमता ही उनके बैठ जानेपर उनके पहचाने जानेकी कठिनाईको बढ़ा देती है। इसी प्रकार एक जातिके हिरन भी हैं जो जब पूँछ उठाकर भागते रहते हैं तो उनकी सफेदी दूर तक दिखलाई पड़ती है, परन्तु ज्योंही वे पूँछ सिकोड़ कर कहीं दबक रहते है, सफेदी छिप जाती है और उनका दिखलाई पड़ना कठिन हो जाता है।

यद्यपि अस्पष्टता ही जंतु-संसारमें नियम है तो भी दो-चार अपवाद हैं। कुछ जंतु इतने अप्रिय होते हैं कि यदि अन्य जंतु उनको दूरसे ही पहचान जायँ तो उनके पास न आवेंगे। स्कंक इस सिद्धान्तका अच्छा उदाहरण हैं। इसका रंग चटक काला और सफेद होता है। प्रकृतिमें इससे अधिक सुस्पष्टता अन्य किसी रङ्गसे आ ही नहीं सकती। अपने चटक रङ्ग और विशेष धारीके कारण स्कंक दूरसे ही दिखलाई पड़ जाता है। यह अपने शत्रुसे भागता भी नहीं। इसके बदले वह डट कर खड़ा हो जाता है और झंडेकी तरह अपनी पूँछको उठा लेता है, तब इसको पहचान कर इसके शत्रु ही भाग जाते हैं।

कौन कीट हैं, कौन पत्तियाँ?
पत्तियोंकी तरह दिखलाई पड़ने वाले कई कीट इस चित्रमें हैं।

चेतावनी देने वाले इस प्रकारके रङ्ग चटक और चौड़े होते हैं। वे अप्रिय गुणोंकी विज्ञप्ति करते हैं। उदाहरणतः तड़क-भड़क वाले भुइलोंमें ऐसे रङ्ग कड़ुआ या दुर्गन्धिमय स्राव सूचित करते हैं, कुछ तितलियोंमें अरुचिकर स्वाद, कुछ जातिकी मकड़ियोंमें विषाक्त दंतकी उपस्थिति, और बर्रें और मधुमक्खियोंमें डंक। डंक मारने वाले कीटोंका रङ्ग-रूप विशेष कर ऐसा होता है कि वे सुगमतासे दिखलाई पड़ सकें। उनके शरीरपर काले और पीले, या लाल और पीले, या काले और सफेद छल्ले पड़े रहते हैं। कुपित होने पर उनकी भनभनाहट भी शत्रुओं को यह सूचना देती कि भाग जाओ, नहीं तो कुशल नहीं है।

मधुमक्खियोंका आतंक अन्य जीवोंपर इतना छाया रहता है और उनकी रक्षा इस कारण इतनी भली-भाँति होती है कि कुछ अन्य प्राणियोंने, जिन्हें डंक नहीं होता, बहुत-कुछ मधुमक्खियोंकी तरहका रूप धारण कर लिया है। इसे अनुकारिता (अँग्रेज़ीमें मिमिकरी) कहते हैं। एक डंक रहित कीट भौंरेकी तरह होता है और उसका रूप भौंरेसे इतना मिलता-जुलता है कि लोग साधारणतः उसे भौंरा ही समझते हैं। एक डंक रहित कीट बर्रेंकी तरह होता है और बर्रेंकी आकृति की समताके कारण वह बेधड़क बर्रेंकी तरह ही भनभनाता हुआ जहाँ चाहता है चला जाता है। इस कीटमें तो रंग, रूप, शब्द और आचरण सब बर्रेंसे मिलता-जुलता है और इन कारणोंसे कीटकी पूर्ण रूपसे रक्षा होती है।

१८

आहार और निवास

जंतुओंका मौलिक आहार है पौधा और पौधोंसे उत्पन्न पदार्थ। जंतु पत्ती, फल, कंद, काष्ठ—वस्तुतः पौधेके सभी अंगोंको—खाते हैं। कुछ जंतु मरे पौधोंको खाते हैं (जैसे दीमक)। इस आहारसे उनका शरीर पोषित होता है और उन्हें अपना कार्य करनेकी शक्ति मिलती है। तो भी

भूइला या डंठल ?
यह भुइला डंठलके आकारका होनेके कारण बहुधा अपने शत्रुओंकी दृष्टिसे बच जाता है।

वनस्पति-संसारका बहुत-सा भाग जंतुओं से बच ही जाता है। इसका यह कारण है कि बहुतसे जंतु वनस्पति न खाकर अन्य जंतुओंको खाते हैं। मांसभुकोंकी उपस्थिति-से निरामिष-भोजियोंकी संख्या इतनी नहीं बढने पाती कि सारा वनस्पति संसार साफ हो जाय। स्वयं मांसभुकों-की संख्या पराश्रियों* के कारण परिमित रहती है। शाक-भुक और मांसभुक, पराश्रयी और गलितभुक सर्वत्र रहते हैं और उनमेंसे प्रत्येक प्राकृतिक समाजमें अपना स्थिर कार्य करते रहते हैं। इनमेंसे एक न रहे तो जंतु-समाजका समतुलन बिगड़ जाय। हम लोग सारे संसारको छान डालते हैं, जहाँ चाहते हैं वहाँसे भोज्य पदार्थ लाते हैं, प्रकृतिके अनगिनत पदार्थोंको राँधकर अपने खाने योग्य बना लेते हैं। इस लिए हमें यह अनुभव करनेमें कठिनाई होती है कि जंतुओंके लिए संसार कितना संकीर्ण है। घुन बेचारेको अन्नके लिए दानेमें घर भी बनाना पड़ता है और उसीमें भोजन भी ढूंढ़ना पड़ता है। फिर, उसे अपने जीवन-चक्रको इस प्रकार साधना पड़ता है कि वह अनाजके होनेके समयके अनुसार स्वयं भी अंडे-बच्चे दे। प्राणी संसारमें इसी प्रकारकी कठिनाइयाँ न्यूनाधिक मात्रामें सर्वत्र रहती हैं।

जब जलचर पहले-पहले जलसे स्थलपर आये तो एक बारगी ही अपने पैरोंके बल नहीं चलने लगे। वे पेटके बल जलके पास ही कीचड़ोंपर रेंगा करते थे। पैरोंके बल वे उस समय खड़े तो नहीं हो सकते थे, परन्तु हाँ, वे उसके भरोसे आगे बढ़ सकते थे। वे रेंगने वाले जीव थे। जब वे स्थलपर मिलने वाले आहारकी खोजमें लग गये तो जो शाकभुक थे पौधे खाने लगे और मांसभुक मांस खाने लगे। कुछ दोनों खाया करते थे। उन सब तरहके प्राणियोंकी संतति हुई और विकास होते-होते उनकी संततिमें और भी अधिक विभिन्नता आ गयी। इस प्रकार कई जातियाँ उत्पन्न हो गयीं।

प्राचीन समयमें भी डील पर यह निर्भर था कि जंतु अपना आहार कहाँ पा सकेंगे। जहाँ एक भैंसा भूखों मर जाता वहाँ एक दर्जन खरहे पल कर मोटे हो जा सकते थे।

*ऐसे जंतु या पौधे जो अन्य जंतुओं या पौधोंपर चढ़े रहते हैं और उनका रक्त या रस चूसकर अपना निर्वाह करते हैं पराश्रयी कहलाते हैं।

आहार कहाँ मिले और निवास-स्थान कहाँ बनाया जाय यह प्रश्न उस समय भी जंतुओंके लिए टेढ़ा था और इस समय भी टेढ़ा है। यही मुख्य प्रश्न था। आहार, सुरक्षित स्थान, और शत्रुओंसे बच सकनेके उपायकी आवश्यकता निरन्तर उपस्थित रहती थी। इस प्रतिद्वंदिता-में कुछ जंतुओंने तो फुर्तीलापन प्राप्त किया और भाग कर वे अपना प्राण बचाया करते थे, कुछमें ऐसे नख निकल आये जिससे वे भूमि खोद कर बिलमें घुस सकते थे, कुछमें पेड़ोंपर चढ़ सकनेकी योग्यता आ गयी और वे पेड़ों पर चढ़कर अपनी रक्षा करने लगे। कुछमें पंख उग आये और वे उड़कर अपनी रक्षा करते थे।

निस्संदेह प्रारम्भमें वायुमें उड़ जानेमें ही बहुत उत्तम रक्षा होती रही होगी। इसकी उत्तमताका प्रमाण यह है कि आज भी चिड़ियोंकी जातियोंकी संख्या पशुओंकी जातियोंसे अधिक है। फिर, उड़ने वाले कीट-पतंगोंकी संख्या अन्य सब प्राणियोंकी संख्यासे अधिक है।

सहनशीलताकी महत्ता

संसारमें जीवित रहनेके अन्यभी साधन हैं, केवल अपने शत्रुओंसे लड़ते रहना या भागते फिरना ही सर्वस्व नहीं है। सहनशीलता भी बड़ी महत्वपूर्ण वस्तु है। कठि-नाइयोंको झेल लेनेकी क्षमता, चाहे कैसी भी विपत्ति पड़े हिम्मत न हारना, किसी ऋतुमें आहार न मिले तो भूखे ही रह जानेकी योग्यता, अपने प्रतिद्वंदियोंसे लड़-भिड़ कर नहीं, कष्ट सह कर आगे निकल जाना, यह सब बातें भी कई जंतुओंकी बड़ी सहायता करती हैं।

उदाहरणतः, ठंढे देशोंमें जाड़ेमें

मिलता है। वहाँ बहुत-से जंतु उस समय आहार प्राप्त नहीं कर सकते। इसलिए बहुतसे जंतु जाड़े भर प्रगाढ़ निद्रामें पड़े रहते हैं। इसको कहते हैं हैमंतिकी, जिसका अर्थ है 'जाड़ेकी (निद्रा)', अंग्रेज़ीमें हाइबरनेशन। छिछले झीलके रहने वाले कुछ जंतु अपने ऊपर खोल बना कर गरमी भर चुपचाप पड़े रहते हैं, क्योंकि उस समय जलकी कमीके कारण उनको श्वास लेनेमें कष्ट होता है। बरम्यूडा टापूमें गरमीके दिनोंमें सूख जानेके डरसे वहाँके कुछ जातिके घोंघे पत्थरोंपर चिपक कर अपनी खोलको पत्थरसे एकदम सटा लेते हैं और संधिको इस प्रकार अपनी थूकसे चिपका देते हैं कि भीतरसे जलवाष्प बाहर नहीं जा सकता। इस प्रकार वे गरमी काट लेते हैं। बर-सात आनेपर वे फिर चलने-फिरने और खाने-पीने लगते हैं। कुछ जातिके झींगे गरमीके पहले ऐसे अंडे देते हैं जो शीघ्र सूख नहीं सकते। वे स्वयं मर जाते हैं परन्तु बरसात में उनके अंडोंसे फिर नयी पीढ़ी उत्पन्न होती है।

कुछ कीटोंमें इल्लीकी अवस्थामें ही प्रायः सभी जीवन कार्य हो चुका रहता है; पतंगा या तितलीकी अवस्था प्राप्त करनेपर कुछ करना शेष नहीं रह जाता है। उदाहरणतः मेफ्लाई नामक तितलीकी इल्ली पानीमें रहती है और उसका जीवन-विस्तार अन्य इल्लियोंसे कहीं अधिक
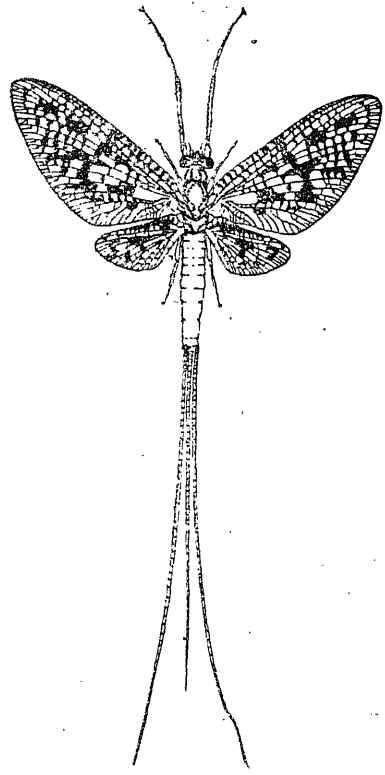
मेफ्लाई।
मेफ्लाई नामक तितलीमें आहार ग्रहण करने योग्य मुख ही नहीं होता

होता है। ये इल्लियाँ खूब खाती हैं और बढ़ती हैं और रूपविकारके पहले जननेंद्रियाँ सब परिपक्व अवस्थामें रहती हैं। रूपांतर होनेपर मेफ़्लाईको केवल जोड़ा खाना और अंडे देना भर रह जाता है। उसके जबड़े बन ही नहीं पाते कि वह अन्य तितलियों की तरह आहार ग्रहण करे। इस-

मेफ्लाईकी इल्ली।
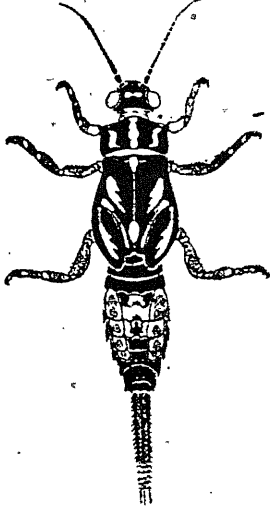
लिए वह दो-चार दिनसे अधिक नहीं जी पाती। वह कमजोर होती है और जीवन-संघर्षमें पार नहीं पा सकती। इसलिए आहार और निवास-स्थानकी खोजका भार पूर्णतया इल्लीकी अवस्थामें ही पड़ता है।

१६

जंतुओंमें बुद्धि

अधिकांश जंतु यंत्रचालितसे होते हैं। तुलसीदासने कहा है 'उमा दारु-योषितकी नाईं। सबहिं नचावत राम गुसाईं॥' आधुनिक विज्ञान कहता है कि अधिकतर जंतुओं को उनकी सहजबुद्धि नचाती रहती है। जन्मसे ही जंतु को जो कुछ प्रवृत्ति प्राप्त हुई रहती है वही सहजबुद्धि है। उनमें इच्छानुसार और सोच-विचार करके काम करनेकी शक्ति प्रायः नहीं रहती। उनके स्नायुमंडलकी रचनाही इस प्रकारकी होती है कि विशेष प्रकारकी उत्तेजनाओंके लिए वे विशेष प्रकारसे कार्य करेंगे। भूख लगेगी तो खायँगे, शत्रु आयेगा तो भागेंगे या मृतक बन जायँगे या पूँछ उठा लेंगे। परंतु यह सब कार्य आप-से-आप होता है। मनुष्यकी तरह वे सोच नहीं सकते कि हम यह करेंगे तो परिणाम क्या होगा, वह करेंगे तो परिणाम क्या होगा, और इसलिए इन दो मार्गोंमें से कौन-सा उत्तम मार्ग है।

जंतुओंका आचरण उनके विकास और उनके शरीरके रूपपर निर्भर है। रूप और आचरण दोनों साथ-साथ विकसित हुए हैं। भीतरी अवयवोंका पारस्परिक संबंध और कार्य, जिससे शरीर जीवित रहता है, मनुष्यमें भी स्वयंचालित है। हम अपने हृदयका धड़कना बंद नहीं कर सकते और न आमाशयकी पाचन-क्रियाको रोक सकते हैं। इसी प्रकार ये क्रियाएँ जंतुओंमें भी इच्छाके परे हैं। मनुष्यकी तरह जंतु भी भूख लगने पर खाते हैं। वे भी आहारको मनुष्यकी तरह ही पचाते हैं। अन्य शारीरिक क्रियाएँ भी बहुत कुछ मनुष्यकी तरह ही उनमें भी होती रहती हैं।

आचरणके उस भागमें जिसका सम्बन्ध व्यक्तिको सुरक्षित रखना है वे स्वयंचालित ही रहते हैं। इस बातमें भी मनुष्य बहुत-कुछ उन्हींकी तरह है, अन्तर इतना ही है कि मनुष्य इस आचरणको अंशतः अपने वशमें रखता है। जंतुओंका अधिकांश समय अपनेको जीवित रखनेमें ही व्यतीत होता है। अपनेको जीवित रखनेके लिए ही वह आहार खोजता है और ग्रहण करता है, तथा शत्रुओंसे अपनी रक्षा करता है, परन्तु प्रयोगोंसे पता चला है कि यह सब वह इच्छाविहीन रहकर—यंत्र संचालित-सा—करता है।

फिर, जंतुओंके आचरणका एक अंश अपनी जाति-रक्षासे सम्बन्धित रहता है। यह अपने जोड़े या बच्चोंके लिए प्रेमके रूपमें प्रकट होता है। इसमें स्वार्थत्यागकी आवश्यकता पड़ती है। मनुष्यमें भी इस प्रकारकी सहज-बुद्धि होती है। फिर, जंतुओं और मनुष्योंमें स्वजाति-प्रेम भी रहता है जिसके कारण जंतु अपने-सरीखे अन्य जंतुओं-की रक्षामें सहायक होते हैं। प्रकृतिने आवश्यक कार्योंका

जिम्मा अपने ऊपर ले रक्खा है। जाति-रक्षाका भार उसने व्यक्तिकी इच्छापर नहीं छोड़ दिया है।

जन्मसे ही शिक्षित ।

पूर्वोक्त सभी बातोंमें जंतु जन्मसे ही शिक्षित रहते हैं और एक जातिके प्रत्येक व्यक्ति एक प्रकारसे आचरण करते हैं। परन्तु विविध जातियोंके जंतुओंमें उनके स्नायु मंडलों* की रचनाओंमें बड़ा अन्तर रहता है और उनकी कार्यशीलता में भी उसी प्रकार अन्तर रहता है। विकासकी दृष्टिसे नीचतम प्राणियोंमें भी शरीर जीवित रखनेके लिए सभी आवश्यक क्रियाएँ होती रहती हैं और प्रचोदन (उत्तेजन) पाने पर आकर्षण और परिहार (हट जाना) ये दोनों प्रतिक्रियाएँ आवश्यकतानुसार दिखलाई पड़ती हैं।

बड़ी जातिकी सितुही नदीके तलमें कीचड़में रहती है। मस्तिष्कके बदले उसे केवल थोड़ा-सा नाड़ीगंड (गैंगलियन) रहता है। उसकी क्रियाएँ सरल और इनी-गिनी होती हैं। अपनी रक्षाके लिए वह अपने कड़े खोल पर निर्भर रहती है और जब कभी कुछ इसकी ओर आता है तो वह अपने खोलको बन्द कर लेती है। बस, एक ही काम वह कर सकती है। चाहे प्रचोदन कहींसे मिले, वह बन्द हो जाती है। बचनेका मार्ग इसी क्रियामें है। न तो वह लड़ सकती है, न भाग सकती है और न छिप सकती है। वह केवल अपने खोलके दोनों आधोंको बन्द भर कर सकती है और विपदके दूर हो जाने तक प्रतीक्षा करती है। परन्तु सितुहीका जीवन इतना सरल है कि आहारके लिए कीचड़में रेंगना और बचनेके लिए अपनेको बन्द कर लेना, बस ये दो क्रियाएँ ही पर्याप्त हैं। इन्हींसे उसका सारा काम चल जाता है।

इस जीवनकी तुलना गौरैये या गिलहरीके जीवनसे कीजिये और देखिये कि कितना अन्तर है! इन दोनोंके शरीरोंमें मस्तिष्क होते हैं—वैसे ही ढाँचेपर बने मस्तिष्क जैसे मनुष्यके होते हैं, यद्यपि उतने प्रस्फुटित नहीं। ऐसे मस्तिष्क वालोंमें नवीन ज्ञान अर्जित करनेकी शक्ति रहती है। हाँ, यह अवश्य सत्य है कि यह शक्ति अधिकांश जीवोंमें अत्यन्त न्यून मात्रामें रहती है। जंतु क्रमबद्ध प्रयोगोंसे नहीं सीखते; वे कार्य और कारणका सम्बन्ध नहीं देख पाते। दूसरोंकी देखा-देखी वे बहुत हीं कम सीख पाते हैं—सचमुच इतना कम कि आश्चर्य होता है। यदि वे कुछ सीखते हैं तो 'चेष्टा और भूल' की रीतिसे सीखते हैं।

चेष्टा और भूल वाली रीति ।

वे जंतु जो बुद्धिमान गिने जाते हैं अपना ज्ञान चेष्टा और भूलकी रीतिसे ही सीखते हैं। यह रीति निम्न उदाहरणसे समझी जा सकती है। यदि घोड़ेके बच्चेको किसी तृण रहित बाड़ेमें अकेला ही बन्द कर दिया जाय और बाड़ेसे निकलनेके लिए एक फाटक हो जो सिटकनी लगा कर बन्द किया गया हो तो बछेड़ा क्या करेगा? वह अन्य बछेड़ों और घोड़ोंके साथ रहना पसन्द करता है क्योंकि घोड़ा एकाकी जीव नहीं है। वह बाड़ेके बाहरकी हरी-हरी दूब देखता है और उसे खाना चाहता है। वह बाहर निकलना चाहता है, परन्तु फाटक खोलना नहीं जानता। मान लीजिये फाटक खोलनेके लिए सिटकनी उठानी पड़ती है। परन्तु बछेड़ा बेचारा क्या जाने कि सिटकनी उठानेसे फाटक खुलता है। तो वह फिर क्या करता है? पहले तो वह बहुत-सी बेकार बातें करता है। वह चारों ओर दौड़ता है और इधर-उधर देखता है। वह कूद कर बाड़ेको पार करना चाहता है परन्तु इसमें उसे सफलता नहीं मिलती। वह बाड़ेको ढकेल कर गिराना चाहता है; इसमें भी वह अनुत्तीर्ण होता है। फिर वह बाड़ेको अन्य स्थानों पर ढकेलनेकी चेष्टा करता है और फाटक भी इन्हीं स्थानों में से एक है। जब कुछ नहीं हो पाता है तो वह लत्ती लगाता है। वह खड़ा हो जाता है और हिनहिनाता है। वह फाटकको दाँतसे काटता है। इसी प्रकार वह तरह-तरहसे अनेक असफल चेष्टाएँ किया करता है और इसी प्रयत्नमें यदि सिटकनी उसके दाँतों तले आ गयी तो वह उठ जाती है और फाटक खुल जाता है।

*उन नसोंका समूह स्नायुमंडल कहलाता है जो शरीरके किसी अंगसे मस्तिष्क, आदि तक जाती हैं और गति या अनुभवकी सूचना अंगोंसे मस्तिष्क आदि तक या मस्तिष्क आदिसे अंगों तक पहुँचाती हैं। मस्तिष्क आदिसे मस्तिष्क, सुषुम्ना, और नाड़ीगंड (गैंगलियन) समझना चाहिए।

परंतु इतनेपर भी बछेड़ा यह नहीं सीख पाता कि फाटक कैसे खुलता है। यह आकस्मिक सफलता थी। जब उसे फिर उसी बाड़े में बंद कर दिया जाता है तो वह फिर अपनी पुरानी बेकार चेष्टाओंमेंसे अनेकको दुहराता है। तो भी अधिकतर वह उछल-कूद फाटकके पासहीं मचायेगा जहाँ से वह निकल भागा था, और फिर कभी-न-कभी, संभवतः प्रथम बारसे बहुत जल्द, वह सिटकनीको पकड़ कर उठा देगा और बाहर निकल आयेगा।

उसके बाद उसी बाड़ेमें फिर बंद होनेपर वह फाटक पर ही अपनी सब चेष्टाएँ केंद्रित रक्खेगा। लत्ती लगाना और हिनहिनाना छोड़ कर फाटकके अवयवोंको तरह-तरह से काटेगा, खींचेगा। अंतमें वह सीख ही जायगा कि कहाँ खड़ा होकर क्या उठाना चाहिए कि फाटक खुले।

यही 'चेष्टा और भूल' वाली रीति है। इसमें कई विभिन्न पद हैं। प्रथम तो है मनमें अशांति—कुछ करनेकी प्रेरणा। तब है लक्ष्यरहित चेष्टा, जिनमें सब भूल-ही-भूल होती रहती है—सब चेष्टाएँ असफल रहती हैं। उसके पश्चात् है अचानक सफलता। अंतमें है नवीन चेष्टा, जिसमें धीरे-धीरे बेकारकी बातें छोड़दी जाती हैं और सफलताप्रद कार्योंकी ओर ध्यान केंद्रित किया जाता है।

यही वह रीति है जिससे बचपनमें बच्चे चलना सीखते हैं, या माता-पिता का ध्यान अपनी ओर आकर्षित करना सीखते हैं, या बोलना सीखते हैं। आरंभमें केवल यही रीति संभव है। जंतुओंमें तो ज्ञान प्राप्त करनेकी बस यही रीति है। मनुष्य दूसरोंकी देखा-देखी भी बहुत-सा काम कर सकता है—वह दूसरोंकी नकल करके भी सीख सकता है—परंतु जंतुओंमें यह शक्ति प्रायः नहीं होती। जंतुओं को हम करके दिखला देनेसे ही सिखला नहीं सकते। कुत्ता रोज़ देखता है कि आग पर लकड़ी रखनेसे किस प्रकार आग तेज़ की जाती है, परंतु यदि वह किसी दिन आगको कम होते देखे और जाड़ेसे ठिठुरता भी रहे तो उसे इतनी बुद्धि न आयेगी कि आग पर दो-चार लकड़ी रख कर आगको तेज कर ले।

लोग पशुओंको तरह-तरहके करतब सिखा अवश्य लेते हैं परन्तु अधिकतर यह सब काम वह उस पारितोषिक की लालचसे करता है जो उसे सिखाने वालेकी इच्छानुसार काम करनेपर मिलता है और वह उस दंडसे बचनेके लिए भी ठीक काम करता है जो उसे अशुद्धि करने पर मिलता है। यह सब करतब वह एक प्रकारसे चेष्टा और भूलकी रीतिसे ही सीखता है।

बुद्धि और सहजबुद्धि

अनेक परीक्षणोंसे सिद्ध किया गया है कि निम्न जन्तुओंके कार्य बुद्धिसे नहीं सहजबुद्धिसे, संचालित होते हैं। दो-चार उदाहरण रोचक होंगे।

कुररियोंका यह स्वभाव है कि खटका होनेपर वे भूमि पर दबक कर बैठ रहती हैं और इस प्रकार निश्चल हो जाती हैं कि पता नहीं चलता कि कोई चिड़िया है या पत्थर। मिस्टर टामलिनसन ने देखा कि उनके डरसे एक कुररी भूमि पर दबक कर बैठ गयी तो बैठी ही रह गयी। समुद्र-तट था और ज्वारके कारण पानी बढ़ा आ रहा था परंतु कुररी न हटी; डूब गयी और संभवतः मर गयी, परंतु न हटी। भला इस दुबक रहनेसे लाभ? यदि कुररी जान-बूझ कर जान बचानेके लिये दबकी होती तो पानीके आनेपर उड़ जाती। परंतु उसने तो जानबूझ कर कुछ किया नहीं था। उसकी सहजबुद्धिके कारण जैसी प्रेरणा हुई उसने किया। सहजबुद्धिके कारण वह दबक रही, परंतु उसकी सहजबुद्धिने ही यहाँ उसको डुबा दिया। कुछ भी बुद्धि होती तो वह बच जाती।

कैलिफोर्नियामें कठफोड़वों का स्वभाव है कि वे वृक्षोंमें छेद करके अनाज आदि भर रखते हैं और उसे जाड़ेमें खाते हैं। वहाँ जाड़ेके दिनोंमें खाने योग्य पदार्थ कम मिलता है। जहाँ वृक्षोंकी कमी है वहाँ कठफोड़वे तारके खंभोंमें अनाज इकट्ठा करते हैं क्योंकि वहाँ ये खंभे काठके होते हैं। परन्तु इन खंभोंमें प्रायः सदा ही दरार रहते हैं और जब पानी बरसता है तो पानी भीतर घुस जाता है जिससे अनाज सड़ जाता है। परंतु एक बार छकने परभी कठफोड़वोंको बुद्धि नहीं आती। वे प्रतिवर्ष तारके खंभोंमें अनाज भरते रहते हैं यद्यपि इसका एक अंशभी उनके काम में नहीं आ पाता। इतना ही नहीं। वहाँ बहुतसे लोग काठके घरोंमें रहते हैं। ठंढसे अधिक रक्षाके लिए भीतें सब दोहरी बनायी जाती हैं। जिन कठफोड़वोंको अपने

भंडार-घरके लिये कोई उचित वृक्ष नहीं मिल पाता वे इन घरोंकी भीतोंमें छेद करके अनाज आदि इकट्ठा करनेकी चेष्टा करते हैं और यद्यपि यह सब तुरंत खोखली भीतकी पेंदीमें पहुँच जाता है और चिड़ियोंके लिए अलभ्य हो जाता है, तो भी ये कठफोड़वे अपनी धुनमें मस्त अपने निष्फल परिश्रमसे रुकते नहीं हैं। वे बेचारे अपनी सहज-बुद्धिसे प्रेरित होकर, यंत्र संचालितसे, बराबर काम करते रहते हैं।

मिस फ्रैंसिस पिटने एक लोमड़ीका बच्चा पाला था। पहले वह उसे दूध पिला कर रखती थीं। जब वह कुछ बड़ा हुआ तो उसे मांस खिलानेकी चेष्टाकी गयी। परंतु वह कभी मांस खाता ही नहीं था। बराबर मुँह फेर लेता था, चाहे वह खरहेका ही मांस क्यों न हो जिसे लोमड़ियाँ बड़े चावसे खाती हैं। एक दिन संयोगसे मांसकी बोटियों के बीच एक ऐसी टाँग थी जिससे एक स्थानपर खाल नहीं उतरी थी। लोमड़ीके बच्चेने मांसको नाकसे सूँघ कर टांगको छोड़ ही दिया था, परंतु बिना खाल उतरे भागके रोयेंसे नाकके छू जातेही आश्चर्यजनक परिवर्तन देखने में आया। लोमड़ी उस टाँगसे वैसाही खेल करने लगी जैसा बिल्लियाँ चूहोंको मारनेके पहले करती हैं। लोमड़ी टाँग-को दबोच कर गुर्राने लगी, मुँहमें दबा कर झटकने लगी और अंतमें उसे खा गयी। जान पड़ता था कि खालके रोओंके स्पर्शसे उसकी सहजबुद्धि जाग उठी।
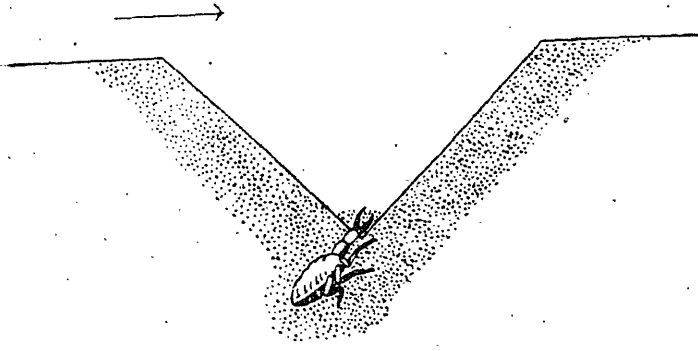
चोर कीड़ा

तीरसे प्रकाश आने की दिशा सूचित की गयी है।

चोर-कीड़ा, बालूमें शंक्वाकार गड्ढे बनाकर, पेंदीके पास बालूमें अपनेको छिपाये बैठा रहता है।

चोर-कीड़ा, बालूमें शंक्वाकार गड्ढे बना कर, पेंदीके पास बालूमें अपनेको छिपाये बैठा रहता है। गड्ढेके तट पर चींटे आदिके दिखलाई पड़तेही वह अपने शिरसे बालू मारना आरंभ करता है और ऐसा सच्चा निशाना मारता है कि शिकार लड़खड़ा कर उसके गड्ढेमें आ गिरता है। तब वह शिकारको बालूके भीतर खींच कर उसका रक्त चूस लेता है। गड्ढे खोदनेका ढंग भी बड़ा रोचक है। वह गोल-गोल चक्कर लगाता और बालूको बाहर फेंकता हुआ उत्तरोत्तर नीचे घुसता है और पंद्रह मिनटमें गड्ढा तैयार कर लेता है। यदि बालूमें कोई बड़ा कण मिल जाता है जिसे वह अपने सिरसे झटका देकर बाहर नहीं फेंक सकता तो वह उसे पीठपर लाद कर बाहर कर देता है। जब उसे कोई इतना बड़ा टुकड़ा मिलता है जिसे वह-बेचारा उठा नहीं पाता तो वह अन्यत्र जाकर गड्ढा बनाना आरंभ करता है। इसीलिए वह गड्ढा बनानेके पहले ही चारों ओर घूम कर अच्छी भूमि चुनता है जहाँ बालूमें कंकड़-पत्थर होनेकी संभावना कम हो। इन सब बातोंसे यह कीड़ा बड़ा चतुर जान पड़ता है यहाँ तक कि एक प्रसिद्ध जरमन वैज्ञानिकने इसे 'नेबेन्सस्पे-ट्सियलिस्ट' कह डाला है, जिसका अर्थ है 'जीवन-विशेषज्ञ'; परंतु होता है यह भोंदू ही और अपने आश्चर्यजनक कार्योंको केवल सहजबुद्धिके आधार पर करता है। जब कभी नवीन परिस्थितियोंमें रख दिया जाता है जहाँ उसका पुराना कार्यक्रम नहीं चल पाता तो वह पड़ा रहता है और भूखों मर जाता है; यहाँ तक हुआ है कि उसे चींटे लाकर दे दिये गये हैं तब भी बालूमें उसे खींच न ले जा सकनेके कारण उसने उसको नहीं खाया है। वैज्ञानिकों का विचार है कि चोरकीड़ेमें इतनी बुद्धि ही नहीं होती कि वह पहचान सके कि चींटा हमारा आहार है। वह केवल अपने गड्ढेमें गिरे कीटोंको ही आहार समझता है। जरमन वैज्ञानिक डोफ्लाइनको अपने परीक्षणोंसे विश्वास हो गया कि यह

कीड़ा चार-पाँच ही काम कर सकता है। जिनमेंसे तीन प्रधान हैं—बालूमें घुसना, बालू फेंकना और खाना। बालूमें घुस कर यह शत्रुओंसे बचता है और अपने शिकार की आँखोंसे छिपा रहता है। बालू फेंक कर यह गड्ढा खोदता है और अपने शिकारको अपने गड्ढेमें गिराता है। परंतु अन्य वैज्ञानिकोंकी सम्मति है कि इस तुच्छ कीड़े-के भी कार्योंका विश्लेषण इतना सरल नहीं है। स्टेजर-ने देखा कि एक भूखे चोरकीड़ेने एक कीटको दौड़ा कर पकड़ा और इसके लिए उसे अपने गड्ढेसे निकलना पड़ा था।

भृंगी नामक कीट* मिट्टीसे अपनी संततिके लिए घर बनाती है, उसमें मूर्छित किये गये भुइले रखती है, उन-पर अंडे देती है और फिर घरके छेदको बन्द कर देती है। कोई उसे यह सब सिखाता नहीं, और जहाँ तक परीक्षणोंसे पता चलता है उसे ज्ञात भी नहीं रहता कि अंतमें परिणाम क्या होगा। उदाहरणतः, हिंग्स्टनने भृंगीके एक घरके उस आधे भागको काट लिया जिधर अंडा देने के लिये छेद रहता है। भृंगी घरमें भुइलोंको रख चुकी थी और केवल अंडा देना शेष था। भृंगी आई और देखा कि अंडा देने वाला छेद नहीं है। वह बड़ी बेचैन मालूम हुई परन्तु उसने अंडा दे ही दिया। उसमें कुछ भी बुद्धि होती तो वह बने हुए घरोंमें अंडे देती और घरके खुले भागको बंद कर देती, परंतु उसने नियमानुसार उसी स्थानपर अंडा दिया जहाँ घरके न कटे रहने पर देती। इस प्रकार अंडे हवामें निकले और नीचे गिर पड़े। उसको अपनी सहजबुद्धिसे पता था कि घरका मुँह कहाँ होना चाहिए था, परन्तु यह ज्ञान नवीन परिस्थितिमें बेकार था।

*इसी कीटको बिलनी भी कहते हैं। इसके विषयमें प्रसिद्ध है कि यह किसी भुइलेको पकड़ कर ले आती है, उसे डंक मार-मार कर मूर्छित कर देती है, मिट्टीसे ढक देती है, और फिर इतने जोरसे "भिन्न-भिन्न" शब्द करती है कि भुइला भी भृंगीकी तरह हो जाता है। उदाहरण—कीट भृंग ऐसे उर अंतर। मन स्वरूप करि देत निरंतर।—लल्लू। परंतु सच्ची बात यह है भुइले नहीं बदलते, अंडेसे निकले बच्चे भुइलेको खाकर बाहर आते हैं।

अंडेसे निकलते ही मकड़ीके बच्चे जाला बुन सकते हैं, परन्तु प्रत्येक अपनी जातिके परंपरागत जालेके अनुसार। एक जातिकी मकड़ियाँ गड्ढा खोद कर उसपर ढक्कन लगा देती हैं जो खुला रहता है, परन्तु कीट आदि के गड्ढेमें गिरने पर बन्द कर दिया जाता है। इस जाति की मकड़ीके अंडोंको एक वैज्ञानिकने अपने प्राकृतिक स्थानसे हटा कर प्रयोगशालामें रख लिया। जब अंडोंसे मकड़ियाँ निकलीं तो वे नरम मिट्टीपर रख दी गयीं। उनको अपने माता-पितासे कोई शिक्षा नहीं मिली थी, और न कभी उन्होंने अपनी जातिके ढक्कनदार गड्ढोंको देखा ही था, परन्तु नरम मिट्टीपर रखते ही उन्होंने गड्ढा खोद लिया—हाँ, उनकी छोटी डीलके अनुसार गड्ढे भी छोटे थे। परन्तु प्रत्येक ब्योरेमें वे प्रौढ़ मकड़ियोंके गड्ढोंके समान थे। गड्ढा नलीके आकारका था। उसका मुँह सच्चा गोल था और नलिकाकी धार तेज़ थी। कोरके एक विन्दुपर कुछ मिट्टी लगाकर वहींसे ढक्कन बनानेका कार्य आरम्भ हुआ। सरसोंकी तरह छोटी-छोटी मिट्टीकी गोलियाँ ला-लाकर और अपने मुँहसे काते सूतसे उन्हें लपेट और चिपका कर ढक्कन बनाया गया। जब कभी मकड़ीका बच्चा एक कण मिट्टी जोड़ता तो तुरन्त उसपर अपना काता सूत लपेट कर सुदृढ़ कर देता। जब तक ढक्कन काफ़ी बड़ा नहीं हो गया तब तक यही क्रम जारी रहा। ढक्कन एक विशेष आकारका रहता है और ये बच्चे भी अपने पैरोंसे दबा-दबा कर ढक्कनको ठीक उसी आकारका बना रहे थे। ढक्कनमें एक ओर जालेका कब्जा लगा था जिससे ढक्कन दरवाज़ेके पल्लेकी तरह बन्द हो सकता था और खुल सकता था। जब ढक्कन ठीक नापका हो गया तो मकड़ीके बच्चेने उसे फटाफट बन्द और खोल कर छेदके मुँह और ढक्कनकी संधिको सच्चा कर लिया। जहाँ कहीं अधिक अन्तर था वहाँ और मिट्टी जोड़ कर काम पूरा कर दिया। देखने पर विश्वास ही नहीं होता था कि मकड़ियाँ बिना सिखाये ही ऐसा सुन्दर काम बना रही थीं, परन्तु जिन परिस्थितियोंमें ये बच्चे पले थे उनसे संदेह करनेका कोई अवसर ही नहीं रह जाता था

एक जातिके गुबरैले गोबर खोजा करते हैं। कहीं गोबर देख पाते हैं तो उसीके नीचे अपना बिल बना लेते

हैं। वे उसी बिलमें रहते हैं और भूख लगनेपर गोबर बटोरने ऊपर चले आते हैं। आवश्यकतानुसार गोबर लेकर वे फिर अपने बिलमें घुस जाते हैं। जब ये गुबरैले गोबर लेने ऊपर आये थे तो एक वैज्ञानिकने उनके बिलके

गुबरैले।
ये गोबर खाते हैं और गोबरकी गोली बनाकर उसे लुढ़काते हुए अपने निवास-स्थान तक ले जाते हैं।

मुँहसे कुछ ऊपर एक टुकड़ा दफ्तीका रख दिया जो बिलके मुँहसे डेढ़ इञ्च बड़ा था। गुबरैले जब लौटे तो दफ्तीसे हताश हो गये। वे उसे ही खुरचते रहे, परन्तु उनसे यह न बन पड़ा कि बगलसे घूम कर चलें। तीन दिन तक दफ्तीको काटनेकी चेष्टाके बाद वे उस गोबरको छोड़कर अन्यत्र चले गये। अन्त तक वे सीधा मार्ग छोड़कर न चल सके। यदि इस जातिके गुबरैले मिट्टी भरी नलीमें बन्द कर दिये जाते हैं और नलीको खड़ी स्थितिमें रख दिया जाता है तो वे मिट्टीमें छेद करके निकल जाते हैं। परन्तु यदि नलीको बेंड़ी स्थिति में रख दिया जाय तो वे नहीं निकल पाते, क्योंकि वे बेंड़ी दिशामें छेद कभी नहीं करते।

एक दूसरी जातिके गुबरैले गोबरकी गोली बना कर उसे लुढ़काते हुए अपने बिल तक ले जाते हैं। इस काम में दो गुबरैले जुटते हैं। एक ढकेलता है, दूसरा खींचता है। यदि इन गुबरैलोंको बनी-बनायी गोबरकी गोली दे दी जाय तो वे उसे कभी नहीं अंगीकार करते, परंतु एक बार जब वे गोबरकी गोलीको लुढ़काने लगते हैं तब उनकी बनायी गोलीको उठा लेने और उसके बदले मनुष्यके हाथकी बनायी गोलीको रख देनेपर उनको नवीन गोलीके ग्रहण करनेमें कोई आपत्ति नहीं होती। यह भी सहजबुद्धिका ही परिणाम है। गोबरका लड्डू स्वयं बनाना वे छोड़ नहीं सकते।

परंतु यह न समझना चाहिए कि निम्न जंतुओंमें बुद्धि कुछ होती ही नहीं है। विकासके अनुसार सभी जंतुओंमें कुछ-न-कुछ बुद्धि होती है। बंदरोंमें तो पर्याप्त बुद्धि होती है। कटघरेमें केला लटका देनेपर एक बंदरने बक्स-पर-बक्स रख कर और उसपर चढ़ कर केला तोड़ लिया। बहुतसे बंदर कटघरेके बाहर रक्खे हुए फलको छड़ी आदिसे खींच लेते हैं। परंतु इतने उच्च विकासके प्राणियोंको छोड़ दीजिये, गुबरैले भी निरे बुद्धिरहित नहीं होते। एक वैज्ञानिकने एक जोड़ी गुबरैलोंकी गोबर वाली गोलीको सींक खोंस कर भूमिमें गाड़ दिया। पहले तो गुबरैलोंने चारों ओरकी भूमिकी परीक्षा की। जब कोई रुकावट उनको न दिखलाई पड़ी तो उन्होंने गोलीके नीचे जाकर जोर लगाया और उसे उठा कर सींकसे अलग कर दिया। संभव है इसे लोग विशेष बुद्धिमानीका प्रमाण न समझें क्योंकि गोलीको लुढ़काते रहनेमें गुबरैलोंको बहुधा रुकावटों परसे गोली ले जाना पड़ता है। परंतु हिंग्सटनने जो परीक्षण किया उससे संदेह नहीं रह जाता कि गुबरैलोंमें भी कुछ बुद्धि अवश्य रहती है। उसने गोलीमें लंबी पतली सींक खोंस कर सींक के ऊपरी सिरेको इस प्रकार बाँध दिया कि लड्डू लंगर की तरह भूमिसे एक इंचकी ऊँचाई पर लटकने लगा। गुबरैलोंने अनुभव किया कि कोई रुकावट अवश्य है। क्योंकि ढकेलनेपर अंतमें गोली छटक कर अपनी पुरानी स्थितिमें आ जाती थी। जब भूमिपर कोई रुकावट नहीं दिखलाई दी तो वे गोलीपर चढ़ गये, सींकके पाससे काट कर गोलीके दो टुकड़े कर डाले और फिर उनको जोड़ कर पहले जैसी गोली बना डाली। प्रत्यक्ष है कि सहजबुद्धिकी

प्रेरणासे उनको यह बात न सूझी होगी। लंगरकी तरह लटकती हुई गोली गुबरैलों के साधारण अनुभवके बाहरकी बात है।

अन्य कई उदाहरण दिये जा सकते हैं—बुद्धि और सहजबुद्धि दोनोंके। इसमें संदेह नहीं कि जंतुओंमें कुछ
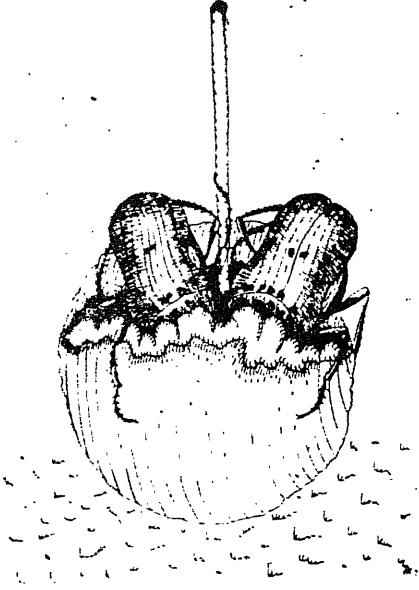
गुबरैलोंमें बुद्धि।
गोलीमें सींक खोंस देने पर गुबरैलोंने गोलीको काट डाला और फिरसे गोली बनाया।

बुद्धि होती है, परन्तु अधिकतर वे अपनी सहजबुद्धिसे ही संचालित होते हैं और अपने साधारण कार्यक्रमसे उनका हटना प्रायः असंभव होता है, चाहे परिस्थितियाँ कितनी भी नवीन क्यों न हो और चाहे साधारण कार्य प्रणालीसे उनकी हानि ही क्यों न होती हो।

जंतुओंमें बुद्धि

बंदरों, बिल्लियों, नेवलों, चूहों और कुछ अन्य स्तन-पोषियोंमें वास्तविक बुद्धि देखी गयी है। इस संबंधमें जरमन वैज्ञानिक केलरने अनेक परीक्षण किये। जब उसने देखा कि चिंपैंज़ी कटघरेके बाहर रक्खे फलको छड़ीसे खीच लेते हैं तब उसने कटघरेमें दो बाँस-ऐसे रख दिये जो एकमें एक खोंसनेपर एक लंबे बाँसका काम दे सकते थे। फिर उसने कटघरेके बाहर दूरपर फल रख दिया। थोड़े ही समय में चिंपैंज़ीने बाँसमें बाँस जोड़ कर फलको खींच लिया और उसे बाँसमें बाँस जोड़नेमें बड़ा मजा आया। अवश्य ही यह सहजबुद्धिसे बहुत दूर की बात थी।

ऐडम्सने बिल्लीके कटघरेके बाहर कलेजी रख दी और उसमें डोरा बाँध कर डोरेको कटघरेके ऊपरसे लाकर छोरको कटघरेके भीतर लटका दिया। बिल्लीने ढाई मिनटके भीतर ही डोरेको खींच कर कलेजीको खींच लिया। जब डोरा इतना लम्बा बाँधा गया कि एक बारके खींचनेमें कलेजी भीतर न आ सकती तो बिल्ली पहले तागेको जहाँ तक सम्भव होता खींच लेती और फिर शेष तागेको खींचती। तब ऐडम्सने देखना चाहा कि बिल्लियों में इतनी बुद्धि है कि नहीं कि वे बक्स लाकर और उसपर चढ़ कर ऊपरसे लटकती हुई कलेजीको कूद कर ले लें! इसमें कठिनाई यह थी कि बिल्लियाँ बेचारी बंदरोंकी तरह बक्सोंको उठा नहीं सकतीं—उनके हाथ होता ही नहीं। इसलिए पहले ऐडम्सने बिल्लीको तागा लगे हलके बक्सके तागेको खींच कर बक्स खींचना सिखलाया। फिर कटघरेकी छतसे कलेजी लटका दी और भीतर तागा लगा बक्स छोड़ दिया। पाँच मिनटके भीतर ही बिल्लीने बक्स-को खींच कर कलेजीके नीचे रख लिया और उसपर चढ़कर उसने कलेजी उतार ली।

हिग्गिसनने चूहोंपर परीक्षण किया है। उसने ऐसी भूलभुलैया बनाई कि चूहोंको एक विशेष रास्तेसे ही चलनेपर बाहर आनेको रास्ता मिलता था। जब चूहोंको वह रास्ता अच्छी तरह याद हो गया तब एक दिन एक बीचका छेद खोल दिया गया। यह द्वार ऐसा था कि इसमें से होकर जानेसे चूहों को ६ फुट कम चलना पड़ता था। पहली बार दस चूहोंमेंसे छः छोटे मार्गसे निकल आये। इससे स्पष्ट है कि चूहोंने खुले द्वारका अर्थ समझ लिया। एक दो बारके पश्चात् तो सभी चूहे इसी छोटे मार्गसे बाहर निकलते थे।

लटकते हुए फल या कलेजीके नीचे बक्स रख लेना और उसपर चढ़ना, बाँसमें बाँस जोड़ लेना, भूलभुलैया में छोटे-से-छोटे मार्गको समझ जाना, यह सब विवेकका

परिणाम है, सहजबुद्धिका नहीं और न चेष्टा और भूलका ही। इन जंतुओंने पहलेसे ही सोच लिया कि क्या करनेका परिणाम क्या होगा।

२०

जंतुसमाज

कई व्यक्तियोंके इस प्रकार साथ रहनेसे कि सबको परस्पर लाभ हो समाज बनता है। समाजका जीवन इसके एक-एक व्यक्तिके जीवनपर निर्भर है, और समाजका आचरण भी इसके एक-एक सदस्य के आचरणपर निर्भर है।

मनुष्य-समाज और जंतु-समाजमें एक विशेष अंतर है, क्योंकि मनुष्य सीख सकता है और अपना आचरण बदल सकता है, परन्तु जंतुओंमें यह संभव नहीं होता। मनुष्य-का समाज बदलता रहता है, परंतु किसी एक जातिके जंतुओंका समाज हजारों वर्षोंतक एक ढंगसे चलता रहता है। केवल विकासके कारण उसमें धीरे-धीरे अंतर आ जाता है। मनुष्य समाज प्रधानतया मनुष्यकी कृति है। जंतुओंके समाज पूर्वनिश्चित और अपरिवर्तनशील होते हैं।

समाज अच्छे ढंगसे तभी चल पाते हैं जब उनमें कई-एक कक्षाएँ होती हैं और सबका काम बँटा रहता है, परंतु मनुष्य जातिमें प्रकृतिने केवल दो कक्षाएँ उत्पन्नकी हैं—नर और नारी। शेष सामाजिक अंतरोंको मनुष्यने स्वयं सिरजा है। कुछ जंतुसमाजोंमें बात कुछ और ही है। चींटियों, चींटे, मधुमक्खियों और दीमकोंमें व्यक्तिकी सामाजिक स्थिति पूर्वनिर्धारित रहती है। उनमें कोई राजा या रानी उत्पन्न होता है, कोई सिपाही, कोई श्रम करने वाला।

दीमकोंका समाज

हम पहले ही देख चुके हैं कि दीमक-समाजमें तीन प्रकारके व्यक्ति होते हैं – (१) राजघरानेके (२) सैनिक और (३) मज़दूरिन (या कमेरी)। सैनिक और कमेरियाँ अपना काम स्वयं नहीं चुनतीं। दीमकें जन्मसे या तो सैनिक या कमेरी या राजघरानेकी होती हैं। सैनिकोंको प्रकृतिने बलिष्ट जबड़े, तगड़ा शरीर और लड़नेकी प्रवृत्ति दी है। रानीको संतति उत्पन्न करनेकी शक्ति मिलती है। नवीन रानियाँ उड़ कर हवामें चली जाती हैं, वहीं किसी अन्य घराने के नरसे भेंट होती है, उनसे वे गर्भित होती हैं और साधारणतः अन्यत्र जाकर नवीन घर बसाती हैं। वहाँ कुछ ही समयमें उनके पंख झर जाते हैं और वह बेचारी बस अंडा देने वाली मशीन बन जाती है।

मधुमक्खियोंका समाज

मधुमक्खियोंके समाजमें संतति उत्पन्न करनेके समय तो थोड़ेसे नर रहते हैं, परंतु अन्य समयोंमें केवल नारियाँ ही रहती हैं। एक रानी होती है, अन्य सब कमेरी। परंतु रानी इस समाजमें भी संतति-उत्पादक-यंत्र ही होती है। छत्तेके सब प्राणियोंका प्रबंध प्रौढ़ा कमेरियोंके ही हाथमें रहता है। वे ही इसका निर्णय करती हैं कि कब रानी बूढ़ी हो गयी और उसके बदले दूसरी रानीका प्रतिष्ठान करना चाहिए, कब छत्तेकी जनसंख्या अधिक हो गयी और इस लिए एक अंशको जाकर अलग छत्ता लगाना चाहिए, कब नरोंकी आवश्यकता नहीं रह गयी और उनको मार कर गिरा देना चाहिए; इत्यादि।

जंतुओंमें जात-पाँत

दीमकों, मधुमक्खियों और चींटियोंमें तो समाज-संगठन अत्यंत उच्च शिखर पर पहुँच गया है। इनमें जात-पाँतकी संस्था भली भांति स्थापित हो गयी है। प्रत्येक व्यक्ति अपनी विशेष स्थितिमें उत्पन्न होता है और उसे छोड़ नहीं सकता। परंतु कुछ कीटोंमें अन्य भाँतिकी जात-पाँत भी हैं जिसकी चर्चा स्थानाभावसे हम विस्तारपूर्वक नहीं कर सकते। कुछ तरहके चींटोंमें कमेरियोंके जिम्मे पत्ती काटने, फफूँदीकी खेती करने, गुलाम बनाने, दुधारू जंतु पालने आदिका काम भी रहता है। प्रोफेसर कॉम्सटकने इन आश्चर्यजनक प्रथाओं पर अपनी सम्मतियाँ प्रकटकी है :—

"यदि कोई राजनीतिज्ञ या दार्शनिक किसी पूर्णतया दोषरहित समाजवादी (कम्यूनिस्टिक) समाजका अध्ययन करना चाहे तो उसे मनुष्यके दुर्बल चेष्टाओंके इतिहासोंको फेंक देना चाहिए और निकटतम बाँबी (दीमकोंके भीटे)

का परिशीलन भली भांति करना चाहिये। वहाँ उसे मित्र, भार्या या पुत्र-पुत्रीके लिए प्रेम नहीं दिखलाई पड़ेगा, पूरे समाजके लिए प्रेम दृष्टिगोचर होगा। वहाँ जो कुछ किया जाता है पूरे समाजके हितके लिए किया जाता है; व्यक्तिके लिए कुछ भी नहीं। राज्य ही युद्ध ठानता है, सबको खिलाता है, बच्चोंका पालन-पोषण करता है, और सारे संपत्तिका स्वामी है। वहाँ राज्यके प्रति कोई दोषारोपण नहीं करता, कभी विद्रोह नहीं होता; परंतु वहाँ प्रत्येक व्यक्तिका भाग्य उसके जन्मसे निर्धारित हो जाता है। प्रत्येक व्यक्ति बिना चूँ किये अपना कार्य करना आरंभ कर देता है। वह देखेगा कि इस दोषरहित समाजमें वीरता, देशप्रेम, स्वामिभक्ति और अथक परिश्रम सब भली भांति प्रस्फुटित हुए हैं। परन्तु वह देखेगा कि वहाँ भी युद्ध, लूट, गुलामी, तथा दूसरे समाजों और व्यक्तियोंके स्वत्वोंकी संपूर्ण उपेक्षा वैसे ही प्रचलित हैं जैसे हमारे राष्ट्रों में; जहाँ व्यक्तिगत स्वार्थ और तृष्णाका राज्य सदासे रहा है।"

पृष्ठवंशियोंमें सामाजिक व्यवस्था केवल कुछ पक्षियोंमें और कुछ स्तनपोषियोंमें दिखलाई पड़ती है और सो भी बहुत प्रस्फुटित अवस्थामें नहीं। इन समाजोंमें कोई पूर्व-निश्चित जात-पाँत नहीं होती है। केवल नर-नारियोंमें अंतर रहता है। नरोंमें युद्ध करनेके लिए उपयुक्त अंग रहते हैं (और इसलिए रक्षाका भार उनपर पड़ता है)। नारियोंपर संतति उत्पन्न करने और उनके पालन-पोषणका भार रहता है।

इसमें संदेह नहीं कि एक साथ रह कर शत्रुओंसे अधिक सुरक्षित रहनेकी इच्छासे ही समाज उत्पन्न होता है। इसी अभिप्रायसे कौए, बंदर, हाथी आदि सभी झुंडोंमें रहते हैं। स्तनपोषियोंके कई झुंडोंमें बहुधा कोई सरदार भी रहता है। वह आगे चलता है। झुंडकी सीमापर रहने वाले सदस्य शत्रुकी सूचना देते हैं। धीरे-धीरे सरदारके पराक्रमसे लाभ होता देख उसका सम्मान होने लगता है। इन सरल बातोंमें ही हम उच्च श्रेणीके समाजोंकी उत्पत्ति की झलक देखते हैं।
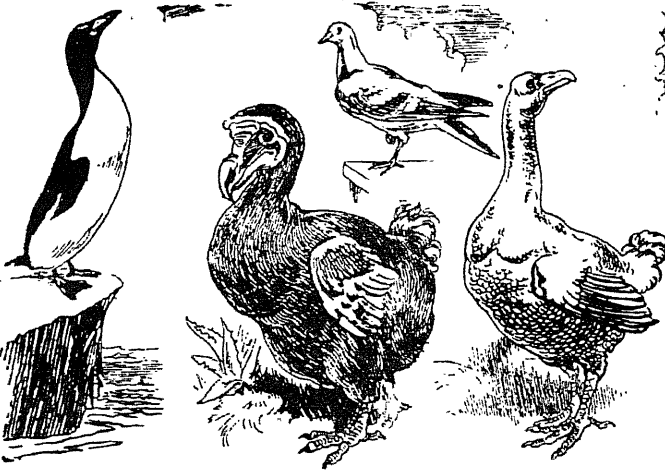
कुछ पक्षी जो हालमें ही लुप्त हुए हैं। बायेँसे दाहिनी ओर क्रमानुसार इनके नाम हैं ग्रेट ऑक, डोडो, परिभ्रामक कबूतर (पैसेंजर पिजन) और एकाकी (सॉलिटेयर)। अभी पचास वर्ष पहले परिभ्रामक कबूतरों के बड़े-बड़े झुंड मिला करते थे। सन् १८७८में एक झुंडने मिचिगन (अमरीका) में २८ मील लंबे और तीन-चार मील चौड़े प्रदेशमें अपना बसेरा डाला था और तब वहाँ के पेड़ इनके घोंसलों से लदे रहते थे। इनको मारनेकी कई रीतियाँ शिकारकी अँग्रेज़ी पुस्तकोंमें लिखी हैं; पाँच सप्ताहमें बीस-पचीस लाख कबूतरों के पकड़नेका उल्लेख भी कुछ पुस्तकोंमें है, परंतु शोक, इस शिकारने अब इन कबूतरोंको लुप्त ही कर डाला।

२१

जंगली जंतुओंसे मनुष्य का संपर्क

मनुष्यने अब नाश करनेकी अमित शक्ति प्राप्त कर ली है। आरंभमें मनुष्यने अपने अस्त्र-शस्त्रके कारण ही जंतुओंपर विजय पायी थी। संभवतः इन्हींके भरोसे वह कई जंतुओंको पालतू बनानेमें सफल भी हुआ था। परंतु अस्त्र-शस्त्रमें उन्नतिके साथ-साथ जंगली जीव-जंतु हमसे अधिकाधिक दूर होते गये। वे हमसे भागे-भागे फिरते हैं। वे हमसे सदा चौकन्ने रहते हैं। संभवतः सरल स्वभावकी

जातियाँ अब मर मिट गयी हैं और केवल चौकन्नी जातियाँ ही बच गयी हैं। जंतु बहुत शीघ्र समझ जाते हैं कि मनुष्य से कितनी दूर रहनेमें रक्षा है। गदासे भाला दूर जाता था, तीर भालेसे भी दूर जाता था। बंदूककी गोली और भी दूर जाती है और उससे इतना शब्द होता है कि मनुष्यके निकट कोई भी जंगली जंतु शीघ्र नहीं आता। अब तो बंदूकधारियोंके प्रति कड़े सरकारी नियमोंकी आवश्यकता पड़ती है। ये नियम न हों तो कई जातियाँ लुप्त हो जायँ। (हाँ, सरकार उस समय गोली चलाने के लिए जी खोल कर आज्ञा देती है जब युद्ध छिड़ा रहता है; और तब जंगली जंतु नहीं, मनुष्य मारे जाते हैं!)

प्राचीन समयोंमें जंतु तभी मारे जाते थे जब क्षुधा-शांतिके लिए आवश्यकता पड़ती थी। शिकारमें मारे गये जीव मनुष्यके जीवित रहनेमें सहायक होते थे। तब शिकार आवश्यक था, खेल नहीं। पीछे, जब कृषिमें उन्नति हुई, तब शिकारकी विशेष आवश्यकता न रही। लोग अधिकतर जी बहलाने के लिए शिकार खेला करते थे—कालिदासने भी कहा है "मृगया तें भलो न विनोद कोई"*। परन्तु अब जब जंतुओंकी कई जातियाँ हमारे देखते-देखते लुप्त हुई हैं और कई जातियोंके लुप्त होनेका डर है, शिकार समझ-बूझकर खेलना चाहिए। हमको जानना चाहिए कि जब कोई जाति लुप्त हो जाती है तो हमारे पास कोई साधन नहीं है कि उसे फिरसे स्थापित करें। उसका सौंदर्य, चित्ताकर्षक आचरण, परिशीलनयोग्य रहन-सहन, मनुष्य के लिए उसकी उपयोगिताकी संभावना, सभी सदाके लिए चले जाते हैं। मनुष्य उनको बचानेके उपाय अब सोच रहा है जब बहुत-सी हानि हो चुकी है। परंतु अब भी जो कुछ हो सके वह करना ही चाहिए।

भयानक जंतु

भयानक जंतुओंसे मनुष्यका संबंध तो और भी बदल गया है। प्राचीन समयमें बाघ, शेर, चीता, भालू, भेड़िया आदिसे बचना हमारे पूर्वजों के लिए कठिन हो जाता था। अब भी भारतवर्षमें कई स्थान हैं जहाँ इन पशुओंसे पूर्ण रक्षा कठिन हो जाती है। परंतु अधिकांश स्थानोंमें इन हिंस्र जीवोंसे मनुष्यको छुटकारा मिल गया है। बंदूकने इसमें हमारी बड़ी सहायताकी है।

*शकुंतला नाटक—राजा लक्ष्मण सिंहका अनुवाद।

परंतु अन्य भयानक जीव हैं जो बंदूकसे नहीं मारे जा सकते। हमारे पूर्वजोंको उनका पता ही न था। सूक्ष्मदर्शक के आविष्कारके बाद ही उनका पता हमें लग सका है। ये इतने सूक्ष्म हैं कि हमको दिखलायी नहीं पड़ते। ये हमारे शरीरमें बढ़ते है और हमारे शारीरिक जंतुओंका विनाश करते हैं। इनसे घातक रोग उत्पन्न होते हैं। कुछ रोग उत्पादक जीवाणु तो प्राणी नहीं, बनस्पति हैं। जो प्राणी हैं वे भी सरलतम शरीर-रचना के हैं।

मलेरिया उत्पन्न करनेवाला प्लैस्पोडियम प्राणी है, बनस्पति नहीं। एक प्रकारका अतिसार भी प्राणियोंके कारण होता है। इन सब प्राणियोंकी शरीर-रचना अत्यंत सरल, बहुत-कुछ अमीबाकी तरह, होती है। ये अत्यंत सूक्ष्म होते हैं।
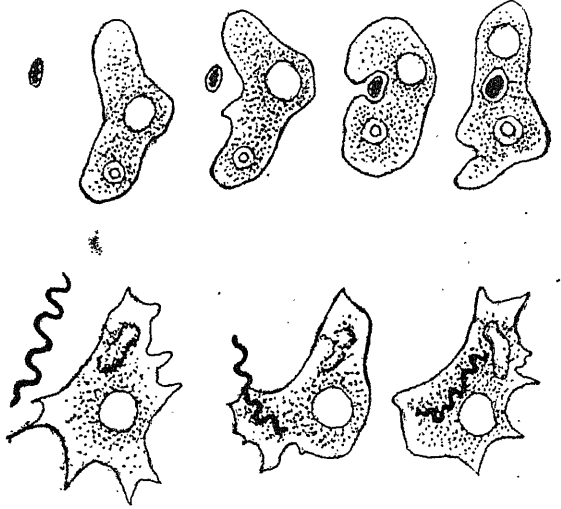
अमीबा और श्वेताणु

ऊपरकी पंक्तिमें दिखलाया गया है कि अमीबा कैसे आहार ग्रहण करता है। नीचेकी पंक्तिमें मनुष्य-शरीरके श्वेताणु और एक रोग-उत्पादक जीवाणुका संघर्ष दिखलाया गया है। श्वेताणुने रोग-उत्पादक जीवाणुको निगल लिया।

मनुष्यके ये शत्रु हिंस्र जंतुओंकी तरह हमारा अंग-भंग

नहीं करते तो क्या, वे हमारा नाश बड़े भयंकर रूपोंमें करते हैं। उनके साथ युद्ध छेड़नेके लिए विज्ञान के नवीनतम रीतियोंका अवलंब लिया जा रहा है, परंतु आज भी बहुत-से रोग हमारे वशमें नहीं आ पाये हैं।

आधुनिक प्राणिशास्त्र वस्तुतः चिकित्सकोंसे उत्पन्न हुआ। वे शरीर-रचना जानना चाहते थे जिसमें रोगों की चिकित्सा वे अधिक उत्तम रीतिसे कर सकें। मनुष्योंको चीरना सुलभ नहीं था। इसलिए पहले जंतुओंकी शरीर-रचना के अध्ययनसे कार्यारंभ हुआ और बहुत-सा ज्ञान प्राप्त हुआ। धीरे-धीरे प्रत्येक दिशामें इस ज्ञानमें उन्नति हुई और अब तो प्राणिशास्त्र और मनुष्य-शरीर-रचना-शास्त्र दोनों बहुत प्रस्फुटित अवस्थामें आ पहुँचे हैं।

सूक्ष्मदर्शकसे ज्ञानवृद्धि

सूक्ष्मदर्शकके आते ही अनंत सूक्ष्म वस्तुओंका संसार दृष्टिगोचर हो गया। तब इतनी बातें ज्ञात हुईं जिनकी कल्पना पुराने वैज्ञानिकोंने स्वप्नमें भी नहीं की थी। परंतु आरंभमें बहुत-सी बातें समझमें न आयीं। दिखलायी पड़नेवाली वस्तुओंका अर्थ लगानेमें समय लगा। धीरे-धीरे पता चला कि सब सजीव वस्तुओंकी एकाई वह वस्तु है जिसे कोष कहा जाता है—प्रत्येक प्राणी, प्रत्येक वनस्पति, कोषोंका संग्रह है। कोषोंसे ही सब तंतु बने रहते हैं। इसी बहुमूल्य यंत्रसे मनुष्यने यह भी देखा कि किस प्रकार बढ़ते-बढ़ते प्राणी प्रस्फुटित होता है, किस प्रकार वह डिंबसे प्रौढावस्था तक पहुँचता है। उन्होंने तब अनुभव किया कि यह वृद्धि, यह परिवर्तन, सभी प्राणियोंमें बहुत-कुछ एक ही भांति होता है। तब जीवोंकी एकता धीरे-धीरे लोग मानने लगे। अब वैज्ञानिक जंतुओंके मनका, उनकी बुद्धिका, उनके आचरणका, सूक्ष्म अध्ययन कर रहे हैं। जीवनके नियम सभी प्राणियों के लिए एक-से हैं और उनका पूर्ण ज्ञान रोचक ही नहीं, उपयोगी भी हो सकता है।

२२
परिशिष्ट

जुगनूका प्रकाश

मनुष्यमें जुगनूके प्रकाशके रहस्यको ढूंढ़नेकी बहुत समयसे तीव्र आकांक्षा थी। सबसे प्रथम सत्रहवीं शताब्दीमें राबर्ट बॉयलने इसके ऊपर वैज्ञानिक दृष्टिसे खोज की थी। उन्होंने जुगनूको एक बन्द शीशेके बैलजारमें रक्खा और बैलजारकी वायुको एक वैक्युम पम्प द्वारा बाहर निकालना प्रारम्भ किया। अन्तमें उन्होंने देखा कि जब वायुका बहुत-सा अंश बाहर निकल गया तब जुगनूका प्रकाश भी कम होते-होते अन्तमें बिलकुल अगोचर हो गया।

यह दीप्ति क्यों?

अमरीकामें प्रिंसटन विद्यालयके प्रोफेसर इ० एन० हारवेने जीव-जन्तुओं और पौधोंके उसी प्रकाशपर बहुत अनुसंधान किये हैं। आपने निश्चित किया है कि जुगनूमें प्रकाश देने वाला पदार्थ दो रसायनोंसे बना है। उनको उन्होंने ल्यूसिफेरिन और ल्यूसिफेरेज़ कहा। दोनोंमेंसे किसीमें भी फॉसफोरस नहीं है। दोनों प्रोटीन जैसे प्राकृतिक पदार्थ हैं परन्तु उनके मिश्रित पदार्थोंका अभी पूर्णरूपसे निश्चय नहीं हो सका है। ऐसा मालूम पड़ता है कि प्रथम ल्यूसिफेरिन नामक पदार्थ ही प्रकाश उत्पन्न करता है। ल्यूसिफेरेज़ इस कार्यके होनेकी गतिको उत्प्रेरकोंके समान बढ़ा देता है। ल्यूसिफेरेज़ रहते हुये ल्यूसिफेरिन वायुके ओषजनके सम्पर्कमें आकार प्रकाश उत्पन्न करता है। इस उत्पत्तिमें जलका होना अनिवार्य है। एक बार पाँच सौ जुगनुओंके जलको बिलकुल सुखाके उनकी दीप्तिकारिणी इन्द्रियोंको अलग किया गया। फिर इन्द्रियोंके पदार्थोंको खूब बारीक पीस लिया गया। बहुत वर्षोंके बाद फिर उन पिसे हुये पदार्थोंमें जल मिलाने पर पहला जैसा तेज़ प्रकाश निकला। जुगनूकी ये इन्द्रियाँ बहुत गुरुतायुक्त होती हैं। उनका ढाँचा सरलतापूर्वक नहीं मालूम हो सकता ये पेटके अन्तके दो भागोंके नीचेकी ओर स्थित होती हैं।

[विज्ञान, मई, १९४४

जुगनूके शरीरके अन्दर उन प्रकाशवान् सेलोंके ऊपर दर्पण लगा होता है। यह पानीमें न घुलने वाले छोटे-छोटे रवोंकी तहसे बना होता है। इनसे प्रकाश नीचेकी ओर परावर्तित होता है जिसके कारण प्रकाश बहुत तेज़ मालूम पड़ता है। इन सेलोंके अन्दर ही ल्यूसिफेरिन और ल्यूसिफेरेज़ रहते हैं और सेलोंके बीच-बीचमें वायुसे भरी छोटी-छोटी असंख्य नलियाँ होती हैं। जैसे ही जुगनू आकाशमें उड़ता है वायु इन नलियोंमें भर जाती है और वहाँपर उसका ओषजन दीप्तिकारक पदार्थोंपर प्रभाव करके प्रकाश उत्पन्न करता है। जिनके चोट लग जाती है उन जुगनुओंमें यह देखा गया है कि उनसे प्रकाश सदैव स्थिर रूपसे निकलता रहता है। इसका कारण यही है कि उनकी जिन इन्द्रियोंसे वायुका अन्दर आना और बाहर जाना सम्भव होता है वे ठीक रूपसे अपना कार्य नहीं करतीं। उनसे स्थिर रूपसे वायु नलियोंके अन्दर आती-जाती रहती है और इससे प्रकाश भी स्थिरतासे निकलता रहा है।

दीप्तिका अभिप्राय

अब प्रश्न यह उठता है कि इस प्रकाशसे जुगनूको क्या लाभ है। यह प्रकाश नर और मादाके मिलनके लिये आवश्यक है। भाँति-भाँतिके जुगनुओंके नर और मादासे भाँति-भाँतिके प्रकाशका उद्गार होता है। किसीमें पीले रङ्गका, किसीमें नीले रङ्गका प्रकाश होता है। बहुतसे प्रकाश बहुत थोड़ी देर के लिये, बहुतसे अधिक देर तक, बहुतसे जल्दी, और बहुतसे नाम-मात्रके लिये ही प्रतीत होते हैं। प्रिंसटन विश्व-विद्यालयके प्रोफेसर युबरिक डेहलग्रानने एक यन्त्र द्वारा ऐसे बहुतसे प्रकाशोंकी विद्युतके लेम्प द्वारा नकल की और फिर इन्होंने नरको मादाके नकली प्रकाशकी ओर आकर्षित होते देखा। इसीसे वह जुगनूके प्रकाशकी अवश्यकतापर पहुँच सके। ग्रीष्मके प्रारम्भमें अथवा बसन्त ऋतुके अन्तमें ये जुगनू दलदलोंमें उगे हुये घासकी जड़ोंमें अण्डे देते हैं। अण्डोंमें दीप्तिकारिणी इन्द्रियाँ उत्पन्न होकर उन्हें प्रकाशवान् बना देती हैं। यह अण्डे ग्रीष्मके मध्य तक सेये जाते हैं और फिर जुगनू निकल आते हैं। उनमेंसे स्थिर रूपसे प्रकाश निकलता रहता है।

दीप्तिमय अन्य जन्तु

जुगनुओंके अतिरिक्त बहुतसे दूसरे जन्तु और पौधे प्रकाश विकीर्ण करते हैं। समुद्रके किनारे पर रहने वाले मनुष्योंने अवश्य एक मृतक मछलीको देखा होगा। उसके गलने या सड़नेके प्रारम्भमें उसमेंसे रात्रिके समय एक हरा प्रकाश निकलता है। यह एक विशेष प्रकारके सामुद्रिक जीवाणुके कारण होता है। इन जीवाणुओंको प्रकाशसे क्या लाभ होता है इसका अभी तक पूर्ण निश्चय नहीं हो सका है। जीवाणुओंसे निकले हुये प्रकाशको भी यांत्रिक, विद्युत अथवा ताप-शक्तिसे नहीं बढ़ाया जा सकता। परन्तु इनको क्षारके घोलमें रखनेसे प्रकाश तेज़ हो जाता। यह देखा गया है कि तेज़ाबसे भरे स्थानपर कभी प्रकाश नहीं होता। उन जीवाणुओंको छोटेसे स्थानमें बन्द कर देनेसे प्रकाश बहुत तेज़ हो जाता है। इसके अतिरिक्त उनको बहुत अधिक गतिसे चारों ओर घुमानेसे भी यही हो सकता है। प्रकाशका उद्गार इतनी तेज़ीसे बढ़ जाता है कि हम बहुत दूरीसे पुस्तक पढ़ सकते हैं। यही विशेषता गहरे समुद्रोंमें रहने वाली मछलियोंमें होती है। उनमेंसे बहुतसी मछलियोंमें पीठके दोनों ओर प्रकाशवान् विन्दुओंकी एक रेखा होती है। रात्रिमें दूरसे देखने पर मछलियाँ बड़े-बड़े जहाजोंके सूक्ष्म रूपके समान दिखाई देती हैं। गहरे समुद्रोंमें एक एंगलर नामक मछली होती है। इसके सिरे पर एक प्रकारकी कुप्पी होती है जो बहुत ही सुन्दर दीख पड़ती है। यह मछलीके मुँहके बिलकुल सामने लटकी होती है। इसके चारों ओर बिन्दु जैसे प्रकाशवान् कीड़े होते हैं। कुप्पीका प्रकाश तथा प्रकाशवान् कीड़े छोटी-छोटी मछलियोंको अपनी ओर आकर्षित करते हैं। वास्तवमें वे अपनी स्वामिनीके लिये खाना एकत्रित करते हैं। जब कुप्पीसे छोटी मछलियाँ टकराती हैं तब उन्हें यही एङ्गलर नामक मछली हड़पकर जाती है। इस प्रकार प्रकृतिने अपने खाद्य पदार्थ ढूँढ़नेके लिए एक सुन्दर प्रकाशवान् कुप्पी उनके ऊपर प्रदानकी है।

अभी तक जुगनूके प्रकाशके रहस्यका पूर्णतः पता नहीं चला। ल्यूमिनोल जो एक तेज़ और ठंडा प्रकाशमान् पदार्थ है बहुतसे वैज्ञानिक जुगनूमें भी लगा हुआ समझते हैं परन्तु ऐसा नहीं है। जुगनू संसारके दीप्तिमान जीव-

जन्तुओंमें सर्वोत्तम है। इसकी उत्तमता यह है कि उसमें तेज़ प्रकाश होनेके अतिरिक्त शक्तिका बहुत कम व्यय होता है। जब जुगुनू वायुमें उड़ता है तब उसके प्रकाशमान् पदार्थ अपने ओषिदीकृत रूपमें परिणत होकर प्रकाश उत्पन्न करते हैं। जुगुनूमें प्रकाश समाप्त हो जानेके बाद फिर अँधेरा हो जाता है। इस अंधकारके समय ओषिदीकृत पदार्थ फिर अपने असली रूपमें आ जाते हैं। जब जुगुनू वायुमें उड़ता है तब उन पदार्थोंपर वायुके ओषजनके प्रभावसे फिर प्रकाश उत्पन्न होता है। —श्री व्रजवल्लभ

छूत

लकड़ीमें दो चार घुन भी लग जायँ तो कुछ समयमें यह बहुतसी लकड़ी खा-खाके उसको बिल्कुल आटा बना देगें और स्वस्थ लकड़ी अन्दरसे खोखली हो जायगी। इन घुनोंसे अंडे और अंडेसे बच्चे, बच्चेसे घुन बन-बन कर असंख्य घुन पैदा हो जायँगे और गाँव भरमें फैलकर लकड़ियोंका दुरुस्त रहना कठिन कर देंगे। परन्तु घुनती लकड़ीको उबलते पानी या मिट्टीके तेलमें तर कर देनेसे घुनना बन्द हो जाता है क्योंकि मिट्टीके तेलसे घुन मर जाते हैं। इसमें यह ध्यान देनेकी बात है कि गिनतीके घुन भी वृद्धि पाकर कितना तहलका मचा देते हैं। जीवोंमें जन्म और मरणकी परम्परा सदा लगी रहती है। जन्म अधिक और मृत्यु कम होती है तो हानिकारक थोड़े जीव भी बड़ी आफ़त मचा देते हैं। यदि हम अपनी लकड़ीकी रक्षा करना चाहते हैं तो यह अत्यन्त आवश्यक है कि हम उसमें एक भी घुन न पहुँचने दें।

यदि हम अपनी चारपाइयोंको दुःखदायी खटमलोंसे सुरक्षित रखना चाहते हैं तो चारपाईमें भी खटमल न घुसने दें। सब खटमलोंको मार कर चारपाईको खटमल रहित करना अत्यन्त कठिन है। इसके लिये भी यह आवश्यकता पड़ती है कि कोई ऐसी विधि उपयोगमें लावें जिससे सब खटमल एक साथ मर जायँ। यहाँ भी हम वही विधियाँ उपयोगमें ला सकते हैं जो घुनी लकड़ीके लिये उपयुक्त सिद्ध हुई थीं। इसी प्रकार यदि कहींसे हमारे सिरमें दो चार जुएँ आ जायें तो हमारे सिरमें आफत मचा दें, और बड़ी दुःखदायी सिद्ध हों क्योंकि ये तो बढ़कर असंख्य हो सकती हैं। इनके भी मारनेके लिये मिट्टीका तेल उपयोगमें लाया जा सकता है। यहाँ उबलता पानी उपयोगमें नहीं लाया जा सकता क्योंकि उससे सिर भी जल जायगा।

पाठकगण अब सरलतासे समझ सकते हैं कि छूत क्या होती है। हानिकारक जीवोंका स्वस्थ शरीरतक पहुँचना ही छूत कहलाता है। पाठकोंमेंसे कुछने रोटी अथवा अचार अथवा जूतेमें फफूँदन लगते अवश्य देखा होगा। इसका कारण छूत ही समझना चाहिये। फफूँदनको पेड़के सदृश समझना चाहिये क्योंकि यह चल नहीं सकती है। किन्तु यह भी छूत पैदा कर सकती है क्योंकि यदि हम थोड़ी फफूँदन रोटी पर डालदें तो वह रोटीको खाकर सब रोटीको बिलकुल खराब कर डालेगी।

जब थोड़ा दही दूधमें डाल दिया जाता है तो सारा दूध जम जाता है। दहीको यहाँ ऐसा समझना चाहिये जैसे लकड़ीका बुरादा जिसमें कुछ घुनके अंडे हो। यदि यह बुरादा लकड़ीमें छोड़ा जाय तो कुल लकड़ी खा डाली जायगी। इसी प्रकार जहाँ कुछ दही दूधमें छोड़ा कि कुल दूध दही हो जायगा। दूधको दही बनानेवाले जो जीव होते हैं वे कोरी आँखोंसे नहीं देखे जा सकते। इन जीवोंको केवल अणुवीक्षण यन्त्रमें शीशोंके तालों द्वारा देख सकते हैं क्योंकि यह जीव इतने छोटे होते हैं कि आँखोंसे नहीं देखे जा सकते। हम उनको जीवाणु कहेंगे।

पाठक स्वयं कल्पना कर सकते हैं कि क्या कोई ऐसे जीव नहीं हो सकते जो हमारे शरीर तक पहुँचकर वैसी ही आफत मचा सके जैसी दहीके जीवाणु दूधमें करते हैं, या फफूँदनके जीवाणु रोटीमें अथवा जूतेपर। बहुतसे ऐसे जीवाणु होते हैं जो हमारे मृत अथवा जीवित शरीरमें सड़ना और अन्य अन्य रोग उत्पन्न कर सकते हैं। इतना ही नहीं जीवाणु ऐसे विष उत्पन्न कर सकते हैं जो हमारे लिये प्राण-घातक सिद्ध हों। लकड़ी और मनुष्यमें एक अन्तर यह है कि लकड़ीके लिये मिट्टीके तेल जैसी तेज़ दवाका प्रयोग हो सकता है परन्तु हमारा शरीर यह तेज़ दवायें नहीं सह सकता इसलिये छूतकी बीमारियों का इलाज कठिन होता है और शरीरके भीतर ही जीवाणु न मार सकनेके कारण

छूतका फैलना सरलतासे बंद नहीं किया जा सकता। इसलिये छूतसे बचनेके उपायोंकी ओर अधिक ध्यान देना चाहिये।

बहुतसे कीड़े और जीवाणु हमारे दुश्मन हैं। इनमें और मनुष्य जातिमें लड़ाई होती रहती है। कोई कीड़े हमारे नाज, शक्कर, कपड़े और लकड़ियोंको खाते हैं तो कोई हमारे जानलेवा सिद्ध होते हैं। कोई जीवाणु हमारी रोटी और अन्य खानेकी चीजोंको सड़ाते हैं तो कोई हमारे शरीरमें विष उत्पन्न करते हैं जो हमको तड़पा-तड़पा कर मारते हैं। किन्तु कोई कीड़े और जीवाणु ऐसे होते हैं कि हम उन्हें पालते हैं और वे हमारी बड़ी सेवा करते हैं। लाख और रेशमके कीड़े और दही के जीवाणुओंको हम अपने लाभके लिये पालते ही हैं। रेशमके कीड़े और ताऊनके पिस्सूमें वही अन्तर है जो बैल और साँप बिच्छूमें होता है। उसी प्रकारका अन्तर दहीके जीवाणुओं और हैज़ेके जीवाणुओंमें होता है।

चेचक इत्यादि छूतके रोगोंमें घरके बहुतसे प्राणियोंमें रोग फैलनेकी सम्भावना रहती है और थोड़ी भी असावधानीसे बड़ी आफत मच सकती है। शरीरके भीतरके जीवाणुओंको नाश करना कठिन है क्योंकि तेज दवाओंसे शरीरको भी हानि पहुँचती है। इस कारण शरीरको जीवाणुओं की छूतसे बचानेका महत्व बहुत बढ़ जाता है। इसलिये यह आवश्यक है कि हम जीवाणुओंको शरीरके बाहर ही मारनेकी विधि जानें।

यदि अपने शरीरको हम जीवाणुओंके आक्रमणसे बचाना चाहते हैं तो एक भी जीवाणु भीतर न घुसने देना चाहिये। इससे यह अनुमान किया जा सकता है कि छूतकी बीमारियोंमें कितनी सावधानीकी आवश्यकता है! मिट्टीके तेलसे खटमल मर जाते हैं। ऐसे द्रव्योंको जो कीड़ों को मार सकें कीट-नाशक कहते हैं। इसी प्रकार जो द्रव्य जीवाणुको नाश कर सकते हैं उन्हें जीवाणु नाशक कहते हैं।

साधारणतः दूध अपने आप बहुत जल्दी फट जाता है क्योंकि उसमें जीवाणुओंका प्रवेश वायुसे हो सकता है। यदि हम दूधको उबाल कर उबाले हुये बरतनमें भर कर उबाले हुये ढक्कनसे ढक दें तो दूध बहुत दिनों तक रखा जा सकता है। इस प्रकार ताप जीवाणुनाशकका एक उदाहरण है।

जब छूत लग जाती है तो रोग एकदम तो आरम्भ होता नहीं है। कुछ समय जीवाणुओंकी संख्या बढ़नेमें लगता है। जब संख्या बहुत हो जाती है तो रोगके लक्षण उत्पन्न हो जाते हैं इस छूत लगने और रोग उत्पन्न होनेके बीचके समयको अंकुरावस्था काल कहते हैं। यदि कोई आदमी एक चेचकके मरीजके पास बैठे तो उसे चेचक १० दिन पश्चात हो सकती है क्योंकि दस दिन रोगके पकनेमें लगते हैं। अंकुरावस्था कालमें रोगके हल्के लक्षण जैसे सुस्ती, सिरमें दर्द इत्यादि उपस्थित रह सकते हैं।

अंकुरावस्था कालके पश्चात् आक्रमण अवस्था आती है। इसमें रोग बढ़ता है, चेचक इत्यादि जिन रोगोंमें दाने निकलते हैं उन रोगोंमें दाने निकल आते हैं। जब रोग एक बार खूब बढ़ लेता है तो फिर घटने लगता है और अन्तमें बिलकुल घट जाता है। इस अवस्थाको रोग-निवारण अवस्था कह सकते हैं। परंतु कुछ कमजोरी बाकी रह जाती है। इस अवस्थाको बीतरोग्यता कहते हैं। रोगीके अंकुरावस्था काल और बीतरोग्यतामें भी छूत उपस्थित रह सकती है और फैल सकती है।

कुछ छूतकी बीमारियाँ ऐसी होती हैं जो बहुत शीघ्र फैलती हैं, और उनका समय समय पर आक्रमण होता है जैसे ताऊन, हैजा। बहुत ऐसी होती हैं कि विशेष मौसममें बहुत बढ़ जाती हैं, ताऊन सर्दीमें, मलेरिया अगस्त और सितम्बरमें। कुछ छूतकी बीमारियाँ ऐसी होती हैं जिनका फैलाव सदा एकसा चला जाता है जैसे क्षय रोग। कुछ छूतकी बीमारियाँ ऐसी होती हैं कि शीघ्रतासे फैलनेके कारण कुल दुनियामें फैल जाती है जैसे जंगी बुखार। कुछ ऐसी होती हैं जो इतनी शीघ्र नहीं फैल सकती परन्तु अवसर पाकर लगभग सब जगह फैल सकती हैं, जैसे ताऊन, चेचक, हैजा। कुछ छूतकी बीमारियाँ केवल गरम देशोंमें पाई जाती हैं जैसे मलेरिया, हाथी पांव। कुछ छूतकी बीमारियाँ विशेष देशोंमें सीमाबद्ध रहती हैं जैसे काला ज्वर बङ्गाल और आसाममें।

जन्तुओंमें सर्वोत्तम है। इसकी उत्तमता यह है कि उसमें तेज़ प्रकाश होनेके अतिरिक्त शक्तिका बहुत कम व्यय होता है। जब जुगुनू वायुमें उड़ता है तब उसके प्रकाशमान् पदार्थ अपने ओषिदीकृत रूपमें परिणत होकर प्रकाश उत्पन्न करते हैं। जुगुनूमें प्रकाश समाप्त हो जानेके बाद फिर अँधेरा हो जाता है। इस अंधकारके समय ओषिदीकृत पदार्थ फिर अपने असली रूपमें आ जाते हैं। जब जुगुनू वायुमें उड़ता है तब उन पदार्थोंपर वायुके ओषजनके प्रभावसे फिर प्रकाश उत्पन्न होता है। —श्री ब्रजवल्लभ

छूत

लकड़ीमें दो चार घुन भी लग जायँ तो कुछ समयमें यह बहुतसी लकड़ी खा-खाके उसको बिल्कुल आटा बना देंगें और स्वस्थ लकड़ी अन्दरसे खोखली हो जायगी। इन घुनोंसे अंडे और अंडेसे बच्चे, बच्चेसे घुन बन-बन कर असंख्य घुन पैदा हो जायँगे और गाँव भरमें फैलकर लकड़ियोंका दुरुस्त रहना कठिन कर देंगे। परन्तु घुनती लकड़ीको उबलते पानी या मिट्टीके तेलमें तर कर देनेसे घुनना बन्द हो जाता है क्योंकि मिट्टीके तेलसे घुन मर जाते हैं। इसमें यह ध्यान देनेकी बात है कि गिनतीके घुन भी वृद्धि पाकर कितना तहलका मचा देते हैं। जीवोंमें जन्म और मरणकी परम्परा सदा लगी रहती है। जन्म अधिक और मृत्यु कम होती है तो हानिकारक थोड़े जीव भी बड़ी आफ़त मचा देते हैं। यदि हम अपनी लकड़ीकी रक्षा करना चाहते हैं तो यह अत्यन्त आवश्यक है कि हम उसमें एक भी घुन न पहुँचने दें।

यदि हम अपनी चारपाइयोंको दुःखदायी खटमलोंसे सुरक्षित रखना चाहते हैं तो चारपाईमें भी खटमल न घुसने दें। सब खटमलोंको मार कर चारपाईको खटमल रहित करना अत्यन्त कठिन है। इसके लिये भी यह आवश्यकता पड़ती है कि कोई ऐसी विधि उपयोगमें लावें जिससे सब खटमल एक साथ मर जायँ। यहाँ भी हम वही विधियाँ उपयोगमें ला सकते हैं जो घुनी लकड़ीके लिये उपयुक्त सिद्ध हुई थीं। इसी प्रकार यदि कहींसे हमारे सिरमें दो चार जुँए आ जायें तो हमारे सिरमें आफत मचा दें, और बड़ी दुःखदायी सिद्ध हों क्योंकि ये तो बढ़कर असंख्य हो सकती हैं। इनके भी मारनेके लिये मिट्टीका तेल उपयोगमें लाया जा सकता है। यहाँ उबलता पानी उपयोगमें नहीं लाया जा सकता क्योंकि उससे सिर भी जल जायगा।

पाठकगण अब सरलतासे समझ सकते हैं कि छूत क्या होती है। हानिकारक जीवोंका स्वस्थ शरीरतक पहुँचना ही छूत कहलाता है। पाठकोंमेंसे कुछने रोटी अथवा अचार अथवा जूतेमें फफूँदन लगते अवश्य देखा होगा। इसका कारण छूत ही समझना चाहिये। फफूँदनको पेड़के सदृश समझना चाहिये क्योंकि यह चल नहीं सकती है। किन्तु यह भी छूत पैदा कर सकती है क्योंकि यदि हम थोड़ी फफूँदन रोटी पर डालदें तो वह रोटीको खाकर सब रोटीको बिलकुल खराब कर डालेगी।

जब थोड़ा दही दूधमें डाल दिया जाता है तो सारा दूध जम जाता है। दहीको यहाँ ऐसा समझना चाहिये जैसे लकड़ीका बुरादा जिसमें कुछ घुनके अंडे हो। यदि यह बुरादा लकड़ीमें छोड़ा जाय तो कुल लकड़ी खा डाली जायगी। इसी प्रकार जहाँ कुछ दही दूधमें छोड़ा कि कुल दूध दही हो जायगा। दूधको दही बनानेवाले जो जीव होते हैं वे कोरी आँखोंसे नहीं देखे जा सकते। इन जीवोंको केवल अणुवीक्षण यन्त्रमें शीशोंके तालों द्वारा देख सकते हैं क्योंकि यह जीव इतने छोटे होते हैं कि आँखोंसे नहीं देखे जा सकते। हम उनको जीवाणु कहेंगे।

पाठक स्वयं कल्पना कर सकते हैं कि क्या कोई ऐसे जीव नहीं हो सकते जो हमारे शरीर तक पहुँचकर वैसी ही आफत मचा सके जैसी दहीके जीवाणु दूधमें करते हैं, या फफूँदनके जीवाणु रोटीमें अथवा जूतेपर। बहुतसे ऐसे जीवाणु होते हैं जो हमारे मृत अथवा जीवित शरीरमें सड़ना और अन्य अन्य रोग उत्पन्न कर सकते हैं। इतना ही नहीं जीवाणु ऐसे विष उत्पन्न कर सकते हैं जो हमारे लिये प्राण-घातक सिद्ध हों। लकड़ी और मनुष्यमें एक अन्तर यह है कि लकड़ीके लिये मिट्टीके तेल जैसी तेज़ दवाका प्रयोग हो सकता है परन्तु हमारा शरीर यह तेज़ दवायें नहीं सह सकता इसलिये छूतकी बीमारियों का इलाज कठिन होता है और शरीरके भीतर ही जीवाणु न मार सकनेके कारण

छूतका फैलना सरलतासे बंद नहीं किया जा सकता । इसलिये छूतसे बचनेके उपायोंकी ओर अधिक ध्यान देना चाहिये ।

बहुतसे कीड़े और जीवाणु हमारे दुश्मन हैं । इनमें और मनुष्य जातिमें लड़ाई होती रहती है। कोई कीड़े हमारे नाज, शक्कर, कपड़े और लकड़ियोंको खाते हैं तो कोई हमारे जानलेवा सिद्ध होते हैं। कोई जीवाणु हमारी रोटी और अन्य खानेकी चीजोंको सड़ाते हैं तो कोई हमारे शरीरमें विष उत्पन्न करते हैं जो हमको तड़पा-तड़पा कर मारते हैं । किन्तु कोई कीड़े और जीवाणु ऐसे होते हैं कि हम उन्हें पालते हैं और वे हमारी बड़ी सेवा करते हैं । लाख और रेशमके कीड़े और दही के जीवाणुओंको हम अपने लाभके लिये पालते ही हैं। रेशमके कीड़े और ताऊनके पिस्सूमें वही अन्तर है जो बैल और साँप बिच्छूमें होता है। उसी प्रकारका अन्तर दहीके जीवाणुओं और हैज़ेके जीवाणुओंमें होता है ।

चेचक इत्यादि छूतके रोगोंमें घरके बहुतसे प्राणियोंमें रोग फैलनेकी सम्भावना रहती है और थोड़ी भी असावधानीसे बड़ी आफत मच सकती है। शरीरके भीतरके जीवाणुओंको नाश करना कठिन है क्योंकि तेज दवाओंसे शरीरको भी हानि पहुँचती है । इस कारण शरीरको जीवाणुओं की छूतसे बचानेका महत्व बहुत बढ़ जाता है । इसलिये यह आवश्यक है कि हम जीवाणुओंको शरीरके बाहर ही मारनेकी विधि जानें ।

यदि अपने शरीरको हम जीवाणुओंके आक्रमणसे बचाना चाहते हैं तो एक भी जीवाणु भीतर न घुसने देना चाहिये । इससे यह अनुमान किया जा सकता है कि छूतकी बीमारियोंमें कितनी सावधानीकी आवश्यकता है ! मिट्टीके तेलसे खटमल मर जाते हैं । ऐसे द्रव्योंको जो कीड़ों को मार सकें कीट-नाशक कहते हैं। इसी प्रकार जो द्रव्य जीवाणुको नाश कर सकते हैं उन्हें जीवाणु नाशक कहते हैं ।

साधारणतः दूध अपने आप बहुत जल्दी फट जाता है क्योंकि उसमें जीवाणुओंका प्रवेश वायुसे हो सकता है। यदि हम दूधको उबाल कर उबाले हुये बरतनमें भर कर उबाले हुये ढक्कनसे ढक दें तो दूध बहुत दिनों तक रखा जा सकता है । इस प्रकार ताप जीवाणुनाशकका एक उदाहरण है ।

जब छूत लग जाती है तो रोग एकदम् तो आरम्भ होता नहीं है । कुछ समय जीवाणुओंकी संख्या बढ़नेमें लगता है । जब संख्या बहुत हो जाती है तो रोगके लक्षण उत्पन्न हो जाते हैं इस छूत लगने और रोग उत्पन्न होनेके बीचके समयको अंकुरावस्था काल कहते हैं। यदि कोई आदमी एक चेचकके मरीजके पास बैठे तो उसे चेचक १० दिन पश्चात हो सकती है क्योंकि दस दिन रोगके पकनेमें लगते हैं। अंकुरावस्था कालमें रोगके हल्के लक्षण जैसे सुस्ती, सिरमें दर्द इत्यादि उपस्थित रह सकते हैं ।

अंकुरावस्था कालके पश्चात् आक्रमण अवस्था आती है । इसमें रोग बढ़ता है, चेचक इत्यादि जिन रोगोंमें दाने निकलते हैं उन रोगोंमें दाने निकल आते हैं। जब रोग एक बार खूब बढ़ लेता है तो फिर घटने लगता है और अन्तमें बिल्कुल घट जाता है । इस अवस्थाको रोग-निवारण अवस्था कह सकते हैं । परंतु कुछ कमजोरी बाकी रह जाती है। इस अवस्थाको बीतरोग्यता कहते हैं । रोगीके अंकुरावस्था काल और बीतरोग्यतामें भी छूत उपस्थित रह सकती है और फैल सकती है ।

कुछ छूतकी बीमारियाँ ऐसी होती हैं जो बहुत शीघ्र फैलती हैं, और उनका समय समय पर आक्रमण होता है जैसे ताऊन, हैजा । बहुत ऐसी होती हैं कि विशेष मौसममें बहुत बढ़ जाती हैं, ताऊन सर्दीमें, मलेरिया अगस्त और सितम्बरमें । कुछ छूतकी बीमारियां ऐसी होती हैं जिनका फैलाव सदा एकसा चला जाता है जैसे क्षय रोग । कुछ छूतकी बीमारियाँ ऐसी होती हैं कि शीघ्रतासे फैलनेके कारण कुल दुनियामें फैल जाती हैं जैसे जंगी बुखार । कुछ ऐसी होती हैं जो इतनी शीघ्र नहीं फैल सकती परन्तु अवसर पाकर लगभग सब जगह फैल सकती हैं, जैसे ताऊन, चेचक, हैजा। कुछ छूतकी बीमारियाँ केवल गरम देशोंमें पाई जाती हैं जैसे मलेरिया, हाथी पांव । कुछ छूतकी बीमारियाँ विशेष देशोंमें सीमाबद्ध रहती हैं जैसे काला ज्वर बङ्गाल और आसाममें ।

जीवाणुनाशक और इनका उपयोग

अब हम इन दुश्मनोंको मारनेकी विधियाँ बतलाते हैं :—

जीवाणु नाशक उसको कहते हैं जो जीवाणुओंको नष्ट डाल सकें—पानीके उबलनेकी गरमी पर कोई जीव जीवित नहीं रह सकता। इसलिये पर्याप्त ताप एक जीवाणुनाशक है।

जीवाणुनाशक पदार्थ तीन श्रेणियोंमें विभक्त किये जा सकते हैं।

१—प्राकृतिक जीवाणुनाशक

२—भौतिक जीवाणुनाशक

३—रासायनिक जीवाणुनाशक

१—प्राकृतिक जीवाणुनाशक

शुद्ध वायु और धूपमें अधिकांश जीवाणु पहले कमजोर हो जाते हैं और फिर मर जाते हैं।

हवा चलनेसे शुष्कता उत्पन्न होता है जो जीवाणु-नाशक है। इस कारण कपड़ोंको धूपमें डालना अत्यन्त लाभकारी है। परन्तु किसी भीषण छूतको दूर करनेके लिये हम इन प्राकृतिक जीवाणुनाशकोंपर बहुत निर्भर नहीं हो सकते क्योंकि इनका प्रभाव धीरे-धीरे होता है।

२—भौतिक जीवाणुनाशक

ताप बड़ी ही सुगमतासे प्राप्त हो सकता है।

तापके उपयोगकी भिन्न-भिन्न विधियाँ यह है :—छूत लगी वस्तुको अग्निमें या मिट्टीके तेलसे जलाना—यह विधि केवल उन्हीं वस्तुओंके लिये उपयोगमें लाई जा सकती है जो बहुत दामकी न हो या जल न सकें। छूत लगी वस्तु पर पहिले मिट्टीका तेल छिड़क देना चाहिये जिससे छूत बिलकुल निकल जाय। हिन्दुओंमें अग्निसे पवित्र करनेकी विधि बहुत प्राचीन है। यह विधि बर्तनोंके लिये बड़ी उप-युक्त है क्योंकि हमारे घरोंमें बरतन साधारणतः मिट्टी, पीतल लोहेके बने होते हैं। यदि फर्शपर मल, मूत्र, वमन गिर जाय तो भी मिट्टीका तेल डालकर, इन गन्दे द्रवोंको वहीं पर जला देना चाहिये।

सस्ते कपड़े, चारपाईके बान इत्यादिको भी यदि दामों का ख्याल न हो तो छूत लग जानेपर जला दे सकते हैं अन्यथा नीचे लिखे अनुसार उबाल सकते हैं।

उबालना—यह विधि कपड़ोंके लिये बड़ी उपयुक्त है। थोड़ी देर तक कपड़ोंको पानीमें उबालनेसे छूत मर जाती है।

यदि कभी खानेपीनेकी वस्तुओंमें भी छूतका भय हो तो खूब गरम करने या उबालनेसे शुद्ध की जा सकती हैं। इसी कारण जब शहरमें कहीं हैजा या मोती ज्वर हो तो जलको या दूधको उबाल लेना चाहिये।

गरम हवा दिखाना—हम इस विधिको केवल पुस्तकों-के लिये उपयुक्त समझते हैं। पुस्तकोंको पर्याप्त समय तक गरम हवा दिखाना चाहिये। यहाँ खयाल रखना पड़ता है कि पुस्तकोंको हानि न पहुँचने पाये।

३—रासायनिक जीवाणुनाशक

रासायनिक जीवाणुनाशक अर्थात् जीवाणुनाशक दवायें तीन समुदायोंमें विभक्त हो सकती हैं।

१—घन (ठोस)

२—द्रव

३—वायव्य

ठोस जीवाणुनाशक

चूना—यह सब जगह मिल सकता है। जिस कमरेमें रोगी रहा हो उसकी दीवालोंकी पवित्रताके लिये यह अत्यन्त लाभकारी है। कमरेकी दीवालोंको पहिले पानीसे खूब रगड़ रगड़के धोना चाहिये फिर कमरेकी पोताई करनी चाहिये।

ताजा चूना अधिक जीवाणु नाशक होता है। इसलिये रोगीके कमरेकी पुताईके लिये ताजा चूने का उपयोग करना चाहिये।

साबुन—इससे चर्मकी सफाई खूब होती है, इसलिये यह एक बड़ा अच्छा जीवाणुनाशक है। परन्तु इसमें उप-स्थित जीवाणुनाशक शक्ति बहुत कम तीव्र होती है इस-लिये इसकी जीवाणुनाशक शक्ति पर बहुत निर्भर नहीं हो सकते। इसलिये जब कभी छूतकी बीमारीका रोगी छुआ जाय तो पहिले हाथ साबुनसे धोने चाहिये और फिर हाथों-को कमसे कम ५ मिनट तक लाल दवाके घोल अथवा लाईसोलके घोलमें डाले रहना चाहिये।

लाल दवाको अंग्रेजीमें पोटासियम परमैंगनेट कहते हैं। यह दवा बैंजनी रङ्गके दानोंके रूपमें बाज़ारमें बिकती है। इसके तेज घोलसे हाथ रङ्ग जाते हैं किन्तु इसमें जीवाणुनाशक शक्ति बहुत होती है। जब इसकी शक्ति समाप्त हो जाती है तो इसका रङ्ग हरा हो जाता है। यों तो एक लोटे पानीमें दो चार दानेही पर्याप्त होंगे परन्तु हैज़े, मोतीज्वर इत्यादि भीषण रोगोंमें अपने हाथ अथवा रोगीको धोनेमें तीव्र घोलका ही प्रयोग करना चाहिये और हाथ रंगनेका विचार न करना चाहिये क्योंकि उससे कोई हानि नहीं हो सकती इसलिये लोटेमें १५ या २० दाने तक छोड़ सकते हैं।

इस दवासे मुँह साफ करनेके लिये कुल्ले भी किये जा सकते हैं और जखम भी धोये जा सकते हैं।

एक लोटेमें एक दाना छोड़नेसे पानी भी रोगहीन हो जाता है और वह पिया जा सकता है। यदि उबला हुआ पानी पीनेके लिये न मिल सके तो यही उपयोगमें लाना चाहिये। आधी छटांक लाल दवा कुएंमें छोड़नेसे कुएंका पानी भी साफ हो जाता है।

द्रव जीवाणु नाशक

लाइसौल—यह हाथ और जखम धोनेके लिये अच्छी दवा है। १ चम्मच आधा सेर पानीमें इस्तेमाल करनी चाहिये।

फिनाइल—यह फर्श धोने और पखाना सफा कराने और छूतकी बीमारियोंके मल मूत्रमें जीवाणुओंको नाश करनेके लिये अच्छी दवा है।

सिलीन—इसका भी इस्तेमाल वही है जो कि फिनाइल का है।

वायव्य जीवाणु नाशक

गन्धकके जलनेसे एक विशेष प्रकारकी वायु पैदा होती है जो जीवाणुनाशक है। कमरेकी दीवार फर्श इत्यादि तर होने चाहिये और सब दरवाजे, खिड़कियाँ, और रोशनदान आदि हवा बाहर जानेके सब रास्ते बन्द होने चाहिये।

गन्धकका प्रभाव पूरा हो इसलिये यह आवश्यक है कि वायुमें कुछ वाष्प उपस्थित हो। इसलिये उस कमरेमें एक खुले बर्तनमें कुछ खौलता पानी आगपर रखा हुआ छोड़ देना चाहिये।

एक हजार घनफुट के लिये १ सेर गन्धककी आवश्यकता पड़ती है। अर्थात् ३ गज लम्बे, ३ गज चौड़े और ४$\frac{1}{2}$ गज़ ऊँचे कमरेके लिये एक सेर गन्धककी आवश्यकता पड़ेगी।

कमरेमें खटमल और ताऊनके पिस्सुओंको नाश करनेके लिये भी यह काममें लाई जा सकती है।

बिस्तर इत्यादिको साफ़ करके फिर गन्धक जलाना चाहिये।

कीट नाशन

सब प्रकारके कीड़े भी आगमें और उबलते पानीमें मर जाते हैं। मिट्टीके तेलका वर्णन हम पहिले ही कर चुके हैं।

निम्न लिखित मिश्रण तैयार कर लेना चाहिये।

मिट्टी का तेल	८२ भाग
साबुन	३ भाग
पानी	१५ भाग

साबुनको गरम पानीमें घोल लीजिये और फिर मिट्टी के तेलमें मिलाकर खूब मिलाइये। इस मिश्रण में २० गुना पानी मिला कर उपयोग में लाइये।

तारपीनका तेल भी कीट नाशक है किन्तु यह बहुत मंहगा पड़ता है। यह मिश्रण ताऊनके पिस्सुओंके मारनेके लिये बहुत उपयोगी है।

कीट नाशनमें नीमकी पत्ती भी जलानेसे बहुत सहायता मिलती है।

—डा० रामचन्द्र

जीवन संग्राम

यदि प्रकृतिका बारीकीसे अवलोकन किया जावे, तो मालूम होगा कि इस पृथ्वीपर रात-दिन प्रत्येक जीवको जीवन-संग्राम करना पड़ता है और यहां अपना निर्वाह वही कर सकता है जो इस संग्राममें जय पाता है। मनुष्य, प्राणियों तथा वनस्पतियोंको अपने पेट भरने और अपनी रक्षा करनेके लिए अन्य जीवों तथा प्राकृतिक शक्तियोंका सामना करना पड़ता है। कोई अपनी बुद्धिके सहारे, कोई

शारीरिक बलकी सहायतासे और कोई प्रकृतिके अनुसार अपना रहन सहन बदलकर अथवा अन्य किसी प्रकारसे युद्धमें समर्थ होता है।

इस पृथ्वीकी रचनामें कुछ ऐसी व्यवस्था ज्ञात होती है, कि प्रत्येक जीव अथवा वनस्पतिकी घातमें कोई न कोई जीव अथवा वनस्पति बैठा ही रहता है। ढोर वनस्पतियों-को खाकर जीते हैं, मांसाहारी प्राणी ढोरोंको खा जाते हैं, चिड़ियां कीड़े मकोड़ोंकी ताकमें रहती हैं। जिसमें आत्म-रक्षाका बल नहीं है, उसका नाश होता है और जो बली है वह अपनी सत्ता जमा लेता है।

सिंह, व्याघ्र, चीते आदि हिंसक प्राणियोंका बल अधिक होता है और उनके पास दांत नख-रूपी तीक्ष्ण हथियार हैं। बिल्लीके पास यह हथियार तो हैं, परन्तु बल कम है। भाग्यवश उसमें पेड़, दीवाल आदिपर चढ़ने-की योग्यता है। इसलिये वह ऐसे प्राणियोंको पकड़कर खा सकती है, जो सिंह, व्याघ्र आदिसे आसानीसे बच जाते हैं। कुत्तेके दांत और नख कम पैने होते हैं, पर उसमें सूंघनेकी शक्ति अधिक होनेके कारण वह अपने शिकारका पीछा बहुत दूर तक कर सकता है। सिंह, व्याघ्र आदिकी घ्राणेन्द्रिय क्षीण होती है, और शिकारके ओटमें होते ही वे बेकाम हो जाते हैं। परन्तु कुत्ता कोसों तक पीछा करता जा सकता है।

इस सृष्टिकी व्यवस्था इस प्रकारकी है कि बलवान जीवोंमें कुछ न कुछ न्यूनता अवश्य ही रहती है, जिसके कारण कम बलवान जीवोंको बचकर भागनेका सुभीता हो जाता है। इसके सिवा बलहीनोंमें कुछ न कुछ गुण ऐसे रहते हैं जिनकी सहायतासे वे अपनी रक्षा कर लेते हैं। लंगूर और बंदर एक पेड़से दूसरेपर कूद कर दुश्मनसे पीछा छुड़ाते हैं, हिरन तेज़ीसे भाग और उछल कूदकर बच जाते हैं, भैंसोंमें, आपत्ति आनेपर चक्रव्यूह रचकर एक दूसरेकी सहायतासे शत्रुका सामना करनेकी शक्ति है। बकरी गाय ऊंट आदिसे कुछ नहीं बन सकता, तो वे मनुष्यके सहयोगी हो उसकी रक्षाके पात्र बन जाते हैं। चिउंटियों, बरैय्यों और मधुमक्षिकाओंके पास मुख वा डंक रूपी तलवारें अवश्य हैं, पर अधिक कामकी नहीं। यदि वे अपना जीवन सुखपूर्वक व्यतीत कर लेते हैं तो उसका कारण यही है कि उनकी बुद्धि शरीरके प्रमाणसे बहुत ही प्रबल है। वे अग्रसोची होती हैं और परस्पर सहायता निष्कपट मनसे देती हैं। मनुष्यकी देह किसीको हानि पहुँचाने अथवा अपनी रक्षा करनेके लिये प्रायः अक्षम है। यदि एक काला चींटा भी बिगड़ कर काटने दौड़े तो उसे पीछे हटना पड़ता है। परन्तु उसमें बुद्धिका ज़ोर इतना ज़्यादा है, कि वह सिंह हाथी सरीखे सूक्ष्म प्राणियोंको वशमें कर लेता है।

वनस्पतियोंमें भी जीवन-संग्रामकी होड़ाहोड़ जारी है। उनमें बहुत कम ऐसी हैं, जो दूसरे जीवोंकी घातमें रहती हैं। हाँ, दो चार प्रकारकी वनस्पतियाँ ऐसी होती हैं, जो कीड़ों मकोड़ोंको पत्तोंमें कैद कर हज़म कर जाती हैं। परन्तु उनका सारा प्रयत्न पशु पक्षियों, कीड़ों मकोड़ों आदि-से बचनेका होता है। इतना ही नहीं वरन् उन्हें आपसमें भी युद्ध करना होता है। ज़बरदस्त पेड़ जैसे पीपल बड़ आदि, धरतीके भीतर गहरी जड़ें लेजाकर खाद्य और पानी चूस लेते हैं, जिस कारण आस पासके निर्बल पौदे भूखे प्यासे मर जाते हैं। यही कारण है कि उनके पास घास पात तक नहीं टिकने पाती। बगीचोंमें जो पेड़ लगाये जाते हैं, वे बहुधा कोमल प्रकृतिके होते हैं। माली कृत्रिम सहायता देकर खुरपी फावड़ेकी सहायतासे बलवान वन-स्पतियोंको निकाल बाहर कर और शत्रुओंसे उनकी रक्षा कर उन्हें पनपाता है। परंतु इस सहायताका दुष्परिणाम यह होता है, कि वे जीवन युद्धमें टिकने योग्य और भी कम हो जाते हैं। जब तक मालीरामकी सहायता मिली कार-खाना ठीक चलता रहा, पर ज्योंही उसकी मदद बन्द हुई सूक्ष्म वनस्पतियोंने निर्बल पौदोंको मार मिटानेका प्रबल उद्योग शुरू किया। घासके बीचमें यदि अन्य किसी वनस्पतिका बीज पड़ जावे तो आत्मरक्षाके लिए वह भरपूर उस बीजके नाश करनेकी कोशिश करेगी, क्योंकि वह जानती है कि यदि उसका पेड़ बढ़ गया तो अपनी छाया डालकर धूप रोक लेगा और गहरी जड़ें डाल आसपासका पानी खींच लेगा। यही कारण है कि जिस जगह घास पात अधिक होती हैं, वहां अन्य वनस्पति पनपने नहीं पाती।

यह तो घास और अन्य वनस्पतियोंका झगड़ा हुआ। अब यह देखना चाहिये कि उनका आपसमें व्यवहार कैसा

होता है। वहाँ भी वही कुटिल नीति देखनेमें आती है, 'मरेंगे मारेंगे, अपने जीते जी दूसरेका पाया न जमने देंगे'। जब यूरोप निवासी अमेरिका गये तो एक एक करके कोई सवासौ प्रकारकी घासोंको यूरोपसे ले गये और वहाँ कृत्रिम सहायता देकर उन्हें लगा दिया। उस देशकी प्राचीन घासोंको मुश्किल पड़ गई और उन्हें बरसों युद्ध करना पड़ा। जिस तरह यूरोपसे गये हुए मनुष्योंने वहाँ के आदिम निवासियोंको मार ढकेल कर प्रायः नष्ट कर दिया है, उसी प्रकार यूरोपसे लाई घासोंने भी वनस्पति संसारमें जय पाकर वहाँकी असली घासोंको जड़मूलसे निकाल दिया है और सारे अमेरिकामें अब केवल यूरोपीय घास ही मिलती है। इसी तरह कोई ढाई सौ प्रकारकी घासें यूरोपसे ले जाकर न्यूज़ीलैण्ड द्वीपमें लगाई गईं। नतीजा यह हुआ कि उस द्वीपकी आदिम घासोंका अब नाम निशान तक नहीं रहा। असली घासोंमें सक्षमता कम थी, सो अपने घरमें भी पड़े रहनेको जगह न मिली! जीवन-संग्राममें अक्षम प्राणियों तथा वनस्पतियोंका गुज़ारा नहीं। उन्हें संसार भरमें रहनेको ठौर नहीं। सार यही है कि यदि इस पृथ्वीपर कोई रहना चाहता है तो वह सक्षम बने, नहीं तो उसकी ख़ैरियत नहीं।

अब ज़रा यह देखना चाहिये कि वनस्पति पशु-पक्षियों तथा कीड़ोंसे अपनी रक्षा करनेका प्रयत्न किस प्रकार करते हैं। किसी किसीके पास काँटे-रूपी तलवारें रहती हैं जैसे नागफनी, बबूल। किसी किसीकी तलवारें कम पैनी परन्तु फिर भी उपयोगी रहती हैं जैसे बेर, नींबू, गुलाब, भटे आदिमें। अन्य कई पौदोंमें या तो विकारी दूध रहता है (जैसे अकौवेमें), अथवा उनके पत्ते ऐसे कड़वे होते हैं कि जिन्हें एक बार चखकर ढोर फिर दूरसे ही प्रणाम करते हैं। घासमें इस प्रकार बचनेका कोई उपाय नहीं, इसलिये ढोर उसे आनन्दसे खाकर अपने पेट भरते हैं। यदि उसमें सजीवतारूपी भारी गुण न होता तो वह न जाने कबकी नष्ट हो गई होती। उसकी जड़ें ऐसी बलवान होती हैं कि खाने काटनेके दो चार दिन पीछे वह फिर उग आती है।

फिर भी यह कहना पड़ता है कि जीवन-संग्राममें वनस्पतियोंको किसी न किसी प्राणीका भक्ष्य बनना पड़ता ही है। यदि पशुओंसे बचाव हो भी जावे, तो कीड़े पतंगों से कोई चारा ही नहीं। वे काँटोंके बीचमें घुसकर पत्तोंके खानेमें समर्थ हैं। फिर मनुष्यके हृदयमें यदि दयाका सागर उमड़ आवे और वह मांस भक्षण छोड़ दे, तो भी वनस्पतियोंपर उसका दाँत लगा ही रहेगा। वह अपनी बुद्धिके कारण नागफनीके काँटोंको निकालकर, नीमके कड़वे पत्तोंका उपयोग ढूंढ़कर अथवा अकौवेके विकारी दूधके लाभ जानकर उनको हानि पहुँचानेका प्रयत्न किया करता है। वह अन्न और फल खाकर पौदोंके बीज नष्ट करता है, भाजी तरकारी खाकर उनकी जान लेता और बीज ख़राब करता है। चिड़िया उनकी कलियाँ खराब करती हैं; छोटे-छोटे कीड़े पत्तोंको खाकर उनमें छेद करते हैं और उनकी जड़ें और बीजोंको भी कुतर डालते हैं। पशु आकर पत्ते चर जाते हैं चूहे आकर बीज जड़ आदि कुतर खाते हैं। परन्तु इनमें सजीवता अधिक है, इसी कारण उनपर रात-दिन भयंकर नादिरशाही होनेपर भी वे बची रहती हैं। फिर प्राणियोंके परस्पर संग्रामके कारण भी वनस्पतियों-को सहायता मिल जाती है। जहाँ उनको खानेके लिये कीड़े मकोड़े बढ़े कि चिड़ियों का आना शुरू हुआ और एक एक चिड़िया प्रतिदिन दो सौ तीन सौ कीड़े स्वाहा कर जाती हैं।

प्रकृतिकी यही महिमा है कि उसने प्रत्येक वस्तु तोल-तोल कर परस्परावलम्बनके साथ रक्खी है, और ऐसा प्रबन्ध भी कर दिया है कि जो हानि करने आता है, वह अपने भक्ष्यकी पुनरुत्पत्तिमें सहायता भी दे जाता है। ढोर यदि चरने आवेगा तो गोबर या लीद करके वनस्पतियोंको उत्तम खाद दे जावेगा। कीड़े मकोड़े आदि यदि पौधोंको हानि पहुँचाते हैं, तो उनका बीज एक स्थानसे दूसरे स्थान-पर ले जाकर पुनरुत्पत्तिमें सहायता देते हैं। चिड़ियाँ फलोंको खाकर नष्ट करती हैं, तो अनेक कीड़ोंको खाकर पेड़की रक्षा भी करती हैं। फिर जो प्राणी हिंसक हैं उनकी सन्तति कम होती है। जो कम बलवान हैं उनकी संतति कुछ अधिक और जो निपट निस्सहाय हैं उनकी संतति ढेर होती है। सिंहनीके बहुत समयमें और एकबार एकही बच्चा होता है। बिल्ली, कुतियाके कम समयमें कई बच्चे हो जाते हैं; बकरा बिचारा हलाल होनेको ही पैदा होता

है, इसलिए उसकी संतति भी खूब बढ़ती है। यदि उससे भी कम सबल प्राणियोंको देखें तो और भी अधिक बढ़ती देखते हैं। चूहों, पक्षियोंकी बढ़तीमें कोई रुकावट न पड़े, तो उनकी संख्या बढ़ते क्या देर लगती है? फिर मच्छड़, मक्खी, कीड़ों आदि बलहीन प्राणियोंकी ओर देखिये। एक समयमें उनकी मादा तीन सौसे पाँचसौ तक अंडे रखती है! क्योंकि पैदा होनेके उपरान्त उनका नाश भी बहुत होता है।

इस प्रकार इस पृथ्वीपर जीवन-संग्राम चल रहा है, इसके अवलोकन करते रहनेसे मनुष्यको अनेक गूढ़ शिक्षाएँ मिलती हैं। इस दुनियामें अक्षम प्राणीका गुज़ारा नहीं है। कभी न कभी उसका या उसके वंशजों का नाश होगा ही। ऐसा होता आया है। अनेक प्राणियों तथा वनस्पतियोंकी जाति ही नष्ट हो चुकी है और भविष्यमें होंगी। मनुष्य सबसे ऊँचे दर्जेका प्राणी है, उसमें सजीवता नीच प्राणियोंके समान नहीं हो सकती। इसलिये उसे सक्षम होना चाहिये, बुद्धिसे, शरीरसे और सामाजिक व्यवस्थासे। मनुष्यकी जो जाति इस प्रकार अपनेको सक्षम न बनावेगी वह भी किसी न किसी दिन मर मिटेगी इसमें सन्देह नहीं। मनुष्य योनिकी अक्षम जातियां भूतकालमें नाशको प्राप्त हुई हैं, इस समय प्राप्त हो रही हैं और भविष्यमें प्राप्त होंगी।

छोटे छोटे प्राणियोंके उद्योग

भेष बदलने तथा अभिनय करनेवाले कीड़े

जीवन-संग्रामकी दृष्टिसे छोटे छोटे कीड़े मकोड़ोंके जीवन और उनकी शरीर-रचना देखनेसे केवल आनन्द ही नहीं होता वरन ईश्वरकी अद्भुत लीला देखकर उसके प्रति असीम भक्ति और श्रद्धा पैदा होती है। प्राणियोंकी शरीर-रचना उनके निर्दिष्ट जीवनके अनुकूल की गई है और जिसमें क्षमता कम है उस प्राणीका जीवन इस संसारमें सुखमय नहीं हो सकता। क्षमता कई प्रकारकी होती है। मानसिक बल, शारीरिक बल, परस्पर सहायता देनेकी शक्ति, आबहवाका परिवर्तन सहनेकी शक्ति, आघात सहनेकी शक्ति, अर्थात् सजीवता और उपयोगिता।

तरह तरह के उद्योग

अब कीड़े मकोड़ोंके अवलोकन करनेसे मालूम होता है कि इनमें भोजन प्राप्त करने और आत्मरक्षा करनेके विचित्र ढंग हैं। खटमलका शरीर गोल और चपटा इसलिए होता है कि काम पड़ने पर निवाड़ और पाटियोंके बीचमें बिना कठिनाईके छिप सके। उनके शरीरसे दुर्गन्धि निकलनेके कारण वह हिंसक प्राणियोंसे भी बच जाते हैं। संकीर्ण स्थानोंमें छिपनेवाले कीड़ोंमें शरीर खटमलके समान चपटे रहते हैं। बीटिल वर्गकी दो तीन उपजातियोंके कीड़ों के शरीरसे ऐसा खराब तेल निकलता है कि उसके लग जानेसे फफोले पड़ जाते हैं। उनके तेलके भयसे उनको खानेकी इच्छा कोईभी हिंसक प्राणी नहीं करता। एक दूसरे वर्गका बिटिल होता है जो शत्रुके पास आते ही बंदूकसी छोड़ता है, जिसका धुंआ शत्रु की आँखोंमें घुस उसे बिकल और बेकाम कर देता है। इतनेमें वह बीटिल पलायमान हो जाता है। कोई कोई इल्लियां अपने ही विष्टासे अपने शरीरको पोत शत्रुओंको भड़काती हैं। एक इल्लीके शरीरपर सेईके समान बाल होते हैं जिन्हें भयके समय खड़ाकर अपनी रक्षा करती है।

मक्कार कीड़े

अनेक पाठकोंके देखनेमें आया होगा कि कम्बल नामका कीड़ा, किसीका हाथ लगते ही, अपने शरीरको गुड़मुड़ी कर गोल बन जाता है। इसी प्रकार जिंजाई नामक लाल कीड़ा, जो बरसातके आरम्भमें दिखाई देता है, भयका संकेत पाते ही गुड़मुड़ी हो निश्चल हो जाता है। इसका अभिप्राय क्या है? एक तो यह कि उस रूपमें शरीरके कोमल अंग नीचे होकर हानिसे बचते हैं और दूसरे यह कि उसे निश्चल देख शत्रु यह समझकर कि वह मर गया है उसका पीछा छोड़ देता है। बीटिल वर्गका एक दालनुमा कीड़ा होता है। उसकी चालाकी भी तारीफ़ करनेके लायक है। जब वह किसी पत्ते अथवा डालपर बैठा हो उस समय यदि कोई उंगली भर उठा दे तो वह तुरन्त सिकुड़ कर और दालका रूप धारण करके सफ़ाईसे नीचे गिर जाता है, मानो कोई दाना टपक पड़ा। धरतीपर गिरते ही वह घास पातका आश्रय ले इस धूर्तता से छिप जाता है कि उसका लगाना प्रायः असम्भव होता है। यह तीनों प्रकारके कीड़े मक्कारी नहीं करते तो क्या करते हैं?

मुद्रक तथा प्रकाशक—विश्वप्रकाश, कला प्रेस, प्रयाग।

विज्ञानं ब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते ।
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति ।। तै० उ० ।३।५।

भाग ५६	मिथुन, सम्वत् २००१ । जून १९४४	संख्या ३

सूर्यकी गरमीका रहस्य

[लेखक—प्रो० चन्दीप्रसाद, बनारस]

सूर्यमें यदि अग्नि जलती है तो वह किस प्रकारकी है ? उसमें लकड़ी या कोयला है अथवा कोई ऐसा पदार्थ है जिसे हम लोग जानते नहीं। यह अग्नि हम लोगोंसे ९ करोड़ मीलकी दूरी पर है और हज़ारों लाखों वर्षोंसे इसी प्रकार जल रही है।

इतिहास और भूगर्भविज्ञानके वर्णनसे प्रतीत होता है कि यह अग्नि न तो अधिक घटती है न बढ़ती है। यदि सूर्य कोयलेका एक पिण्ड होता तो ४-५ हज़ार वर्षोंमें ही जल कर राख हो गया होता। पर प्रश्न उठता है कि ४-५ हज़ार वर्ष ही क्यों कहते हैं ४-५ लाख वर्ष क्यों नहीं कहते। इसकी संभावनाका कारण यह है कि पहले हम लोग इसका अनुमान करें कि यदि सूर्यको एक कोयलेका पिण्ड मानलें तो उसके जलनेसे कुल कितनी शक्ति निकलेगी। १ ग्राम (लगभग १ माशा) कोयलेके जलनेमें ३×१०^{११} अर्ग (ergs) शक्ति निकलती है। विद्वानोंने गणनासे सूर्यकी मात्रा २×१०^{३३} ग्राम निश्चय की है। इस मात्राके अनुसार सूर्यके जलनेसे ६×१०^{४४} अर्ग शक्ति ही निकल सकती है। सूर्यसे पृथ्वीपर प्रति वर्ग सेन्टीमीटर पर १३५०००० अर्ग शक्ति प्रति सेकेंड लम्बवत् आती है। इस प्रकार सूर्य पिण्डसे सब दिशाओंमें प्रति वर्ष $१\cdot२ \times १०^{४१}$ अर्ग शक्ति बिखरनी चाहिये। जिससे यह निष्कर्ष निकला कि सूर्यकी कुल शक्ति $(६ \times १०^{४४}) \div (१\cdot२ \times ^{४१}) = ५ \times १०^{3} = ५०००$ वर्षमें निकल जायगी। इस गणनामें यह मान लिया गया है कि कोयला जलकर कारबन द्विओषिद बन जाता है। परन्तु सूर्य ५००० वर्षसे भी अधिक समयसे शक्ति दे रहा है।

विज्ञानकी कई गणनाओंसे सूर्यकी वर्तमान आयु २ अरब वर्ष मानी जाती है जिसमें सूर्यसे $१\cdot\,\cdot \times १०^{५१}$; अर्ग

प्रति वर्षकी दरसे अब तक २·४ × १०^{५०} अर्ग शक्ति निकल चुकी होगी जिसके लिये (२·४ × १०^{५०}) ÷ (३ × १०^{११}) ग्राम कोयलेकी आवश्यकता होती है। परन्तु सूर्यकी मानी हुई मात्रा २ × १०^{३३} ग्राम (२·४ × १०^{५०}) ÷ (३ × १०^{११}) का चार लाखवाँ हिस्सा ही है। इससे प्रकट है कि सूर्य केवल कोयलेका ही पिण्ड नहीं है और इसकी जलनेवाली वस्तु कोयला या लकड़ी नहीं है।

दूसरा प्रश्न यह उठ सकता है कि क्या सूर्यकी शक्ति रेडियमधर्मी पदार्थ जैसे यूरेनियम अथवा थोरियमके खंडनसे निकलती है क्योंकि इन पदार्थोंके खंडनसे शक्ति बहुत दीर्घकाल तक निकलती है। परन्तु सूर्यके अवलोकनसे यह मालूम होता है कि यह वस्तुएँ उसमें अधिक मात्रामें नहीं हैं क्योंकि इतनी मात्रासे जो शक्ति सूर्यसे निकलेगी वह इसकी वास्तविक विकरित शक्तिसे बहुत कम होगी। पृथ्वी पर पाई जानेवाली साधारण वस्तुएँ सूर्यमें बहुत देख पड़ती हैं। उनकी दीप्ति (luminosity) से यह जान पड़ता है कि इन्हीं पदार्थोंके कुछ परिवर्त्तनसे ताप पैदा होता है। पृथ्वी और सूर्यमें यह अन्तर भले ही है कि पृथ्वी ठंडी और सूर्य बहुत गर्म। सूर्य का ऊपरी पृष्ठ ६०००° सेन्टिग्रेड गर्म है। जैसे २ उसके केन्द्र के पास जायँ तापमान अधिक होता जायगा।

विलायतके ज्योतिषाचार्य सर आर्थर एडिंगटन (Sir Arthur Eddington) का अनुमान है कि सूर्यके केन्द्रका तापक्रम दो करोड़ (२ × १०^{७}) डिगरी सेन्टीग्रेड होगा। इन दोनोंके मध्यमें प्रायः पाँच लाख डिगरी सेन्टीग्रेड होगा।

६०००° सेंटीग्रेड तापक्रम पर वस्तुएँ किस अवस्थामें हैं? इतने ताप पर तो मुश्किलसे गलने वाली वस्तुएँ जैसे प्लेटिनम या कारबन भी न केवल गल जायँगी बल्कि भाप बन कर उड़ जायँगी। इससे यह सिद्ध होता है कि सूर्यमें सब वस्तुएँ भापकी अवस्थामें पायी जाती होंगी। इस ताप पर सब यौगिक पदार्थ विच्छिन्न हो जायँगे और सब तत्त्व वायवीय अवस्थामें रहेंगे। लकड़ी या कोयला जब भट्टी में छोड़ा जाता है जहाँ का तापक्रम ८००° सें० या १०००° सें० हो तो वह स्वयम् जलने लगता है। क्या यह सम्भव नहीं है कि सूर्यके भीतर जहाँका तापक्रम २ करोड़ डिगरी सेंटीग्रेड है सब वस्तुएँ केन्द्रीय (nuclear) अवस्थामें जलती रहती हों?

आइये हम लोग एक और नयी बातके विषयमें कुछ अपने अनुभव देखें। सन् १८२८ ई० में राबर्ट ब्राउनने जो लंदनके अजायबघरके पेड़ पौधोंके विभागके संरक्षक थे पहले पहल द्रव्यमें लटके हुए छोटे २ कणोंकी गतिको अणुवीक्षणयन्त्र (microscope) से देखा और बताया कि सब कण निरन्तर विषम गतिसे अविराम चला करते हैं। कुछ काल उपरान्त फ्रांसके भौतिक शास्त्राचार्य जीन्स पेरिन (Jeans Perin) ने इनकी गतिको नापा और यह अनुमान किया कि साधारण तापक्रम पर अर्थात् २०° से० पर अणुओंकी गति शक्ति ६·३ × १०^{-१४} अर्ग है। जर्मनी के भौतिकशास्त्राचार्य ओटो स्टेइन (Otto Stein) ने इसके आधार पर एक ऐसा यंत्र बनाया जिससे अणुओंकी गति नापी जा सकती है। इस यन्त्रके द्वारा यह मालूम किया गया कि सोडियम तत्वके परमाणुओंकी गति ५००° सें० तापक्रम पर २००० मील प्रति घंटा है। हल्के तत्वोंके परमाणु तो और तीव्र गतिसे चलते होंगे। हाइड्रोजनके परमाणुकी गति कमरेके तापक्रम पर साढ़े पाँच हज़ार मील प्रति घन्टा है। इस हिसाबसे २ करोड़ डिगरी पर परमाणुओं में ४·६ × १०^{-९} अर्ग शक्ति होगी।

सन् १९२९ ई० में राबर्ट एटकिन्सन और फ्रिट्ज़ हाउटरमेन्स (Robert Atkinson and Fritz Houtermans) ने बताया कि अधिक तापक्रम पर तापीय-गतिकी गतिशक्ति इतनी तीव्र होगी कि वह विषम गतिशील परमाणु दूसरे परमाणुओंके केन्द्रों पर प्रहार कर उसे तोड़नेमें उसी प्रकार समर्थ होगा जिस प्रकार परमाणुओंके केन्द्रोंको प्रयोगशालामें अन्य प्रहारों द्वारा तोड़ा जाता है। हमारे वेधशालाओंमें इस केन्द्रके तोड़नेकी शक्ति के लिये प्रायः १०^{-८} अर्गकी आवश्यकता होती है, और तापीय गतिकी गतिशक्ति Kinetic energy of thermal motion ४·६ × १०^{-९} अर्ग शक्ति होती है। परमाणुओंके खंडन करनेमें साधारणतया वेधशालामें प्रहारकी रीति ऐसी होती है जैसे कि एक पंक्तिके सिपाही अपने किरचोंसे एक बड़ी भीड़ पर आक्रमण करते हैं। तत्वगति

की लड़ाईमें मानों एक भीड़के सब व्यक्ति परस्पर चारों ओर लड़ते हैं। ऐसी लड़ाईमें आघातपर आघात लगनेसे केन्द्रके खंडनमें बहुत प्रभाव पड़ता है इतने। अधिक तापक्रम पर केन्द्र भी नंगे अस्त्रहीनसे हो जाते हैं अर्थात् उनका ऊपरी एलेक्ट्रानिक कवच हट जाता है और बिना कवचवाले केन्द्रोंके संघात से भयंकर परिणाम निकलता है।

उदाहरणके लिये हाइड्रोजन और लीथियमका एक मिश्रण लें और उसको अधिक तापक्रम तक गर्म करें तो उनके आपसके संघर्षसे दोनों जलकर हीलियमकी राख हो जायंगे। इस क्रियामें जो शक्ति पैदा होगी वह इतनी अधिक होगी कि तापक्रम देर तक घटने न पायगा। इसके लिये केवल इसी बातकी आवश्यकता है कि एक बार गरम करके क्रिया आरम्भ कर दी जाय। १ ग्राम मिश्रण जिसमें लीथियम, हाइड्रोजन से ७ गुना है, २.२×१०^{१८} अर्ग अन्तर-परमाणुक शक्ति पैदा करता है। परन्तु वेधशालामें जो सबसे अधिक तापक्रम व्यवहार करते हैं वह ३ या ४ हज़ार डिगरी सें० के लगभग होगा। इतने तापक्रम पर यह क्रिया इतने धीरे २ होगी कि कई शंख वर्ष तक जारी रहेगी। २ करोड़ डिगरी तापक्रम पर तो यह क्रिया कुछ सेकेन्डोंमें विस्फोटनकी तरह समाप्त हो जायगी।

रसायन शास्त्रके अनुभवसे सबसे हलका परमाणु हाइड्रोजनका होता है। उससे भारी परमाणु वाले तत्व क्रमानुसार नीचे दिये जाते हैं :—

हाइड्रोजन, हिलियम, लिथियम, बेरेलियम, बोरन, कार्बन, नाइट्रोजन, आक्सिजन, फ्लोरिन, नियन, सोडियम, मेगनीशियम, एल्यूमिनियम, सिलिकिन, फास्फोरसऔर सल्फर

हल्के परमाणु तीव्र गतिके होते हैं, इसीसे उनकी क्रिया अधिक होती है, जिस प्रकार खेलके मैदानमें फारवर्ड खिलाड़ी तेज़ दौड़नेवाले होते हैं। अब हम परमाणुओंके आपसके संहारकी क्रिया पर विचार करेंगे। पहले हाइड्रोजनके एक परमाणुकी क्रिया उसीके दूसरे परमाणु पर देखेंगे, फिर इसके परमाणुपर क्रमशः उससे भारी तत्वोंके परमाणुओंकी क्रिया को देखेंगे।

हाइड्रोजनके परमाणुओंकी परस्पर क्रिया से ड्यूटेरियम (Deuterium) की उत्पत्ति होती है और अधिक हाइड्रोजन मिलनेसे हीलियम बन जाता है। हीलियम ही मानो हाइड्रोजनकी राख है। यह क्रिया कम तापक्रम पर जैसे १० लाख डिगरी पर ही हो जाती है। इसको पहली क्रिया कह सकते हैं। इससे बहुत शक्ति निकलती है।

दूसरी क्रिया पहलेकी अपेक्षा धीरे २ होती है। इस क्रियामें हाइड्रोजनका परमाणु, लीथियम, बेरिलियम, बोरोन परमाणुओं पर संहार करके मिल जाता है अर्थात् लीथियम भी हीलियमकी राख बन जाती है। बेरीलियम पहले लीथियम बनता है फिर हीलियम बन जाता है। यह क्रिया ३० और ७० लाख डिगरीके बीचके तापक्रम पर होती है।

तीसरी क्रियामें हाइड्रोजन, बोरोनसे मिलकर कारबन बन जाता है। यह क्रिया और अधिक तापक्रम पर होती है।

चौथी क्रियामें हाइड्रोजनकी क्रिया कारबन और नाइट्रोजन पर होती है, इसको विस्तारसे वर्णन करते हैं।

जो भट्टी हम वेधशालामें नहीं बना सकते वह सूर्यमें कैसे सम्भव है। सूर्यका बाहरी आवरण वायवीय है। यह पारस्परिक गुरुत्वाकर्षणसे ठहरा रहता है। गुरुत्वांकके कारण इसका तापक्रम आरम्भमें इतना बढ़ा कि ताप्र-केन्द्रकीय क्रियाएँ आरम्भ हो सकीं। सूर्य बाल्यावस्थामें ठंडा, बृहद् वायवीय पिन्ड रहा होगा जो धीरे-धीरे गुरुत्वाकर्षण से छोटा और गरम होता गया। जब इसके केन्द्रमें इतनी गर्मी पैदा हो गई कि केन्द्रकीय क्रियाएँ जारी रहें तो अन्तरपरमाणुक शक्तिके निकलनेसे और संकुचन बन्द हो गया और सूर्य अपनी वर्त्तमान स्थिति पर आ गया। इसका बाहरी आवरण इसके भीतरकी शक्तिके पैदा होनेके लिये आदर्शरूप है। यदि किसी कारणसे अन्तस्तलमें कम ताप पैदा हो तो सूर्यका आवरण तुरन्त सकुंचित हो जायगा और इस सकुंचनसे जो ताप पैदा होगा वह भीतरके तापक्रमको बढ़ा देगा और शक्ति अधिक पैदा होगी। यदि शक्तिका पैदा होना अधिक हो जाय तो सूर्यका आवरण प्रसर जायगा और केन्द्रीय तापक्रम कम हो जायगा। इस रीतिसे सूर्य का आवरण आदर्शरूप है।

सूर्यके मध्यमें हाइड्रोजन और अन्य हल्के तत्वोंके केन्द्रोंमें ताप केन्द्रकीय क्रियाएँ इतने परिमाण से होनी चाहिए कि किसी समय जितनी शक्ति निकल जाती है, उतने समय में उतनी ही शक्ति पैदा भी हो और उसका तापक्रम स्थिर रहे। सर एडिंगटन (Sir Eddington) की राय है कि सूर्य पिण्डमें हाइड्रोजन क़रीब ३५% है। अब हाइड्रोजन के परमाणु और अन्य हल्के तत्वोंके परमाणुकी अन्तर-क्रियाका सम्बन्ध देखा जाय, जिससे शक्तिका निकास और पैदा होना स्थिर रूप (constant) से रहे।

हाइड्रोजन और लीथियमकी क्रिया २ करोड़ डिगरी ताप पर इतने प्रचण्ड रूपसे होती है कि कुछ सेकण्डमें ही सब शक्ति निकल आती है। इसलिये यदि हाइड्रोजन और लीथियमकी क्रिया सूर्यके केन्द्रमें होती तो शक्ति तीव्रगतिसे और विस्फोटनके रूपमें निकलती। परन्तु सूर्यका ताप स्थिर है इस कारण उसमें ऐसी क्रिया असम्भव मालूम होती है। जलते हुए चूल्हेमें बारूद नहीं रह सकती।

हाइड्रोजन और आक्सीजनकी क्रिया इतने धीरे २ होती है कि इससे सिद्ध नहीं होता कि सूर्यसे इतनी अधिक शक्ति कैसे निकलती है।

सन् १९३८ ई० से पहले इस क्रियाका कोई अनुमान भी न कर सका था। अमरीका और जर्मनीके वैज्ञानिकोंने प्रायः एक ही समय पर जो अनुसन्धान किया है वह निम्नलिखित है।

वाशिंगटनमें भौतिक विज्ञान पर एक सम्मेलन हुआ था। इसमें केन्द्रीय क्रियाओं पर विचार किया गया। डाक्टर हान्स बेटी ने इस वाद विवादको सुना और इन क्रियाओंके आधार पर प्रयोगशालामें देखी हुई क्रियाओं को समझनेका विचार किया। लगभग इसी समय जर्मनीके डाक्टर कार्ल वान वाइजेकर (Carl Von Weizsacker) ने जर्मनीमें इन्ही क्रियाओंपर एक और सिद्धान्त बताया। यह क्रियाएँ एक ही केन्द्रीय रूपान्तर पर निर्भर नहीं है वरन् एक श्रृंखलाबद्ध क्रियाओं पर अवलम्बित हैं। यह श्रृंखलाबद्ध क्रियाएँ ६ क्रियाओंके बाद अपने पुराने रूपमें फिर आ जाती है। जिनके सूत्र नीचे दिये जाते हैं :—

(क) क^{१२} + उ^{१} $\rightarrow$ न^{१३} + गामा किरण;
(ख) न^{१३} $\rightarrow$ क^{१३} + इलेक्ट्रान + (β कण)
(ग) क^{१३} + उ^{१} $\rightarrow$ न^{१४} + गामा किरण
(घ) न^{१४} + उ^{१} $\rightarrow$ ओ^{१५} + गामा किरण
(ङ) ओ^{१५} $\rightarrow$ न^{१५} + इलेक्ट्रान + (β कण)
(च) न^{१५} + उ^{१} $\rightarrow$ क^{१२} + हि^{४} + α कण;
(छ) क^{१२} + उ^{१} $\rightarrow$ न^{१३} + गामा किरण

इस क्रियामें विशेष प्रकारसे भाग लेने वाले कार्बन और नाइट्रोजन परमाणुओंके केन्द्र हैं और हाइड्रोजनका तापीय प्रोटोन उ^{१} बार बार उनसे संघात करता है। दृष्टान्तके लिये (क) यदि क^{१२} १२ परमाणु भार वाले कार्बन का संघर्ष उज्जनके एक प्रोटोनसे हो तो १३ परमाणु भार वाले नाइट्रोजन न^{१३} का परमाणु जो नाइट्रोजन का हल्का समस्थानीय है बन जाता है और कुछ अन्तरपरमाणुक-शक्ति गामा किरणके रूपमें निकलती हैं। यही क्रिया वेधशालामें कृत्रिम रूपसे शक्तिवान किये हुए प्रोटोनके संघात से देखी गई है।

(ख) न^{१३} का केन्द्र अस्थाई होता है। यह टूट कर कार्बन का भारी समस्थानीय क^{१३} जो स्थाई है, बन जाता है, और एक धनात्मक एलेक्ट्रान (+B particle) के रूपमें कुछ शक्ति निकल जाती है। क^{१३} मामूली कोयले में कुछ अंशोंमें क^{१२} के सिवा पाया जाता है।

(ग) अब क^{१३} पर एक और प्रोटोनके आघात होने से साधारण नत्रजन न^{१४} का परमाणु बन जाता है। इस क्रियामें तीव्र गामा किरण निकलती है।

(घ) अब न^{१४} पर एक तापीय प्रोटोनका आघात होनेसे अस्थाई आक्सीजन का समस्थानीय ओ^{१५} बन जाता है और गामा किरण निकलती है।

(ङ) ओ^{१५} शीघ्र ही स्थाई न^{१५}में परिणत हो जाता है और एक + एलेक्ट्रान निकलता है।

(च) अन्तमें न^{१५} पर फिर एक प्रोटोन का आघात होता है। यह टूट कर क^{१२} और एक हिमजन (हीलियम) परमाणु बन जाता है।

इन छः क्रियाओंमें चार हाइड्रोजन परमाणुओंके संघात-से एक हीलियम परमाणु हि^{4} बन जाता है। इससे यह भी विदित है कि कार्बन और नत्रजन (नाइट्रोजन) के केन्द्र इस बन्द शृंखलाबद्ध क्रियाओंके बाद अपने पुराने रूपमें आ-जाते हैं जैसा कि रासायनिक वैज्ञानिक कहते हैं कि यह दोनों तत्त्व परिवर्त्तक (catalysts) हैं पर स्वयम् इनमें परिवर्तन नहीं होता।

हाइड्रोजनके संघातसे कार्बन और नाइट्रोजन की परिवर्त्तक क्रियाएं ऊँचे तापक्रम पर ही सम्भव हैं।

कार्बनकी मात्रा सूर्यमें एक प्रति शत है। बेटीने इससे मालूम किया कि इतना कार्बन २ करोड़ डिगरीके तापपर उतनी ही शक्ति उसी दरसे पैदा करता है जैसा सूर्य वास्तवमें करता है। और प्रकारकी क्रियाओंसे अधिक और विस्फोटककी तरह अथवा कम और धीमी शक्ति निकलती।

अस्तु यह प्रतीत होता है कि कार्बन नाइट्रोजन चक्र-की क्रियाएं ही सूर्यकी शक्तिके उत्पन्न होने का कारण है। सूर्यके भीतरी तापक्रमके अनुसार एक चक्रके पूरा होनेमें ५० लाख वर्ष लगता है। इसलिये हर एक कार्बन और नाइट्रोजनका परमाणु इस क्रियामें ५० लाख वर्ष बाद अपनी पूर्वावस्थामें आ जाता है।

अब इस प्रश्नका उत्तर कि कोयला सूर्यमें शक्ति पैदा करता है, अपने आप मिल जाता है। कोयला सूर्यमें उस तरह नहीं जलता जैसा हम लोगोंके घरोंमें चूल्होंमें जलाया जाता है। बल्कि वह परिवर्त्तक (catalyst) का कार्य करता है जिसमें हाइड्रोजन भस्म होकर हीलियम बन जाता है। इसी प्रकारकी क्रिया आकाशके अधिकांश तारोंमें भी होती है।

हमारी पृथ्वीपर हिमजन (हीलियम) और उद्जन (हाइड्रोजन) बिल्कुल पारदर्शक अवस्थामें पाये जाते हैं। परन्तु सूर्यके भीतर जैसी घनत्व और तापक्रमकी स्थिति है (दोनों पृथ्वीके घनत्व और तापक्रमसे बहुत अधिक है) उससे हीलियम, हाइड्रोजनसे अधिक अल्पपारदर्शक (translucent) हो जाता है। इसका फल यह होता है कि जैसे-जैसे हाइड्रोजन धीरे-धीरे परिवर्त्तित होकर हीलियम बन जाता है, वैसे २ सूर्यसे तापका विकरण कम होता जाता है, इसलिए उसमें ताप और संचित होता जाता है जिसके फलस्वरूप सूर्यका तापक्रम बढ़ जायगा उसमें ताप अधिक पैदा होगा और जब हाइड्रोजनकी मात्रा समाप्त होने लगेगी तब तक विकरण आजकलसे सौगुना तीव्र हो जायगा। सूर्यका व्यास भी धीरे २ कुछ प्रतिशत बढ़ जायगा और फिर घटना शुरू होगा।

यह स्मरण रहे कि ऊपर जिस क्रियाकी चर्चा सूर्यके सम्बन्धमें की गयी है वह ऐसी साधारण क्रिया है जो हमारी आकाश-गंगाके बहुतसे तारोंके संबंधमें लागू होती है। इसलिए यदि हम ध्यानसे इसका अध्ययन करें तो हमें अपने बहुतसे तारोंकी जीवन-क्रियाका ही अच्छा ज्ञान नहीं होगा वरन् हम उन सबमें होने वाली क्रियाओं को समझनेके लिए भी तैयार हो जायंगे। इसकी विवेचना आगे की जायगी।

रेंडके पौधेसे कागज़

यह अनुमान किया गया है कि अमेरिकामें कागज़ बनानेकी लुगदीके लिए तीस लाख कॉर्ड (१ कॉर्ड = १२८ घनफुट लगभग) लकड़ीकी कमी पड़ेगी जिसको एक वर्षके भीतर पूरी करनेके लिए ओबर्न केमिकल कम्पनीके वाइस प्रेसिडेंट जे.आई. गुडरिचने नेशनल फार्म केमर्जिक कौंसिल-के एक परिषद्में एक प्रस्ताव उपस्थित किया है। वह कहते हैं कि तीन लाख एकड़ भूमिमें रेंड़ी बो देनेसे काम चल जायगा। बीजसे पर्याप्त मात्रामें एक महत्वपूर्ण तेल प्राप्त होगा, पत्तियोंसे खेतोंको हानि पहुँचाने वाले कीड़ोंको नाश करने वाली औषधि बनायी जा सकती है और डंठलसे पर्याप्त मात्रामें अलफ़ा सेलूलोज़ (छिद्रोज) तैयार किया जा सकता है, एक एकड़ पौधेसे साढ़े चार टनसे अधिक (लगभग सवा सौ मन) अलफा सेलूलोज प्राप्त हो सकता है। हमारे यहां ऐसी उपयोगी चीज़ जला दी जाती है।

पेनीसिलिन्

[श्रीयुत ओंकारनाथ परती एम० एस०-सी०]

भारतके समाचार पत्रोंमें पेनीसिलिन्का नाम कुछ ही दिनोंसे दिखाई पड़ता है। बहुतसे भारतीयोंने तो इसका नाम कस्तूर बाके स्वर्गवासके समय ही पढ़ा होगा, क्योंकि समाचार पत्रोंमें लिखा था कि उनके अन्तिम समयमें हवाई जहाज़ द्वारा पेनीसिलिन् पहुँचानेकी चेष्टाकी गई थी।

पेनीसिलिन् आधुनिक समयका एक आश्चर्यजनक पदार्थ है। यह दवाओंके संसारमें कदाचित् एक अद्भुत दवा है। यह एक नीले प्रकारकी काई (mold) से प्राप्त होती है जो अधिकतर पनीर या रोटीके टुकड़ों पर उग आती है। इस काईको अंगरेजीमें पेनीसिलियम नोटाटूम (Penicillium notatum) कहते हैं।

पेनीसिलिन् बहुतसे रोगोंमें रामबाणका सा प्रभाव करता है। हमारे शरीरमें रोग अधिकतर रोगोंके कीटाणु द्वारा होते हैं। इन कीटाणुओंसे मुक्तिके लिये अभी तक सबसे प्रभावशाली "सुल्फा" (Sulfa) नामकी दवाएं थीं किन्तु अब यह देखा गया है कि पेनीसिलिन् "सुल्फा" से भी अधिक प्रभावशाली है।

साधारण समयमें जब कोई नई दवा तैयार की जाती है तो कई वर्षों तक उसके प्रभावके निरीक्षणके लिये प्रयोग किये जाते हैं। जब इन प्रयोगोंमें सफलता मिल जाती है तभी उस दवा का प्रयोग सर्वसाधारणके लिये किया जाता है। पेनीसिलिन्के विषयमें यह प्रयोग बहुत थोड़े ही समयमें सफल हुए और आज सब ओरसे इसकी माँग बढ़ रही है। युद्धमें घायल सिपाहियोंको स्वास्थ्य प्राप्त करनेमें इस दवासे विशेष सहायता मिलती है। आजकल संयुक्त-राष्ट्रोंके युद्ध विभागोंमें इसकी बड़ी माँग है।

पेनीसिलिन्का रासायनिक अध्ययन अभी पूर्ण रूपसे नहीं हुआ है। सच तो यह है कि इसकी माँग इतनी अधिक है कि रासायनिक अनुसन्धानके लिये कुछ बच ही नहीं पाता। आजकल पेनीसिलिन्का मूल्य लगभग १८००० डालर या लगभग ५४०००रुपया प्रति पौंड (आधसेर) है। इसका सेवन बहुत थोड़ी मात्रामें किया जाता है और प्रति खूराकका मूल्य लगभग २ डालर या छः रुपया है।

पेनीसिलिन् अधिकसे अधिक मात्रामें बनानेके लिये संयुक्त-राष्ट्रोंमें बहुतसे प्रयोग किये जा रहे हैं। अमेरिकामें दवा बनानेवाली सत्रह कम्पनियाँ मिलकर इस विषयका अनुसन्धान कर रही हैं :—अभी तक इसके बनानेकी क्रिया संक्षिप्तमें इस प्रकार है। यह अधिकतर दूधकी बोतलोंमें तैयार किया जाता है। इन बोतलोंमें सड़ाया हुआ पनीर और दूसरी सड़ाई हुई वस्तुयें भरी जाती हैं। फिर इनमें थोड़ी सी साफ़ की हुई नीली काई छोड़ दी जाती है। बोतलोंका मुँह पोली रूई लगाकर ढक दिया जाता है। इन बोतलोंको ऐसे कमरेमें रखा जाता है जिसका तापक्रम सदैव एक सा रहता है। इस निश्चित तापक्रमपर यह काई बढ़ने लगती है। दस दिन तक यह बोतलें ऐसी ही रखी रहती हैं। दस दिनके अन्दर इनमें हरे-भूरे रंगकी काईकी एक तह जम जाती है। इस तहपर छोटे-छोटे पीले द्रव-विन्दु भी दीख पड़ते हैं। पेनीसिलिन इस पीले द्रव और बोतल की सड़ाई हुई वस्तुओंमें होता है। इनसे बड़ी कठिनाईसे पेनीसिलिन् पवित्र रूपमें अलग किया जाता है।

भारतमें भी पेनीसिलिन्के बनानेकी क्रियापर कुछ प्रयोग हुए हैं। अब तकके प्रयोगोंसे यह ज्ञात होता है कि भारतमें यह कुछ अधिक सरलतासे बनाया जा सकता है। यहाँके प्रयोगोंमें पेनीसिलिन् अमेरिकाकी अपेक्षा कुछ अधिक मात्रामें तैयार हुआ।

पेनीसिलिन् अभी सर्वसाधारणको नहीं मिल सकता क्योंकि अभी यह बहुत थोड़ी मात्रामें ही बनाया जाता है। इसका भविष्य चमत्कारपूर्ण है। आशा है कि निकट भविष्यमें ही यह अधिक मात्रामें बनाया जायगा और सब लोग इसका प्रयोग कर सकेंगे।

———

मानसिक-दक्षताका रहस्य

[राजेन्द्र बिहारी लाल, एम० एस-सी०, इंडियन स्टेट रेलवेज़]

(विज्ञान भाग ४८, संख्या ६, पृ० २३७ के आगे)

हम इसका एक उदाहरण देते हैं। एक आदमीको और अच्छे स्वास्थ्य और बलकी इच्छा है। उसकी इच्छा तभी इच्छा-शक्तिमें परिणत होती है जब वह उन बातोंका पता लगा लेता है जिनके द्वारा वह अधिक स्वस्थ बन सकता है और फिर इन बातोंको कर डालता है। इसी तरह सीखनेकी इच्छा-शक्ति (संकल्प) का तात्पर्य है पहले तो उन बातोंके लिये बुद्धिमानी और तत्परतासे खोज जिनके द्वारा सुधार हो सकता है और फिर उन बातों पर दृढ़तासे मन और प्रयत्नको केन्द्रित करना।

इच्छा और इच्छा-शक्तिमें अन्तर अवश्य है पर यह न समझना चाहिये कि बिना इच्छा-शक्ति या प्रयासके इच्छा बिल्कुल ही महत्त्वहीन है। इच्छा जिसे रुचि या शौक़ भी कह सकते हैं मनुष्यके जीवनमें बड़े काम और महत्वकी चीज़ है। इच्छासे ही उत्साहके रूपमें उस बलका संचार होता है जिसके द्वारा मनुष्य परिश्रम करता है। जहाँ रुचि धीमी हुई, उत्साहकी अग्नि मन्द पड़ी, बस काम भी हलका हुआ। इसके अतिरिक्त इच्छा ही मनुष्यकी मानसिक शक्तियोंको एकता प्रदान करती है और उनको एक स्वरमें मिला कर उद्योगशील बनाती है। और जैसा कि हम और जगह देखेंगे, इच्छा या रुचि ही अवधान, स्मरण और कल्पनाका मूलाधार है।

देखनेसे पता चलता है कि दुनियामें ज़्यादातर आदमियोंको सीखने या उन्नति करनेकी कोई कामना ही नहीं रहती और अगर रहती भी है तो बिल्कुल अस्थिर रूपसे, जलमें तरंगोंकी तरह। उन्हें जीवनमें कुछ कुछ सुख और सफलता प्राप्त है और वे उसीसे बिल्कुल सन्तुष्ट हैं। ऐसे लोगोंकी, समय बीतनेपर, कोई विशेष उन्नति नहीं हो सकती चाहे वह अपने कामको कितनी ही बार दुहराते जायँ। वे कभी पहलेसे अच्छे व्यापारी या अपने काममें अधिक कुशल नहीं बनते क्योंकि वे अपने को जैसा पाते हैं उसीसे सन्तुष्ट रहते हैं। हाँ, कुछ थोड़ेसे लोग अवश्य ऐसे होते हैं जिन्हें कुछ निश्चित अभिलाषा इस बातकी होती है कि भिन्न-भिन्न दिशाओंमें अपनी योग्यताओंको बढ़ावें। वे अपनेसे असन्तुष्ट रहते हैं और उस सम्बन्धमें कुछ करना चाहते हैं। उनके हृदयमें महत्वाकांक्षाका कुछ कम्पन रहता है और अपनी कार्यक्षमता बढ़ानेकी अभिलाषा। इस आकांक्षाकी पूर्तिके लिये वे कभी-कभी कुछ प्रयत्न भी कर डालते हैं जैसे एक आध किताब अपने विषयपर पढ़ लेना। ऐसे व्यक्तियोंकी दशा निस्सन्देह आशाजनक है मगर इससे अच्छी नहीं। केवल इच्छाके अतिरिक्त कुछ और चीज़ोंकी आवश्यकता है। कोई विशेष सफलता तभी मिल सकती है जब कि प्रशंसनीय, पर साधारण और अनिश्चित इच्छाको लक्षित और सुबोध इच्छा-शक्तिमें परिणत कर लिया जाय।

इच्छा-शक्तिका संगठन

अब हमें यह देखना चाहिये कि अगर हमें कोई नयी विद्या या नया हुनर सीखना है तो उस उद्देश्यसे अपनी इच्छा-शक्तिको किस प्रकार सुव्यवस्थित किया जाय। किसी भी नयी क्रियामें निपुणता प्राप्त करनेके लिए उसे करनेका प्रयत्न तो करना ही होगा। इसलिये जो कुछ भी करना हो उसे तुरंत आरम्भ कर दीजिये। कहानी लिखिये, खड़े होकर व्याख्यान दे डालिये चाहे वह आधे ही मिनटके लिये क्यों न हो। आगामी बार जिस व्यक्तिसे आपका परिचय कराया जाय उसका नाम अपनी स्मृतिमें जमा लेनेका उद्योग कीजिये। दस लकीरें इतनी खुशख़त लिख डालिये जितनी आप लिख सकें। जो कुछ भी हुनर आप सीखना चाहते हैं उसके करनेमें लग जाइये।

लेकिन इसका मतलब यह नहीं है कि आप उस कामको बार-बार दुहराना शुरू कर दीजिये। ख़ाली दुहराना आपका उद्देश्य नहीं है और न उससे आपकी प्रगतिपर अधिक प्रभाव ही पड़ सकता है। महत्त्वपूर्ण बात तो यह है कि आप हर प्रयत्नका विचारपूर्वक विश्लेषण करें जिससे

इस बातका पता चले कि उस काममें सिद्धहस्त होनेमें आपने कितनी सफलता प्राप्त कर ली है और आपमें अभी क्या-क्या दोष बाक़ी हैं और उन्हें किस तरहसे दूर किया जा सकता है। इसी प्रकार एक वैज्ञानिक या अन्वेषक जो अपनी प्रयोगशालामें किसी नये यंत्र या नये नियमको खोज रहा है, धीरे-धीरे हर प्रयोगके बाद अपनी खोजके क्षेत्रको उत्तरोत्तर छोटा करता जाता है। सीखनेमें भी यही दृष्टि-कोण रखना चाहिये। सीखनेका हरेक काम प्रयोग और अन्वेषणकी ही क्रिया है। हर प्रयत्नके बाद आपको अपनी उन कठिनाइयों और दोषोंका पता लगाना चाहिये जो अब तक बाकी रह गये हों और उसके बादके प्रयत्नोंमें उन दोषों और कठिनाइयोंको दूर करनेकी तरकीब ढूँढ़ निकालनेकी कोशिश करनी चाहिए। हमें धीरे-धीरे इस बातका पता लगा लेना चाहिये कि कौनसी बात या बातें हैं जिनकी वजहसे हम नाम भूल जाते हैं या शब्दोंके ग़लत हिज्जे करते हैं या लोगोंके सामने खड़े होकर व्याख्यान नहीं दे पाते। हमें अपने लक्ष्यको उत्तरोत्तर अधिक निश्चित और सीमित करते जाना चाहिए यहाँ तक कि हम कह सकें कि बस अगर हम इस दोषको और दूर कर लें तो वांछित हुनर हमारे काबूमें आ जाय। सीखनेकी इच्छा शक्तिको सुव्यवस्थित करनेका यही मतलब है कि अपने हर प्रयत्नके परिणामपर विचार कर और अपनी कठिनाइयोंका पता लगाकर उनको धीरे-धीरे दूरकर दिया जाय।

सीखनेमें सफलता प्राप्त करनेके लिये यह आवश्यक है कि एक लक्ष्य स्थापित कर लिया जाय। लक्ष्य ही इच्छा शक्तिको निर्दिष्ट और वास्तविक बनाता है।

सीखनेकी कलाके सम्बन्धमें अनुभव द्वारा कुछ बातें बड़ी उपयोगी सिद्ध हुई हैं उनका उल्लेख नीचे किया जाता है:

पहली बात यह है कि सीखनेकी किसी भी क्रियामें अपना उत्साह कभी न भंग होने दीजिये और न किसी दूसरेसे ही अपनेको निरुत्साहित होने दीजिये। यदि आप किसी दूसरे व्यक्तिको सिखा रहे हों तो उसे कदापि उत्साहहीन न कीजिये। यह बिलकुल निश्चित रूपसे सिद्ध हो चुका है कि यदि लोगोंको उनकी सफलतायें बताई जायं और उनके लिये उनकी तारीफ की जाय तो वे कहीं अधिक तेज़ीसे तरक़्क़ी करते हैं बनिस्बत उस हालतके जब उनका ध्यान उनकी त्रुटियोंकी ओर आकर्षित किया जाय और उनके लिये उन्हें बुरा भला कहा जाय। यह एक मनोवैज्ञानिक सत्य है। सीखनेकी क्रियाके बारेमें जिन बातोंका हमें ठीक-ठीक पता है उन्हींमेंसे यह एक है। उत्साहहीन करना, डाँटना, फटकारना, निन्दा करना या सज़ा देना ये सब बड़े हानिकर हैं। इस बातके समझनेमें हमें कोई कठिनाई भी न होनी चाहिये। सिखाने या सीखनेमें हमारा प्रयोजन तो यह रहता है कि एक सुबोध, दृढ़ और अन्वेषक इच्छा-शक्ति पैदाकी जाय न कि अपने या दूसरोंको यह महसूस कराना कि वे नितान्त बुद्धू हैं।

दूसरे, सीखनेकी किसी क्रियामें अपने आपको दूसरोंसे नापिये। प्रतियोगितासे सहायता मिलती है बशर्ते कि उसमें घृणा, डाह, और ईर्ष्याका कोई अंश न हो। देखिये कि और लोग कितनी अच्छी तरहसे उसी कामको करते हैं। ऐसा करनेसे आपको अपनी सफलताके मापका पता चलेगा। इससे आपको यह भी पता चलेगा कि सुधारकी कितनी गुंजाइश है और सुधार करनेकी कुछ युक्तियाँ भी मालूम हो जायँगी।

तीसरे, थोड़े-थोड़े समय बाद अपनी परीक्षा करते रहिये। अगर कोई किताब पढ़ रहे हैं जिसपर पूर्ण अधिकार प्राप्त करना चाहते हैं तो सब बात भाग्य ही पर न छोड़ दीजिये बल्कि बीस पचीस प्रश्न सोच लीजिये और फिर उनके उत्तर लिख डालिये। अगर आप 'टाइप-राइटर' पर अपनी गति बढ़ाना चाहते हों तो थोड़े-थोड़े दिनोंके बाद अपने एक दोस्तसे कहिये कि एक घड़ी द्वारा आपकी गतिका पता लगावे। कितने ही प्रयोगोंसे यह बात सिद्ध हो चुकी है कि सीखनेकी इच्छा-शक्तिके सुव्यवस्थित करनेमें और उन्नति प्राप्त करनेमें अपने उद्योगके फलोंकी जानकारी एक अत्यन्त ही मूल्यवान साधन है। इससे जो तरक्की हो चुकी उसका और उसके आगेकी तरक्कीके मार्गका पता चलता है।

फलित-ज्योतिष और शनैश्चर

[श्री पं० चन्द्रशेखर शुक्ल, सिद्धान्त विनोद, ज्योतिर्भूषण]

[संपादकको फलित-ज्योतिषमें विश्वास नहीं है। सभी वैज्ञानिक फलित-ज्योतिषको अवैज्ञानिक मानते हैं। परंतु संपादकने यह उचित नहीं समझा कि फलित-ज्योतिषमें विश्वास रखने वालोंका लेख कभी विज्ञानमें छापा ही न जाय।]

फलित-ज्योतिष भी विज्ञानका अंग है, परन्तु आज तक इस विषयका कोई भी लेख अथवा निबन्ध 'विज्ञान'में नहीं छपा। सुधीजनोंका भी इसकी तरफ ख्याल वा अधिक विश्वास नहीं है। अनुशीलन या खोजके अभावसे कुछ पिछड़ा हुआ भी है।

सम्प्रति मैं इस विषयपर कुछ लिखकर सुधीजनोंका ध्यान आकर्षण करना चाहता हूँ, और क्रमशः यह प्रतिपादन करनेकी कोशिश करूँगा कि इसका सिद्धान्त नितान्त काल्पनिक एवं भित्तिहीन नहीं है। सब शास्त्रोंकी तरह यह भी एक शास्त्र एवं विज्ञान है। कोई भी शास्त्र या विज्ञान पूर्ण नहीं है, सबमें त्रुटियाँ मौजूद हैं। तब फिर यह उपेक्षित क्यों?

उपादान भेदसे पदार्थ मात्र में गुण, दोष और पृथक्-पृथक तासीरें पाई जाती हैं, छोटे बड़े ज्योतिष्क पिण्डोंमें भी यह सब बातें हैं। विश्व एवं विश्वके जड़चेतन पदार्थों पर ग्रह नक्षत्र गण अपने-अपने गुण दोषानुसार प्रभाव डालते हैं, इसमें कोई सन्देह नहीं है। इसके अनेकों प्रत्यक्ष प्रमाण हैं।

अब सबसे पहिले शनैश्चरके विषयमें आपलोगोंका ध्यान आकृष्ट करूँगा। यह ग्रह प्राचीन कालमें सूर्य्यसे सबसे अधिक दूरीपर माना जाता था, क्योंकि, दूरदर्शक यन्त्र आविष्कार होनेके पहिले इउरेनस, नेपचून, तथा प्लुटो का पता तक नहीं था। ये तीनों ग्रह कोरी आँखोंसे प्रत्यक्ष नहीं होते।

शनैश्चरका रूप (डील-डौल) भी विचित्र ढंगका है, किसी भी ग्रहके साथ मेल नहीं खाता। विशेषतः फलित शास्त्र तथा पुराणोंमें इसे दुःख, कष्ट, तथा विपत्तियोंका कारक कहा गया है। कैलडिया (Chaldea) देशवासी इसे ध्वंस-कर्त्ताके नामसे पुकारते थे। पुराणोंमें इसकी अनेकों भयावनी तथा दुःखद कथाओंका वर्णन आया है। जिनमें कुछका संक्षिप्त वर्णन नीचे करूँगा।

१—शनैश्चरकी उत्पत्ति—प्राचीन-शास्त्र तथा पुराणोंमें इसको सूर्य्य एवं छायाका पुत्र कहा गया है। इस रूपकका वास्तविक अर्थ क्या है, समझमें नहीं आता। सम्भवतः प्रकाश एवं अन्धकार दोनोंके संयोगमें इसकी उत्पत्ति हुई होगी। यथाः—अव्यक्त आकाशमें परस्पराभिमुख दो गतिशील 'नीहारिका' पिंड, अथवा अन्य कोई प्रकाण्ड अज्ञात पिंडोंके संघर्षसे प्रकाश उत्पन्न हो गया, संघर्षवश उस प्रकाण्ड पिंडका कुछ हिस्सा उत्क्षिप्त हो वेगसे वहां पहुँच गया, जहां उस प्रकाशका अन्त हो रहा हो, (प्रकाशके अभावसे अन्धकार स्वाभाविक है) अतः प्रकाश एवं अन्धकार दोनोंके संगममें इसकी उत्पत्ति हुई। इसलिए प्रकाश रूप सूर्य्य और अन्धकार रूप छायाका पुत्र कहा गया। उपरोक्त रूपकका यही एक भेद समझमें आता है, इसके सिवा वैज्ञानिक-युक्ति-पूर्ण कोई बात सम्भव नहीं होती।

२—आकार प्रकार—वेगसे उत्क्षिप्त हुआ वह पिण्ड मध्याकर्षणके नियममें पड़ उसी दूरीपर चक्कर काटने लगा। पिण्डका मध्य भाग केन्द्राभिकर्षिणी शक्तिके प्रभावसे (अधिक खिंचावके कारण) गोला ऐसा बन गया, बाकी बिरल अंश (केन्द्र प्रसारिणी शक्तिके प्रभावसे) बलयाकार बन उस गोलेके चारों तरफ हो गया, और चक्कर काटने लगा। विरलताके कारण २, ३ या अधिक भागोंमें विभाजित भी प्रतीत होने लगा। वैज्ञानिक विचारसे शनैश्चरका ऐसा विचित्र रूप बननेका यही एक कारण हो सकता है।

३—दूरत्व एवं व्यास—सूर्य्य केन्द्रसे इसकी मध्यम दूरी ८८करोड़ ६७लाख मील कही गई है, व्यास ७६३४० मील है, जो हमारी पृथ्वीके व्याससे ७·६३ गुणा अधिक है। अब आप लोग इसकी प्रकाण्डताका अनुभव कर सकते हैं। आकारमें सूर्य्यसे इसका तीसरा नम्बर है। यह करीब

२९।। वर्षमें अथवा १०७५९.२० दिनमें सूर्य्यकी एक प्रदक्षिणा कर लेता है। फलित ज्योतिषके वर्णनमें इससे अधिक कुछ जानने की आवश्यकता नहीं है। गुरुत्व उपादान, अक्षपरिवर्त्तन प्रभृतिके विषयसे डा० गोरखप्रसाद जीके 'सौर परिवारमें' विस्तृत वर्णन है। अस्तु।

फलित विषय-वर्णनके पहिले कुछ पारिभाषिक संज्ञाओंका वर्णन जरूरी है। जगह-जगह इसकी आवश्यकता पड़ती है। हर शास्त्रमें अपनी-अपनी पारिभाषिक संज्ञायें भी हैं।

कोण, अन्तक, रौद्र, यम, बभ्रु, कृष्ण, शनि, पिंगल मन्द और औरिन यह १० शनैश्वरके नाम हैं। सब ग्रहोंसे धीमी गतिके कारण शनैश्वर अथवा मन्द नाम पड़ा। विपत्ति, कष्ट एवं मृत्युके कारक होनेके कारण अन्तक तथा यम नाम है। अंगरेजीमें इसका नाम (Saturn) है। यह नाम सम्भवतः हिब्रू (Hebrew) भाषाके Satur शब्दसे बना होगा। A. J. Pears साहेब का ख्याल है कि (Sheb) वा (Shebo) शब्दसे बना होगा। जो कुछ भी हो इन नामोंसे प्रतिपाद्य विषयकी कोई भी आवश्यकता पूर्त्ति नहीं होती।

४—प्रभाव और रूप रंग—

पिंगो निम्न विलोचनः कृशतनुः दीर्घः शिरालोऽलसः। कृष्णाङ्गो पवनात्मकोऽतिपिशुनः स्नायुन्वितो निर्घृणाः। मूर्खः स्थूल नख द्विजोतिमलिनो रुक्षःऽशुचिस्तामसो। रौद्रः क्रोधपरो जरापर मतिः कृष्णाम्बरो भास्करिः।

—रणवीर ज्यो० म० निबन्ध।

अर्थः—दीप-शिखावत् आभायुक्त, कोटर गत नेत्र, कृश एवं दीर्घदेह, शिरा प्रधान, आलसी, कृष्ण वर्ण, वायु प्रधान, अत्यंत खल प्रकृति, स्नायु मण्डित, मूर्ख, स्थूल नख-दन्त, अनुष्ठानिक नियमहीन, मलीन स्वभाव, निर्दय कर्कश प्रकृति, तपोगुणी, उग्र एवं क्रोधी, वृद्ध भावापन्न, कृष्ण वस्त्रधारी ऐसे सूर्य्यके पुत्र शनैश्वर हैं।

५—शुभ-फल दाता शनिकी कारकता :—साहसी, शूर, नामके लिये बड़े-बड़े कार्य करनेवाला, आश्रितोंका रक्षक, दबंग, अहंकारी, कूट एवं भेद-नीति-विद्, बहुत कम दुःख भोगने वाला, अपने सिद्धान्तोंमें दृढ़ बना रहता है।

६—अशुभ फल दाता शनिकी कारकता :—चोर, लुटेरा, आलसी, दीर्घसूत्री, जुवारी, सनकी, पिशुन, परदोषान्वेषी, कपटी; हतोत्साह, अधिक काल तक दुःख भोगने वाला, एवं दास मनोवृत्ति विशिष्ट बनाता है।

७—रोग कारकताः—इसका गुण एवं स्वभाव अत्यन्त रुक्ष एवं शीतल होनेके कारण वायु-प्रधान रोगोंका कारक है, जैसे :—गंठिया, पक्षाघात (लकवा), धनुर्वात (टेटनेस) कम्पवायु, खंजता, लुंजता, बधिरता, क्षय (राज-यक्ष्मा) प्लीहा, वातोदर, मेलेङ्कोलिया प्रभृति।

प्रसिद्ध-जर्म्मन ज्योतिकी Zedkiel साहेब कहते हैं कि शनैश्वरकी रोगाक्रामक शक्ति इतनी मन्थर एवं दुःसाध्य होती है कि, किसीके साथ तुलना नहीं होती जैसे मंगलकी क्रिया कठिन एवं तीव्र होनें पर भी क्षण स्थायी होती है। परन्तु शनिकी क्रिया अतिमन्द गतिसे वृद्धि होती रहती है। क्षय-रोगके माफिक अनेकों यत्न करने पर भी निवारण नहीं की जा सकती। इत्यादि।

८—स्थान एवं शुभाशुभ कारकता :—मकर और कुम्भ राशि शनिका अपना घर है। १° से लेकर २०° अंश तक कुम्भ राशि मूल त्रिकोण है। बाकी १०° अंश घर है। तुला राशि उच्च (तुंग) है, तुलाका २०°वाँ अंश परमोच्च है। (यह apogee नहीं है, Exaltation है) मेष राशि नीच है, मेषका २०°वाँ अंश परम नीच है। कर्क तथा सिंह राशि शत्रु-गृह है। बुध, शुक्र इसके मित्र बृहस्पति सम, और सूर्य्य, चन्द्र, मङ्गल शत्रु हैं।

कोई भी ग्रह स्वराशिमें अर्द्धबली, मूल त्रिकोणमें त्रिपाद, परमोच्चमें पूर्ण, शत्रुके घरमें अष्टमांश, एवं नीचमें शुभ फल शून्य, पाप फल पूर्ण देता है। कोई भी ग्रह पापी ग्रहोंके साथ, पापी ग्रहोंकी दृष्टिमें, एवं षड्भान्तर (opposition) में होने पर शुभ फल नहीं देता। अपितु स्थित भावकी हानि करता है।

जिस किसीकी जन्म-पत्रीमें अशुभ-फल-दाता शनि क्षीण चन्द्रमाके साथ अथवा पाप-युक्त वा दृष्ट होकर लग्नमें पड़ता है तो वह बालक अधिक दिन जीवित नहीं रहता। (पाश्चात्य फलित ज्योतिषी Loempriare साहेब इस बातका पूर्ण रूपसे समर्थन करते हैं) अपितु वह बालक कफ वायुका शिकार बनता है, जैसे कफ,

खाँसी, श्वास, निउमोनिया, क्रानिक ब्रङ्काइटिस प्रभृति। अष्टम स्थानमें स्थित होने पर भी उक्त फल देता है।

सूर्य्य या मङ्गलके साथ होनेपर खूनकी खराबी, खुजली, दाद, वात-रक्त, कुष्ठ, किसी भी अंगका शोषण, विकलता, मृगी, मूर्च्छा, हिष्टिरिया प्रभृति रोगका कारक होता है। नीच वा शत्रु-गृही शनि राहु, केतुके साथ लग्न, सप्तम, चतुर्थ तथा अष्टममें पड़नेपर पंगुता, खंजत्व, लकवा, बाहु शोष, अर्दित प्रभृति रोगका कारक होता है।

यदि किसी स्त्रीकी जन्मपत्रीमें उन पापी-ग्रहोंके साथ सप्तम स्थान या लग्नमें पड़ता है तो, गर्भाशयकी खराबी, बाधक (रजोधर्म्म में खराबी, रजोधर्म्म न होना) हिष्टिरिया, मेलेङ्कलिया, प्रभृति रोग होते देखा जाता है। पति भी कमजोर एवं रोगी होता है। दोनोंमें पटती भी नहीं है।

किसीके शनि, सूर्य्य और राहु तीनों ग्रह लग्न सप्तम अथवा अष्टम स्थानमें पड़ते हैं तो, उसकी विस्तरमें सोते समय अथवा चलते-फिरते सर्पदंशसे मृत्यु होती है। यह योग ८० प्रतिशत फलित होते देखा गया है। ऐसे अनेकों योग है, जो प्रत्यक्ष फलित होते देखे गये हैं। जैसे :—वज्र घात, पशुहनता, जल मज्जन, उद्बन्धन प्रभृति।

तुला, धनु एवं मीन राशिका शनि अथवा शुभयुक्त होने पर अशुभ-फल नहीं देता। इन राशियोंका शनि दशम, एकादश, तृतीय-घरमें होने पर शुभ फल ही देता है। लग्नमें पड़ने पर भी अरिष्ट नहीं करता। साथ ही साथ अन्य ग्रह समुत्थ अशुभ फलको खर्व करता है। तुला तथा वृष-लग्न वालों के लिये बलवान् शनि सौभाग्य-दायक होता है। अपनी दशान्तर्दशामें निहाल तक कर देता है। और दुर्बल शनि किसी पापी ग्रहके साथ षड्भान्तर सम्बन्ध (Opposition) होने पर स्थित भावको बिगाड़ देता है, इत्यादि।

पुराणोंमें भी हमको अनेकों भयावनी एवं रोमाञ्च-कारिणी कथाओंका वर्णन आया है। जैसे श्रीवत्स राजाका उपाख्यान। श्रीवत्स राजा शनिकी कोप-दृष्टिमें पड़ दारुण कष्ट भोग किया है। वह गाथा पढ़नेसे कठिन हृदय वाला व्यक्ति भी बिना अश्रुपात किये नहीं रह सकता। गणेशजीकी गजानन होनेकी कथा हिन्दू मात्रको मालूम है। इन कथाओंमें भी कुछ न कुछ मौलिकता अवश्य है। सर्वथा काल्पनिक एवं निर्मूल न होंगी।

राजा दशरथजीके समयमें जब शनैश्चरने "रोहिणी-शकट भेद किया था"* तत्कालीन अवर्षण, दुर्भिक्ष तथा देश-की अनेक प्रकारसे दुर्गतिकी कथा पुराणोंमें वर्णित है। विस्तार-भयसे उन बातोंके वर्णनका स्थान यहां नहीं है।

शनैश्चरके विषयमें जो सब शुभाशुभ फल तथा कारक-ताओंका वर्णन किया गया है, उन सबका समर्थन पाश्चात्य ज्योतिषी सेफेरियल, एलेनलिओ, जेडकिल, मैक्स हैण्डल प्रभृतिके ग्रन्थोंमें विस्तारपूर्वक किया गया है। अस्तु।

अब २ ; १ और आवश्यकीय बातोंका वर्णन लिख कर लेख समाप्त करूँगा, प्रार्थना है, सर्व प्रकारकी त्रुटियों-को मनीषीवर्ग क्षमा करें।

९—द्रव्यकारकता—यव, कृष्ण धान्य, कृष्ण तिल, कृष्ण वस्त्र, लोहे, इन्द्रनील मणि (Dark Sapphire), Oxidised Steel.

१०—व्यक्ति—दास दासी, यानचालक, दूत, व्याध, वृद्ध-व्यक्ति, नीच शूद्र, बल तथा अवरुद्ध व्यक्ति।

११—देवता—दक्षिणा काली, ब्रह्मा।

१२—पशुपक्षी—महिष-महिषी, उष्ट्र, हस्ती, कृष्ण सर्प, कुर्म, गृध्र (Vulture).

१३—शुभ पत्थर (Lucky Stones) :—नील मणि (Very dark Sapphire) Black Opal, steel.

१४—शुभ संख्या (Lucky Numbers) :—८ या ऐसी संख्या जिसके अंकोंका जोड़ ८ हो जैसे ८, १७, १०७, ३५, ४४ इत्यादि।

---

* कोई भी ग्रह निरयन वृष राशिके १७°वें अंशपर जाने पर, यदि उसका विक्षेप अथवा दक्षिण शर २° अंशसे अधिक होगा तो वह ग्रह रोहिणी-शकट-भेद करेगा। शनि तथा मंगलका भेद अत्यंत अशुभ है।

———

स्वर्गीय प्रो० पावलोवका संदेश

(नवयुवक वैज्ञानिकोंके लिये)

[ले०—श्री भगवती प्रसाद श्रीवास्तव एम० एस-सी०]

[प्रो० आई० पी० पावलोव रूसके महान वैज्ञानिकोंमेंसे थे। जीव-विज्ञानमें आपके अनुसन्धानोंने वैज्ञानिकोंके लिये एक सर्वथा नवीन क्षेत्र प्रदान किया है। इन्हीं अनुसन्धानोंकी बदौलत आपने अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त की थी। लन्दनकी रायल सोसायटीने इन्हें सदस्य चुन कर स्वयं अपनेको सम्मानित किया था। ८७ वर्षकी आयुमें आपका देहान्त फ़रवरी २७, १९३६ में हुआ था। मृत्युके कुछ ही दिनों पूर्व आपने अपने देशके नवयुवक वैज्ञानिकोंके लिये निम्नलिखित संदेश दिया था।

जनवरी १९४४ में दिल्लीमें इण्डियन सायन्स कांग्रेसके अधिवेशनके अवसरपर लन्दनकी रायल सोसायटीके मंत्री श्री ए० वी० हिल पधारे थे। इण्डियन सायन्स कांग्रेसके पंडालमें ही थोड़ी देरके लिये आपकी अध्यक्षतामें रायल सोसायटीके एक विशेष अधिवेशनका आयोजन सर शान्तिस्वरूप भटनागर तथा डा० भाबाको रायल सोसायटीकी सदस्यता प्रदान करनेके लिये किया गया था। इसी अवसर पर श्री ए० वी० हिलने अपनी ओरसे इण्डियन सायन्स कांग्रेसके सदस्योंको प्रो० पावलोवका संदेश भेंट किया। यह संदेश हर देश और कालके वैज्ञानिकोंके लिये समान रूपसे लागू होता है—भ० प्र० श्री०]

संदेश

"अपने देशके उन नवयुवकोंके लिये जो विज्ञानकी साधनामें लगे हुए हैं, मेरी क्या अभिलाषा हो सकती है?

सर्वप्रथम, अध्यवसाय। सफल वैज्ञानिक अनुसन्धानके लिये इस सबसे अधिक महत्वपूर्ण शर्त्तके बारेमें बिना आवेशके मैं कभी भी एक शब्द नहीं कह सकता। अध्यवसाय, अध्यवसाय, अध्यवसाय। वैज्ञानिक क्षेत्रमें प्रवेश करने पर आरम्भसे ज्ञानार्जन के लिये अपनेको घोर अध्यवसायका अभ्यस्त बना डालो।

शिखरपर पहुँचनेके पूर्व विज्ञानके क ख ग का मनन भली भाँति कर लो। पूर्वार्द्ध अपनाये बिना उत्तरार्द्ध पर हाथ मत लगाओ। किसी भी अधूरी जानकारीको ऊँची थ्योरी (सिद्धान्त) और अनुमानके हवाई-किलोंके पर्दके पीछे छिपानेका प्रयत्न कभी मत करो। क्योंकि यह साबुनकी झागका बबूला तुम्हारी आँखोंको अपनी चमक-दमकसे कितना ही रिझा ले, किसी न किसी दिन यह अवश्य फूटेगा और तब तुम्हें लज्जाके अतिरिक्त और कुछ हाथ न आयेगा।

सब्र और कठिन परिश्रमकी आदत डालो। वैज्ञानिक-अनुसन्धानमें निरन्तर परिश्रम करनेसे कभी न ऊब सको, ऐसा बना लो अपनेको। नई बातें सीखो, उनकी तुलना करो और वैज्ञानिक तथ्योंको संग्रह करते रहो।

पक्षीके डैने चाहे कितने भी शक्तिशाली क्यों न हो, वायुके आधारके बिना पक्षी आकाशमें उड़ नहीं सकता। प्रयोगात्मक तथ्य वैज्ञानिकके डैनेके लिये वायु हैं—इनके बिना तुम उड़ नहीं सकते। उनके बिना तुम्हारी 'थ्योरीज़' निष्फल प्रयत्न हैं।

किन्तु मनन करते समय, प्रयोग करते वक्त या निरीक्षण करते समय तथ्योंके ऊपरी धरातल पर ही मत रुके रहो। इन अस्तित्वके वजूदके रहस्यके अन्दर प्रवेश करनेका प्रयत्न करो – लग कर उन नियमोंको ढूंढ़ निकालो जो इन पर लागू होते हैं।

द्वितीय, विनम्रता। कभी भी मत सोचो कि तुमने सब कुछ जान लिया है। कितना ही अधिक तुम प्रशंसित क्यों न हो चुके हो, सदैव इस बातका साहस रक्खो कि तुम अपने लिये कह सको 'मैं कुछ नहीं जानता'।

गर्वको अपने ऊपर हावी मत होने दो। यदि ऐसा हुआ तो जहाँ तुम्हें सहमत होना चाहिए तुम हठका प्रदर्शन करोगे, तुम उपयोगी परामर्श और मैत्री पूर्ण सहायताको भी अस्वीकार कर दोगे और निष्पक्ष निरीक्षणकी क्षमता भी तुम खो बैठोगे।

तृतीय, अनुरक्ति। स्मरण रखो, विज्ञान मनुष्यसे उसका सम्पूर्ण जीवन माँगता है। यदि तुम्हारी जिन्दगी भी हो जाय, तो वह भी विज्ञानके लिये पूरी नहीं पड़ेगी। अपने काममें, अपने अनुसन्धानमें पूर्ण अनुरक्ति रखो।"

फोटोग्राफी*

[ले० डा० शिखिभूषण दत्त, एम. ए., पी. आर. एस. (कलकत्ता), डी. एस-सी., डी. आई. सी. (लन्दन), रीडर रसायन विभाग, प्रयाग विश्वविद्यालय, प्रयाग]

सभ्यताका एक आवश्यक अंग

फोटोग्राफी तथा इसके अनेक रूप आधुनिक कला-कौशल, विज्ञान तथा व्यवसायकी मुख्य-मुख्य आवश्यकताओंमें प्रधान हैं। सभ्यताकी तीव्र-उन्नतिके साथ-साथ यह हमारे अस्तित्वका अति आवश्यक अंग बन गई है। इसके भिन्न-भिन्न कौशल तथा उपयोगोंका क्षेत्र किसी प्रकार भी चलनेके साधनोंके उपयोगोंसे कम नहीं है। मनुष्यके प्रयास, कला, कौशल-व्यवसाय कष्ट-निवारणके साधन इत्यादिका शायद ही कोई ऐसा क्षेत्र हो जो अपनी उन्नतिके लिये किसी न किसी प्रकारसे फोटोग्राफी पर निर्भर न हो। एक साधारण व्यक्तिके लिये अपने प्रिय पुरुष या स्त्रीकी स्मृतिको स्थायी रखनेकी यही एक कला है। एक वैज्ञानिकके लिये यह बहुत ही आवश्यक अंग है जिसकी सहायतासे वह उन वस्तुओंका भी अध्ययन कर सकता है जो उसकी साधारण भौतिक शक्तियोंके लिये अलभ्य है। एक ज्योतिषी इसकी सहायतासे उन वस्तुओंके सम्बन्धमें भी ज्ञान प्राप्त कर सकता है जिनको वह केवल अपने मनमें सोच ही सकता था। बीमारी पैदा करने वाले अनेक कीटाणु फोटोग्राफीकी ही सहायतासे अलग किये जा सके हैं और उनके सम्बन्धमें विशेष परीक्षायें की जा सकी हैं। धातु-शोधन तथा यन्त्रशास्त्रकी अधिकांश आधुनिक उन्नति फोटोग्राफी ही द्वारा हुई है। धातुओं तथा धातुसंकरोंकी आंतरिक बनावट इसी कलासे मालूम की जा सकी है। इसीकी सहायतासे भाप वा पेटरोल द्वारा चलने वाले इंजनोंकी बनावट वा विधानमें महान परिवर्तन किये जा सके हैं। मोटरके नवीन ईंधनोंके निर्माणमें भी इससे बड़ी सहायता मिली है, कारण ईंधन वा हवाके मिश्रणमें लौकी गतिका अध्ययन फोटोग्राफी ही द्वारा किया गया है। वर्णनात्मक नकशे बनानेमें निरीक्षणकी पुरानी युक्तियां अब बेकार हो गई क्योंकि यह काम हवाई फोटोग्राफीसे विशेषकर इन्फ्रारेडप्लेट वा टेलीफोटोलेन्सकी सहायतासे बहुत ही आसानीसे हो सकता है। आधुनिक युद्धकलामें फोटोग्राफीका स्थान बहुत ऊँचा है। इसकी सहायतासे शत्रुवर्गके हवाई-चित्र लिये जाते हैं जिनसे आक्रमणमें काफी सहायता मिलती है। विस्फोटक पदार्थ बनाते समय इसके द्वारा बने हुये पदार्थोंकी परीक्षा बहुत आसानीसे की जा सकती है। अपराध-विज्ञानका काम करने वालोंको फोटोग्राफी द्वारा अपराधीका पता लगाने, जाली कागजों-की जांच करने इत्यादिमें बड़ी सहायता मिलती है। लेखकों, अखबारवालों, प्रेसवालों, प्रकाशकों तथा संपादकोंके लिये फोटोग्राफी बहुत बड़े कामकी है क्योंकि इसके द्वारा वह इतने अच्छे विवरण दे सकते हैं जो साधारण लेखोंमें सम्भव नहीं हैं। साधारण जनसमुदायके लिये फोटोग्राफी सिनेमाके रूपमें एक बहुत ही महत्वकी वस्तु है, क्योंकि इसके द्वारा मनुष्य अपने इस नीरस वा थकाने वाले जीवनके कुछ क्षण आनन्दमें बिता सकता है। एक उच्च जाति या राष्ट्रका अस्तित्व तथा उसकी सफलता बिना फोटोग्राफीकी सहायताके इस आधुनिक संसारमें नहींके बराबर है।

संक्षिप्त प्राचीन इतिहास

इतनी उच्चकोटिकी कला होते हुए भी फोटोग्राफी मनुष्यके प्रयत्न तथा प्राप्तिके इतिहासमें केवल एक शताब्दी ही पुरानी है। सन १८२० के लगभग निसफोर नीपसी (Nicephore Niepce) नामक एक फ्रान्सीसी फौजी अफसर कैमरा आब्सक्योराकी सुन्दर छाया (Image) को स्थायी (Fix) करनेका प्रयत्न कर रहा था कि उसका ध्यान साधारण बिटूमन (Bitumen) नामक पदार्थके फोटोग्राफिक गुणोंकी ओर गया जो प्रकाशके

*प्रयाग विश्वविद्यालयके फोटोग्राफी संघके वार्षिक उत्सवमें दिये हुये भाषणसे।

प्रभावसे एक नये रासायनिक पदार्थमें परिवर्तित हो जाता है। यह नया पदार्थ कारबन-डाई-सलफाइडमें घुलनशील नहीं है। इस प्रकार विट्मनकी सतह जमी हुई प्लेटों (Plates) का प्रयोग करके उसने कई चित्र लेनेका प्रयत्न किया। फोटोग्राफीकी नीव तो नीपसीने डाल ही दी थी परन्तु इसकी असली उन्नति फ्रान्सीसी चित्रकार (painter) लूइस जैक्स मान्डे डेग्यून (Luis Jaques Mande Daguene) ने की। चांदीकी प्लेटपर ब्रोमीन या आयोडीमकी तह जमाकर उसका प्रयोग किया। इस प्लेटको पारे द्वारा डेवलप (develope) तथा पोटैसिम साइनाइड द्वारा स्थायी (fix) किया गया। इस प्रथासे बहुत अच्छे फोटो लिये गये तथा इसका बड़ा प्रचार हुआ। यूरोपकी बहुतसी कलाशालाओं (art museum) में अभी इस प्रकारसे ली हुई कुछ सुन्दर फोटो देखनेमें आती हैं।

वर्त्तमान उन्नति

फोटोग्राफीका वर्तमान रूप विलियम हेनरी फाक्स टालबाट (William Henry Fox Talbot) नामक अंगरेज आविष्कारककी बुद्धिका फल है जिसने सन् १८४२ में पहले पहल कागजके 'निगेटिव' तथा 'पाजिटिव' बनाये। इसके बनानेमें उसने सिल्वर क्लोराइडके प्रकाश द्वारा काले पड़ जानेके रासायनिक परिवर्तनकी सहायता ली। इस गुणको सबसे पहले अंगरेज ज्योतिषी विलियम हरशल (William Herschal) ने लगभग १७७८ में मालूम किया था। टालपाटके कागजके "निगेटिव" आजकलके "निगेटिव" के प्रतिरूप थे परन्तु इनमें अनेक दोष थे। सन् १८५१ में फ्रेडरिक स्काट आरचर (Fedrick Scott Archer) नामक अंगरेज कलाकारने इनमें काफी सुधार किया। शीशेकी प्लेटें जिनके ऊपर रजतके यौगिकोंसे मिश्रित कलोडियनकी तह जमी हुई थी काममें लायी गयीं। इससे बहुत ही संतोष-जनक फल प्राप्त हुए और इस प्रकार फोटोग्राफीमें एक नवयुगका संचार हुआ। इन शीशेके "निगेटिव" में सबसे बड़ा लाभ यह था कि इनसे कितने ही "पाजिटिव" बनाये जा सकते थे। इतना होनेपर भी यह प्रथा दोषरहित न थी क्योंकि यह निगेटिव तुरन्त ही बनी हुई अवस्थामें ठीक काम करते थे बहुत दिन तक रखे नहीं जा सकते थे। अतः एक फोटोग्राफरको अपने साथ प्लेट बनाने तथा डेवलप करनेका सारा सामान लेकर चलना पड़ता था। इस प्रकार यदि कहीं फोटो लेने जाना हो तो सारा सामान टट्टुओं या कुलियों पर लदवा कर लेजाना पड़ता था। इन दोषोंके होते हुए भी लगभग १८७० तक इस प्रथासे बहुतसे अच्छे-अच्छे फोटो लिये गये जो अबतक कलाशालाओंमें सुरक्षित अवस्थामें हैं। फोटोग्राफीका असली आविष्कार सन् १८७१ में हुआ जब कि रेजीनाल्ड मेडाक्स नामक अंगरेज डाक्टरने जिलेटीनकी बनीं हुई सूखी प्लेटोंका प्रयोग किया जो कि कलोडियनकी गीली प्लेटोंसे सौगुनी अधिक गतिकी थीं। यह प्लेटें कितने ही समय तक सूखी अवस्थामें रक्खी जा सकती हैं। इस आविष्कारने फोटोग्राफीका स्वरूप ही बदल दिया। मेडाक्सकी सूखी प्लेटोंका आविष्कार किसी प्रकारसे भी सूक्ष्मदर्शक, दूरदर्शक, सिनेमा या एक्सरेके आविष्कारसे कम गौरवका नहीं है।

इसके पश्चात् फोटोग्राफीकी बहुत तीव्र उन्नति हुई। इस सम्बन्धमें आरथोक्रोमेटिज़्म (Orthochromatism) के आविष्कारक जीगफ्रीड वोगेल (Zigfried Vogel), पैनक्रोमेटिक इमलशन (Panchromatic emulsion) के बनाने वाले पाल कानिज (Paul Konig) फोटोग्राफिक फिल्मके बनाने वाले कोडक कम्पनीके जार्ज इस्टमेन (George Eastman), रंगीन फोटोग्राफीके संचालक एन्ड्रे ल्यूमीरे (Andre Lumierre) इत्यादिके नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। इतना होने पर भी इस क्षेत्रमें अभी अन्वेषणके लिये काफी गुन्जाइश है।

२००० विक्रमसंवत् गत है, वर्तमान नहीं

[श्रीमहावीरप्रसाद श्रीवास्तव बी० एस्-सी० एल० टी० विशारद]

इस वर्ष भारतवर्षमें, विशेषकर उत्तर-भारतमें, जगह-जगह विक्रम-द्विसहस्राब्दीका उत्सव मनाया जा रहा है। दिल्ली, कानपुर आदिमें इसको समाप्त हुए दो माससे अधिक हो गये। काशीमें नागरी-प्रचारणी सभाकी स्वर्ण-जयन्तीके अवसर पर यह उत्सव भी गत वसन्तपंचमीको मनाया गया। इसका बृहत् आयोजन ग्वालियर महाराजके संरक्षणमें आगामी चैत्रशुक्ल १, संवत् २००१, तदनुसार २५ मार्च, सन् १९४४ ई० को उज्जैनमें हो रहा है; क्योंकि उज्जैन—जो महाराजाधिराज विक्रमादित्यकी राजधानी थी—आजकल ग्वालियर-राज्यमें है। इस महोत्सवके कर्णधारोंका यह निश्चित मत जान पड़ता है कि विक्रमसंवत् के २००० वर्ष आगामी चैत्रकृष्ण अमावस्या (२४ मार्च, १९४४ ई०) को पूर्ण होंगे और इसके दूसरे दिनसे २००१वाँ वर्ष चलेगा। यही धारणा प्रायः सभी अँगरेज़ी शिक्षित समुदायकी जान पड़ती है; क्योंकि वे ईस्वी सन्से अधिक परिचित हैं और जानते हैं कि किसी वर्षकी १ ली जनवरीसे जो सन् लिखा जाता है, वह उसी वर्षके दिसम्बर मासमें पूर्ण होता है। इस वर्ष ईस्वी सन्का १९४४ वाँ वर्ष चल रहा है, जो आगामी दिसम्बरकी ३१ तारीखकी आधी रातको समाप्त होगा। इसी लिए प्रामाणिक लेखोंमें १९४४ की जगह 'ईसाका १९४४ वाँ वर्ष' कहते हैं। ऐसे सन्को वर्तमान (current) वर्ष या संवत् कहते हैं।

परन्तु भारतवर्षमें गत वर्ष लिखनेकी प्रथा है। इसी लिए शास्त्रीय लेखोंमें संवत्के साथ गत, अतीत, व्यतीत अथवा याते शब्द भी जोड़ दिया जाता है। इस प्रथाके अनुसार इस समय जो २००० विक्रमीय संवत् लिखा जाता है, वह गत चैत्रकी अमावस्या (४ एप्रिल, १९४३) को ही समाप्त हो गया, अगले चैत्रकी अमावस्याको तो २००१ संवत् समाप्त होगा। इसलिए यह कहना भूल है कि अगली चैत्र-अमावस्याको विक्रमके २००० वर्ष पूर्ण होंगे। इस सम्बन्धमें इन पंक्तियोंके लेखक ने अँग्रेजीके दैनिक 'लीडर'[१] तथा 'जयाजी प्रताप'[२] में पाठकोंका ध्यान आकर्षित किया था। लीडरमें इसका कोई प्रतिवाद नहीं निकला, परन्तु जयाजी प्रतापमें डाक्टर हरिरामचन्द्र दिवेकरजी ने स्वर्गीय शंकर बालकृष्ण दीक्षितजीके मतका सहारा लेते हुए कई उदाहरण देकर यह सिद्ध करनेका प्रयत्न किया कि विक्रमीय संवत् भी 'वर्तमान' संवत् है और आगामी चैत्रकी अमावस्याको ही इसके दो हज़ार वर्ष पूरे होंगे। यह सिद्ध करनेके लिए जो उदाहरण दिये गये हैं, वे मेरे ही मतको पुष्ट करते हैं—जो आगे चलकर दिखाया जायगा। अपने मतके समर्थनमें चार प्रकारके प्रमाण दिये जायंगे—(१) पंचांगकर्ताओं की परम्परा, (२) हिन्दी या संस्कृतमें लिखे हुए प्राचीन ग्रन्थोंके रचनाकाल, (३) शिलालेखों और ताम्रपत्रोंमें लिखी हुई तिथियाँ और (४) प्रसिद्ध इतिहासज्ञोंकी सम्मतियाँ।

१. पंचांगकर्ताओं की परम्परा

काशी, लखनऊ, प्रयाग, जयपुर कहींका पंचांग ले लीजिए और उसके आरम्भके पृष्ठोंको पढ़नेका कष्ट कीजिए। जिस संवत्का पंचांग होगा, उसी संवत्की संख्याके साथ गताब्द, अतीताब्द अथवा व्यतीताः शब्द लिखा मिलेगा। उदाहरणके लिए कुछ उद्धरण दिये जाते हैं—

(१) काशी-हिन्दूविश्वविद्यालयके ज्योतिष-धर्मशास्त्र-विभागसे प्रकाशित विश्वपंचांग विक्रम-संवत् १९९८ के पृष्ठ ३, स्तम्भ २ की दूसरी और तीसरी पंक्तियोंमें लिखा है—"विक्रमराज्यकालात्संवत्सराः गताः १९९८, शकारम्भतश्च १८६३ व्यतीताब्दाः।"

---

१. २८ अक्तूबर, १९४३ ई० का अंक।

२. ११, १८ अक्तूबर तथा ६ और १३ दिसम्बर-के अंक।

(२) संवत् १९९८ के नवलकिशोर प्रेस लखनऊके छपे पंचांगके पृष्ठ पर लिखा है—"श्रीमन्नृपतिविक्रमादित्यस्यातीताब्दाः १९९८।"

(३) तार्थराज पञ्चांग सम्वत् १९९९ के पृष्ठ २ पर लिखा है—अथास्मिन् वत्सरे...कलेरारम्भतः त्रिचत्वारिंशत्युत्तरपंचसहस्रमितानि वर्षाणि (कलिसम्वत् ५०४३ गत) व्यतीतानि विक्रमराज्यकालात् संवत्सरगताः १९९९ शकारम्भतश्च १८६४ व्यतीताब्दाः।"

(४) महेन्द्रविजय पञ्चांग सम्वत् १९९२ में लिखा है—"अथास्मिन् वर्षे...विक्रमराज्यगताब्दाः १९९२ शकारम्भतश्च १८५७ वत्सरा व्यतीताः।"

(५) पूनाके 'पञ्चांगप्रवर्तन कमेटी चें शुद्धनिरयन पञ्चांग' में लिखा है –"शक सं० १८५० सम्वत् १९८४-८५ श्रीमन्नृपविक्रमार्कसमयातीत सम्वत् १९८४।"

(६) गुजराती पत्राच्या न्यूज़ प्रेसचें चैत्री पञ्चांगमें लिखा है—"शके १८५० सं० १९८४-८५ श्रीमन्नृपविक्रमार्कसमयातीत सं० १९८४।"

इन उद्धरणोंसे पता चलेगा कि उत्तर भारतके पञ्चांगों के जितने उद्धरण दिये गये हैं, सबमें विक्रमसम्वत् बीता हुआ माना गया है। इस बीते हुये सम्वत्की संख्यामें १३५ घटा देनेसे शकसम्वत्की संख्या आ जाती है। परन्तु बम्बई तथा पूनाके छपे पञ्चांगोंमें दो सम्वतोंकी संख्या दी रहती है। इसका कारण यह है कि बम्बई या गुजरातमें विक्रमसम्वत् कार्त्तिक शुक्ल १ से बदलता है। इसलिए चैत्रशुक्ल १ को जो सम्वत् लिखा जाता है, वह उत्तरी भारत के विक्रम संवत्से संख्यामें एक कम लिखा जाता है परन्तु कार्तिकशुक्ल १ से दोनों एक हो जाते हैं। परन्तु यह भी गत होता है, जो पिछले दो उदाहरणोंसे स्पष्ट है।

२. हिन्दी या संस्कृतमें लिखे हुए प्राचीन ग्रन्थोंके रचनाकाल

(१) गोस्वामी तुलसीदासजीके जगतप्रसिद्ध रामचरितमानसका रचनाकाल यह है—

सम्वत सोरह सै इकतीसा।
करउँ कथा हरि पद धरि सीसा॥
नौमी भौमवार मधुमासा।
अवधपुरी यह चरित प्रकासा॥
जेहि दिन राम जनम स्रुति गावहिं।"
(बालकाण्ड, दोहा ३३, चौ० २, ३)

इसमें सम्वत्के साथ गत शब्द नहीं है। परन्तु चैत्र शुक्ल ९ भौमवारको तभी पड़ सकती है, जब सम्वत् १६३१ गत माना जाय। इसके अनुसार अँग्रेज़ी तारीख ३० मार्च, १५७४ ई० है।

(२) नागरी-प्रचारिणी पत्रिका भाग ६, अंक १, पृष्ठ २४ में लिखा है, "नरपति नाल्ह कवि विग्रहराज चतुर्थ उपनाम बीसलदेवका समकालीन था। इसने बीसलदेव रासोमें निर्माणकाल यों दिया है—

'बारह सौ बहोत्तरां हाँ मंझारि।
जेठ बदी नवमी बुधवारि॥
नाल्ह रसायण आरम्भइ।'

बारह सै बहोत्तर = १२१२। बहोत्तर शब्द 'बरहोत्तर' द्वादशोत्तर का रूपान्तर है। विग्रहराज चतुर्थका समय भी १२२० के आसपास है। इसके शिलालेख भी सं० १२१० तथा १२२० के पास हैं।" सम्वत् १२१२ में जेठबदी नवमी बुधवारको तभी पड़ती है, जब यह गत सम्वत् माना जाय।

(३) सूर्यशतकके टीकाकार भट्ट यज्ञेश्वर लिखते हैं, "पुरा किल श्रीविक्रमार्कसमयादष्टसप्तत्युत्तरसहस्रस्य सम्मितेषु व्यतीतेषु संग्रामोदयस्य...मयूरो धारानगर्यां वसतिस्म" (नागरी-प्रचारिणी पत्रिका, भाग ७, अंक ३, पृष्ठ २६६)। यह सम्वत् १०७८ विक्रमीय सन् १०२१-२२ ई० का समय है। यहां साफ़-साफ़ व्यतीत शब्द लिखा हुआ है।

३. शिलालेखों और दानपत्रों के समय

पहले वे उदाहरण दिये जाते हैं, जिनको डा० हरिरामचन्द्र दिवेकरजीने अपने पक्षके समर्थनमें लिखा है (देखिए २३ दिसम्बर, १९४२ का ज० प्र०)।

(१) धौलपुरके चंड महासेनके विक्रमसंवत् ८९८ के शिलालेख में यह है—

"वसु नव (अ) ष्टौ वर्षागतस्य कालस्य विक्रमा-

ख्यस्य [।] वैशाखस्य सिताया (यां) रविवारयुत् द्वितीयायां" (इंडियन ऐंटीक्वेरी जिल्द १६, पृष्ठ ३५)

दिवेकरजीने केवल प्रथम खण्डको उद्धृत किया है और 'आगत' शब्दसे यह समझ लिया है कि यह वर्तमान संवत् है। परन्तु जब वैशाखशुक्ल द्वितीया रविवारका विचार किया जाय, तो यह गत संवत् सिद्ध होता है और दक्षिण-भारतकी प्रथाके अनुसार कार्तिकादि है। इसकी अंगरेज़ी तारीख़ प्रो० कीलहार्नकी गणनाके अनुसार भी १६ एप्रिल, ८४२ ई० है (इंडियन ऐंटीक्वेरी जिल्द १६, पृष्ठ २०, उदाहरण ५७)।

दिवेकरजीके दूसरे उदाहरण 'मालवानां गणस्थित्या याते शतचतुष्टये। एकषष्ठ्यधिके प्राप्ते' में याते शब्द विशेष महत्त्व रखता है। इसका अर्थ है गत। 'प्राप्ते' का अर्थ 'वर्तमान' नहीं है। मालव नामके अन्य संवतोंके शिलालेखोंमें याते शब्द बराबर आया है, जिससे सिद्ध होता है कि यह संवत् भी गत है, देखिए नीचेके उदाहरण—

(क) वत्सरशतेषु पंचसु विशंत्य (विंशत्य) धिकेषु नवसु चाब्देषु।

यातेष्वभिरम्य तपस्यमासशुक्लद्वितीयायां।

(फ़्लीट गुप्त इंसक्रिप्शन्स पृष्ठ ८३; इंडियन ऐंटीक्वेरी जिल्द १५, पृष्ठ १९८)

यहाँ याते शब्दके साथ ऐसे कोई शब्द नहीं आये हैं, जिनसे भ्रम हो कि यह वर्तमान संवत् है। भांडारकर स्मृतिग्रन्थमें श्रीयुत के० वी० पाठक भी इसका अर्थ गत संवत् ५२९ ही करते हैं।

(ख) "मालवानां गणस्थित्या याते शतचतुष्टये। त्रिनवत्यधिकेब्दानां रि (ऋ) तौ सेव्य घन स्वने। सहस्यमासशुक्लस्य प्रशस्तेह्नि त्रयोदशे।"

(फ़्लीट गुप्त इंसक्रिप्शन्स पृष्ठ ८३)

यहाँ भी याते शब्द बतलाता है कि यह संवत् गत संवत् है।

(ग) मंदसोरसे मिले हुए यशोधर्मन् (विष्णुवर्द्धन) के समयके शिलालेखमें यह है—"पञ्चसु शतेषु शरदां यातेष्वेकोन्नवतिसहितेषु मालवगणस्थितिवशात् कालज्ञानाय लिखितेषु" (फ़्लीट गुप्त इंसक्रिप्शन्स पृष्ठ १५४)। इसका अर्थ है, मालवगणकी प्रथाके अनुसार कालज्ञानके लिए लिखे हुए ५८९ वर्ष बीतने पर।

इतने उदाहरणोंसे स्पष्ट है कि मालवसंवत् गत संवत् है और अब यह भी सिद्ध हो गया है कि यही संवत् आगे चलकर विक्रमसंवत्के नामसे प्रसिद्ध हो गया। जिसे इस विषयमें अधिक जानना हो, वह 'भांडारकर कमेमरेशन वालूम' पृष्ठ १८५ से २२२ तक पढ़ जानेकी कृपा करें।

इनके सिवा इंडियन ऐंटीक्वेरी जिल्द १९ में प्रो० कीलहार्नने २०० से ऊपर अवतरण देकर सिद्ध किया है कि विक्रमसंवतोंकी संख्या बहुधा गत संवतोंमें लिखी गई है। दो-तीन उदाहरण पर्याप्त होंगे—

(घ) महाराजाधिराज मथनदेवका ताम्रपत्र अलवर के पास राजौरगढ़में मिला था, जिसमें लिखा है—"संवत्सरेषु सतेषु दशासु षोडसोत्तरकेषु माघमास सितपक्ष त्रयोदश्याम् शनियुक्तायां एवं सं० १०१६ माघसुदि १३ शनौ अद्य:।" यहाँ संवत्के साथ तिथि और वार दोनों दिये हुए हैं, जिनसे सिद्ध है कि यह १४ जनवरी, ९६० ई० का दिन है। यह तभी संभव है, जब संवत् गत माना जाय।

(च) धांगादेव चंदेलके ननमौराके ताम्रलेखमें दिया है, "संवत्सरसहस्रे पंचपंचाषडधिके कार्त्तिकपूर्णिमास्यां रविदिने एवम् संवत् १०५५ K(a)rtti(ka) सुदि १५ रवौ अद्येह काशिकायां शैनिके ग्रहग्रासप्रवेशकृते मण्डले।" इसमें ग्रहणतिथि और वार तभी मिलते हैं, जब १०५५ गत संवत् माना जाय। इसकी ईस्वी तारीख़ ६ नवम्बर, ९९८ ई० है।

यहाँ एक बात ध्यान देने योग्य है कि जो वर्ष वर्तमान संवत्में लिखे गये हैं, वे एक बढ़ाकर लिखे गये हैं, जैसे संवत् १३९७ समये माघसुदि ४ सोमदिने तस्मिन् काले वर्तमान संवत्सरे...' में १३९७ वर्तमान संवत् है, जो गत १३९६ के समान है। इसकी ईस्वी तारीख़ है ३ जनवरी, १३४० ई०। इसकी परीक्षा दूसरी तरह भी की जा सकती है। यदि २००० संवत् वर्तमान है तो उपर्युक्त १३९७ से इसका अंतर होता है ६०३। परन्तु इस समय ईस्वी सन् १९४४ है, जो १३४० से ६०४ वर्ष अधिक है। इसलिए

यह सिद्ध होता है कि इस वर्षका संवत् २००० विक्रमीय वर्तमान नहीं है, गत है।

४. प्रसिद्ध इतिहासज्ञोंकी सम्मतियां

(१) म० म० पं० गौरीशंकर-हीराचन्द ओझा प्राचीन लिपिमालामें लिखते हैं, "शिलालेखादिमें विक्रम-संवत्के वर्ष बहुधा गत लिखे जाते हैं (इण्डियन ऐंटीक्वेरी जिल्द १ पृष्ठ ४०६) वर्तमान बहुत कम। जब कभी वर्तमान वर्ष लिखा जाता है, तब एक वर्ष अधिक लिखा रहता है।" (पृष्ठ १६७)। "विक्रमसंवत्का आरम्भ कलियुगसंवत्के (५०१६-१६७५) ३०४४ वर्ष व्यतीत होने पर माना जाता है, जिससे इसका गत वर्ष १ कलियुगसंवत् ३०४५ के बराबर होता है। इस संवत्में से ५७ या ५६ घटानेसे ईस्वी सन् और १३५ घटानेसे शकसंवत् आता है। इसका प्रारंभ उत्तरी हिन्दोस्तानमें चैत्र-शुक्ल १ से और दक्षिणमें कार्त्तिकशुक्ल १ से होता है, जिससे उत्तरी (चैत्रादि) विक्रमसंवत् दक्षिणी (कार्त्तिकादि) विक्रमसंवत्से ७ महीने पहले प्रारंभ होता है।" (पृष्ठ १६६)।

(२) दीवान बहादुर एल्-डी० स्वामी कन्नू पिल्ले इंडियन क्रॉनोलाजीके पृष्ठ ३ पर लिखते हैं—"हिन्दू सामान्यतः पूरे या अतीत वर्षोंकी गणना करते हैं, योरपीय पंचांगकी तरह वर्तमान वर्षोंकी नहीं और यह दूसरी बात है, जिसे आपको अच्छी तरह समझ लेना चाहिए।"[१] फिर पृष्ठ ४३ पर लिखते हैं, 'विक्रमसंवत् (गत वर्ष = ईस्वी सन् + ५७)—यह इस समय गुजरात में और बंगालको छोड़कर सारे उत्तरी भारतमें प्रचलित है। गुजरातमें कार्त्तिकादि और अमान्त है, इसलिए दक्षिणी विक्रम कहलाता है; उत्तरी भारतमें चैत्रादि और पूर्णिमान्त है, इसलिए उसको उत्तरी विक्रम कहते हैं।"[१] ६१ पृष्ठ पर यही बात और भी स्पष्ट कर दी गई है—"भारतीय संवत् नियमतः गत संवत् है, 'वर्तमान' नहीं.. इस ग्रन्थमें बहुत-से प्रमाणोंके आधार पर सब शुद्ध भारतीय संवत् गत वर्षोंमें ही लिखे गये हैं।"[२]

(३) जनवरी १९३४ के माडर्न रिव्यू में स्व० के० पी० जायसवाल लिखते हैं, "जैनों और मालवगण दोनों ने ऐसे संवत्का प्रयोग किया है, जिसका आरम्भ ५८-५७ ईस्वी पूर्व होता है। जैनोंकी कालगणना पच्छिमी भारत या अवन्तीकी कालगणना पर आश्रित है। यह अवन्तीके राजा पालकके सिंहासनारूढ होनेके समयसे आरंभ होती है, उन महाराजाधिराजाओंकी चर्चा करती है, जो पाटलिपुत्रसे अवन्ति पर राज्य करते थे और फिर स्थानीय राजे नहपन, विक्रम और अन्यका वर्णन करती है, जब कि अवन्ती अलग हो गई। इस प्रकार मालव और जैन दोनोंकी गणना, जिसमें ५८-५७ ईस्वी पूर्व संवत् का प्रयोग हुआ है, अवन्ती मालवाप्रदेशसे ही सम्बद्ध है।"[३]

---

१. "Hindus generally reckon completed or expired years and not current years as the European Calendar does and this is another point which you should thoroughly understand."

१. "Vikrama Era (expired year = A. D. year + 57). Extensively used in Guzerat and all over Northern India except Bengal; Kartikadi and Amanta in Guzerat hence called Southern Vikrama; Chaitradi and Purnimanta in Northern India, and hence called Northern Vikrama."

२. "Indian years...as a rule are 'expired', not 'current'......In the present work, folowing the bulk of authorities, all purely Indian eras (except the Kollam Andu) are expressed in expired years.

३. Both the Jainas and the Malawas counted an era from 58-57 B.C.. The Jaina Chronology is based on

यहाँ शकसंवत्के सम्बन्धमें भी कुछ कहना आवश्यक है; क्योंकि श्रीयुत दिवेकरजीने कालकाचार्य पुराणका उद्धरण देते हुए ज़ोर देकर कहा है, "शक वर्ष १८६५ चल रहा है, गत नहीं है, और यदि पूर्वोक्त प्रमाण माना जाय तो उसके अनुसार विक्रमका संवत् १८६५ + १३५ = २००० चल रहा है, पूरा नहीं हुआ।"[१]

कालकाचार्य पुराण यहाँ खोजने पर भी नहीं मिला, इसलिए उद्धरण जयाजी प्रतापसे ही लिया जाता है— जो कुछ अशुद्ध छपा है—शकानां मुबंशच्छेश कालेन कियतापिं हि। राजाश्रीविक्रमादित्यः सार्वभौमोपमो भवत्॥ स चोन्नत महासिद्धिः सौवर्ण पुरुषोदयात्। मेदिनीमतृणां कृत्वा चीक र(व) त्सरंनिजम्॥ ततो वर्षशते पंचत्रिंशता साधिके पुनः। तस्य राज्ञोऽन्वयं हत्वा वत्सरः स्थापितः शकैः॥ इससे दिवेकरजी यह अर्थ निकालते हैं, "इस परसे स्पष्टतया जान पड़ता है कि विक्रमादित्यने अपना निजी वत्सर स्थापित किया और उसके ठीक १३५ साल बाद शकोंने अपना वत्सर स्थापित किया अर्थात् संवत्के आरंभमें और शकके आरम्भमें ठीक १३५ सालका अन्तर है।" यहाँ तक दिवेकरजीके अर्थसे मैं भी सहमत हूँ। परन्तु जब वह शकसंवत्को वर्तमान संवत् कह कर अपना मन्तव्य सिद्ध करते हैं, तब वह भूल करते हैं; क्योंकि शकसंवत्को 'वर्तमान' कहना साधारण बात नहीं है। ज्योतिषके सैकड़ों ग्रन्थोंमें १४०० वर्षोंसे ज्योतिषके आचार्योंने शकसंवत्का ही प्रयोग किया है और स्थिर कर दिया है कि शकसंवत् कबसे आरम्भ होता है। वराहमिहिर ने ४२१ शकका प्रयोग किया है, यह गत शक है, वर्तमान नहीं। ब्रह्मगुप्तने ५५० शकके बने ब्रह्मस्फुट सिद्धान्तमें साफ़-साफ़ लिखा है कि कलियुगके ३१७९ वर्ष बाद शकसंवत्का आरम्भ होता है (संज्ञाध्याय श्लोक ७-८ तथा मध्यमाधिकार श्लोक २६-२७)। भास्कराचार्य १०७२ शकके बने सिद्धान्त-शिरोमणिमें यही बात[१] लिखते हैं।

गणेश दैवज्ञने ग्रहलाघवमें १४४२ शकका प्रयोग किया है, वह भी 'गत' शक है। इसके प्रमाण स्वयं शंकर बालकृष्ण दीक्षितके भारतीय ज्योतिःशास्त्रमें भरे पड़े हैं। कहीं-कहीं गणना से उन्होंने सिद्ध किया है कि कुछ शक-संवत् 'वर्तमान' संवत् हैं, परन्तु इसे अपवाद ही समझना चाहिए। इसलिए दीक्षितजीका यह मत तो किसी पुष्ट प्रमाणसे नहीं सिद्ध होता कि शकसंवत् वर्तमान संवत् है। इसलिए कालकाचार्य पुराणसे यह तो सिद्ध नहीं होता कि विक्रमसंवत् २००० वर्तमान है, वरन् उल्टे यह सिद्ध होता है कि विक्रमसंवत् 'गत' संवत् है।

यहाँ संक्षेपमें यह बतला देना आवश्यक जान पड़ता है कि गत वर्षोंमें घटनाका समय लिखनेकी प्रथा विक्रम-संवत्से २५० वर्ष पूर्व अशोकके धर्मलेखोंमें भी पाई जाती है। इलाहाबादके क़िलेकी अशोकलाटमें अशोकके आज्ञापत्र इसी प्रकार लिखे मिलते हैं। पहले आज्ञापत्रमें लिखा है, 'मेरे राज्याभिषेकके जब २६ वर्ष बीत गये, तब यह धार्मिक आज्ञापत्र लिखे जानेकी मैंने आज्ञा दी थी।'[२] यही बात चौथे आज्ञापत्रमें दुहराई गई है। छठे आज्ञापत्र में लिखा है, "मेरे राज्याभिषेकके १२ वर्ष बीतने पर मैंने प्रजाकी भलाई और सुखके लिए धर्मसम्बन्धी आज्ञापत्र

[अगले पृष्ठके पहले कालमके नीचे पूर्ण]

the Chronology of Western India or Awanti, It starts with the accession of Palaka, King of Awanti, comes to the Emperor who rules over Awanti from Pataliputra and reverts to the local rulers Nahapana, Vikrama and others, when Avanti became a separate unit. Thus both the Malawa and Jaina reckonings which use the era of 58-57 B.C. are traced to the locality of Awanti-Malawa.

१. जयाजी प्रताप, २३ दिसंबर १९४३, पृष्ठ ७।

१. नन्दाद्रीन्दुगुणास्तथा शकनृपस्यान्ते कलेर्वत्सराः।

२. 'After I had been annointed 26 years I ordered this religious edict to be written [Buhler]' माडर्न रिव्यू दिसम्बर १९१० पृष्ठ ६६२।

व्यावहारिक मनोविज्ञान

पढ़नेकी कला

[श्री० राजेन्द्र बिहारीलाल, एम० एस-सी० इण्डियन स्टेट रेलवेज़]

भाषाका महत्त्व

मनुष्यने जो यंत्र बनाये हैं उनमें सबसे उपयोगी, महत्त्वपूर्ण और अधिक कामका यंत्र भाषा है। कुत्तोंकी यदि एक ऐसी जाति हो जो मस्तिष्कमें मनुष्यके समान हो, तो मनुष्यके बराबर दिमाग़ होते हुए भी वे कुत्ते मनुष्यके बराबर उन्नति कदापि नहीं कर सकते यदि उनके शरीरमें बोलनेका यंत्र मनुष्योंकी सी ऐसी भाषा पैदा करने में असमर्थ हो जो शब्दोंसे भरपूर हो और जिसके द्वारा विचार और भावके सूक्ष्म भेदोंको साफ़-साफ़ प्रकट किया जा सके। कारण यह कि उनके पास विचारोंको व्यवहारमें लानेके साधन न होंगे, और जब एक जीव विचारोंको प्रकट करने या दूसरी तरह काममें लानेमें असमर्थ है तो वह विचारोंका उत्पादन ही क्यों करेगा और दूसरोंको मालूम भी कैसे पड़ेगा कि उसके पास विचार हैं? इसी प्रकार प्राचीन जातियोंके लोगोंमें बहुतोंके पास उतनी ही मानसिक शक्तियां रहती हैं जितनी उनके सभ्य भाइयोंके पास। किन्तु यदि उनकी भाषा थोड़ेसे ही शब्दों तक सीमित है, जिनमें हर एकके बहुतसे भिन्न-भिन्न अर्थ हैं, तो वे लोग उतनी अच्छी तरह न सोच सकेंगे जितना कि उनके सभ्य भाई।

भाषा केवल दूसरोंके पास सम्वाद भेजने या उनसे वार्तालाप करनेका ही साधन नहीं वरन् उस सम्वादके लिए सामग्री पैदा करनेका सबसे महत्त्वपूर्ण द्वार भी है। भाषा विचारोंको व्यक्त तो करती ही है, उनके उत्पादनका भी मूलाधार है। हम लोगोंके सोचने, कल्पना करने, पहचानने, और याद करनेकी क्रियाओंका बहुत बड़ा अंश शब्दों पर निर्भर करता है और ऐसा जान पड़ता है कि हम किसी आदमी, बनस्पति या पहाड़को नहीं जानते जब तक हमें उनके नामोंका पता न हो जाय। किसी विशेष विषय (Technical Subject) में दक्षता प्राप्त करनेके लिए यह आवश्यक है कि पहले हम उसकी विशेष शब्दावलीसे पूर्ण परिचय प्राप्त करलें।

भाषामें योग्यता प्राप्त करनेकी उपेक्षा अधिक उपयोगी और सीखने योग्य हुनर बहुत थोड़े ही हैं। अच्छी तरह पढ़-लिख और बोल सकने वाले आदमीको भली प्रकार सोचने और अपने विचारोंको दूसरोंपर प्रकट करके प्रभावोत्पादक बनानेकी भी सुगमता रहती है।

इस विषयकी महत्ताको सोचते हुए यह स्वाभाविक ही है कि मनोवैज्ञानिक इस ओर अधिक ध्यान दें। वास्तवमें उन्होंने ऐसा किया भी है और उनकी छान-बीनके मोटे-मोटे परिणाम बिलकुल आश्चर्यचकित करने वाले हैं। उनसे प्रकट होता है कि अधिकांश लोग भाषाको बिलकुल फूहड़ ढंगसे व्यवहार करते हैं। वे जब पढ़नेकी चेष्टा करते हैं तो साधारण अर्थ या उसकी मोटी-मोटी बातें समझ जाते हैं पर उसके मानसिक संस्कार (Impressions) ग़लत होते हैं और उनकी पठन-गति भी मन्द रहती है। वे जब लिखनेका प्रयत्न करते हैं तो अपने विचारोंको अस्पष्ट, अशुद्ध और निर्बल ढंगसे व्यक्त करते हैं, जिसका कुछ कारण तो यह है कि वे केवल थोड़ेसे शब्दोंका प्रयोग करते हैं और कुछ यह कि सुन्दर वाक्य-

---

लिखे जानेकी आज्ञा निकाली..."[1] इसी प्रकार अशोकके सभी आज्ञापत्रोंमें, जो एक दर्जन से अधिक हैं, लिखनेका समय गत वर्षोंमें दिया हुआ है।

इस प्रकार यह सिद्ध होता है कि उत्तरी भारतकी प्रथाके अनुसार संवत् २००० विक्रमीय गत चैत्रकी अमावस्या (४ अप्रैल १९४३) को ही पूर्ण हो गया और दक्षिणी भारत विशेषकर गुजरातकी प्रथा के अनुसार गत दिवाली को।

—माधुरीसे

१. 'After I had been anointed 12 years I ordered religious edicts to be written for the welfare and happiness of the people.'...वही माडर्न रिव्यू ६६२।

रचना करनेमें वे असमर्थ रहते हैं। बोलनेमें दुर्बलता कितनी व्यापक है इसको तो प्रयोग द्वारा सिद्ध करनेकी कोई आवश्यकता ही नहीं। परन्तु जहाँ इतना निराशामय अन्धकार है वहीं उसमें आशामय प्रकाशकी झलक भी है, वह यह कि एक समझदार आदमी भाषापर अधिकार प्राप्त करने वाली अपनी निपुणतामें आश्चर्यजनक गतिसे उन्नति कर सकता है। वह पढ़ने, लिखने तथा बोलनेमें निस्सन्देह सफलता प्राप्त करना सीख सकता है बशर्ते कि वह उसके लिए इच्छुक हो और विधिपूर्वक प्रयत्न भी करे।

पढ़नेमें त्रुटियाँ

यदि आपसे कोई यह कहे कि आप पढ़ना नहीं जानते तो कदाचित् आपको बुरा लगे। निस्सन्देह आप पढ़ सकते हैं। यह तो आपने बहुत बचपनमें ही सीखना आरम्भ कर दिया था और स्कूलसे निकलते निकलते तो आप एक निपुण पाठक बन गये थे! मगर सच बात यह है कि यह स्वीकार करना तो स्वयम् ही शक पैदा करता है कि आप कुशल पढ़ने वाले नहीं हैं; क्योंकि यदि स्कूल छोड़नेके बाद आपने पढ़नेमें कोई उन्नति नहीं की, तो अवश्य ही आप अपूर्ण पाठक ही रह गए। यह देखनेमें आता है कि प्रायः लोग पढ़नेमें एक हद तक तरक्की करते हैं और उसके आगे रुक जाते हैं। जब आप स्कूलमें थे उस समयकी अपेक्षा कहीं अधिक आवश्यकता आपको इस समय है पढ़नेमें दक्षता प्राप्त करनेकी। आपको निस्सन्देह बड़ा लाभ हो यदि आप भाषा-यंत्रको व्यवहार करनेकी अपनी योग्यताको बढ़ा सकें।

यह कहनेसे हमारा क्या तात्पर्य है कि आप उतने कुशल पाठक नहीं हैं जितना होना चाहिए? हमारा मतलब कई बातोंसे है जो सभी महत्वपूर्ण हैं। पहली बात यह कि आप किसी पैराग्राफ़ या अध्यायको पढ़ लेनेके बाद विस्तार पूर्वक नहीं बता सकते कि आपने क्या पढ़ा है। बड़े आश्चर्यकी बात है कि इस विषयमें परीक्षा लेने पर कितने ही लोगोंमें गम्भीर दुर्बलता मिलती है।

आप उतने कुशल पाठक नहीं हैं जितना होना चाहिए ऐसा कहनेसे हमारा दूसरा अभिप्राय यह है कि आप आवश्यकतासे कहीं अधिक धीरे-धीरे पढ़ते हैं। यह विश्वास करनेके कारण हैं कि हममेंसे बहुतेरे अपने पढ़नेकी सामान्य गतिमें थोड़े परिश्रमसे भी बड़ी वृद्धि कर सकते हैं। यदि आप ऐसा कर सकें तो क्या यह हर प्रकार से उपयोगी सिद्ध न होगा?

तीसरे हमारा मतलब यह है कि पढ़नेकी कुछ विशेष पर अत्यन्त ही उपयोगी और महत्त्वपूर्ण क्रियायें हैं जिन्हें आप नहीं जानते। आपको इस योग्य होना चाहिये कि अपनी सामान्य गतिकी दूनी चालसे सरसरी तौरसे पढ़ सकें जिससे तत्त्वकी बातें या निचोड़को तो निकालते चले जायं— जैसे दूधमेंसे मलाई—पर साथ ही साथ पढ़ी हुई चीज़का साधारण अर्थ भी बहुत न छूटने पावे। क्या आप ऐसा कर सकते हैं? यदि आप किसी निपुण व्यक्तिको उस समय देखें जब कि वह अपने विशेष विषयको पढ़ रहा हो तो आप देखेंगे कि वह आद्योपान्त तो कदाचित ही कभी पढ़ता हो— वह केवल इधर-उधर निगाह डालता है और आवश्यक तत्वों एवम् मुख्य-मुख्य निर्णय फलोंको चुन लेता है, और शेष सब बातोंको उन्हींके सहारे समझ लेता है। वह अपने विषयको हर पंक्तिपर रेंग-रेंग कर पढ़ने वाले परिश्रमी व्यक्तिकी अपेक्षा अधिक तेज़ीसे पढ़ ही नहीं लेता, वरन् पूरा पढ़चुकने पर उसके बारेमें अधिक ज्ञान भी प्राप्त कर लेता है।

आपको इस योग्य होना चाहिए कि घटनाओं और यथार्थ बातोंको चुननेके लिए एक ढंगसे पढ़ सकें और सामान्य विचारोंको ग्रहण करनेके लिए एक दूसरे ढंगसे। इसके अतिरिक्त पढ़नेकी एक और विशेष प्रकारकी क्रिया होती है—पढ़ी हुई सामग्रीको संक्षेप करने, उसकी रूप-रेखा (Outline) तैयार करने और उसके नोट बनानेके उद्देश्यसे पढ़ना। प्रयोगों द्वारा यह सिद्ध हुआ है कि बड़े तेज़ दिमाग़ वाले भी ऐसी परीक्षा लेने पर जिसमें उनसे लेखकके विचारोंके भाग-प्रतिभाग, उनके क्रम और आपसके सम्बन्धको ठीक-ठीक बतानेको कहा जाय—बहुधा असफल हो जाते हैं। जब वह इतना नहीं कर सकते तो भला लेखकके अर्थको कैसे समझ सके होंगे?

पढ़नेके विषयमें उपर्युक्त अनुसन्धानसे मनमें जो चित्र रह जाता है वह इतना शोचनीय है कि हम उसे यहाँ पर कदापि उपस्थित न करते अगर हमें साथ ही साथ यह भी

न मालूम होता कि यह कैसे सँवारा जा सकता है। जब वे लोग जो पहले ही औसतसे अच्छे पढ़ने वाले हैं छः ही सप्ताहमें अपनी पठन-गति शत प्रतिशत और शुद्धता १० प्रतिशत बढ़ा सकते हैं तो फिर निस्सन्देह निराशाकी कोई आवश्यकता नहीं। यह विश्वास और भी दृढ़ हो जाता है जब हम इस बात पर ध्यान देते हैं कि इन लोगों ने यह सब उन्नति अपने दैनिक जीवनके कारोबारमें व्यस्त रहते हुए ही कर ली और उसको बादमें भी स्थायी रूपसे क़ायम रक्खा।

पढ़नेका क्या महत्त्व है, उसमें कितनी उन्नतिकी जा सकती है और करनी भी चाहिए ये बातें तो हमने समझ लीं। आइये अब उन उपायोंकी ओर ध्यान दें जिनसे पढ़नेमें तरक्की की जा सकती है।

उद्देश्यसे पढ़िये

पढ़नेके विषयपर की गई खोजसे एक बहुत बड़ा सिद्धान्त यह निकलता है कि पढ़नेकी सारी क्रिया उद्देश्य पर निर्भर है और उद्देश्यके साथ-साथ बदल जाती है। छपे हुए पृष्टको एक उद्देश्यके साथ अपने मस्तिष्कमें उतार लेना ही अच्छी पढ़ाई है। हर प्रकारका पढ़ना एक विशेष (Specialised) कार्य है क्योंकि किसी पृष्टको पढ़ते समय आप उसपर लिखी हुई हर बातको नहीं देखते बल्कि केवल उन्हीं बातोंको जिन्हें देखनेके लिए आप इच्छुक हैं। यदि कोई यह मानता हो कि मैं पढ़ते समय पृष्ट पर लिखी हुई हर चीज़को देख लेता हूँ तो यह न केवल सत्यके विपरीत होगा वरन् असम्भव भी। क्योंकि यदि वह यथार्थ बातों या घटनाओं पर विशेष ध्यान देता है तो उससे उसकी मोटी-मोटी सामान्य बातें (Generalization) छूट जाती हैं। और यदि वह इन दोनोंको ग्रहण करता है तो सम्भव है कि वह उसके साहित्य- चातुर्य को बिल्कुल ही न देख पावे।

अगर आप चाहते हैं कि आपका पढ़ना लाभदायक हो तो यह अत्यावश्यक है कि आप अपने पढ़नेका एक निश्चित उद्देश्य निर्धारित कर लें और यदि चाहते हैं कि आपकी पढ़ाईका कोई मूल्य हो तो उसे आप नियमशील अवश्य बनावें।

आप क्यों पढ़ना चाहते हैं? किसी रुचिपूर्ण विषयको समझकर उससे शिक्षा लेनेके लिए, या किसी दूसरी भाषाको सीखनेके लिए, अथवा अपने कारोबार सम्बन्धी ज्ञानकी वृद्धिके लिए? इस प्रकारकी कोई प्रेरणा आपको बना लेनी चाहिए जिससे आपके पढ़नेको लक्ष्य और उत्साह मिले। यह प्रेरणा कैसी हो यह आपके कारोबार और आपकी जीवन-स्थिति पर निर्भर है। विद्यार्थियोंके लिए परीक्षा और व्यापारियोंके लिए अपनी आमदनी बढ़ानेकी इच्छा प्रेरकका काम करेगी।

एक उद्देश्य निश्चित कर लेनेपर वह पढ़नेमें आपके लिए एक प्रबल आवेगका काम करेगा और मन एकाग्र करनेमें भी सहायता पहुँचायेगा क्योंकि रुचि या उद्देश्य ध्यानको स्थिर करनेके प्रधान अंगोंमेंसे एक अंग है।

अच्छा तो यह होगा कि आप उद्देश्यपूर्ण अध्ययनका अभ्यास करनेके लिए प्रति दिन आध घण्टा समय अलग निकाल लें। कोई चित्ताकर्षक पठन-वस्तु जो केवल अभ्यास के ही लिए नहीं वरन् स्वयम् वैसे भी पढ़ने योग्य हो आप चुन लें और तब केन्द्रित तथा निश्चित उद्देश्यके साथ उसको पढ़ें। इसके पढ़नेके क्या उद्देश्य हों उनमें कुछ यहाँ दिये जाते हैं: आप अपने मनमें ऐसी धारणा कर लें कि मैं इसे पढ़कर इसमेंसे कुल घटनाओं या यथार्थ बातोंको चुन लूँगा, इसमें दिये गये तर्ककी प्रत्येक बारीक बातको बखूबी समझूँगा, इसके भाषा-चातुर्यके गुणोंको ग्रहण करूँगा और उसका आनन्द उठाऊँगा, अथवा उसको उसी विषयपर किसी दूसरी पुस्तकमें पढ़ी हुई बातोंसे तुलना करूँगा। यह सिद्ध हो चुका है कि इन भिन्न-भिन्न प्रकारके आत्म-शिक्षणोंमें जो कुछ मनुष्य करता है वह भी भिन्न-भिन्न होता है। इस प्रकार पढ़नेकी सारी क्रिया उद्देश्यके साथ साथ बदल जाती है। आप यथार्थ बातों और घटनाओंसे कूट-कूटकर भरे हुए किसी वर्णनसे जो इतनी कम बातें ग्रहण कर पाते हैं उसका कारण यही है कि उसे उपन्यासकी तरह सरसरी निगाहसे पढ़ते हैं। इसी प्रकार उपन्यासका पूरा आनन्द नहीं उठा पाते क्योंकि उसे आप घटनाओंके एक ब्योरेवार वर्णनकी तरह पढ़ते हैं। पढ़नेमें दक्षता प्राप्त करना बिल्कुल उद्देश्य पर निर्भर है। बहुतसे लोग जो अच्छे पाठक नहीं होते उसका प्रधान

कारण यही है कि उनका पढ़ना उद्देश्य रहित होता है। अतः आप उद्देश्य पूर्ण पढ़नेका अभ्यास करें।

पढ़नेको क्रियाशील बनाना

पढ़नेमें सफलता प्राप्त करनेके लिए उसमें अभिरुचि रखना और उसका एक उद्देश्य निर्धारित कर लेना तो बिल्कुल आरम्भकी बातें हैं। अब इसके आगे जो होना आवश्यक है वह है क्रियाशील ढंगसे पढ़ना।

अधिकांश लोग केवल अपनी आंखोंसे पढ़ते हैं दिमागसे नहीं। इस प्रकार पढ़ते समय वे आखों द्वारा कुछ संस्कार प्राप्त कर लेते हैं और वहीं उनके पढ़नेकी क्रिया समाप्त हो जाती है। पढ़नेका यह ढंग किसी हल्के विषयकी पढ़ाई जैसे किस्से-कहानियाँ आदिके लिए तो ठीक है किन्तु जब गम्भीर अध्ययन करना हो और दक्षता प्राप्त करनी हो और भविष्यके लिए याद कर लेनेकी इच्छा हो तो मस्तिष्कको क्रियात्मक रूपसे काममें लगाना ज़रूरी है। तात्पर्य यह कि पढ़नेके साथ विचार करते रहना भी आवश्यक है। यदि पढ़नेको विचारनेका सहारा न दिया जाय, अर्थात् पढ़नेके साथ साथ विचारनेकी क्रिया न की जाय, तो उस पढ़नेका प्रभाव अस्थायी तथा दुर्बल होगा और वह मस्तिष्कसे उसी प्रकार फिसल जायगा जैसे चिकने घड़ेके ऊपरसे पानी। किसी भी अध्ययनको उपयोगी बनानेके लिए यह आवश्यक है कि विचारनेकी क्रियाको पढ़नेकी क्रियाके साथ घनिष्टतासे सम्मिलित किया जाय। आपके सोचनेकी क्रिया जितनी ही बलिष्ट होगी उतना ही अधिक लाभकारी आपका अध्ययन भी होगा। तीव्रतासे सोचनेसे मनको एकाग्र करनेमें तथा जो कुछ आप पढ़ते हैं उसे समझने और अधिक अच्छी तरह याद रखनेमें भी सहायता मिलती है।

इस विषयमें इमर्सनका मत है कि "पढ़ना संशोधनके लिए होना चाहिये न कि जानकारीके लिए।" एक दूसरे विद्वानने यही बात दूसरे शब्दोंमें यों कही है, "किसी किताबको पढ़नेके लिए आप अपने मनको उसके पास इस प्रकार ले जायँ जैसे एक कुल्हाड़ीको एक सान धरने वाले पत्थरके पास ले जाते हैं, यानी पत्थरसे कुछ मिलेगा इस उद्देश्यसे नहीं वरन् अपने पासकी कुल्हाड़ीको तेज़ करनेके लिए।"

पढ़नेसे पहिले सोचिये

इसका अर्थ यह है कि पहले सोचें और तब पढ़ें। कुछ लोग पहले पढ़ते हैं और तब सोचते हैं। यह ढंग यद्यपि सर्वोत्तम नहीं पर अच्छा है। परन्तु सबसे कम गुणकारी ढंग इन लोगोंका है जो केवल पढ़ते ही हैं सोचते बिल्कुल नहीं। अपने पढ़नेसे पूरा लाभ उठाने वाले वे विरले ही हैं जो पहले सोचते और बादको पढ़ते हैं। यदि पढ़नेके लिए आपके पास आध घण्टेका समय है तो आप दस मिनट पाठ्य-विषय पर अपने विचारों और ज्ञानके पुनरावलोकनमें खर्च करें और अगर आपका विश्वास है कि आप उस विषयमें कुछ नहीं जानते हैं तो कमसे कम उसके बारेमें कुतूहलपूर्ण अचरजके ही विचार करें और तत्पश्चात् शेष बीस मिनट पढ़नेमें व्यतीत करें। आप अपने वर्तमान ज्ञानका—चाहे वह थोड़ा हो या अधिक या नाम मात्रको हो, पढ़ाई द्वारा बढ़ानेके पहले—पुनरावलोकन अवश्य कर लें। और तब अपनी किताब खोलें और पढ़ना आरम्भ करें। तब आप इसका परिणाम देखेंगे कि वास्तवमें पहलेकी अपेक्षा आप अधिक समझ पाते हैं और याद भी ज़्यादा होता है।

आरम्भका सोचना मस्तिष्कको जागृत कर देता है जिससे वह विषयकी ओरसे सचेष्ट हो जाता है, उसका ज्ञान पुनः विधिपूर्वक क्रमबद्ध हो जाता है और बहुतसे प्रश्न निश्चित या अनिश्चित दृष्टिमें आ जाते हैं। पढ़ना आरम्भ करनेके पहले सोचनेसे मनमें विषयकी ओरसे जो प्रतीक्षाकी भावना पैदा हो जाती है उसके कारण बादमें पढ़ते समय बहुत सी ऐसी सूक्ष्म बातें सूझमें आ जाती हैं जो कदाचित् और किसी प्रकारसे न आ पातीं। आपके पुराने ज्ञानका क्रम ऐसे स्थान उपस्थित कर देता है जिनमें नये ज्ञानका प्रत्येक अंश बिल्कुल ठीक ठीक बैठ जाता है।

ऐसे अभ्याससे आपका मानसिक घर सुव्यवस्थित हो जाता है, उसके सभी अव्यवहृत कोने और कमरे खुलकर साफ हो जाते हैं और मन ज्ञान रूपी प्रकाशके प्रवेशके लिए तैयार हो जाता है जैसा अन्य किसी तरह की पढ़ाईसे नहीं हो सकता है। आपके भीतर आपके कुछ निजी विचार उठ खड़े होते हैं। बादमें पढ़नेके द्वारा आप उनमें सुधार, प्रसार और वृद्धि करते हैं। ऐसा करनेसे आपको

केवल ज्ञान और सुव्यवस्थित मनका ही लाभ नहीं होता, बल्कि इससे मन और व्यवसाय (will) की शक्तिमें भी वृद्धि होती है।

पढ़नेके विषयमें जो अनुसन्धान किए गए हैं वे भी इस परिणामके पृष्ठपोषक हैं। आप जो कुछ पढ़ने जा रहे हों उसके अन्दर क्या है इसका सामान्य ज्ञान पढ़ना आरम्भ करनेके पूर्व ही प्राप्त कर लेना सर्वथा अच्छा होता है। ऐसा करनेसे एक बुद्धिमत्तापूर्ण उद्देश्य तुरन्त उपस्थित हो जा[illegible] । और यह विदित हो जायगा कि आप उस पाठ्य-[illegible]में क्या छोड़ दें और क्या ग्रहण कर लें। यदि लेखकने अध्यायका सारांश अथवा उपसंहार दिया हो तो उसे सबसे पहले पढ़ लीजिये। अगर विषयकी एक अच्छी सूची हो जिसमें किताबका एक खाका दिया हो तो उसे अवश्य ही पढ़ डालिये। आप जो पढ़ना चाहते हैं उसपर अगर कोई समालोचना मिल जाय तो उसे देख जाइये। और अगर उसके बारेमें कोई मित्र कुछ बता सकता हो तो उसीसे जान लेनेकी चेष्टा कीजिये। यद्यपि यह केवल मन बहलावकी पढ़ाई जैसे कहानियाँ और उपन्यास आदिमें लागू नहीं होता लेकिन शेष उन सभी प्रकारकी पढ़ाइयोंके लिए प्रयुक्त होता है जिनमें लोग कम-से-कम समय देकर विषयको खूब अच्छी तरह समझ लेना चाहते हैं।

पढ़ना और सोचना

परन्तु इसका अर्थ यह कदापि न समझ लेना चाहिये कि सोचना केवल पढ़नेसे पहलेका ही काम है। सोचना पढ़नेकी क्रियाका एक मूल तत्व है। पढ़नेको गुणकारी बनानेके लिए यह नितान्त आवश्यक है कि पढ़ना आरम्भ करनेके पहले ही नहीं बल्कि पढ़ते समय और पढ़ना समाप्त होनेके पश्चात् भी सोचा जाय। उदाहरणार्थ—आप थोड़ा रुक जाइये, लेखकके तर्क और प्रतिपादनको एक पैरा या सफहा पढ़नेके बाद समझिये, उसके मुख्य-मुख्य विचारोंको चुन लीजिये और यदि किताब आपकी ही हो तो उसमें चित्ताकर्षक तथा महत्वपूर्ण वाक्योंके नीचे निशान लगा लीजिये। ऐसा करनेसे आवश्यक विचार आसानीसे दृष्टिगोचर हो जाते हैं और उन्हें अच्छी तरह अपनी स्मृतिमें जमा लेनेमें सहायता पहुँचती है। आप लेखकके तर्क और उसके प्रतिपादन-विधिकी तुलना कभी पहले पढ़ी हुई उसी विषयकी किसी दूसरी किताबसे करें।

अगर एक ही विषय पर दो किताबें साथ-साथ पढ़ रहे हों—जैसा कि गम्भीर अध्ययनके लिये सर्वथा स्तुत्य है—तो निस्सन्देह आपको एकका दूसरेसे हवाला देने (Cross-reference) और नोट लेनेकी आवश्यकता होगी।

समाचार पत्रोंकी भाँति किताबोंमें भी अन्तर होता है। दो विभिन्न स्थानोंसे देखनेसे ही किसी वस्तुकी गोलाई या मोटाईका पता चलता है। हमें किसी पदार्थके आकार और दूरीका अनुमान करनेके लिए दो नेत्रोंकी आवश्यकता होती है। इसी प्रकार हमें पढ़नेमें सही दृश्य (Perspective) अथवा ठीक-ठीक जानकारी प्राप्त करनेके लिए कई सम्मतियोंकी आवश्यकता है।

इसके अतिरिक्त पढ़नेमें दो और भी बातें हैं जिनकी आदत डालनेकी सलाह लोगों ने बड़े ज़ोरोंसे दी है। प्रथम यह कि सभी सामान्य नियमों और सिद्धान्तोंके उदाहरण अपनेसे सोच निकालनेकी आदत डालें; केवल नियमोंको सीखकर तथा सिद्धान्तोंको समझकर ही सन्तुष्ट न हों वरन् व्यवहारमें लाने योग्य उदाहरण और प्रयोग स्वयम् ढूँढ़ निकालनेका अभ्यास करें। अपनेसे ढूँढ़ निकाले हुए आपके ये व्यावहारिक उदाहरण तथा प्रयोग किताबमें दिये गये उदाहरणोंकी अपेक्षा अधिक मूल्यवान ठहरेंगे और साफ-साफ प्रकट कर देंगे कि आपने उन साधारण नियमों तथा सिद्धान्तोंको खूब अच्छी तरह समझ लिया है अथवा नहीं। दूसरी बात यह है कि किसी पैराग्राफको पढ़ लेनेके बाद भी उस पर मन ही मन पुनर्विचार कर लेनेका अभ्यास करें। यह याद करनेका बहुत ही उत्तम तरीक़ा है। इसी तरह अध्यायकी समाप्तिपर उसमें जो कुछ पढ़ा हो उस पर फिर मनके अन्दर नज़र दौड़ा ले जाइये। ऐसा करनेसे मनको अध्यायके सारको याद कर लेनेमें सहायता मिलती है और साथ ही ऐसे प्रश्न जिनके उत्तर अगले अध्यायोंमें दिये हुए हैं अपने आप सूझ जाते हैं। किसी पुस्तकको पढ़ लेनेके बाद अलग रख कर उसके बारेमें सब कुछ भूल न जायँ बल्कि उसमें जो कुछ पढ़ा

हो उसे संक्षेप करनेकी आदत डालें और अपनेसे प्रश्न करें कि लेखक जिस उद्देश्यको लेकर चला था उसमें उसे कहाँ तक सफलता मिली।

निष्क्रिय पढ़ना अव्यवस्थित पढ़नेसे भी अधिक हानिकारक है। इससे दिमाग़की शक्ति कदापि नहीं बढ़ सकती ठीक वैसे ही जैसे व्यायामशालामें केवल बैठे रहनेसे शरीरकी उन्नति नहीं हो सकती। ऐसी पढ़ाईमें मस्तिष्क कोई काम नहीं करता बल्कि एक स्वप्नकी सी अवस्थामें रह कर बिना किसी स्थानपर केन्द्रित हुए इधर-उधर भटकता रहता है। ऐसे पढ़नेसे तो मानसिक शक्तियोंकी लचक और तेज़ी और भी कम हो जाती है, दिमाग़ दुर्बल और सुस्त बनकर कठिन प्रश्नों तथा गम्भीर नियमोंको समझनेमें अयोग्य हो जाता है।

'जौन लाक' का कहना है कि पढ़ना केवल ज्ञानकी सामग्रीको जुटाता है और विचारना ही उस पढ़ी हुई वस्तुको अपना बना देता है।

किताबोंसे पूरा लाभ उठानेके लिए पाठकको विचारक होना आवश्यक है। केवल जानकारी प्राप्त करनेसे मनुष्यको शक्ति नहीं मिल सकती। मनको ऐसे ज्ञानसे भरना जो समय पड़नेपर काममें न लाया जा सके उसी तरह निरर्थक है जैसे किसी मकानको मेज़ कुर्सी तथा अन्य काठ-कबाड़से इतना भर देना कि उसमें चलने फिरनेको भी स्थान न रह जाय। भोजन तब तक शारीरिक बल, पुट्ठा और मस्तिष्क नहीं बनाता जब तक वह पूर्णतया पच नहीं जाता और पच कर रक्त, दिमाग़ और इन्द्रियोंसे भलीभाँति मिल नहीं जाता। इसी तरह जानकारी भी शक्तिमें उस समय तक परिवर्तित नहीं होती जब तक कि वह मन द्वारा पचाई न जाय और स्वयम् मनका ही एक अंश न बन जाय।

अगर आप चाहते हैं कि मानसिक बल प्राप्त करें तो यह आदत डालिये कि पूरे ध्यानसे पढ़ चुकनेके बाद कभी कभी अपनी किताब बन्द कर दीजिये और बैठकर सोचिये—या जी चाहे तो खड़े हो जाइये और टहलकर सोचिये—मगर सोचिये अवश्य। चिन्तन और मनन अवश्य कीजिये। आपने जो कुछ पढ़ा हो उसको बार-बार मनमें घुमाइये तथा उलट पुलट कीजिये। पढ़ी हुई वस्तु आपकी उस समय तक नहीं हो जाती जब तक आप उसे अपने विचार द्वारा न अपना लें तथा उसे अपने जीवनमें सम्मिलित न कर लें। जब उसे आप पहली बार पढ़ते हैं तो वह लेखककी ही मालियत होती है और आपकी वह तभी बनती है जब उसे आप स्वयम् अपना एक अंश बना लेते हैं।

कुछ लोगोंका ऐसा विचार रहता है कि अगर वे सदा पढ़ते रहें, अगर उनके हाथमें अवकाशके हर क्षण एक पुस्तक रहे तो वे अवश्य ही सुशिक्षित और सुडौल मन वाले बन जायँगे। यह एक भूल है जैसे कोई हर अवसर पर खाना खा लेनेसे पहलवान नहीं बन सकता। पढ़नेकी अपेक्षा सोचना कहीं आवश्यक है। जो कुछ पढ़ा है उसपर सोचना विचारना वही महत्त्व रखता है जो भोजनके लिए पाचन-क्रिया।

एक विद्वानका कहना है कि कोई मनुष्य अधिक संख्यामें किताबें पढ़ डालनेसे जानकार और बुद्धिमान नहीं बन जाता बल्कि समझ बूझकर चुनी हुई किताबोंकी अधिक संख्या पर इस प्रकार दक्षता प्राप्त करनेसे कि उनमेंका हर मूल्यवान विचार अपना एक परिचित मित्र बन जाय।

किसी सुन्दर काव्य या उत्कृष्ट निबन्ध अथवा किसी मधुर हास्य-रसकी पुस्तकको एक दो बार पढ़कर कोई उसके हृदयमें प्रविष्ट नहीं कर सकता। इसके लिए तो आवश्यक है कि उसके बहुमूल्य विचारों और दृष्टान्तोंको स्मृति कोषमें संचित किया जाय और उनपर अवकाशके घंटोंमें मनन किया जाय।

संकर धातुओंके नुसखे

[प्रोफेसर डी० स्वरूप, पी० एच-डी०, काशी विश्वविद्यालय]

संकर धातुओंके बनानेके लिए किस धातुको किस मात्रामें रहना चाहिए यह निम्न सारिणीसे ज्ञात किया जा सकता है।

संख्या	प्रयोजन	धातु-संकरका नाम और संकेत	एल्यूमीनियम	तांबा	जस्ता	मैंगनीज़	मैग्नीशियम	सिलीकन	विशेष धातु
			प्रतिशत	प्रतिशत	प्रतिशत	प्रतिशत	प्रतिशत	प्रतिशत	प्रतिशत
१	ढलाईके लिये	बी० ई० एस० ए० २ एल. ५	बाकी	२-५-३	१२-५-१४-५	—	—	—	—
२		बी० ई० एस० ए० २ एल. ८	बाकी	११—१३	—	—	—	—	—
३		बी० ई० एस० ए० ३ एल. ११	बाकी	६—८	—	—	—	—	रांगा१
४		बी०ई०एस०ए०एल०२४,वाई०धातुसंकर	,,	३-५-४	—	—	१-२-१-७	—	निकल १-८-२-३
५		डी० टी० डी० न० ५६	३-५-४·५	—	२-५-३-५	-२५-·७	बाकी	—	—
६		डी० टी० डी० न० २५	बाकी	—	—	०-५	—	१०-१४	लोहा-७५ से कम
७	चादरके लिये	बी० ई० एस० ए० एल. २८	,,	२-७-३-५	१८-२१	—	—	—	—
८		बी० ई० एस० ए० एल. २६	,,	२·२-३	१६-२०				
९		डी०-टी० डी० नं० ८८	१०	—	१·५	·३-५५	-२५-६	—	—
१०		बी० ई० एस० ए० एल० ३२	बाकी	२-२·५	४·५-५·०				
						१	बाकी	—	—
		फोर्ज करने और ठप्पेके लिये				—	—	—	—
११		डी० टी० डी० नं० १८ ए ड्यूरएल्यूमिन	,,	३-५-४	—	०-४-०-७	·४-·७	—	—
१२		डी० टी० डी० नं० ५८ वाई० धातुसंकर	,,	३-५-४-५	—	—	१·२-१·७	—	निकेल १·८-२·३
१३	बार	बी०ई०एस०ए० २एल ३ ड्यूरएल्यूमिन	,,	३-५-४-५	—	०·४-०·७	०·४-०·७	—	—
१४		बी०ई०एस०ए० २एल १ ड्यूरएल्यूमिन	,,	,,	—	,,	,,	—	—

संख्या	प्रयोजन	धातु-संकरका नाम और संकेत	तांबा	जस्ता	रांगा	निकल	सीसा	खास धातु
५	ढलाईके लिये	बी० ई० एस० ए० न० २०७						
		पीतल नं० १	५४	४१			०·५	बाकी निकेल, रांगा और मैंगनीज इत्यादि
		नं० २	५४	४१			०·५	
		नं० ३	५४	३८			०·५	
		नं० ४	५०	४०			०·५	
		नं० ५ (१६२४)	५०	३७			०·५	

	ढलाईके लिए	तांबा	जस्ता	रांगा	निकल	सीसा	खास धातु
१६	पीतल (६०—४०)	५९	३७	—	—	—	३ मैंगनीज़ और लोहा
१७	कारट्रेज ब्रास	६६.६	३३·३	—	—	—	
१८	घड़ीके लिये पीतल	६०	४०	—	—	१·५	—
१९	स्प्रिंग ब्रास (पीतल)	६६.६	३३·३	१·५	—	—	—
२०	जर्मन सिलवर (१८%)	६१.५	२०·५	—	१८	—	—
२१	नेवल ब्रास	६२	३७	१	—	—	—
२२	गन मैटल	८७	३	१०	—	—	—
२३	नाईक्रो कॉपर	९८	—	—	२	—	—
२४	क्यूप्रो निकेल	८०	—	—	२०	—	—
२५	मैंगनीज़ ब्रांज़	५९	३७	—	—	—	३ मैंगनीज़
२६	फ़ॉसफ़र ब्रांज़	८६	—	१३	—	—	०·२५ फ़ॉसफ़ोरस
२७	पीतल (चादर के लिये) (बी० ई० एस० ए० नं० २६५)	६१	३९	—	—	—	—
२८	टॉबिन ब्रांज़	५९-६३	बाक़ी	·५-१-५	—	—	—
२९	स्पैकुलम मैटल	६६-६८	—	३२-३४	—	—	—
३०	ब्रेज़िमा मैटल	८५	१५	—	—	—	—
३१	बेल मैटल (घंटा-धातु)	८०	—	२०	—	—	—
३२	ब्रांज़-स्टेट्यूरी	९१-४	५·५३	१·७	—	—	—
३३	ब्रांज़ (बेयरिङ्गके लिये)	८२-८४	२-४-४-५	१२-५ १४-५	—	१·०	—
३४	,, ,, एस० ए० ई०	८५	५	५	—	५	—
३५	एल्यूमीनियम ब्रांज़	बाक़ी	—	—	—	—	ऐल्यूमीनियम १-१२·१
३६	निकेल ब्रांज़	८५	२-७	२·५	१	१ ५	—
३७	,, ,, (वाल्वके लिये)	८०	—	१०	१०	—	—
३८	टाँका लगानेके धातुसंकर बी० ई० एस० ए० नं० २०६ ग्रेड ए०	२७·५-२९·५	९-११	—	—	—	चांदी ६०-६२

		तांबा	जस्ता	रांगा	निकल	सीसा	खास धातु
	,, ग्रेड बी०	३६-३८	१८-५-२०-५	—	—	—	चांदी ४२-४४
३९	एसिड प्रूफ	८९	—	—	२	—	ऐल्यूमीनियम ९·१
४०	निकेल सिलवर	६५-७५	—	—	२५-३५	—	—
४१	,, ,,	४६	२०	—	३९	—	—
४२	सिक्के बनानेके धातु	७५	—	—	२५	—	—
४३	कान्सटन्टैन	६०	—	—	४०	—	—
४४	मानल मैटल	२६'५	—	—	७२	—	लोहा १-५
४५	मैंगनिन	६५	—	—	५	—	फ़ेरोमैंगनीज़ ३०
४६	बैबिट मैटल नं० ४	—	—	५	—	८०	ऐंटीमनी १५
	नं० ५	—	—	—	—	९०	,, १०
४७	ब्राईट मैटल	—	—	—	—	८०	,, २०
	,, ,,	—	—	५-१५	—	७५-८०	,, १०-१५
४८	पैट्रोल इंजनके बेयरिङ्ग	४'५	—	९०	—	—	,, ५-५
४९	टाइप मैटल	२	—	१०	—	७०	१८
५०	छर्रोंके धातु	—	—	—	—	९९'६	संखिया ०'२-०-४
५१ (सोल्डर)	टाँका लगाने की धातु (१)	—	—	५०	—	५०	—
	(२)	—	—	६६'६	—	३३'३	—
	प्लम्बरोंके सोल्डर	—	—	३३'३	—	६६'६	—
५२	ब्रिटेनिया मैटल	१ ४६	—	९०'६२	—		७-८१ ऐंटीमनी
५३ (सोल्डर)	तांबा और पीतलका टाँका	५०	५०	—	—	—	—
५४	चाँदीका टाँका	३	—	—	—	—	पीतल ३ चांदी ९४
५५	सोनेका टाँका	२२	—	—	—	—	चांदी ११ सोना ६६
५६	जर्मन सिलवरका टाँका	४७	—	—	—	—	जस्ता ४२ निकेल ११

रत्न

(ले० —श्री प्रेमकृष्ण श्रीवास्तव एम० एस-सी०)

यह अद्भुत बात है कि कीमती वस्तुएं अधिकतर ऐसी जगहोंमें पाई जाती है जहाँ किसीकी कल्पना भी नहीं आ सकती। जो खनिज पृथ्वीके ऊपर स्वाभाविक रूपमें पाये जाते हैं उन्हें सब कोई देख सकता है। जो खनिज पृथ्वीके ऊपर होते हैं लेकिन स्वभाविक रूपमें नहीं होते उनको भी लोग पहचान सकते हैं। परन्तु जो खनिज नदियोंके तलके नीचे होते हैं या ऊपर काफ़ी ऊँचाई तक मिट्टी और बालूसे ढके होते हैं उनका पता लगाना कठिन ही नहीं असम्भव सा हो जाता है। फिर भी वैज्ञानिकोंने और भूगर्भ शास्त्र वेत्ताओंने इस कठिन विषयको बहुत ही सुगम बना दिया है।

अधिक मूल्यवान वस्तुएं हीरा, पन्ना, लाल, नीलम, तामरा, जरकम, सोना, प्लेटिनम (Platinum) और मोनेज़ाइट इत्यादि हैं जिनमें हीरा, सोना प्लेटिनम, मोनेज़ाइट इत्यादि आग्नेय शिलाओं (igneous rocks) में पाये जाते हैं और जिस जगह आग्नेय शिलायें परिवर्तित शिलाओं (mecamorphit rocks) से मिलती हैं उस जगह, जिसे मिलन-मंडल (Ccntact zone) कहते हैं नीलम, पन्ना, लाल इत्यादि मिलते हैं। परन्तु इन शिलाओंमें इन वस्तुओंका इतना कम भाग होता है कि अधिक मात्रामें बहुत खर्च करने पर भी निकालना असम्भव हो जाता है। पर प्रकृतिने ऐसा प्रबन्ध किया है कि बहुत थोड़े ही परिश्रमसे इन चीज़ोंका उचित परिमाणमें मिलना सुगम हो जाता है।

आग्नेय और परिवर्तित (igneous and metamorphic rocks) बहुत ही कठोर होते हैं। धीरे-धीरे उनका ऊपरी भाग टूट कर छोटे-छोटे टुकड़ों-में हो जाता है। यह क्रिया कई प्रकारसे होती है। सूरजकी कड़ी धूपमें शिलायें गर्म होकर बढ़ जाती हैं। और फिर रातमें ठंड पड़नेसे सिकुड़ती हैं। चूंकि ये शिलायें धातुओंकी अपेक्षा गर्मीकी अधम संचालक (bad conductor) होती हैं इसलिये उनका ऊपरी भाग दिनकी गर्मीसे जितना फैला था रातकी सर्दीसे लगभग उतना ही सिकुड़ जाता है। पर भीतरी हिस्सा उतनी जल्दी नहीं सिकुड़ पाता। फल यह होता है कि इस बराबर फैलने सिकुड़नेसे भीतरी और बाहरी हिस्सोंमें बहुत तनाव (tension) हो जाता है। असम फैलाव और संकुचनके कारण ऊपरी हिस्सा अनगिनित हिस्सोंमें टूट जाता है।

जिन पहाड़ोंपर बर्फ पड़ती है वहाँ दिनकी गर्मीसे पिघली हुई बर्फका पानी दराज़ोंमें दिनके समय भर जाता है। फिर रातमें अधिक ठंड पड़नेसे वह पानी बर्फ बन जाता है (११ हिस्सा पानीसे १२ हिस्सा बर्फ बन जाता है)। चूंकि पानी जमने पर फैल जाता है इस कारण उसका आयतन बढ़ जाता है। इस बढ़ावसे वह दोनों दीवालोंपर दोनों तरफ़ दबाव डालता है। लगातारकी इस क्रियासे बड़े २ टुकड़े बहुत छोटे २ भागोंमें विभक्त हो जाते हैं।

इन टुकड़ोंको तेज बहने वाली नदियाँ बहा ले जाती हैं और वे एक दूसरेसे टक्कर खाकर अन्तमें अत्यन्त सूक्ष्म कण हो जाते हैं। अधिकतर शिलायें बहुतसे खनिजोंके मिलनेसे बनती हैं। इन खनिजोंके घनत्व और भौतिक गुण (physical properties) भिन्न २ होते हैं। जहाँ तक नदियोंका बहाव बहुत तेज़ होता है वहाँ तक सब खनिज (minerals) पानीके साथ बह जाते हैं। लेकिन ज्यों-ज्यों पानीके बहावकी चाल कम होती जाती है त्यों-त्यों उसकी ताकत भी घटती जाती है और ये खनिज पदार्थ क्रमशः नदियोंके पेटेमें बैठने लगते हैं। पहले वह खनिज अलग होकर तहमें बैठते हैं जिनका घनत्व और खनिजोंकी अपेक्षा अधिक होता है। इसके बाद क्रमशः कम घनत्वके खनिज अलग होकर नदीके तह-में बैठने लगते हैं। इस तरह जितने खनिज उन शिलाओं में होते हैं वे अपने घनत्वके अनुसार क्रमशः नदीकी तहमें बैठते जाते हैं।

सोनेका घनत्व १९.३० है और प्लेटिनमका २१.५। ऊपर लिखे और खनिज पदार्थोंका घनत्व इससे कम है। इसीलिये सोना और प्लेटिनम सबसे पहले और सबसे निचले तहमें बैठ जाते हैं। दूसरे खनिजोंका घनत्व ३

और ६ के अन्दर ही है। इसीलिये अगर नदीका बहाव तीव्र हुआ तो वह अधिक दूर पर जाकर तहमें बैठते हैं। इसलिये इन चीज़ोंकी खोज करते समय खनिजोंका घनत्व और नदीके बहावकी चालकी तरफ़ पहले ध्यान देना चाहिये। इसके बाद यह आसानीसे मालूम हो सकता है कि अमुक खनिज किस जगह पर मिल सकता है। नदीके बहावकी चाल उसकी तहकी ढालसे मालूम कर सकते हैं। लेकिन यहाँ पर यह भी ध्यान देना होगा कि जबसे अमुक नदीमें पानी बहना शुरू हुआ तबसे कभी उसके पानीकी चालमें कोई परिवर्तन हुआ या नहीं। क्योंकि यह हो सकता है कि शुरूमें १० या १५ हज़ार वर्ष तक उसकी चाल एकसी रही हो और उसके बाद उस नदीके उद्गमकी जगह ऊँची होनेसे या नदीके पेटेके किसी जगह धंस जाने या उभड़ आने (Faulting) से बादमें नदीकी चाल बढ़ गई हो या घट गई हो। यह मालूम करना भी आसान है।

जिन नदियोंका बहाव तेज़ होता है और समुद्रके पास होती हैं उनका सब खनिज समुद्रमें चला जाता है। क्योंकि ऐसी जगहमें पानीका वेग बहुत होता है। ऐसी हालतमें समुद्रके किनारेका बालू साफ करनेसे बहुतसे खनिज मिल जाते हैं। बर्मा और रूसमें प्लेटिनम, हिन्दुस्तानके पूर्वी तटपर विज़गापटम या कटकके पास मोनेजाइट ठीक इसी प्रकार निकलता है।

हीरेका घनत्व ३ या ४ के बीचमें होता है। इस लिये यह ऐसी जगहमें होता है जहाँ नदीकी चाल बहुत तेज़ नहीं होती परन्तु बिलकुल कम भी नहीं होती। यह आम तौर पर कंकड़की तरह होता है। लेकिन यह कंकड़से कुछ सुडौल होता है कभी-कभी रवादार भी मिलता है। यह रवे चौपहल (Tetrahedron) या अठपहल (Octahedron) या दोनोंके मिले हुए रूपमें होता है। यह आम तौर पर दो तरहका होता है। एक काला और दूसरा बिना रङ्गका। लेकिन यह सब वस्तुओंसे कड़ा होता है, इसलिये छिप नहीं सकता। हिन्दुस्तानमें हीरेकी जो खानें पन्ना और गोलकुण्डा इत्यादि स्थानोंमें पाई जाती है वह सब नदियोंसे लाये हुये बालूके नीचे स्थित हैं। जो नदियाँ इन स्थानोंसे निकलती हैं वह इस (शिला) के टुकड़ोंको बहा ले जाती हैं जो आपसमें रगड़ खाकर चूर-चूर हो जाते हैं। चूंकि हीरा बहुत कड़ा होता है। इसलिये उसके टुड़े बहुत कम होते हैं। कभी-कभी बहुत बड़े बड़े ढेले भी पाये गये हैं, जैसे कोहनूर (गोलकुण्डामें पाया गया था) । इसके बाद हीरेका घनत्व और नदीकी चालके अनुसार ये हीरे नदीकी तहमें बैठ जाते हैं। हीरेकी कीमत उसकी तोल और रंग पर होती है। काला हीरा सिर्फ शीशा काटने और अच्छे हीरोंको पालिश करनेके काममें आता है। जो हीरा साफ़, बिना रंगका होता है वह अधिक मूल्यवान समझा जाता है।

जिस तरह हीरा निकलता है ठीक उसी तरह नीलम, लाल, तामरा, जरकन इत्यादि मिलते हैं। अगर कहीं पर परिवर्त्तित शिलाओंमें ये रत्न पाये जायँ तो उनसे निकलने वाली नदियोंमें किसी अमुक स्थान पर काफ़ी मात्रामें मिल सकते हैं।

एक बात और समझने योग्य है कि जो खनिज जितना ही अधिक घनत्वका होगा उतना ही अधिक बालूके नीचे मिलेगा। इस तरहके खनिजोंको placer deposits कहते हैं। जितनी नदियाँ परिवर्त्तित शिलाओंमेंसे निकलती है उन सबमें थोड़ा बहुत सोना अवश्य रहता है और अगर प्रयत्न किया जाय तो काफ़ी सोना इस तरह निकाला जा सकता है। यह सोना बालूसे मिला होता है। लेकिन उससे अलग करनेके अनेक उपाय हैं जिनसे बड़ी आसानीसे सोना अलग किया जा सकता है। इसमें न तो कोई बहुत खर्च है और न किसी बड़े माइनिंग इञ्जीनियरकी आवश्यकता है। अफ्रीकाके कुछ नदियोंमें इतना अधिक सोना होता है कि वहाँके रहने वाले नदीके किनारे बैठकर थालीमें बालू लेकर धोते हैं और काफ़ी सोना पा जाते हैं।

इस लेखसे यह भली भाँति मालूम हो जाता है कि प्रकृतिने उन खनिजोंको जिनका प्राथमिक खनिज बहुत सूक्ष्म मात्रामें होता है जलके बहावके चाल और अपने-अपने घनत्वके अनुसार ऐसी जगह में एकत्र कर दिया है कि उसका प्राप्त करना बहुत ही सुगम और लाभप्रद हो गया है।

ताज़े वैज्ञानिक समाचार

तापनेके लिये नये प्रकारकी अंगीठी

ऐसी अंगीठी किस प्रकार बनायी जाय जो धुआं तो कम दे और ईंधनके देखते हुए गर्मी काफ़ी देती हो—इस प्रश्नका उत्तर देहरादूनकी वन्य-अनुसन्धानशाला द्वारा तैयारकी गयी एक पुस्तिकामें दिया गया है।

अच्छी अंगीठी ऐसी होनी चाहिये कि उसमें हवाका झोंका सीधा लग सके जिससे धुआं कमरेमें न रहने पाये। ऐसी अंगीठीमें हवाका झोंका लगातार आते रहना चाहिए और कमरेमें अधिकसे अधिक ताप पहुँचना चाहिये।

उपर्युक्त परिणाम प्राप्त करनेके लिये ईंधन रखनेका स्थान ठीक प्रकारका बनना आवश्यक है। इसके अतिरिक्त चिमनीके मुँहका ठीक आकार और अंगीठी तथा चिमनीके मध्यमें धुएँके ऊपर निकलनेके स्थानका डिज़ाइन भी ठीक रहना चाहिए। अंगीठीका सफल डिज़ाइन तैयार करनेमें "धुएंका शेल्फ" एक नया सुझाव है।

पुस्तिकामें अंगीठीका ठीक स्थान रखने, उसके आकार तथा मुंह, उसके ईन्धन जलानेके स्थान, उसकी गर्दन, धुएं का कमरा और चिमनीकी नलीके सम्बन्धमें सुझाव उपस्थित किये गये हैं। इसमें कई चित्र देकर समझाया गया है कि कैसी अंगीठी बनवानेसे कमरेमें धुआं नहीं आवेगा और कमरेमें अधिकसे अधिक गर्मी पहुँचेगी।

भारतीय समाचारसे

अटकके पास तेलका कुँआ मिला

मालूम हुआ है कि अटक आयल कम्पनीने अपने वर्तमान तेल-क्षेत्रोंके पासही तेल साफ करनेके एक स्थानपर काफी मात्रामें तेल पाया है। इस समय कच्चे तेलकी पूर्तिमें वृद्धि न केवल भारत, बल्कि मित्रराष्ट्रोंके साधनोंमें अतिरिक्त उन्नतिके रूपमें व्यावहारिक रूपसे उपयोगी है, क्योंकि जैसा कम्पनीके प्रधानने अपनी पिछली वार्षिक रिपोर्टमें कहा था धुलियामें अटकके मुख्य तैल-उत्पादक क्षेत्रका उत्पादन वहां पानी निकल आनेके कारण कम हो गया था। इसका प्रधान कारण आपने यह बताया था कि युद्धके दिनोंमें तेलका उत्पादन बड़े पैमानेपर कायम रखनेके लिए ही कम्पनीको उस क्षेत्रमें अधिक तेल निकालना पड़ा था।

इस नये उत्पादनका अन्तिम रूपसे महत्व समझनेके लिए और उत्तम प्रकारके पैट्रोलसे बने हुए पदार्थोंके रूपमें इससे प्राप्त होने वाले ठोस लाभोंको समझनेके लिए अभी काफी समय लगेगा। भारत सरकार और कम्पनीने संयुक्त रूपसे तेलके इस नये कुएंसे साफ करके तेल निकालनेका काम प्रारम्भ कर दिया है।

भारतीय समाचारसे

मक्खी का मोम

युद्धके गोले बारूद आदि को सुरक्षित रखनेके लिये मधुमक्खीके मोमका अस्तर बहुत अच्छा होता है क्योंकि यह न तो उष्ण कटिबन्धकी गरमीसे फैलता है और न अत्यन्त शीतसे फटता ही है।

अबरकका औद्योगिक महत्व

भारत सरकारके श्रम सदस्य डा० अम्बेदकरने अपने एक भाषणमें बताया कि इलेक्ट्रो-टेक्निकल व्यवसायोंका अस्तित्व पूर्णरूपसे अबरक पर निर्भर है। अबरकके बिना देशकी रक्षा असम्भव है। आपने यह भी बताया कि १९१३में संसार भरमें अबरकका कुल उत्पादन १७,०१८ मैट्रिक टन था, जिसमें १४,५९८ मैट्रिक टन अर्थात् ८१·७ प्रतिशत उत्पादन भारतमें होता था। फिर भी भारतमें अबरकके व्यवसायको महत्व नहीं मिल सका, जिसके दो कारण हैं (१) अबरकका उत्पादन भारतमें होता है पर खपत यहां नहीं होती, और (२) अबरकके व्यवसायकी असंगठित अवस्था।

श्रम-सदस्यने यह भी बताया कि इधर अबरक व्यवसायकी कितनी उन्नति हुई है। आपने कहा कि १९०५में भारतमें अबरकका उत्पादन १,७१४ मैट्रिक टन था और वही १९३७में १४,५९८ मैट्रिक टन तक पहुँच गया। आपने यह भी सूचित किया कि अबरककी खानोंतक कारखानोंमें लगभग ६०,००० मजदूर काम करते हैं। आपने कहा कि अबरकका व्यवसाय इतना बड़ा होनेपर भी यदि संगठित नहीं हो सका तो इसका कारण व्यवसायोंकी परस्पर प्रतिस्पर्धा है।

डा० अम्बेदकरने व्यवसायकी एक तात्कालिक समस्या—अबरककी चोरी—की ओर ध्यान आकर्षित किया और कहा कि इसके निवारणके लिए सरकार व्यवसायियोंकी सहायता करने को तैयार है।

भारतीय समाचारसे

समालोचना

व्यावहारिक ज्ञान माला संख्या १-८

लेखक—श्री जगेश्वर दयाल वैश्य एम. ए हेड मास्टर स्टेट हाई स्कूल चूरू (बीकानेर), प्रकाशक-मेरठ बुक हाउस मेरठ, मूल्य प्रत्येक संख्याका एक पैसा या दो पैसे पृष्ठ संख्याके अनुसार जो ४ या ६ हैं।

लेखकने इन छोटी-छोटी पुस्तिकाओं द्वारा सरल भाषा में बहुत ही आवश्यक विषयोंकी व्यावहारिक बातों पर प्रकाश डाला है। इनसे हमारे गरीब भाई जो हिन्दी पढ़ सकते हैं सहज ही लाभ उठा सकते हैं। एक-एक विषय पर एक-एक पुस्तिका लिखी गयी है। पुस्तककी उपयोगितता उनके विषयसे ही प्रकट होता है जो यह हैं—(१) व्यायाम प्रसार पर कुछ व्यावहारिक सुझाव, (२) आंवलेका महत्व (३) दूध और उसका प्रयोग, (४) केला, (५) लड़ाईके दौरानमें मितव्ययिता, (६) नव शिक्षण योजनामें चरित्र बल, (७) भोजन संबंधी कुछ आवश्यक बातें (८) भोजन सम्राट सोयाबीन। म० प्र० श्री०

सिद्धयोग संग्रह—लेखक, वैद्य यादव जी त्रिकम जी आचार्य, बम्बई; प्रकाशक; वैद्यराज पं० वैद्य नारायण शर्मा, वैद्य शास्त्री, अध्यक्ष श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन, कलकत्ता, पटना आदि। आकार डिमाई अठ पेजी, पृष्ठ संख्या १८, १६४ मूल्य २॥)

यादवजी त्रिकमजी आचार्य भारतवर्षके एक प्रसिद्ध और अनुभवी वैद्य हैं। आपने अपने ४० वर्षके अनुभवमें जिन शास्त्रीय तथा अन्य योगोंको बहुत उपयोगी समझा है उनका संग्रह इस ग्रंथमें किया है। इनके अधिकांश योग भिन्न भिन्न प्रान्तोंके वैद्योंमें प्रचलित शास्त्रीय योग हैं और कुछ अन्य वैद्योंसे प्राप्त और स्वतः अनुभव किये हुए हैं। कुछ शास्त्रीय योगोंके द्रव्योंमें अनुभवसे कुछ परिवर्तन भी किया गया है। शास्त्रीय योगोंके सूत्र संस्कृत श्लोकोंमें दिये गये हैं। फिर सरल हिन्दीमें उनका अनुवाद किया गया है जिसमें निर्माण करनेकी विधि मात्रा अनुपान आदि विस्तारके साथ स्पष्ट भाषामें लिखा गया है।

योगोंके अकारादि वर्णोंके क्रमसे सूची भी दी गयी है जो बहुत ही उपयोगी है।

औषधोंके हिन्दी, गुजराती और मराठी भाषाके नाम भी दिये गये हैं।

यदि प्रधान प्रधान रोगोंकी वर्णानुक्रम सूची दे दी गयी होती तो यह संग्रह और भी उपयोगी हो जाता।

यह पुस्तक वैद्यों तथा उन गृहस्थोंके लिए उपयोगी है जो आयुर्वेदिक चिकित्सासे प्रेम रखते हैं।

म० प्र० श्री०

बा० शिवप्रसाद गुप्त

बा० शिवप्रसाद गुप्तके निधनसे भारत वर्षने अपना एक सच्चा सेवक, हिन्दी माताने अपना तन मन धन अर्पण करने वाला लाल और विज्ञान परिषद्ने एक महीनेके भीतर एक और आजीवन सदस्य खो दिया। आप धनिकों के आदर्श थे। अपने धनको देशकी थाती समझते थे और देशके हितके लिए उपयोग करनेमें सदा तैयार रहते थे। आपने ज्ञान मण्डल कार्यालयको स्थापित करके हिन्दी पुस्तकों और दैनिक 'आज' के प्रकाशनसे हिन्दीका कितना उपकार किया है यह हिन्दी भाषा भाषी जनता कभी भूल नहीं सकती। काशी विद्यापीठ तथा तत्सम्बन्धी पुस्तकालय और भारतमातामन्दिर आपके देश प्रेम और शिक्षा प्रेमके अमर प्रतीक हैं। ईश्वरसे प्रार्थना है कि वह आपकी आत्माको शक्ति दे। म० प्र० श्री०

हा! आचार्य राय

जगत्प्रसिद्ध रसायनज्ञ आचार्य प्रफुल्लचन्द्र रायका देहावसान गत १६ जून को ६-३० बजे शामको कलकत्तेमें हो गया। आपका शरीर बचपनसे ही बड़ा कृश था परन्तु अपनी इच्छाशक्ति और संयमके कारण घोर परिश्रम करते हुए भी आप ८३ वर्षकी अवस्था तक भारत माताकी गोदीको शोभित करते रहे। आप निरे वैज्ञानिक ही नहीं थे, साहित्य और इतिहासका भी गंभीर अध्ययन कियाथा।

आपका दो भागोंमें लिखा हुआ 'हिन्दू रसायनका इतिहास' इसका प्रमाण है। आप केवल प्रयोग शालामें बैठकर रसायन ज्ञानका प्रसार करनेमें ही सफल नहीं हुए थे वरन् बंगाल केमिकल ऐन्ड फार्मासिउटिकल वर्क्स की स्थापना करके दिखला दिया था कि भारतवासी रचनात्मक कार्य करनेमें भी कितने दक्ष हो सकते हैं। आपके पढ़ाये हुए सैकड़ों रसायनज्ञ भारतवर्षके कोने कोनेमें फैले हुए प्रत्येक प्रान्तमें आपकी कीर्त्तिकी पताका फहरा रहे हैं।

आप सच्चे देशप्रेमी थे। आपका देशप्रेम बातोंमें ही नहीं रह जाता था व्यवहारमें भी प्रकट होता था। जब जब देशकी असंख्य जन-संख्या बाढ़ या अकाल पीड़ित होती थी तब तब आप प्रयोगशालाके कामको बन्द करके अकाल कष्ट निवारक समितियोंमें जुटकर स्वयम ही काम नहीं करते थे अपने सहायकोंको भी काममें लगा देते थे। दरिद्र नारायणकी पूजा वह तन मन धनसे करते थे।

विद्यार्थियोंके तो आप सच्चे आदर्श थे। सरल जीवन और उच्च विचारकी आप मूर्ति थे। आपने आजीवन ब्रह्मचर्य व्रतका पालन किया और जो कुछ कमाया सब दीन विद्यार्थियों और असहाय लोगोंको अर्पण किया।

विज्ञानपरिषद्के आप सम्मानित आजीवन सभ्य थे और इसकी उन्नति आप सदा चाहते रहते थे। ईश्वर आपकी आत्माको शान्ति दे। म० प्र० श्री

मुद्रक तथा प्रकाशक—विश्वप्रकाश, कला प्रेस, प्रयाग।

विज्ञान

विज्ञानं ब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते। विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति ।। तै० उ० ।३।५।

भाग ५६	कर्क, सम्वत् २००१ जूलाई १९४४	संख्या ४

अपनी बात

सरकारके नये नियमके अनुसार विज्ञान भी अब अपने पुराने पृष्ठ-संख्याके ३० प्रतिशत पृष्ठों तक ही छप सकेगा। नवीन नियम कागज़की कमीके कारण बनाया गया है। परंतु सरकारको चाहिए कि वह अधिक कागज़ बनवानेका प्रबंध करे और नये नियमको शीघ्र ही रद्द करे। इस नियमसे शिक्षा-प्रचारमें बड़ी बाधाएँ पड़ रही हैं।

नवीन नियमके कारण हमारे पाठकोंको घाटा न हो इसका हम ध्यान रक्खेंगे। हम इस पर विचार कर रहे हैं कि विज्ञानका वार्षिक मूल्य कहाँ तक घटाया जा सकता है। विज्ञान-परिषदका ध्येय सदा यही रहा है कि हिंदी-संसारको अच्छी वैज्ञानिक सामग्री यथासंभव कम मूल्यमें मिले और यही ध्येय अब भी है। हमारे सभी पदाधिकारी अवैतनिक हैं और परिषदमें जो कुछ भी धन आता है वह घूम-फिर कर पाठकोंके ही पास, नवीन पुस्तकोंके रूपमें, या अधिक चित्रोंसे सुसज्जित लेख-आदिके रूपमें पहुँचता है।

यदि विज्ञानका वार्षिक मूल्य घटाया जायगा तो विज्ञान के नवीन प्रतियोंका दाम उन लोगोंके हिसाबमें से जिनका चंदा पहलेसे आ चुका है नवीन दरसे ही काटा जायगा।

—संपादक

श्री सुब्रामान्य चन्द्रशेखर

श्री सुब्रामान्य चन्द्रशेखर अभी हालमें ही रायल सोसाइटीके फ़ेलो चुने गये हैं। आप गणित-ज्योतिष और भौतिक-गणित-ज्योतिषके विशेषज्ञ हैं। आपकी अवस्था अभी केवल ३३ वर्षकी है और आपसे भविष्यमें बहुत आशायें हैं। आप आजकल शिकागो यूनीवर्सिटीमें गणित-ज्योतिष और भौतिक-गणित-ज्योतिषके प्रोफेसर हैं। रायल सोसाइटीके फ़ेलो चुने जानेके पूर्व आप टिरीनिटी कालेज, केम्ब्रिज द्वारा फ़ेलो बनाकर सम्मानित किये गये थे। आप को न्यूयार्ककी वैज्ञानिक संस्था (Academy of Sciences) का अनुसन्धान सम्बन्धी पारितोषिक भी मिल चुका है। प्रो० चन्द्रशेखरने अस्सीसे ऊपर वैज्ञानिक लेख लिखे हैं जो संसारके सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक पत्रोंमें छपे हैं। आपने हालमें ही तीन पुस्तकें लिखी हैं, An Introduction to the study of Stellar Structure The Principles of Stellar Dynamics Stochastic Problems in Physics.

आपको योरप और अमेरिकाकी वैज्ञानिक संस्थाएँ और यूनीवर्सिटिआँ अपने यहाँ भाषण देनेके लिये बुलावा देकर सम्मानित करती थीं और करती हैं। जब आप हारवर्ड यूनीवर्सिटीमें भाषण देने गये तो वहाँ वालों पर आपका इतना प्रभाव पड़ा कि हारवर्ड यूनीवर्सिटीने आपको अपने यहाँ प्रोफ़ेसर बनानेका निमन्त्रण दिया किन्तु आपने यह अस्वीकार कर दिया। आपको शिकागो यूनीवर्सिटी, उसका वातावरण, वहाँके अनुसन्धानकर्त्ता और प्रयोग शालाएँ अधिक पसन्द थीं।

गणित-ज्योतिष विज्ञानके सम्बन्धमें न्यूटन, ला प्लेस, आइन्स्टाइनके नाम सुप्रसिद्ध हैं। करेंट साइन्स (Current Science) के शब्दोंमें "प्रो० चन्द्रशेखरके पिछले पन्द्रह सालके अनुसन्धानोंसे कमसे कम यह विदित हो जाता है कि भविष्यमें उनकी गणना संसारके सुप्रसिद्ध गणित-ज्योतिषके विशेषज्ञोंमें होगी।"

डा० चन्द्रशेखर दूसरे भारतीय हैं जो टिरीनिटी कालेजके फ़ेलो बनाकर सम्मानित किये गये। इनके पहले स्व० रामानुजम टिरीनिटी कालेजके फ़ेलो बनाये गये थे। यह महत्वपूर्ण है कि यह दोनों भारतीय वैज्ञानिक थोड़ी ही अवस्थामें पहिले टिरीनिटी कालेजके फ़ेलो बने और बादमें रायल सोसाइटीके फ़ेलो चुने गये।

कई भारत निवासिओंने विदेश जाकर विभिन्न क्षेत्रोंमें प्रसिद्धि प्राप्त की है। कदाचित् इनमें सबसे प्रसिद्ध प्रो० सुब्रामान्य चन्द्रशेखर हैं। आशा है कि भविष्यमें आप मातृभूमिको और भी गौरव प्रदान करेंगे।—ओंकारनाथ परती

संशोधन

सरल विज्ञान-सागरके पृष्ठ २७६ पर छपे 'तुच्छ कीड़ों से भारी' शीर्षक लेखके लेखक हैं श्रीयुत ठाकुर शिरोमणि सिंह चौहान। खेद है भूलसे नाम नहीं छपा। पाठक कृपया सुधार लें।

सूर्य, चन्द्र, ग्रह और नक्षत्र

१—प्रारंभिक

अँधेरी रातमें तारे कितने सुन्दर लगते हैं ! उँजाली रातमें चंद्रमा कितना सुंदर लगता है। जाड़ेके दिनोंमें सूर्य कितना प्रिय लगता है। सबको कभी-न-कभी जिज्ञासा होती है कि सूर्य क्या है; चंद्रमा क्यों घटता-बढ़ता है; ग्रहण क्यों लगते हैं; तारे क्यों टूट कर गिरते हुए दिखलाई पड़ते हैं; पुच्छल तारे, जो कभी-कभी आकाश में दिखाई पड़ते हैं, क्या हैं। मनुष्य आज भी अपने सब प्रश्नोंका उत्तर नहीं पा सका है। आधुनिक ज्योतिषी भी अभी तक नहीं बता सका है कि सूर्य, पृथ्वी, चंद्रमा आदि-की सृष्टि कैसे हुई; तारोंकी बनावट क्या है; आदि। आधुनिक ज्योतिषी इन बातोंके अनुसंधानमें जी-जानसे लगा हुआ है। प्रतिदिन खोज हो रही है, नये-नये यंत्र बन रहे हैं, नयी-नयी रीतियोंकी सहायता ली जा रही है। प्रतिवर्ष बहुत-सी नयी बातोंका पता लगा करता है। सबको आशा है कि भविष्य में हम कई प्रश्नोंका उत्तर पा जायँगे जो आज हमें चकित कर रहे हैं।

प्राचीन इतिहास

आज हम ज्योतिषके प्रश्नोंके पीछे बिना किसी आर्थिक लाभकी आशा किये ही पड़े हुए हैं। हमें विशुद्ध विज्ञान से प्रेम है। यदि विशुद्ध विज्ञान हमारे किसी काममें आ सके तो अच्छी बात है। हम उसका उपयोग भी कर लेंगे; परंतु हमें इसकी चिंता नहीं है कि ज्योतिष हमारे लिये धन उत्पन्न कर सकेगा या नहीं। हमें विज्ञानकी प्राप्तिमें मानसिक सुख मिलता है, इसीसे हम विशुद्ध विज्ञानके अध्ययनमें लगे हैं और जो-जो प्रश्न हमारे हृदयमें उठा करते हैं उनका हम उत्तर चाहते हैं।

परंतु प्राचीन मनुष्यके लिए ज्योतिषका ज्ञान केवल रोचक ही नहीं; अत्यंत उपयोगी भी था। आज हमारी तिथि-प्रणाली, महीनोंका क्रम, वर्षकी लंबाई, सभी बातें इतनी निश्चित हैं कि हममें से अधिकांश व्यक्ति प्राचीन मनुष्यकी आवश्यकताओंकी कल्पना नहीं कर पाते। उस समय लोगोंको यही पता नहीं था कि महीनेमें कितने दिन होते हैं; वर्षमें कितने महीने होते हैं। लोगोंने देखा कि दिन होता है तो रात होती है, फिर दिन होता है और रात होती है और यह क्रम बराबर लगा रहता है। इसी प्रकार यह भी देखा कि चंद्रमा बढ़ते-बढ़ते पूर्ण हो जाता है, फिर घटते-घटते एक दम मिट जाता है। तत्पश्चात वह फिर पहलेकी तरह बढ़ने लगता है। पूर्णिमासे पूर्णिमा तकको उन्होंने महीना कहा और तब प्रश्न उठा कि एक महीनेमें कितने दिन होते हैं। गिननेसे पता चला होगा कि एक महीनेमें तीस दिन होते हैं। मनुष्यके हाथोंमें दस अँगुलियाँ होती हैं। इसलिए ३० की संख्या बहुत सुविधा-जनक भी है, क्योंकि तीन बार दस-दस तक गिननेसे तीस मिलता है।

वर्ष

परंतु मनुष्यने यह भी देखा होगा कि गरमी आती है, तब बरसात (कमसे कम भारतवर्षमें) और फिर जाड़ा। बार-बार इसी क्रमसे ऋतुएँ आती रहती हैं। एक बरसातसे दूसरी बरसात तकके समयको—एक वर्षासे दूसरी वर्षा तकके समयको—लोगोंने वर्ष कहना आरंभ किया। तब प्रश्न उठा कि वर्षमें कितने महीने होते हैं। प्राचीन मनुष्य-ने देखा होगा कि वर्षमें मोटे हिसाबसे १२ महीने होते हैं। इस प्रकार उसे पता चला होगा कि वर्षमें ३६० दिन होते हैं। हमारे प्राचीन ग्रंथोंमें वस्तुतः ३६० दिनोंके वर्ष की चर्चा है।

वर्षमें कितने दिन होते हैं ?

परन्तु समय पाकर सभ्यता धीरे-धीरे बढ़ी होगी। गणितका ज्ञान भी बढ़ा होगा। लोगों ने हज़ार, दस हज़ार तक गिनना सीखा होगा। बही-खातामें प्रत्येक वर्षका हिसाब ठीक लिखा जाने लगा होगा। तब पता चला होगा कि प्रत्येक वर्षमें ३६० दिन माननेसे ऋतुओंमें
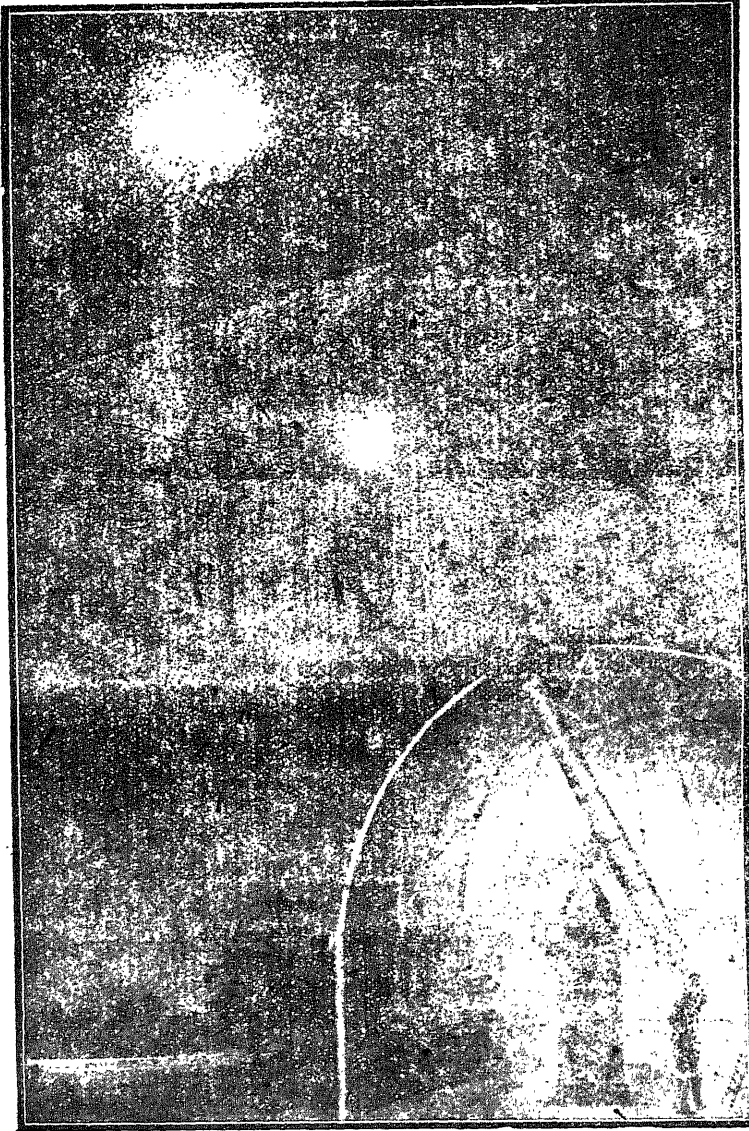
दूरदर्शकका चमत्कार

कोरी आँखसे जो तारा कठिनतासे दिखलाई पड़ता है वह दूरदर्शक द्वारा देखने पर अनेक तारोंका समूह सिद्ध हो सकता है।

में होने वाली ऋतु पिछड़ कर आती है। उदाहरणतः, यदि वर्ष बरसातसे आरंभ किया गया होगा तो लोगोंने देखा होगा कि तीन सौ साठ दिनका एक वर्ष मानने पर दस वर्ष बाद ग्यारहवाँ वर्ष उस समय आरंभ होता है जब प्रचंड गरमी पड़ती है। उन लोगोंने देखा होगा कि वर्षके आरंभके लगभग दो महीने बाद बरसात शुरू होती है। लोगोंने इस गड़बड़ीके कारण पर विचार किया होगा; इसे ठीक करनेकी चेष्टाकी होगी। तभीसे गणित-ज्योतिषका प्रारंभ समझना चाहिए।

गणित-ज्योतिष

महीनेका सच्चा मान, वर्षका सच्चा मान, इत्यादि पर विचार गणित-ज्योतिषके अंतर्गत है। इनके सूक्ष्म ज्ञान प्राप्त करनेमें बहुत समय लगा होगा। इन दिनों जो प्राचीन भारतीय पुस्तकें प्राप्य हैं उनके देखते ही पता चलता है कि यह प्रश्न कभी भी ठीक-ठीक तय नहीं हो पाया। बराबर उन्नति होती ही रही। नये-नये आचार्य होते गये और वे पहलेसे अधिक उत्तम मान बताते गये। कुछ ने उन्नतिके मार्गमें रोड़े भी अटकाये। अंतमें

गड़बड़ी पड़ती है। उदाहरणतः,दस वर्ष तक लगातार ३६० दिनका वर्ष माननेसे लोगोंने देखा होगा कि वर्षके आरंभ

लगभग १६१८ ई०में ऐसे भी आचार्य हुए जो आगे बढ़नेके बदले अवनतिकी ओर झुके। उनका कहना था कि प्राचीन

आचार्योंने जो कुछ कह डाला था वही मान्य होना चाहिये। तभी से भारतवर्षमें ज्योतिष-ज्ञानका पतन आरंभ हुआ।

इधर मास और वर्षके मानोंमें सूक्ष्मता बढ़ रही थी, उधर ज्योतिषियोंको पता चला कि सूर्य और चन्द्रमाके अतिरिक्त अन्य भी आकाशीय पिंड हैं जो तारोंके बीच चलते हुये दिखाई पड़ते हैं। इनको आज ग्रह कहते हैं। ये देखनेमें प्रायः तारेसे होते हैं, केवल उनसे कुछ अधिक चमकीले होते हैं। परंतु विशेष बात यह है कि यदि उनकी स्थितिका नकशा प्रति दिन (या प्रति सप्ताह, या प्रति मास) बनाया जाय तो पता चलता है कि वे तारोंके बीच चलते रहते हैं। उदाहरणतः, यदि उनमेंसे एक ग्रह आज किसी एक तारेके पास है तो कुछ दिनोंके बाद वह उस तारेसे दूर दिखलाई पड़ेगा। कुछ महीनोंमें वह उस तारेसे बहुत दूर दिखलाई पड़ेगा। कई महीनेके बाद वह फिर अपने पुराने स्थान पर एक चक्कर लगा चुकनेके बाद लौट आयेगा; या, यदि वह ठीक-ठीक अपने पुराने स्थान पर न लौटेगा तो उस स्थानके बहुत पास पहुँच जायगा।

यर्किज़ वेधशाला जहाँ संसारका सबसे बड़ा तालयुक्त दूरदर्शक है।

ग्रहोंके ज्ञान होनेपर नवीन प्रश्न उठे। वे एक चक्कर कितने समयमें लगाते हैं। किसी दिन वे आकाशमें कहाँ-कहाँ दिखलाई पड़ेंगे, इत्यादि। इन सब प्रश्नोंका उत्तर देना भी गणित-ज्योतिषके अंतर्गत है।

ग्रहण, दिशा, समय, आदि

ग्रहोंके ज्ञानसे बहुत पहले ही लोगोंने देखा होगा कि कभी-कभी ग्रहण लगता है। सूर्यका कोई अंश किसी दिन कटा हुआ-सा दिखलाई पड़ता है। कभी-कभी तो देखते-देखते भरमें सूर्यका एक अंश कटने लगता है, परंतु वह फिर कुछ ही घंटोंमें पहले-जैसा हो जाता है। सूर्यके इस प्रकार कट जानेको सूर्य-ग्रहण कहते हैं। कभी-कभी तो सूर्य समूचा मिट जाता है। तब कहा जाता है कि सर्व-सूर्य-ग्रहण लगा है। पूर्णमासीका चन्द्रमा साधारणतः पूरा गोल रहता है, परंतु सालमें एक-दो बार ऐसा भी होता है कि पूर्णिमाके अवसरपर भी चन्द्रमा कटा-सा रहता है। कटनेका काम आँखों देखते भरमें हो सकता है, या ऐसा भी हो सकता है कि चन्द्रमा कटा हुआ ही उदय हो। कुछ घंटोंमें कटा हुआ चन्द्रमा धीरे-धीरे समूचा भी हो जाता है। कभी-कभी पूरा चन्द्रमा कट जाता है, परंतु तब वह पूर्णतया अदृश्य नहीं हो जाता। वह केवल विवर्ण हो जाता है। उसकी चमक मिट जाती है। वह गहरे लाल रंगका हो जाता है, परंतु वह दिखलाई पड़ता रहता है।
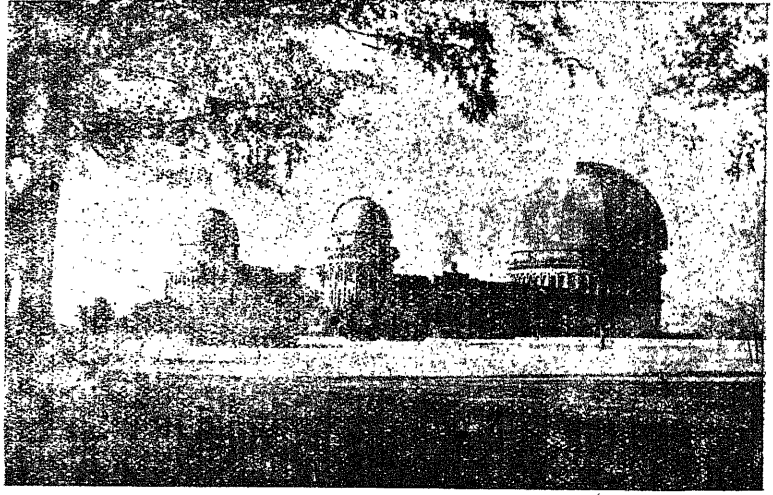
स्वभावतः लोगोंने यह भी जानना चाहा होगा कि ग्रहण क्यों लगता है। इसकी चेष्टा ज्योतिषियोंने की होगी कि पहलेसे बतला सकें कि ग्रहण कब लगेगा। पहले तो इसमें बड़ी कठिनाई पड़ी होगी परंतु धीरे-धीरे ज्ञान बढ़ा होगा। अंतमें सफलता मिल ही गयी।

यह बतलाना कि ग्रहण क्यों लगता है और कब लगेगा यह भी गणित-ज्योतिषके अंतर्गत है।

दिशा, स्थान और समयका सच्चा ज्ञान आकाशीय पिंडोंको देखनेसे—उनके 'वेध' से—होता है और यह सब

भी, तथा कई अन्य इसी तरहकी छोटी-मोटी बातें सब गणित-ज्योतिषमें ही हैं।

फलित-ज्योतिष

पता नहीं कब, परंतु अवश्य ही ग्रहोंका ज्ञान हो जानेके बाद, कुछ लोगोंमें यह धारणा हुई कि आकाशमें ग्रहोंकी स्थितियोंसे मनुष्यके भविष्यपर प्रभाव पड़ता है। उनका विश्वास हो उठा कि यदि हमें इसका ज्ञान हो जाय कि किसी व्यक्तिके जन्मके समय कौन-सा ग्रह कहाँ था तो हम बतला सकेंगे कि उस व्यक्तिके जन्मभरमें क्या-क्या होगा। उस पर क्या-क्या विपत्तियाँ कब-कब पड़ेंगी; उसे क्या-क्या लाभ होगा, इत्यादि। इसे फलित-ज्योतिष कहते हैं। पता नहीं भारतवर्षमें यह विद्या कब उत्पन्न हुई। हमारे प्राचीन ग्रंथोंमें इस विद्याकी निंदा भी है। जान पड़ता है कि आरंभसे ही लोग इसे नीची दृष्टिसे देखते थे। फलित-ज्योतिषका वर्तमान रूप संभवतः सन ४५० ईस्वीके लगभग ग्रीस (यूनान) से आया। इसके समर्थनमें यथेष्ट प्रमाण मिलता है जिस पर अन्यत्र विचार किया जायगा। इस पुस्तकमें जहाँ कहीं ज्योतिष शब्द आया है वहाँ गणित-ज्योतिष और उससे संबंध रखने वाले विभागोंको समझना चाहिए, फलित-ज्योतिष नहीं। वर्तमान फलित-ज्योतिषको विज्ञानमें नहीं सम्मिलित किया जा सकता। वह न निरीक्षणों पर आश्रित है और न कोई उसे निरीक्षणोंके आधारपर प्रस्फुटित करना चाहता है।

संसारका सबसे बड़ा तालयुक्त दूरदर्शक। यह यर्किज़ बेधशाला (अमरीका) में है। इसके तालका व्यास ४० इंच है।

दूरदर्शकका आविष्कार

गणित और फलित ज्योतिषोंका विकास हो ही रहा था कि सन १६०९ में गैलीलियो ने दूरदर्शकका आविष्कार किया। इस यंत्रसे दूरकी वस्तुएँ बड़ी और स्पष्ट दिखलाई पड़ती हैं। गैलीलियो इटलीका निवासी था और अध्यापकका कार्य करता था। वह गणित, ज्योतिष, भौतिक विज्ञान आदि अच्छी तरह जानता था। जब उसने सुना कि किसी हॉलैंड-निवासी ने ऐसा यंत्र बनाया है जिससे दूरस्थ वस्तुएँ बड़ी दिखलाई पड़ती हैं तो उसने अपने भौतिक-विज्ञानके ज्ञानके आधार पर तुरंत समझ लिया कि ऐसा यंत्र कैसे बन सकता है और स्वयं अपने लिए छोटा-सा दूरदर्शक यंत्र बना लिया। पीछे और भी अच्छे यंत्र बने। आज तो ऐसे भी यंत्र हैं जिनसे चंद्रमा लगभग १०,००० गुना बड़ा दिखलाई पड़ता है और एक ऐसा यंत्र बन रहा है जो इनसे भी कहीं अधिक बड़ा होगा। गैलीलियोके आविष्कारसे वर्णनात्मक ज्योतिषकी उत्पत्ति हुई। ज्योतिषकी इस शाखामें दूरदर्शकसे देखने पर आकाशीय पिंडोंके रूप-रंग आदिका वर्णन रहता है। ज्योतिषका यही विभाग सबसे अधिक सरल और रोचक

है और इस पुस्तकमें इसी पर अधिक जोर दिया जायगा।

आकर्षण सिद्धान्त

जिस वर्ष बूढ़े गैलीलियोकी मृत्यु हुई, उसी वर्ष प्रसिद्ध गणितज्ञ और वैज्ञानिक न्यूटनका जन्म हुआ। न्यूटनसे ही हमें आकर्षण सिद्धान्त मिला है जो कहता है कि विश्वके प्रत्येक दो पिंड एक दूसरेको आकर्षित करते हैं और यह भी बतलाता है कि इस आकर्षणकी मात्रा कितनी होगी। इतने सरल नियमका परिणाम बहुत ही महत्वपूर्ण निकला। इस सिद्धांत और गतिशास्त्रके नियमों के आधारपर आज हम वर्षों पहलेसे बतला सकते हैं कि किसी क्षण चन्द्रमा और सूर्य आकाशके किन स्थानोंमें रहेंगे, ग्रह कहाँ रहेंगे और ग्रहण कब लगेगा। इसी सिद्धांत के आधार पर न्यूटनके मित्र हैली ने बतलाया कि वह केतु (पुच्छल तारा) जो उसके जीवन-कालमें दिखलाई पड़ा था लगभग ७५ वर्ष बाद फिर दिखलाई पड़ेगा। वस्तुतः यह पीछे दिखलाई भी पड़ा और उसका नाम अब हैली केतु पड़ गया है। आकर्षण-सिद्धांतके बलपर ज्योतिषका वह विभाग खड़ा है जिसे गतिशास्त्रीय ज्योतिष कहते हैं। गतिशास्त्रीय ज्योतिष मनुष्यके मस्तिष्ककी शक्तिका ज्वलंत उदाहरण है। यह अत्यंत आश्चर्यजनक है कि हम सूर्य, पृथ्वी, ग्रहों और कई तारोंकी गतियोंका इतनी सूक्ष्म रीतिसे भविष्यद्वाणी कर सकते हैं। गतिशास्त्रीय ज्योतिष के ही आधारपर लवेरिये और ऐडम्सने नेपच्यून नामक नवीन ग्रहके अस्तित्वका पता पाया। इसीके आधारपर नेपच्यूनसे भी दूर रहने वाले छोटेसे ग्रह प्लूटोके रहनेकी भविष्यद् वाणी लॉवेल कर सका। इस नवीनतम ग्रहको ज्योतिषियों ने पहले-पहल सन १९३० में देख पाया।

समयका सच्चा ज्ञान ज्योतिष यंत्रोंसे ही होता है। इस चित्रमें याम्योत्तर यंत्र दिखलाया गया है जिससे समय नापा जाता है।

भौतिक ज्योतिष

गणित-ज्योतिषकी नीव आजसे कोई चार-पाँच हजार वर्ष पहले पड़ी और वर्णनात्मक तथा गतिशास्त्रीय ज्योतिषके मूल तत्व हमें लगभग तीन सौ वर्षोंसे ज्ञात हैं, परंतु आधुनिक ज्योतिषके आरंभ हुए अभी सौ वर्ष भी नहीं हुए। इस ज्योतिषमें, जिसे भौतिक ज्योतिष भी कहते हैं, आकाशीय पिंडोंकी रासायनिक बनावट आदि की खोज करते हैं। उन्नीसवीं शताब्दीके मध्यसे फ़ोटोग्राफ़ीकी भी सहायता ली जा रही है और इन दिनों तो बिना फ़ोटोग्राफ़ लिए बहुत कम अनुसन्धान हो पाता है। फ़ोटोके प्लेटसे हम वे ब्योरे भी देख सकते हैं जो बड़े-से बड़े दूरदर्शकमें अदृश्य रह जाते हैं। प्रकाशके मन्द रहने पर भी फ़ोटो खिंच आता है, क्योंकि फ़ोटोके प्लेट पर प्रकाशका प्रभाव समयके अनुसार बढ़ता चलता है। यदि आकाशीय पिंड बहुत ही मंद प्रकाशका है तो हम तेज़ प्लेट लगा कर और कई घंटेका प्रकाशदर्शन (एक्सपोज़र) देकर उस पिंडका फ़ोटो खींच सकते हैं, यद्यपि उसी वस्तुको दूरदर्शक द्वारा अपनी आँखोंसे घंटों घूरते रहने पर भी कोई उसे नहीं देख पायेगा। फ़ोटोग्राफ़ीके अतिरिक्त हम आधुनिक ज्योतिषमें भौतिक यंत्रोंकी सहायता लेते हैं। आकाशीय पिंडोंसे आये प्रकाशको त्रिपार्श्व (तीन पहल वाले शीशे) से जाँच करनेसे प्रकाश इंद्रधनुषकी तरह कई रंगोंमें बँट जाता है। इन रंगोंको देखकर हम बतला सकते हैं कि आकाशीय

पिंडोंमें क्या है, उनका तापक्रम क्या है, वे गैसके रूपमें हैं, तरलके रूपमें हैं या ठोस। कारण यह है कि विभिन्न पदार्थोंसे आये प्रकाशोंके वर्णपटोंमें अंतर रहता है—वर्णपट उन रंगोंके समूहको कहते हैं जो त्रिपार्श्व लगाने पर दिखलाई पड़ते हैं।

ज्योतिषकी उपयोगिता

हमारी साधारण आवश्यकताओंकी पूर्तिकी दृष्टिकोणसे ज्योतिषकी उपयोगिता अब उतनी महत्वपूर्ण नहीं रह गयी है जितना पहले थी। आज भी बड़ी-बड़ी सरकारें ज्योतिष-से समयका शुद्ध ज्ञान करके रेडियोसे समय बतलाया करती हैं। आज भी ज्योतिषसे नाविकोंको अपनी स्थिति-का पता चलता है, परंतु आधुनिक ज्योतिषके लिए उत्साह इन छोटी-छोटी बातोंसे नहीं उभड़ता है। आजके ज्योतिषी इस बातके जाननेमें लगे हैं कि हमारा विश्व कितना बड़ा है, इसकी उत्पत्ति कैसे हुई, भूतकाल में क्या हुआ था भविष्यमें कैसा रहेगा। अब तो थोड़ेसे वेतन भोगी सरकारी ज्योतिषियोंको छोड़ कोई भी सूर्य, चंद्रमा, ग्रहों और नक्षत्रों (तारों) की स्थितियोंको नापनेका कष्ट ही नहीं उठाता। हाँ, सरकारके खर्चसे प्रत्येक बड़े देशमें नाविक पंचांग छपता है जिसमें कुछ वर्ष पहलेसे ही आवश्यक आकाशीय पिंडोंकी स्थितियाँ, ग्रहणादिका समय तथा अन्य आवश्यक बातें छाप दी जाती हैं। परंतु अनुसंधानकी
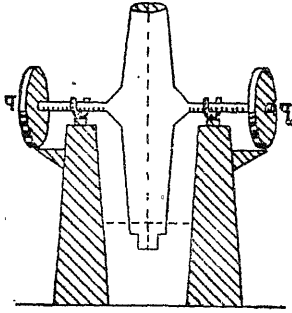
यांम्योत्तर यंत्रकी रचना।

याम्योत्तर यंत्रमें दूरदर्शक इस प्रकार आरोपित रहता है कि वह केवल याम्योत्तरमें घूम सकता है। (उत्तर-दक्षिण और शिरोबिंदुसे हो कर जाने वाले धरातलको याम्योत्तर कहते हैं।)

दृष्टिसे गणित-ज्योतिष अब मृत अवस्थामें है। जो बातें जाननेको थीं सब ज्ञात हो गयी हैं। नवीन बातोंके जानने-की कोई विशेष आशा नहीं है। इसी लिए ज्योतिषके इस विभागका अब विशेष आदर नहीं है।

जनता समझती है कि बड़े-बड़े दूरदर्शकोंसे चंद्रमा, सूर्य और ग्रहोंका सूक्ष्म निरीक्षण प्रति रात्रि होता होगा, परंतु आधुनिक ज्योतिषियोंको इसके लिए अवकाश कहाँ। वर्णनात्मक ज्योतिषमें अधिक उन्नति होनेकी कोई विशेष आशा नहीं है। हाँ, जब भविष्यमें हमारे वर्तमान यंत्रोंसे कहीं अधिक शक्तिशाली यंत्र बन सकेंगे तो बात दूसरी है।

गणित ज्योतिषसे हटकर भौतिक ज्योतिषकी ओर आधु-निक ज्योतिषियोंका ध्यान आकर्षित हो गया है। इस विभागमें कई नवीन बातोंका पता चलना निकट भविष्यमें ही संभव जान पड़ता है। फिर भौतिक ज्योतिषसे विज्ञानकी अन्य शाखाओंमें भी सहायता पहुँचती है। एक प्रकारसे भौतिक ज्योतिष, रसायन, भौतिक विज्ञान सब एक हैं। वस्तुओंकी अंतिम रचनाकी खोजमें इनको अलग-अलग नहीं रक्खा जा सकता। सूक्ष्म एलेक्ट्रनोंके अस्तित्वका प्रमाण हमें आकाशीय नीहारिकाओंसे मिलता है यद्यपि एक इतना सूक्ष्म है कि इसका व्यास इंचके करोड़वें भागके करोड़वें भागके बराबर होगा और दूसरा इतना बृहत् कि उसका व्यास करोड़ मीलके करोड़ गुनेसे भी कहीं अधिक बड़ा होगा।

२—दूरदर्शक

यद्यपि दूरदर्शकसे हमारा ज्ञान बहुत अधिक बढ़ सका है, तो भी इस यंत्रकी बनावट अत्यंत सरल है। दूरदर्शक-में एक नलीके प्रत्येक सिरेपर एक उन्नतोदर ताल रहता है। बस, दूरदर्शककी मौलिक रचना यही है। कोई भी व्यक्ति सरल दूरदर्शक दो तालोंको लेकर बना सकता है और उससे चंद्रमाके पहाड़ और बृहस्पति नामक ग्रहके उपग्रहोंको (अर्थात् बृहस्पतिके चंद्रमाओंको) देख सकता है। इसके बनानेमें यही ध्यान रखना चाहिए कि

एक तालका नाभ्यंतर* दूसरेकी अपेक्षा कम-से-कम चारगुना हो और नलीमें दोनों तालोंको इस प्रकार लगाया जाय कि उनके बीचकी दूरी दोनोंके नाभ्यंतरोंके योगके बराबर या नाममात्र कम रहे। यदि तालोंके बीचकी दूरी घटाई बढ़ाई जा सके तो और भी उत्तम होगा।

तालयुक्त बड़े दूरदर्शक

बड़े दूरदर्शकोंका बड़ा ताल, जो आकाशीय पिंडकी ओर रहता है और प्रधान ताल कहलाता है, एकहराके बदले दोहरा रहता है। एक ताल उन्नतोदर रहता है, दूसरा नतोदर (बीचमें पतला, किनारे पर मोटा) रहता है। दोनों तालोंसे जो सम्मिलित ताल बनता है वह एक उन्नतोदर तालकी तरह काम देता है, परंतु इस तालसे जो मूर्ति बनती है वह अधिक त्रुटि रहित होती है। मूर्ति ठीक उसी प्रकार बनती है जैसे किसी कैमरेके लेंज़से, अंतर इतना ही होता है कि कैमरेका लेंज़ छोटा होता है और दूरदर्शकका बड़ा। संसारके सबसे बड़े दूरदर्शकके प्रधान तालका व्यास ४० इंच है। जैसे साधारण कैमरेमें मूर्ति पड़नेके स्थानमें प्लेट या फिल्म लगाकर फोटो उतारा जाता है, वैसे ही प्रधान तालसे बनी मूर्तिको फोटोके प्लेट या फिल्म पर पड़ने देकर आकाशीय पिंडोंका फोटो उतारा जा सकता है।

हैदराबाद (दक्षिण भारतवर्ष) की निज़ामिया वेधशाला।

बड़े दूरदर्शकके प्रधान तालसे बनी मूर्तिको कोरी आँख से देखा जाय तो भी उसमें असली आकाशीय पिंडसे अधिक ब्योरे दिखलाई पड़ेंगे। कारण यह है कि मूर्तिको हम पाससे देखते हैं, आकाशीय पिंडको बहुत दूरसे। परन्तु उसे कोरी आँखसे न देख कर दूसरे, छोटे उन्नतोदर तालसे देखा जाता है। इस लिए वह मूर्ति और भी बड़ी दिखलाई पड़ती है, जिससे सब ब्योरा स्पष्ट हो जाता है और वस्तु कोरी आँखकी अपेक्षा कई गुना बड़ी दिखलाई पड़ती है। वस्तुतः एक उन्नतोदर तालके बदले छोटा ताल भी दो अधिक सरल तालोंसे बना ताल रहता है। इसको चक्षुताल कहते हैं, क्योंकि आँख इधर ही लगायी जाती है।

*उन्नतोदर ताल उसे कहते हैं जो बीचमें मोटा और किनारों पर पतला रहे। ऐसे तालोंसे दूरस्थ वस्तुओंकी मूर्ति बनती है जिसे दीवार पर पड़ने देकर हम आँखोंसे देख सकते हैं। उस स्थितिमें जब किसी दूरस्थ वस्तुकी मूर्ति दीवार पर तीक्ष्ण बने, ताल और दीवारके बीचकी दूरीको उस तालका नाभ्यंतर कहेंगे। तीन या चार इंचके नाभ्यंतरका उन्नतोदर ताल उस खिलौनेमेंसे निकाल लिया जा सकता है जो बच्चोंके लिए सिनेमाचित्रोंके फिल्मोंके कतरनोंको बड़ा करके दिखलानेके लिये बिकते हैं। इसी प्रकार किसी बूढ़े मनुष्यके चश्मेसे १८ या २० इंचके नाभ्यंतरका ताल मिल सकता है। इन दोनोंके योग से अच्छा दूरदर्शक बन जायगा। नली दफ़्तीकी बना ली जा सकती है। ध्यान रहे कि चश्मेका ताल केवल उन्नतोदर (कनवेक्स) हो। वह सिलिंड्रिकल न हो। कोई भी चश्मा-वाला तालको देखते ही बतला देगा कि ताल सिलिंड्रिकल तो नहीं है। सिलिंड्रिकल ताल द्वारा देखनेसे पुस्तकके अक्षर एक दिशामें अधिक दूसरेमें कम बड़े लगते हैं, जिससे अक्षर नाटे या लम्बे दिखलाई पड़ते हैं।

दर्पणयुक्त दूरदर्शक

जैसे तालोंसे मूर्ति बनती है उसी प्रकार नतोदर दर्पणोंसे भी मूर्ति बन सकती है। इसलिए नतोदर दर्पणोंसे भी दूरदर्शक बनते हैं। इनमें एक ओर नतोदर दर्पण रहता है जो मूर्ति बनाता है, और दूसरी ओर चक्षुताल। चक्षुतालमें आँख लगानेसे दर्शकके शरीरके कारण बहुत-सा प्रकाश कट न जाय इस अभिप्राय से बहुधा छोटा-सा सादा दर्पण लगा कर प्रकाशको एक बगल मोड़ दिया जाता है और तब चक्षुताल लगाया जाता है।

बड़े प्रधान तालोंका बनाना बहुत कठिन होता है। अभी तक ४० इंचसे बड़े व्यासका ताल नहीं बन सका है, परंतु बड़े व्यासका दर्पण बनाना उतना कठिन नहीं है। संसारका वर्तमान सबसे बड़े दर्पणयुक्त दूरदर्शकमें १०० इंच व्यासका दर्पण है। कई वर्षोंसे एक इससे भी बड़ा दर्पण बन रहा है जिसका व्यास २०० इंच होगा, परंतु आज (मार्च १९४४) तक यह तैयार नहीं हो पाया है।

चालक घड़ी

बड़े दूरदर्शकोंको इस प्रकार आरोपित किया जाता है कि वे सुगमतासे घुमाये फिराये जा सकें अन्यथा उनका उपयोग कठिन हो जाय। आरोपित करनेका ढंग चित्रोंके देखनेसे ज्ञात होगा। दूरदर्शकको घुमानेके लिए एक धुरी पृथ्वीकी धुरीके ठीक समानांतर होती है। इसलिए एक बार वांछित आकाशीय पिंडके दूरदर्शकमें दिखलाई पड़ जानेके बाद केवल इतना ही आवश्यक होता है कि जैसे-जैसे वह आकाशीय पिंड आकाशमें घूमता रहे वैसे-वैसे दूरदर्शकको भी पूर्वोक्त धुरीपर घुमाया जाय। इसके लिए बड़े दूरदर्शकोंमें घड़ी लगी रहती है। इस घड़ीके कारण दूरदर्शक आप-से-आप घूमता रहता है और घंटों उसी पिंडकी ओर रहता है जिस पर वह आरंभ में साधा जाता है। उदाहरणतः, यदि दूरदर्शकको सवेरे सूर्यकी दिशामें कर दिया जाय और घड़ी चला दी जाय तो शाम तक वह सूर्यकी ओर ही रहेगा। जैसे-जैसे सूर्य घूमेगा वैसे-वैसे दूरदर्शक भी घूमता रहेगा। इससे बड़ी सुविधा होती है। मंद प्रकाशके आकाशीय पिण्डोंका फोटो उतारनेमें भी इससे सहायता मिलती है, क्योंकि प्रकाशदर्शन (एक्सपोज़र) इच्छानुसार अधिक समयका दिया जा सकता है। दूरदर्शकके ठीक वेगसे चलते रहनेके कारण फोटो तीक्ष्ण उतरता है। दूरदर्शक चलता न रहे तो आकाशीय पिण्डके चलते रहनेके कारण लीपा-पोती हो जाय।
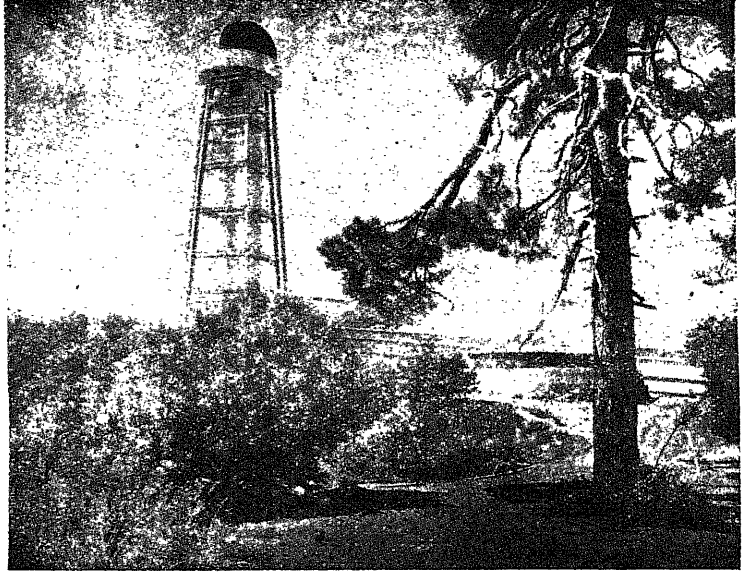
अट्टालिका दूरदर्शक
इस दूरदर्शकसे सूर्यका निरीक्षण किया जाता है।

गुम्बद

बड़े दूरदर्शकोंको प्रतिदिन उठाकर घरमें रक्खा नहीं जा सकता क्योंकि वे बहुत भारी होते हैं। सौ इंच-वाला दूरदर्शकका व्यास १०० इंच अर्थात् ८ फुट ४ इंच है और
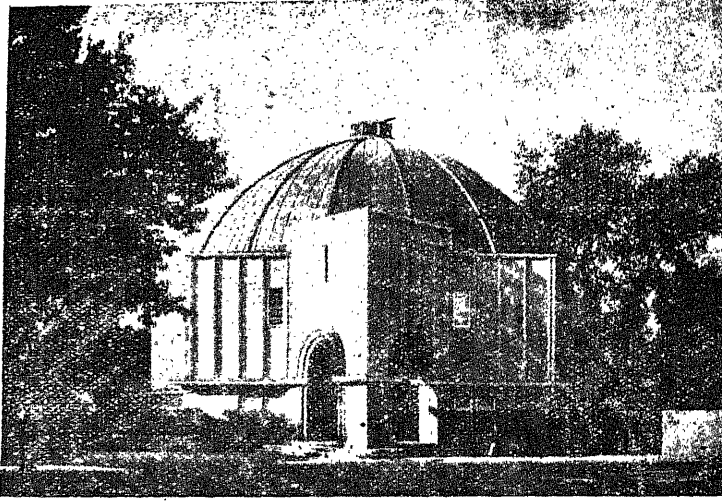
जनताके लिए सुगम ज्योतिष।
यूरोपके कई बड़े शहरोंमें जनताके लिए 'ग्रहगृह' (प्लैनेटेरियम) रहते हैं जहाँ गृहकी गोल छतपर सिनेमाकी तरह बने यंत्रसे ग्रह आदिकी गति दिखलायी जाती है।

पर अमरीकामें है। इसके चल भागकी तौल लगभग तीन हजार मन है। केवल दर्पण ही सवा सौ मनका है। इतना भारी होते हुए भी दूरदर्शक चींटीकी चालसे अपने अक्ष पर घूम सकता है। यदि यह पूर्ण सचाईसे न घूम सकता तो फोटो उतारनेके कामके लिए बेकार ही रहता। इसे सुगमतासे चला सकनेके लिए धुरीमें ऊपर और नीचेकी ओर इस्पातके बड़े-बड़े ढोल लगे हैं और ये ढोल बराबर पारा पर तैरते रहते हैं। इस लिए दूरदर्शक एक प्रकारसे पारे पर ही तैरता रहता है; इसके बोझका थोड़ा-सा ही अंश धुरीके सिरों पर पड़ता है।

दूरदर्शक यदि केवल चींटीकी ही चालसे चल सकता तो एक आकाशीय पिंडसे दूसरेकी ओर घुमानेमें बहुत समय नष्ट होता। इसलिए आवश्यकता पड़ने पर वह वेगसे भी चलाया जा सकता है। दूरदर्शकको शीघ्र और मंद गतिसे चलानेके लिए अलग-अलग विद्युत-मोटरें लगी हैं। गुंबद, दूरदर्शक और इसके विविध अंगोंको चलानेके लिए कुल मिलाकर चालीस मोटरें लगी हैं। इनको ज्योतिषी चक्षुतालके पाससे ही चला या रोक सकता है। इस दूरदर्शकमें छोटे दूरदर्शकोंकी तरह नली नहीं है। प्रधान दर्पण और चक्षुतालका संबंध मोटे-मोटे इस्पातके धरनोंसे किया गया है जो उसी प्रकार सुदृढ किये गये हैं जैसे किसी बड़े पुलके धरन। वस्तुतः धरनोंका यह ढाँचा इतना दृढ़ है कि यदि एक सिरे पर मनुष्य भी चढ़ जाय तो ढाँचा नाम-मात्र भी न लचेगा। जिस चौकी पर ज्योतिषी खड़ा होकर देखता है वह भी चक्षुताल की ऊँचाई-नीचाईके अनुसार ऊपर-नीचे किया जा सकता है। उसके लिए भी अलग बिजलीकी मोटर लगी है। दूरदर्शक गृहका गुंबद १०० फुट व्यासका है। दूरदर्शक और दूरदर्शकघरके बनानेमें सोलह लाख रुपया खर्च हुआ था। इस भीमकाय दूरदर्शककी घड़ी

लंबाई लगभग ६४ फुट। इस प्रकार यह साधारण कोठरीसे भी बहुत बड़ा है। आरोपण आदि लेकर यह साधारण बड़े मकानोंसे भी बड़ा है। ऐसे यंत्रको उठाकर घरके भीतर ले जानेकी बात सोचना ही वृथा है। परंतु यों ही खुले मैदानमें पड़े रहनेसे यंत्र शीघ्र धूप, गर्द और पानीसे खराब हो जायगा। यदि ऐसे यंत्रको साधारण घरमें रक्खा जाय तो फिर तारे आदि कैसे देखे जायँ? इस लिए दूरदर्शकके चारों ओर दीवार बना कर उस पर घूमने वाला गुंबद बना दिया जाता है। इस गुंबदमें एक ओर झरोखा बना रहता है जो क्षितिजसे शिरोबिंदु तक लंबा रहता है। यदि गुंबद अचल होता तो आकाशकी एक ही धज्जी देखी जा सकती, परंतु गुंबदको घुमा कर पारी-पारीसे आकाशका सभी भाग देखा जा सकता है। काम हो जाने पर झरोखा बंद कर दिया जा सकता है।

१०० इंच वाला दूरदर्शक

संसारका वर्तमान सबसे बड़ा दर्पणयुक्त दूरदर्शक वस्तुतः अद्भुत यंत्र है। यह माउंट विलसन नामक पहाड़

बड़ी ही सचाईसे चलती है। इसका प्रमाण इससे लिये गये फोटोग्राफ़ोंकी तीक्ष्णतासे मिलता है।

३—चंद्रमा

सूर्यको छोड़, अन्य आकाशीय पिंडोंमें चंद्रमा ही हमको सबसे बड़ा लगता है, परंतु वास्तवमें चंद्रमा अन्य सभी आकाशीय पिंडोंसे छोटा है। यह हमको इतना बड़ा केवल इसी लिए लगता है कि यह हमारे बहुत पास है। चंद्रमाकी दूरी अब नाप ली गयी है। दूरी उसी रीतिसे नापी गयी है जिस रीतिसे क्षेत्रमापक (सरवे करनेवाला) दूरस्थ पहाड़की दूरी नापता है। हमें पता चला है कि चंद्रमा हमसे ढाई लाख मीलसे कुछ कम ही दूरी पर है। चंद्रमाका व्यास लगभग दो हजार मीलका है।

कोई भी देख सकता है कि चंद्रमा तारोंके बीच बराबर चला करता है। यदि आज वह किसी विशेष तारेके निकट है तो कल उससे काफी दूर चला जायगा। इसका कारण यह है कि चंद्रमा पृथ्वीकी चारों ओर चक्कर लगाता है। यदि हम उस दिनसे गिनना आरंभ करें जिस दिन चंद्रमा किसी विशेष तारे के पास रहता है तो हम देख सकते हैं कि वह लगभग २७⅓ दिनमें तारोंके हिसाबसे एक चक्कर लगा लेता है।

चंद्रमाकी कलाओंको सबने देखा होगा। चंद्रमा धीरे-धीरे बढ़ता रहता है और एक दिन चंद्र-बिंब पूर्ण दिखलाई पड़ता है। उस दिन पूर्णिमा रहती है। एक पूर्णिमासे दूसरी पूर्णिमा तक लगभग २९½ दिन हो जाता है। कलाएँ दिखलाई पड़नेका कारण यह है कि स्वयं चन्द्रमामें कुछ चमक नहीं है। जिधर सूर्य-प्रकाश पड़ता है उधरका भाग हमें चमकता हुआ दिखलाई पड़ता है। परंतु चाहे चन्द्रमा किसी भी स्थितिमें रहे इसका आधा हिस्सा धूपमें रहता है। यदि हम चन्द्रमाकी प्रतिमा बनावें—किसी भी गोल गेंदसे काम चल जायगा—और उसके आधे भागको काला रंग दें, शेषको सफेद, और उसे घुमा फिरा कर पारी-पारीसे कई दृष्टिकोणोंसे देखें तो हमें गेंदका सफेद हिस्सा चन्द्रमाकी कलाकी तरह कभी क्षीण और धनुषाकार, कभी अधिक, कभी आधा, सब तरहका दिखलाई पड़ेगा और हम समझ सकेंगे कि चन्द्रमामें कलाएँ क्यों दिखलाई पड़ती हैं।

चन्द्रमाका अप्रकाशित भाग पूर्ण रूप से अदृश्य नहीं रहता। वह हमें मंद प्रकाशसे चमकता हुआ दिखलाई पड़ता है। द्वितीया, तृतीयाके चन्द्रमामें यह बात विशेष रूपसे दिखलाई पड़ती है। यह प्रकाश चंद्रमाको सूर्यसे नहीं मिलता। यह वह प्रकाश है जो सूर्यसे चल कर पहले पृथ्वी पर पड़ता है और वहाँसे बिखर कर चंद्रमा पर पहुँचता है।

चंद्रमा पर वायुमंडल नहीं है। न वहाँ कभी बादल होते हैं और न वर्षा। वहाँ न कोई नदी है और न समुद्र। वहाँ न शहर हैं और न गाँव, न पौधे हैं और न जंतु। चंद्रलोक पूर्णतया मृत है। कहीं-कहीं लंबे-चौड़े सपाट

चंद्रमाके ज्वालामुख।
चंद्रमापर अनेक गड्ढे हैं जिन्हें ज्योतिषी लोग ज्वालामुख कहते हैं, यद्यपि यह निश्चय रूपसे पता नहीं है कि चन्द्रमामें कभी ज्वालामुखी पहाड़ थे भी या नहीं।

मैदान हैं, जो हमें कोरी आँखसे चन्द्र-कलंक—काले धब्बे—की तरह दिखलाई पड़ते हैं। चारों ओर ज्वालामुख छितरे हुए हैं जिन्हें देखकर ऐसा जान पड़ता है कि किसी समय चन्द्रमामें अनेक ज्वालामुखी पर्वत थे जो अब मृत हो गये हैं। इन ज्वालामुखोंमें से अधिकांश इतने बड़े हैं कि उनमें एक-दो ज़िले आ जायँगे। कहीं-कहीं बड़े-बड़े पहाड़ हैं। चन्द्रमाके पहाड़ों और ज्वालामुखोंकी बारियोंमें विशेषता
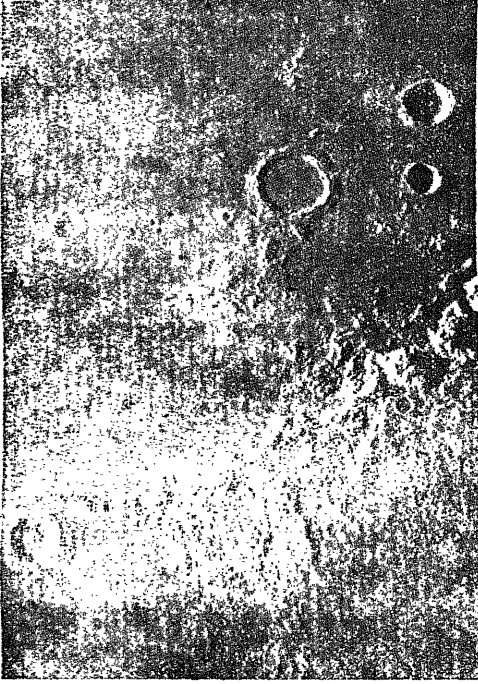
चंद्रमाके 'समुद्र'।
चन्द्रमापर कई मैदान भी हैं जिन्हें लोग पहले समुद्र समझते थे। इनका नाम शांतसागर, वर्षासागर इत्यादि पड़ गया है, परंतु अब हम निश्चय रूपसे जानते हैं कि ये समुद्र नहीं, मैदान हैं।

यह है कि वे बड़े तीक्ष्ण और करकराते हैं—ऐसा जान पड़ता है मानों वे हालमें ही बने हैं। बात यह है कि पृथ्वी पर आँधी पानीके कारण पहाड़ोंके धारदार किनारे घुल और बह जाते हैं, परंतु चंद्रमा पर पानी न रहनेके कारण, पहाड़ सदा धारदार ही बने रहते हैं। वायुमंडल न रहने के कारण वहाँ प्रकाश बिखरने नहीं पाता। इस-लिए धूपमें स्थित भाग खूब चमकते हुए दिखलाई पड़ते हैं और सायेमें पड़े भाग काले जान पड़ते हैं। छोटे-से भी दूरदर्शकमें ज्वालामुखकी दीवारें, पहाड़ और पहाड़ोंकी चोटियोंकी करकराती परछाइयाँ दिखलाई पड़ती हैं और इससे दृश्य बड़ा ही सुन्दर लगता है। उनकी चमक पुस्तकमें छपे चित्रोंमें आ ही नहीं सकती। यदि कोई छोटा सा भी दूरदर्शक मँगनी मिल सके तो उससे एक बार चन्द्रमाको अवश्य देखना चाहिये। द्वितीया या तृतीयाका चन्द्रमा बहुत सुन्दर लगता है। पूर्णिमाके दिन सूर्य हमारे ठीक पीछे रहता है। इस लिए चंद्रमा परकी परछाइयाँ उस दिन हमें नहीं दिखलाई पड़तीं। इसका परिणाम यह होता है कि उस दिन दूरदर्शक द्वारा चन्द्रमा सभी जगह चमकदार दिखलायी पड़ता है।

चन्द्रमा इस प्रकार पृथ्वीके चारों ओर घूमता है कि सदा इसका एक ही भाग हमारी ओर रहता है। हम चन्द्रमाकी पीठ कभी भी नहीं देख सकते।

चन्द्रमा पृथ्वीसे बहुत छोटा है। इसलिये वहाँ गुरुत्वाकर्षण बहुत कम है। यदि हम चन्द्रमा पर पहुँच सकते और जीवित रह सकते तो वहाँ हम पृथ्वीकी अपेक्षा ६ गुना ऊँचा कूद सकते। वहाँ हम जल्द थकेंगे भी नहीं, परंतु हमारा शरीर वहाँ इतना हलका जान पड़ेगा कि हम वहाँ ठीक चल न पायेंगे। संभवतः, चलनेकी चेष्टा करने पर लड़खड़ा कर गिर पड़ेंगे।

चन्द्रमाके क्षीण गुरुत्वाकर्षणके कारण ही वहाँ कोई वायुमंडल नहीं है और न वहाँ पानी है। पहले दोनों वस्तुएँ वहाँ रही होंगी, परंतु वहाँ के कम गुरुत्वाकर्षणके कारण वायुमंडल धीरे-धीरे उड़ गया होगा। पानी भी वाष्प बन कर उड़ गया होगा। चन्द्रमापर लगभग १५ दिनकी रात होती है और १५ दिनका दिन। अर्थात् हमारे दिनोंके हिसाबसे वहाँके किसी स्थानमें लगातार लगभग १५ दिन तक धूप रहती है और तब लगातार १५ दिन तक सूर्यका दर्शन नहीं होता। १५ दिनकी धूपमें वहाँकी भूमि अत्यंत तप्त हो जाती होगी और इसलिए जो कुछ पानी कभी रहा होगा वह आसानीसे भाप होकर उड़ गया होगा। वहाँके दोपहरके समय, जहाँ सूर्य प्रायः शिरोविंदु पर रहा होगा, पानी केवल धूपके कारण खौलने लगा होगा। वहाँकी लंबी रात्रिमें भीषण सर्दी पड़ने लगती है। गणनासे

पता चलता है कि मध्य रात्रिमें वहाँ इतनी सर्दी पड़ती होगी कि पानी क्या, बहुत-सी गैसें भी जम जायँगी।

चंद्रमा किस पदार्थका बना है

चन्द्रमा अपने प्रकाशसे तो चमकता नहीं। उस पर जब धूप पड़ती है तभी वह चमकता है। एक वैज्ञानिकने चन्द्रमासे आये प्रकाशकी सूक्ष्म तुलना तरह-तरहके पत्थर, मिट्टी, बालू आदिसे बिखरे प्रकाशसे की है। उसने देखा कि चन्द्रमाका प्रकाश लगभग वैसा ही है जैसा ज्वालामुखी पर्वतोंके आस-पासकी भूमिसे बिखरता है; अन्य भाँतिके पत्थरोंसे बिखरे प्रकाशसे चन्द्रमाका प्रकाश नहीं मिलता। इससे यह बहुत संभव जान पड़ता है कि चंद्रमाकी सतह ज्वालामुखी पर्वतोंसे निकले पत्थरोंसे बनी है। इस अनुमानका समर्थन बहुत कुछ इससे भी होता है कि वहाँ पर इतने अधिक ज्वालामुख-सरीखे गड्ढे हैं। चन्द्रमा वस्तुतः अनेक मृत ज्वालामुखियोंकी कोई महान प्रदर्शिनी जान पड़ता है। वहाँके ज्वालामुखियोंकी आकृति पृथ्वीकी ज्वालामुखियोंकी आकृतिसे इतनी मिलती-जुलती हैं कि आश्चर्य होता है (चित्र देखें)।

ज्वालामुखी पर्वतोंके भीतरसे निकला पिघला पत्थर जमने पर इतना हलका और छिद्रमय होता है कि वह तापका संचालन अच्छी तरह नहीं कर पाता। यदि उसकी ऊपरी सतह खौलते पानीकी तरह तप्तकर दी जाय तो भी सतहके आधा इंच नीचे वाला स्थान पहले-जैसा ही ठंढा रह जाता है। चन्द्रमापर भी कुछ ऐसा ही होता होगा, क्योंकि देखा गया है कि जब चन्द्रमापर धूप पड़ती है तो वहाँकी सतह बहुत गरम हो जाती है और धूपके हटते ही सतह बहुत ठंढी हो जाती है। माउंट विलसनके दो वैज्ञानिकोंने चन्द्रमाकी सतहका तापक्रम नापा तो पता चला कि ग्रहणके पहले तापक्रम १६४ डिगरी फारनहाइट था, परंतु ग्रहण लगते ही, अर्थात् चन्द्रमाके पृथ्वीकी आड़में आ जाते ही, तापक्रम -१८२ डिगरी हो गया। इस प्रकार कुछ ही मिनटोंमें तापक्रम ३४६ डिगरी गिर गया। यदि चन्द्रमा अन्य चट्टानोंकी तरह होता तो गरमी बहुत दूर तक भीतर घुसी होती और उसे ठंढा होनेमें घंटों लगता। सभीने देखा होगा कि गरमीमें रातके समय बिछौना बहुत शीघ्र ठंढा हो जाता है, परंतु पत्थर घंटों तक गरम रहता है। जिस आश्चर्यजनक रीतिसे चन्द्रमा कुछ ही मिनटोंमें बहुत अधिक तापसे अत्यंत शीतल हो जाता है इस बातका प्रमाण है कि वहाँ ऊपरी सतहके एक-आध इंचमें ही ताप घुस पाता है। इसलिए यह मानना कि चन्द्रमाकी ऊपरी सतह ज्वालामुखियोंसे निकले पत्थरों और राखसे ढकी है असंगत न होगा।

चंद्रमासे देखने पर हमारी पृथ्वी और सूर्य।
चन्द्रमापर वायुमंडल नहीं है, इसलिए वहाँसे सूर्यका कॉरोना भी दिखलाई पड़ेगा। पृथ्वी सूर्यके सामने पड़ने पर काली लगेगी, परंतु इसकी चारों ओर प्रकाशका चक्र दिखलाई पड़ेगा, क्योंकि पृथ्वीका वायुमंडल सूर्य-प्रकाशसे चमक उठेगा।

४—सूर्य

सूर्यकी दूरी नापना उतना सरल नहीं है जितना चन्द्रमाकी, क्योंकि सूर्य हमसे इतनी दूर है कि उसकी दिशामें नापनेयोग्य कोई अंतर पड़ता ही नहीं, चाहे हम उसे उत्तरी ध्रुवसे देखें, चाहे दक्षिणीसे। लड़के खेलते समय सौ, दो सौ, गज़ दौड़ते हैं तो उनको जान पड़ता है कि

चन्द्रमा भी उनके साथ-साथ दौड़ता है। इसका अर्थ यही है कि चन्द्रमा इतनी दूर है कि सौ, दो सौ गज़ जानेमें चन्द्रमाकी दिशामें कोई अंतर नहीं पड़ता। परंतु सूर्य उससे लगभग चार सौ गुना अधिक दूर है। इस दूरीको
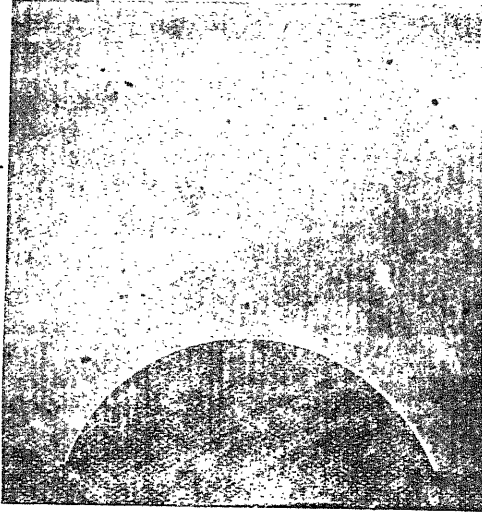
सूर्यकी एक रक्त ज्वाला।
देखें यह सूर्यसे कितनी दूर निकल गया है।

नापनेके लिए वस्तुतः पहले अपने निकटतम ग्रहकी दूरी नापी गयी है और तब सूर्यकी दूरी इस बातसे हिसाब लगा कर जान ली गयी है कि सूर्यकी प्रदक्षिणामें पृथ्वी और उस ग्रहको कितना-कितना समय लगता है। इस प्रकार पता चला है कि सूर्यकी दूरी लगभग सवा नौ करोड़ मील है।

आकाशमें सूर्य और चन्द्रमा प्रायः एक नापके लगते हैं। कभी सूर्य कुछ बड़ा पड़ता है, कभी चन्द्रमा। जब चन्द्रमा ठीक हमारे और सूर्यके बीच आ जाता है तो अधिकतर सर्व-सूर्य-ग्रहण लगता है। उस समय सूर्य चन्द्रमाके पीछे छिप जाता है, परन्तु कभी-कभी कंकण ग्रहण लगता है। इस अवसर पर हमको सूर्य वस्तुतः चन्द्रमाकी अपेक्षा कुछ बड़ा दिखलाई पड़ता है। इस लिए चन्द्रमा सूर्यको पूरा-पूरा नहीं छिपा पाता। सूर्यकी चारों ओरका किनारा बिना ढका रह जाता है। इसीसे सूर्य हमको वलय या कंकण की तरह दिखलाई पड़ता है। सूर्य और चन्द्रमा हमको कभी कुछ छोटे, कभी कुछ बड़े इसलिए दिखलाई पड़ते हैं कि उनकी दूरी घटती-बढ़ती रहती है। जैसे, यदि हम अपनी हथेलीको दूर पर रक्खें तो सामनेके दृश्यका थोड़ा-सा ही भाग छिपेगा, परंतु यदि उसी हथेलीको आँखोंके बहुत पास रक्खें तो उससे दृश्यका बहुत-सा अंश छिप जायगा। चन्द्रमा और सूर्य हमको लगभग बराबर ही जँचते हैं, इससे परिणाम यह निकलता है कि सूर्यका व्यास चन्द्रमाके व्याससे लगभग ४०० गुना बड़ा है। इस प्रकार सूर्यका व्यास पृथ्वीके व्याससे लगभग १०० गुना (वस्तुतः १०९ गुना) बड़ा है। यदि एक गेंदसे दूसरा गेंद व्यासमें दूना बड़ा हो तो वह पहलेकी अपेक्षा आयतनमें वस्तुतः अठगुना बड़ा होगा। इस प्रकार सूर्य आयतनमें पृथ्वीसे लगभग १३ लाख गुना बड़ा है—यदि पृथ्वीके बराबर तेरह लाख गोले पिघला कर एक गोला बनाया जाय तभी कहीं सूर्यके बराबर गोला बन सकेगा!

वैज्ञानिकोंकी खोजोंके आधारपर हम जानते हैं कि यदि हम सूर्यके निकट पहुँच जायँ तो क्या दिखलाई पड़ेगा। हम देखेंगे कि सूर्य चन्द्रमाकी तरह भूत नहीं है। हमें उसका कोई भी अंग शांत न दिखलाई पड़ेगा—सभी वस्तुएँ वहाँ वेगसे चलती हुई दिखलाई पड़ेंगी। सूर्यके सारे धरातलमें भीषण हलचल बराबर मची रहती है। वह खौलता-सा रहता है और उसमेंसे विस्फोट होता रहता है। बात यह है कि सूर्यका भीतरी भाग एक बड़े कारखाने-सा है जहाँ शक्ति उत्पन्न होती है। इस शक्तिकी धारा सतह तक आती रहती है। प्रत्येक वर्ग इंचको पाँच अश्वबलके हिसाबसे शक्ति मिलती रहती है और यह शक्ति प्रकाश और तापकी रश्मियोंके रूपमें बराबर निकलती रहती है। ऊपरी सतहके लेशमात्र ठंढा होते ही उथल-पुथल मच जाती है। नीचेका अधिक तप्त पदार्थ अपने प्रचंड तापको कुछ विकिरण द्वारा कम करनेके लिए ऊपर चढ़ आता है। इसीसे वहाँ सदा ही हलचल मची रहती है।

पता

श्रीयुत ....

....

....

विज्ञान

विज्ञान परिषद्, प्रयाग का मुख-पत्र

विज्ञानं ब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते। विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति ॥ तै० उ० ।३।५।

भाग ५६	सिंह, सम्वत् २००१ अगस्त १९४४	संख्या ५

कुचला

(डाक्टर बी० के० मालवीय)

कुचला एक पेड़की छाल या बीजको कहते हैं जिसे हिन्दीमें ज़हरका पेड़, अंग्रेजीमें नक्स वामिका, या स्ट्रिकूनीन का पेड़ और संस्कृतमें विषमुष्टि कहते हैं। इसका फल एक छोटेसे संत्रेके आकार-रूप व रंगका होता है। इसका गूदा गाढ़ा और सफेद होता है जिसमें बीज १ से ५ तक खड़े खड़े अनिश्चित प्रकारसे रहते हैं। बीज प्रायः गोलाकार एक तरफ कुछ पचके और दूसरी ओर कुछ उभरे रहते हैं। कभी-कभी चपटे, बीचमें गड्ढेदार और किनारों पर कुछ मोटे और चौड़े रहते हैं। इनका रंग हलका भूरा या कभी-कभी हलका हरा होता है। बीज पर दबे हुये छोटे-छोटे बाल होते हैं जिनमें एक प्रकारकी चमक प्रतीत होती है। बीज एक इंचसे कुछ कम चौड़ा और करीब चौथाई इंच मोटा होता है। इसके पेड़ बड़े घने, कटीले और जहरीले होते हैं। पंसारियोंके यहाँ इसकी लकड़ी विविध नापकी मिलती है। लकड़ीको चौड़े तरफसे काटकर ज़रासा शोरेके तेजाबको छुला देनेसे वह नारंगी लाल रंग पकड़ लेती है।

कुचलेका कडुआपन या जहरीलापन स्ट्रिकूनीन व ब्रूसीन नामक अलकेलायडों पर निर्भर है जो बीजमें ½ फी सदी और चौथाई फी सदीसे लेकर १ फी सदी तक अलग-अलग रहते हैं। लकड़ी, छाल व पत्तोंमें केवल ब्रूसीन होता है स्ट्रिकूनीन नहीं होता। इतना विषैला होने पर भी विष-उपचारमें कुचला बहुत कम काममें लाया जाता है क्योंकि इसे बुकनी करना कठिन होता है। स्ट्रिकूनीनका आविष्कार हो जाने पर स्ट्रिकूनीन द्वारा विष-उपचार अवश्य बढ़ गये हैं।

कुचला उत्तेजक पदार्थ होनेके कारण नामर्दी दूर करनेके लिये या विशेष संभोग करनेके लिये प्रायः प्रयोग किया जाता है। किन्तु कुचला या उससे बने किसी भी पदार्थको बिना किसी विशेषज्ञकी देख रेखके प्रयोग करना भय रहित नहीं है। ½ से ३ ग्रेन तक बुकनीके रूपमें या ½ से १ ग्रेन तक काढ़ा करके या ५ से १० मिनिम तक टिंक्चरकी अवस्थामें देना चाहिये। कुचला बुकनीके रूपमें विशेषतः लाभकारी समझा जाता है। क्योंकि इस रूपमें यह पाचक प्रक्रियामें देर तक ठहरता है अतएव इसके तत्व धीरे-धीरे खूनमें सम्मिलित हो जाते हैं। घोल बनाकर देनेमें शीघ्र ही पचकर शरीरके बाहर हो जाता है और पूरा लाभ नहीं पहुँचा सकता। बुकनी बनानेका सबसे अच्छा ढंग देशी है जिसमें कुचलेके बीजको दूधमें या आधा दूध और आधे पानीमें उबालते हैं। जब बीज मुलायम पड़ जाते हैं तो उन्हें छीलकर पीस डालते हैं। यदि पीसनेमें एक आध बीज कड़े रह जाते हैं तो उन्हें फिर उबाल लेते हैं। इस प्रकार बुकनी बनानेमें कुचलेकी तीव्रता कुछ मन्द हो जाती है। यह अतरा या पारी, दस्त संग्रहणी, शरीर-कम्पन, लकवा, हिस्टीरिया, अजीर्ण, कब्ज, गठिया, अनिद्रा, और पागल कुत्तेके काटनेमें लाभकारी है। मुख-कम्पन, स्नायु-दौर्बल्य या नामर्दी, गर्भावस्थाके समय कै होनेमें स्नायु सम्बन्धी रोगोंमें विशेष लाभकारी है। विशेष दिनों तक उपचार करनेसे प्रमेह दोष भी जाता रहता है। रीढ़की रक्ताल्पतासे लकवा, निष्कारण थकावट, वीर्यपात, मदिरा, अफीम या शीशाके दोषमें, विष उपचारमें बच्चोंके अचित्ता पेशाब हो जानेमें या विशेष पेशाब होनेमें अचूक लाभकारी माना जाता है।

स्नायु सम्बन्धी रोगोंमें समीरगज नामक गोली दी जाती है जो कुचला, अफीम और काली मिर्च बराबर हिस्सोंमें मिलाकर दो दो ग्रेनकी बनाई जाती है। ये

दिनमें एक गोली दो बार करके दी जाती है। पागल कुत्तेके काटनेपर विशुद्ध कुचला खिलाया जाता है और काटी हुई जगह पर उसी दवाको पानीमें या मुर्गेके बीटमें मिलाकर लगाया जाता है। कै और दस्त होना रोगीके लिये लाभकर है।

अजीर्णमें इसकी लकड़ी लाभकारी होती है और सर दर्दमें इसका लेप लगाया जाता है। दो हिस्सा कुचला, चार हिस्सा काली मिर्च, पांच हिस्सा सोंठ, और तीन हिस्सा बारहसिंगाकी सींगका लेप गिलटियों पर, हाथ, पैर या पेडूके सूजनमें लाभकारी होता है। ताजी छालका रस हैज़ा और संग्रहणीमें गुणकारी है और छाल या जड़ का काढ़ा जो बड़ा कडुआ होता है अतरा व पारीके ज्वरमें अथवा विषैले जानवरोंके काटनेमें काममें लाया जाता है।

बीजका तेल गठियामें प्रयोग किया जाता है और पत्तियोंकी पुलटिस सड़े घावोंमें जिनमें कीड़े पड़ गये हों लाभकारी समझा जाता है।

भारतीय लकड़ियोंकी मजबूती

युद्धसे पूर्व अपेक्षाकृत बहुत कम भारतीय इमारती लकड़ियां काममें लाई जाती थीं। इनमेंसे यदि कोई इमारती लकड़ी किसी विशेष प्रदेशमें लोकप्रिय होती थी तो उसका उपयोग सभी कामोंके लिए किया जाता था और इस बातका विचार नहीं रखा जाता था कि जिस काम में वह लाई जा रही है उसके उपयुक्त वह इमारती लकड़ी है भी अथवा नहीं। अपेक्षाकृत कम जानी हुई लकड़ियोंके गुणोंकी बहुत कम कद्रकी जाती रही है। युद्ध सम्बन्धी मांगों तथा धातु बचानेकी आवश्यकताके परिणाम स्वरूप अब बहुत प्रकारकी इमारती लकड़ियोंको काममें लाया जा रहा है। इसलिए अब उसकी विशेषताओं तथा मजबूतीके सम्बन्धमें अधिक जानकारी प्राप्त करना आवश्यक हो गया है।

वन्य-अनुसंधान-शाला कितने ही वर्षोंसे भारतीय लकड़ियोंकी मजबूतीके सम्बन्धमें परीक्षण करती रही है। इस सम्बन्धमें, भारतीय वन्य-लेख-मालाके तीसरे ग्रंथमें बहुत-सी जानने योग्य बातें बतलायी गयी हैं जिसका नाम "विविध उपयोगोंके लिए इमारती लकड़ियोंकी उपयुक्तता और उनका चुनाव है"। इसे अनुसंधानशालाकी इमारती लकड़ी-परीक्षण शाखाके प्रधान अफसर बी० डी० लिमायेने तैयार किया है।

इसमें सागौनकी तुलनामें विभिन्न प्रकारकी लकड़ियोंकी मजबूती बतलायी गई है। सागौन पूर्वकी इमारती लकड़ियोंमें सबसे अधिक प्रसिद्ध है। लेखमें विदेशोंसे आई हुई इमारती लकड़ियोंके सम्बन्धमें भी इसी प्रकारकी बातें बतलायी गयी हैं। इसमें विविध प्रकारकी भारतीय और बर्मी लकड़ियोंके सम्बन्धमें जिनका परीक्षण हो चुका है, व्यापारिक तथा अन्य आंकड़े दिये हैं।

भारतमें बना रालका लासा

देहरादून वन्य-अनुसंधानशालामें किये गये प्रयोगसे पता लगता है कि भारतमें उत्पन्न तार अम्ल रालका लासा तैयार करनेके लिये उपयुक्त है। क्या जहाजोंके लिये, क्या विमानोंके लिए और क्या किसी अन्य कार्यके लिये जहां भी बहुत मजबूती और छत्रकोंके उगानेके भयसे अथवा जलके प्रभावसे मुक्त होनेकी आवश्यकता है, ऊंची श्रेणीके प्लाईवुडके निर्माणमें इनका बड़ा महत्वपूर्ण स्थान है। बाहरसे आये हुए रालके लासोंकी उपलब्धिमें कमी होनेके कारण संस्थाके काष्ठ-संरक्षा विभागने भारतमें उत्पन्न रालके लासोंके सम्बन्धमें जो अन्वेषण किया है उसे प्रकाशित कर दिया गया है।

प्रकाशित पुस्तकमें रालके लासोंके विभिन्न रूप, उनके व्यवहार और मूल्यका वर्णन दिया गया है। ७० से भी अधिक प्रकारकी इमारती लकड़ियोंकी मज़बूतीके परीक्षणके परिणाम और उन पर लासा लगानेके प्रभावका भी वर्णन इसमें सम्मिलित है।

सरल विज्ञानसागर

अपनी योजनाके अनुसार हम सरल विज्ञान सागरका एक और अंश नीचे देते हैं।

परंतु साधारण हलचलसे ही काम नहीं चल पाता। कहीं कहीं तो अग्निकी लाल लाल लपटें निकल पड़ती हैं और सूर्य-तलसे लाखों मील ऊपर तक पहुँच जाती हैं। इनको रक्तज्वालाएँ कहते हैं। ये इतनी बड़ी होती हैं कि पृथ्वीसे ही उनका फ़ोटोग्राफ़ खींचा जा सकता है। सूर्य-बिंबके प्रचंड तेजके आगे ये ज्वालाएँ हमको नहीं दिखलाई पड़तीं, परन्तु जब कभी सर्व-सूर्यग्रहण लगता है और सूर्य स्वयं चन्द्रमासे छिप जाता है तो ये ज्वालाएँ हमें बड़ी चटक दिखलाई पड़ती हैं। उस समय पता चलता है कि सूर्यकी चारों ओर बहुत दूर तक फैला हुआ वायुमण्डल भी है। यह सर्व-सूर्य-ग्रहणके समय मोतीके समान झलकता हुआ कोमल प्रकाशका मुकुट-सरीखा दिखलाई पड़ता है। इसको सूर्य-मुकुट (अँग्रेज़ीमें कॉरोना) कहते है। इसका आकार किसी वर्ष कुछ, किसी वर्ष कुछ रहता है। यह पूर्णतया गोल नहीं होता, जैसा सर्व सूर्यग्रहणके समय लिये गये फ़ोटोग्राफ़ोंसे प्रत्यक्ष है।

कुछ रक्त ज्वालाएँ प्रायः शांत होती हैं और एक स्थान पर टिकी-सी लगती हैं, परंतु कुछ इतने वेगसे उछलती हैं कि उनकी उपमा नहीं दी जा सकती। उनका वेग कई हजार मील प्रति मिनट होता है! कुछ ज्वालाएँ तो कूद कर सूर्य-तलसे दूर निकल जाती हैं और लाखों मील दूर पहुँच जाती हैं। साथ ही उनका आकार बराबर बदलता रहता है। कुछ ज्वालाएँ इतनी बड़ी होती हैं कि उनके सामने हमारी पृथ्वी उतनी बड़ी भी न होगी जितना हवनकुंडके हिसाबसे एक दाना जौ।

इन विचित्र ज्वालाओंके अतिरिक्त सूर्य-तल पर भीमकाय मुँह बाये गड्ढे भी दिखलाई पड़ेंगे, जो अत्यंत बड़े ज्वालामुखीके मुँहकी तरह हमें दिखलाई पड़ेंगे। वे बराबर धुआँ और वायव्य पदार्थ उगलते हुए दिखलाई पड़ेंगे। पृथ्वी परसे भी वे दिखलाई पड़ते हैं, परंतु केवल काले धब्बोंकी तरह। उनको हम यहाँ सूर्य-कलंक कहते हैं। परंतु वे धब्बे नहीं हैं। वे अतिवृहत् विवर हैं जिनमें हमारी पृथ्वी वैसी ही जँचेगी जैसे ऊँटके मुँहमें ज़ीरा।

लोग कहते हैं कि सूर्य आगका गोला है। यह वर्णन फीका है। सूर्यके आगे आग क्या, हमारी सबसे तप्त बिजलीकी भट्ठी भी विवर्ण और शीतल जँचेगी। वहाँकी ज्वालाओंकी रासायनिक बनावट भी हमारी आगकी लपटोंसे विभिन्न है। पृथ्वी पर आगकी लपटोंमें हल्की गैसें ही रहती हैं, परंतु सूर्य पर इन गैसोंके अतिरिक्त चाँदी, सोना, लोहा, सीसा आदिके वाष्प भी रहते हैं।
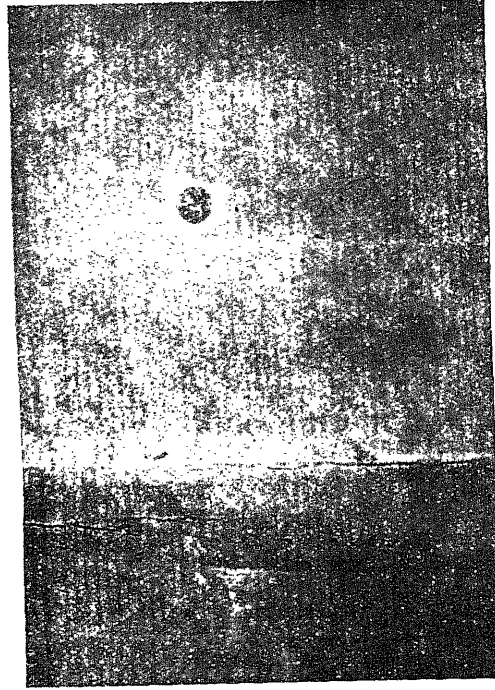
सर्व सूर्यग्रहण

सर्व सूर्य ग्रहणमें समूचा सूर्य चंद्रमाके पीछे पड़ जाता है; परंतु पूर्ण अंधकार नहीं हो पाता है, क्योंकि सूर्यकी चारों ओर एक प्रकाश-मंडल है जिससे हमें मंद प्रकाश बराबर मिलता रहता है। इसे सूर्य मुकुट कहते हैं और यह बहुत ही सुन्दर जान पड़ता है।

वहाँकी कल्पनातीत गरमीके कारण सभी पदार्थ गैसका रूप धारण कर लेते हैं। परंतु वहाँ भी प्रायः वे ही सब मौलिक पदार्थ हैं जो पृथ्वी पर हैं। रश्मिविश्लेषक नामक यंत्रसे सूर्य-प्रकाशकी परीक्षा करनेसे ये सब बातें हमें सहज ही ज्ञात हो जाती हैं।

सूर्यके भीतर क्या है।

सूर्य ठोस नहीं है। वह गैसका गोला है, यद्यपि यह
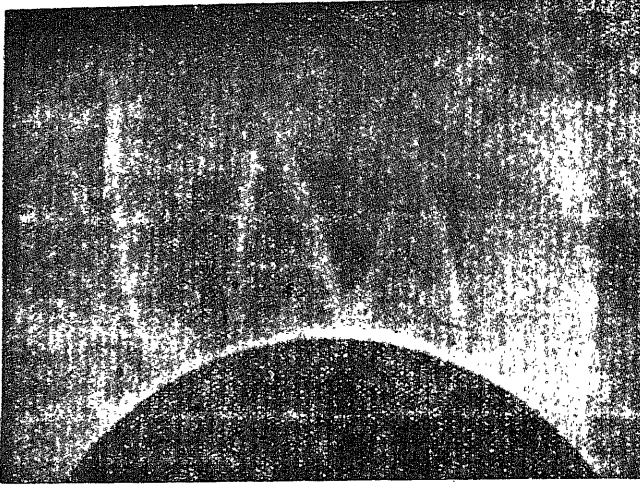
सूर्य-मुकुट
सर्व सूर्य-ग्रहणके समय, जब सूर्य स्वयं चंद्रमाके पीछे छिप जाता है, सूर्यकी चारों ओर फैला हुआ एक प्रकाश-मंडल दिखलाई पड़ता है। इसीको सूर्य-मुकुट कहते हैं।

गैस इतनी दबी हुई हैं कि कुल सूर्य पानीसे भी भारी है। सूर्यके ऊपरी तलके तापका टूटा-फूटा वर्णन ऊपर दिया गया है, परंतु सूर्यके भीतरकी गरमीका वर्णन करना तो असंभव ही है। यह ऊपरी धरातलसे कहीं अधिक तप्त है। सूर्यके पृष्ठका तापक्रम सात-आठ हज़ार डिगरी है, थोड़ा ही नीचे तापक्रम दस-बारह हज़ार डिगरी तक पहुँच जाता है, परंतु केन्द्र पर तो तापक्रम चार करोड़ डिगरी होगा! जब हम विचार करते हैं कि तेज़ ज्वरमें शरीरका तापक्रम १०४ डिगरी रहता है, खौलते पानीका २१२ डिगरी, पिघलते सोनेका १९४५ और हमारे तप्त-से-तप्त भट्ठीका ५५०० डिगरी तो हम देख सकते हैं कि हमारा मस्तिष्क चार करोड़ डिगरीके तापक्रमका कुछ अनुमान ही नहीं कर सकता। संभवतः इससे कुछ सहायता मिले कि यदि हम एक रुपयेको इतना तप्त कर पायें कि वह सूर्य-केंद्रके तापक्रम पर पहुँच जाय तो उसकी आँचसे एक हज़ार मीलकी सब वस्तुएँ झुलस जायँगी!

परंतु तापक्रमसे भी अधिक आश्चर्यजनक बात वहाँका चाप (दबाव) है। पृथ्वी पर प्रत्येक वर्ग इंच पर हमारे वायुमंडलका दबाव लगभग साढ़े सात सेर पड़ता है। यदि हम किसी बरतनसे सब हवा चूस लें तो उसके ऊपर उतना ही जोर पड़ेगा जितना प्रत्येक वर्ग इंच पर साढ़े सात सेर बोझ लादनेसे होता। यदि बरतन काफी मज़बूत न होगा तो वह पिचक जायगा। हमारा शरीर इसलिए नहीं पिचकता कि उसके भीतर भी हवा है।

साढ़े सात सेर प्रति वर्ग इंचके चापको हम एक वायु-मंडलका चाप कहते हैं। हमारी बड़ी-बड़ी रेलवे-इंजनोंमें भाप उत्पन्न करके रेलगाड़ी चलायी जाती है। उन इंजनोंके बॉयलरोंमें अधिक-से-अधिक बीस वायु-मंडलका चाप रहता है। परंतु सूर्यके केंद्र पर चालीस अरब वायुमंडलोंका चाप रहता है! इस आश्चर्यजनक चापका कारण यह है कि सूर्यका द्रव्यमान बहुत अधिक है। केंद्र पर बहुत-सा पदार्थ लदा है और केंद्र बोझसे अत्यधिक दबा रहता है।

तप्त करनेसे गैसें बढ़ती हैं और हल्की हो जाती हैं। इसीलिए तो काग़ज़के गुब्बारेके नीचे तेलसे तर चिथड़ा जला देनेसे गुब्बारा उस चिथड़ेको लिये-दिए उड़ जाता है। इसलिए सूर्य-केंद्रकी अतुलित तापके कारण वहाँके गैसोंको बहुत हल्का होना चाहिए था। परंतु पूर्वोक्त चापके कारण वह चारों ओरसे खूब दबा भी रहता है। ताप और चापके संघर्ष में एक प्रकारसे चापने ही विजय पायी है। सूर्यका केंद्र गैस होते हुए भी ठोस-सा है, वहाँ के अत्यधिक चापके कारण सब गैसोंके सूक्ष्मतम कण एक दूसरेसे सट गये हैं।

यहाँ कहाँ सज्जनकर बासा

ताप लगनेसे बर्फ पानी हो जाता है और पानी वाष्पमें परिवर्तित हो जाता है। परन्तु अधिक ताप लगनेसे वाष्पके अणु टूट जाते हैं और उनके परमाणु अलग-अलग हो जाते हैं। हम जानते हैं कि जलके अणुओंमेंसे
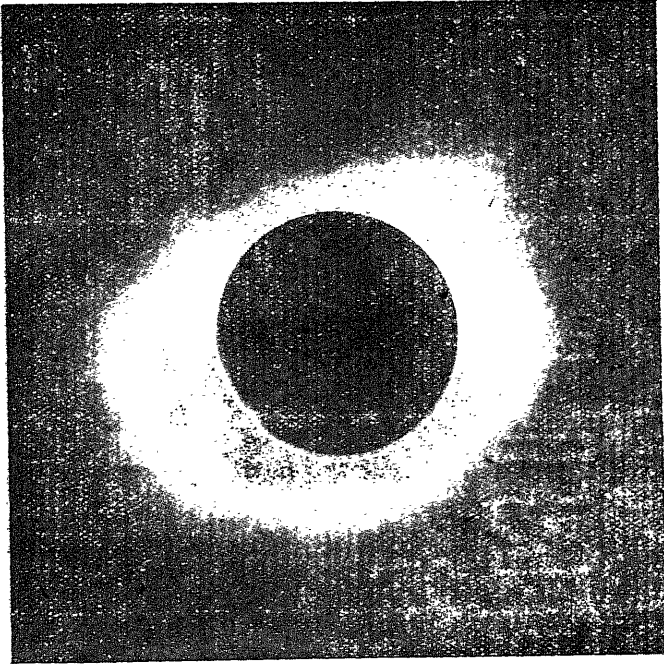
सूर्य-मुकुटका आकार
सूर्य-मुकुटका आकार भी ग्यारह वर्षके चक्रमें बदला करता है
(इस चित्रकी तुलना पिछले दो चित्रोंसे करें)।

ऋणाणु एक-से होते हैं और उनमें कोई भेद-भाव नहीं होता। किसी भी ऋणाणुके बदले दूसरा ऋणाणु रक्खा जा सकता है। परन्तु केंद्राणु न तो छोटे होते हैं और न एक-से। हाइड्रोजनका केंद्राणु आक्सिजनके केंद्राणुसे भिन्न होता है। इन्हीं केंद्राणुओंके भिन्न होनेसे ही हाइड्रोजन और आक्सिजनमें विभिन्नता होती है।

इस प्रकार परमाणुकी रचना यह हुई कि बीचमें एक केन्द्राणु रहता है, और चारों ओर कई-एक ऋणाणु। ये सब अवश्य अत्यन्त सूक्ष्म होते हैं और सबसे अधिक शक्ति-शाली सूक्ष्मदर्शक यंत्रमें भी नहीं देखे जा सकते। इस प्रकार केंद्राणु ऋणाणुओंको अपनी ओर खींचता रहता है। निकटतम ऋणाणु पर केन्द्राणुका आकर्षण दृढ़ होता है, परन्तु दूर वाले ऋणाणुओं पर कम। बाहरके घेरेमें बहुधा आठ ऋणाणु होते हैं, इन पर इतना अधिक आकर्षण नहीं होता। इससे भी बाहर वाले घेरेमें जो ऋणाणु रहते हैं उन पर तो और भी कम आकर्षण रहता है। वस्तुतः सबसे बाहर वाले घेरेके ऋणाणुओं पर केंद्राणुका इतना कम आकर्षण पड़ता है कि लकड़ी या कोयलेकी आँचमें वे छटक कर अलग हो जा सकते हैं। इसलिए सूर्य और तारोंके अत्यधिक तापमें बहुतसे ऋणाणुओंका छटक जाना स्वाभाविक है। रश्मिविश्लेषक यंत्रसे पता चलता है कि सूर्य पर आक्सिजनके परमाणुओंमें से दो ऋणाणु—कहीं-कहीं तो तीन ऋणाणु—छटक गये हैं। यह तो सूर्य तलकी बात है। भीतरके पमाणुओंको हम नहीं देख पाते, परन्तु वहाँ अवश्य और भी अधिक ऋणाणु छटक गये होंगे। केंद्र पर आक्सिजनके संभवतः सभी ऋणाणु केंद्राणुसे अलग हो गये होंगे (आक्सिजनमें आठ ऋणाणु होते हैं)। गणनासे भी ऐसा ही परिणाम निकलता है; हम केंद्राणु और ऋणाणुके बीचके आकर्षणको जानते हैं और

प्रत्येक में दो परमाणु हाइड्रोजनके और एक आक्सिजनका होता है। अधिक ताप पानेपर जल-वाष्प वस्तुतः जल वाष्प नहीं रह जाता। हाइड्रोजन और आक्सिजनके परमाणु अलग-अलग हो जाते हैं। यही गति सभी यौगिक पदार्थोंकी होती है। केवल कुछ ही तारोंमें—सूर्य भी एक तारा ही है—जिनका तापक्रम अपेक्षाकृत कुछ कम है कुछ यौगिक, जो विशेष रूपसे चिमड़े होते हैं और जिनके परमाणुओंको अलग-अलग करनेके लिये विशेष अधिक तापकी आवश्यकता पड़ती है, अपने यौगिक अवस्थामें रह जाते हैं।

तप्त तारोंमें तो अणु स्वयं टूटने लगते हैं। अणुओंकी रचना अब यह मानी जाती है कि बीचमें एक भारी केंद्र है जिसे केंद्राणु कहते हैं। उसकी चारों ओर अन्य कई कण होते हैं जिन्हें ऋणाणु कहते हैं। सभी पदार्थोंके

सूर्य-कलंक

विशेष यंत्रों द्वारा फोटो लेने पर सूर्य पर वर्तमान किसी एक मौलिक पदार्थके वितरणका पता चल सकता है। इस चित्र में कैलसियमसे निकले प्रकाश द्वारा फोटो लिया गया है जिससे पता चलता है कि सूर्य पर कैलसियम कहाँ-कहाँ है। इस चित्रको देखते ही ज्ञात होता है कि सूर्य-कलंक भँवर हैं।

इस बातकी गणना कर सकते हैं। इसलिए यह कहना कि वहाँ आक्सिजन है अनुचित होगा। वहाँ केवल विविध केंद्राणुओं और ऋणाणुओंका ढेर होगा। केंद्राणुओं और ऋणाणुओंके पृथक हो जानेसे वे बहुत कम स्थानमें भी आ सकते हैं। इसलिए, और अत्यधिक दबावके कारण, ये ऋणाणु और केंद्राणु वहाँ इस तरह ठूँस-ठूँस कर भरे होंगे कि वहाँका घनत्व भी अत्यधिक होगा। अनुमान किया गया है कि सूर्य-केंद्रका पदार्थ पानीसे २८ गुना भारी होगा! पृथ्वीका सबसे भारी पदार्थ प्लैटिनम है परंतु यह पानीकी अपेक्षा केवल २१ गुना भारी है। फिर, सूर्य-केंद्र-का पदार्थ गैस है! इसलिए वहाँके केंद्राणुओं और ऋणाणुओंको जितना कुछ भी स्थान मिलता होगा उसमें वे बड़े वेगसे दौड़ते होंगे और एक दूसरे से टकराते होंगे!!

प्राणदाता

एक प्रकारसे हम कह सकते हैं कि सूर्य ही हमारा प्राणदाता है। सूर्यके प्रकाशसे ही पौधे जीवित रह पाते हैं (पृष्ठ ९७,९९) और प्राणी पौधे खाकर जीवित रहते हैं या वे अन्य शाकाहारी जंतुओं-को खाते हैं। इस प्रकार हमारा कुल आहार सूर्यके ही कारण बन पाता है। कृत्रिम विद्युत हम कोयला जला कर और उससे इंजन चला कर प्राप्त करते हैं। परंतु कोयलेमें शक्ति कहाँसे आई? वह भी तो सूर्यसे ही आई थी। पत्थरका कोयला ही क्या है? वह पुराने वृक्षोंका तना है जो बहुत दिनोंसे भूमिमें दबे रहनेके कारण काला और कड़ा हो गया है।

सूर्यकी दूरी पहले बतलायी जा चुकी है, परंतु उस दूरीका प्रत्यक्ष चित्र हमारी कल्पना-शक्तिके परे है। कई युक्तियोंसे इस दूरीका बोध करानेकी चेष्टाकी जाती है। एक-दो युक्तियाँ सुनने योग्य हैं। यदि हम रेलगाड़ीसे सूर्य तक जाना चाहें और गाड़ी बिना रुके हुए बराबर डाकगाड़ीकी तरह ६० मील प्रति घंटेके हिसाबसे चलती जाय तो हमें वहाँ तक पहुँचने में—यदि हम रास्तेमें ही भस्म न हो जायँ या बुढ़ापेके कारण हमारी मृत्यु न हो जाय—१७५ वर्षसे कम नहीं लगेगा। १½ पाई प्रति मील के हिसाबसे तीसरे दरजेके आने-जानेका खर्च सवा सात लाख रुपया हो जायगा। इस यात्राके लिये यदि स्टेशन-मास्टर नोट लेना न स्वीकार करे तो हमको लगभग साढ़े ग्यारह मन सोना किरायेमें देना पड़ेगा!*

सूर्यकी दूरी सवा नौ करोड़ मील है। एक मिनटमें २०० की दर से लगातार गिनते रहनेमें ही हमें सवा नौ करोड़की संख्या गिननेमें ग्यारह महीना लग जायगा!

शब्द वायुमें १,१०० फुट प्रति सेकंडके वेगसे चलता है। यदि शब्द शून्यमें भी चल सकता और शून्यमें भी उसका यही वेग रहता तो सूर्य पर घोर शब्द होनेसे वह पृथ्वी पर कोई चौदह वर्ष बाद सुनाई पड़ता!

यदि सूर्यको दो फुट व्यासके घड़ेसे सूचित किया जाय तो पृथ्वीका निरूपण एक मटरसे हो जायगा, और पैमाने

*सोनेके पुराने भावसे यह गणनाकी गई है।

के अनुसार प्रतिमा बनानेके लिए इस मटरको बड़ेसे २१५ फुट पर रखना पड़ेगा।

सूर्यपर आकर्षण-शक्ति पृथ्वीकी अपेक्षा २८ गुनी है। हम देख चुके हैं कि चंद्रमा पर हम इतने हलके लगेंगे कि हम हवामें उछलते-उड़ते चलेंगे। परंतु सूर्य पर हम अपने ही बोझसे दब जायँगे। वहाँ हम १½ मनके बदले ४२ मनके हो जायँगे। जैसे घीका लोंदा अपने ही बोझसे दबकर फैल जाता है, वैसे ही यदि हम सूर्य पर पहुँच जायँ और आँचसे बच जायँ तो मारे बोझके हमारा कचूमर निकल जायगा।

पृथ्वीके दस वर्ग गज़ पर जितनी धूप पड़ती है यदि वह सब किसी इंजन द्वारा शक्तिमें परिवर्तित की जा सकती और कोई अंश नष्ट न होने पाता तो हम उससे पाँच अश्वबलकी इंजन चला सकते। धूपसे चलने वाली इंजनें बनी हैं, परंतु बहुत-सी शक्तिके नष्ट हो जानेके कारण, और इसलिए यंत्रके बहुत बड़ा रहने की आवश्यकतासे, अधिक सफलता नहीं मिल पायी है। अनुमान किया गया है कि प्रतिक्षण सारी पृथ्वी पर २३,००,००,००,००,००० अश्वबलके बराबर शक्ति आती है।

सूर्य-कलंक

सूर्य-पृष्ठके वर्णनके सम्बन्धमें बताया जा चुका है कि वहाँके बड़े-बड़े गड्ढे ही हमें सूर्य-कलंकके रूपमें दिखलाई पड़ते हैं। ये कलंक स्थायी नहीं हैं। वे बनते-बिगड़ते रहते हैं। इनके देखते रहनेसे दो चार दिनमें ही पता चल जाता है कि सूर्य भी अपनी धुरी पर घूमता रहता है। एक बार चक्कर लगानेमें सूर्य को लगभग २५-३८ दिन लगता है। सूर्यकलंक बीचमें खूब काला रहता है और इसकी चारों ओर झालर-सा रहता है जो इतना काला नहीं रहता, परंतु कलंक काला केवल इसी लिए जान पड़ता है कि पड़ोसका सूर्यबिंब उससे कहीं अधिक चमकीला है।

इन कलंकोंके बारेमें एक विचित्र बात यह है कि उनकी संख्या नियमानुसार ग्यारह वर्षके चक्रमें घटती बढ़ती रहती है। एक वर्ष ऐसा आता है जब कलंकोंकी संख्या बहुत बढ़ जाती है और उस समय कलंक बड़े भी बनते हैं। फिर कलंकोंकी संख्या और नाप घटती चली जाती है। एक समय ऐसा आता है जब बहुत थोड़ेसे ही कलंक रह जाते हैं और वे छोटे भी होते हैं। तब फिर उनकी संख्या और नाप बढ़ती है और अंतमें, आरंभसे साधारणतः ग्यारह वर्ष बाद, कलंकोंकी संख्या और नाप महत्तम पर पहुँच जाती है। अभी तक पता नहीं चल सका है कि ऐसा क्यों होता है।

५—नवग्रह

प्राचीन समयमें पृथ्वी स्थिर मानी जाती थी और (१) सूर्य (२) चंद्रमा (३) मंगल (४) बुध (५) बृहस्पति (६) शुक्र (७) शनि (८) राहु और (९) केतु ये नौ ग्रह माने जाते थे। इनमें से प्रथम सात तो आँखों से दिखाई पड़ते थे, परंतु अंतिम दो—राहु और केतु—कोई आकाशीय पिंड न थे। राहु और केतु वस्तुतः वे दो बिन्दु हैं जहाँ खगोलमें चंद्रमाका मार्ग सूर्यके मार्गको काटता है।

आज हम नौ बड़े और कुछ हज़ार अत्यंत छोटे ग्रहों को जानते हैं। ये छोटे ग्रह बहुत ही छोटे हैं और मोटे हिसाबसे वे एक ही मार्गमें चलते हैं। संभवतः वे किसी एक ग्रहके चूर हो जानेसे बने हैं और इनको अवांतर ग्रह कहते हैं। इन अत्यंत छोटे ग्रहोंको छोड़ कर शेष नौ ग्रह, सूर्यसे दूरीके क्रममें, यह हैं—(१) बुध (२) शुक्र (३) पृथ्वी (४) मंगल (५) बृहस्पति (६) शनि (७) यूरेनस (हिंदीमें वारुणी) (८) नेपच्यून (वरुण) (९) प्लूटो (यम)।

ये ग्रह सूर्यकी चारों ओर चक्कर लगाते रहते हैं। सभी एक दिशामें चलते हैं। सूर्यसे ग्रह जितना ही निकट रहता है उतना ही वह अधिक वेगसे चलता है। प्राचीन समयमें शनि ही सबसे दूर वाला ग्रह था। वही सबसे धीमे-धीमे चलने वाला जान पड़ता था। इसीसे उसका नाम शनि या शनैश्चर रख दिया गया जिसका अर्थ है शनैः-शनैः (=धीरे-धीरे) चर (चलने वाला)। यह एक चक्कर लगभग ३० वर्षमें लगाता है, परंतु अब तो यमके आगे वह बहुत तीव्रगामी जान पड़ता है। यम एक चक्कर २४९ वर्षमें लगाता है। परंतु यह भी वस्तुतः ३ सेकेंडमें एक मील चलता है।

हमने पहले सूर्य और पृथ्वीकी नापोंकी तुलना करनेके लिए सूर्यको दो फुट व्यासके घड़ेसे और पृथ्वीको मटरसे निरूपित किया था। उसी पैमाने पर यदि हम अन्य ग्रहों को भी निरूपित करना चाहें और फिर उनको पैमानेके अनुसार उचित दूरियों पर रखना चाहें तो बुध एक दाना राईसे निरूपित हो जायगा और यह ११४ फुटपर रहेगा। शुक्र भी एक दाना मटरसे निरूपित हो जायगा और इसे २४८ फुट पर रखना पड़ेगा। पृथ्वीको ४३० फुटपर। इस पैमाने पर मंगल बड़े आलपीनके सरके बराबर होगा और ६५४ फुटपर रहेगा, अवांतर ग्रह सूक्ष्मतम धूलके कणोंके समान १०००से १२०० फुटकी दूरी पर, बृहस्पति मझोले नारंगीके बराबर लगभग आध मीलकी दूरी पर, शनि छोटे नारंगीके बराबर ४/५ मीलकी दूरी पर, वारुणी छोटी लीचीके बराबर डेढ मीलसे भी अधिक दूरी पर, वरुण बड़ी लीचीके बराबर ढाई मीलकी दूरी पर और प्लूटो राईसे भी छोटा पौने चार मीलकी दूरी पर। इस प्रकार हम देखते हैं कि सौर-जगत में एक प्रकारसे खाली ही खाली स्थान है—१० मील व्यासके वृत्तमें दो फुट व्यासका घड़ा और कुछ नारंगी, लीची, मटर, राई, तथा धूल-कणके बराबर पिंड ! परंतु यह सौर-जगत अन्य तारोंसे स्पष्टतया पृथक है। पूर्वोक्त पैमाने पर निकटतम तारा भी कोई ग्यारह हजार मील पर होगा और इन दोनोंके बीच एक-दम कुछ नहीं है, वायुके परमाणु भी नहीं !

बुध

बुध सूर्यके निकटतम रहने वाला ग्रह है। हम उसे दूरसे देखते हैं। इसलिए आकाशमें बुध सदा सूर्यके पास ही दिखलाई पड़ता है। यही कारण है कि बुध संध्या या प्रातः काल ही दिखलाई पड़ सकता है। अधिक रात्रि हो जाने पर यह नहीं दिखलाई पड़ता; उस समय वह सूर्यके साथ क्षितिजके नीचे चला गया रहता है। इसीलिए इसका देखना भी कठिन है क्योंकि जब यह संध्या समय क्षितिजसे यथेष्ट ऊँचाई पर रहता है तब तुरंत डूबे हुए सूर्यसे काफ़ी प्रकाश आता रहता है। प्रातः काल भी ऐसी ही कठिनाई पड़ती है, क्योंकि तब सूर्य उगने ही वाला रहता है।

वस्तुतः बुध सूर्यकी चारों ओर प्रायः बराबर दूरी पर रह कर चक्कर लगाता है। परंतु हम दोनोंको प्रायः बुध के मार्गके धरातलसे देखते हैं। इसलिए बुध आकाशमें कभी सूर्यके निकट और कभी उससे दूर जाता हुआ दिखलाई पड़ता है। जब वह प्रायः महत्तम दूरी पर रहता है तभी हम बुधको कोरी आँखसे देखनेकी आशा कर सकते हैं और सो भी तभी यदि आकाश पूर्णतया स्वच्छ हो। शहरोंके धूल-धुँआ भरे वायुमंडलमें बुधको देखना प्रायः असम्भव हो जाता है।

बुध अपने मार्गमें चलते-चलते कभी सूर्यकी उस ओर आ जाता है जिधर हम हैं; कभी उलटी ओर चला जाता है। जब बुध हमारी ओर आ जाता है तब हमारी ओर बुधका वह पृष्ठ रहता है जो सूर्यसे प्रकाश नहीं पाता है। इसलिए, यदि वह ठीक सूर्यके सामने ही न पड़ जाय, तो वह दूरदर्शकमें भी अदृश्य रहता है। यदि सूर्यके ठीक सामने पड़ जाय तो सूर्यबिंब पर वह छोटे-से काले गोल दानेके समान दिखलाई पड़ता है। जब बुध अन्य स्थितियोंमें रहता है तो हमें उसके बिंब का कुछ भाग प्रकाशित, कुछ अप्रकाशित दिखलाई पड़ता है और इस प्रकार बुधमें भी वैसी ही कलाएँ दिखलाई पड़ती हैं जैसी चंद्रमामें। अवश्य ही इन कलाओंको देखनेके लिए दूरदर्शक चाहिये। जब बुध सूर्यके उस पार रहता है तो उसका पूरा बिंब प्रकाशित रहता है। बुधमें निजका प्रकाश कुछ भी नहीं है।

बहुत दूर होनेके कारण बड़े-से-बड़े दूरदर्शकोंसे भी बुध पर कोई पहाड़ आदि नहीं देखे जा सके हैं, परंतु वहाँ भी वायु-मंडल नहीं है; और वहाँ भी चंद्रमाकी तरह करकराते पहाड़ हों तो कोई अचरज नहीं। गणनासे पता चलता है कि वहाँ धूपमें तो भूमि ऐसी तप्त हो जाती होगी कि सीसा भी पिघल जायगा, परंतु धूपके हट जाने पर ऐसी ठंढ पड़ती होगी कि कोई भी प्राणी जीवित न रह सकता होगा।

शुक्र

शुक्र बुधकी अपेक्षा सूर्यसे लगभग दुगुनी दूरी पर है, परंतु हम उसके मार्गको दूरसे और प्रायः मार्गके ही

धरातलसे देखते हैं। इसलिये शुक्र भी सूर्यसे कभी दूर कभी निकट जाता हुआ दिखलाई पड़ता है। सूर्यसे महत्तम दूरी पर दिखलाई पड़ने पर वह सूर्यास्तसे लगभग तीन घंटे बाद डूबता है या सूर्योदयसे लगभग तीन घंटा पहले उदय होता है। फिर, शुक्र बहुत चमकदार भी है। इसलिए शुक्र अच्छी तरह हमको दिखलाई पड़ता है। चंद्रमाके बाद चमकमें इसीकी गिनती है। इसलिए सभीका ध्यान कभी-न-कभी इस ग्रहकी ओर आकर्षित हुआ होगा।

दूरदर्शकसे देखने पर शुक्रमें भी चंद्रमाकी तरह कलाएँ दिखलाई पड़ती हैं। कलाओंका पता पहले-पहल गैलीलियोको लगा, जिसने ही दूरदर्शकका आविष्कार किया था।

बुधकी तरह शुक्र भी कभी प्रातःकाल कभी सन्ध्या समय दिखलाई पड़ता है। ग्रीस वालोंने पहले यह समझा था कि सवेरेके समय दिखलाई पड़नेवाला ग्रह सन्ध्या समय वाले ग्रहसे भिन्न है और इसलिए दोनोंके अलग-अलग नाम रख दिये थे।

शुक्र इतना चमकीला है कि यह बहुधा दिनमें भी देखा जा सकता है, विशेष कर यदि इसके स्थानका पता रहे।

बड़े दूरदर्शकोंसे भी शुक्र पर कोई पहाड़ आदि नहीं देखे जा सके हैं। कारण यह है कि शुक्र सदा बादलोंसे ढका रहता है। हम बादल ही देख पाते हैं, उसके नीचेकी सतहको नहीं। शुक्रके बहुत चमकीला होनेका एक कारण यह भी है कि यह सफेद बादलोंसे ढका है।

पृथ्वी

अन्य ग्रहोंकी तरह पृथ्वी भी ग्रह है और सूर्यकी चारों ओर प्रदक्षिणा करती है। चंद्रमासे देखने पर पृथ्वीमें भी कलाएँ दिखलाई पड़ती होंगी।

पृथ्वी और शुक्र लगभग बराबर हैं। इसलिए उत्पति से लेकर आज तकका दोनों ग्रहोंका इतिहास बहुत कुछ एक-सा होना चाहिए। परंतु रश्मिविश्लेषक यंत्रसे पता चलता है कि शुक्रका वायुमंडल हमारे वायुमंडलसे बहुत भिन्न है। विशेष कर वहाँ ऑक्सिजन नहीं है। पृथ्वी पर तो वायुमंडलका लगभग पाँचवाँ भाग आक्सिजन है। हम जानते हैं कि आक्सिजन अन्य तत्वोंसे बहुत सुगमतासे मिल जाता है। उदाहरणतः, जब वस्तुएँ जलती हैं या लोहा आदि मुरचा खाता है तो वस्तुतः लकड़ी या लोहा
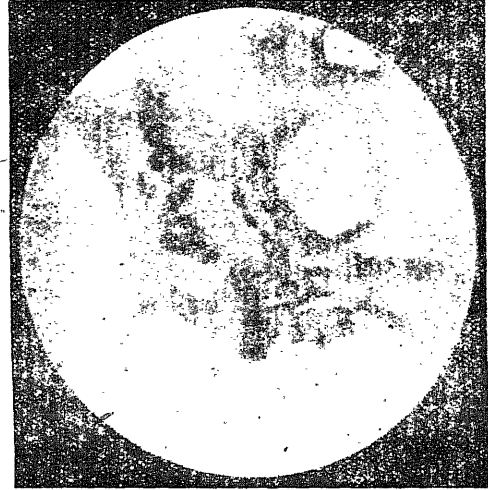
मंगल
दूरदर्शकसे हमें मंगल पर बर्फ; कई धब्बे और सूक्ष्म धारियाँ दिखायी पड़ती हैं।

आक्सिजनसे रासायनिक संयोगमें मिल जाता है। हमारी पृथ्वीपर भी आक्सिजन इस तरह धीरे-धीरे कम हो जाता, परंतु एक विशेष कारण है जिससे हमारे आक्सिजन-भंडारमें कमी नहीं होने पाती। वह यह है कि यहाँके पेड़-पौधे बड़े-बड़े कारखाने हैं जहाँ आक्सिजन बराबर बनता रहता है (पृष्ठ ६६ देखें)। इस बातसे कि शुक्रके वायुमंडलमें आक्सिजन है नहीं या बहुत कम है हम इस परिणाम पर पहुँचते हैं कि वहाँ पेड़ पौधे नहीं है। इसलिए वहाँ जीव-जंतु भी न होंगे।

बाहरी ग्रह

हमारी पृथ्वी मंगल, बृहस्पति आदि बाहरी ग्रहोंके मार्गोंके भीतर पड़ती है, इसलिए चलते-चलते ये ग्रह सूर्यसे विपरीत दिशामें भी पहुँच जाते हैं। जब कोई गृह सूर्यसे विपरीत दिशामें पहुँचता है तो अर्धरात्रिमें, जब सूर्य

हमारे पैरोंकी दिशामें रहता है, वह ग्रह ठीक हमारे सरके ऊपर रहता है, यदि ठीक सर पर नहीं तो कम-से-कम शिरोबिंदुसे हटकर उत्तर-दक्षिण रेखा पर। उस समय ग्रह अपने महत्तम चमक पर रहता है क्योंकि तब उस ग्रहसे हमारी दूरी सबसे कम रहती है। ऐसे अवसरों पर बृहस्पति और मंगल दोनों बहुत चमकीले जान पड़ते हैं। तब बृहस्पति बहुत-कुछ शुक्र-सा लगता है। मंगलमें कुछ लाली रहती है। वस्तुतः उनकी महत्तम चमक शुक्रकी महत्तम चमकका दसवाँ भाग ही होती है, परंतु शुक्र केवल संध्या या प्रातःकालमें दिखाई पड़नेके कारण अनुकूल परिस्थितिमें नहीं दिखाई पड़ता—उसकी चमक बहुत-कुछ सन्ध्याकालिक प्रकाशसे दब जाती है।

शेष ग्रह बृहस्पति और मंगलसे बहुत मंद हैं। शनि साधारण तारे-सा लगता है। वारुणी कोरी आँखसे बस दिखलाई भर पड़ जाता है। वरुण बिना दूरदर्शकके नहीं दिखलाई पड़ता। यमके देखनेके लिए तो बहुत बड़ा दूरदर्शक चाहिए।

मंगल पृथ्वीसे बहुत छोटा है। इसका व्यास पृथ्वीके व्यासके आधेसे कुछ ही बड़ा है। बृहस्पति पृथ्वीसे बहुत बड़ा है। उसका व्यास पृथ्वीके व्यासका लगभग ग्यारह गुना है। तौलमें तो वह पृथ्वीसे ३१७ गुना भारी है। वस्तुतः बृहस्पतिकी तौल अन्य सब ग्रहोंकी सम्मिलित तौलसे दुगुनी है। शनिमें बृहस्पतिकी अपेक्षा केवल तिहाई ही पदार्थ है, वरुण और वारुणी बृहस्पतिसे बहुत छोटे हैं। यम तो बुधसे कुछ ही बड़ा है।

ग्रहोंके वायुमंडल

आँखकी अपेक्षा दूरदर्शक बहुतसा प्रकाश एकत्रित करता है। आँखकी पुतलीका व्यास ¼ इंच माना जाय तो एक इंच व्यासका दूरदर्शक आँखकी अपेक्षा १६ गुना अधिक प्रकाश ग्रहण करता है और उसे एक बिंदु पर एकत्रित करता है। १०० इंच व्यास वाला दूरदर्शक आँखकी अपेक्षा १,६०,००० गुना प्रकाश एकत्रित करता है और इतने सारे प्रकाशको फोटोके प्लेट पर डालता है या ज्योतिषीकी आँखमें। इसीसे अत्यंत मंद तारे, जो हमें आँखसे नहीं दिखलाई पड़ते, दूरदर्शकमें दिखलाई पड़ते हैं। परंतु दूरदर्शक ताप भी एकत्रित करता है। यदि इस तापको ऐसे यंत्र पर डाला जाय जो तापको नाप सके तो हम पता चला सकते हैं कि आकाशीय पिंड कितना गरम है। चंद्रमाकी सतह धूपमें कितनी गरम और सायेमें कितनी ठंढी है यह सब इसी भांति जाना गया है। तापमापक
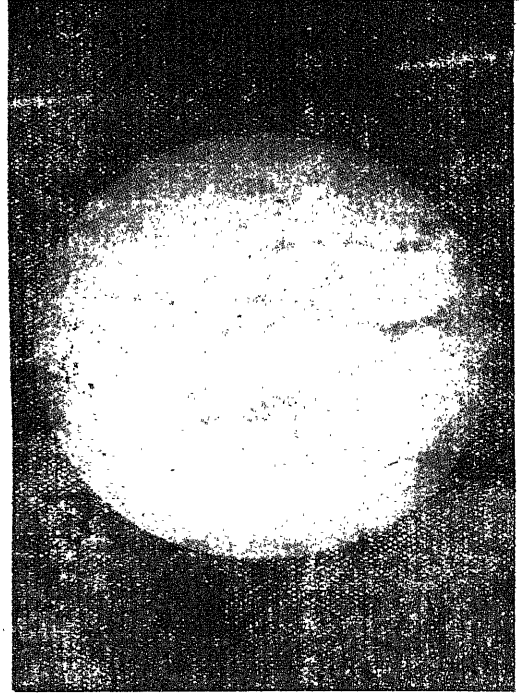
बृहस्पति।
दूरदर्शक द्वारा बृहस्पति पर हमें धारियाँ दिखलाई पड़ती हैं।

यंत्र अब विद्युत-सिद्धांतोंके सहारे ऐसे सूक्ष्म बनाये जा सकते हैं कि उनसे कई मील पर रक्खी मोमबत्तीके प्रकाश और गरमीको नापा जा सकता है। इसलिए उनसे ग्रहों और चमकीले तारोंसे आई गरमी सुगमतासे नापी जा सकती है।

मोटे हिसाबसे कहा जा सकता है कि ग्रहोंसे उतनी ही गरमी निकलती है जितनी उन्हें सूर्यसे मिलती है। यह हम बहुत समयसे जानते हैं कि ग्रह अपने प्रकाशसे

नहीं चमकते। वे केवल उस प्रकाशके कारण चमकते हैं जो उनको सूर्यसे मिलता है। और अब हम देखते हैं कि ग्रहोंमें निजी गरमी भी नहीं है। जब उनका जन्म हुआ होगा तब अवश्य ही सभी ग्रह सूर्यकी तरह ही तप्त रहे होंगे, परन्तु अब वे ठंढे हो गये हैं। बस, सूर्यसे ही जो कुछ गरमी मिल जाती है उसीसे काम चलाना पड़ता है। दूरस्थ ग्रह, जैसे यम, वरुण, वारुणी और शनि तो इतने ठंढे हैं कि हम उसकी कल्पना भी नहीं कर सकते। पानी जम कर बर्फ होनेको कौन कहे, वहाँ हमारा वायुमंडल भी जम कर तरल हो जायगा। इसलिए बृहस्पति पर जो बादल हमें दूरदर्शक द्वारा दिखलाई पड़ते हैं वे अवश्य ही जलवाष्पके नहीं, कारबन-डाइआक्साइड जैसी-किसी गैस-के होंगे।

मंगल पर इतनी ठंढ न पड़ती होगी। पृथ्वीके बाद, सूर्यसे दूरीके हिसाबसे, मंगल ही है। गणनासे हमें पता चलता है कि यों तो मंगल पर अधिकतर ऐसी ठंढ पड़ती होगी कि पानी जम कर बर्फ हो जाता होगा, परंतु वहाँकी भूमध्य रेखाके पास दोपहरमें संभवतः वैसी ही गरमी पड़ती होगी जैसी काश्मीरमें जाड़ेके दिनोंमें। तो भी, वहाँ-के वायुमंडलके अत्यंत क्षीण होनेके कारण, रातको बड़ी ठंढ पड़ती होगी। मंगलसे आये प्रकाशकी जाँचसे पता चलता है कि वहाँ भी ज्वालामुखी पर्वतोंसे निकले पत्थर और राखकी तरहकी मिट्टी होगी। इसलिए वहाँ भी सूर्य-की गरमी बहुत नीचे तक न घुस पाती होगी। इससे शाम होते-होते वहाँ पाला पड़ने लगता होगा। मध्य-रात्रिमें तो वहाँकी भूमध्यरेखा पर वैसी ठंढ पड़ती होगी जैसी हमारी पृथ्वीके उत्तरी ध्रुव पर।

पृथ्वीके धरातलकी गरमी-सरदीका हाल तो हम जानते ही हैं। शुक्रकी गरमी अधिकांश स्थानोंमें हमारे लिए प्रायः असह्य होगी, यद्यपि ऐसी गरमी न पड़ती होगी कि पौधे या प्राणी झुलस जायँ। परंतु बुध पर तो धूपमें वैसी ही गरमी होगी जैसे भड़भूजेकी भाड़में।

क्या मंगलमें प्राणी हैं ?

एक समय था जब इस प्रश्न पर कि मंगलमें प्राणी हैं या नहीं समाचार पत्रोंमें भी तर्क-वितर्क छपा करता था। एक पत्रिकाने हँसी भी उड़ाई थी। उसने छापा था कि मंगलनिवासियोंने रेडियोसे समाचार भेजा है। बड़े-बड़े भाषा वैज्ञानिक जब जुटे तब उसका अर्थ निकला। क्या? यह कि मंगल निवासियोंने कहा है— ओ मूर्खो! हम इतने दिनोंसे तुम्हें निरंतर संदेश भेज रहे हैं और तुम आज उसे समझ पाये हो!

परंतु मंगल पर प्राणियोंके होनेमें संदेह है। वहाँ पर ऐसी ठंढ पड़ती होगी कि कदाचित ही प्राणी जीवित रह सकें। कई ज्योतिषियों ने मंगल पर सीधी पतली रेखाएँ देखी हैं जिनको वे नहर मानते हैं और विश्वास करते हैं कि इन नहरोंको बुद्धिमान प्राणियोंने बनाया होगा। लॉवेल-का कहना था कि मंगल पृथ्वीसे छोटा है। इसलिए वह पृथ्वी-से शीघ्र ठंढा हुआ होगा। वहाँ पर प्राणियोंका विकास पृथ्वीकी अपेक्षा अधिक शीघ्र हुआ होगा। हमारी-जैसी स्थिति वहाँ आजसे बहुत पहले ही रही होगी। पीछे, जैसे-जैसे वहाँका जल वाष्पके रूपमें उड़ कर मंगलसे सदाके लिए बिदा हो गया होगा तैसे तैसे वहाँके बुद्धिमान प्राणियोंको जलका विशेष प्रबंध करना पड़ा होगा। जो नहरें हमें दिखलाई पड़ती हैं वे यही नहरें हैं। परंतु अन्य ज्योतिषियोंकी धारणा है कि मंगल पर नहर आदि हैं ही नहीं। उनका कहना है कि वर्तमान दूरदर्शकों-की दुर्बलताके कारण हमें भ्रम हो जाता है। उन्होंने प्रयोग करके दिखला भी दिया है। यदि किसी कागज़ पर बहुत-से धब्बे हों, कोई छोटे, कोई बड़ेसे तो इसे बहुत दूरसे देखने पर रेखाओंकी उपस्थितिका भ्रम हो जाता है। जैसे-जैसे हमारे दूरदर्शकोंकी शक्ति बढ़ती गयी है वैसे-वैसे इन नहरों पर अधिकाधिक संदेह होता गया है। इनके अस्तित्वका प्रमाण पक्का नहीं माना जा सकता। परन्तु अभी इतने बड़े दूरदर्शक नहीं बन पाये हैं कि उनसे बड़े पैमाने पर मंगलका फ़ोटो खींचा जा सके। जब २०० इंच वाला दूरदर्शक बन जायगा तो संभव है कभी वह मंगलके निरीक्षणमें लगाया जा सके और तब कुछ अधिक ज्ञान प्राप्त हो।

परंतु इसमें संदेह नहीं है कि मंगलमें कुछ परिवर्तन ऋतुओंके अनुसार भी होता है। जब मंगलके उत्तरी गोलार्द्ध पर जाड़ा रहता है तो वहाँ बर्फ जम जाती है।
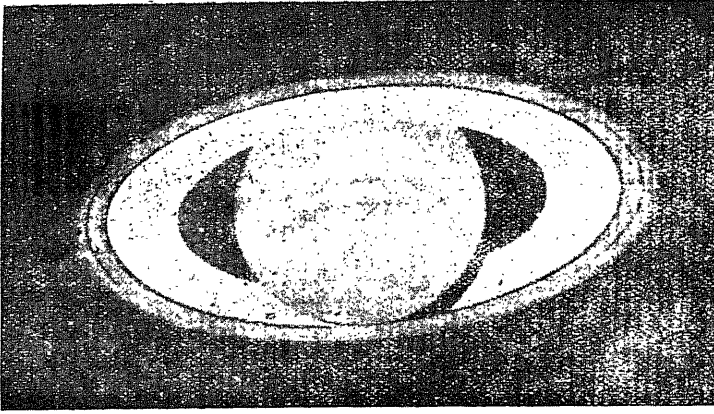
शनि।

दूरदर्शक द्वारा शनिकी चारों ओर तीन वलय दिखलायी पड़ते हैं।

उपग्रहों और ग्रहोंके बननेका एक सिद्धांत यह है कि किसी अन्य तारेके बहुत समीप आ जानेके कारण उसके आकर्षणसे सूर्यसे एक अंश नुच (उखड़) गया। यह कंदेके आकारका था—बीचमें मोटा, सिरों पर पतला। मोटे भागसे बृहस्पति और शनि ये दो बड़े ग्रह सिमट कर अलग हो गये। पतले भागोंसे अन्य ग्रह बने। किनारे पर पड़ने वाले ग्रह—बुध और यम—बहुत छोटे बने क्योंकि कंदा वहाँ बहुत पतला था। यदि यह सिद्धांत ठीक है तो यह बात भी समझमें आ जाती है कि उपग्रह कैसे बने। पहले ग्रहोंका पदार्थ भी तरल पिघला हुआ—था। उस समय सूर्यके आकर्षणसे ग्रहोंमेंसे कुछ-कुछ पदार्थ नुच आये। उसीसे उपग्रह बन गये। पदार्थके नुच आनेकी बात कोरी कल्पना नहीं है। गणितसे सिद्ध किया जा सकता है कि तरल पिंड पर अन्य बड़े पिंडके आकर्षणसे इतना भीषण ज्वार-भाटा उठेगा कि कुछ अंश अवश्य नुच जायगा या छूटक जायगा।

इस प्रकार, यदि सूर्यको हम ग्रहोंका पिता मानें तो वह उपग्रहोंका पितामह है।

गरमीमें यह बर्फ धीरे-धीरे पिघल जाती है और उससे दक्षिण पड़ने वाले प्रदेशोंका रंग बदल जाता है। कुछ ज्योतिषी कहते हैं कि यह परिवर्तन वहाँ पौधोंके उग आनेके कारण होता होगा, क्योंकि तब वहाँ बर्फके पिघलनेसे बना जल आ जाता होगा। अन्य ज्योतिषियोंका कहना है कि संभवतः केवल पानी बरसनेसे यह रंग-परिवर्तन होता होगा, पौधोंके उगनेसे नहीं।

इस प्रकार मंगल पर प्राणियोंके रहनेका कोई अच्छा प्रमाण नहीं है। बहुत संभव जान पड़ता है कि पृथ्वीको छोड़कर अन्य किसी ग्रह पर पेड़-पौधे और जीव-जंतु नहीं हैं।

उपग्रह

पृथ्वी ग्रह है। यह सूर्यकी प्रदक्षिणा करती है। चंद्रमा उपग्रह है। क्योंकि यह सूर्यकी नहीं, एक ग्रह (पृथ्वी) की प्रदक्षिणा करता है। अन्य ग्रहोंमेंसे अधिकांशके उपग्रह हैं। वस्तुतः उपग्रहोंकी संख्या ग्रहोंके मान मर्यादाके ही अनुसार है—बड़े ग्रहोंके अधिक उपग्रह हैं। दो सबसे बड़े ग्रहों—बृहस्पति और शनि—के नौ-नौ उपग्रह हैं। वारुणीके चार हैं, मंगलके दो और पृथ्वी तथा वरुणके एक। बुध, शुक्र और यमके कोई उपग्रह नहीं हैं।

बृहस्पति

दूरदर्शकसे देखने पर बृहस्पतिमें धारियाँ दिखलाई पड़ती हैं। बहुत दिनों तक इस पर अंडेके आकारका एक लाल चिह्न भी दिखलाई पड़ता था जो अब बहुत फीका पड़ गया है। बृहस्पति बादलोंसे ढका है और यह चिह्न बादलोंमें ही होगा। चिह्नको अपने स्थानसे थोड़ा-बहुत हटते-बढ़ते भी देखा गया है; इससे भी स्पष्ट है कि वह बादलोंमें ही है। धारियोंके कारण बृहस्पति दूरदर्शकमें बहुत सुन्दर जान पड़ता है।

यद्यपि बृहस्पति पृथ्वीसे बहुत बड़ा है तो भी वह अपनी धुरी पर अधिक वेगसे नाच रहा है। एक चक्करमें
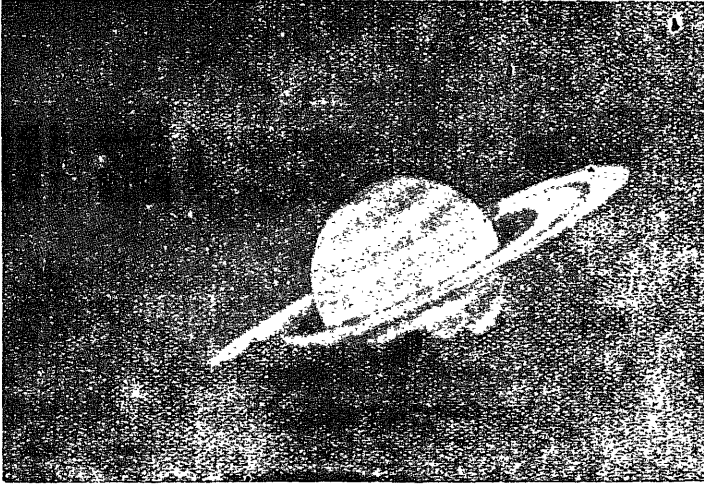
शनि, उपग्रहसे देखने पर
इस चित्रमें दिखलाया गया है कि शनिके उपग्रहोंसे शनि कैसा दिखाई पड़ता होगा।

केवल दस घंटा लगता है। इसीसे यह अधिक चिपटा हो गया है; इसका मध्य भाग बाहरकी ओर फैल गया है।

बृहस्पतिके नौ उपग्रहोंमेंसे चार तो इतने बड़े हैं कि वे बहुत छोटे दूरदर्शकसे भी देखे जा सकते हैं। जब कोई उपग्रह बृहस्पतिके सामने आ जाता है तब वह और उसकी परछाईं दोनों दूरदर्शकमें देखे जा सकते हैं और दृश्य बड़ा सुन्दर देख पड़ता है।

शनि

कई बातोंमें शनि अन्य ग्रहोंसे न्यारा है। इसकी आकृति बड़ी विचित्र है। नौ उपग्रहोंके अतिरिक्त इसके तीन 'वलय' भी हैं जो इसके मध्य भागको करधनी की तरह घेरे हैं। पहले-पहल इनको गैलीलियोंने देखा, यद्यपि इनके सच्चे आकारका पता कोई पचास वर्ष बाद चला। ये वलय इतने पतले हैं कि जब कभी हम इनको इनके धरातलमें से देखते हैं—ऐसा अवसर शनिके एक चक्करमें हमें दो बार मिलता है तो वे बड़े-से-बड़े दूरदर्शकमें भी अदृश्य हो जाते हैं। वलयोंकी मोटाई कुल दस मील होगी। तीन वलयोंमेंसे बीच वालेकी चौड़ाई लगभग बीस हज़ार मील है, बाहर वालेकी ग्यारह हज़ार और भीतर वालेकी दस हज़ार मील। शनिका व्यास पचहत्तर हज़ार मील है। इसलिए यदि हम शनिको नारंगीसे निरूपण करें तो वलयोंकी मोटाई पतले काग़ज़की मोटाईसे भी कम होगी। तीनों वलय एक दूसरेसे इतने सटे हुए हैं कि छोटे दूरदर्शकोंमें तीन वलय अलग-अलग दिखलाई पड़नेके बदले एक चौड़ा-सा वलय दिखलायी पड़ता है।

ये वलय क्या हैं इसका समाधान सन १८५७ में मैक्सवेलने किया। उसने गणितसे सिद्ध कर दिया कि वलय नन्हें-नन्हें रोड़ों और ढोकोंके समूह हैं। उसने वस्तुतः सिद्ध किया कि यदि वलय ठोस होंगे तो वेगसे नाचनेके कारण चूर-चूर हो गये होंगे, चाहे वे इस्पातके ही क्यों न बने रहे हों। लगभग चालीस वर्ष बाद वेध (दूरदर्शक द्वारा निरीक्षण) से भी प्रमाण मिला कि वलय ठोस नहीं हैं। यदि वलय ठोस होते तो नाचते रहनेके कारण उनका बाहरी किनारा भीतरी किनारेकी अपेक्षा अधिक वेगसे चलता हुआ दिखलाई पड़ता। परंतु प्रकाशकी जाँचसे वेग जान लेना संभव है और जब वेगोंकी नाप हुई तो पता चला कि भीतरी किनारा ही अधिक वेगसे चल रहा है। यह बहुत संभव जान पड़ता है कि शनिकी चारों ओर पहले कोई वलय नहीं था, केवल एक साधारण उपगृह था। वह शनि-आकर्षण द्वारा उठे ज्वार-भाटाके कारण चूर-चूर हो गया और उसने ही अंतमें वलयरूप धारण कर लिया। गणितसे सिद्ध कर दिया गया है कि शनिसे एक विशेष दूरीके बाहर रहने वाले ही उपगृह बच सकते हैं। अधिक पास वाले उपगृह चूर-चूर हो जायँगे। शनिका निकटतम उपगृह इस दूरीसे कुछ ही अधिक दूरी पर है। वलय इस संकट-वृत्तके भीतर हैं। गणना करनेसे पता चलता है कि बृहस्पतिका निकटतम उपगृह संकट-वृत्तके जरा-सा ही बराबर है और धीरे-धीरे वह बृहस्पतिकी ही

ओर खिंचा जा रहा है। इसलिए संभव जान पड़ता है कि एक दिन वह संकट-वृत्तके भीतर चला जायगा और तब वह चूर-चूर हो जायगा। तब बृहस्पतिकी चारों ओर भी वलय बन जायगा; परंतु यह सुदूर भविष्यकी बात है। अपने जीवन कालमें हम यह दृश्य न देख पायेंगे।

हमारा चंद्रमा भी धीरे-धीरे पृथ्वीके निकट होता जा रहा है। जब यह अत्यंत दूरके भविष्यमें यथेष्ट समीप आ जायगा तो उसकी भी यही गति होगी। वह चूर-चूर हो जायगा और पृथ्वी भी वलयोंसे घिर जायगी। तब रात-का दृश्य अधिक सुहावना अवश्य लगेगा, परंतु कभी-कभी वलयके कुछ ढोंके टूट कर पृथ्वी पर गिरेंगे और उनसे पिस जाने वालोंको यह सुन्दर न लगेगा!

अवांतर ग्रह

मंगल और बृहस्पतिके बीच कई हज़ार नन्हे-नन्हे पिंड हैं जिन्हें हम अवांतर ग्रह कहते हैं। ये भी किसी प्रकार चूर-चूर हो गये होंगे। जब अवांतर ग्रहोंका पता नहीं चला था तभी लोगोंका ध्यान इस ओर आक-र्षित हुआ था कि मंगल और बृहस्पतिके बीच असा-धारण अधिक रिक्त स्थान पड़ा है। तब ज्योतिषियोंने एक परिषद् स्थापितकी, जिसके सदस्योंका कर्तव्य था कि वे मंगल और बृहस्पतिके बीचके अज्ञात ग्रहकी खोज करें, क्योंकि लोगों को विश्वास हो गया था कि वहाँ अवश्य कम-से-कम एक ग्रह रहना चाहिए। मज़ाकमें लोगोंने इस परिषदका नाम 'आकाशीय पुलिस' रक्खा था, मानों अज्ञात ग्रह चोर था और उसे पकड़ना था। उन्नीसवीं शताब्दीके प्रथम दिन वस्तुतः एक ग्रह मंगल और बृहस्पतिके बीच मिला, परंतु यह इतना छोटा था कि लोगोंकी तबियत नहीं भरी और खोज जारी रही। फिर बराबर छोटे-छोटे ग्रह मिलते गये। अब भी प्रति वर्ष दो-चार (कभी-कभी अधिक) नवीन अवांतर ग्रह मिल जाते हैं। इन ग्रहोंके नाम रखनेका अधिकार उनके प्रथम देखने वालेको मिलता है। इस प्रकार उनके तरह-तरहके नाम रख दिये गये हैं। देवता, देवी, देश, नगर, ग्राम -- यहाँ तक कि पालतू कुत्ते, बिल्ली और दिलपसंद मिठाइयों-- के नाम पर भी अवांतर ग्रहोंके नाम रख दिये गये हैं।

केतु और उल्काएँ

सूर्यके परिवार में केतुओं और उल्काओंकी भी गणना की जाती है, क्योंकि केतु सूर्यकी प्रदक्षिणा करते हैं और उल्काएँ केतुओंके ही चूर-चार हैं। कुछ केतु बहुत ही बड़े और चमकीले होते हैं—इतने बड़े कि क्षितिजसे शिरोबिंदु तक उनकी पूँछ फैली रहती है।

केतु बहुधा एकाएक दिखलाई पड़ते हैं और कुछ समयमें अदृश्य भी हो जाते हैं। पूँछके कारण केतुओंको पुच्छल तारा भी कहते हैं। झाड़ूके सदृश जान पड़नेके कारण वे देहाती भाषामें झाड़ू या बढ़नी भी कहलाते हैं। कुछ लोग केतुओंको धूमकेतु भी कहते हैं। पूछोंका आकार यहाँ छपे चित्रोंसे स्पष्ट है। पूँछ एक ओर सँकरी होती है और उस ओर एक चमकीला सिर होता है। कुछ केतुओं-की पूँछ बहुत छोटी होती है। कुछ केतुओंमें पूछ रहती ही नहीं। ऐसे केतुओंकी पहचान उनकी कक्षा (मार्ग) से होती है क्योंकि केतु सूर्यकी प्रदक्षिणा करते हैं और उनका मार्ग बहुत लंबा होता है—ग्रहोंकी तरह गोल नहीं होता।

केतुओंकी पूछ छोटी-बड़ी होती रहती है। जब केतु सूर्यसे बहुत दूर रहता है तो उसमें पूँछ नहीं रहती। जैसे-जैसे वह सूर्यके निकट आता है तैसे-तैसे पूँछ बढ़ती है और चमकीली होती है। फिर, जब केतु अर्ध-प्रदक्षिणा लगाकर सूर्यसे दूर जाने लगता है तो पूँछ छोटी होने लगती है और अंतमें मिट जाती है। इसके बाद केतु सूर्यसे, और इस-लिये पृथ्वीसे, इतनी दूर चला जाता है कि अदृश्य हो जाता है। कुछ केतु बार-बार लौटा करते हैं, परंतु अधि-कांश केतु सूर्यसे इतने दूर निकल जाते हैं कि पता नहीं चलता कि वे कब लौटेंगे, या लौटेंगे या नहीं। सूर्यसे दूर जाते समय बृहस्पति आदि ग्रहोंसे बहुधा उनकी कक्षा विकृत हो जाती है और ऐसा संभव जान पड़ता है कि कई केतु सदाके लिये सूर्य-पाशसे मुक्त हो जाते हैं।

पता

श्रीयुत ....

....

....

मुद्रक तथा प्रकाशक—विश्वप्रकाश, कला प्रेस, प्रयाग।

विज्ञान

विज्ञान परिषद, प्रयागका मुख-पत्र

विज्ञानं ब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते । विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति ॥ तै० उ० ।३।५।

****

भाग ५९ | कन्या, सम्वत् २००१ सितम्बर १९४४ | संख्या ६

****

कुनैन

(लेखक—डाक्टर बी० के० मालवीय)

जिसे अंग्रेजीमें क्विनीन कहते हैं वह सिनकोना नामक एक बूटीका शुद्ध रासायनिक तत्व है जिस पर सिनकोनके आर्युवैज्ञानिक गुण विशेषतः निर्भर हैं। यह गंध रहित, श्वेत, अति कटु एलकोलायड है जो सिनकोनासे सन् १८२० में प्रथमवार शुद्ध रूपमें निकाली गई थी। मलेरिया ज्वरमें सिनकोनाकी बूटी चार सौ वर्षसे प्रयोगकी जाती है। क्विनीनका आविष्कार हो जाने पर इसने सिनकोनाका स्थान ले लिया है। कतिपय वर्षोंसे प्लैस्माक्विन व एटेब्रिनका आविष्कार होनेसे यह दवायें विशेप प्रयोग की जाती हैं।

क्विनीनकी प्रमुखता यह है कि मलेरियाके कीटाणुओं पर यह घातक है किन्तु जिस शरीर पर कीटाणु आक्रमण करते हैं उस पर घातकारक नहीं है। इसी गुणके कारण यह मलेरिया ज्वरमें लाभदायक है। इससे शरीरका तापक्रम शीघ्रतया वशमें आ जाता है और पारीका स्तम्भन होता है। सात दिन २०-३० ग्रेन तक नित्य प्रति ३ या ४ खुराक में इसे देना चाहिये और ज्वर बंद हो जाने पर भी इसकी चिकित्सा न बंद करनी चाहिये लेकिन नित्य प्रति औषधि खानेके सप्ताहमें केवल दो दिन बराबर देना चाहिये। औषधि ज्वर आनेके समयसे ३ या ४ घंटे पहले ही देना चाहिये क्योंकि यदा कदा विशेष ज्वर होने पर कै होना आरम्भ हो जाता है और चूँकि कुनैन कै को प्रोत्साहन देती है रोगीकी हालत चिंताजनक हो जानेका भय रहता है। कुनैन देनेसे आधा घंटा पहिले जुलाब दे देना अच्छा होता है जिससे कि पेट साफ रहे और कुनैन भली भाँति पच सके और खूनमें मिल सके।

केवल मलेरियामें ही नहीं, अन्य साधारण ज्वरमें भी कुनैन लाभकारी होती है।

अंग पर स्थान-शून्यता पैदा करनेमें कुनैनका इन्जेक्शन दिया जाता है किन्तु इससे शारीरिक अवयवोंको अथवा एपीडरमिक सेल्सको हानि पहुँचती है। इसलिये कुनैनका इन्जेकशन अधिकतर बरकाया जाता है।

गर्भवती स्त्रियोंको कुनैन बड़ी सावधानीसे देना चाहिये क्योंकि इससे गर्भपात होनेका भय रहता है। चूँकि कुनैन की विशेष मात्रा देनेसे गर्भपात हो जाता है यदा कदा स्त्रियां प्रसवसे बचनेके लिये कुनैन खाकर गर्भपातकी चेष्टा करती हैं। इससे शरीर पर विशेष क्षति पहुँचनेकी संभावना रहती है।

कुनैनकी मात्रा अधिक हो जाने पर बड़ी सुस्ती आती है। दुर्बलता प्रतीत होती है, सरमें भीषण दर्द होता है, चक्कर आने लगता है, कान भन्नाने लगता है, बहरापन आ जाता है और दिखलाई कम पड़ने लगता है। कुनैन खाना बंद कर देने पर उसका असर विशेषतः दूर हो जाता है किन्तु बहरापन व अंधापन शीघ्र नहीं जाता।

संतान-निग्रहमें भी कुनैन की बत्तियां दी जाती हैं किन्तु स्पर्मेटो-जोवा पर कुनैनका कुछ भी असर नहीं होता अतः संतान-निग्रहके लिये कुनैन बेकार औषधि है।

संदेश वाहक कबूतर

३५ हजार फीट की ऊँचाई पर भी स्वस्थ !

आश्चर्यमय अविष्कारों और घटनाओंके इस युगमें भी यह कोई कम आश्चर्यकी बात नहीं है कि इस समय हजारों मील दूर-दूर स्थानों तक संदेश पहुँचानेके लिए

कबूतर सबसे अधिक उपयोगी साधन सिद्ध हो रहे हैं। नौसेना, स्थलसेना तथा हवाईसेना में संदेश भेजनेके लिये बड़े भारी पैमाने पर और बड़ी सफलताके साथ कबूतरोंका प्रयोग किया जा रहा है। इस सम्बन्धमें एक बड़ी विचित्र बात देखी गई है। ३५ हजार फीटकी ऊँचाई पर पहुँचनेके बाद भी कबूतरोंको जीवित रखनेके लिये आक्सीजन गैस (प्राणवायु) का प्रयोग नहीं करना पड़ता। सैनिक दृष्टि से यह कोई समस्या नहीं है। यदि कबूतर बिना आक्सीजनके ३५००० फीटकी ऊँचाई तक जीवित रह सकते हैं तो संदेशवाहकके रूपमें उनका प्रयोग और भी अधिक सरलतासे हो सकता है लेकिन यह एक वैज्ञानिक समस्या अवश्य है कि वे क्यों और कैसे इतनी ऊँचाई तक स्वस्थ बने रहते हैं।

संदेशवाहकके रूपमें कबूतरोंका प्रयोग करनेमें इतनी अधिक सफलता मिली है कि परिस्थितियोंके कारण जिन चालकोंको बाध्य होकर समुद्रमें उतरना पड़ता है उनमें बहुत बड़ी संख्या ऐसोंकी रही है जिन्होंने अपने संकटका संदेश कबूतरों द्वारा भेजा था। कबूतरों द्वारा संदेश भेजनेके लिये एक प्रकारके निश्चित कागज होते हैं। उनकी खानापुरी करके उन्हें एक छोटी-सी डिबियामें बन्द करके कबूतरके पैरमें बाँध देते हैं। लेकिन जब वायुयान किसी विपत्तिमें फँस जाते हैं तो इन कागजोंकी खानापुरी करने आदिके लिये बहुत कम समय होता है। इस कठिनाईको हल करनेके लिये एक प्रकारके ऐसे निर्धारित कागज तैयार किये गये हैं जिनकी खानापुरी और कबूतरके पैरमें उनको बाँधने आदिका सारा कार्य प्रायः एक मिनटमें किया जा सकता है।

लिफाफेके अन्दर

दूसरी समस्या कबूतरोंको वायुयानमें साथ रख कर ऊपर ले जाने और ऊपरसे इस प्रकार छोड़नेकी थी कि कबूतरको जरा भी हानि न पहुँचे। इसके लिए एक प्रकारका कागजका लिफाफा-सा तैयार किया गया।

कबूतरको इस लिफाफेमें रख कर उड़ते हुये वायुयानसे बाहर छोड़ दिया जाता है। लिफाफा हवामें फड़फड़ा कर थोड़ी देरमें खुल जाता है और कबूतर उसमेंसे निकल कर अपने मार्गकी ओर उड़ने लगता है। इस प्रकार ३७५ मील प्रति घंटाकी चालसे उड़ने वाले वायुयानोंसे कबूतर छोड़े गये हैं पर उन्हें कोई हानि नहीं पहुँची है। लिफाफेके कारण वायुयानसे निकलते ही हवाके तीव्र झोंके कबूतरको आघात नहीं पहुँचा पाते।

तीसरी समस्या बड़ी ऊँचाईसे कबूतरको छोड़नेकी है। वायुयानमें रखकर कबूतरोंको ऊपर ले जानेके लिये एक छोटा-सा बक्स तैयार किया गया है। संदेश भेजनेका कागज आदि सारी आवश्यक वस्तुयें इसी बक्समें रहती हैं। वायुयानमें कबूतर द्वारा संदेश भेजनेका कार्य जिस व्यक्तिके सुपुर्द रहता है उसीके पास यह बक्स भी रहता है। बहुत ऊँचाई पर जाने पर हवाका दबाव कम हो जाता है। चालकोंको आक्सीजनका प्रयोग करना पड़ता है। कबूतरोंके लिये इस सम्बन्धमें परीक्षण किया गया। २० हजार फीटकी ऊँचाई पर कबूतर अपने बक्समें चुपचाप बैठे थे। २५ हजार, ३० हजार और ३५ हजार फीटकी ऊँचाई तक वायुयान उड़ता गया। हवाका दबाव कम हो गया, ठंढ शून्य तापमानसे भी प्रायः ४५ डिग्री कम हो गई। पर कबूतर उस समय भी अपने बक्समें ऐसे बैठे थे मानो अत्यन्त ठंढ और हवाके दबावकी कमीका उनपर असर ही न हो रहा हो। ३५ हजार फीटकी ऊँचाईसे कबूतरोंको छोड़ा गया। लिफाफेसे बाहर निकलते ही पहले वे प्रायः २० हजार फीट सीधे नीचेकी ओर उड़े और फिर अपने मार्ग पर हो लिये।

चालकोंने नीचे आकार ३५ हजार फीट पर भी जीवित तथा स्वस्थ रहने वाले कबूतरोंकी कहानी सुनाई। अफसरको विश्वास न आया। उसने समझा कि चालक विनोद कर रहे हैं। लेकिन जब उसे मालूम हुआ कि सारी घटना सत्य है तो कबूतरोंको उस कमरेमें ले जाया गया जहाँ हवाका दबाव कम करके और अतिशय ठंढ पैदा करके चालकोंको ट्रेनिंग दी जाती है। आश्चर्यसे भरा दृश्य था। कमरेकी हवाका दबाव क्रमशः घटाकर २० हजार, २५ हजार, ३० हजार, ३५ हजार यहाँतक कि ४० हजार फीटकी ऊँचाईके दबावके बराबर कर दिया गया। उस समय शून्य तापक्रमसे प्रायः १०० डिग्री कमकी ठंढमें कबूतर सिकुड़े हुये स्वस्थ रूपसे अपने स्थान पर बैठे रहे। हवाके दबावको एकदम तेजीसे बढ़ाकर २० हजार फीटकी ऊँचाईके बराबर किया गया। इस आकस्मिक परिवर्तनका भी उनपर कोई प्रभाव न पड़ा। अपने शिक्षणका अभ्यास करनेके बाद उन्हें हमेशा जो भोजन दिया जाता है उसे वे उत्सुकतासे माँगने लगे।

२५ हजार फीटसे अधिक ऊँचाई पर भी कबूतर क्यों और कैसे स्वस्थ रहते हैं यह एक बड़ी समस्या है जिसका अध्ययन किया जा सकता है।

केतु।

यह सन १६०८ का एक छोटा-सा केतु है और आविष्कारकके नाम पर इसका नाम मोरहाउस केतु पड़ गया है।

कुछ केतु बहुत चमकीले होते हैं। १८८२ का केतु तो दिनमें दिखलाई पड़ता था, केवल इतना ही करना पड़ता था कि छड़ी या हाथसे आँख पर आड़ कर लेना पड़ता था कि सूर्य ओटमें हो जाये।

अधिकांश बड़े केतुओंकी पूँछ बहुत लंबी होती है। कुछकी तो इतनी लंबी कि वह सूर्यसे पृथ्वी तक पहुँच सकती है। परंतु तौलमें केतु बहुत हलके होते हैं। अनुमान किया जाता है कि केतुका सिर वस्तुतः रोड़ों और ढोकोंका समूह है। जब यह समूह सूर्यके यथेष्ट निकट आ जाता है तो उसमेंसे गैसें निकलने लगती हैं जो हमें पूँछकी तरह जान पड़ती हैं। कभी-कभी पृथ्वी किसी केतुकी पूँछमें पड़ जाती है। ऐसे अवसर पर कोई विशेष बात देखनेमें नहीं आती। इससे अनुमान किया जाता है कि पूँछमें गैस बहुत बिखरी हुई अवस्थामें रहती है। गणनासे पता चलता है कि १८ मई १६१० के दिन पृथ्वी हैली-केतुकी पूँछमें पड़ गयी थी। लोगोंको इस घटनाकी पूर्व-सूचना मिल गयी थी। बड़ी सनसनी फैली थी। समाचार पत्रोंमें तरह-तरहके लेख छपे थे। कुछ लोगोंको डर था कि पृथ्वी जल कर भस्म हो जायगी। परन्तु हुआ कुछ नहीं।

हैली-केतु

केतुओंमें हैली-केतु बहुत प्रसिद्ध है। एक तो यह बहुत चमकीला है। फिर प्रति ७६ वें वर्ष यह लौट आता है। पिछली बार यह १६१० में आया था। उस वर्ष हमारे सम्राट एडवर्ड (सप्तम) की मृत्यु हो गयी। इसलिए लोगोंका यह विश्वास और भी दृढ़ हो गया कि केतुके दिखलाई पड़ने पर कोई राजा मरता है या अन्य भारी उपद्रव होता है। बहुत प्राचीन समयसे यह धारणा चली आ रही है कि केतुका दिखलाई पड़ना किसी भारी विपत्तिका सूचक है। परन्तु जान पड़ता है "जाकी रही भावना जैसी" वाली बात है। प्रतिवर्ष कुछ न कुछ उपद्रव हुआ ही करता है और किसी एक केतुसे किसी एक दुर्घटनाका सम्बन्ध जोड़ना असंभव नहीं है। परन्तु यदि छोटे-बड़े कोरी आँखसे दिखलाई पड़नेवाले और केवल दूरदर्शकमें दिखलाई पड़नेवाले—सब केतुओंकी गणना की जाय तो दो-चार केतु प्रतिवर्ष ही दिखलाई पड़ते है। उनसे घबड़ानेकी कोई बात नहीं है। १६१० में हैली-केतु चीन, जापान, जरमनी, इटली, रूस, अमरीका आदि सभी देशोंमें दिखलाई पड़ा था। सभी देशके सम्राट तो नहीं मर गये।

उल्काएँ

केतुओंका सिर संभवतः इसलिए रोड़ोंके रूपमें रहता है

कि वे कभी वृहस्पति, शनि, आदि या सूर्यके बहुत निकट चले जाते हैं और तब उनके विभिन्न भागों पर न्यूनाधिक आकर्षण पड़नेके कारण वे टूट जाते हैं। इन रोड़ोंमें से कुछ रोड़े उनके मार्गमें बिखर जाते हैं। जब कभी पृथ्वी इन रोड़ोंके समीप पहुँच जाती है या वे पृथ्वीके समीप पहुँच जाते हैं तो वे पृथ्वीके आकर्षणके कारण उस पर आ गिरते हैं। परन्तु पृथ्वीकी चारों ओर वायुमंडल है और आकाशसे गिरे रोड़े भयानक वेगसे गिरते हैं। इसलिये वे वायुमंडलकी रगड़ खाकर प्रदीप्त हो जाते हैं और हमें 'टूटे हुए तारे-से जान पड़ते हैं। इन्हींको हम उल्का कहते हैं। कभी-कभी तो पृथ्वी इन रोड़ोंके समूहके ठीक भीतर पड़ जाती है। तब उल्का-झड़ी लगती है; जान पड़ता है कि सारे आकाशमें बाण छूट रहे हैं। दृश्य बड़ा सुन्दर, परन्तु कुछ भयानक, लगता है, क्योंकि जान पड़ता है कि कुछ उल्काएँ आकर ठीक सिर पर गिरेंगी।

अधिकांश उल्काएँ बहुत छोटी होती हैं। वे मटरसे लेकर आलूके बाराबर होती होंगी। साधारणतः उल्काएँ हवामें ही भस्म हो जाती हैं, परन्तु कुछ इतनी बड़ी होती हैं कि उनका कुछ अंश आकर पृथ्वी पर गिरता है। इनको उल्का-प्रस्तर कहते हैं। संसारके अजायबघरों (म्यूज़ियमों) में कई उल्का-प्रस्तर सुरक्षित अवस्थामें रक्खे हैं। कुछसे तो कई व्यक्ति मर भी गये हैं।

ऐरिज़ोनामें एक बहुत बड़ा गड्ढा है जो निःसंदेह एक या अधिक उल्का-प्रस्तरोंके गिरनेसे बना है। वर्तमान कालमें इतना बड़ा प्रस्तर तो नहीं गिरा है कि ऐरिज़ोना वाले गड्ढेके टक्करका कोई गड्ढा बने, परन्तु १६०८ में साइबीरियामें इतना बड़ा उल्का-प्रस्तर गिरा था कि धक्केके कारण उत्पन्न हवाके झोंकेसे कई मीलके जंगल उखड़ गये और दो गाँव ला पता हो गये।

पृथ्वीकी आयु क्या है।

पृथ्वीमें कुछ पदार्थ ऐसे हैं कि उनमें धीरे-धीरे रासायनिक परिवर्तन आप-से-आप होता रहता है। जिस वेगसे यह परिवर्तन हो रहा है वह ज्ञात है। कितना परिवर्तन अब तक हुआ है इसके नापनेसे पता चल सकता है कि पृथ्वीकी आयु क्या है। ये परिवर्तनशील पदार्थ उल्का-प्रस्तरोंमें भी मिलते हैं। इसलिए उनकी भी आयु जानी जा सकती है। पृथ्वी और उल्काओं, दोनोंकी आयु लगभग दो अरब वर्ष निकलती है। इस प्रकार पता चलता है कि पृथ्वी तथा अन्य ग्रहोंकी उत्पत्ति आजसे लगभग दो अरब वर्ष पहले हुई। आयु जाननेकी यह सबसे अधिक विश्वसनीय रीति है। अन्य रीतियोंसे भी पृथ्वीकी आयु आँकी गयी है, उदाहरणतः यह देखकर कि समुद्रमें कितना नमक है और प्रतिवर्ष समुद्रमें कितना नमक वर्षाके पानीके साथ बहकर जाता है। या यह देखकर कि नायगरा जल प्रपातसे कितनी भूमि प्रतिवर्ष कटती है और कुल आज तक कितनी कट गयी है। परन्तु इन सब रीतियोंमें कठिनाई यह पड़ती है कि कोई कह नहीं सकता कि नमककी वृद्धि या भूमिके कटनेका वेग सुदूर भूत कालमें वही था जो आज है। यही भी ठीक पता नह कि आरम्भमें समुद्रका जल मीठा था या नहीं, या नायगरा सदासे भूमि काट ही रहा है। परन्तु रासायनिक परिवर्तनके वेगके विषयमें हम सिद्धान्तसे जानते हैं कि वह सदा एक-सा रहा होगा और आरम्भमें अपरिवर्तित दशामें रहा होगा क्योंकि उस समय पृथ्वी आदिका पदार्थ सूर्यसे निकला होगा जहाँ पदार्थोंके अणु क्या, केंद्राणु और ऋणाणु भी अलग-अलग रहे होंगे (पृष्ठ १७ देखें)।

६—तारोंकी नाप-जोख

गुरुत्वाकर्षणका नाम कई बार पहले आ चुका है। यह वह शक्ति है जिसके कारण फल पृथ्वी पर गिरता है और कूदने पर हम पृथ्वी पर आ गिरते हैं। इसीके कारण चन्द्रमा पृथ्वीकी प्रदक्षिणा करता है और छटक कर दूर नहीं निकल जाता। इसीके कारण ग्रह सूर्यकी प्रदक्षिणा करते हैं। यदि आज गुरुत्वाकर्षण मिट जाय तो पृथ्वी सूर्यसे दूर छटक जायगी और ठंढके कारण हम सब मर जायँगे। यदि पृथ्वीसे यह शक्ति मिट जाय तो जरा-सा उछलते ही हम पृथ्वीसे दूर ही होते चले जायँगे।

गुरुत्वाकर्षणके ही कारण वस्तुएँ भारी लगती हैं। सर आइज़क न्यूटनने सोचा कि चन्द्रमाके सीधी रेखामें न चलकर पृथ्वीकी चारों ओर चक्कर लगानेका अर्थ यही

है कि पृथ्वी चन्द्रमाको भी खींच रही है, जिस तरह वह पृथ्वीकी वस्तुओंको अपनी ओर खींचती है। किंवदंती है कि वह अपने बागमें बैठा था। एक सेब टपका तो उसे एकाएक यह बात सूझ गयी। तब वह अपना प्रसिद्ध नियम बना सका जो बताता है कि सभी वस्तुएँ किस प्रकार एक दूसरेको आकर्षित करती हैं।

गणित बतलाता है कि यदि कोई एक पिंड क किसी दूसरे पिंड ख को किसी नपी शक्तिसे खींचता है तो पिंड ख पिंड क को भी ठीक उतनी ही शक्तिसे खींचता है। गणितज्ञ इसीको लघुरूपमें कहता है कि क्रिया और प्रतिक्रिया बराबर होती हैं। यदि सेर भर लोहेको पृथ्वी सेर भरके बराबर आकर्षण शक्तिसे खींचती है तो लोहा भी पृथ्वीको उतनी ही शक्तिसे खींचता है। बहुत भारी होनेके कारण इतनी कम शक्तिसे पृथ्वी नापनेयोग्य मात्रामें चल नहीं पाती, यह बात दूसरी है। परंतु पृथ्वीकी लोहे पर और लोहेकी पृथ्वी पर आकर्षण-शक्तियाँ ठीक-ठीक बराबर हैं। इसीको लोहे और पृथ्वीके बीचकी आकर्षण-शक्ति कहते हैं। न्यूटनका नियम कहता है कि प्रत्येक दो पिंडोंके बीच आकर्षण-शक्ति रहती है। आकर्षणकी मात्रा उतनी ही अधिक होगी जितना दोनों पिंडोंके द्रव्यमानों* का गुणनफल अधिक होगा, और उतनी ही कम होगी जितना ही उनके बीचकी दूरी का वर्ग अधिक होगा। उदाहरणतः, दो पिंडोंमेंसे यदि हम एकका द्रव्यमान दुगुना कर दें तो उनके बीचकी आकर्षणशक्ति दुगुनी हो जायगी, यदि एकका द्रव्यमान तिगुना कर दें तो आकर्षण शक्ति तिगुनी हो जायगी; यदि एकका द्रव्यमान दुगुना करदें और दूसरेका तिगुना तो आकर्षणशक्ति ६ गुनी हो जायगी, इत्यादि।

फिर, यदि हम दो पिंडोंके द्रव्यमानोंको न बदलें, परंतु दूरी दुगुनी कर दें तो आकर्षणशक्ति चौथाई हो जायगी। दूरीके तिगुनी हो जाने पर शक्ति पहलेकी अपेक्षा नवम् अंश ही रह जायगी। इत्यादि।

पिंडकी रासायनिक या भौतिक बनावट पर आकर्षण निर्भर नहीं है। उदाहरणतः, एक मन लोहे और एक मन रुईके बीच वही आकर्षण होगा जो एक मन गुड़ और एक मन चावलमें।

*किसी पिंडमें कितना पदार्थ है इसीको द्रव्यमान कहते हैं। मोटे हिसाबसे हम उसे तौल कह सकते हैं।

पृथ्वीकी तौल

गुरुत्वाकर्षणके नियमके आधार पर हम पृथ्वीको तौल सकते हैं। यदि एक-एक मनके दो गोले सीसेके बनाये जायँ और वे एक दूसरेसे एक फुट पर रक्खे जायँ—उनके केंद्रोंके बीचकी दूरी एक फुट रहे—तो हम सूक्ष्म यंत्रोंसे उनकेबीचकी आकर्षण-शक्ति नाप सकते हैं। पता चलता है कि यह एक रत्तीका $\frac{१}{१३६००}$ भाग, अर्थात् एक मनका लगभग $\frac{१}{८००००००००}$ भाग, है। बस, इतना ही पृथ्वीकी तौल जाननेके लिए पर्याप्त है। हम जानते हैं कि पृथ्वीका केन्द्र हमसे ४००० मील या लगभग २०००००००० फुट पर है। इसलिए हम गणनासे जान सकते हैं कि यदि पृथ्वी न होती तो एक मन यहाँ और एक मन पृथ्वीके केन्द्र पर रखनेसे कितना आकर्षण होता। स्पष्ट है कि यह आकर्षण एक मनके $\frac{१}{४००००००००}$ को $२०००००००० \times २००००००००$से भाग देने पर प्राप्त होगा। परंतु पृथ्वी इतनी भारी है कि वह इतनी शक्तिके बदले एक मनके गोलेको एक मनकी शक्तिसे खींचती है। इस लिए पृथ्वीका बोझ उतना मन होगा जितना १ मनको $\frac{१}{४००००००००} \times \frac{१}{२००००००००} \times \frac{१}{२००००००००}$से भाग देने पर प्राप्त होगा। इस प्रकार पता चलता है कि पृथ्वीकी तौल है

१,६०,००,००,००,००,००,००,००,००,००० मन!

सुविधाके लिये वैज्ञानिक इस संख्याको १६×१०^{२२} लिखता है क्योंकि १६ के बाद २२ सुन्ने हैं। यह इतनी बड़ी संख्या है कि हम इसकी ठीक-ठीक कल्पना ही नहीं कर सकते।

सूर्यकी तौल

न्यूटनके बताये आकर्षण नियमसे हम सूर्यको भी तौल सकते हैं। हम पृथ्वीकी तौल जानते हैं। यह भी जानते हैं कि पृथ्वी सूर्यसे सवा नौ करोड़ मील पर है और यह भी कि पृथ्वी सूर्य का एक चक्कर ३६५ दिनमें लगाती है। गणनासे हम पता लगा सकते हैं कि १६×१०^{२२}

मनके पिंडको सवा नौ करोड़ लम्बी रस्सीके सिरे पर बाँध कर लंगरकी तरह एक वर्षमें एक चक्करके वेगसे नचाने में कितनी शक्ति चाहिये। इससे पता चल जाता है कि सूर्य और पृथ्वीके बीचमें कितनी आकर्षणशक्ति है। तब तुरन्त पता लगाया जा सकता है कि सूर्यकी तौल क्या है। अंतमें परिणाम निकलता है कि सूर्य पृथ्वीकी अपेक्षा ३,३२,००० गुना भारी है और इसलिए उसकी तौल ५×१०^{२८} मन है।

वरुण और यमका पता कैसे चला

सौ वर्षसे कुछ ही ऊपरकी बात है कि वारुणी (यूरेनस) को ही लोग सबसे अधिक दूर वाला ग्रह समझते थे। ज्योतिषियोंने वारुणीकी कक्षाकी गणना की, और सब ज्ञात ग्रहोंके आकर्षणोंका परिणाम उसमें सम्मिलित कर लिया गया। परंतु देखा गया कि वारुणी ठीक-ठीक गणितसे निकले मार्ग पर नहीं चल रहा था। तब लोगोंको संदेह हुआ कि संभवतः वारुणीके उस पार भी कोई ग्रह है जो वारुणीको अपने मार्गसे थोड़ा-बहुत विचलित कर देता है। इंगलैंडके ऐडम्सने और फ्रांसके लवरियेने अलग-अलग स्वतंत्र रूपसे गणना की कि यदि वारुणीका विचलन किसी अज्ञात ग्रहके कारण है तो वह कहाँ और कितना बड़ा होगा। दोनोंका उत्तर प्रायः एक ही निकला और उनके बतलाये हुए स्थान पर वस्तुतः ग्रह देखा गया। क्या आकर्षण सिद्धांतकी सफलताका इससे बढ़कर दूसरा कोई उदाहरण चाहिए?

इस नवीन ग्रहका नाम वरुण पड़ा (अंग्रेजीमें नेपच्यून) परंतु परिस्थिति अब भी कुछ-कुछ पहले जैसी थी। वरुणके आकर्षणकी गणना करने पर देखा गया कि वारुणी अब भी गणित-सिद्ध मार्गसे थोड़ा-बहुत विचलित होता है, यद्यपि अंतर पहलेसे बहुत कम है। तब कुछ ज्योतिषियोंको संदेह हुआ कि वरुणके उस पार भी कोई ग्रह है। फिर पहले जैसी गणना की गयी; इस बार गणक अमरीकाका लॉवेल था। पन्द्रह वर्ष तक खोज हुई परंतु अज्ञात ग्रह दिखलाई नहीं पड़ा। परंतु मार्च १९३० में ग्रह मिला ही और प्रायः उसी जगह जहाँ लॉवेलने गणनासे बतलाया था। खेद इतना ही है कि उस समय तक लॉवेल स्वयं अपने गणितकी सच्चाईका प्रमाण देखने के लिए जीवित नहीं था। यही ग्रह यम (अँग्रेज़ीमें प्लूटो) कहलाया।

इस बातके प्रमाणमें कि न्यूटनका आकर्षण-सिद्धांत सच्चा है वरुण और यमके आविष्कार तो पेश किये ही जा सकते हैं, परंतु सबसे बड़ा प्रमाण यह है कि इसी सिद्धांतके अनुसार चंद्रमा और सूर्यकी स्थितियोंकी गणना प्रतिदिनके लिए वर्षों पहलेसे कर ली जाती है और कभी धोखा नहीं हुआ है। एक बार फ्रांसका प्रसिद्ध गणितज्ञ आकर्षण-सिद्धांतको झूठा घोषित ही करने वाला था, क्योंकि उसने देखा कि इस सिद्धांतसे निकली चन्द्रमा की स्थिति वास्तविकसे भिन्न थी, परंतु उसे एक बात सूझी और जब उसने गणनाको अधिक सूक्ष्म रूपसे किया तो पता चला कि पहलेकी गणनाकी स्थूलताके कारणही अन्तर पड़ा था; सिद्धान्त ठीक है।

आधुनिक समयमें आइनस्टाइनने नवीन सिद्धान्त उपस्थित किया है, जिसके अनुसार आकर्षण-सिद्धांतमें कुछ और अन्तर पड़ गया है, परन्तु यह अन्तर इतना सूक्ष्म है कि केवल बुधकी ही कक्षा पर नापनेयोग्य अन्तर पड़ता है; अन्य ग्रहोंकी कक्षाओंमें न्यूटन और आइनस्टाइन दोनोंसे एक ही परिणाम निकलता है। बुधके लिए आँखों-देखी बातें आइनस्टाइनका पक्ष समर्थन करती हैं।

तारोंकी तौल

आकाशमें कुछ तारे ऐसे हैं जो दूरदर्शकसे देखने पर दोहरे जान पड़ते हैं। वस्तुतः आकाशमें वहाँ दो तारे हैं, जो पास-पास रहनेके कारण हमें कोरी आँखसे एक तारेकी तरह जान पड़ते हैं। इनमेंसे कुछ तारे तो दोहरे केवल इसीलिए जान पड़ते हैं कि संयोगवश दोनों तारे प्रायः एक ही सीधमें हैं, यद्यपि एक तारा दूसरेके पीछे बहुत दूर पर स्थित है। इनको छोड़, शेष दोहरे तारोंमें वस्तुतः एक तारा दूसरेके पास रहता है और आकर्षण नियमका पालन करते हुए दूसरेकी प्रदक्षिणा करता है। वस्तुतः यह कहना अधिक उचित होगा कि दोनों तारे उसी प्रकार चक्कर लगा रहे हैं जैसे दो लड़के एक दूसरेका हाथ पकड़ कर नाचते (चक्कर काटते) हैं। ऐसे तारोंकी तौल गणना

तारे—आकाशके एक हिस्सेका फ़ोटोग्राफ़। काफ़ी प्रकाश-दर्शन (एक्सपोज़र) देने पर अनेक ऐसे तारोंका भी फ़ोटो उतर आता है जो फीके होनेके कारण हमको दिखलाई नहीं पड़ते।

नहीं है। उत्तर निकलता है कि सूर्यमें इतना प्रकाश है जितना ३,००,००, ००,००,००,००,००,००,००.००, ००,००,००० मोमबत्तियोंमें !

आकाशमें सबसे अधिक चमकीला तारा (ग्रह नहीं, तारा) वह है जिसका नाम है लुब्धक (अँग्रेज़ीमें सिरियस)। इसकी वास्तविक चमक* हमारे सूर्यकी वास्तविक चमकसे २६ गुना अधिक है। यदि कहीं हमारा सूर्य अचानक सिरियस की तरह चमकीला हो जाय तो हमारे समुद्र और नदी-नारे सब कुछ घंटोंमें ही भाप होकर उड़ जायँगे और हम झुलसकर मर जायँगे।

सिरियसकी वास्तविक चमकसे भी अधिक वास्तविक चमक वाले तारे आकाशमें हैं। कुछ तारोंकी चमक घटा-बढ़ा करती है। उनमेंसे एक तारा ऐसा है कि महत्तम चमकके अवसर पर उसकी वास्तविक चमक हमारे सूर्यकी वास्तविक चमकसे पाँच लाख गुनी अधिक हो जाती है। यदि कहीं हमारा सूर्य इतना ही चमकीला होता और अपनी वर्तमान दूरी पर डटा रहता तो पृथ्वीके सारे पदार्थ, क्या पत्थर, क्या धातु, उड़कर गैसीय रूप धारण कर लेते।

इधर तो चमकीले तारोंकी यह हालत है, उधर ऐसे भी तारे हैं जो बस दिखलायी भर पड़ जाते हैं और उनकी वास्तविक चमक बहुत कम है। ऐसे मृत-प्राय तारोंकी संख्या वस्तुतः बड़ी होगी, परंतु उनमेंसे हम केवल निकटतम तारोंको ही देख पाते हैं। दूर रहनेपर स्वभावतः ऐसे तारे अदृश्य हो जाते हैं।

द्वारा निकल सकती है। पता चला है कि हमारा सूर्य अधिकांश तारोंकी अपेक्षा कुछ भारी ही है। परन्तु तारोंकी तौलोंमें बहुत विभिन्नता नहीं मिली है। सूर्यसे दस गुने या अधिक भारी तारे इने-गिने ही हैं। तौलमें सूर्यके भारके दशम अंश वाले या इनसे भी हलके तारे भी बहुत कम ही हैं।

परन्तु तारोंकी चमकमें बड़ी विभिन्नता है। कुछ भिन्नता तो उनकी दूरियोंके विभिन्न होनेके कारण उत्पन्न होती है। परन्तु यदि सब तारे एक ही दूरी पर लाकर रख दिये जायँ तो भी उनकी चमकोंमें बहुत अन्तर दिखलाई पड़ेगा। उदाहरणतः, प्रोसियन नामक तारा वस्तुतः युग्म तारा (दोहरा तारा) है और इनमेंसे एक तारा दूसरेके चारों ओर चक्कर लगा रहा है। इससे स्पष्ट है कि दोनों तारे प्रायः एक ही दूरी पर हैं। तो भी इनमेंसे एक तारा दूसरेकी अपेक्षा लाख गुना चमकीला है।

सूर्य और जलती हुई मोमबत्ती यदि हमसे बराबर दूरी पर रक्खे जायँ तो सूर्यसे मोमबत्तीकी अपेक्षा कितना गुना अधिक प्रकाश निकलेगा? हम सूर्यकी दूरी जानते हैं, धूपकी तेज़ी भी जानते हैं। इससे गणना करना कुछ कठिन

तारोंका व्यास

दूरदर्शकसे ग्रह बड़े दिखलायी पड़ते हैं। जितना ही

*यदि सब तारोंको गणना द्वारा एक ही दूरीपर लाकर उनकी चमकोंकी तुलना की जाय तो इस प्रकार प्राप्त चमकको वास्तविक चमक कहते हैं।

अधिक शक्तिशाली यंत्रका प्रयोग किया जाता है वे उतने ही अधिक बड़े दिखलाई पड़ते हैं। परंतु बड़े-से-बड़े दूरदर्शक में भी तारे विंदु-सरीखे ही दिखलाई पड़ते हैं। बात वैसी ही जान पड़ती है जैसे किसी संख्याको प्रवर्द्धक-शक्तिसे गुणा किया जाय। यदि किसी दूरदर्शककी प्रवर्द्धक-शक्ति
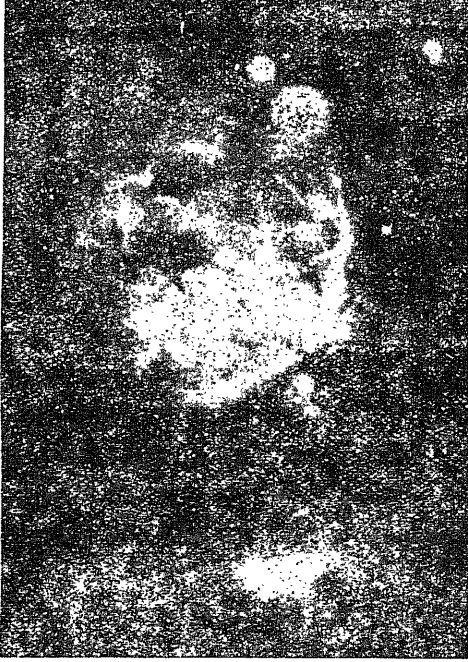
मृग तारासमूहकी वृहद् नीहारिका।
दूर तक फैला हुआ, आकृतिमें धुएँ या हलके बादलकी तरह, यह अद्‌भुत आकाशीय पिंड दूरदर्शकमें बहुत सुंदर दिखलाई पड़ता है।

१००० है तो १ डिगरीके व्यासका पिंड १००० डिगरीका हो जायगा; परंतु शून्य डिगरी व्यासका पिंड शून्य डिगरी का ही रह जायगा, क्योंकि ० × १००० = ०। परंतु इधर कुछ वर्षोंसे बड़े-बड़े तारोंका व्यास नापना एक विशेष विधि-से संभव हो सका है। यह विधि कुछ जटिल है और इसलिए उसके समझानेकी हम यहाँ चेष्टा नहीं करेंगे। अन्य तारोंके व्यासोंका अनुमान उनके वास्तविक चमक और रंगसे किया गया है। इन गणनाओंसे पता चला है कि तारोंकी नापोंमें बड़ी ही विभिन्नता है। एक तारा तो इतना छोटा है कि वह हमारी पृथ्वीके बराबर ही है। तेरह लाख ऐसे सूर्योंको एकत्रित करने पर ही हमारे सूर्यके बराबर सूर्य बन सकेगा। उधर बड़े तारे इतने बड़े हैं कि उनके भीतर हमारी पृथ्वीकी कक्षा भी समा जायगी—यद्यपि इस कक्षाका अर्धव्यास सवा नौ करोड़ मील है! आर्द्रा (इब्तुलजौज़)* नामक तारा इतना बड़ा है कि बंदूक-की गोलीको भी इसकी परिक्रमामें ६० वर्ष लगेगा। यदि कोई युवा गोली दागे और गोली रुके नहीं, अपने आरं-भिक वेगसे चलती ही जाय तो उसके चक्कर लगाकर लौटनेकी प्रतीक्षामें वह बेचारा बूढ़ा हो जायगा! छोटे और बड़े तारोंके डीलमें छोटे-से-छोटे भुनगे और हाथीका-सा अन्तर है।

रंग

कुछ तारे लाल हैं। कुछ कम लाल। कुछ पीले हैं, कुछ सफेद। यह क्यों? वैज्ञानिक कहते हैं कि उनके ताप-क्रममें अंतर है। जब लोहार लोहे को तपाता है तो पहले वह गाढ़े लाल रंगका होता है। तब वह चटक लाल रंगका होता है। फिर पीले रंगका। यदि तापक्रम और बढ़ सकता तो वह पीलेसे सफेद और सफेदसे नीला हो जाता। बिजलीकी भट्ठियोंसे वस्तुओंको तपा कर यह देखा गया है। इसलिए तारेके रंगसे ही वैज्ञानिक अनुमान कर लेता है कि तारेका तापक्रम क्या होगा, उसके प्रतिवर्ग गज़से कितनी रोशनी निकलती होगी। गाढे लाल रंगके तारोंका तापक्रम लगभग २५०० डिगरी (फ़ारनहाइट) होगा, हमारे सूर्यका (ऊपरी सतहका) तापक्रम १०,००० डिगरी और उष्णतम तारेका ७०,००० डिगरी। इन अत्यंत तप्त तारोंके एक वर्ग इंचसे इतनी शक्ति निकलती है कि उसे पाकर उससे संसारका बड़े-से-बड़ा जहाज़ पूरे वेगसे चलाया जा सकता और कुछ कोयला जलानेकी आवश्यकता न पड़ेगी।

तारोंकी जातियाँ

हम देख चुके हैं कि तारोंकी तौलोंमें विशेष अंतर नहीं है, परंतु उनकी नापोंमें और तापक्रमोंमें बड़ी विभि-

*यही शुद्ध अरबी नाम है। ठीक उच्चारण न कर सकनेके कारण अँग्रेज़ इसे बेटलजूज़ कहते हैं।

न्नता है। इसका परिणाम यह निकलता है कि उनके घनत्वमें भी बहुत विभिन्नता होगी। अपनी नापके अनुसार तारे तीन जातियोंमें बाँटे जाते हैं बौने, प्रधान-क्रमिक, और दैत्य।

बौने तारे बहुत छोटे और घने होते हैं। उनका तापक्रम भी अधिक होता है। इसलिए उनका रंग साधारणतः श्वेत होता है। इसीलिए बौने तारोंको बहुधा श्वेत बौना
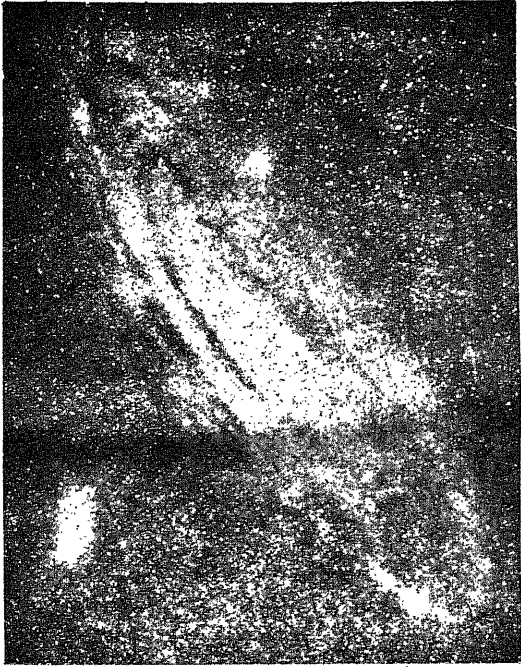
देवयानी तारासमूहकी सर्पिल नीहारिका

लाप्लासका सिद्धांत था कि हमारा सौर-जगत किसी ऐसी ही सर्पिल नीहारिकाके द्रव्यके सिमटनेसे बना है।

कहा जाता है। जान पड़ता है कि इन तारोंमें अधिक तापक्रमके कारण पदार्थोंके परमाणुओंके ऋणाणु और केंद्राणु टूट कर अलग-अलग हो गये हैं और तब अधिक चाप (दाब) के कारण वे इतने सिमट गये हैं कि कुल तारेका डील कम हो गया है (पृष्ठ १८ देखें)।

बौने तारोंमें घनत्व हमारी पृथ्वीके घनत्वका दस हजार गुना तक हो सकता है। यदि यहाँ भी वैसा ही घना पदार्थ बन सकता तो हमारा १०० मन आहार कुल एक चुटकी भर होता! बौने तारोंके आगे तो हमारी पृथ्वी खूब धुनी हुई रुईसे भी कहीं अधिक हलकी लगेगी। मकड़ीके जालेसे उपमा देना अधिक उपयुक्त होगा।

दूसरी ओर दैत्य तारे हैं। ये बहुत बड़े होते हैं। आर्द्रा, जिसकी चर्चा हम पहले कर चुके हैं, दैत्य तारा है। देख चुके हैं कि यह कितना बड़ा है। कुछ दैत्य तारे इससे भी बड़े हैं। दैत्य तारे लाल होते हैं। वे बामन तारोंसे बहुत कम गरम हैं। इनका घनत्व भी बहुत कम होता है।

शेष तारे न तो बौने हैं और न दैत्य। आकाशमें दिखलाई पड़ने वाले तारोंमेंसे लगभग ८० प्रतिशत इसी जातिके हैं और हमारा सूर्य भी इसी श्रेणीमें है। इनका आकार मझोला, घनत्व न बहुत अधिक न बहुत कम और रंग चटक लालसे सफेद तक होता है। इन तारोंको क्रमके अनुसार रक्खा जा सकता है। जैसे-जैसे नापमें ये छोटे होते चलते हैं तैसे-तैसे उनका तापक्रम बढ़ता जाता है।

वस्तुतः, वैज्ञानिकोंका विश्वास है कि तारे आरंभमें दैत्य जातिके रहते हैं। धीरे-धीरे वे संकुचित होते जाते हैं और उनका तापक्रम बढ़ता जाता है। अंतमें वे बौने हो जाते हैं। केवल थोड़ी-सी कठिनाई इसमें है कि दैत्य और मझोले तारोंमें तो क्रमशः अंतर पड़ता है, परंतु मझोले और बौने तारोंके बीच रिक्त स्थान है। ऐसे तारे नहीं दिखलाई पड़ते जो मझोले तारोंसे कुछ छोटे और बौनोंसे कुछ बड़े हों।

तारोंका विकास पूर्वोक्त क्रममें क्यों होता है यह अभी ठीकसे किसीकी समझमें नहीं आया है।

७—आकाशगंगा

आकाशमें एक सिरेसे दूसरे सिरे तक हमें मोतीके समान मंद प्रकाशसे झलकती हुई मेखला दिखलाई पड़ती

है जिसको आकाशगंगा कहते हैं। आकाशगंगा वस्तुतः क्या है इस पर कई प्राचीन ज्योतिषियोंने विचार किया था, परन्तु उसकी रचनाका पक्का पता गैलीलियोंको लगा। दूरदर्शक द्वारा देखते ही पता चला कि आकाशके उन भागोंमें जहाँसे आकाशगंगा गई है इतने तारे हैं कि सब हमको पृथक-पृथक दिखलाई पड़नेके बदले एक दूसरेमें मिलकर केवल धारीसे दिखलाई पड़ते हैं।

आधुनिक समयोंके किसी-न-किसी रीतिसे अनेक तारोंकी दूरी नापी या आँकी गयी है। जब हम तारोंकी वास्तविक स्थितियों पर विचार करते हैं—आकाशमें दिखलाई पड़ने वाली स्थितियोंकी नहीं, वे स्थितियाँ तो केवल दिशा पर निर्भर हैं और इन स्थितियोंमें दूरी पर कुछ ध्यान नहीं दिया जाता—जब हम प्रत्येक तारेको उसकी दिशा और दूरीके हिसाबसे चुने विंदुसे निरूपण करते हैं तो हमें एक आश्चर्यजनक बातका पता चलता है। हम देखते हैं कि तारे हमारी चारों ओर अनन्त दूरी तक नहीं फैले हैं। जैसे-जैसे हम दूर जाते हैं वैसे-वैसे तारोंकी संख्या कम हो जाती है। तारोंका संसार परिमित है। उसकी सीमा है और तारोंके इस संसारका आकार गोल नहीं चिपटा है—बहुत चिपटा है; प्रायः बाटी (मोटी लिट्टी) की तरह है। हम लोग—सूर्य और ग्रह—इस बाटीके ठीक केंद्र पर नहीं हैं। मोटाईके तो लगभग बीचमें हैं, परन्तु एक किनारेसे लगभग दो-तिहाई और दूसरे किनारेसे लगभग एक तिहाई पर हम हैं।

इस बाटीमें छिटके हुए सब तारोंको सामूहिक रूपसे मंदाकिनी-संस्था कहते हैं। गणनासे पता चलता है कि हमारी मंदाकिनी-संस्थामें कुछ नहीं तो १,००,००,००,००,००० तारे होंगे। इतनी बड़ी संख्याकी कल्पना कठिन है। प्रथम बार तो ऐसा जान पड़ता है कि कोरी आँखसे दिखलाई पड़ने वाले तारे ही असंख्य होंगे। परन्तु गिन कर देखा है कि कोरी आँखसे एक समयमें ३,००० से अधिक तारे कभी दिखलाई नहीं पड़ते। संपूर्ण आकाशमें कुल ६००० तो तारे ही हैं और हमें एक बारमें आधेसे अधिक आकाश दिखलाई नहीं पड़ता। गिननेको कौन कहे, इन ६००० तारोंके नाम या नंबर पड़े हैं और उनकी सूची छपी है। अब अपनी मंदाकिनी-संस्थाके तारोंकी संख्याकी कल्पना करनेके लिए यदि हम सोचेंकी आकाशमें दिखलाई पड़ने वाले ३००० तारोंमेंसे प्रत्येक फूटकर अपने ही बराबर ३००० तारोंमें प्रस्फुटित हो जाता है तो भी हमें कुल ९०,००,००० ही तारे मिलेंगे ! मंदाकिनी-संस्थाके १ खरब तारोंकी संख्याके आगे यह कुछ नहीं है।

स्वभावतः हमको उन दिशाओंमें अधिक तारे दिखलाई पड़ेंगे जिधर इस संस्थाकी छोर है। छोर ही आकाशगंगा है। उधर हमें इतने तारे दिखलाई पड़ते हैं कि वे एक दूसरे-

काली नीहारिका।
इस नीहारिकाके पीछे चमकीला तारा न होता तो यह हमें दिखलाई भी न पड़ती।
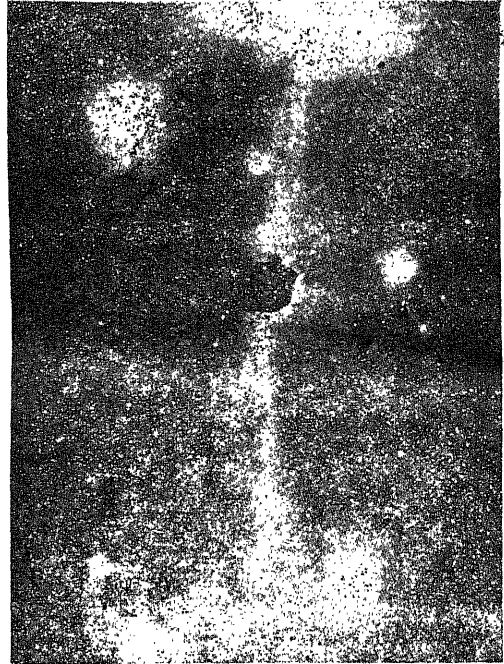
से मिलकर प्रकाशकी नदीसे जान पड़ते हैं, यह तो हुई तारोंकी गिनती। अब हमारी मंदाकिनी-संस्थाकी लंबाई-चौड़ाई क्या है ? मीलोंमें इस संख्याका देना ही बेकार है। सुविधाके लिए कोई बहुत बड़ी एकाई चाहिए। प्रकाश एक सेकण्डमें १८६,००० मील चलता है। उसे सूर्यसे हमारे पास तक आनेमें कुल आठ मिनट लगता है। एक वर्षमें यह

कितना चल लेता होगा उसकी गणना सहजमें हो सकती है परन्तु उसे हम समझ नहीं सकते। हमारे साधारण अनुभवके वह परे है। तो भी हम यदि उस दूरीको जिसे प्रकाश एक वर्षमें तय करता है एक एकाई मान लें—उसीको अपना गज़ या मापक निश्चित करें और उसे एक प्रकाश-वर्ष कहें—तो हम देखेंगे कि हमारी मंदाकिनी-संस्थाका व्यास ६००० प्रकाश-वर्ष है और मोटाई २००० प्रकाश-वर्ष! यदि हम इस संस्थाकी प्रतिमा पैमानेके अनुसार बनाना चाहें और हमारी समूची प्रतिमा कुम्हारके चाकके बराबर हो तो इस प्रतिमामें हमारी पृथ्वी सूक्ष्मतम कणसे भी छोटी होगी!! वस्तुतः वह इतनी छोटी होगी कि किसी भी सूक्ष्मदर्शक यंत्रसे इसे हम न देख पायेंगे!!! और इस धूलि-कणको आजसे कुछ ही शताब्दी पहले लोग इतनी महत्ता देते थे कि समझते थे कि सभी तारे, सभी ग्रह, चंद्रमा और सूर्य इसी पृथ्वीकी प्रदक्षिणा करते हैं, वे इसीके लिये बने हैं। विश्वमें पृथ्वीकी तुच्छता स्पष्ट हो गयी होगी, परन्तु पूरी तरहसे नहीं, क्योंकि विश्वमें एक नहीं, करोड़ों मंदाकिनी-संस्थाएँ हैं जिनकी कथा अभी तक कही ही नहीं गयी है।

आकाशगंगाके उस पार

मंदाकिनी-संस्थाकी बात तो हमारी समझमें आ गई। यह बहुत-सा स्थान घेर रक्खे है, परंतु है अंतमें सीमित ही। तो फिर उसके बाद क्या है? क्या शेष स्थान पूर्णतया रिक्त है? नहीं। अंतरिक्षमें दूर-दूर पर बिखरी हुई अन्य मंदाकिनी-संस्थाएँ हैं। ये हमें नीहारिकाओंके रूपमें दिखलाई पड़ती हैं।

नीहारिका शब्दका अर्थ है कुहेसाके समान छोटा पिंड, और वस्तुतः नीहारिकाएँ कुहेसा या सफेद बादलकी तरह होती हैं। एक ही दो नीहारिकाएँ इतनी बड़ी हैं कि वे कोरी आँखसे दिखलाई पड़ती हैं, परन्तु कोरी आँखसे देखनेमें कुछ विशेष आनंद नहीं मिलता। दूरदर्शकसे देखने पर ही उनके सच्चे स्वरूपका पता चलता है। कुछ नीहारिकाएँ तो हमारी ही मंदाकिनी-संस्थामें हैं और उनमें केवल बिखरा पदार्थ है जो संभवतः अभी तक संकुचित हो कर एकपिंड नहीं हो पाया है। कुछ काली नीहारिकाएँ भी हैं जिनके अस्तित्वका पता केवल इसी लिए लगता है कि उनके पीछेके सब तारे छिप जाते हैं। हमारी आकाशगंगामें भी एक दो स्थान हैं जहाँ जान पड़ता है जैसे सफेद दीवारमें काला छेद हो। इनमेंसे सबसे बड़े रिक्त स्थानको अँग्रेज़ोंने नाम दे दिया है 'कोयलेका बोरा' (कोल-सैक)।

परंतु वे नीहारिकाएँ जो हमारी ही मंदाकिनी-संस्था-की तरह स्वयं मंदाकिनी-संस्थाएँ हैं साधारणतः नियमित आकारकी होती हैं। उनमेंसे अधिकांश 'सर्पिल' नीहारिकाएँ हैं जिनमेंसे प्रत्येकमें एक केंद्र होता है और उसमेंसे दो शाखाएँ निकली रहती हैं जो कुछ-कुछ साँपकी कुंडली-की तरह चक्करदार होती हैं। इन नीहारिकाओंमेंसे हम किसीको एकदम ऊपर या नीचेसे देखते हैं, किसीको तिरछी दिशासे और किसीको ठीक नीहारिकाकी धरातल-से। इसीसे लंबाईके हिसाबसे उनकी चौड़ाई किसीमें कम किसीमें अधिक दिखलाई पड़ती है।

तंतुमय नीहारिका।
बहुत हलके, प्रायः पारदर्शक, बादलकी तरह यह नीहारिका इतने मंद प्रकाशकी है कि बहुत बड़े दूरदर्शकसे फोटो लेने पर ही दिखलाई पड़ती है।

सर्पिल नीहारिकाएँ अपनी धुरी पर नाचा करती हैं। हमारी मंदाकिनी-संस्था स्वयं इसी प्रकार नाचती है और उसके कारण हमारा सूर्य—सब ग्रहोंको लिये-दिये—लगभग २०० मील प्रति सेकंडके वेगसे बराबर चलता रहता है। यह वेग नापा गया है और केवल सिद्धांतका परिणाम नहीं है। नीहारिकाओंका नाचना संतोषजनक भी है। वे नाचती न होतीं तो आकर्षणसिद्धांतके अनुसार सब पदार्थको सिमटकर एक हो जाना चाहिए था। हमारी पृथ्वी भी, यदि वह सूर्यकी चारों ओर चक्कर न लगाती होती तो सूर्यके आकर्षणसे सूर्यमें जाकर गिर पड़ती (और यदि सूर्यका आकर्षण न होता तो पृथ्वी चक्कर लगानेके बदले छटक जाती)।

अब एक बात ध्यान देने योग्य है कि हम गणनासे जानते हैं कि गैसका गोल पिंड नाचे तो क्या होगा। हम जानते हैं कि पहले वह धीरे-धीरे चिपटा होगा और साथ ही वह बराबर अधिकाधिक घना भी होता जायगा। तब उसमेंसे भुजाएँ निकलेंगी, जैसी सर्पिल नीहारिकाओंमें दिखलाई पड़ती हैं। समय बीतने पर नीहारिकाके अंग टूट-टूट कर घनीभूत होते जायँगे और उनसे तारे बनते जायँगे। इस प्रकार अंतमें तारे-ही-तारे रह जायेंगे। इससे हम अनुमान करते हैं कि तारोंका जन्म इसी प्रकार होता होगा। इस क्रियामें न जाने कितने अरब-खरब वर्ष लगते होंगे। इसलिए हम आदिसे अन्त तक किसी एक नीहारिकाके विकासको तो नहीं देख सकते हैं परंतु विभिन्न अवस्थाओं तक विकसित नीहारिकाओंका अध्ययन अवश्य कर सकते हैं। साथके चित्रोंमेंसे एकमें ८ विभिन्न नीहारिकाओंके फोटोग्राफ़ विकास क्रमके अनुसार दिखलाये गये हैं और जान बूझ कर ऐसी नीहारिकाएँ चुनी गयी हैं जिन्हें हम छोरकी दिशासे देखते हैं। अन्य चित्रोंमें अन्य सर्पिल नीहारिकाएँ दिखलाई गयी हैं जिनसे उनकी वास्तविक बनावट अधिक स्पष्ट हो जायगी।

आकाशमें हमारे वर्तमान दूरदर्शकोंसे लगभग बीस लाख सर्पिल नीहारिकाओंका फोटो खींचा जा सकता है। अधिक बड़े दूरदर्शकोंके बनने पर अवश्य ही अधिक नीहारिकाओंका पता चलेगा। ये द्वीप सदृश बहुसंख्य विश्व अन्तरिक्षमें दूर-दूर पर बिखरे हुए हैं। इन्हींमें हमारी मंदाकिनी-संस्था भी है।

यदि हम पैमानेके अनुसार इन विश्वोंका निरूपण करना चाहें और हम दिल्ली शहरको अपनी मंदाकिनी-संस्थाका केन्द्र मानें तथा अपने निकटतम द्वीप-विश्वको मेरठ पर रक्खें, तो इस पैमाने पर हमारी मंदाकिनी-संस्था दिल्ली शहरसे कुछ ही बड़ी ठहरेगी। मेरठ शहर हमारे निकटतम विश्वद्वीपको निरूपित करनेके लिए काफी बड़ा है। हम देखते हैं कि द्वीपविश्व बहुत दूर-दूर पर छिटके हुए हैं और उनके बीच बहुत-सा स्थान खाली छूटा है। साथ ही सब ज्ञात द्वीपविश्व इतनी दूर तक फैले हुए हैं कि पूर्वोक्त पैमाने पर सबको पृथ्वी पर निरूपित नहीं किया जा सकेगा, पृथ्वी छोटी पड़ेगी।

तारोंमें गरमी कहाँसे आती है

लोग कहते हैं कि सूर्य आगका गोला है, परंतु यदि सूर्य वस्तुतः कोयला होता तो जितनी गरमी इससे निकलती है उतनी गरमीके लिए उसे कुल डेढ़ हजार वर्षोंमें ही जलकर भस्म हो जाना पड़ता। कुछ वैज्ञानिकोंकी एक बार यह धारणा थी कि संकुचित होते रहनेके कारण सूर्यमें बराबर गरमी उत्पन्न होती रहती है, परंतु पीछे गणनासे पता चला कि यदि सूर्य अनन्त नापसे संकुचित होकर वर्तमान नापका होता गया हो तो भी वह उतनी गरमी न दे पाता जितना उसने दिया है। आधुनिक सिद्धांत यह है कि द्रव्य और गरमी तथा प्रकाश सब एक प्रकारकी वस्तु हैं और पदार्थ बदलकर ताप तथा प्रकाशका रूप धारण कर सकता है। संभव है कि हमारे सूर्यका पदार्थ इसी प्रकार धीरे-धीरे गरमी आदिमें परिवर्तित हो रहा हो। तारोंमें भी गरमी इसी प्रकार आती होगी। कुछ समयमें इस प्रकार सूर्य पहलेसे हलका हो जायगा, परंतु वर्तमान तौलका आधा होनेमें २०,००,००,००,००,००० वर्ष लगेंगे। इसलिए विशेष चिन्ता नहीं है!

तारा-पुंज

दूरदर्शकसे आकाशमें कहीं-कहीं तारा-पुंज भी दिखलाई पड़ते हैं। इनमें हजारों तारे एक साथ ही दिखलाई

पड़ते हैं। बीचमें वे प्रायः एक दूसरेसे सटे रहते हैं और बाहर चलकर वे अधिक दूर-दूर पर बिखरे रहते हैं (चित्र देखें)। आकाशमें इस प्रकारके लगभग १०० तारा-पुंज हैं। कोई नये तारापुंज इधर नहीं मिले हैं। जान पड़ता है कि उनकी संख्या कुल इतनी ही है। उनकी दूरियोंकी
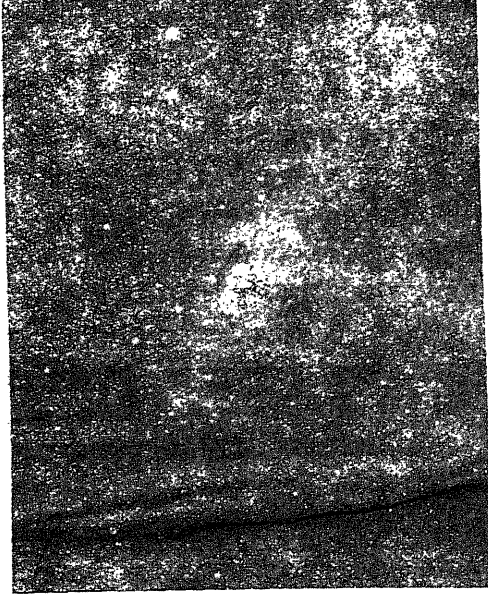
सप्तर्षि तारा-समूहकी सर्पिल नीहारिका।
माउंट विलसनके ६० इंच वाले दर्पण-दूरदर्शकसे लिया गया फोटोग्राफ़।

गणना की गयी है जिससे पता चलता है कि वे हमारी ही मंदाकिनी-संस्थामें हैं। आधुनिक विश्वोत्पत्ति-सिद्धांतोंमें इनकी कोई विशेष महत्ता नहीं है, परंतु देखनेमें वे बहुत सुन्दर जान पड़ते हैं। इनमेंसे अधिकांश कोरी आँखसे एकदम नहीं दिखलाई पड़ते। पाँच या छः ही कोरी आँखसे दिखलाई पड़ते हैं और सो भी अत्यन्त मंद एकहरे तारेकी तरह।

परिवर्तनशील तारे

बहुत-से तारे ऐसे हैं जिनकी चमक घटा-बढ़ा करती है। मीरा नामक तारा जो तिमि-तारा समूहमें है महत्तम चमकके समय ध्रुवतारेके समान चमकीला हो जाता है। तब धीरे-धीरे उसकी चमक कम होने लगती है। लगभग पाँच महीनेमें उसकी चमक इतनी कम हो जाती है कि तारा कोरी आँखसे दिखलाई भी नहीं पड़ता। तब फिर वह पहले जैसा चमकीला हो जाता है। यह क्रम बराबर चला करता है और एक चक्रमें लगभग ३३० दिन लगते हैं। ऐसे तारोंको दीर्घकालिक परिवर्ती कहते हैं।

कुछ परिवर्ती तारोंमें चमक कुछ ही दिनोंमें घट बढ़ लेती है। प्रकाश धीरे-धीरे घटता है परंतु बढ़ता है बहुत शीघ्र। इस प्रकारका सबसे प्रसिद्ध तारा डेल्टा सीफ़िआई नामका है। उसके प्रकाशके घटने-बढ़नेका एक चक्र ५$\frac{1}{3}$ दिनमें ही पूरा हो जाता है। इस मेलके अन्य तारोंका नाम पूर्वोक्त तारेके नाम पर सीफ़िआइड पड़ गया है। इन सीफ़िआइड तारोंकी चमकके घटने-बढ़नेका क्रम ऐसा बँधा हुआ है कि आकाशमें वे कहीं भी हों शीघ्र पहचाने जा सकते हैं। जान पड़ता है कि तारेका डील घटता-बढ़ता रहता है, मानों तारा अतिबृहत् हृदयकी तरह स्पंदन करता हो। कारण चाहे कुछ भी हो, इन तारोंसे ज्योतिषियोंको बड़ी सहायता मिली है क्योंकि इनकी ज्योतिके घटने-बढ़ने के चक्रसे उनकी वास्तविक चमकका पता चल जाता है। उनकी प्रत्यक्ष चमकका ज्ञान तो रहता ही है। इससे तुरंत पता चल जाता है कि वह तारा ठीक कितनी दूरी पर है। इससे उन नीहारिकाओं या तारापुंजोंकी दूरीका पता चल जाता है जिनमें सीफ़िआइड तारे रहते हैं।

नवीन तारे

कभी-कभी अस्थायी तारे दिखलायी पड़ जाते हैं जिनकी चमक देखते-देखते बढ़ जाती है और तब वे धीरे-धीरे फिर मंद हो जाते हैं। ऐसे तारोंको नवीन तारे कहते हैं, यद्यपि वस्तुतः वे नवीन नहीं रहते। वे पुराने ही तारे रहते हैं जिनकी चमक किसी कारण भड़क उठती है। पुरानी चमककी लाख गुनी चमक हो जाना कोई असाधारण बात नहीं है। सन् १५७२ में इस प्रकारका एक नवीन तारा इतना अधिक चमकीला हो गया था कि महत्तम पर वह शुक्रसे भी अधिक चमकीला था और दिनमें भी दिखलाई पड़ता था। सन् १६१८, १६२० और १६३४ में भी

चटक नवीन तारे दिखलाई पड़े थे। धीरे-धीरे मंद होकर नवीन तारे बीस-पचीस वर्षमें अपनी पुरानी दशामें पहुँच जाते हैं। तारोंकी चमक इस प्रकार क्यों भड़क उठती है इसका पता नहीं; परन्तु इतना अवश्य पता चला है कि किसी प्रकारका बिस्फोट होता है, जिससे तारे स्वयं फूल कर बड़े हो जाते हैं। आकाशमें कुछ ऐसी नीहारिकायें हैं जिनमें चारों ओर गैस-सा पदार्थ दिखलाई पड़ता है और बीचमें तारा है। संभव है ये कभी केंद्र वाले तारेमें से गैसोंके उमड़ पड़नेसे बनी हों।

तारे और तारा-समूह

अत्यंत प्राचीन समयसे लोग तारोंको देखते रहे हैं और आश्चर्य करते रहे हैं कि वे क्या हैं। बार-बार उन्हें किसी विशेष तारे या तारा समूहकी चर्चा करनी पड़ती थी। कुछ विशेष चमकीले तारोंके तो नाम पड़ गये, जैसे ध्रुव या अगस्त्य या बशिष्ठ। परन्तु सबको नाम देना असंभव-सा जान पड़ा होगा।

पता नहीं किस देशमें, कई एक तारा-समूहोंके विशेष नाम पड़ गये। कुछ नाम तो अवश्य भारतवर्षमें रक्खे गये होंगे। उदाहरणतः, ध्रुवसे थोड़ी ही दूर पर सात तारोंके एक समूहको सप्तर्षि कहते हैं। परंतु भारतवर्षमें अधिकांश नाम बाहरसे आये होंगे। अत्यंत प्राचीन समयमें भी व्यापारके कारण लोग दूर-दूर जाते थे, इसलिए एक देशका ज्ञान दूसरे देश तक पहुँच जाता था। कुछ ही वर्ष पहले भारतीय भाषाओंमें सब तारा-समूहोंके नाम नहीं थे, परन्तु वे अब गढ़ लिये गये हैं या गढ़े जा रहे हैं।

वर्तमान यूरोपीय नाम लोगोंको ग्रीससे मिला। ग्रीसको ये नाम मिश्र (ईजिप्ट) से मिले थे और इजिप्टवालोंको ये नाम बाबुलवालोंसे। बाबुलवालोंको ये नाम सुमेरु लोगोंसे मिले थे। सुमेरु लोगोंके प्राचीन लेख, जो मिट्टीके खपड़ों पर लिखे हैं, मिले हैं और पढ़ लिये गये हैं। उससे पूर्वका इतिहास नहीं मिलता। ये लेख लगभग १००० वर्ष ईसा पूर्वके हैं।

तारोंको तारा-समूहमें बाँट देनेसे किसी विशेष तारोंकी ओर संकेत करनेमें बड़ी सुविधा होती थी। उदाहरणतः, एक तारा है जिसकी चर्चा पहले की जा चुकी है और जिसका अरबी नाम है इब्तुलजौज़ा। इसका अर्थ है जौज़ाका कंधे वाला तारा। तारोंके मानचित्र पर पश्चिमके प्राचीन ज्योतिषी देवी-देवताओं, जंतुओं या वस्तुओंका चित्र बना लेते थे और उसीके अनुसार आँख वाला, सींग वाला, या कमरके पास, पैरके पास आदि वाक्योंसे तारोंको सूचित करते थे। तारा-समूहोंका नाम पशुओं और देवी-देवताओंके नामों पर क्यों पड़ा इसका पता नहीं। परन्तु कोई-न-कोई नाम देना ही था। अंड-बंड निरर्थक नवीन नाम गढ़नेके बदले चिरपरिचित ही नाम दिये गये तो क्या हानि हुई। कुछ तारा-समूहोंकी आकृति देखकर अवश्य विशेष जीव-जंतुओंका ध्यान आता है, जैसे वृश्चिक तारा-समूहमें चटक तारोंको मिलाने वाली रेखा सचमुच बिच्छूकी पूँछ-सी टेढ़ी है। परन्तु अधिकांश तारा-समूहोंकी आकृति और उनके नामोंमें कोई भी सम्बन्ध नहीं जान पड़ता। प्राचीन पाश्चात्य नामोंमें दो भालू, कई कुत्ते, एक साँड़, एक मेढा, एक शेर, एक घोड़ा, एक बकरा, दो साँप, एक अजगर, एक तिमि (ह्वेल), कई प्रकारकी मछलियाँ, एक केकड़ा, एक चील, एक हंस, एक कौआ और कई निर्जीव पदार्थ हैं। ग्रीस वालोंने इनमें कई देवी-देवताओंको घुसा दिया।

आधुनिक हिन्दी नामोंकी सूची परिशिष्ट तथा तारोंके मानचित्रोंमें मिलेगी।

तारोंके नामकरणकी आधुनिक प्रणाली यह है कि तारा-समूहके नामके आगे ग्रीक अक्षर या अँग्रेज़ी अक्षर या गिनती लगा दी जाय। उदाहरणतः डेल्टा सीफ़िआईका अर्थ है वह तारा जो सीफ़िअस नामक तारा समूहमें है और जिसको ग्रीक अक्षर डेल्टासे सूचित किया जाता है।

पता

श्रीयुत ....

....

....

मुद्रक तथा प्रकाशक—विश्वप्रकाश, कला प्रेस, प्रयाग।